पद घुंघरू बांध

Note: not be confused two different books:

Pad Ghunghru Bandh (पद घुंघरू बांध) - 150 letters written by Osho in Hindi to his disciples, friends and lovers.

Pad Ghunghru Bandh (पद घुंघरू बांध) (2) - 20 Talks on Meera.

अनुक्रम

1. प्रेम की झील में नौका -विहार 3
2. समाधि की अभिव्यक्तियां 25
3. मैं तो गिरधर के घर जाऊं 47
4. मृत्यु का वरणः अमृत का स्वाद 69
5. पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे 91
6. श्रद्धा है द्वार प्रभु का 114
7. मैंने राम रतन धन पायो 140
8. दमन नहीं --ऊर्ध्वगमन 163
9. राम नाम रस पीजै मनुआं 186
10. फूल खिलता है --अपनी निजता से 210
11. भक्तिः एक विराट प्यास 233
12. मनुष्यः अनखिला परमात्मा 252
13. मीरा से पुकारना सीखो 272
14. समन्वय नहीं --साधना करो 293
15. हेरी ! मैं तो दरद दिवानी 314
16. संन्यास है --दृष्टि का उपचार 335
17. भक्ति का प्राणः प्रार्थना 359
18. जीवन का रहस्य --मृत्यु में 382
19. भक्तिः चाकर बनने की कला 405
20. प्रेम श्वास है आत्मा की 428

पद घुंघरू बांध
पहला प्रवचन

प्रेम की झील में नौका-विहार

बसौ मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरत सांवरी सूरत, नैना बने बिसाल।
मोर मुकुट मकराकृति कुंडल, अरुण तिलक शोभे भाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर वैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटितट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बच्छल गोपाल।

हरि मोरे जीवन प्राण आधार।
और आसिरो नाहिं तुम बिन, तीनूं लोक मंझार।
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, निरखौ सब संसार।
मीरा कहै मैं दास रावरी, दीज्यौ मति बिसार।

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
छाड़ि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।
संतन ढिंग बैठि बैठि लोकलाज खोई।
अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेलि फैल गई, आनंद फल होई।
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोहि।

आओ, प्रेम की एक झील में नौका-विहार करें। और ऐसी झील मनुष्य के इतिहास में दूसरी नहीं है, जैसी झील मीरा है। मानसरोवर भी उतना स्वच्छ नहीं। और हंसों की ही गति हो सकेगी मीरा की इस झील में। हंस बनो, तो ही उतर सकोगे इस झील में। हंस न बने तो न उतर पाओगे।
हंस बनने का अर्थ हैः मोतियों की पहचान आंख में हो, मोती की आकांक्षा हृदय में हो। हंसा तो मोती चुगे! कुछ और से राजी मत हो जाना। क्षुद्र से जो राजी हो गया, वह विराट को पाने में असमर्थ हो जाता है। नदी-नालों का पानी पीने से जो तृप्त हो गया, वह मानसरोवरों तक नहीं पहुंच पाता है; जरूरत ही नहीं रह जाती।
मीरा की इस झील में तुम्हें निमंत्रण देता हूं। मीरा नाव बन सकती है। मीरा के शब्द तुम्हें डूबने से बचा सकते हैं। उनके सहारे पर उस पार जा सकते हो।
मीरा तीर्थंकर है। उसका शास्त्र प्रेम का शास्त्र है। शायद शास्त्र कहना भी ठीक नहीं।
नारद ने भक्ति-सूत्र कहे हैं; वह शास्त्र है। वहां तर्क है, व्यवस्था है, सूत्रबद्धता है। वहां भक्ति का दर्शन है।
मीरा स्वयं भक्ति है। इसलिए तुम रेखाबद्ध तर्क न पाओगे। रेखाबद्ध तर्क वहां नहीं है। वहां तो हृदय में कौंधती हुई बिजली है। जो अपने आशियाने जलाने को तैयार होंगे, उनका ही संबंध जुड़ पाएगा।
प्रेम से संबंध उन्हीं का जुड़ता है, जो सोच-विचार खोने को तैयार हों;
जो सिर गंवाने को उत्सुक हों। उस मूल्य को जो नहीं चुका सकता, वह सोचे भक्ति के संबंध में, विचारे; लेकिन भक्त नहीं हो सकता।
तो मीरा के शास्त्र को शास्त्र कहना भी ठीक नहीं। शास्त्र कम है, संगीत ज्यादा है। लेकिन संगीत ही तो केवल भक्ति का शास्त्र हो सकता है। जैसे तर्क ज्ञान का शास्त्र बनता है, वैसे संगीत भक्ति का शास्त्र बनता है। जैसे गणित आधार है ज्ञान का, वैसे काव्य आधार है भक्ति का। जैसे सत्य की खोज ज्ञानी करता है, भक्त सत्य की खोज नहीं करता, भक्त सौंदर्य की खोज

करता है। भक्त के लिए सौंदर्य ही सत्य है। ज्ञानी कहता हैः सत्य सुंदर है।
भक्त कहता हैः सौंदर्य सत्य है।
रवींद्रनाथ ने कहा हैः ब्यूटी इ.ज ट्रुथ। सौंदर्य सत्य है।
रवींद्रनाथ के पास भी वैसा ही हृदय है जैसा मीरा के पास। लेकिन रवींद्रनाथ पुरुष हैं; गलते-गलते भी पुरुष की अड़चनें रह जाती हैं; मीरा जैसे नहीं पिघल पाते। खूब पिघले। जितना पिघल सकता है पुरुष, उतने पिघले; फिर भी मीरा जैसे नहीं पिघल पाते।
मीरा स्त्री है। स्त्री के लिए भक्ति ऐसे ही सुगम है जैसे पुरुष के लिए तर्क और विचार।
वैज्ञानिक कहते हैंः मनुष्य का मस्तिष्क दो हिस्सों में विभाजित है। बाईं तरफ जो मस्तिष्क है वह सोच-विचार करता है; गणित, तर्क, नियम, वहां सबशृंखलाबद्ध है। और दाईं तरफ जो मस्तिष्क है वहां सोच-विचार नहीं है; वहां भाव है, वहां अनुभूति है। वहां संगीत की चोट पड़ती है। वहां तर्क का कोई प्रभाव नहीं होता। वहां लयबद्धता पहुंचती है। वहां नृत्य पहुंच जाता है; सिद्धांत नहीं पहुंचते।
स्त्री दाएं तरफ के मस्तिष्क से जीती है; पुरुष बाएं तरफ के मस्तिष्क
से जीता है। इसलिए स्त्री-पुरुष के बीच बात भी मुश्किल होती है; कोई मेल नहीं बैठता दिखता। पुरुष कुछ कहता है, स्त्री कुछ कहती है। पुरुष और ढंग से सोचता है, स्त्री और ढंग से सोचती है। उनके सोचने की प्रक्रियाएं अलग हैं। स्त्री विधिवत नहीं सोचती; सीधी छलांग लगाती है, निष्कर्षों पर पहुंच जाती है। पुरुष निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता, विधियों से गुजरता है-- क्रमबद्ध, एक-एक कदम।
प्रेम में कोई विधि नहीं होती, विधान नहीं होता। प्रेम की क्या विधि
और क्या विधान! हो जाता है बिजली की कौंध की तरह। हो गया तो हो गया। नहीं हुआ तो करने का कोई उपाय नहीं है।
पुरुषों ने भी भक्ति के गीत गाए हैं, लेकिन मीरा का कोई मुकाबला नहीं है; क्योंकि मीरा के लिए, स्त्री होने के कारण जो बिल्कुल सहज है, वह पुरुष के लिए थोड़ा आरोपित सा मालूम पड़ता है। पुरुष भक्त हुए; जिन्होंने अपने को परमात्मा की प्रेयसी माना, पत्नी माना। मगर बात कुछ अड़चन भरी हो जाती है। संप्रदाय है ऐसे भक्तों का, बंगाल में अब भी जीवित--जो पुरुष हैं, लेकिन अपने को मानते हैं कृष्ण की पत्नी। रात स्त्री जैसाशृंगार करके, कृष्ण की मूर्ति को छाती से लगा कर सो जाते हैं। मगर बात में कुछ बेहूदापन लगता है। बात कुछ जमती नहीं। ऐसा ही बेहूदापन लगता है जैसे कि तुम, जहां जो नहीं होना चाहिए, उसे जबरदस्ती बिठाने की कोशिश करो, तो लगे।
पुरुष पुरुष है; उसके लिए स्त्री होना ढोंग ही होगा। भीतर तो वह जानेगा ही कि मैं पुरुष हूं। ऊपर से तुम स्त्री के वस्त्र भी पहन लो और कृष्ण की मूर्ति को हृदय से भी लगा लो--तब भी तुम भीतर के पुरुष को इतनी आसानी से खो न सकोगे। यह सुगम नहीं होगा।
स्त्रियां भी हुई हैं जिन्होंने ज्ञान के मार्ग से यात्रा की है। मगर वहां भी बात कुछ बेहूदी हो गई। जैसे ये पुरुष बेहूदे लगते हैं और थोड़ा सा विचार पैदा होता है कि ये क्या कर रहे हैं! ये पागल तो नहीं हैं! ऐसे ही लल्ला कश्मीर में हुई, वह महावीर जैसे विचार में पड़ गई होगी; उसने वस्त्र फेंक दिए, वह नग्न हो गई।
लल्ला में भी थोड़ा सा कुछ अशोभन मालूम होता है। स्त्री अपने को छिपाती है। वह उसके लिए सहज है। वह उसकी गरिमा है। वह अपने को ऐसा उघाड़ती नहीं। ऐसा उघाड़ती है तो वेश्या हो जाती है। लल्ला ने बड़ी हिम्मत की, फेंक दिए वस्त्र। असाधारण स्त्री रही होगी! लेकिन थोड़ी सी अस्वाभाविक मालूम होती है बात। महावीर के लिए नग्न खड़े हो जाना अस्वाभाविक नहीं लगता; बिल्कुल स्वाभाविक लगता है। ऐसी ही बात है।
मीरा में जैसी सहज उदभावना हुई है भक्ति की, कहीं भी नहीं है। भक्त और
भी हुए हैं, लेकिन सब मीरा से पीछे पड़ गए, पिछड़ गए। मीरा का तारा बहुत जगमगाता हुआ तारा है। आओ, इस तारे की तरफ चलें। अगर थोड़ी सी भी बूंदें तुम्हारे जीवन में बरस जाएं, मीरा के रस की, तो भी तुम्हारे रेगिस्तान में फूल खिल जाएंगे। अगर तुम्हारे हृदय में थोड़े से भी वैसे आंसू घुमड़ आएं,

जैसे मीरा को घुमड़े, और तुम्हारे हृदय में थोड़े से राग बजने लगें, जैसा मीरा को बजा, थोड़ा सा सही! एक बूंद भी तुम्हें रंग जाएगी और नया कर जाएगी। तो मीरा को तर्क और बुद्धि से मत सुनना। मीरा का कुछ तर्क और बुद्धि
से लेना-देना नहीं है। मीरा को भाव से सुनना, भक्ति से सुनना, श्रद्धा की आंख से देखना। हटा दो तर्क इत्यादि को, किनारे सरका कर रख दो। थोड़ी देर के लिए मीरा के साथ पागल हो जाओ। यह मस्तों की दुनिया है। यह प्रेमियों की दुनिया है। तो ही तुम समझ पाओगे, अन्यथा चूक जाओगे।
बहुत बार मौके आए जब मैं मीरा पर बोलता; लेकिन टालता गया। क्योंकि मीरा पर कुछ बोलना कठिन है। महावीर पर बोलना बहुत आसान है। बुद्ध पर बोलना बहुत आसान है। पतंजलि पर बोलना बहुत आसान है। मीरा पर बोलना बहुत कठिन है। क्योंकि यह बात बोलने की है ही नहीं; यह बात तो होने की है। यह भाव की है। मीरा गुनगुनाई जा सकती है, मीरा पर बोलो क्या? मीरा गाई जा सकती है, मीरा पर बोलो क्या? मीरा नाची जा सकती है, मीरा पर बोलो क्या?
इसलिए तुम से कहता हूंः आओ, इस गौरीशंकर पर चढ़ें--प्रेम के गौरीशंकर पर! इस ऊंचाई पर पंख फैलाएं! केवल वे ही उड़ पाने में समर्थ होंगे जो तर्क का बोझ एक तरफ हटा कर रख देंगे।
मीरा के पास तुम्हें देने को बहुत है। मीरा एक मेघ है, जो बरस जाए तो तुम तृप्त हो जाओ।
तरानों में मोहब्बत का तराना ले के आया हूं
फसानों में हकीकत का फसाना ले के आया हूं
तलाशे-बर्के-आदमसोज में निकला हूं जन्नत से
जलाने ही को आखिर आशियाना ले के आया हूं
जमाने से अलग हूं अहले-सोहबत के लिए लेकिन
नया हक-ओ-अमल का इक जमाना ले के आया हूं
उठ और तय दो जहां की मंजिलें इक गाम में कर ले
जनूने-अर्शो-पैमां वालहाना ले के आया हूं
उठ! जाग!
उठ और तय दो जहां की मंजिलें इक गाम में कर ले
मीरा के साथ सारी यात्रा एक कदम में हो सकती है। तर्क बहुत कदम लेता है, क्योंकि विधि से चलता है। मीरा छलांग है।
उठ और तय दो जहां की मंजिलें इक गाम में कर ले
इसलिए तुमसे कहता हूं कि आओ, एक ही कदम में यह यात्रा हो सकती है। जनूने-अर्शो-पैमां वालहाना ले के आया हूं
मीरा मस्ती से भरी हुई एक शराब लिए खड़ी है। उसका रसास्वादन करो। मीरा शराब है--पीओ। समझो कम--पीओ ज्यादा। उसका तराना प्रेम का तराना है।
मुझे मौका दो कि मैं तुम्हारे हृदय की वीणा को थोड़ा बजा सकूं। तो ही तुम समझ पाओगे।
ये मीरा के जो वचन हम सुनेंगे, चर्चा करेंगे, गुनगुनाएंगे, डूबेंगे--
इन वचनों में ऊपर से कोई तारतम्य नहीं है। ये तो भक्त की अनुभूतियां हैं। लेकिन भीतर बड़ा तारतम्य है। ऊपर-ऊपर कुछ न दिखाई पड़ेगा कि इनमें क्या संबंध है। मीरा ने कोई रामचरितमानस नहीं लिखा है कि शुरू किया बालकांड से और चले। ये तो भाव की अराजक अभिव्यक्तियां हैं। जब उठा भाव, गाया। जैसा उठा, वैसा गाया।
फिर ये लोगों के सामने भी गाई गई बातें नहीं हैं। ये तो उस परम प्यारे
के सामने गाए गए गीत हैं। इन गीतों में सुधार भी नहीं किया गया है। कवि लिखता है तो खूब सुधार-संशोधन करता है। ये तो कच्चे, कोरे, वैसे के वैसे, जैसे खदान से हीरे निकलते हैं--तराशे नहीं गए--बेतराशे, अनगढ़!
मीरा को फिकर नहीं है आदमियों की कि इनमें, गीतों में भूल-चूक लगेगी, काव्य के नियम पूरे होंगे कि नहीं, मात्राएं ठीक बैठती हैं कि नहीं; इस सबका कोई हिसाब नहीं है।
तुम जब अपने प्रेमी के सामने गीत गाते हो, तो यह सब थोड़े ही फिकर रखते हो! प्रेमी तुम्हारा परीक्षक थोड़े ही है! प्रेमी के सामने जब तुम गीत गाते हो, तो तुम यह थोड़े ही सोचते हो कि गीत भाषा की दृष्टि से, व्याकरण की दृष्टि से, मात्रा-छंद की दृष्टि से--पूरा है या नहीं! इतना ही देखते हो कि

मेरा हृदय इस गीत में उंडल रहा है या नहीं! जब शराब से भरी हुई प्याली हो तो प्याली का आकार कौन देखता है--किस आकार की है!
तो तुम पीओगे तो समझोगे। और तारतम्य भी मिलेगा। लेकिन तारतम्य ऐसा रहेगा, ऊपर-ऊपर से दिखाई नहीं पड़ेगा! जैसे एक गुलाब की झाड़ी पर बहुत से गुलाब के फूल खिले हैं, ऊपर से तो कोई जुड़े दिखाई नहीं पड़ते। कोई छोटा है, कोई बड़ा है। और अगर माली कुशल रहा हो तो कोई सफेद है, और कोई लाल है, और कोई पीला है। सब अलग-अलग ढंग के खिले हैं। लेकिन सब एक ही जड़ से जुड़े हैं। वही जड़ तुम्हें दिखाई पड़ जाए तो तुम मीरा के साथ हो लोगे।
इसके पहले कि हम मीरा के शब्दों में उतरें, मीरा के संबंध में कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली बातः मीरा का कृष्ण से प्रेम मीरा की तरह शुरू नहीं हुआ! प्रेम
का इतना अपूर्व भाव इस तरह शुरू हो भी नहीं सकता। यह कहानी पुरानी है। यह मीरा कृष्ण की पुरानी गोपियों में से एक है। मीरा ने खुद भी इसकी घोषणा की है, लेकिन पंडित तो मानते नहीं। क्योंकि इसके लिए इतिहास का कोई प्रमाण नहीं है। मीरा ने खुद भी कहा है कि कृष्ण के समय में मैं उनकी एक गोपी थी, ललिता मेरा नाम था। मगर पंडित तो इसको टाल जाते हैं; यह बात को ही कह देते हैं कि किंवदंती है, कथा-कहानी है।
मैं ऐसा न कर सकूंगा। मैं पंडित नहीं हूं। और हजार पंडित कहते हों तो उनकी मैं दो कौड़ी की मानता हूं। मीरा खुद कहती है, उसे मैं स्वीकार करता हूं। सच-झूठ का मुझे हिसाब भी नहीं लगाना है। बात के इतिहास होने न होने से कोई प्रयोजन भी नहीं है। मीरा का वक्तव्य, मैं राजी हूं। मीरा जब खुद कहती है तो बात खतम हो गई। फिर किसी और को इसमें और प्रश्न उठाने का प्रश्न नहीं उठना चाहिए। और जो इस तरह के प्रश्न उठाते हैं वे मीरा को समझ भी न पाएंगे। अंग्रेजी में एक शब्द हैः देजावुह। उसका अर्थ होता हैः पूर्वभव की स्मृति का अचानक उठ आना। कभी-कभी तुम्हें भी देजावुह होता है। कल रात ही एक युवा संन्यासी मुझसे बात कर रहा था। उसने बार-बार मुझे पत्र लिखे, वह बड़ा परेशान था। परेशानी होगी ही। उसे कई बार ऐसा लगता है यहां इन गैरिक वस्त्रधारी संन्यासियों के साथ उठते-बैठते-चलते कि जैसे पहले भी वह कभी ऐसी ही किसी स्थिति में रहा है--पहले कभी किसी जन्म में। इससे बड़ी बेचैनी भी हो जाती है। कभी-कभी तो कोई घटना उसे ऐसी लगती है कि बिल्कुल फिर से दोहर रही है। तो बेचैनी स्वाभाविक है। और पश्चिम से आया युवक है तो बेचैनी और स्वाभाविक है। उसने बहुत बार मुझे लिखा। कल वह विदा होने को आया था, अब वह जा रहा है वापस, तो मुझसे पूछने लगाः आपने कभी कुछ कहा नहीं कि मैं क्या करूं? मुझे बार-बार ऐसा लगता है। तो उसे मैंने कहा कि देजावुह, यह पूर्वभव का स्मरण एक वास्तविकता है। बेचैन तो करेगी, क्योंकि इससे तर्क का कोई संबंध नहीं जुड़ता है।
हम यहां नये नहीं हैं, हम यहां प्राचीन हैं; सनातन से हैं। ऐसा कोई समय
न था जब तुम न थे। ऐसा कोई समय न था जब मैं न था। ऐसा कोई समय न था, न ऐसा कोई कभी समय होगा जब तुम नहीं हो जाओगे। रहोगे, रहोगे, रहोगे। रूप बदलेंगे, ढंग बदलेंगे, शैलियां बदलेंगी; अस्तित्व शाश्वत है। जो शाश्वत है, वही सत्य है; शेष जो बदलता जाता है, वह तो केवल आवरण है। जैसे कोई वस्त्र बदल लेता है।
तो रामकृष्ण ने मरते वक्त कहाः रोओ मत, क्योंकि मैं केवल वस्त्र बदल रहा हूं। और रमण ने मरते वक्त कहा--जब किसी ने पूछा कि आप कहां चले जाएंगे? आप कहां जा रहे हैं? हमें छोड़ कर कहां जा रहे हैं? तो उन्होंने कहाः बंद करो यह बकवास! मैं कहां जाऊंगा? मैं यहां था और यहीं रहूंगा। जाना कहां है! यही तो एकमात्र अस्तित्व है।
रूप बदलते हैं। बीज वृक्ष हो जाता है; वृक्ष बीज हो जाता है। गंगा सागर बन जाती है; सागर सूरज की किरणों से चढ़ कर मेघ बन जाता है; मेघ फिर गंगा में गिर जाता है; फिर गंगा सागर में गिर जाती है। मगर एक जल की बूंद भी कभी खोई नहीं है; जल उतना ही है जितना सदा से था। और एक भी आत्मा कहीं खोई नहीं है।
तो मैंने उस युवक को कहाः बिल्कुल घबड़ाओ न। हो सकता है, मेरे पास तुम कभी अतीत में न भी बैठे हो; यह हो सकता है, क्योंकि यह अनंत है जगत। यह हो

सकता है कि मेरा तुमसे मिलना कभी न हुआ हो। लेकिन फिर भी यह बात पक्की है कि मेरे जैसे किसी आदमी से तुम्हारा मिलना हुआ होगा। तुमने किसी बुद्ध की आंखों में झांका होगा। तुम किसी सदगुरु के चरणों में बैठे होओगे। फिर वह कौन था, मोहम्मद था कि कृष्ण कि क्राइस्ट, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; क्योंकि सदगुरुओं का स्वाद एक है और उनकी आंखों का दृश्य एक है।
तो कभी-कभी, अगर तुम बुद्ध के साथ रहे हो ढाई हजार साल पहले, तो मेरे पास बैठे-बैठे एक क्षण को तुम अभिभूत हो जाओगे। एक क्षण को लगेगाः यह तो फिर वैसा ही कुछ हो रहा है, जैसा पहले हुआ है। एक क्षण को यहां से तुम विदा हो जाओगे और अतीत का दृश्य खुल जाएगा। कोई पर्दा जैसे पड़ा था। और अचानक तुम पाओगेः यह तो वही हो रहा है जो पहले हुआ। शायद कभी ऐसा भी हो सकता है कि मैं तुमसे जो शब्द कहूं, वे ही शब्द तुमसे बुद्ध ने भी कहे हों। और यह भी संभव है कि कभी तुम मेरे साथ भी रहे होओ। सभी कुछ संभव है। इस जगत में असंभव कुछ भी नहीं है।
मीरा ने कहा हैः मैं ललिता थी। कृष्ण के साथ नाची, वृंदावन में कृष्ण
के साथ गाई। यह प्रेम पुराना है--मीरा यही कह रही है--यह प्रेम नया नहीं है। और इसकी शुरुआत जिस ढंग से हुई, वह शुरुआत भी करती है साफ कि पंडित गलत होंगे, मीरा सही है। और पंडित कितने ही सही लगें, फिर भी सही नहीं होते, क्योंकि उनके सोचने का ढंग ही बुनियाद से गलत होता है। वे प्रमाण मांगते हैं। अब प्रमाण क्या? किसी अदालत की सील-मोहर लगी हुई कोई फाइल मौजूद करे मीरा, कि कृष्ण के समय में थी? कहां से प्रमाणपत्र लाए? गवाह जुटाए? अंतर्भाव पर्याप्त है। और उसका अंतर्भाव प्रमाण है।
मीरा छोटी थी, चार-पांच साल की रही होगी, तब एक साधु मीरा के घर मेहमान हुआ, और जब सुबह साधु ने उठ कर अपनी मूर्ति--कृष्ण की मूर्ति छुपाए था अपनी गुदड़ी में--निकाल कर जब उसकी पूजा की तो मीरा एकदम पागल हो गई। देजावुह हुआ। पूर्वभव का स्मरण आ गया। वह मूर्ति कुछ ऐसी थी कि चित्र पर चित्र खुलने लगे। वह मूर्ति जो थी--शुरुआत हो गई फिर से कहानी की; निमित्त बन गई। उससे चोट पड़ गई। कृष्ण की मूरत फिर याद आ गई। फिर वह सांवला चेहरा, वे बड़ी आंखें, वे मोरमुकुट में बंधे, वे बांसुरी बजाते कृष्ण! मीरा लौट गई हजारों साल पीछे अपनी स्मृति में। रोने लगी। साधु से मांगने लगी मूर्ति। लेकिन साधु को भी बड़ा लगाव था अपनी मूर्ति से; उसने मूर्ति देने से इनकार कर दिया। वह चला भी गया। मीरा ने खाना-पीना बंद कर दिया।
पंडितों के लिए यह प्रमाण नहीं होता कि इससे कुछ प्रमाण मिलता है देजावुह का। लेकिन मेरे लिए प्रमाण है। चार-पांच साल की बच्ची! हां, बच्चे कभी-कभी खिलौनों के लिए भी तरस जाते हैं। लेकिन घड़ी दो घड़ी में भूल जाते हैं। दिन भर बीत गया, न उसने खाना खाया, न पानी पीया। उसकी आंखों से आंसू बहते रहे। वह रोती ही रही। उसके घर के लोग भी हैरान हुए कि अब क्या करें? साधु तो गया भी, कहां उसे खोजें? और वह देगा, इसकी भी संभावना कम है।
और वह कृष्ण की मूरत जरूर ही बड़ी प्यारी थी, घर के लोगों को भी लगी थी। उन्होंने भी बहुत मूर्तियां देखी थीं, मगर उस मूर्ति में कुछ था जीवंत, कुछ था जागता हुआ, उस मूर्ति की तरंग ही और थी। जरूर किसी ने गढ़ी होगी प्रेम से; व्यवसाय के लिए नहीं। किसी ने गढ़ी होगी भाव से। किसी ने अपनी सारी प्रार्थना, अपनी सारी पूजा उसमें ढाल दी होगी। या किसी ने, जिसने कृष्ण को कभी देखा होगा, उसने गढ़ी होगी। मगर बात कुछ ऐसी थी, मूर्ति कुछ ऐसी थी कि मीरा भूल ही गई, इस जगत को भूल ही गई। वह तो उस मूर्ति को लेकर रहेगी, नहीं तो मर जाएगी। यह विरह की शुरुआत हुई चार-पांच साल की उम्र में! रात उस साधु ने सपना देखा। दूर दूसरे गांव में जाकर सोया था। रात सपना आयाः कृष्ण खड़े हैं। उन्होंने कहा कि मूर्ति जिसकी है उसको लौटा दे। तूने रख ली बहुत दिन तक; यह अमानत थी; मगर यह तेरी नहीं है। अब तू नाहक मत ढो। तू वापस जा, मूर्ति उस लड़की को दे दे; जिसकी है उसको दे दे। उसकी थी, तेरी अमानत पूरी हो गई। तेरा काम पूरा हो गया। यहां तक तुझे पहुंचाना था, वहां तक पहुंचा दिया; अब बात खतम हो गई।
मूर्ति उसकी है जिसके हृदय में मूर्ति के लिए प्रेम है। और किसकी मूर्ति?

साधु तो घबड़ा गया। कृष्ण तो कभी उसे दिखाई भी न पड़े थे। वर्षों से प्रार्थना-पूजा कर रहा था, वर्षों से इसी मूर्ति को लिए चलता था, फूल चढ़ाता था, घंटी बजाता था, कृष्ण कभी दिखाई न पड़े थे। वह तो बहुत घबड़ा गया। वह तो आधी रात भागा हुआ आया। आधी रात आकर जगाया और कहाः मुझे क्षमा करो, मुझसे भूल हो गई। इस छोटी सी लड़की के पैर पड़े, इसे मूर्ति देकर वापस हो गया।
यह जो चार-पांच साल की उम्र में घटना घटी, इससे फिर से दृश्य खुले; फिर प्रेम उमगा; फिर यात्रा शुरू हुई। यह मीरा के इस जीवन में कृष्ण के साथ पुनर्गठबंधन की शुरुआत है। मगर यह नाता पुराना था। नहीं तो बड़ा कठिन है। कृष्ण को देखा न हो, कृष्ण को जाना न हो, कृष्ण की सुगंध न ली हो, कृष्ण का हाथ पकड़ कर नाचे न होओ--तो लाख उपाय करो, तुम कृष्ण को कभी जीवंत अनुभव न कर सकोगे। इसलिए जीता सदगुरु ही सहयोगी होता है।
तुम भी कृष्ण की मूर्ति रख कर बैठ सकते हो, मगर तुम्हारे भीतर भाव का उद्रेक नहीं होगा। भाव के उद्रेक के लिए तुम्हारी अंतर-कथा में कोई संबंध चाहिए कृष्ण से; तुम्हारी अंतर-कथा में कोई समानांतर दशा चाहिए। मीरा का भजन तुम भी गा सकते हो; लेकिन जब तक कृष्ण से तुम्हारा कुछ अंतर-नाता न हो, तब तक भजन ही रह जाएगा, जुड़ न पाओगे। हृदय--हृदय न मिलेगा, सेतु न बनेगा। वह चार-पांच वर्ष की उम्र में घटी छोटी सी घटना--सांयोगिक घटना--और क्रांति हो गई। मीरा मस्त रहने लगी, जैसे एक शराब मिल गई। दो वर्ष बाद पड़ोस में किसी का विवाह हुआ, और यह सात-आठ साल की लड़की ने पूछा अपनी मां कोः सबका विवाह होता है, मेरा कब होगा? और मेरा वर कौन है? और मां ने तो ऐसे ही मजाक में कहा--क्योंकि वह उस वक्त भी कृष्ण की मूर्ति को छाती से लगाए खड़ी थी-- कि तेरा वर कौन है? यह गिरधर गोपाल! यह गिरधरलाल! यही तेरे वर हैं! और क्या चाहिए? यह तो मजाक में ही कहा था! मां को क्या पता था कि कभी-कभी मजाक में कही गई बात भी क्रांति हो जा सकती है। और क्रांति हो गई। और कभी-कभी कितनी ही गंभीरता से तुमसे कहा जाए, कुछ भी नहीं होता, क्योंकि तुम्हारे भीतर कुछ छूता ही नहीं। हो तो छुए। बीज को पत्थर पर फेंक दोगे तो अंकुरित नहीं होता; ठीक भूमि मिल जाए तो अंकुरित हो जाता है। वह ठीक भूमि थी। मां को भी पता नहीं था; सोचती थी कि बच्चे का खिलवाड़ है; कृष्ण एक खिलौना हैं। मिल गए हैं इसको। सुंदर मूर्ति है, माना। तो नाचती-गुनगुनाती रहती है, ठीक है, अपना उलझी रहती है; कुछ हर्जा भी नहीं है। मजाक में ही कहा था कि तेरे तो और कौन पति! ये गिरधर गोपाल हैं! ये नंदलाल हैं! मगर उसका मन उसी दिन भर गया। यह बात हो गई।
कभी-कभी संयोग महारंभ बन जाते हैं--महाप्रस्थान के पथ पर। उसने तो मान
ही लिया। वह छोटा सा भोला-भाला मन! उसने मान लिया कि यही उसके पति हैं। फिर क्षण भर को भी यह बात डगमगाई नहीं। फिर क्षण भर को भी यह बात भूली नहीं। असल में, बचपन में अगर कोई भाव बैठ जाए तो बड़ा दूरगामी होता है। यह बात बैठ गई। उस दिन से उसने अपना सारा प्रेम कृष्ण पर उंडेल दिया। जितना तुम प्रेम उंडेलोगे, उतने ही कृष्ण जीवित होते चले गए। पहले अकेली बात करती थी, फिर कृष्ण भी बात करने लगे। पहले अकेली डोलती थी, फिर कृष्ण भी डोलने लगे। यह नाता भक्त का और मूर्ति का न रहा; भक्त और भगवान का हो गया।
और इसके बाद कुछ घटनाएं घटीं, जो ख्याल में ले लेनी चाहिए--जो महत्वपूर्ण हैं।
मीरा पर जिन लोगों ने किताबें लिखी हैं, वे सब लिखते हैंः दुर्भाग्य
से मीरा की मां मर गई, जब वह बहुत छोटी थी। फिर उसके बाबा ने उसे पाला। फिर बाबा मर गए। फिर सत्रह-अठारह साल की उम्र में उसका विवाह किया गया। फिर उसके पति मर गए। फिर ससुर ने उसकी सम्हाल की। और फिर ससुर भी मर गए। फिर पिता उसकी देखभाल किए, फिर पिता भी मर गए। ऐसी पांच मृत्युएं हुईं। जब मीरा कोई बत्तीस-तैंतीस साल की थी, तब तक उसके जीवन में जो भी महत्वपूर्ण व्यक्ति थे, सभी मर गए। जिनको भी उसने चाहा था और प्रेम किया था, वे सब मर गए। जो लोग मीरा पर किताबें लिखते हैं, वे सब लिखते हैंः दुर्भाग्य से। मैं ऐसा नहीं कह सकता। यह सौभाग्य से ही हुआ। वे लिखते हैं दुर्भाग्य
से, क्योंकि मृत्यु को सभी लोग दुर्भाग्य मानते हैं। लेकिन यही तो मीरा के जन्म का कारण बना। जितना भी प्रेम कहीं था, वह सब सिकुड़ता गया। सारा प्रेम गोपाल पर उमड़ता गया। मां से लगाव था, मां चल बसी। उतना प्रेम जो मां से

उलझा था, वह भी गोपाल के चरणों में रख दिया। फिर बाबा ने पाला, फिर बाबा चल बसे; उनसे प्रेम था, वह भी गोपाल के चरणों में रख दिया। ऐसे संसार छोटा होता गया, सिकुड़ता गया और परमात्मा बड़ा होता गया। तो मैं नहीं कह सकता दुर्भाग्य से; मैं तो कहूंगा सौभाग्य से। क्योंकि मृत्यु का मेरे लिए कोई ऐसा भाव नहीं है मृत्यु के प्रति कि वह कोई आवश्यक रूप से अभिशाप है। सब तुम पर निर्भर है। मीरा ने उसका ठीक उपयोग कर लिया। जहां-जहां से प्रेम उखड़ता गया, एक-एक प्रेम-पात्र जाने लगा, वह अपने उस प्रेम को परमात्मा में चढ़ाने लगी।
अंतिम सूत्र था--पिता का रहना। पिता भी चल बसे। पति भी चल बसे, पिता भी
चल बसे। पांच मृत्युएं हो गईं सतत। जगत से सारा संबंध टूट गया। उसने ठीक उपयोग कर लिया। जगत से टूटते हुए संबंधों को उसने जगत के प्रति वैराग्य बना लिया। और जगत से जो प्रेम मुक्त हो गया, उसको परमात्मा के चरणों में चढ़ा दिया। वह कृष्ण के राग में डूब गई।
और इन मृत्युओं ने एक और सौभाग्य का काम किया, कि इन्होंने एक बात दिखा दी कि इस जगत में सब क्षणभंगुर है; अगर प्यारा खोजना हो तो शाश्वत में खोजो। यहां कुछ अपना नहीं है। यहां भरमो मत, अपने को भरमाओ मत, भ्रमाओ मत! यहां सब छूट जाने वाला है। यहां मृत्यु ही मृत्यु फैली है। यह मरघट है। यहां बसने के इरादे मत करो। यहां कोई कभी बसा नहीं। अपनी आंख से देखा सबको जाते उसने। बत्तीस-तैंतीस साल की उम्र कोई बड़ी उम्र नहीं। जवान थी। जवानी में इतनी मौत घटीं कि मौत का कांटा उसे ठीक-ठीक साफ-साफ दिखाई पड़ गया कि जीवन क्षणभंगुर है। और तब उसका मन यहां से विरक्त हो गया। जो यहां से विरक्त है, वही परमात्मा में अनुरक्त हो सकता है। तुम दोनों राग एक साथ नहीं पाल सकते हो। तुम दो नावों पर एक साथ सवार नहीं हो सकते हो।
तो जब मैंने तुमसे कहा, "आओ, प्रेम की झील में नौका-विहार को चलें"--तो मैं तुमसे यह कह रहा हूंः अब तुम अपनी संसार की नाव से उतरो, अब परमात्मा को नाव बनाओ। "आओ, प्रेम के गौरीशंकर पर चढ़ें"--तो मैं तुमसे यह कह रहा हूंः अपनी अंधेरी घाटियों से लगाव छोड़ो; वहां मृत्यु के सिवाय और कोई भी नहीं है।
जिन्हें तुमने घर समझा है, वह मरघट है। जिन्हें तुमने अपना समझा है, साथ हो गया है दो क्षण का राह पर--सब अजनबी हैं। आज नहीं कल सब छूट जाएंगे। तुम अकेले आए हो और अकेले जाओगे। और तुम अकेले हो। इस जगत में सिर्फ एक ही संबंध बन सकता है--और वह संबंध परमात्मा से है; शेष सारे संबंध बनते हैं और मिट जाते हैं। सुख तो कुछ ज्यादा नहीं लाते, दुख बहुत लाते हैं। सुख की तो केवल आशा रहती है; मिलता कभी नहीं है। अनुभव तो दुख ही दुख का होता है।
ये जो पांच मृत्युएं थीं, ये पांच सीढ़ियां बन गईं। और एक-एक मृत्यु मीरा को संसार से विमुख करती गई और कृष्ण के सन्मुख करती गई। इधर पीठ हो गई संसार की तरफ--कृष्ण की तरफ मुंह हो गया। धीरे-धीरे, पहले तो मीरा घर में ही नाचती थी--अपने कृष्ण की प्रतिमा पर; फिर बाढ़ की तरह उठने लगा प्रेम, फिर घर उसे नहीं समा सका। फिर गांव के मंदिरों में, साधु-सत्संगों में, वहां भी नाचने लगी। फिर प्रेम इतना बाढ़ की तरह आना शुरू हुआ कि उसे होश-हवास न रहा। वह मगन हो गई, वह तल्लीन हो गई, वह कृष्णमय हो गई।
स्वभावतः, राजघराने की महिला थी, प्रतिष्ठित परिवार से थी, परिवार को अड़चन आई। परिवार को अड़चन सदा आ जाती है। समाज में हजार तरह की बातें चलने लगीं, क्योंकि यह लोकलाज के बाहर थी बात। तुम सोच सकते हो, राजस्थान पांच सौ साल पहले--जहां घूंघट के बाहर स्त्रियां नहीं आती थीं; जिनका चेहरा कभी लोग नहीं देखते थे। फिर राजघराने की तो और कठिन थी बात। और वह रास्तों पर नाचने लगी। साधारणजनों के बीच नाचने लगी। यद्यपि वह नाच परमात्मा के लिए था, फिर भी घर के लोगों को तो "नाच" नाच था; उनको तो कुछ फर्क नहीं था।
फिर, उसके निकटतम जो लोग थे वे जा चुके थे; उसका देवर गद्दी पर था। जहां-जहां मीरा उल्लेख करेगी कि राणा ने जहर भेजा, कि राणा ने सांप की पिटारी भेजी, कि राणा ने सेज पर कांटे बिछवा दिए--उस राणा से याद रखना, उसके देवर की तरफ इशारा है। उसके पति तो चल बसे थे। उसके देवर थे विक्रमाजीत सिंह। वह क्रोधी किस्म का युवक था। दुष्ट प्रकृति का युवक था। और उसकी यह बरदाश्त के बाहर था। और उसे मीरा की प्रतिष्ठा भी बरदाश्त के बाहर थी।

मीरा इतनी प्रतिष्ठित हो रही थी, दूर-दूर से लोग आने लगे थे। साधारणजन तो आते ही थे उसके दर्शन को; संत, साधु, ख्याति-उपलब्ध लोग भी दूर-दूर से मीरा की खबर सुन कर आने लगे थे। वह सुगंध उड़ने लगी थी। वह सुगंध कस्तूरी की तरह थी। जिनको भी नासापुटों में थोड़ा अनुभव था कस्तूरी की गंध का, वे चल पड़े थे।
यह बड़ी हैरानी की बात है। देश के कोने-कोने से लोग आ रहे थे, लेकिन परिवार के अंधे लोग न देख पाए। असल में इन लोगों का आना उन्हें और अड़चन का कारण हो गया, मीरा की प्रतिष्ठा उनके अहंकार को चोट करने लगी। जो राणा गद्दी पर था, वह सोचता था कि मुझसे भी ऊपर कोई मेरे परिवार में हो, यह बरदाश्त के बाहर है।
फिर हजार बहाने मिल गए। और बहाने सब तर्कयुक्त थे--उनमें कभी भूल नहीं खोजी जा सकती--कि यह साधारणजनों में मिलने लगी है; घूंघट उघाड़ दिया है; रास्ते पर नाचती है; नाच में कभी वस्त्रों का भी ध्यान नहीं रह जाता। यह अशोभन है। यह राजघर की महिला को शुभ नहीं है।
लेकिन जो कहानियां हैं वे ख्याल में लेना। जहर भेजा और मीरा उसे कृष्ण का नाम लेकर पी गई। और कहते हैं, जहर अमृत हो गया! हो ही जाना चाहिए। होना ही पड़ेगा। इतने प्रेम से, इतने स्वागत से अगर कोई जहर भी पी ले तो अमृत हो ही जाएगा। और अगर तुम क्रोध से, हिंसा से, घृणा से, वैमनस्य से अमृत भी पीओ तो जहर हो जाएगा।
ख्याल रखना, ऐसा इतिहास में हुआ या नहीं, मुझे प्रयोजन नहीं है। मैं
तो इसके भीतर की मनोवैज्ञानिक घटना को तुमसे कह देना चाहता हूं, क्योंकि उसी का मूल्य है। अगर तुम्हारा पात्र भीतर से बिल्कुल शुद्ध है, निर्मल है, निर्दोष है, तो जहर भी तुम्हारे पात्र में जाकर निर्मल और निर्दोष हो जाएगा। और अगर तुम्हारा पात्र गंदा है, कीड़े-मकोड़ों से भरा है और हजारों साल और हजारों जिंदगी की गंदगी इकट्ठी है--तो अमृत भी डालोगे तो जहर हो जाएगा। सब कुछ तुम्हारी पात्रता पर निर्भर है। अंततः निर्णायक यह बात नहीं है कि जहर है या अमृत, अंततः निर्णायक बात यही है कि तुम्हारे भीतर स्थिति कैसी है। तुम्हारे भीतर जो है, वही अंततः निर्णायक होता है।
मीरा ने देखा ही नहीं कि जहर है। सोचा ही नहीं कि जहर है। राणा ने भेजा है, तो जो मिलता है, प्रभु ही भेजने वाला है। राणा के पीछे भी वही भेजने वाला है। उसके अतिरिक्त तो कोई भी नहीं है। तो अमृत ही होगा। वह अमृत मान कर पी गई।
यह मान्यता इतना फर्क कर सकती है?
तुम सम्मोहनविद से पूछोगे तो वह कहेगाः हां। और सम्मोहनविद ही जानता
है कि मनुष्य के मन के काम करने की प्रक्रिया क्या है।
अगर किसी व्यक्ति को सम्मोहित कर दिया जाए, और उसके हाथ में आग का अंगारा रख दिया जाए और सम्मोहित दशा में उससे कहा जाए कि एक ठंडा कंकड़ तुम्हारे हाथ में रखा है, तो आग का अंगारा भी उसे जलाता नहीं। क्योंकि उसका मन इस बात को स्वीकार करता है कि यह ठंडा कंकड़ है। अंगारा रखा रहता है हाथ पर, और चमत्कार घटित हो जाता है; हाथ जलता नहीं। इस पर हजारों प्रयोग हो गए हैं। इसी तरह तो लोग आग पर चलते हैं और जलते नहीं। वह भाव की दशा है। और इससे उलटी बात भी हो जाती है। सम्मोहित व्यक्ति के हाथ में उठा कर
एक कंकड़ रख दो--साधारण कंकड़, ठंडा कंकड़--और उससे कहो कि जलता हुआ कोयला रखा है तुम्हारे हाथ पर! वह एकदम फेंक देगा घबड़ा कर। वह बेहोश है। वह एकदम फेंक देगा घबड़ा कर। और चमत्कार तो यह है कि उसके हाथ पर फफोला आ जाएगा; जैसे कि वह जल गया। जलने के पूरे लक्षण हो जाएंगे।
इन घटनाओं में, जो संतों के जीवन में भरी पड़ी हैं, मैं इसी मनोवैज्ञानिक सत्य की उदघोषणा देखता हूं। मीरा ने स्वीकार कर लिया जहर अमृत की तरह, तो अमृत हो गया।
तुम जैसा जगत को स्वीकार कर लोगे, वैसा ही हो जाता है। यह जगत तुम्हारी स्वीकृति से निर्मित है। यह जगत तुम्हारी दृष्टि का फैलाव है। सांप एक पिटारी में रख कर भेज दिया--जहरीला सांप--उसने पिटारी खोली और उसे तो सांवले कृष्ण ही दिखाई पड़े। उसने उठा कर उन्हें गले से लगा लिया।
उस सांप ने मीरा को काटा नहीं। सांप इतने अभद्र होते भी नहीं जितना मनुष्य

होता है। सांप इतने जड़ होते भी नहीं जितना मनुष्य होता है। मीरा का उसे प्रेम से अपने गले से लगा लेना सांप को भी समझ में आ गया होगा कि यहां कोई शत्रु नहीं, मित्र है। सांप भी तभी हमला करता है जब कोई शत्रु हो; जो कोई चोट पहुंचाने को उत्सुक हो, तभी हमला करता है, नहीं तो हमला नहीं करता। हमला तो सुरक्षा के लिए है, आत्मरक्षा के लिए है। सांप को तुमसे कोई दुश्मनी नहीं है, तुम कभी सांप पर पैर रख दो या मारने की इच्छा करो--तो। और तब तो लोग कहते हैं कि सांप ऐसा होता है कि अगर एक दफे तुमने उससे दुश्मनी ले ली, तो जिंदगी भर तुमसे बदला लेने की कोशिश करता है; भूलता ही नहीं। उसकी स्मृति बड़ी मजबूत है। लेकिन मीरा ने जब उसे प्रेम से गले लगा लिया होगा, तो उस तरंग को उसने भी समझा होगा; उस प्रेम में वह भी डूबा होगा। इस स्त्री को काटा नहीं जा सकता।
समझ लें, फिर से दोहरा दूं, इतिहास से मुझे प्रयोजन नहीं है। इतिहास
से भी ज्यादा मूल्यवान है इन घटनाओं के पीछे छिपा हुआ मनस-तत्व। क्योंकि वही तुम समझोगे तो काम का है। और चमत्कार भी इनमें कुछ नहीं है। ये चमत्कार दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि इनके पीछे का नियम हमारी समझ में नहीं आता। नियम सीधा-साफ हैः तुम जैसे हो, करीब-करीब यह जगत तुम्हारे लिए वैसा ही हो जाता है। तुम अगर प्रेमपूर्ण हो तो प्रेम की प्रतिध्वनि उठती है। और तुमने अगर परमात्मा को सर्वांग मन से स्वीकार कर लिया है, सर्वांगीण रूप से--तो फिर इस जगत में कोई, कोई हानि तुम्हारे लिए नहीं है।
लेकिन यह बात बहुत घटी और उसका मीरा का रहना गांव में मुश्किल हो गया,
तो उसने राजस्थान छोड़ दिया। वह वृंदावन चली गई। अपने प्यारे की बस्ती में चलें--उसने सोचा। कृष्ण के गांव चली गई। लेकिन वहां भी झंझटें शुरू हो गईं। क्योंकि कृष्ण तो अब वहां नहीं थे। कृष्ण के गांव पर पंडितों का कब्जा था--ब्राह्मण, पंडित-पुरोहित।
बड़ी प्यारी घटना है। जब मीरा वृंदावन के सबसे प्रतिष्ठित मंदिर में पहुंची तो उसे दरवाजे पर रोकने की कोशिश की गई, क्योंकि उस मंदिर में स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध था। क्योंकि उस मंदिर का जो महंत था, वह स्त्रियां नहीं देखता था; वह कहता थाः ब्रह्मचारी को स्त्री नहीं देखनी चाहिए। तो वह स्त्रियां नहीं देखता था। मीरा स्त्री थी। तो रोकने की व्यवस्था की गई थी। लेकिन जो लोग रोकने द्वार पर खड़े थे, वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। जब मीरा नाचती हुई आई, अपने हाथ में अपना एकतारा लिए बजाती हुई आई, और जब उसके पीछे भक्तों का हुजूम आया, और शराब छलकती चारों तरफ, और सब मदमस्त। उस मस्ती में वे जो द्वारपाल खड़े थे, वे भी ठिठक कर खड़े हो गए। वे भूल ही गए कि रोकना है। तब तक तो मीरा भीतर प्रविष्ट हो गई। हवा की लहर थी एक--भीतर प्रविष्ट हो गई, पहुंच गई बीच मंदिर में। पुजारी तो घबड़ा गया। पुजारी पूजा कर रहा था कृष्ण की। उसके हाथ से थाल गिर गया। उसने वर्षों से स्त्री नहीं देखी थी। इस मंदिर में स्त्री का निषेध था। यह स्त्री यहां भीतर कैसे आ गई?
अब तुम थोड़ा सोचना। द्वार पर खड़े द्वारपाल भी डूब गए भाव में, पुजारी
न डूब सका! नहीं, पुजारी इस जगत में सबसे ज्यादा अंधे लोग हैं। और पंडितों से ज्यादा जड़बुद्धि खोजने कठिन हैं। द्वार पर खड़े द्वारपाल भी डूब गए इस रस में। यह जो मदमाती, यह जो अलमस्त मीरा आई, यह जो लहर आई--इसमें वे भी भूल गए--क्षण भर को भूल ही गए कि हमारा काम क्या है। याद आई होगी, तब तक तो मीरा भीतर जा चुकी थी। वह तो बिजली की कौंध थी। तब तक तो एकतारा उसका भीतर बज रहा था, भीड़ भीतर चली गई थी। जब तक उन्हें होश आया, तब तक तो बात चूक गई थी। लेकिन पंडित नहीं डूबा। कृष्ण के सामने मीरा आकर नाच रही है, लेकिन पंडित नहीं डूबा। उसने कहाः ऐ औरत! तुझे समझ है कि इस मंदिर में स्त्री का निषेध है?
मीरा ने सुना। मीरा ने कहाः मैं तो सोचती थी कि कृष्ण के अतिरिक्त और कोई पुरुष है नहीं। तो तुम भी पुरुष हो? मैं तो कृष्ण को ही बस पुरुष मानती हूं, और तो सारा जगत उनकी गोपी है; उनके ही साथ रास चल रहा है। तो तुम भी पुरुष हो? मैंने सोचा नहीं था कि दो पुरुष हैं। तो तुम प्रतियोगी हो?
वह तो घबड़ा गया। पंडित तो समझा नहीं कि अब क्या उत्तर दे! पंडितों के पास बंधे हुए प्रश्नों के उत्तर होते हैं। लेकिन यह प्रश्न तो कभी इस तरह

उठा ही नहीं था। किसी ने पूछा ही नहीं था। यह तो कभी किसी ने मीरा के पहले कहा ही नहीं था कि दूसरा भी कोई पुरुष है, यह तो हमने सुना ही नहीं। तुम भी बड़ी अजीब बात कर रहे हो! तुमको यह वहम कहां से हो गया? एक कृष्ण ही पुरुष हैं, बाकी तो सब उसकी प्रेयसियां हैं।
लेकिन अड़चनें शुरू हो गईं। इस घटना के बाद मीरा को वृंदावन में नहीं टिकने दिया गया। संतों के साथ हमने सदा दुर्व्यवहार किया है। मर जाने पर हम पूजते हैं; जीवित हम दुर्व्यवहार करते हैं। मीरा को वृंदावन भी छोड़ देना पड़ा। फिर वह द्वारिका चली गई।
वर्षों के बाद राजस्थान की राजनीति बदली, राजा बदला, राणा सांगा का सबसे छोटा बेटा राजा उदयसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। वह राणा सांगा का बेटा था और राणा प्रताप का पिता। उदयसिंह को बड़ा भाव था मीरा के प्रति। उसने अनेक संदेशवाहक भेजे कि मीरा को वापस लिवा लाओ। यह हमारा अपमान है। यह राजस्थान का अपमान है कि मीरा गांव-गांव भटके, यहां-वहां जाए। यह लांछन हम पर सदा रहेगा। उसे लिवा लाओ। वह वापस लौट आए। हम भूल-चूकों के लिए क्षमा चाहते हैं। जो अतीत में हुआ, हुआ।
गए लोग, पंडितों को भेजा, पुरोहितों को भेजा, समझाने-बुझाने; लेकिन मीरा सदा समझा कर कह देती कि अब कहां आना-जाना! अब इस प्राण-प्यारे के मंदिर को छोड़ कर कहां जाएं!
वह रणछोड़दासजी के मंदिर में द्वारिका में मस्त थी।
फिर तो उदयसिंह ने बहुत कोशिश की, एक सौ आदमियों का जत्था भेजा, और कहा
कि किसी भी तरह ले आना, न आए तो धरना दे देना; कहना कि हम उपवास करेंगे। वहीं मंदिर पर बैठ जाना।
और उन्होंने धरना दे दिया। उन्होंने कहा कि चलना ही होगा, नहीं तो हम यहीं मर जाएंगे।
तो मीरा ने कहाः फिर ऐसा है, चलना ही होगा, तो मैं जाकर अपने प्यारे को पूछ लूं। उनकी बिना आज्ञा के तो न जा सकूंगी। तो रणछोड़दासजी को पूछ लूं! वह भीतर गई। और कथा बड़ी प्यारी है और बड़ी अदभुत और बड़ी बहुमूल्य! वह भीतर गई और कहते हैं, फिर बाहर नहीं लौटी! कृष्ण की मूर्ति में समा गई!
यह भी ऐतिहासिक तो नहीं हो सकती बात। लेकिन होनी चाहिए। क्योंकि अगर मीरा कृष्ण की मूर्ति में न समा सके तो फिर कौन समाएगा! और कृष्ण को अपने में इतना समाया, कृष्ण इतना भी न करेंगे कि उसे अपने में समा लें! तब तो फिर भक्ति का सारा गणित ही टूट जाएगा। फिर तो भक्त का भरोसा ही टूट जाएगा। मीरा ने कृष्ण को इतना अपने में समाया, अब कुछ कृष्ण का भी तो दायित्व है! वह आखिरी घड़ी आ गई महासमाधि की! मीरा ने कहा होगाः या तो अपने में समा लो मुझे, या मेरे साथ चल पड़ो, क्योंकि अब ये लोग भूखे बैठे हैं, अब मुझे जाना ही पड़ेगा।
वह आखिरी घड़ी आ गई, जब भक्त भगवान हो जाता है। यही प्रतीक है उस कथा में कि मीरा फिर नहीं पाई गई। मीरा कृष्ण की मूर्ति में समा गई। अंततः भक्त भगवान में समा ही जाता है।
ध्यान रखना, इसे तथ्य मान कर सोचने मत बैठ जाना। यह सत्य है और सत्य तथ्यों से बहुत भिन्न होते हैं। सत्य तथ्यों से बहुत ऊपर होते हैं। तथ्यों में रखा ही क्या है? दो कौड़ी की बातें हैं। तथ्य सीमा नहीं है सत्य की। तथ्य तो आदमी की छोटी सी बुद्धि से जो समझ में आता है, उतने सत्य का टुकड़ा है; सत्य बहुत बड़ा है।
मुझसे पूछो तो मैं कहूंगाः ऐसा हुआ। होना ही चाहिए; नहीं तो भक्त का भरोसा गलत हो जाएगा। मीरा ने यही कहा होगाः अब क्या इरादे हैं? अब मैं जाऊं? और अब जाऊं कहां? या तो मेरे साथ चलो, या मुझे अपने साथ ले लो। इकबाल का एक पद हैः
तू है मुहीते-बेकरां, मैं हूं जरा सी आबजू
या मुझे हमकिनार कर या मुझे बेकिनार कर
कहा हैः
तू है मुहीते-बेकरां...
तू तो सागर है असीम। मुहीते-बेकरां! तेरा कोई किनारा नहीं है, ऐसा सागर है तू।

तू है मुहीते-बेकरां, मैं हूं जरा सी आबजू
और मैं हूं एक छोटा सा झरना या छोटी सी नदी।
या मुझे हमकिनार कर...
या तो मुझे अपने साथ दौड़ने दे--समानांतर, गलबांही डाल कर।
या मुझे हमकिनार कर या मुझे बेकिनार कर
या मुझे अपने में समा ले और मुझे भी असीम बना दे। अगर सीमित रखना हो तो मुझे साथ-साथ दौड़ने दे; जहां तू जाए, मैं चलूं। और अगर यह असंभव हो, क्योंकि तू असीम है और मैं सीमित, कैसे तेरे साथ दौड़ पाऊंगी; तू विराट, मैं क्षुद्र, तो कैसे तेरे साथ दौड़ पाऊंगी, कहां तक दौड़ पाऊंगी!
... मैं हूं जरा सी आबजू
मैं तो एक छोटा सा झरना हूं, जल्दी सूख जाऊंगी, किसी मरुस्थल में खो जाऊंगी! तेरे साथ कैसे दौड़ पाऊंगी? तो फिर दूसरा उपाय यह हैः
या मुझे हमकिनार कर या मुझे बेकिनार कर
या तो किनारे पर साथ लगा ले और या फिर मुझे अपने में डुबा ले, मुझे भी असीम बना ले।
ऐसा ही मीरा ने कहा होगाः
तू है मुहीते-बेकरां, मैं हूं जरा सी आबजू
या मुझे हमकिनार कर या मुझे बेकिनार कर
और कृष्ण ने उसे बेकिनार कर दिया। क्योंकि हमकिनार तो किया नहीं जा सकता। छोटा सा झरना कैसे सागर के साथ दौड़ेगा! कहां तक दौड़ेगा! थक जाएगा, टूट जाएगा, उखड़ जाएगा, सूख जाएगा। यह तो नहीं हो सकता। मीरा को बेकिनार कर दिया--अपने में ले लिया।
मेरे दिल को दोस्त ने लालाजार कर दिया
ये खिजांजदा चमन पुरबहार कर दिया
देखते ही देखते बर्के-शोलापाश को
इक निगाहे-लुत्फ से आबशार कर दिया
अब मुझे दिया दिखा मौत से परे है क्या जिंदगी का राज सब आशकार कर दिया
होशियार को दिया इक जनूने-जाविदां
मस्त उसे बनाके फिर होशियार कर दिया
आबजू जरा सी थी, ऐ मुहीते-बेकरां
तूने करके हमकिनार बेकिनार कर दिया
मेरे दिल को दोस्त ने लालाजार कर दिया
मीरा को ले लिया कृष्ण ने अपने में--लालाजार कर दिया। खिला दिए फूल सब।
ये खिजांजदा चमन पुरबहार कर दिया
वह जो वैराग्य में, संसार के वैराग्य में सूख गया था सब, वह जो परमात्मा के विरह में रोते-रोते, रोते-रोते आंखें मरुस्थल जैसी हो गई थीं। ये खिजांजदा चमन पुरबहार कर दिया
फिर वसंत आया।
देखते ही देखते बर्के-शोलापाश को
इक निगाहे-लुत्फ से आबशार कर दिया
वह प्रेम की एक निगाह काफी है। उसी निगाह में डूब गई होगी मीरा। एक क्षण भर को शाश्वत उतर आया होगा उस मूर्ति के बहाने। वे आंखें, मूर्ति की मुर्दा आंखें, क्षण भर को जीवित हो उठी होंगी। एक बिजली कौंधी होगी। वे मूर्ति की पत्थर जैसी आंखें एक क्षण को पत्थर न रही होंगी--एक क्षण को सजीव झील बन गई होंगी।
इक निगाहे-लुत्फ से आबशार कर दिया
बस वह एक प्रेम की नजर उसे मुक्त कर गई होगी। देह से छ.ुडा ले गई होगी। खुल गए होंगे उसके पंख अनंत आकाश में।
अब मुझे दिया दिखा मौत से परे है क्या
जिंदगी का राज सब आशकार कर दिया
होशियार को दिया इक जनूने-जाविदां

जो होशियार था, उसको एक अनंत पागलपन दिया। उसको एक ऐसी बेहोशी दी जो कभी न टूटे।
मस्त उसे बनाके फिर होशियार कर दिया
यह भी खूब गजब किया, कि पहले मस्त बना दिया और फिर होशियार कर दिया। यह परमात्मा की शराब ऐसी हैः पहले आदमी डूबता है, फिर उबरता है। पहले बेहोश होता है, फिर होश आता है।
आबजू जरा सी थी, ऐ मुहीते-बेकरां
मैं तो एक छोटी सी नदी थी। तू सागर है।
तूने करके हमकिनार बेकिनार कर दिया
तूने साथ क्या ले लिया, हमारे किनारे ही छूट गए!
सागर का साथ हो जाए तो अपनी सीमाएं छूट जाती हैं। विराट से दोस्ती करो। असीम से दोस्ती करो। क्षुद्र से बंधोगे, क्षुद्र रह जाओगे। जो जिससे दोस्ती करेगा वैसा ही हो जाता है।
तुमने देखा, रुपये-पैसे का दीवाना धीरे-धीरे रुपये-पैसे जैसा ही हो जाता है। उसके चेहरे पर वही घिसे-पिटे रुपये की झलक आने लगती है। कामी आदमी के चेहरे पर काम की रुग्णता छा जाती है; एक घृणित भाव समा जाता है। राम के प्रेमी को राम घेर लेता है! अंततः तुम्हारा प्रेम जिससे है वही तुम हो जाते हो। सोच-समझ कर प्रेम करना। होशियारी से दोस्ती बनाना। क्योंकि यह दोस्ती साधारण मामला नहीं है।
मीरा ने दोस्ती कृष्ण से की और अंततः अगर उनकी मूर्ति में समा गई, तो मुझे यह बात बिल्कुल ही ठीक-ठीक मालूम पड़ती है। ऐसा होना ही चाहिए। ऐसा होता ही है।
अब मीरा के भजन!
बसौ मेरे नैनन में नंदलाल।
मीरा कहती हैः मेरी आंखों में बस जाओ नंदलाल। मेरी आंखों में तुम ही रहो। मेरी आंखें तुम्हारा घर बन जाएं। जागूं तो तुम्हें देखूं, सोऊं तो तुम्हें देखूं। आंख खोलूं तो तुम्हें देखूं, रात सपना देखूं तो तुम्हारा देखूं। यह मतलब है आंखों में बसने का। तुम्हें छोडूं ही न। तुम मेरे भीतर रहने लगो।
बसौ मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरत सांवरी सूरत...
ध्यान करना, भक्त की खोज सौंदर्य के माध्यम से परमात्मा की खोज है।
मोहनी मूरत सांवरी सूरत...
यह भी ध्यान रखना कि इस देश में हमने कृष्ण को, राम को सांवरा कहा है। कभी-कभी पश्चिम के लोगों को हैरानी होती है, कि हमने सुंदरतम व्यक्तियों को सांवरा क्यों कहा है? गोरा क्यों नहीं कहा?
कारण हैं। सांवरेपन में एक गहराई होती है जो गोरेपन में नहीं होती। गोरापन थोड़ा सा उथला-उथला होता है। गोरापन ऐसा ही होता है जैसे कि नदी बहुत छिछली-छिछली, तो पानी सफेद मालूम पड़ता है। जब नदी गहरी हो जाती है तो पानी नीला हो जाता है, सांवरा हो जाता है।
कृष्ण सांवरे थे, ऐसा नहीं है। हमने इतना ही कहा है सांवरा कह कर, कि कृष्ण के सौंदर्य में बड़ी गहराई थी; जैसे गहरी नदी में होती है, जहां जल सांवरा हो जाता है। यह सौंदर्य देह का ही सौंदर्य नहीं था--यह हमारा मतलब है। ख्याल मत लेना कि कृष्ण सांवले थे। रहे हों, न रहे हों, यह बात बड़ी बात नहीं है। लेकिन सांवरा हमारा प्रतीक है इस बात का कि यह सौंदर्य शरीर का ही नहीं था, यह सौंदर्य मन का था; मन का ही नहीं था, यह सौंदर्य आत्मा का था। यह सौंदर्य इतना गहरा था, उस गहराई के कारण चेहरे पर सांवरापन था। छिछला नहीं था सौंदर्य। अनंत गहराई लिए था।
मोहनी मूरत सांवरी सूरत, नैना बने बिसाल।
ये तुम्हारी बड़ी-बड़ी आंखें सदा मेरा पीछा करती रहें, ये सदा मुझे देखती रहें। मुझमें झांकती रहें।
मोर मुकुट मकराकृति कुंडल...
यह तुम्हारा मोर के पंखों से बना हुआ मुकुट, यह तुम्हारा सुंदर मुकुट, जिसमें सारे रंग समाए हैं!

वही प्रतीक है। मोर के पंखों से बनाया गया मुकुट प्रतीक है इस बात का
कि कृष्ण में सारे रंग समाए हैं। महावीर में एक रंग है, बुद्ध में एक रंग है, राम में एक रंग है--कृष्ण में सब रंग हैं। इसलिए कृष्ण को हमने पूर्णावतार कहा है--सब रंग हैं। इस जगत की कोई चीज कृष्ण को छोड़नी नहीं पड़ी है। सभी को आत्मसात कर लिया है। कृष्ण इंद्रधनुष हैं, जिसमें प्रकाश के सभी रंग हैं। कृष्ण त्यागी नहीं हैं। कृष्ण भोगी नहीं हैं। कृष्ण ऐसे त्यागी हैं जो भोगी हैं। कृष्ण ऐसे भोगी हैं जो त्यागी हैं। कृष्ण हिमालय नहीं भाग गए हैं, बाजार में हैं, युद्ध के मैदान पर हैं। और फिर भी कृष्ण के हृदय में हिमालय है। वही एकांत! वही शांति! वही अपूर्व सन्नाटा! कृष्ण अदभुत अद्वैत हैं। चुना नहीं है कृष्ण ने कुछ। सभी रंगों को स्वीकार किया है, क्योंकि सभी रंग परमात्मा के हैं।
मोर मुकुट मकराकृति कुंडल, अरुण तिलक दिए भाल।
यह तुम्हारा लाल तिलक! ये तुम्हारे मछली के आकार के कुंडल! ये तुम्हारा मोर के पंखों से बना हुआ मुकुट! ये तुम्हारी बड़ी-बड़ी आंखें!
बसौ मेरे नैनन में नंदलाल।
अधर सुधारस मुरली राजति...
यह तुम्हारे नीचे ओंठ पर रखी हुई मुरली, इसे इससे और कोई सुंदर जगह तो बैठने को मिल भी नहीं सकती।
अधर सुधारस मुरली राजति...
और यह मुरली कोई साधारण नहीं है। इससे तुम जब गाते हो तो सुधा बरसा देते हो, अमृत बहा देते हो।
कृष्ण रंग हैं, राग हैं। महावीर में कोई राग नहीं है। महावीर संगीत-शून्य हैं। कृष्ण जीवन के संगीत से भरे हैं। तो महावीर में वीतरागता की स्पष्टता है--स्वभावतः, क्योंकि एक ही रंग है; एक स्पष्ट दिशा है। कृष्ण में मेला है सभी रंगों का। स्वभावतः महावीर के वक्तव्य बहुत तर्कयुक्त होंगे, क्योंकि एक ही रंग है; दूसरे रंग की बात ही नहीं है। कृष्ण के वक्तव्य विरोधाभासी होंगे, क्योंकि सभी रंग हैं। अनंत रंगों का मेला है। महावीर का स्वर बिल्कुल स्पष्ट है। कृष्ण के स्वर बेबूझ हैं, अटपटे हैं। अधर सुधारस मुरली राजति...
कृष्ण सेतु हैं--संसार में और परमात्मा में। कृष्ण ने दोनों को जोड़ा है। इसलिए कृष्ण के संगीत में अपूर्वता है। संगीत में बांसुरी है जो संसार की है, और संगीत है जो परमात्मा का है। ओंठों पर बांसुरी रखी है--ओंठ तो देह के हैं, लेकिन जो स्वर आ रहे हैं, वे आत्मा से आ रहे हैं। यह अपूर्व सम्मिलन है।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर वैजंती माल।
वह वैजंतीमाला पहने हुए हो।
वैजंतीमाला पांच रंगों की बनती है। पांचों इंद्रियों ने जो दिया है, कृष्ण ने सभी को समाहित कर लिया है, समाविष्ट कर लिया है। कृष्ण ने आंख नहीं फोड़ीं, कान नहीं रौंदे, हाथ नहीं काटे। कृष्ण ने इंद्रियों को नष्ट नहीं किया। कृष्ण इंद्रियों की सारी संवेदनशीलता को पचा गए। कृष्ण इंद्रियों के शत्रु नहीं हैं। कृष्ण में जीवन का निषेध नहीं है--जीवन का परिपूर्ण स्वीकार है; अहोभाव से स्वीकार है।
कृष्ण जैसा व्यक्ति पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में खोजना कठिन है। क्योंकि कहीं न कहीं, कोई न कोई चीज कम मालूम पड़ेगी। ईसाई कहते हैंः जीसस कभी हंसे नहीं। क्यों? क्योंकि जीसस गंभीर हैं, कैसे हंस सकते हैं? तो जीसस बड़े संगत हैं। कृष्ण खिलखिला कर हंस सकते हैं। और इससे उनकी गंभीरता में बाधा नहीं पड़ती। यह हंसना उनकी गंभीरता का खंडन नहीं होता। उनमें विरोध एक-दूसरे को सम्हालते हैं, समृद्ध करते हैं।
ध्यान रखना, दुनिया का कोई भी संत कृष्ण जैसा रस से सराबोर नहीं है। कुछ है और बड़ी मात्रा में है; लेकिन कुछ बिल्कुल नहीं है। इसलिए हिंदुओं ने ठीक ही किया कि किसी और अवतार को पूर्णावतार नहीं कहा। बुद्ध को भी पूर्णावतार नहीं कहा। राम को भी पूर्णावतार नहीं कहा। अवतार कहा। परमात्मा आंशिक रूप में उतरा है। एक ढंग से उतरा है। बुद्ध में ध्यान की तरह उतरा है, कि महावीर में त्याग की तरह उतरा है। तो महावीर का जो त्याग

है, वह चरम है। मगर बस त्याग है। एकांगी है व्यक्तित्व। बुद्ध का जो ध्यान है, वह चरम है; लेकिन एकांगी है।
कृष्ण में संतुलन है; तराजू के सब पलड़े एक तल पर आ गए हैं। कृष्ण में कुछ कमी नहीं है। निश्चित ही खतरा भी है, क्योंकि कुछ कमी न होने की वजह से सब कुछ है; तुम जो चाहो चुन लो। इसलिए कृष्ण के भक्तों ने जो चाहा चुन लिया। किसी ने एक बात चुन ली, किसी ने दूसरी बात चुन ली। किसी ने गीता चुन ली, तो वह भागवत नहीं पढ़ता, क्योंकि भागवत में मुश्किल हो जाती है उसे। उसे कृष्ण गीता के जंचते हैं। किसी ने भागवत चुन ली तो गीता की बहुत फिकर नहीं करता।
सूरदास कृष्ण के बचपन के गीत गाते हैं। तुमने पढ़ा न कि सूरदास की कहानी हैः एक सुंदर स्त्री को देख कर उन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं! ऐसे सूरदास कृष्ण के भक्त हैं। यह करना नहीं चाहिए। कृष्ण का भक्त और ऐसा करे तो फिर राम के भक्त को तो फांसी ही लगा लेनी पड़ेगी। फिर तो जीना ही मुश्किल हो जाएगा। यह बात ठीक नहीं है। लेकिन उन्होंने चुन लिया है। अब यह बात कहां जमती है कृष्ण के साथ? जो कि नदी के तट पर नहाती हुई स्त्रियों के कपड़े लेकर वृक्ष पर बैठ जा सकता है, उसके साथ यह सूरदास की दोस्ती कैसे जमेगी? एक स्त्री को देख कर इन्होंने आंखें फोड़ लीं कि कहीं इससे कामवासना न जग जाए--और इनके जो गुरु हैं, वे नहाती अपरिचित स्त्रियों के कपड़े उठा कर और झाड़ पर बैठ गए हैं। नहीं, यह बात जमती नहीं। तो इसलिए सूरदास ने कृष्ण के बचपन को चुन लिया है। वे उनके बचपन की बातें करते हैं। वे बचपन में जो पांव में पैजनियां बजती है, बस उसी की बात करते हैं। उसके बाद जो बांसुरी बजी है, और ऐसी बजी है कि दूसरे की स्त्रियां अपने पतियों को छोड़ कर कृष्ण की हो गईं--उसकी बात करने में डरते हैं कि यह जरा खतरा है।
उसकी बात करने वाले लोग भी हैं। जैसे गीतगोविंद में जयदेव ने उसी की बात की है। मध्य-युग में रीतिकालीन कवियों ने बस कृष्ण के उसीशृंगारिक रूप की चर्चा की है, उसी भोग-विलास को खूब बढ़ा कर बताया है।
ये दोनों बातें गलत हैं। कृष्ण को समझना हो तो पूरा ही समझना चाहिए। अंग नहीं चुनने चाहिए। पूरा ही समझोगे, तो ही कृष्ण के साथ ज्यादती करने से बचोगे; नहीं तो ज्यादती हो जाएगी। फिर मैं समझता हूं कि पूरा समझने में तुम्हें बहुत दिक्कत है, क्योंकि तब बहुत सी असंगतियां दिखाई पड़ेंगी। एक अंग चुनने में संगति मालूम पड़ती है; बहुत से अंग चुनने में असंगति हो जाती है। क्योंकि फिर तुम तालमेल नहीं बिठा पाते।
तुम बिठा भी न पाओगे, जब तक कृष्णमय न हो जाओ। कृष्ण की चेतना ही तुम्हारे भीतर जन्मे, तो ही तुम तालमेल बिठा पाओगे; तभी तुम जान पाओगे कि ये सब अंग एक-दूसरे के विपरीत नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे को समृद्ध करते हैं। रात दिन के खिलाफ नहीं है; रात से ही दिन पैदा होता है। और दिन रात का दुश्मन नहीं है, क्योंकि दिन से ही रात पैदा होती है। जीवन और मृत्यु सब जुड़े हैं, संयुक्त हैं।
मोर मुकुट मकराकृति कुंडल, अरुण तिलक दिए भाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर वैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटितट सोभित...
कमर में करधनी बांधे हुए हैं, जिसमें छोटे-छोटे घुंघरू बंधे हैं।
छुद्र घंटिका कटितट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
जिनसे मीठा-मीठा स्वर हो रहा है।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई...
मीरा कहती हैः हे प्रभु, जिनके पास तुम्हें देखने की आंखें हैं, उनके लिए तुम कितने सुखदाई हो!
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बच्छल गोपाल।
और तुम भक्तों के प्रति कितने अपूर्व प्रेम से भरे हो! वात्सल्य से! वात्सल्य शब्द को समझ लेना। भक्त-वत्सल गोपाल! वात्सल्य का अर्थ होता हैः ऐसा प्रेम जैसा मां को छोटे से बच्चे के लिए होता है। क्यों? इसमें क्या विशिष्टता है?
इसमें विशिष्टता यह है कि छोटे बच्चे में कोई भी तो पात्रता नहीं है, कोई योग्यता नहीं है। न तो पैसा कमा कर लाता है घर में, न कोई यूनिवर्सिटी

के सर्टिफिकेट लाया है, कि गोल्ड मेडल जीते हों, कुछ भी तो नहीं है उसके पास पात्रता! लेकिन मां उसे प्रेम करती है। यह प्रेम किसी भी पात्रता के कारण नहीं है। बच्चा बिल्कुल अपात्र है, अबोध है और असहाय है। बच्चे से कुछ भी तो उत्तर में नहीं मिल सकता। इसलिए सौदा नहीं है इसमें। देना ही देना है।
तो जब मीरा कहती है "भक्त बच्छल गोपाल", तो वह यह कह रही है कि मैं अपात्र हूं, मैं असहाय हूं; मेरी कोई योग्यता नहीं है; प्रत्युत्तर में देने को मेरे पास कुछ भी नहीं है--फिर भी तुम देते हो!
यह वात्सल्य है। वात्सल्य बेशर्त प्रेम का दान है। जब एक तरफ से दिया जाता है और दूसरी तरफ योग्यता भी नहीं होती लेने की; और तो देने की बात अलग, बच्चे में योग्यता भी नहीं होती लेने की, कि वह इतना भी कह दे मां को कि धन्यवाद। धन्यवाद भी देने की क्षमता अभी उसकी नहीं है; अभी बोल भी नहीं सकता।
भक्त की दशा ऐसी ही है। लेकिन भक्त रो सकता है, पुकार सकता है; जैसे छोटा बच्चा पुकारता और रोता है। भक्त का भरोसा रोने में और पुकारने में है।
हम बुरे ही सही, अच्छा भी मिलेगा अब कौन
यूं नहीं करते हैं हर बात पर झगड़ा, देखो
भक्त कहता हैः हम बुरे ही सही, अच्छा भी मिलेगा अब कौन? और तुम्हारी आंख में जो अच्छा दिखाई पड़ सके वैसा हो भी कहां सकता है! तुम्हारी आंख में जो अच्छा उतर सके, तुम्हारी कसौटी पर जो कसा जा सके--ऐसा हो भी कहां सकता है। किसकी योग्यता, किसकी क्षमता, कि परमात्मा की कसौटी पर उतर जाए और कह सके कि मैं ठीक पात्र हूं! यह तो अहंकार की ही घोषणा होगी।
तो भक्त यह नहीं कहता। भक्त कहता हैः
हम बुरे ही सही, अच्छा भी मिलेगा अब कौन
यूं नहीं करते हैं हर बात पर झगड़ा, देखो
हरि मोरे जीवन प्राण आधार।
और आसिरो नाहिं तुम बिन, तीनूं लोक मंझार।
कहती है मीरा कि तीनों जगत को खूब मंझार कर देख लिया, छान-छान कर देख लिया, द्वार-द्वार, दरवाजे-दरवाजे खटका लिए।
हरि मोरे जीवन प्राण आधार।
तुम्हारे बिना और कोई मेरा आसरा है नहीं।
और आसिरो नाहिं तुम बिन, तीनूं लोक मंझार।
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, निरखौ सब संसार।
एक-एक चीज की परख कर ली है, सब धोखा ही धोखा पाया। जिनको अपना माना, वे बीच में छोड़ कर चले गए। जिन पर भरोसा किया, धोखा दे गए। जहां फूल समझे, वहां कांटे पाए। जहां प्रेम की झलक दिखी थी, खोजने पर सिर्फ घृणा का जहर मिला।
दौड़े बहुत मरुस्थलों में--मरूद्यानों की तलाश में; लेकिन जब भी हाथ आई तो रूखी रेत ही हाथ आई।
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, निरखौ सब संसार।
मीरा कहै मैं दास रावरी...
मीरा कहती हैः मैं तो तुम्हारी दासी हूं।
... दीज्यौ मति बिसार।
और तो क्या कहूं? मैं तो जितना बनता है याद रखती हूं। लेकिन मेरे याद रखने से क्या होगा, अगर तुमने याद न किया? अकेले मेरे याद करने से क्या होगा, अगर तुमने विसार दिया?
तो भक्त कहता हैः मैं याद करता हूं, लेकिन मेरी याद भी मेरे ही जैसी कच्ची है। मेरी याद भी मेरी अपात्रता से भरी है। मैं भूल-भूल भी जाऊं तो तुम मत भूल जाना।
भक्त भगवान से ऐसे संवाद करता रहता है निरंतर। दूसरे तो उसे इसीलिए पागल समझते हैं--बैठे हैं अपनी मूर्ति के सामने और बातें कर रहे हैं! लोग पूछते हैंः किससे बातें कर रहे हो? भक्त मुस्कुराएगा। भक्त तुम्हें देख कर हैरान होता है जब तुम बैठे अपनी पत्नी से बात कर रहे, कि अपने पति से बात कर रहे, तब वह हैरान होता है उस पर कि किससे बात कर रहे हो! नदी-नाव संयोग!

हम उससे बात कर रहे हैं जो सदा रहेगा; तुम उससे बात कर रहे हो जो अभी चला जाए, पता नहीं! यह सांस आई, और न आए! तुम किससे बात कर रहे हो! मरघट पर बैठे, कब्रें एक-दूसरे से बात कर रही हैं!
भक्त कहता हैः हम उससे बात कर रहे हैं जो है।
मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
छाड़ि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।
ख्याल करना इस वचन पर। जिन्हें भी जाना है परमात्मा की तलाश में, उन्हें हृदय पर खोद कर रख लेना चाहिए यह वचनः
छाड़ि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।
अब छोड़ दी सब प्रतिष्ठा कुल की--मान-मर्यादा, ऐसा-वैसा, नियम, व्यवस्था।
छाड़ि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।
अब तो यही भाव है कि कोई करेगा भी क्या! बहुत से बहुत लोग पागल कहेंगे, दीवानी कहेंगे। सो ठीक, स्वीकार है।
परमात्मा के प्रेम में दीवाना होना बेहतर--धन के प्रेम में होशियार होने की बजाय। पद के प्रेम में होशियारी की बजाय प्रभु के प्रेम में पागल होना बेहतर।
संतन ढिंग बैठि बैठि लोकलाज खोई।
मीरा कहती हैः संतों के पास बैठ-बैठ कर वह जो लोकलाज का व्यर्थ आडंबर था, बोझ था, वह सब उतार दिया।
संत के पास बैठ कर भी अगर लोकलाज न खोई तो संत से कुछ सीखा नहीं।
इसीलिए तो संतों से समाज सदा विपरीत पड़ जाता है, क्योंकि समाज की व्यवस्था संत तोड़ने लगते हैं। संत एक नई व्यवस्था लाते हैं। वे परमात्मा की किरण लाते हैं। वे एक बड़ा नियम लाते हैं, एक ऊंचा अनुशासन लाते हैं।
क्षुद्र अनुशासन समाज का व्यर्थ हो जाता है। वे जो शिष्टाचार के नियम हैं--औपचारिक, वे दो कौड़ी के हो जाते हैं, क्योंकि जब आत्मा के नियम उतरने शुरू होते हैं।
संतों के पास बैठ कर भी अगर लोकलाज बनी रही और तुम होशियार बने रहे, तो तुम बैठे ही नहीं; सत्संग हुआ ही नहीं। देह से गए होओगे; आत्मा से नहीं पहुंचे।
संतन ढिंग बैठि बैठि लोकलाज खोई।
अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम-बेलि बोई।
और तो कोई रास्ता भी नहीं है। भक्ति की बेल को बोना हो तो आंसू से ही सींचना पड़ता है। आंसू भक्त के लिए वैसे ही हैं जैसे ज्ञानी के लिए ध्यान। आंसुओं का वही मूल्य है भक्ति के मार्ग पर--पुकार का, रोने का, अपनी असहाय अवस्था की उदघोषणा का! और हम कर भी क्या सकते हैं? चिल्ला सकते हैं। इस अरण्य में भटके हैं--पुकार सकते हैं। शायद कोई आ जाए, साथ दे! और जरूर साथ आता है। पुकार सच्ची हो। पुकार हार्दिक हो। पुकार पूरी हो। पुकार ऐसी न हो कि देखें शायद आ जाए। शायद से भरी पुकार में कभी नहीं आता।
इसलिए श्रद्धा अनिवार्य है भक्ति के मार्ग पर। ज्ञान के मार्ग पर प्रयोग हो सकता है। भक्ति के मार्ग पर प्रयोग नहीं है--वियोग है। भक्ति के मार्ग पर तो शुरुआत श्रद्धा से है। ज्ञान के मार्ग पर श्रद्धा अंतिम निष्पत्ति है। प्रयोग करो, करते-करते अनुभव करो, अनुभव करते-करते श्रद्धा आएगी। भक्ति के मार्ग पर श्रद्धा न करो तो वियोग ही नहीं होता। वियोग नहीं होता तो पुकार नहीं होती, प्रार्थना नहीं होती, आंसू नहीं बहते। आंसू नहीं बहते तो प्रेम की बेल सूख जाती है।
अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेलि बढ़ गई, आनंद फल होई।
मीरा कहती हैः अब तो बेल बढ़ गई। पहले तो बड़ी मुश्किल थी, इधर आंसू भी बहे जाते थे, बेल का कुछ पता न चलता था, उधर लोग भी कहे जाते थे कि पागल हो गई। लेकिन अब कुछ अड़चन न रही।

थोड़ी प्रतीक्षा तो करनी पड़ती है। बीज बोते हो तो एकदम से तो नहीं लग जाता पौधा, एकदम से तो फल नहीं आ जाते। प्रतीक्षा करनी होती है। ऐसे ही आंसुओं से सींचते-सींचते प्रार्थना का फल एक दिन पकता है।
अब तो बेलि बढ़ गई, आनंद फल होई।
और आंसुओं के द्वारा सींची गई बेल में ही आनंद के फल लगते हैं।
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई।
मीरा कहती हैः लोग मुझे पागल समझते हैं। और जब से मेरे जीवन में आनंद
के फूल खिले हैं, मेरी उलटी हालत हो गई है।
भगत देख राजी हुई...
जहां कहीं भगत को देख लेती हूं, वहां तो प्रफुल्लित हो जाती हूं; वहां
तो आनंदित हो जाती हूं। क्योंकि वहां जीवन के दर्शन होते हैं और वहां परमात्मा की झलक मिलती है। क्योंकि भक्त यानी भगवान का मंदिर।
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई।
लेकिन जब जगत को देखती हूं तो रोना आता है। रोना आता है लोगों पर कि बेचारे, कितना तड़प रहे हैं! और किसके लिए तड़प रहे हैं? कचरे के लिए, कूड़ा- कर्कट के लिए।
तुम्हें तरस नहीं आएगा? कोई आदमी म्युनिसिपल घर के कचरेघर के पास बैठा हो और तड़प रहा हो और कचरे में खोज रहा हो--तुम्हें रोना नहीं आएगा? तुम कहोगेः पागल, इस कचरे में क्या मिलेगा! यह तू क्या कर रहा है? क्यों अपना जीवन गंवा रहा है?
ठीक, जिन्होंने जाना है परमात्मा को, तुम्हें देख कर उन्हें भी ऐसी ही दया आती है।
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोहि।
और मीरा कहती हैः अब तुम ले चलो उस पार। अपने से तो यह न हो सकेगा मुझसे। यह भवसागर बड़ा है। दूसरा किनारा दिखाई भी नहीं पड़ता है। हां, तुम्हारा प्रेम का हाथ आ जाए तो मैं कहीं भी जाने को तैयार हूं। दूसरा किनारा न हो तो जाने को तैयार हूं। तुम्हारा हाथ काफी है। तुम बीच मझधार में डुबा दो तो राजी हूं, क्योंकि तुम्हारे हाथ से डूब जाऊं तो उबर गई। दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोहि।
भक्त एक ही बात कहता है अनेक-अनेक ढंगों से; दूसरी बात वहां है भी नहीं। भक्ति का स्वर एक है। इन अलग-अलग भजनों में अलग-अलग बात नहीं कही गई है। ये भजन अलग-अलग हैं, लेकिन जो कहा गया है वह तो एक ही है।
हर लम्हा मेरे चंचल मन के अरमान बदलते रहते हैं।
किस्सा तो वही फरसूदा है, उनवान बदलते रहते हैं।
कहानी तो वही है, सिर्फ शीर्षक बदल जाते हैं।
हर लम्हा मेरे चंचल मन के अरमान बदलते रहते हैं।
किस्सा तो वही फरसूदा है...
वही पुराना...
... उनवान बदलते रहते हैं।
लेकिन शीर्षक बदल जाते हैं।
कायम हैं जहां में दो चीजें, इक हुस्न तेरा, इक इश्क मेरा,
पूजा के मगर ऐ बुत तेरी सामान बदलते रहते हैं।
दुनिया में दो ही चीजें शाश्वत हैं भक्ति में।
कायम हैं जहां में दो चीजें, इक हुस्न तेरा, इक इश्क मेरा,
एक परमात्मा का सौंदर्य और एक परमात्मा के भक्त का सौंदर्य के प्रति प्रेम--बस ये दो चीजें पक्की हैं। फिर इन दो के बीच बहुत कुछ घटता है, बहुत संवाद होते हैं।
पूजा के मगर ऐ बुत तेरी सामान बदलते रहते हैं।
कभी फूल से पूजा और कभी धूप-दीप से, कभी खाली हाथों से, कभी आंसुओं से, कभी नाच कर, कभी रो कर, कभी गा कर--मगर इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।
कायम हैं जहां में दो चीजें, इक हुस्न तेरा, इक इश्क मेरा,
पूजा के मगर ऐ बुत तेरी सामान बदलते रहते हैं।
जब जीस्त का अपना मकसद ही तेरी खिदमत करना ठहरा,

फिर इसकी शिकायत क्या तेरे फरमान बदलते रहते हैं।
और जब अपनी जिंदगी का लक्ष्य ही एक है--तेरी खिदमत, तेरी सेवा, तेरी पूजा, तेरी आराधना--तो क्या फर्क पड़ता है कि तू आदेश बदल देता है। कभी कहता है, फूल लाओ; कभी कहता है, आंसू लाओ; कभी कहता है, ऐसा करो, कभी कहता है, वैसा करो; कभी कहता है, इधर बैठो; कभी कहता है, उधर बैठो--कोई फर्क नहीं पड़ता। जब जीस्त का अपना मकसद ही तेरी खिदमत करना ठहरा,
फिर इसकी शिकायत क्या तेरे फरमान बदलते रहते हैं।
बुत पूजते हैं, मय पीते हैं, करते हैं तवाफे-काबा भी,
यूं अहले-नजर तेरी खातिर ईमान बदलते रहते हैं।
तू जो करवाए--मस्जिद भेज दे, मस्जिद चले जाएंगे; मंदिर भेज दे, मंदिर चले जाएंगे; काशी तो काशी सही; काबा तो काबा सही।
बुत पूजते हैं, मय पीते हैं, करते हैं तवाफे-काबा भी,
मंदिर की मूर्ति भी पूज लेते हैं, तेरी शराब भी पीए चले जाते हैं, जाकर काबा की परिक्रमा भी कर आते हैं। मगर इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।
यूं अहले-नजर तेरी खातिर ईमान बदलते रहते हैं।
कायम हैं जहां में दो चीजें, इक हुस्न तेरा, इक इश्क मेरा,
पूजा के मगर ऐ बुत तेरी सामान बदलते रहते हैं।
इन अलग-अलग वचनों में अलग-अलग कुछ भी न पाओगे। एक ही बात बहुत-बहुत ढंग
से कही गई है। एक ही बात, एक ही पुकार बहुत-बहुत रागों में गाई गई है। उनवान अलग-अलग हैं, शीर्षक अलग-अलग हैं--कहानी पुरानी है। मगर कौन जाने कौन सा शीर्षक तुम्हें रुच जाए, कौन सा उनवान जंच जाए! कौन जाने कौन सा शब्द लग जाए तीर की तरह हृदय पर! कौन सी पूजा की विधि किस क्षण में रुच जाए। इसलिए हम ये गीत गाएंगे। ये अनेक-अनेक गीतों की नावें एक ही दिशा में जा रही हैं। ये अलग-अलग रंग की होंगी, मगर गंतव्य एक है।
आओ, प्रेम की इस झील में नौका-विहार करें! ऐसी झील तुम कहीं और न पाओगे। हिम्मत की... और हिम्मत के बिना काम नहीं होगा। ज्ञानी को इतनी हिम्मत की जरूरत नहीं है। वह अपने ज्ञान पर थोड़ा भरोसा कर सकता है। भक्त को तो पूरी हिम्मत चाहिए। भक्त को तो पूरा साहस चाहिए। अपने पर तो कोई सवाल ही नहीं है--सब कुछ उसका है। ज्ञानी को तो थोड़ा संकल्प का सहारा है। भक्त को तो कोई संकल्प नहीं है। उसके लिए तो सिर्फ गिरधर गोपाल हैं। वह तो बेसहारा है। उसके बेसहारा होने में ही उसका बल है। निर्बल के बल राम। उसकी निर्बलता की पुकार ही उसका बल है।
साहस चाहिए होगा--इस यात्रा पर जाने को। और सबसे बड़ा साहस है--लोकलाज खोने का साहस। सबसे बड़ा साहस है--संतों के ढिंग बैठने का साहस। सबसे बड़ा साहस है--पागलों की जमात में शामिल होने का साहस। मैं तुम्हें निमंत्रण देता हूं। यह पागलों की एक जमात है।
कौन दुनिया पर भला तकिया करे
है सहारा एक तेरे नाम का
जो भी हूं हूं तेरी रहमत के तुफैल
वर्ना था मैं आदमी किस काम का
खुम पे खुम देता चला जा साकिया
काम सोहबत में तेरी क्या जाम का जादे राह लेकर चलें, ऐ हमसफर
नाम हो अल्लाह का या राम का
दूर जाना है हमें, आगे बढ़ो
वक्त आएगा बहुत आराम का
तू उठा कर देख तो अपनी नजर
किस कदर दिलकश है जल्वा बाम का
आंख तो उठा कर देखोः किस सुंदर झील की तरफ मीरा ने इशारा किया है! आंख उठा कर तो देखोः किस सुंदर झील की तरफ मैं इशारा कर रहा हूं!
तू उठा कर देख तो अपनी नजर
किस कदर दिलकश है जल्वा बाम का
दुनिया पर बहुत भरोसा कर लिया--पाया क्या?
कौन दुनिया पर भला तकिया करे

है सहारा एक तेरे नाम का
अब परमात्मा पर भरोसा करके भी देखो।
जो भी हूं हूं तेरी रहमत के तुफैल
हो तुम जो भी, उसके कारण हो। लेकिन तुम अपने पर भरोसा कर-कर के व्यर्थ झंझटें बना रहे हो। वही करने वाला है--तुम कर्ता नहीं हो। तुम ज्यादा से ज्यादा अभिनय में हो। करने वाला वही है। तुम कठपुतली बन जाओ। करने दो उसे जो करता है।
जो भी हूं हूं तेरी रहमत के तुफैल
वर्ना था मैं आदमी किस काम का
खुम पे खुम देता चला जा साकिया
काम सोहबत में तेरी क्या जाम का
और इन आने वाले दिनों में हम कुल्हड़ में शराब ढालने वाले नहीं हैं। तुम्हें जितनी पीनी हो--पी लेना। यहां कुल्हड़ों का कोई काम नहीं। तौल-तौल कर नहीं देनी है। तो इस मधुशाला में तुम्हें निमंत्रण देता हूं। हिम्मत करो! थोड़ी सी हिम्मत, थोड़ी सी हिम्मत--और अपूर्व घट सकता है।
भक्त जब रोता है तो उसके रोने को तुम सिर्फ रोना मत समझना, दुख मत समझना। वहां बड़े वसंत छिपे हैं।
मेरी वीरानी को वीरानी-ए-सहरा न समझ
सौ बहारें लिए दामन में खिजां मेरी है
नगम्गी गम की है और दर्द का है उसमें सरूद
बस रही सोजे-तरन्नुम में फुगां मेरी है
हिज्र में एक नहीं कितने जनम बीत गए वायदा-ए-वस्ल से उम्मीद जवां मेरी है देखी हैं लाखों बहारें मेरी आंखों ने मगर हुई आखिर नजर अफरोज खिजां मेरी है
अर्श से चंद कदम आगे है मस्तों का मुकाम मंजिले-इश्क समझता हूं कहां मेरी है जिन फिजाओं में जरूरत नहीं है बालो-पर की गाहे-गाहे हुई परवाज वहां मेरी है
मेरी हस्ती है तेरे दम से जहां में कायम
तेरी हस्ती का तकाजा है न जां मेरी है
कहलवाता है जो तू बस वही कह सकता हूं
कहने को यूं तो भला मेरी जबां मेरी है
मेरी वीरानी को वीरानी-ए-सहरा न समझ
भक्त की उदासी को उदासी मत समझना। भक्त के विराग को विराग मत समझना। उसके विराग में परमात्मा का राग छिपा है। भक्त की उदासी में परमात्मा की तलाश छिपी है। और भक्त के आंसुओं को तुम विफलता के आंसू मत समझना। भक्त के आंसुओं में हजार वसंत छिपे हैं। वे उसकी प्रार्थनाएं हैं, उसकी आशाएं हैं, उसके मनसूबे हैं।
मेरी वीरानी को वीरानी-ए-सहरा न समझ
सौ बहारें लिए दामन में खिजां मेरी है
भक्त का पतझड़ भी अपने भीतर हजारों वसंत छिपाए हुए है।
नगम्गी गम की है और दर्द का है उसमें सरूद
बस रही सोजे-तरन्नुम में फुगां मेरी है
हिज्र में एक नहीं कितने जनम बीत गए
उस परमात्मा को खोजते, वियोग में एक नहीं, बहुत जन्म बीत गए हैं। वायदा-ए-वस्ल से उम्मीद जवां मेरी है
लेकिन मिलने का वायदा मुझे याद है और मैं जवान हूं, और मेरी उम्मीद जवान है। मिलन हो कर रहेगा। अनंत-अनंत काल भी बीत जाएं विरह में, तो भी मिलन हो कर रहेगा। ऐसी आस्था, ऐसी श्रद्धा भक्ति है।
देखी हैं लाखों बहारें मेरी आंखों ने मगर
हुई आखिर नजर अफरोज खिजां मेरी है
अर्श से चंद कदम आगे है मस्तों का मुकाम
यह जो पागलों की जमात यहां बैठी है, इसका मुकाम आकाश के थोड़ा आगे है।

अर्श से चंद कदम आगे है मस्तों का मुकाम
मंजिले-इश्क समझता हूं कहां मेरी है
परमात्मा ही तुम्हारे इश्क की मंजिल है और वह आकाश से आगे है। सब सीमाओं के पार--असीम से भी पार। सब शब्दों से पार--निःशब्द से भी पार।
जिन फिजाओं में जरूरत नहीं है बालो-पर की
जहां पंखों की भी जरूरत नहीं रह जाती उड़ने के लिए।
गाहे-गाहे हुई परवाज वहां मेरी है
धीरे-धीरे तुम्हें मैं वहां ले चलूंगा, जहां पंखों की भी जरूरत उड़ने
के लिए नहीं रह जाती, जहां पंख भी उड़ने में बोझ हो जाते हैं; जहां पंख भी तोड़ देने होते हैं, छोड़ देने होते हैं, पीछे गिरा देने होते हैं; जहां सब सहारे गिरा देने होते हैं; जहां तुम बिल्कुल बेसहारा हो जाते हो; पंख भी सहारा नहीं बचता।
जिन फिजाओं में जरूरत नहीं है बालो-पर की
गाहे-गाहे हुई परवाज वहां मेरी है
मेरी हस्ती है तेरे दम से जहां में कायम
तेरी हस्ती का तकाजा है न जां मेरी है
भक्त जानता है कि मैं तेरी वजह से हूं, तू ही है मेरे भीतर! मेरे प्राण
तू है। मेरी आत्मा तू है। मैं नहीं हूं--तू है।
कहलवाता है जो तू बस वही कह सकता हूं
और जो तू कहलवा देता है वही कह सकता हूं।
कहने को यूं तो भला मेरी जबां मेरी है
मीरा के ये वचन मीरा के नहीं हैं--कृष्ण के ही हैं।
कहलवाता है जो तू बस वही कह सकता हूं
कहने को यूं तो भला मेरी जबां मेरी है
तैयारी करो--इस यात्रा के लिए। जो जन्मों में नहीं हुआ, वह क्षणों में
भी हो सकता है। पुकार चाहिए। इस प्रेम की बेल को आंसुओं से सींचो।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
दूसरा प्रवचन

समाधि की अभिव्यक्तियां

पहला प्रश्नः आज फिर वही प्रश्न मन उठा रहा है--यह कि न जाने वाली मस्ती और आने-जाने वाली मस्ती क्या दो अलग-अलग अवस्थाएं हैं? आपने कहा कि पच्चीस वर्षों से मैं एक ही मस्ती में हूं जो कि कभी जाती नहीं। और आपने यह भी कहा कि मंसूर को जब मस्ती पकड़ती थी तो वह और ही आदमी हो जाता था। इन दो वक्तव्यों में विरोध नहीं है, तो विरोध का आभास तो है ही। कृपापूर्वक इस विरोधाभास को दूर करें।

उस परम मस्ती के प्रकट होने के ढंग दो हैं। मस्ती एक ही है; उसके प्रकट होने के ढंग दो हैं। कहीं तो बाह्य अभिव्यक्ति बनती है और कहीं केवल अंतर्धारा। कहीं तो भीतर-भीतर स्वाद चलता है और कहीं-कहीं स्वाद बह कर संगीत बन जाता है।
अंग्रेजी में दो शब्द हैं, वे महत्वपूर्ण हैं। एक शब्द हैः इक्सटेसी। इक्सटेसी का अर्थ होता हैः ऐसी आनंद की अनुभूति जो बाहर प्रकट हो। फूल खिलें, गीत झरें, सुगंध उड़े--बाह्य अभिव्यक्ति हो। और दूसरा शब्द है अंग्रेजी मेंः इन्सटेसी। उसका अर्थ होता हैः अंतर्धारा बहे। किसी को कानोंकान पता भी न चले। जैसे नील नदी सैकड़ों मील तक जमीन के नीचे बहती है, फिर जमीन पर प्रकट होती है--ऐसी ही धारा अंतर में भी बह सकती है और बाहर भी प्रकट हो सकती है।
जो धारा बाहर प्रकट होगी वह सतत नहीं हो सकती। मीरा कितना ही नाचे, चौबीस घंटे नहीं नाच सकती। क्योंकि जिन उपकरणों का सहारा लेना पड़ता है-- शरीर का--वह तो थकेगा। मीरा का हो तो भी थकेगा। शरीर तो थकेगा। तो नृत्य चौबीस घंटे नहीं चल सकता। कभी चलेगा, कभी नहीं चलेगा। इसलिए मीरा की अभिव्यक्ति आती-जाती मालूम पड़ेगी। इससे यह मत समझ लेना कि समाधि आती-जाती है। समाधि तो बहती है भीतर; कभी प्रकट होती, कभी प्रकट नहीं होती। प्रकटन में बीच-बीच में अंतराल आ जाएंगे।
कोई चौबीस घंटे गीत तो नहीं गा सकता है। और वृक्ष भी तो वर्ष भर नहीं फूलते; हर दिन नहीं फूलते, हर समय नहीं फूलते। इसका यह अर्थ मत समझना कि जब वृक्ष नहीं फूला है, तो उसके प्राणों में फूल खिलाने वाली रसधार नहीं है। रसधार मौजूद है--कभी फूल बनेगी।
मीरा जब चुप बैठी है और उसने पैरों में घुंघरू नहीं बांधे और हाथ में वीणा नहीं उठाई, नाचती नहीं है, गाती नहीं है--तब भी भीतर तो धारा बह ही रही है; रस वैसा का वैसा है। पर तुम्हें पता न चलेगा।
ऐसा भी हो सकता है कि किसी का रस सदा ही भीतर रहे, जैसे बुद्ध का--कभी गीत न बना; कभी नृत्य न बना, कभी बाहर न आया; भीतर ही रमा रहा।
ये दो रूप हैं अभिव्यक्ति के। बुद्ध की नीलधारा सदा ही भूमि के नीचे रही। जो खोजेंगे वे बुद्ध को पाएंगे। जो बहुत खोदेंगे, उन्हें नीलधारा मिल जाएगी। वे उस जलस्रोत तक पहुंच जाएंगे।
मीरा की धारा बाढ़ की तरह है; बाहर प्रकट होती है। जो नहीं खोजते, कभी- कभी उन पर भी छींटे पड़ जाएंगे। कभी आकस्मिक छींटे पड़ जाएंगे; पास से गुजर जाओगे तो पड़ जाएंगे।
दोनों ढंगों की अपनी खूबियां हैं, अपनी कमियां हैं। जो बुद्ध की तरह भीतर ही डूबा रहेगा, उसमें एक सातत्य होगा--अविच्छिन्न, अखंड। जो मीरा की तरह नाचेगा, गुनगुनाएगा, प्रकट करेगा, उसमें सातत्य नहीं होगा; उसमें विच्छिन्नता होगी।
तो जब मीरा नाचती तुम्हें दिखाई पड़ेगी तो एक तरह की मालूम होगी और जब नाचती नहीं दिखाई पड़ेगी तो दूसरी तरह की मालूम होगी। नाचते समय आविष्ट होगी, जिसको सूफी कहते हैं भाव; अहवाल; हाल। उस वक्त आविष्ट होगी। उस वक्त तुम देखोगे उसकी आंखों में शराब है। लेकिन यह ऐसी शराब हर वक्त नहीं दिखाई पड़ेगी। बुद्ध की आंखों में खोजोगे तो ही दिखाई पड़ेगी। मीरा में नहीं भी

खोजोगे तो भी, जब वह नाचती है, दिखाई पड़ जाएगी। बुद्ध में खोजोगे तो दिखाई पड़ेगी। लेकिन एक दफा दिखाई पड़ गई तो सतत दिखाई पड़ेगी। वह तारा डूबता नहीं। और परमात्मा इन दोनों ढंगों से प्रकट होता है।
तो मैंने जो वक्तव्य दिया उसमें कहीं कोई विरोध नहीं है। मंसूर आविष्ट होता था जैसे मीरा आविष्ट होती है। चैतन्य भी ऐसे ही आविष्ट होते थे। रामकृष्ण भी ऐसे ही आविष्ट होते थे। एक आवेश की दशा है, जहां वे अपना सब होश खो देते हैं; जहां मगन हो जाते हैं। उस क्षण जो उन्हें खोजने नहीं निकला है वह भी अवाक हो जाएगा; आश्चर्य-विमुग्ध हो जाएगा। चाहे भरोसा न भी ला पाए, लेकिन क्षण भर को उसके भीतर भी जिज्ञासा का जन्म होगा।
बुद्ध हैं, महावीर हैं, लाओत्सु हैं--वहां सन्नाटा है। वहां कोई उत्तेजना नहीं है। वहां तूफान नहीं है। उनके सागर में लहर भी नहीं उठती। जो खोजने आएगा, उसी को नाद सुनाई पड़ेगा। जो कान लगा कर सुनेगा, उसी को सुनाई पड़ेगा। नहीं तो तुम बुद्ध के पास से गुजर जाओगे, तुम्हें पता भी न चलेगा। मीरा के पास से बिना पता चले न गुजर सकोगे। मानो न मानो, लेकिन मीरा के पास क्षण भर तो रुक ही जाओगे। जो बहिर्दृष्टि हैं, वे भी रुक जाएंगे। बुद्ध के पास तो जो अंतर्दृष्टि हैं, वे ही रुकेंगे।
तो मंसूर आविष्ट होता है जैसे मीरा। बुद्ध अनाविष्ट रहते हैं। इसमें विरोध जरा भी नहीं है। जैसे परमात्मा हर चीज के लिए दो पहलू चुनता है--बाहर की तरफ, भीतर की तरफ; बहिर्मुखी और अंतर्मुखी। ऐसे ही समाधि भी दो ढंग की होती है--अभिव्यक्ति। समाधि के भीतर का स्वाद तो एक ही है। वह मीरा का हो कि महावीर का, कुछ फर्क नहीं पड़ता है। एक दफा जो आ गई समाधि तो आ गई, फिर जाती नहीं--प्रकट हो, न प्रकट हो।

दूसरा प्रश्नः भक्ति के मार्ग में साधु-संगति का इतना मूल्य क्यों है?

बिना साधु-संगति के लोकलाज कहां खोओगे? बिना साधु-संगति के तुम्हारी
जड़ परंपराएं, लकीरें, लीकें कैसे मिटेंगी? बिना साधु-संगति के कैसे तुम कह सकोगे--
छाड़ि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।
छोड़ दी कुल की मर्यादा--कहती है मीरा--अब कोई मेरा क्या करेगा?
साधु-संगति में ही तुम्हें यह भरोसा मिलेगा कि यहां जगत में न कुछ कोई छीन सकता है, न कोई कुछ दे सकता है। न यहां नाम का कोई मूल्य है, न बदनामी में कुछ हर्जा है। यहां तो सब पानी पर खींची गई लकीरें हैं--नाम हो कि बदनामी हो। और धीरे-धीरे तुम्हें पता चलेगा कि साधु-संगति में बदनाम हो जाना बेहतर, असाधुओं की संगति में नाम हो जाने से।
इधर मेरे सामने "दुलारी" बैठी है। पीछे उसने एक प्रश्न लिख कर भेजा था, और नीचे नोट लिख दिया था कि कृपा कर मेरा नाम प्रश्न में न लें।
डरती होगी बेचारी। घर के लोगों से घबड़ाती होगी। मैं नाम ले दूं तो घर
के लोगों को पता चलेगा कि दुलारी वहां थी। शायद चोरी-चोरी आ जाती होगी। तो स्वाभाविक है, जिस समाज में तुम रहते हो, जिस परिवार में रहते हो, जिन लोगों के बीच रहते हो, उनसे हजार तरह के समझौते करने होते हैं। इन समझौतों से तुम्हें कौन ऊपर ले जाएगा? इनसे तुम्हें कौन मुक्त करेगा? साधु-संगति के बिना कोई उपाय नहीं है।
साधु-संगति का अर्थ क्या है?
जो पहले से बिगड़े हुए हैं, उनके साथ उठना-बैठना। जो बिगड़ ही गए हैं, उनसे दोस्ती न करोगे तो बिगड़ोगे कैसे?
वहीं बैठ-बैठ कर, मीरा कहती हैः संतन ढिंग बैठि बैठि लोकलाज खोई। उन्होंने तो गंवा ही दिया था खुद, उन्हीं के पास बैठ-बैठ कर यह बीमारी मीरा को भी लग गई।
एक संत तुम्हारी तरफ आंख उठा कर देख ले, काफी है--बजाय इसके कि सारा जगत तुम्हारी प्रशंसा के गीत गाए। सारा जगत एक तरफ और संत की प्रेम-वर्षा की एक बूंद एक तरफ। तो भी बूंद वजनी है और पलड़ा तराजू का वहीं झुकेगा।

इसलिए लोग घबड़ाते हैं संतों के पास जाने में। और अगर प्रियजन, मित्र, पत्नी, पति, बेटे जाने लगें, तो भय पैदा होता है। क्योंकि एक बात उनको अनजाने में भी जाहिर है कि अगर संतों का प्रभाव पड़ा तो हमारा प्रभाव गया। पति क्यों भयभीत हो जाता है? पत्नी क्यों भयभीत हो जाती है?
यहां मेरे पास लोग आते हैं। तो अक्सर नियम से यह बात होती है। पति आ जाता है तो पत्नी बाधा डालती है; पत्नी आ जाती है तो पति बाधा डालता है। यह मामला क्या है? इतनी क्या बाधा? मगर भय स्वाभाविक है। भय यही है कि अगर पत्नी यहां ज्यादा दिन आई-गई, तो पति गौण हो जाएगा; उसके अहंकार को खतरा है। कोई बात उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाएगी। कोई बात इतनी महत्वपूर्ण हो सकती है कि किसी दिन अगर पति को भी छा.ेडना पड़े तो पति को छोड़ा जा सकता है। यह बड़ा खतरा है। पति आता है तो पत्नी डरने लगती है। उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण पति के जीवन में कोई प्रविष्ट हुआ जा रहा है। और कल अगर जरूरत पड़ी तो पत्नी निर्णायक नहीं रह जाएगी। और हम चाहते हैं कि हमारा निर्णय दूसरे पर रहे; दूसरे पर हमारी मालकियत रहे; दूसरे पर हमारा कब्जा रहे।
तुम पूछते होः "साधु-संगति का इतना मूल्य क्या?"
नहीं तो यह बीमारी कहां लगेगी?
संतन ढिंग बैठि बैठि लोकलाज खोई।
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई।
मीरा कहती हैः देखती हूं जगत को तो रोना आता है। ये खुद तो भटके हैं लोग, दूसरों को भटका रहे हैं। ये खुद भी पाने से रुके हैं, दूसरों को भी रोक रहे हैं। ये अपने हाथ-पैर में जंजीरें डाले हैं। यद्यपि उसे आभूषण कहें, या जो भी नाम देना हो, प्यारे नाम दें--शृंगार कहें। इतना ही नहीं, ये दूसरों के पैरों की जंजीरें भी मजबूत कर रहे हैं। और कोई अगर झटके देना चाहता है, जंजीर तोड़ना चाहता है, तो ये सब क्रुद्ध हो उठते हैं; ये सब तरफ से घेरा बांध देते हैं। ये हजार तरह के उपाय करते हैं कि तुम इनके घेरे के बाहर न निकल जाओ।
साधु के पास बैठने का अर्थ यह है कि वह खबर लाएगा तुम्हारे पिंजरों में--खुले आकाश की। साधु के पास बैठने का अर्थ यही है कि वह खबर लाएगा कि जंजीरों से मुक्त होने का उपाय है। मुझे देखो, वह कहेगा। जंजीरें तोड़ी जा सकती हैं। और जंजीरें तोड़ते ही सारा आकाश हमारा है। इससे कम पर राजी भी मत होना।
साधु का अर्थ है कि तुम्हारे भीतर परमात्मा को पाने की प्यास को प्रज्वलित करेगा। तुम जो अपने पिंजरे में बंद होकर बैठ गए हो--माना कि तुम्हारा पिंजरा सोने का होगा, और आकाश तो सोने का नहीं है, यह भी सच है-- मगर क्या सोने का पिंजरा इस खाली आकाश से बड़ा हो सकता है? या मूल्यवान हो सकता है? पिंजरा आखिर पिंजरा है--सोने का हो कि लोहे का। पिंजरे में तुम मालिक नहीं हो; तुम्हारी आत्मा गुलाम है। वह कारागृह है।
यद्यपि सुविधा है पिंजरे में। रोटी समय पर मिल जाती है, सब तरह की सुरक्षा है। लेकिन सुरक्षा का क्या स्वतंत्रता के मुकाबले कोई मूल्य है? खतरा है उड़ते हुए पक्षी को आकाश में। पिंजरे में बंद पक्षी को इतना खतरा नहीं है; न दुश्मन हमला कर सकते हैं; न कोई बंदूक उठा कर गोली मार दे सकता है; न कल की चिंता है कि रोटी कौन देगा! सब समय पर मिलेगा। लेकिन एक कीमत चुकानी पड़ी है--आत्मा चुकानी पड़ी है; आत्मा दे देनी पड़ी है। अब तो मालिक जो कहता है वही दोहराना पड़ेगा; जैसा जिलाता है वैसा जीना पड़ेगा। आत्मा तो बिक गई है, और सब मिल गया।
आकाश में उड़ते पक्षी के पास आत्मा है--और कुछ भी नहीं। मगर आत्मा सब कुछ है। साधु के पास बैठ-बैठ कर तुम्हें आकाश की याद आनी शुरू होगी। तुम पिंजरों में बहुत दिन रह लिए हो। तुम्हें याद ही बिसर गई है। तुम्हें ख्याल भी नहीं रही कि आकाश है। आकाश की तो छोड़ो, तुम्हें यह भी याद नहीं रही कि तुम्हारे पास पंख हैं और तुम उड़ सकते हो। जब बहुत दिनों तक न उड़ो तो पंखों की याद भी भूल जाती है। उड़ो तो ही पंखों की याद भी होती है। उड़ो तो ही पता चलता है कि पंख हैं। जो कभी चला नहीं वर्षों तक, उसे अगर पैरों की याद भूल जाए तो कुछ आश्चर्य तो नहीं।

कहते हैं, अगर कोई आदमी तीन साल तक अंधेरे में रह जाए तो उसकी आंखें रोशनी खो देती हैं। तीन साल तक देखे ही नहीं तो देखने की क्षमता खो जाती है। कहते हैं, कोई तीन साल तक चुप रह जाए तो फिर बोलते नहीं बनता; जबान लड़खड़ाने लगती है।
तो यह तो तीन साल की बात है, तुम जन्मों-जन्मों से नहीं उड़े हो; तुम सदियों से नहीं उड़े हो; तुम्हारी पहचान ही भूल गई है कि तुम्हारे पास पंख भी हैं। तुम्हें पंखों की याद भी नहीं है।
साधुओं के पास तुम्हें पंखों की फड़फड़ाहट सुनाई पड़ेगी। साधु को तुम उड़ते देखोगे आकाश में। उसका आनंद देखोगे। उसका रस पीओगे। उसकी गरिमा से आह्लादित होओगे। उसका ज्वर, वह जो परमात्मा की गरमी से गरमा गया है, तुम्हें भी छुएगा। तुम थोड़े पिघलोगे। तुम्हारा बर्फ जैसा जम गया हृदय पिघलना शुरू होगा। और कहां करोगे यह? और कैसे करोगे यह? और कोई उपाय भी तो नहीं है।
कारागृह में आना चाहिए कोई--जो कारागृह के बाहर हो। वही खबर लाएगा बाहर की। जंजीरों से बंधे आदमी को कोई मिलना चाहिए जो जंजीरों में न हो। तो ही उसे समझ आएगी कि जंजीरों के बिना भी हो सकता है। और पक्षी को दिखाई पड़ना चाहिए कि उसी जैसा कोई पक्षी, ठीक उसी जैसा कोई पक्षी, पंख फैलाए आकाश में उड़ रहा है। तुम्हें याद भी न रहेगी और अचानक तुम अपने पंख फड़फड़ाने लगोगे। सदियों से बंद पड़े पंख फिर सजीव हो उठ सकते हैं।
इसलिए कहती है मीराः भगत देख राजी हुई... जहां कोई परमात्मा का प्यारा मिला, वहां राजी हो गई; वहां अहोभाव से भर गई।... जगत देख रोई। यह जगत बड़ा दुख भरा है। और आश्चर्य यह है कि यहां सभी क्षमता लेकर पैदा होते हैं--परम आनंद की, सच्चिदानंद की।
भक्त करते क्या हैं? साधु करते क्या हैं? यह मीरा क्यों भगत देख राजी हुई? वहां होता क्या है? वहां एक कीमिया चलती है। जैसे पारस को छूने से लोहा सोना हो जाता है, ऐसे साधु को छूने से तुम भी साधु होने लगते हो। वहां एक रूपांतरण हो रहा है।
जिससे हिल जाएं अर्श के पाये,
अपने उस दर्दो-गम की बात करो।
वहां परमात्मा के विरह की पीड़ा की चर्चा होती है।
जिससे हिल जाएं अर्श के पाये,
आकाश के भी अगर कहीं कोई पाये हों तो हिल जाएं, ऐसी विरह की पीड़ा की बात होती है।
अपने उस दर्दो-गम की बात करो।
जो रुला दे तमाम आलम को,
बस उसी चश्मे-नम की बात करो।
और वहां परमात्मा की प्यारी-प्यारी आंखों की बात होती है।
देखा नहीं कल मीरा ने कहाः
मोरे नैनन बसो नंदलाल।
मोहनी मूरत सांवली सूरत, नैना बने बिसाल।
ये तुम्हारी बड़ी-बड़ी आंखें, यह तुम्हारा प्यारा चेहरा, यह तुम्हारा सांवला रंग--मेरी आंखों में बस जाओ! मुझे घेर लो, मुझे मुझसे बचा लो! मेरा मुझमें कुछ न बचे। तुम्हीं बस जाओ।
जो रुला दे तमाम आलम को,
बस उसी चश्मे-नम की बात करो।
क्या हकीकत गमे-जहां की है,
मेरे साकी के दम की बात करो।
और वहां तुम सुनोगे कि जगत माना कि बहुत बड़ा है, मगर क्या? कुछ भी नहीं। परमात्मा के समक्ष कुछ भी नहीं। और माना कि जंजीरें बहुत बड़ी हैं, लेकिन जो उस प्यारे को पुकारेगा, उसके एक नाम की चोट मजबूत से मजबूत जंजीरों को गिरा देती है। उसका सहारा मिल जाए, फिर बड़े-बड़े पहाड़ भी आदमी लांघ जाता है। सुनते हैं न कि लंगड़े भी लांघ जाते हैं; अंधे भी देखने लगते हैं; बहरे भी सुनने लगते हैं!
क्या हकीकत गमे-जहां की है,

इस दुनिया के दुखों में रखा क्या है?
मेरे साकी के दम की बात करो।
है रहीमो-करीम अपना खुदा,
हमसे लुत्फो-करम की बात करो।
साधु-संगत में होता क्या है? वहां प्रभु की अनुकंपा की बात होती है। वहां तुम्हारे दुख, तुम्हारे अंधेरे, तुम्हारे अज्ञान की बात होती है।
वहां तुम्हारे आंसू जगाए जाते हैं, सो गए आंसू, खो गए आंसू--पुनः पुकारे जाते हैं। और साथ ही परमात्मा की अनुकंपा की बात होती है। क्योंकि अगर परमात्मा की अनुकंपा की बात न हो, तो तुम तो वैसे ही दुखी हो, और दुखी हो जाओगे; वैसे ही गिरे पड़े हो गर्त में, और भी साहस खो दो, आत्मविश्वास खो दो। वहां तुम्हें खबर मिलती है कि तुम्हारा पाप कितना ही बड़ा हो, मगर उसकी करुणा उससे बड़ी है। तुम घबड़ाओ मत। तुम कितने ही भटके हो, उसका हाथ बहुत लंबा है। तुम कितने ही दूर निकल गए हो, उसका हाथ तुम तक पहुंच सकता है। पुकारो भर! तुम इतने दूर नहीं जा सकते कि वह तुम्हें उठा न ले। इसलिए तो भक्तों ने कहाः भगवान के हजार हाथ हैं। एक हाथ से बचोगे, दूसरे से बचोगे, हजार से तो न बच सकोगे। वह सब तरफ से उठा लेगा, सब दिशाओं से उठा लेगा। लेकिन तब तक न उठाएगा, जब तक तुम पुकारो न।
तो साधु-संगत में जीवन का दुख दिखाई पड़ता है। दुख ही दुख है यहां। यहां सुख कब किसने जाना! तुमने कभी सुखी आदमी देखा यहां? और अगर कभी तुम्हें यहां सुखी आदमी मिल जाए तो तुम तत्क्षण पाओगेः वह यहां का नहीं है। वह वहां का है। वह यहां परदेस में है; यहां अजनबियों के बीच है।
है रहीमो-करीम अपना खुदा,
हमसे लुत्फो-करम की बात करो।
तो वहां पाप की बात होती है; परमात्मा की करुणा की बात होती है। वहां हमारे दुख, पीड़ा की बात होती है। वहां उसके अमृत, उसके अमृत की वर्षा की बात होती है।
हिज्र भी है विसाल का पैगाम,
ऐने राहत सितम की बात करो।
वहां विरह की बात होती है। और विरह के साथ ही साथ यह भी बात होती है कि विरह उससे मिलन की ही सूचना है; उसके मिलन की तैयारी है। विरह उससे मिलने की तैयारी है। हमने उसे खोया है--पाने को। हमने उसे खोया है--और-और पाने को। यह विरह भी उसके मिलन को प्रीतिकर बनाने वाला है।
हिज्र भी है विसाल का पैगाम,
इसमें संदेश छिपा है मिलन का।
जो कदम है बजाए खुद मंजिल,
इश्क के उस कदम की बात करो।
जो कदम है बजाए खुद मंजिल,
जो कदम अपने आप में अपनी मंजिल लिए हुए है, उस प्रेम के कदम की बात वहां होती है।
साध-संगत यानी प्रेम की चर्चा। तुम्हारे जीवन में प्रेम चाहिए; प्रेम
का प्रकाश चाहिए। और यह तभी संभव है जब तुम किसी जले हुए दीये के पास बैठो।
तुम्हारा दीया बुझा है, कैसे जलाओगे? जले हुए दीये के पास बैठो। सरको पास।
भगत देख राजी हुई।
सरको पास। जहां कोई साधु मिल जाए, करीब आओ। दूरी न रखो। दूरी गंवाओ।
दूरी खोओ। दूरी बचाई तो हीरा पास था और गंवा बैठोगे। करीब आओ। क्योंकि एक क्षण ऐसा आता है करीब होने का, सामीप्य का, निकट होने का--जब जले हुए दीये से लपट बुझे हुए दीये पर छलांग लगाती है। एक खास दूरी पर यह घटना घटती है। तुम एक फीट की दूरी पर रख दो दो दीयों को, तो नहीं घटती। करीब लाते जाओ, करीब लाते जाओ। एक क्षण ऐसा आता है--अभी भी दूरी है; लेकिन अब इतनी दूरी नहीं है कि लपट छलांग न ले सके। लपट छलांग ले लेती है। जहां एक दीया जलता था, वहां दो दीये जल जाते हैं। यही शिष्यत्व है। यही साध-संगत है। साधु-संगति के बिना रोशनी नहीं होगी। रोशनी के बिना रोशनी नहीं होगी। नमूदे-जिंदगी का राज क्या है?
मैं खुद क्या हूं, मेरी आवाज क्या है?

फसूने-नगमा क्या है, साज क्या है?
जनूने-इश्क क्या है, नाज क्या है?
कहां समझोगे? कैसे समझोगे?
नमूदे-जिंदगी का राज क्या है?
इस जिंदगी का रहस्य क्या है? किसी रहस्य भरे व्यक्ति के पास जाओ। वहीं
यह चमत्कार घट सकता है। गुलाब के फूल को पहचानना हो तो गुलाब के फूल के पास जाओ। चांद-तारों से पहचान करनी हो तो चांद-तारों पर आंखें टिकाओ। और परमात्मा को खोजना हो तो जहां परमात्मा की थोड़ी सी झलक मिलती है, वहां उठो- बैठो।
और खोने को क्या है? लोकलाज। और कुछ खास है नहीं। लोग इतना ही कहेंगे
कि पागल है। तो लोगों के कहने का मूल्य भी क्या है? ये वे ही लोग हैं जो मीरा को भी पागल कहते थे। ये वे ही लोग हैं जो जीसस को भी पागल कहते थे। ये वे ही लोग हैं जो सदा से यही कहते रहे हैं। इनका धंधा यही है। इन्हें खुद पाना नहीं है; इन्हें किसी दूसरे को भी पाने नहीं देना है।
ये दूसरे को क्यों नहीं पाने देना चाहते? क्योंकि ये खुद तो पा नहीं रहे हैं; दूसरा पा ले इनसे पहले, यह अड़चन मालूम होती है। और तुम ऐसा मत समझना कि तुम साध-संगत में न बैठो तो ये तुम्हें बहुत होशियार समझते हैं। तो भी कुछ होशियार तो समझते नहीं। इस दुनिया में हर आदमी अपने को होशियार समझता है, बाकी किसी को तो होशियार समझता ही नहीं। तुम कुछ भी करो, इससे भेद नहीं पड़ता--लोग तुम्हें होशियार मान नहीं सकते; क्योंकि तुम्हें होशियार मानने में फिर उनका क्या होगा?
मैंने सुना है, एक आदमी एक पूर्णिमा की रात में अपनी पत्नी को साथ लेकर चांद के नीचे यात्रा को निकला। अपना सांड भी उसने साथ ले लिया। पत्नी को बिठा लिया स्वभावतः सांड के ऊपर, खुद पैदल चला। कुछ लोग रास्ते में मिले, उन्होंने कहाः यह देखो औरत, यह बदचलन मालूम होती है! पति पैदल चल रहा है, खुद सांड पर बैठी है! शरम नहीं आती!
तो पत्नी ने कहा कि यह तो बात ठीक नहीं, मुझे नीचे उतार दो; तुम बैठ जाओ। तो पत्नी नीचे चलने लगी, बेचारा आदमी बैठ गया। थोड़ी देर बाद दूसरे लोग मिले, उन्होंने कहाः यह देखो, इन महाशय को देखते हो! हजरत को तो देखो! बेचारी औरत तो पैदल चल रही है, खुद मुस्तंडे की तरह हैं, सांड पर बैठे हुए हैं! शरम नहीं आती!
तो उस आदमी ने कहा कि यह तो बड़ा खतरनाक मामला है। तो वे दोनों बैठ गए।
अब और क्या करें! दोनों बैठ गए। थोड़ी देर बाद फिर कुछ लोग मिले, उन्होंने कहाः यह देखो, अरे मार डालोगे सांड को! कुछ तो दया करो! दो-दो चढ़ कर बैठे हो एक सांड पर! कुछ दया-भाव रखो! पशु भी आखिर प्राणी है।
तो उन्होंने सोचाः अब क्या करें? तो दोनों उतर कर चलने लगे। फिर कुछ लोग मिल गए। उन्होंने कहाः ये बुद्धू देखो! सांड साथ में है और पैदल चल रहे हैं! अकल नाममात्र को नहीं है।
उन्होंने कहाः अब क्या करना है? उन्होंने भी जिद्द कर रखी थी, जैसे तुमने जिद्द कर रखी है, कि लोगों को राजी ही करके रहेंगे। मगर लोग किसी से कभी राजी हुए? तुम कुछ भी करो, गलत। उन्होंने एक बांस उठाया, किसी तरह बांधा सांड को, कंधे पर लटकाया। अब क्या करें? सब कर चुके, अब एक ही उपाय बचा कि अब सांड को लेकर चलें, क्योंकि यह बेचारा सांड! अब आखिरी एक ही विकल्प बचा। लोगों ने देखा, उन्होंने कहाः ये मूढ़ देखो! इनसे बड़े मूढ़ कहीं देखे कि खुद तो सांड पर नहीं बैठे हैं, सांड को लेकर चल रहे हैं।
तुम कुछ भी करो, तुम पाओगे तुम्हारी निंदा की गई। और जब कुछ भी करने से निंदा होती हो तो कुछ ऐसा करो जिससे कुछ मिलता हो, निंदा तो होनी ही है। परमात्मा को खोजने की दिशा में कदम उठाओ।
नमूदे-जिंदगी का राज क्या है?
मैं खुद क्या हूं, मेरी आवाज क्या है?
न तुम्हें पता है, न औरों को पता है। मगर वे और तुम्हें भी पता न होने देंगे।
फसूने-नगमा क्या है, साज क्या है?
जनूने-इश्क क्या है, नाज क्या है?

यह प्रेम का पागलपन क्या है? यह प्रेम की मस्ती क्या है? यह तुम कहां सीखोगे? किसी मस्त के पास बैठो। किसी पियक्कड़ के पास बैठो।
ये रंगो-बू, ये रानाई, ये जल्वे,
ये दिलकश सूरतो-अंदाज क्या है?
यह जो चारों तरफ सौंदर्य की अनंत वर्षा हो रही है, यह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। किन्हीं ऐसी आंखों के पास बैठो जिन्हें यह दिखाई पड़ती है। किन्हीं आंखों का सहारा लो।
इसलिए तुमसे बार-बार कहता हूंः कभी-कभी मेरी आंखों से देखो। कभी-कभी मेरे कानों से सुनो। मेरे कानों से सुनोगे तो तुम्हें पता चल जाएगाः
मैं खुद क्या हूं, मेरी आवाज क्या है?
नमूदे-जिंदगी का राज क्या है?
फसूने-नगमा क्या है, साज क्या है?
जनूने-इश्क क्या है, नाज क्या है?
ये रंगो-बू, ये रानाई, ये जल्वे,
ये दिलकश सूरतो-अंदाज क्या है?
कहां तक हुस्न की फैली है वुसअत?
न जाने इश्क की परवाज क्या है?
कहां तक प्रेम का आकाश फैला है! कितना विस्तीर्ण है प्रेम का आकाश! तुम तो अपने घर के आंगन से ही न निकले। तुमने तो आंख ही न उठाई। तुम तो चांद-तारों को देखते ही नहीं। वह जो दूर-दूर तक फैला हुआ आकाश है, वह तुम्हें समझ नहीं आता। बाहर का आकाश समझ नहीं आता; भीतर का आकाश तो क्या समझ आएगा!
कहां तक हुस्न की फैली है वुसअत?
कहां तक सौंदर्य है! कहां तक प्रेम है! कहां तक इसका विस्तार है!
न जाने इश्क की परवाज क्या है?
और प्रेम कितने दूर तक उड़ सकता है, इसका भी तुम्हें कुछ पता नहीं। तुम
तो पंख ही नहीं फड़फड़ाते। तो जो उड़ना जानता हो उसके पास जाओ। तैरना सीखना हो तो तैरने वाले के पास जाओ। पीना सीखना हो तो पियक्कड़ के पास जाओ।
जो आंखों में फिरे हर वक्त सूरत,
जो गूंजे कान में, आवाज क्या है?
कहूं क्या, दीदा-ओ-दिल दोनों हैरां,
ये ऐजाजे-हजूमे-नाज क्या है?
सीखोगे कहां?
इसलिए भक्ति के मार्ग में साधु-संगति का चरम मूल्य है। उससे ज्यादा मूल्यवान और कुछ भी नहीं। शास्त्र का वहां मूल्य नहीं है--संगति का मूल्य है। शब्द का वहां मूल्य नहीं है--संगीत का मूल्य है। तर्क का वहां मूल्य नहीं है--श्रद्धा का मूल्य है। क्योंकि तर्क से तो दूरी बनी रहती है। बुझा दीया और जला दीया दूर बने रहते हैं--तर्क के कारण। श्रद्धा में ही समीपता आती है, क्योंकि श्रद्धा ही दुस्साहस कर सकती है करीब आने का।
कीमत तो चुकानी ही पड़ेगी--आज नहीं कल। लोग नाराज भी होने ही वाले हैं, तुम संसार को राजी रख कर परमात्मा को राजी न कर पाओगे। यह समझौता होने वाला नहीं है। इस समझौते में पड़ना भी मत। होता हो संसार नाराज तो हो जाए। भगत देख राजी हुई।
तुम तो भगत को देख कर राजी होओ!
ये पाठ महंगे हैं शुरू में। क्योंकि शुरू में ऐसा लगता है कि संसार सब कुछ है। भगत के पास है क्या? संत के पास है क्या? जो है, वह साधारण चमड़े की आंखों से दिखाई भी नहीं पड़ता। वह तो पास रहोगे, रहते-रहते-रहते उसका रस लगेगा; रसायन पकड़ेगी।
जीवंत के पास आओ, ताकि कोई किरण तुम्हें छू ले; तुम्हारे अंधेरे को डगमगा दे; तुम्हारी सदियों से जमी धूल को उखाड़ दे; तुम्हारे पथरीले हो गए, जम गए हृदय को पिघला दे!

तीसरा प्रश्नः मीरा पर प्रवचन प्रारंभ करते हुए आपने हमें प्रेम के मानसरोवर में नौका-विहार के लिए आमंत्रित किया, हम कृतज्ञ हैं। लेकिन कई

मनस्विद कहते हैं कि प्रेम मूलतः जैविक है, जो कि मनुष्य में दमन के कारण मानसिक रूप ले लेता है। मनस्विद यह भी कहते हैं कि कवि, कलाकार और संत ने जैविक प्रेम को ही तूल देकर वायवीय और अलौकिक बना दिया है। इस वक्तव्य पर कुछ प्रकाश डालने की अनुकंपा करें!

मनस्विद जानते क्या हैं? मन को भी नहीं जानते हैं अभी, आत्मा की तो बात
ही छोड़ो। मनस्विदों को मनस्विद कहना भी अभी ठीक संगत नहीं है। अभी मनस्विद तो केवल मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन कर रहे हैं; अभी मन का अध्ययन शुरू नहीं हुआ। और मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन भी अभी ठीक से शुरू नहीं हुआ। मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन करते हैं, कहीं चूहों, बिल्लियों, कबूतरों--इनका अध्ययन करके।
यह ऐसे ही है, जैसे कोई फूल का अध्ययन करना चाहे और जड़ों को काट ले और उनका विश्लेषण करे; कोई कमल का अध्ययन करना चाहे, और कमल जिस कीचड़ में पैदा हुआ है, उस कीचड़ को भर लाए घर और उसका अध्ययन करे।
यह बात सच है कि मनुष्य के जीवन में जो प्रेम का फूल खिलता है, वह कामवासना की कीचड़ में ही खिलता है, यह बात बिल्कुल सच है। मगर वह कामवासना की कीचड़ ही नहीं है। कीचड़ में खिलता है, लेकिन कमल कीचड़ नहीं है।
लेकिन विज्ञान में एक बड़ी भ्रांत धारणा है कि हर चीज को उसके मूल कारण
पर ले जाओ। उसे पीछे की तरफ ले जाओ। विज्ञान की यह मान्यता हैः कारण समझ लिया तो कार्य समझ लिया। विज्ञान की एक अंधी मान्यता है कि कार्य जो है वह कारण से बड़ा कभी नहीं होता।
यह बात झूठ है। यह बात बुनियादी रूप से गलत है। कार्य अक्सर कारण से बड़ा होता है। कीचड़ से ही कमल आता है, यह बात सच है; फिर भी कमल कीचड़ ही नहीं है, कीचड़ से बहुत ज्यादा है। और यह भी सच है कि अगर तुम कमल को जाकर विश्लेषण करोगे विज्ञान की प्रयोगशाला में, तो उसमें से वह फिर कीचड़ खोज लेगा--किन-किन तत्वों से बना है, निकाल कर रख देगा। और तब एक आश्चर्य की बात होती है कि सौंदर्य जो तुम्हें दिखाई पड़ा था उस कमल में, वह नहीं मिलेगा फिर। न सौंदर्य मिलेगा, न वह जो निर्दोष कुंआरापन था कमल का, वह जो ताजगी थी कमल की, वह जो आनंद झलक रहा था कमल में--वह भी नहीं मिलेगा। न आनंद कमल का पकड़ में आएगा, न उसकी ताजगी, न कुंआरापन पकड़ में आएगा, न उसका सौंदर्य पकड़ में आएगा। कुछ भी पकड़ में नहीं आएगा। कमल को विश्लेषण करोगे, कीचड़ हाथ लगेगी। लेकिन कमल कीचड़ है?
मनस्विद की भी वही भूल है, क्योंकि मनस्विद अभी विज्ञान के पीछे चलता है--इसी भ्रांति में कि किसी तरह उसका शास्त्र भी विज्ञान हो जाए। यह उसने गलत दिशा पकड़ी है। जीवन में जिन चीजों से मिल कर कुछ बनता है, उन्हीं पर समाप्त नहीं होता। तुम हड्डी-मांस-मज्जा से बन कर बने हो, लेकिन तुम ज्यादा हो। तुम जानते हो भलीभांति, तुम जब आंख बंद करके बैठोगे तो तुम पाओगे कि न तो तुम हड्डी हो, न मांस-मज्जा हो। तुम चैतन्य हो। यह प्रत्येक की प्रतीति है कि वह चैतन्य है। लेकिन अगर तुम्हारे शरीर को तोड़ा-फोड़ा जाए, तो चैतन्य नहीं मिलेगा। चैतन्य चूक जाता है हाथ से। वह कैसे उड़ जाता है, पता नहीं चलता। वह अदृश्य है। दृश्य का सहारा लेकर टिका है। तुम्हारे शरीर के बिना कहीं मिलेगा नहीं। तुम्हारे शरीर पर पैर जमाए खड़ा है। लेकिन एक दिन शरीर पड़ा रह जाएगा और चैतन्य जा चुका होगा। तब तुम कितना ही खोजो, चैतन्य को न पाओगे। अभी जब कि चैतन्य है, अभी भी अगर डाक्टर पूरा शरीर का छेदन कर डाले, तो भी कहीं चैतन्य को नहीं पाएगा। चैतन्य पाया ही नहीं जा सकता, क्योंकि चैतन्य पकड़ा नहीं जा सकता। चैतन्य अनंत है, असीम है।
ऐसा ही मामला प्रेम और काम का है। तथाकथित मनस्विद कहते हैं कि प्रेम
तो जैविक वासना है, कामवासना है। ठीक कहते हैं। एक सीमा तक सच कहते हैं। लेकिन उन्हें और पार का कुछ भी पता नहीं कि यह जो कामवासना है, यह रूपांतरित हो सकती है।
तुम ऐसा समझो कि एक वीणा रखी है, और तुमने कभी वीणा नहीं देखी और तुम वीणा बजाना भी नहीं जानते हो--और तुमसे कोई पूछे कि यह वीणा क्या है? तुम क्या करोगे? तुम तार नाप लोगे कि कितनी लंबाई के तार लगे हैं इसमें। तुम, कितनी लकड़ी इसमें लगी है, वह हिसाब लगा दोगे। इसमें कितना हाथी-दांत लगा

है, वह हिसाब लगा दोगे। इसमें क्या-क्या है, कितनी चमड़ी लगी है, उसका हिसाब लगा दोगे। सब हिसाब लगा कर रख दोगे। मगर क्या तुम सोचते होः इसमें वीणा का हिसाब आ गया? इसमें असली बात तो चूक ही गई कि वीणा में एक संगीत सोया था, जो अगर कुशल कोई होता तो छेड़ देता, तो जग जाता।
जब वीणा से संगीत पैदा होता है, तब संगीत क्या है? तार है? लकड़ी है? हाथी-दांत है? जो संगीत पैदा होता है, वह क्या है? निश्चित, वीणा के बिना पैदा नहीं होता, लेकिन वीणा केवल उसकी अभिव्यक्ति में साधन है; वीणा उसका स्वरूप नहीं है। वह वीणा से कुछ ज्यादा है। वह वीणा पर थोड़ी देर के लिए टिक जाता है। उतरता है किसी आकाश से--वापस आकाश को लौट जाता है। वीणा माध्यम है।
ऐसी ही मनुष्य की जैविक वासना है; वह माध्यम है। उसी में प्रेम उतरता है। जो बजाना जानता है, जिसने काम पर ठीक-ठीक बजाना सीख लिया--उसे राम मिल जाता है। काम की वीणा में ही राम के स्वर उत्पन्न होते हैं।
फिर मनस्विद अध्ययन किसका करते हैं? मनस्विद अक्सर पागलों का अध्ययन करते हैं--विकृत मनोदशाओं का। और तो कोई उनके पास जाएगा भी क्यों?
फ्रायड ने जिंदगी भर विक्षिप्त लोगों का अध्ययन किया और विक्षिप्त लोगों के आधार पर उसने नतीजे निकाले, जिन नतीजों को वह सारी मनुष्यता पर लागू करना चाहता है।
यह बात बड़ी बेहूदी है। यह ऐसा ही है कि एक आदमी जमाने भर के जड़बुद्धि मूढ़ों को इकट्ठा कर ले और उनका अध्ययन करे और फिर अध्ययन का निष्कर्ष आइंस्टीन पर और बर्ट्रेंड पर भी लगाना चाहे। हम उसे मूढ़ कहेंगे। हम कहेंगेः पहले तुम मूढ़ों का अध्ययन करते हो और फिर मूढ़ों का अध्ययन करके तुम उस अध्ययन को सब पर फैलाना चाहते हो--जो कि मूढ़ नहीं हैं! यह बात अवैज्ञानिक है। यह न्यायोचित नहीं है।
फ्रायड ने अध्ययन किया विक्षिप्त लोगों का, और विक्षिप्त लोगों के अध्ययन से उसने पाया कि सारी बीमारियां कामवासना की हैं। और सच पाया। क्योंकि मनुष्य-जाति ने कामवासना को इतना दबाया है, इतना दबाया है, कि लोगों को रुग्ण कर दिया है। वीणा बजाना तो आता नहीं, तो वीणा को ले जाकर खूब गहरे में दबा दिया है, क्योंकि वह घर में रखी रहे तो भी झंझट है। कभी बच्चे छेड़ देते हैं; कभी गिर जाती है तो आवाज होती है; कभी बीच रात में चूहे दौड़ जाते हैं और आवाज कर देते हैं, तो नींद टूट जाती है। इस वीणा को घर में रखने से फायदा क्या है? इसे दबा दो। इससे उपद्रव ही होता है।
अगर संगीत जगाना न आए तो वीणा से उपद्रव ही होता है। तो तुमने वीणा को दबा दिया है। जिससे महासंगीत पैदा होता, उसे तुम दबा कर बैठ गए हो। और उस दबाने के कारण हजार रोग पैदा होते हैं। क्योंकि जीवन में कुछ भी दबाया जाएगा तो रोग पैदा होगा। जीवन में विकास होना चाहिए--दमन नहीं। और जीवन सतत विकासमान है--ऊपर और ऊपर। अगर तुम रुके तो तुम रुग्ण हो जाओगे। जैसे ही कोई धारा रुकती है, सड़ना शुरू हो जाती है। धारा बहती रहे तो स्वच्छ रहती है।
तो तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोगों ने भी इसमें हाथ बंटाया है-- जिन्होंने दमन सिखाया है।
कामवासना के दमन का परिणाम है कि मनुष्य-जाति पागल होती है। फिर पागलों का अध्ययन करते हैं मनोवैज्ञानिक और वे उस अध्ययन को लागू करते हैं सभी के ऊपर। किसी मनोवैज्ञानिक ने मीरा का अध्ययन किया नहीं, बुद्ध का अध्ययन किया नहीं। और यही असली सबूत हैं मनुष्य के। बुद्ध का अध्ययन हो, मीरा का अध्ययन हो, मंसूर का अध्ययन हो, इनके अध्ययन से जो निष्पत्तियां मिलेंगी, वे हमें खबर देंगी कि मनुष्य क्या हो सकता है; मनुष्य की संभावना का द्वार खोलेंगी।
इसलिए मनस्विदों से सावधान रहना। धार्मिकों से सावधान रहना, क्योंकि
वे दमन सिखाते हैं। मनस्विदों से सावधान रहना, क्योंकि वे पागलों के द्वारा ली गई निष्पत्तियों को सबके ऊपर आरोपित करते हैं। दोनों ही गलत हैं। दमन की कोई जरूरत नहीं है। जीवन सहज और सरल हो, मुक्त, निर्बाध! मगर उतना ही काफी नहीं। उतने से तुम स्वस्थ हो जाओगे, रुग्ण नहीं होओगे। मगर स्वास्थ्य काफी नहीं है। अपने आप में स्वास्थ्य का क्या मूल्य है?

स्वास्थ्य का इतना ही मूल्य हो सकता है कि वह साधन बन जाए परमात्मा तक पहुंचने का। निर्बंध, अबाध जीवन की धारा हो तो स्वस्थ होगी। स्वस्थ धारा हो तो फिर सागर की तरफ ले चलो। फिर बहो सागर की तरफ। जिस दिन तुम जानोगे प्रेम को, उस दिन पाओगे कि मनोवैज्ञानिक गलत कहते हैं। जिन्होंने प्रेम का थोड़ा सा भी अनुभव किया है, वे जानते हैं कि मनोवैज्ञानिक गलत हैं। लेकिन अड़चनें कुछ हैं। अड़चनें ये हैं कि प्रेम का अनुभव हो तो तुम्हें होता है। इस अनुभव को दुनिया के सामने रखा नहीं जा सकता। और इस अनुभव को दुनिया के सामने रखो तो दुनिया कुछ का कुछ समझेगी। क्योंकि दुनिया वही समझ सकती है जो समझ सकती है--जहां तक दुनिया की समझ है।
तुमने कभी कोशिश की? एक छोटे बच्चे को, चार साल के बच्चे को, तुम अगर काम-शास्त्र समझाना चाहो वात्स्यायन का, तो नहीं समझा पाओगे, लाख सिर पटको। कैसे समझाओगे? और बिल्कुल मत समझाओ, वात्स्यायन के काम-सूत्र का पता ही न चलने दो इसको, लेकिन जब यह जवान हो जाएगा और इसकी काम-ऊर्जा पकेगी तो तुम्हारे बिना समझाए भी समझ लेगा।
पशु-पक्षियों को कौन समझाता है? वात्स्यायन की किताब पढ़ते नहीं, खजुराहो के मंदिर जाते नहीं। कौन समझाता है इनको? जब ऊर्जा पकती है तो समझ आती है।
ऐसे ही एक दिन जब प्रेम पकता है तो समझ आती है। मनस्विद ऐसे है जैसे चार साल का बच्चा; उसको हम कामवासना नहीं समझा सकते। ऐसे ही मनस्विद है; उसे हम प्रेम का रहस्य नहीं समझा सकते, क्योंकि उसने प्रेम के रहस्य को पकने ही नहीं दिया। पकना तो दूर है, वह तो एक जिद्द मान कर बैठा है कि ऐसी कोई चीज होती ही नहीं। जब होती ही नहीं तो खोज बंद हो गई। फिर इसके बड़े अजीब-अजीब परिणाम होते हैं।
एक मित्र ने प्रश्न पूछा हैः

एक महिला ने मीरा पर महानिबंध लिखा है। उसने उसमें कहा है कि मीरा एक साधारण औरत थी और उसका गोपाल पांच हजार साल पहले हुआ कृष्ण नहीं था। लेकिन जो साधु उसके घर आया था, वह उसी साधु के प्रेम में पड़ गई थी। और उस समय वह पांच साल की नहीं थी, बल्कि युवती थी।
आपके बारे में भी समाज में एक बड़ा हिस्सा मानता है कि आप धर्म की आड़ में निर्बंध कामाचार को प्रोत्साहन दे रहे हैं।
क्या प्रत्येक ज्ञानी का मार्ग इसी प्रकार के क्लिष्ट धुएं से आच्छादित रहता है?

अब जिस महिला ने मीरा पर यह खोज की होगी, यह खोज उसी महिला के संबंध में है, मीरा के संबंध में जरा भी नहीं है। और मुझे उस बेचारी पर दया आती है। नाम तो उन्होंने लिखा नहीं, जिसने यह महानिबंध लिखा है। उस पर मुझे दया आती है। लगता है, उसे साधु भी नहीं मिला। खुद साधु मिल जाता तो महानिबंध लिखने में समय खराब करती? ... तो मीरा पर महानिबंध लिखने की जरूरत क्या है?
अब यह बड़े मजे की बात है। एक तो मीरा गलत; उसकी जिंदगी खराब गई इसके हिसाब से। और यह अपनी जिंदगी खराब कर रही है उस पर महानिबंध लिख कर! महानिबंध लिखने में वक्त लगता है--तीन-चार साल, पांच साल। ये पांच साल किसलिए खराब करते हो? मगर यह जो महिला लिखी होगी किताब, ये उन्हीं तथाकथित मनस्विदों के आधार पर कही गई बातें हैं।
अब पहली तो बात यह है कि मीरा को समझने के लिए मीरा जैसी भाव-दशा चाहिए। मीरा को समझने के लिए किसी युनिवर्सिटी की डिग्री की कोई जरूरत नहीं है। मीरा के पास कोई डिग्री नहीं थी। मीरा को समझने के लिए मीरा का भाव चाहिए। बजाय इन देवी को कि ये महानिबंध लिखें, थोड़ा भक्ति-भाव सीखें, साधु-संगत करें; किसी साधु के प्रेम में पड़ें; थोड़ा बिगड़ें, कुछ रस लगे, कुछ धुन पकड़े और किसी दिन अपने को पाएं नाचते मीरा जैसा--तो कुछ समझ में आएगी बात; तो रास्ता खुलेगा। नहीं तो ये निष्कर्ष स्वाभाविक हैं।
यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि पांच हजार साल पहले कृष्ण हुए--अब पांच हजार साल पहले हुए कृष्ण को कैसे तो प्रेम करोगे? क्योंकि हमारा प्रेम तो

बड़ा भौतिक अर्थ का होता है; शारीरिक होता है। हमारी धारणा उतनी है कि बस शरीर से होता है। शरीर से ही जो प्रेम होता है, वह कैसे मान सकता है कि पांच हजार साल के फासले पर प्रेम हो सकता है!
अब यह बड़ी मुश्किल है। यह ऐसा ही है जैसे अंधे आदमी को समझाओ कि रोशनी होती है--ऐसे ही उसको समझाना, जिसको केवल शारीरिक प्रेम का ही पता है। उसको समझाना मुश्किल है कि प्रेम अनंतकाल की दूरी पर भी हो सकता है। प्रेम के लिए कोई बाधा न समय की है और न काल की है। प्रेम के लिए अगर कोई बाधा है तो सिर्फ अहंकार की है; और कोई बाधा नहीं है। सिवाय अहंकार के और कोई चीज प्रेम में बाधा बनती ही नहीं। अगर यह अकड़ है कि मैं हूं कुछ, तो भर प्रेम नहीं होता। फिर चाहे तुम्हारा प्रेमी तुम्हारे पास ही क्यों न बैठा हो; गलबांही डाले क्यों न बैठा हो। अगर अहंकार है तो प्रेम नहीं होता। पास बैठे रहो, शरीर से लगाया हुआ शरीर लगा हो, बैठा हो, तो भी प्रेम नहीं होता। अगर अहंकार है तो इतना बड़ा फासला है कि उसको पूरा नहीं किया जा सकता। और अगर अहंकार नहीं है--और वही तो भक्ति का सूत्र है--तो फिर कोई फर्क नहीं पड़ता। कृष्ण पांच हजार साल पहले हुए हों या पचास हजार साल पहले हुए हों, कोई फर्क नहीं पड़ता। कृष्ण यहां हों कि किसी और चांद-तारे पर हों, कोई फर्क नहीं पड़ता।
तो पहले तो इन देवी का यह कहना कि मीरा एक साधारण औरत थी, सिर्फ अपने संबंध में संकेत देना है।
दूसरी बातः मुझसे अगर कोई कहे, तो मैं कोई साधारण औरत को कुछ बुरा नहीं मानता। सभी साधारण हैं। असाधारण का क्या अर्थ होता है? असाधारण का इतना ही अर्थ होता हैः जिसने अपनी साधारणता को पहचान लिया, वही असाधारण हो गया। जिसने अपनी निर-अहंकारिता को पहचान लिया, वही असाधारण हो गया। असाधारण का अर्थ होता हैः अपनी साधारणता में मस्त हो गए।
मीरा को साधारण औरत कहने से यह महिला ही साधारण हो जाती है। अपने को साधारण जान लो, तो असाधारण हो जाओ। और मीरा ने अपने को बड़ा साधारण माना है।
इतना ही कहती है कि हे प्रभु, मुझे चाकर रख लो; मुझे नौकर रख लो; मैं तुम्हारे पैर दबा दूंगी; मैं तुम्हारा काम कर दूंगी; सेवा-टहल कर लाऊंगी।
मुझे चाकर राखो जी! और तो कुछ मांगती नहीं। कुछ तो मांग नहीं है मीरा की।
तो पहले तो मैं कहूंगाः मीरा को कोई भी दंभ नहीं है असाधारण होने का।
यही उसकी असाधारणता है। वह बिल्कुल साधारण है।
दूसरी बात इन देवी ने खोजी कि जो साधु उसके घर आया था, वह उसी साधु के प्रेम में पड़ गई थी; वह पांच हजार साल पहले हुए कृष्ण के प्रेम में नहीं थी। लेकिन इस साधु में भी कृष्ण उतने ही हैं। इस साधु की कोई खराबी है? इसका कोई कसूर? इस साधु के भी प्रेम में अगर मीरा पड़ जाए, तो इन देवी को कोई अड़चन मालूम होती है? कृष्ण तो सर्वव्याप्त हैं। कृष्ण कोई व्यक्ति का नाम थोड़े ही है।
अगर तुम मुझसे पूछो तो मैं ऐसा नहीं कहूंगा कि कृष्ण से प्रेम करो।
मैं कहूंगाः प्रेम करो; जिससे प्रेम हो जाए, वही कृष्ण है। कृष्ण से थोड़े ही प्रेम होता है; प्रेम से कृष्ण होते हैं। क्या फर्क पड़ता है? ठीक, चलो।
यह अनाम साधु जो आया था, इसके प्रेम में पड़ गई होगी। तो भी कुछ हर्जा नहीं।
प्रेम में पड़ गई, यह बात पक्की है। और प्रेम में पड़ गई कि मीरा मीरा हो गई।
किसके प्रेम में पड़ी, क्या फर्क पड़ता है? यहां नाम-धाम का ही फर्क है, बाकी तो एक ही बसा है।
मगर इन देवी की चेष्टा यह है कि कृष्ण का प्रेम कुछ खास; कृष्ण का प्रेम होता तो चलो क्षमा कर देतीं ये उसको; मान लेतीं कि चलो ठीक है, चलने दो। मगर साधु!
साधु में तुम्हें परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता? तो कृष्ण में ही ऐसी क्या खूबी थी? ग्वाले थे! किसी को कृष्ण की निंदा करनी हो तो क्या अड़चन है? --कि इस ग्वाले के प्रेम में पड़ गई! साधु भी उनका ही रूप है। मगर ये देवी इस कोशिश में ही लगी हैं कि किसी तरह मीरा को छोटा सिद्ध करना है। कहीं इन देवी को चोट लग रही होगी। शायद ये भी कुछ तुकबंदी वगैरह जानती हों, तो शायद सोचती हों कि ये भी कुछ कवि इत्यादि हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मुझसे बात कर रहा था। ऐसे साहित्य की बात चल पड़ी तो कहने लगा कि उर्दू साहित्य की हालत बड़ी खराब है! मैंने पूछाः मतलब? उसने कहाः अब आप तो जानते ही हैं, मिर्जा गालिब को मरे कितना समय हो गया! फिर इकबाल भी चले गए। और फिर मेरी भी तबीयत कुछ दिनों से ठीक नहीं रहती। बस उर्दू साहित्य पूरा हो गया! इधर कुछ दिनों से मेरी तबीयत भी ठीक नहीं रहती! उर्दू साहित्य की हालत बड़ी खराब है! शायद कुछ तुकबंदी इन देवी को भी आती होगी। मीरा से अड़चन अटकती होगी। मीरा को किसी तरह नीचे लाना जरूरी है!
तुम ध्यान रखनाः संतों की निंदा में अक्सर कारण यही होता है-- ईर्ष्या। यह बात मानना बहुत कठिन होती है अहंकार को कि कोई हमसे ऊपर है। खींचो! किसी भी तरह खींचो!
इसलिए संतों की जब भी निंदा चलती है, तुम तत्क्षण मान लेते हो। तुम फिर खोज-बीन ही नहीं करते। फिर कोई फिकर ही नहीं करता इस बात की खोज-बीन करने की कि इसमें सचाई कितनी है।
निंदा हम तत्क्षण स्वीकार करते हैं। प्रशंसा--हम एकदम ठिठक जाते हैं।
हम कहते हैंः प्रशंसा! यह हो नहीं सकता। अच्छा तो हो ही नहीं सकता, हमारी यह मान्यता है। यह तो सिद्ध सिद्धांत है हमारा कि शुभ तो यहां होता ही नहीं; अशुभ ही होता है। अशुभ कोई कहे तो हम मान लेते हैं। शुभ की कोई खबर दे, हम लाख झंझटें खड़ी करते हैं, तर्क उठाते हैं।
इसलिए उनको यह भी अड़चन है। वे कहती हैं कि "साधु के प्रेम में पड़ गई थी--जो साधु घर आकर रुका था। और उस समय वह पांच साल की नहीं थी, बल्कि युवती थी।"
यह भी उसको अड़चन रही होगी कि अब पांच साल की अगर मानो, तो फिर यह साधु
के प्रेम में पड़ना कुछ जंचेगा नहीं; इसमें कुछ ताल-मेल नहीं बैठेगा। फिर इसको वासना नहीं कहा जा सकेगा। तो मीरा को खींच कर युवती बनाना पड़ता है। हो सकता है, साधु का नाम गोपालदासजी या ऐसा कुछ रहा हो! बाबा गोपालदास! या रणछोड़दासजी! कुछ ऐसा नाम रहा हो और मीरा धोखा दे रही हो दुनिया को। पड़ी है इस लफंगे के चक्कर में और बातें कर रही है कृष्ण की। ऐसी उनकी चेष्टा है। यह चेष्टा क्षुद्र वृत्ति से उठी है। मीरा को समझने के ये ढंग नहीं।
मुझे कुछ अड़चन नहीं है। मीरा अगर जवान रही हो तो और भी अच्छा। इसमें क्या अड़चन है? जवानी में कुछ बुराई नहीं है। जवानी में बुराई होती तो परमात्मा जवानी लाता ही नहीं। परमात्मा जवानी से बहुत खुश है--इसलिए तो जवानी को सौंदर्य देता, प्रतिभा देता, रूप-रंग देता। जब फूल पूरा खिलता है तो कोई कसूर तो नहीं है। कोई बौ.ैडी जो खिली नहीं है, कोई बड़ी महिमा की बात तो नहीं है।
तो पांच साल की बच्ची बौड़ी है। जवान युवती खिल गया फूल है। क्या हर्ज है?
और मीरा किसके प्रेम में पड़ी, यह मुझे अड़चन नहीं आती। हां, दूसरों को अड़चन आएगी। ऐसे धर्मगुरु तुम्हें मिल जाएंगे जो इसका खंडन करेंगे, कि यह बिल्कुल गलत है। मुझे इसमें अड़चन नहीं आती कि किसके प्रेम में पड़ी। प्रेम में पड़ी, यह काफी है। मैं प्रेम का हामी हूं। पक्षपाती हूं। तुम किसी को तो प्रेम करो! तुम प्रेम तो करो! तुम प्रेम का स्वाद तो ले लो। तुम किसी के भी साथ प्रेम का स्वाद ले लो, तुम धीरे-धीरे पाओगेः वहीं से परमात्मा का रास्ता बनना शुरू हो गया। क्योंकि प्रेम उसका रास्ता है। अप्रेम विपरीत जाना है परमात्मा के; प्रेम उसके अनुकूल जाना है। जिससे हो जाए, उससे करो। प्रेम के संबंध में शर्तबंदी न रखो। प्रेम प्रार्थना का प्रथम रूप है; भक्ति की शुरुआत है।

चौथा प्रश्नः भक्त की भाव-दशा के संबंध में कुछ कहें।

भक्त की भाव-दशा ऐसे ही है जैसे प्रतिपल बदलता हुआ मौसम। अभी सूरज निकला है और हवाएं शांत हैं और वृक्ष किरणों में नहाए खड़े हैं। और अभी-अभी वर्षा हो सकती है, मेघ घिर जाएं, जल बरसने लगे; सूरज बदलियों में छिप जाए।

अभी-अभी हवा के झोंके आ सकते हैं और वृक्षों को हिला डालें। और अभी-अभी सब कुछ हो सकता है।
भक्त की भाव-दशा बड़ी तरंगायित दशा है। भक्त जड़ नहीं है--प्रवाह है।
तो किसी एक शब्द से भक्त की दशा नहीं कही जा सकती। कभी रोता है--विरह में। और कभी हंसता है--मिलन में। कभी भक्त को नाचते पाओगे, जैसे सारे जगत की संपदा मिल गई; और कभी ऐसे जार-जार रोते पाओगे, जैसे सब खो गया। कभी प्रभु का गुणगान करते पाओगे--भगत देख राजी हुई! और कभी संसार की तरफ देखते हुए भक्त को बड़ा उदास पाओगे--जगत देख रोई!
तो कोई भाव-दशा को एक शब्द नहीं दिया जा सकता; परिभाषा नहीं हो सकती। भक्त की भाव-दशा बदलती है। तब तक बदलती रहती है जब तक भक्त भगवान ही नहीं हो जाता; जब तक भगवान में लीन नहीं हो जाता।
तो मीरा के भजनों में भी तुम अलग-अलग भावों के प्रतिबिंब पाओगे। कभी रोने के, कभी हंसने के, कभी मस्ती के, कभी आनंद के--कभी नाराजगी के भी। भक्त भगवान से नाराज भी हो जाता है। वह हक है उसका नाराज होने का। ज्ञानी तो डरता है। वह तो सम्हल कर चलता है। वह तो व्यवहार की बातें करता है--भगवान से भी! औपचारिकता। भक्त नहीं डरता। भक्त का क्या डरना! प्रेम कभी डरता ही नहीं। जिससे तुम्हारा प्रेम है, उससे तुम निर्भय हो जाते हो। तो भक्त कभी जूझ भी लेता है; कभी दो-दो बातें हो जाती हैं। कभी मनमुटाव भी हो जाता है। कभी दो-चार दिन के लिए नाराज भी हो जाता है तो भक्ति इत्यादि छोड़ देता है। रख देता है मूर्ति-वूर्ति बंद करके संदूक में--कि रहो पड़े।
भक्त की यह तरलता समझनी होगी। उसकी सरलता समझनी होगी। उसकी सहजता समझनी होगी। कभी-कभी रूठ जाता है और प्रतीक्षा करता है कि मनाओ अब। और भगवान मनाते भी हैं। भक्त को मनाना ही होगा। यह खेल दोनों तरफ से चलता है।
ज्ञानी तो बिल्कुल अकेला है। वहां छिया-छी खेलने का उपाय ही नहीं। लेकिन भक्त एक अपूर्व स्थिति में है; वहां छिया-छी चल सकती है। कभी छिप जाता है। कभी आवाज देता है कि खोजो मुझे। कभी खोजने निकलता है।
कांटों पे एतबार किया है कभी-कभी
फूलों को शर्मसार किया है कभी-कभी
पैमानाए-बहार किया है कभी-कभी
जल्वों को आशकार किया है कभी-कभी
रहम आ गया जो इनपे मेरे जब्ते-इश्क को
आंखों को अश्कबार किया है कभी-कभी रस्मो-रिवाजे-इश्क का कायल नहीं, मगर दामन को तार-तार किया है कभी-कभी
गो बेखबर नहीं हूं हकीकत से खार की फूलों पे एतबार किया है कभी-कभी
जो देवता भी पा न सकें, मैंने वो कदम चूमे हैं, उनसे प्यार किया है कभी-कभी सर आस्तां पे तेरे झुकाए रहा, मगर इसको सुपुर्द-ए-दार किया है कभी-कभी
मैं हूं तो कोई दूसरा कैसे हुआ कहीं
मैं ही को तू शुमार किया है कभी-कभी
ऐसा चलता है।
कांटों पे एतबार किया है कभी-कभी
फूलों को शर्मसार किया है कभी-कभी
कभी भरोसा कांटों पर हो जाता है। कभी जीवन का दुख, परमात्मा से विरह--
एक कांटे की तरह चुभ जाता है। बड़ी विषाद की दशा हो जाती है। अंधेरी रात छा जाती है। अमावस आ जाती है भक्त के प्राणों पर। और कभी-कभी फूल खिलने लगते हैं, पूर्णिमा हो जाती है। संसार भूल जाता है, विरह भूल जाता है। उसकी एक छोटी सी किरण भी मिलती है तो मिलन का रस... आलिंगन मिलने लगता है। पैमानाए-बहार किया है कभी-कभी
जल्वों को आशकार किया है कभी-कभी

और कभी सब मरुस्थल जैसा मालूम पड़ता है; कभी सब पतझड़ हो जाता है। और कभी वसंत आता है! और वसंत का सारा सौंदर्य आता है! और वसंत की जवानी आती है! और खूब फूल खिलते हैं और पक्षी खूब गीत गाते हैं!
भक्त में सारे मौसम हैं। ज्ञानी एक मौसम में जीता है--थिर; स्थितप्रज्ञ। ज्ञानी की लौ ऐसी है, जहां कि हवा का झोंका भी नहीं आता। वह ज्ञानी की चेष्टा है। ध्यान का वही अर्थ है। ध्यान का अर्थ हैः चित्त बिल्कुल थिर हो जाए; जरा भी हिले-डुले नहीं। थिरता ज्ञानी का प्रयास है! भक्त कहता हैः डुलाओ मुझे! हिलाओ मुझे! नचाओ मुझे!
पैमानाए-बहार किया है कभी-कभी
जल्वों को आशकार किया है कभी-कभी
रहम आ गया जो इनपे मेरे जब्ते-इश्क को
आंखों को अश्कबार किया है कभी-कभी
कभी मुस्कुराता है, कभी आंखों से आंसुओं की झड़ी लग जाती है। रस्मो-रिवाजे-इश्क का कायल नहीं, मगर
दामन को तार-तार किया है कभी-कभी
भक्त कहता है कि मुझे रस्मो-रिवाज, वे जो प्रेम के औपचारिक नियम हैं, उनका मैं कायल नहीं हूं, उनको मैं मानता भी नहीं हूं; लेकिन फिर भी कभी ऐसी घड़ियां आ गईं कि अपने वस्त्रों को फाड़ कर फेंक दिया है।
दामन को तार-तार किया है कभी-कभी
गो बेखबर नहीं हूं हकीकत से खार की
हालांकि मुझे पता है कि कांटे की भी असलियत है।
गो बेखबर नहीं हूं हकीकत से खार की
फूलों पे एतबार किया है कभी-कभी
फिर भी फूलों पर भरोसा, वह भी हुआ है। सब हुआ है।
भक्त का जीवन बड़ा समृद्ध है। ज्ञानी का जीवन एक-आयामी है; भक्त का जीवन बहु-आयामी।
जो देवता भी पा न सकें, मैंने वो कदम
चूमे हैं, उनसे प्यार किया है कभी-कभी
मगर कभी-कभी! यह रोज बदलती है बात। यह रोज घटती है बात। भक्त का भाव रूपांतरित होता रहता है। भक्त का भाव जीवंत है। जहां जीवन है, वहां रूपांतरण है। भक्त का भाव बहती हुई गंगा की भांति है। ज्ञानी का ज्ञान सरोवर की तरह बंद--ठहरा हुआ। भक्त के जीवन में सब आता है, सब जाता है। लेकिन इन सबके पीछे एक सारसूत्र है, जो ठहरा रहता है। जैसे फूलों की माला में एक सूत्र, धागा पिरोया होता है, अलग-अलग फूल हो सकते हैं, गुलाब का फूल, गेंदे का फूल, चंपा, चमेली, मगर सबके पीछे पिरोया हुआ एक सूत्र होता है--समर्पण का भाव; प्रेम। वह भाव-दशा उसकी थिर है। नाराज होता है, तब भी प्रेम में कमी नहीं है। रूठ जाता है, तब भी प्रेम में कमी नहीं है। पूजा करता है, तब भी प्रेम में कुछ फर्क नहीं है। आंसू बहाता है, उदास है, कि खुश है; लेकिन प्रेम सतत बना रहता है। ऊपर-ऊपर सब फूल बदलते रहते हैं; भीतर एक एकरसता बनी रहती है।
बसाया बिजलियों में आस्मां की
इलाही खैर मेरे आशियां की
समेटा दो जहां को अपने दिल में
खबर पाई निशाने-बेनिशां की
जिधर उठी निगाहे-शौक अपनी
उधर आई सिमट रौनक जहां की
जहां जोश आया एक नारा लगाया
भर आया जी तो पैहम इक फुगां की
जहां सर झुक गया, सजदे हुए हैं
रही बंदिश न संगे-आस्तां की
भक्त पर कोई बंदिश नहीं है, कोई नियम, व्यवस्था, अनुशासन नहीं है। भक्त का भाव परम स्वच्छंद भाव है।
जहां सर झुक गया, सजदे हुए हैं
जहां सिर झुक गया, वहीं प्रार्थना हो गई।

रही बंदिश न संगे-आस्तां की
फिर इसकी फिकर नहीं की, कि किस देहरी पर सिर झुका--मंदिर थी कि मस्जिद थी; कि राम थे कि रहीम थे; कि कृष्ण थे कि क्राइस्ट थे। इस पर कोई बंदिश नहीं है भाव की। भाव बंदिश जानता ही नहीं। भाव परम स्वतंत्रता की दशा है। बसाया बिजलियों में आस्मां की
इलाही खैर मेरे आशियां की
और कितनी ही पीड़ा मिले, धन्यवाद नहीं छूटता। और कितना ही विरह सताए, धन्यवाद नहीं छूटता। कहा है--
बसाया बिजलियों में आस्मां की
इलाही खैर मेरे आशियां की
अगर बिजलियों में भी आसमान की, भक्त को अपना घर बनाना पड़ा हो, अपना आशियां बनाना पड़ा हो, अपना नीड़ बनाना पड़ा हो, तो भी वह कहता है--
इलाही खैर मेरे आशियां की
तेरी बड़ी कृपा है!
समेटा दो जहां को अपने दिल में
खबर पाई निशाने-बेनिशां की
और जिसने भी, ये जो दो दुनियाएं हैं--यह और वह; संसार और परलोक--जिसने
इन दोनों को समेट लिया अपने दिल में, और जिसकी वासना इन दोनों की तरफ दौड़ती अब नहीं, बंद हो गई, रुक गई। न इस दुनिया में कुछ चाहता है, न उस दुनिया में कुछ चाहता है; जिसने ऐसी स्थिति बना ली कि परमात्मा को चाहता है, और कुछ भी नहीं चाहता--न स्वर्ग के सुख, न संसार के सुख।
समेटा दो जहां को अपने दिल में
खबर पाई निशाने-बेनिशां की
उसे खबर मिलती है उस निशान की--जो बेनिशां है। उसे उस जगह का पता मिल जाता है जो लापता है। उसे अज्ञात का ज्ञान होना शुरू होता है। उसे अदृश्य दृश्य होता है; अश्राव्य सुनाई पड़ने लगता है।
जहां सर झुक गया, सजदे हुए हैं
रही बंदिश न संगे-आस्तां की
जैसे-जैसे भक्त आगे बढ़ता जाता है, जैसे-जैसे भक्ति प्रगाढ़ होती है, प्रांजल होती है, वैसे-वैसे सभी मूर्तियां उसी की हो जाती हैं। तब सभी में वह--अगर कृष्ण का भक्त है तो कृष्ण को देखने लगता है; राम का भक्त है तो राम को देखने लगता है। वह तो बहाना है--राम और कृष्ण। वह तो शुरुआत है--क ख ग। जैसे-जैसे बढ़ते जाते हो, फिर कुछ फर्क नहीं रह जाता। फिर तो जो दिखाई पड़ता है, वही कृष्ण दिखाई पड़ता है। और जब तक ऐसा न हो जाए तब तक जाननाः अभी भक्ति की बातें तुमने सुनीं और बातें तुमने कीं; लेकिन भक्ति में बहे नहीं, भक्ति को पीया नहीं।

पांचवां प्रश्नः आप पूना पधारे, इसमें हमारी क्या पात्रता हो सकती है? फिर भी आपने अपनी करुणा का सागर ही हम पर उंडेल दिया। मैं उसमें थोड़ा ही भीग पाया, लेकिन उससे भी जीवन में बहुत आनंद पाता हूं। साथ ही यह खटका भी है कि पूर्ण जीवन-रूपांतरण का अवसर सामने है और मैं चूकता चला जाता हूं। इसकी जिम्मेवारी पूरी की पूरी मेरी है। लेकिन जो भी आपने दिया, वह बहुत है और उसके लिए मेरा अहोभाव स्वीकार करें।

एक ही भूल है इस प्रश्न में, बाकी सब ठीक है। और भूल समझ में आ जाए तो
वह जो अड़चन मालूम हो रही है, मिट जाएगी, बाधा हट जाएगी। और भूल ऐसी सूक्ष्म है कि एकदम से समझ में न आएगी। और जब मैं कहूंगा तो तुम चौंकोगे।
कहा है कि "करुणा का सागर हम पर उंडेल दिया। इसमें हमारी क्या पात्रता
हो सकती है?"
पात्र तो तुम हो ही जन्म से। अपात्र तो कोई होता ही नहीं। अपात्र परमात्मा बनाता ही नहीं। क्योंकि अगर तुम अपात्र हो तो फिर बनाने वाला अपात्र हो जाएगा। अगर घड़ा ठीक न बने तो घड़े को थोड़े ही दोष देते हो; कुम्हार को दोष देते हो। और कुम्हार वही है--एक ही है। वही बुद्ध का घड़ा बनाता है, वही मीरा का, वही तुम्हारा निरंजन! कुछ भेद नहीं है बनाने वाले

में। वही हाथ, वही कला। सच तो यह है, कि बनाते-बनाते और कलाकार हो गया है। बुद्ध को ढाई हजार साल पहले बनाया था; तुमको ढाई हजार साल बाद बनाया। तो ऐसा थोड़े ही है कि बूढ़ा होता जा रहा है और बुद्धि गंवाता जा रहा है, कि सठिया गया है। ढाई हजार साल के अनुभव के बाद तुम्हें बनाया--और सुंदर बनाया है।
रवींद्रनाथ ने कहा हैः परमात्मा हारता ही नहीं; बनाए जाता है। हम चाहे उसकी मर्जी पूरी करें, न करें; मगर वह थकता नहीं। वह नये-नये संस्करण भेजता ही चला जाता है। वह जगत को रोक नहीं देता। यह उसके प्रेम की लीला है। तुम पात्र ही हो। पात्रता के लिए कुछ और करना नहीं है। लेकिन तुम्हारे धर्मगुरुओं ने तुम्हें सिखाया है कि पात्रता के लिए बहुत कुछ करना पड़ेगाः ब्रह्मचर्य साधो; नहीं तो अपात्र! परमात्मा ने दी है काम-ऊर्जा और तुम्हारा धर्मगुरु सिखा रहा हैः ब्रह्मचर्य साधो; नहीं तो अपात्र। अब तुम झंझट में पड़े। अब यह ब्रह्मचर्य सधता नहीं। साधने की कोशिश करो तो और मुश्किल खड़ी होती है। जितना साधो उतना ही मन और कामनाग्रस्त होता चला जाता है। तो फिर अपात्रता का ख्याल पैदा होता है। अपात्रता पैदा की तुम्हारे धर्मगुरु ने। वह तुममें अपराध-भाव पैदा करवाता है। यह ऐसा ही कि तुम दो बार खाना खाते हो, धर्मगुरु कहता हैः एक बार खाओ तो पात्र। अब तुम एक बार खाते हो, तो दिन भर भूख लगी रहती है। बार-बार भोजन के ही ख्याल आते हैं। बिस्तर पर लेटते हो तो बस थालियां सज जाती हैं। रास्ते पर निकलते हो तो और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। इधर से हलुवे की अंध आती है, उधर से भजिए की गंध आती है। वैसे कभी नहीं आती थी; जब से एक दफा भोजन शुरू किया, तो एकदम रास्ते पर जाओ तो बस आदमी तो दिखाई नहीं पड़ते-- भजिए, मिठाई की दुकानें, भोजनालय। और चित्त बड़े-बड़े विचारों में पड़ता है। अब तुम अपात्र हुए। अब झंझट बनी। अब तुमको लगा कि यह मामला क्या है? मैं क्या पागल हूं भोजन के पीछे?
पागल नहीं हो। तुम्हारे धर्मगुरु ने तुम्हें अस्वाभाविक करके पागलपन
की हालत करवा दी। उलटा-सीधा कुछ करोगे--अपात्र मालूम होने लगोगे। किसी ने बता दिया कि रोज तीन बजे रात उठना। अब उठने लगे तीन बजे; अब दिन भर नींद आती है। पूछने गए गुरु से, तो गुरुदेव कहते हैं कि तामसी हो। यह तामस का लक्षण है--दिन में नींद का आना। स्वभावतः तामस का लक्षण है। तुमको भी जंचती है कि बात तो ठीक है। और यही गुरुदेव ने बताया था कि तीन बजे उठना। अब गुरुदेव समझाते हैं कि तामस से छूटना है तो तामसी भोजन छोड़ो; तुम सिर्फ दूध पर ही रहने लगो। अब तुम दूध पर रहने लगो तो अब भोजन के ख्याल आते हैं। जाओ गुरु के पास। गुरु कहते हैंः तुम भ्रष्ट हो, पापी हो। भोजन के ख्याल! ये होने ही नहीं चाहिए। तुम अपात्र हो।
सारे संसार को परमात्मा तो पात्र की तरह बनाता है, लेकिन तुम्हारे महात्मा सब पात्रों को यह भ्रांति दे देते हैं कि तुम अपात्र हो। यहां पात्र ही पात्र हैं, क्योंकि सब पर परमात्मा के हस्ताक्षर हैं; अपात्र कोई हो कैसे सकता है! मैं तुम्हें यही स्वतंत्रता देना चाहता हूं कि तुम पात्र हो। और अगर कभी अपात्रता पैदा होती हो तो जरा गौर करनाः तुम जरूर किसी मूढ़ की बात मान कर चल रहे होओगे, जिससे अपात्रता पैदा होती है। तुम अस्वाभाविक हो रहे होओगे। तुम निसर्ग से चूक रहे होओगे, इसलिए अपात्रता पैदा होती है। अपात्रता तुम्हारी नियति नहीं है, तुम्हारा स्वभाव नहीं है। और अगर तुम नैसर्गिक हो जाओ तो तुम पात्र हो। एक बात।
दूसरा तुम पूछते हो कि "जो भी थोड़ा मैं भीग पाया, उससे जीवन में बहुत आनंद है।"
थोड़े भी भीग गए तो शुरुआत हो गई। बच न सकोगे। एक कदम मुझमें उतरे तो फिर लौट न सकोगे। एक कदम मेरे साथ चल लिए तो बात खतम हो गई; अब पीछे लौटना नहीं है। देर-अबेर कुछ भी हो जाए, आगे बढ़ना ही होगा। क्योंकि जहां आनंद मिलना शुरू हुआ--आनंद खींचता है चुंबक की तरह। फिर तुम आज नहीं कल सब दांव पर लगा दोगे।
और निरंजन, जल्दी ही दांव पर लगाने की तैयारी आ रही है। समय आ रहा है,
सब दांव पर लगाना होगा। थोड़े भीग गए, पर्याप्त है। ये थोड़े से जो छींटे पड़

गए, ये काफी हैं। ये तुम्हें पूरा रंग डालेंगे। ये छींटे ऐसे नहीं हैं कि सिर्फ छींटे हैं, एक-एक बूंद सागर को लिए है। एक-एक बूंद सागर है।
और तुम कहते होः "यह खटका भी रहता है कि पूर्ण जीवन-रूपांतरण का अवसर सामने है, और मैं चूकता चला जाता हूं। इसकी जिम्मेवारी पूरी की पूरी मेरी है।"
यह भ्रांति छोड़ो। यही मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि--इसकी जिम्मेवारी पूरी की पूरी मेरी है--यह भ्रांति छोड़ो। क्योंकि यह भी सूक्ष्म अहंकार है। यह तुम्हें कठिन होगा समझना। लेकिन समझना जरूरी है।
यह भी सूक्ष्म अहंकार है कि जिम्मेवारी मेरी है। यह "मैं" छोड़ो। "मैं" अनेक-अनेक ढंगों से निर्मित हो जाता है। अब वह एक नया रास्ता खोज रहा है। वह कह रहा है कि कोई क्या करे! वे तो इतना बरसा रहे हैं, मैं नहीं ले रहा, तो जिम्मेवारी मेरी है। यह बात बिल्कुल तर्कयुक्त लगेगी कि जिम्मेवारी मेरी है। मगर "मैं" इससे ही भर जाएगा। और वही अड़चन है।
"मैं" अड़चन है। "मैं" के कारण ही पूरा रूपांतरण नहीं हो रहा है। और "मैं" अब एक नई शक्ल ले रहा है। और ऐसी शक्ल ले रहा है कि बड़ी होशियारी की, कि तुम पहचान भी न पाओगे।
अब "मैं" कह रहा है कि अब क्या किया जा सकता है? मैं ही अपात्र! मैं ही पापी! मैं ही अज्ञानी! मैं ही बुरा-भला!
ख्याल रखनाः मैं इतना कुशल है कि अगर ठीक चीजें न मिलें तो विपरीत चीजों से भी अपने को भरता है। पहले कहता हैः मैं ज्ञानी। अगर यह सिद्ध हो जाए कि मैं ज्ञानी नहीं, तो भी छोड़ता नहीं पीछा; कहने लगता हैः मैं अज्ञानी। पहले कहता हैः मैं दुनिया का सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति। फिर समझ में आने लगे कि यह बात तो ठीक नहीं है, तो वह कहने लगता हैः मैं ना-कुछ, आपके चरणों की धूल! मगर "मैं" वहां भी कायम है।
"मैं" अपने को बचाता है। "मैं" के रास्ते सूक्ष्म हैं, बड़े सूक्ष्म हैं! और इस कुशलता से बचाता है कि तुमको शक भी न आएगा। अब इस पर तुम्हें शक भी नहीं आ सकता है कि इसकी जिम्मेवारी पूरी की पूरी मेरी है।
पूरी की पूरी! अभी तुम पूरे हो ही नहीं, तो पूरी की पूरी जिम्मेवारी तुम्हारी कैसे हो जाएगी? अभी तुम हो कहां कि जिम्मेवारी तुम्हारी हो जाए? जिम्मेवारी हो ही कैसे सकती है?
बुद्ध से किसी ने कहा कि मेरे पास बहुत धन-संपत्ति है, मैं लोगों की सेवा करना चाहता हूं। आप मुझे आज्ञा दें, मैं क्या करूं?
बुद्ध उसकी तरफ देखते रहे और बड़े उदास हो गए।
और उस आदमी ने कहाः आप एकदम उदास क्यों हो गए? आपका चेहरा एकदम उदास क्यों हो गया? आप फूल की तरह खिले रहते हैं, आप एकदम कुम्हला क्यों गए? बुद्ध ने कहाः इसलिए कि तू अभी है ही नहीं, सेवा कैसे करेगा! सेवा के पहले होना चाहिए।
गुरजिएफ कहता था अपने शिष्यों को कि तुम अभी हो ही नहीं। इसलिए पहली बात तो है कि तुम हो जाओ, फिर दूसरी बातें। लेकिन हमने यह मान कर पकड़ ली है बात कि हम हैं। यह मूल भ्रांति है।
तो निरंजन, यह फिकर छोड़ो कि इसकी जिम्मेवारी तुम्हारी है। तुम हो ही नहीं अभी। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम यह कहने लगो कि मैं नहीं हूं। नहीं तो तुम फिर पकड़ जाओगे। सिर्फ समझ लो।
एक शून्य है। इस शून्य को समझ लो, पहचान लो। और जैसे ही यह शून्य का भाव स्पष्ट हो जाएगा, फिर कोई रुकावट न रहेगी। शून्य पूर्ण से भर ही जाता है; अपने आप भर जाता है, कुछ करना नहीं पड़ता। यह "मैं" ही अड़चन बना है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि बहुत निष्ठावान लोग, बड़े उत्तरदायी लोग चूकते चले जाते हैं। निरंजन ऐसे ही निष्ठावान हैं। उनकी श्रद्धा मुझमें गहरी है। उनका लगाव गहरा है। चुपचाप छाया की तरह यहां वे मेरे काम में लगे रहते हैं। यह भी पहली दफा प्रश्न पूछा है। प्रश्न भी कभी नहीं पूछा है। लेकिन चुपचाप, कानोंकान किसी को खबर न हो। जो लोग पूना में मेरे बहुत निकट आए हैं, उनमें निरंजन एक हैं। लेकिन यह दायित्व का भाव बचा हुआ अहंकार है। इसे भी जाने दो। इसके जाते ही सब हो जाएगा। और सब होने की घड़ी करीब आ रही है।

आखिरी प्रश्नः मैं ईश्वर में भरोसा नहीं करता हूं। क्या आप ईश्वर के होने का कोई प्रमाण दे सकते हैं?

मैं प्रमाण हूं। और क्या प्रमाण होता है? मेरे प्रेम को देखो! मेरी शांति को देखो! मेरे आनंद को देखो! चखो थोड़ा। मैं जो कहूंगा, उससे प्रमाण होगा? कहे हुए शब्द तो शब्द ही होंगे। मेरे पास आओ। प्रमाण तो मिलेगा निकटता से। मेरे साथ बिगड़ो। मेरे साथ राजी होओ। कुछ चिंता न करो कि ईश्वर पर भरोसा नहीं है। हो भी कैसे भरोसा? कैसे भरोसा आए? जो तर्क दिए गए हैं, सब लचर और कमजोर हैं। क्योंकि ईश्वर के लिए कोई ठीक तर्क हो नहीं सकता। ईश्वर तर्कातीत है। जिन्होंने तर्क दिए, हानि की, लाभ नहीं किया। क्योंकि उनके तर्कों के कारण ईश्वर को असिद्ध करने का उपाय मिल गया। जिन्होंने तर्क दिए ईश्वर के लिए कि ये-ये कारण हैं ईश्वर के होने में, उन्होंने रास्ता खोल दिया नास्तिकों के लिए। क्योंकि नास्तिक उन तर्कों का खंडन कर सकते हैं। खंडन की वजह से फिर ऐसा लगता है कि नास्तिक जीत गए। और जो भी तर्क दिए गए हैं ईश्वर के लिए, सब खंडित किए जा सकते हैं। मैंने अब तक ऐसा एक तर्क नहीं पाया जो खंडित न किया जा सकता हो।
अगर नास्तिक और आस्तिक का तार्किक विवाद हो, तो नास्तिक ही जीतेगा, आस्तिक नहीं जीत सकता है। यह बात सच है। यह मैं आस्तिक होकर कह रहा हूं। आस्तिक कमजोर है। आस्तिक लचर है। उसकी दलीलें नपुंसक हैं। वह जो कहता है, ठीक नहीं है, मगर रास्ता बना देता है--नास्तिक का खंडन करने का रास्ता बना देता है।
आस्तिक को चुप हो जाना चाहिए--नास्तिक विदा हो जाएंगे। आस्तिक को तर्क देना ही नहीं चाहिए, क्योंकि ईश्वर के लिए तर्क हो नहीं सकता। आस्तिक को तर्क बनना चाहिए--तर्क देना नहीं चाहिए। उसे यह नहीं कहना चाहिए कि हर चीज का बनाने वाला होता है, तो इतनी बड़ी पृथ्वी, इतने चांद-सूरज, इतना बड़ा विराट ब्रह्मांड--तो कोई बनाने वाला होना चाहिए। नास्तिक तत्क्षण पूछता हैः फिर उस बनाने वाले का बनाने वाला कौन?
चारों खाने चित्त! अगर तुम यह कहो कि उस बनाने वाले का कोई बनाने वाला नहीं, जैसा कि आस्तिक कहते रहे हैं--तो यह बेईमानी की बात है। फिर अगर उस बनाने वाले को बनाने वाले की जरूरत नहीं, तो इस ब्रह्मांड को ही बनाने वाले की क्या जरूरत है? फिर तो तुम्हारा तर्क बेमानी हो गया। तर्क की बुनियाद यही थी कि हर चीज के लिए कोई बनाने वाला होना चाहिए।
तुम अगर यह कहो कि यह ब्रह्मांड इतना जटिल है, इसके पीछे कोई न कोई कारीगर होना चाहिए--ठीक। लेकिन तुम्हारा कारीगर तो इससे भी ज्यादा जटिल होगा न! उसके पीछे भी कोई कारीगर होना चाहिए। यह बात कहां अंत होगी? यह दलील फिजूल है। यह बचकानी है।
मैं ईश्वर के लिए कोई प्रमाण तर्क की तरह नहीं देना चाहता। नहीं दे सकता हूं। और मैं चाहूंगा कि कोई न दे। जिन्होंने दिए हैं, उन्होंने ईश्वर को नहीं जाना--तो ही दिए हैं। मेरी अपनी दृष्टि यही है कि जिन-जिन ने ईश्वर के लिए तर्क दिए हैं, वे तार्किक थे; अनुभवी संत नहीं। अनुभवी तो चुप रह जाएगा। अनुभवी कहेगाः ईश्वर के लिए क्या प्रमाण?
विवेकानंद ने रामकृष्ण से पूछाः ईश्वर है? मैं प्रमाण चाहता हूं। रामकृष्ण ने कहाः तू देखना चाहता है?
विवेकानंद ने बहुत लोगों से पूछी थी यह बात, लेकिन किसी ने यह नहीं कहा था कि तू देखना चाहता है? जिसके पास गए थे, उसने कुछ तर्क बताया था। और विवेकानंद बुद्धिशाली व्यक्ति थे; उन्होंने उसका तर्क खंडन किया था। लेकिन रामकृष्ण ने कोई तर्क ही न दिया तो खंडन का तो उपाय ही न छोड़ा। उलटा दूसरा प्रश्न पूछा, प्रश्न के उत्तर में प्रश्न पूछा कि तू ईश्वर को जानना चाहता है, यह बोल? अभी जानना है? इसी वक्त?
तो विवेकानंद थोड़े घबड़ाए कि यह मामला क्या है जानने का, कोई पास की कोठरी में बंद है! विवेकानंद पहली बार डरे किसी आदमी से। कहाः मैं सोच कर आऊंगा।

रामकृष्ण ने कहाः यह भी कोई प्रश्न है? सोच कर आओगे! पहले ही सोच लेना था। ईश्वर के संबंध में प्रश्न उठाते हो तो पहले ही सोच लेना था।
मैं तुम्हें कोई तर्क नहीं दूंगा। मैं भी तुमसे कहता हूंः जानना है? अभी जानना है? तैयार हो जाओ। हिम्मत करनी होगी। यह बड़ी बेबूझ यात्रा है।
ये कच्ची हिम्मत के लोग इसमें न जा सकेंगे। यह बड़ा दुर्धर्ष मार्ग है।
क्यों? क्योंकि अपने को बिना मिटाए कोई परमात्मा को नहीं जान सकता, इसलिए।
तुम कहते होः परमात्मा को जानना है।
मैं तुमसे कहता हूंः मिटना होगा, तो ही जान सकोगे।
रोशनी को जानना है? अंधेरा जाएगा, तो जान सकोगे।
परमात्मा को जानना है? अहंकार को जाना होगा, तो ही जान सकोगे। तुम चाहो कि अहंकार के रहते जान लूं, तो न जान सकोगे।
यह तो ऐसे ही हुआ कि आदमी कहे कि मैं आंख तो बंद रखूंगा और रोशनी जानना चाहता हूं; आंख मैं नहीं खोलूंगा, आंख तो बंद ही रखूंगा और रोशनी जानना चाहता हूं। और अगर हम उससे कहें कि आंख खोल कर ही जान सकते हो; वह कहेः मैं आंख भी क्यों खोलूं, मुझे रोशनी पर भरोसा भी नहीं है, पहले भरोसा आए, तब मैं आंख खोलूं। तो क्या करोगे इस आदमी के साथ? और ये आंखें तो बाहर की हैं, जबरदस्ती भी खोली जा सकती हैं। भीतर की आंखें जबरदस्ती नहीं खोली जा सकतीं।
इन पंक्तियों पर ध्यान करनाः
निकल के जन्नत से आए थे हम, वहां कोई हमनफस नहीं था
चले हैं दुनिया से तेरी यारब, यहां कोई हमनवा नहीं है
यह सिलसिला मौत-औ-जिंदगी का तो है फरेबे-निगार यकसर
न कोई आया यहां कहीं से, यहां से कोई गया नहीं है
तलाशे-दरमां में मैं भटकता कहां फिरूंगा मेरे मसीहा
तेरी नजर के सिवा मेरे दर्दे-दिल की कोई दवा नहीं है तुम्हीं कहो मैं तुम्हारे दर से कहां चला जाऊं उठ के आखिर सिवा तुम्हारे जहां में मेरा कोई भी तो आसरा नहीं है
जो तू है तो मैं नहीं हूं पैदा, जो मैं हूं तो तू नहीं है जाहिर यहां तो बस बात एक की है, यहां कोई दूसरा नहीं है
खुदा के बंदे खुदा को पाते हैं अपनी हस्ती को खुद मिटा के
खुदी की तकमील करके देखें जो कह रहे हैं खुदा नहीं है
खुदा के बंदे खुदा को पाते हैं अपनी हस्ती को खुद मिटा के
एक ही रास्ता है उसे पाने और जानने काः अपने को मिटा देना।
खुदा के बंदे खुदा को पाते हैं अपनी हस्ती को खुद मिटा के
खुदी की तकमील करके देखें जो कह रहे हैं खुदा नहीं है
तो कहते हैं ईश्वर नहीं है, वे एक छोटा सा काम करके देखेंः अपने को शून्य करके देखें; अपने को मिटा कर देखें। तत्क्षण, क्षण भी नहीं जाता, पल भी नहीं बीतताः इधर तुम मिटे, उधर परमात्मा हो जाता है।
जो तू है तो मैं नहीं हूं पैदा, जो मैं हूं तो तू नहीं है जाहिर
यहां तो बस बात एक की है, यहां कोई दूसरा नहीं है
तुम पूछते होः परमात्मा कहां है? और मैं कहता हूंः परमात्मा कहां नहीं है?
तुम पूछते होः परमात्मा का प्रमाण? मैं पूछता हूंः तुम्हारा प्रमाण? तुम हो, इसका प्रमाण है? क्या प्रमाण है? क्योंकि जो भी अपने भीतर गए, उन सभी ने पाया कि वहां कोई नहीं है; वहां सन्नाटा है; वहां "मैं" नहीं है। कभी जरा शांत बैठ कर अपने भीतर जाकर खोजो कि "मैं" कहां है? और तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे; टटोलोगे, टटोलोगे--इस द्वार, उस द्वार; इस किनारे, उस किनारे; अंधेरे में भटकोगे, टकराओगे--मगर कभी "मैं" न पाओगे; क्योंकि कभी किसी ने पाया ही नहीं।
तुम यह जान कर चकित होओगे कि परमात्मा को पाने वालों की तो लंबी कतार
है और छोटे-मोटे पाने वालों की नहीं, उनकी जिनकी बात की गरिमा होगी ही। वेदों से लेकर अब तक परमात्मा को पाने वाले गवाह तो बहुत हैं। लेकिन तुमने कभी ऐसा कोई गवाह सुना जिसने अहंकार पाया हो? जिसने यह सिद्ध कर दिया हो

कि मैं हूं? आज तक नहीं हो सका। जो भी सिद्ध करने गए--असिद्ध हो गए। जो भीतर गए, उन्होंने पायाः मैं नहीं हूं। और पाया कि परमात्मा है।
परमात्मा तुम्हारे भीतर है। "मैं" तुम्हारी भ्रांति है। परमात्मा की किताब को तुमने गलत ढंग से पढ़ा है; "मैं" की तरह पढ़ लिया है। और तुम भीतर जाते भी नहीं। वहां असली किताब है। वहां वेदों का वेद, कुरानों की कुरान है। वहां श्रीमद्भगवद्गीता है। वहां भगवान है, वहां तुम जाते ही नहीं; तुम बाहर दौड़ रहे हो--धन कमाओ, पद कमाओ, यह कमाओ, वह कमाओ! और यह सारी कमाई किसलिए, तुम्हें पता है? "मैं" को सिद्ध करने के लिए। बड़ा राज्य होगा तो बड़ा "मैं" सिद्ध हो जाएगा। धन का ढेर होगा तो बड़ा "मैं" सिद्ध हो जाएगा। राष्ट्रपति हो जाऊंगा, प्रधानमंत्री हो जाऊंगा--तो "मैं" सिद्ध हो जाएगा। यह "मैं" की दौड़। "मैं" को सिद्ध करने में लगे हो।
और "मैं" कभी सिद्ध होता नहीं, क्योंकि "मैं" है नहीं। जो है नहीं, वह सिद्ध हो नहीं सकता। तुम दो और दो को पांच बनाने में लगे हो; यह होता नहीं; यह असंभव है।
सिकंदर से पूछो। मरते वक्त कहा कि मुझे अरथी पर ले जाना तो मेरे दोनों हाथ लटके रहने देना बाहर। वजीरों ने पूछाः क्यों? तो उसने कहाः इसलिए ताकि लोग देख लें कि मैं खाली हाथ जा रहा हूं। दौड़ा-धूपा, आपा-धापी की; मगर हाथ खाली के खाली रहे। मैं शून्य की तरह जा रहा हूं।
क्या कह रहा है सिकंदर? सिकंदर यह कह रहा हैः अहंकार पाया नहीं; शून्य
ही था और शून्य ही जा रहा हूं। काश, इस शून्य को स्वीकार कर लिया होता, राजी हो गया होता, अहंकार की दौड़ में समय खराब न किया होता--तो परमात्मा उतर आता!
जो तू है तो मैं नहीं हूं पैदा, जो मैं हूं तो तू नहीं है जाहिर
यहां तो बस बात एक की है, यहां कोई दूसरा नहीं है
खुदा के बंदे खुदा को पाते हैं अपनी हस्ती को खुद मिटा के
खुदी की तकमील करके देखें जो कह रहे हैं खुदा नहीं है
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
तीसरा प्रवचन

मैं तो गिरधर के घर जाऊं

मैं तो गिरधर के घर जाऊं।
गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।
रैन पड़ै तब ही उठि जाऊं, भोर भये उठि आऊं।
रैन-दिना बाके संग खेलूं, ज्यूं-त्यूं वाहि रिझाऊं।
जो पहिरावै सोई पहरूं, जो दे सोई खाऊं।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उन बिन पल न रहाऊं।
जहां बैठावै तित ही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊं।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊं।

मीरा मगन भई हरि के गुण गाए।
सांप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाए।
न्हाय-धोए जब देखन लागी, सालिगराम गई पाए।
जहर का प्याला राणा भेज्यो, अमृत दीन्ह बनाए।
न्हाय-धोए जब पीवन लागी, हो अमर अंचाए।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाए।
सांझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाए।
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन घटाए।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पे बलि जाए।

मनुष्य की खोज क्या है? मनुष्य की खोज हैः अपने घर की खोज। यहां परदेश है। यहां सब बिराना है। अपना यहां कुछ भी नहीं। और यहां से जाना है। और जो थोड़ा-बहुत अपना मान लोगे, वह भी मौत छीन लेती है। यहां घर तो कोई कभी बना नहीं पाया। यहां तो घर उजड़ने को ही बनते हैं। यहां तो घर बन भी नहीं पाते कि उजड़ जाते हैं। यहां हम ही नहीं टिक पाते, तो हमारे बनाए घर कैसे टिकेंगे? यहां की गई मेहनत तो अकारथ जाती है।
आदमी की खोज उस घर की खोज है, जो मिले तो सदा के लिए मिल जाए। आदमी की खोज उस घर की खोज है, जो सच में घर हो, सराय न हो। यहां तो सब सरायें हैं, धर्मशालाएं हैं--बस रैनबसेरा है। सुबह हुई, चल पड़ना होगा। बहुत मोह मत लगा लेना। सराय से बहुत ममता मत बिठा लेना। यह छूट ही जाना है। यह छूटा ही हुआ है। तुमसे पहले बहुत लोग यहां ठहरे और गए; तुम भी उसी कतार में हो।
इसलिए चाहे यहां कितना ही धन हो, कितना ही पद हो, प्रतिष्ठा हो; फिर भी तृप्ति नहीं मिलती। तृप्ति यहां मिलती ही नहीं। तृप्ति का संसार से कोई संबंध ही नहीं है।
अक्सर ऐसा होता है कि गरीब को तो थोड़ी आशा भी रहती है, अमीर की आशा भी टूट जाती है। गरीब को तो लगता है कि एक मकान होगा अपना, तो शांति होगी। थोड़ा धन-संपत्ति होगी; सुविधा होगी; फिर सुख और चैन से रहेंगे। उसे यह पता ही नहीं है कि सुख-चैन यहां हो नहीं सकता। धर्मशाला में कैसा सुख-चैन? कब उठा लिए जाओगे! आधी रात में पुकार लिए जाओगे! कब मौत का दूत द्वार पर खड़ा हो जाएगा और दस्तक देने लगेगा--कुछ भी तो नहीं कहा जा सकता! यहां चैन कैसे हो सकता है? बेचैनी यहां स्वाभाविक है।
फिर भी गरीब को थोड़ी आशा होती है। लगता हैः मकान ठीक नहीं, कैसे चैन करूं? पास धन नहीं, कैसे सुखी होऊं? लेकिन अमीर तो बिल्कुल निराश हो जाता है। धन भी है, पद भी, प्रतिष्ठा भी, महल भी, साम्राज्य भी, सब है--और उतना का उतना ही परदेश। परदेश रत्ती भर कम नहीं हुआ। और अब तो आशा भी करनी व्यर्थ है। जिससे आशा हो सकती थी वह तो है हाथ में।
तो धनी से ज्यादा निराश कोई भी नहीं होता।
जिनके पास है, वे भी सुखी कहां हैं! जिनके पास नहीं है, वे तो दुखी हैं--यह समझ में आता है; लेकिन जिनके पास है, वे भी दुखी हैं--शायद और भी घने दुख में हैं।

आदमी सुख की तलाश करता है, लेकिन सुख शाश्वत में ही हो सकता है। इस सूत्र पर ध्यान करना। सुख शाश्वत का लक्षण है। क्षणभंगुर में सुख नहीं हो सकता। यह जो पानी के बबूले जैसा जीवन है, इसमें तुम कितने ही भ्रम पैदा करो और कितने ही सपने देखो, सुख नहीं हो सकता।
और तुम कैसे अपने को धोखा दोगे! तुम रोज देखते हो कोई चला, किसी की अरथी उठी। तुम रोज देखते हो किसी की चिता जली। तुम रोज देखते हो लोगों को गिरते--जो क्षण भर पहले तक ठीक थे, तुम जैसे थे, चलते थे, दौड़ते थे, वासनाओं से भरे थे, बड़ी महत्वाकांक्षाएं थीं--और अब धूल भरी रह गई मुंह में। तुम कैसे झुठलाओगे इस सत्य को? यह इतना चारों तरफ खुदा हुआ है। इस सत्य की सब तरफ प्रामाणिकता है।
रोज कोई मरता है। फूल वृक्ष से गिरता है, कि फल वृक्ष से गिरता है, कि आदमी पृथ्वी पर गिर जाता है। यहां हम भी ज्यादा देर नहीं हो सकते। लाख अपने मन को समझाएं, लाख अपने मन को बुझाएं, और कहें कि और मरते हैं, मैं थोड़े ही मरता हूं, सदा कोई और मरता है, मैं थोड़े ही मरता हूं, फिर मैं अपवाद हूं, कौन जाने मैं कभी न मरूं!
मगर कैसे तुम धोखा दोगे? इतने प्रमाणों के विपरीत तुम कैसे अपने को धोखा दोगे? सारे मरघट, सारे कब्रिस्तान प्रमाण हैं इस बात के कि यह जगह घर नहीं है। जैसे ही यह ख्याल बहुत स्पष्ट हो जाता है, कांटे की तरह चुभने लगता है प्राणों में कि यह हमारा घर नहीं--तब एक खोज शुरू होती है--असली घर की खोज।
मीरा कहती हैः मैं तो गिरधर के घर जाऊं।
वह असली घर परमात्मा का ही घर हो सकता है। परमात्मा यानी जो सदा है। आदमी यानी जो कभी था और कभी नहीं हो जाएगा। परमात्मा यानी जो सदा था, सदा है, सदा होगा। सातत्य! सनातनता! शाश्वतता! अनंतता जिसका स्वभाव है, वहीं विश्राम है। उसकी गोद में ही विश्राम है। फिर तुम उसे राम कहो, रहीम कहो-- यह तुम्हारी मौज की बात। मीरा का नाम उसके लिए गिरधर है, गोपाल है। यह नाम का ही भेद है। नाम में बहुत मत उलझ जाना। मतलब की बात समझ लेना। आम का रस चूस लेना, गुठलियां गिनने मत बैठ जाना। तुम किस तरह उसे पुकारते हो, यह तुम्हारी मौज--मगर पुकारो! पृथ्वी से जरा आंखें ऊपर उठाओ--आकाश की तरफ। प्यारे को खोजो।
और ऐसा नहीं है कि प्यारा बहुत दूर है। और ऐसा नहीं है कि तुम्हें बड़ी- बड़ी पहाड़ियां चढ़नी हैं, तब तुम्हें प्यारा मिलेगा। मजा तो यह है कि प्यारा बहुत करीब है। संसार बहुत दूर है, इसलिए किसी को नहीं मिल पाता। चलते हैं लोग, चलते हैं लोग--लगता है मिला, मिला, अब मिला, तब मिला--मिलता कभी नहीं। संसार कभी किसी को मिला? बस ऐसा ही लगता है जैसे दूर जमीन को छूता हुआ आकाश, क्षितिज--यह रहा! और थोड़े दौड़ लें, मिल जाएगा! लेकिन तुम जितना दौड़ते हो, क्षितिज भी उतना ही दौड़ जाता है। तुम्हारे और क्षितिज के बीच की दूरी सदा बराबर रहती है, वही की वही; एक ही अनुपात रहता है, उसमें फर्क नहीं पड़ता।
संसार कब किसको मिला है? संसार मिलता ही नहीं और मजा यह है कि संसार बड़ा पास मालूम होता है। और परमात्मा पास मालूम नहीं होता और मिल सकता है, क्योंकि पास है--इतना पास है, पास से भी पास है! तुम्हारे अंतरतम में बैठा है; शायद इसीलिए दिखाई भी नहीं पड़ता।
मछली को सागर कैसे दिखाई पड़े? उसी में पैदा होती है, उसी में लीन हो जाती है। आदमी को परमात्मा कैसे दिखाई पड़े? उसी में हम पैदा होते हैं, उसी में जीते, उसी में श्वास लेते, उसी में एक दिन लीन हो जाते हैं! हम उसकी ही तरंग हैं। हम उसकी ही वीणा पर उठे स्वर हैं। हम उसके ही फूल से उड़ी सुवास हैं। हम उसके ही दीये की किरण हैं। हमारा उससे तादात्म्य है। इसलिए भेद न होने के कारण देखना बहुत मुश्किल है। भेद चाहिए दृश्य और द्रष्टा में, तभी देखना हो पाता है। कोई चीज तुम्हारी आंख के बहुत करीब ले आई जाए, तो फिर तुम न देख सकोगे।
और एक तो बात तुम जानते हो कि अपनी आंख को तुम कभी नहीं देख पाते। आंख, जिससे तुम सब देखते हो, अपने प्रति बिल्कुल ही अपरिचित है। अगर आंख को देखना हो तो दर्पण में देखना पड़ता है। दर्पण में आंख दूर हो जाती है।

प्रतिबिंब बनता है, प्रतिबिंब दूर हो जाता है। मगर आंख थोड़े ही देखते हो दर्पण में तुम; आंख की छाया देखते हो। आंख को तो अपनी किसी ने कभी देखा ही नहीं। क्योंकि देखना आंख की क्षमता है--इतनी करीब है कि उसको अलग कैसे रखोगे? और अलग रख दोगे तो फिर देखोगे किससे?
ऐसा ही परमात्मा हैः तुम्हारे चैतन्य की क्षमता है। घर बहुत दूर नहीं है। शायद तुम घर की तरफ पीठ किए खड़े हो।
मीरा के इन वचनों को सुनना। ये वचन तुम्हारे हृदय के भी वचन किसी दिन बनें तो तुम्हारा सौभाग्य होगा। इन्हें तुम गीत, काव्य और भजन ही मत समझना। यह प्राणों की प्यास है। यह प्राणों की पुकार है। मीरा ने जो कहा है, यह उसके हृदय का भाव है। यह कोई दर्शनशास्त्र नहीं है। मीरा किसी सिद्धांत को सिद्ध करने नहीं चली है और न दुनिया को कोई धर्म देने चली है। मीरा तो अपनी प्यास की अभिव्यक्ति कर रही है।
इसलिए जिन लोगों को सच में ही प्यासे होना है, वे मीरा का हाथ पकड़ लें;
वे उसकी भाव-भंगिमा में डूबें। वे उसके भाव को अपना भाव बना लें। गुनगुनाओ मीरा को। डुबकी लो उसमें।
मैं तो गिरधर के घर जाऊं।
मीरा कहती हैः मुझे तो अब एक ही घर याद आता है--परमात्मा का--वहीं मुझे जाना है। यहां से मुझे हटा लो। मुझे वापस बुला लो। यह निष्कासन बहुत हो गया। यह दंड काफी है। अब मुझे और दूर न रखो।
गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।
प्रेमी तो तुम बहुत पाओगे; गली-कूचे मिलते हैं। प्रेमी तो बहुत पाओगे। लेकिन प्रेम टिकता कितनी देर? बड़े से बड़े प्रेमियों का प्रेम भी क्षणभंगुर है; बन भी नहीं पाता और बिखर जाता है। जो प्रेम बनता ही नहीं और बिखर जाता है--सपने जैसा है, पानी पर खिंची एक लकीर जैसा है--इस प्रेम में और कब तक जीवन को गंवाओगे? जन्मों-जन्मों से इसी के पीछे भाग रहे हो, प्रेमी को खोज रहे हो। मगर असली प्रेमी को नहीं खोजते। असली प्रेमी से क्या अर्थ है मीरा का?
गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम...
क्यों कहती है कि गिरधर मेरे सच्चे प्यारे हैं? सच्चे यानी एक बार मिल
गए तो मिल गए; फिर बिछुड़न नहीं होती; फिर विरह का कोई उपाय नहीं। यह जो विवाह है, एक बार हो गया तो इसमें फिर तलाक नहीं।
इस पृथ्वी पर तो जितने विवाह होते हैं, सब में तलाक मौजूद ही रहता है;
न भी दो तलाक, तो भी मौजूद रहता है; न भी दो कानूनी ढंग से, तो भी हो जाता है। बहुत कठिन है इस जगत में प्रेम को थिर बनाना। क्योंकि जिस मन से हम प्रेम करते हैं, वही थिर नहीं है। दोनों व्यक्तियों के मन थिर नहीं हैं। दोनों व्यक्तियों के मन तूफान में हैं और दोनों थिर होने की सोच रहे हैं प्रेम में! ध्यान में जो थिर नहीं हुए, वे प्रेम में कैसे थिर होंगे? एक थिर नहीं हो सका तो दो मिल कर कैसे थिर होंगे? एक ही काफी चंचल होता है, दो मिल कर चंचलता अनंत गुनी हो जाती है। टक्कर और टकराव!
प्रेमियों की सारी कथा संघर्ष की कथा है। लड़ाई-झगड़ा। बने रहें साथ तो
भी साथ कभी का टूट चुकता है। बने रहते हैं और किन्हीं कारणों से--आर्थिक सुविधा है, परिवार है, बच्चे हैं, प्रतिष्ठा है, नाम है। जाएं तो जाएं भी कहां? उस सांचे प्रीतम की तो कोई खबर भी नहीं मिलती। उसका तो कुछ पता भी नहीं है। तो जो हाथ में है उसी को पकड़े रहो। कहते हैं समझदार लोग कि हाथ की आधी रोटी भी ठीक--सपने की पूरी रोटी से। तो वह पता नहीं सांचा प्रीतम, माना कि पूरी रोटी है और तृप्त कर देगा; लेकिन कहां है? उसका तो कुछ पता नहीं। तो पकड़े रहो जो भी आधा, बासा, जो भी टुकड़ा मिला है। अज्ञात के भय से, अपरिचित के भय से, जो भी हाथ में है--उसे पकड़े रहो, जकड़े रहो, छोड़ मत दो! इसलिए प्रेमियों में इतनी ईर्ष्या पैदा हो जाती है। क्यों इतनी ईर्ष्या प्रेमियों में पैदा हो जाती है? क्यों पत्नी पीछे पड़ी रहती है पति के कि कहीं किसी और से तो कोई लगाव नहीं बन जा रहा है? पति क्यों इतना घबड़ाया रहता है कि मेरी पत्नी कहीं किसी और के साथ तो संबंध नहीं बना लेगी? इतना भय क्या है? यह भय इसीलिए है कि यहां भरोसा हो ही नहीं सकता। पूरी संभावना यही है कि ऐसा होगा ही, पत्नी को भी पता है, पति को भी पता है।

इस जगत में कोई चीज थिर तो होती नहीं, तो यह संबंध भी कैसे थिर होगा? इसकी हमें अंतसचेतना हैः यहां कुछ भी शाश्वत नहीं है, यह संबंध भी कैसे शाश्वत होगा? तो भयभीत हम पहले से ही हैं। पहले से ही सुरक्षा कर रहे हैं कि बांध लें ईर्ष्या के जाल में।
पति-पत्नी एक-दूसरे पर पहरा देते रहते हैं। और जरा सा मौका उन्हें लगा
कि दूसरा स्वतंत्र होने की कोशिश कर रहा है, कि अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं--उस स्वतंत्रता को नष्ट करने में। यह कैसा प्रेम हुआ, जो स्वतंत्रता की गर्दन दबा डालता हो, जो स्वतंत्रता को फांसी लगा देता हो?
सच्चा प्रेम तो स्वतंत्रता लाता है। सच्चे प्रेम में तो ईर्ष्या की कोई झलक ही नहीं होती। सच्चे प्रेम में तो ईर्ष्या की छाया भी नहीं होती। सच्चे प्रेम में तो श्रद्धा अनंत होती है।
मगर सच्चा प्रेम सच्चे प्रीतम से ही हो सकता है। इन छायाओं से नहीं बन सकेगा। यहां कैसे भरोसा करो किसी पर! जिस पति पर तुमने भरोसा किया, जिस पत्नी पर तुमने भरोसा किया, उसकी सांस बंद हो जाए कल, जीवन खो जाए--क्या करोगे? और मन ऐसा चंचल है--आज तुमसे लगाव है, कल किसी और से हो जाए! मन इतना चंचल है! मन इतना क्षुद्र है! मन व्यर्थ में इतना उत्सुक हैः कल कोई और धनी मिल जाए; कोई और सुंदर देह का व्यक्ति मिल जाए; कल कोई और रूपवान मिल जाए-- तो बात खत्म हो गई।
परमात्मा से और रूपवान तो पाया नहीं जा सकता; और परमात्मा से और धनी
भी नहीं पाया जा सकता। परमात्मा से और ऊपर तो कोई है नहीं। इसलिए परमात्मा के साथ जो प्रेम बन जाता है, उसमें कोई प्रतिस्पर्धा, कोई ईर्ष्या नहीं जन्मती।
और फिर परमात्मा के साथ यह भी भय नहीं है कि वह तुम्हें छोड़ दे। तुम्हें पकड़े ही हुए है। तुम चाहे उसे पकड़ो या न पकड़ो--उसका हाथ तुम्हारे हाथ में है ही। तुम जब सोचते हो तुमने परमात्मा का ध्यान भी नहीं किया, विचार भी नहीं किया--तब भी वही तुम्हें सम्हाले हुए है। अन्यथा कौन तुम्हारे भीतर श्वास लेगा? कौन तुम्हारे खून को दौड़ाएगा रगों में? कौन तुम्हारे हृदय में धड़केगा? तुम चाहे उसे इनकार करो; परमात्मा ने तुम्हें इनकार कभी नहीं किया है। इसलिए जिस दिन तुम भी स्वीकार कर लोगे, वह तो स्वीकार किए ही है--जिस दिन ये दोनों स्वीकृतियां मिल जाएंगी, उसी दिन महामिलन हो जाता है।
गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।
और उसका रूप अनिर्वचनीय है। इस जगत में जो थोड़ा-बहुत रूप दिखाई पड़ता है, उसी का प्रतिबिंब है। इस जगत में जो थोड़ा-बहुत संगीत दिखाई पड़ता है, यह उसी के संगीत की प्रतिध्वनि है। किसी स्त्री के चेहरे पर कभी तुम्हें अगर रूप दिखाई पड़ा है, तो सावधानी बरतना, जरा गौर से देखनाः वह रूप उसकी ही झलक है। किसी फूल में अगर सौंदर्य मालूम पड़ा है, जरा ध्यान से बैठ जाना फूल के पास, जरा गहरे में खोजना--और तुम पाओगेः वह सौंदर्य उसी का है। चांद-तारों में, पर्वत-पहाड़ों में, सागरों-नदियों में, चारों तरफ जो हजार-हजार रूपों में प्रकट हो रहा है, वह उसी का रूप है। वह अरूप का ही रूप है। ये सब चेहरे उसी के हैं। ये सब रंग-ढंग उसी के हैं। ये सब अदाएं उसी की हैं।
एक बार सांचे प्रीतम से संबंध जुड़ने लगे और उसका रूप दिखाई पड़ने लगे
तो फिर सभी रूप उसी में समाहित हो जाते हैं। जैसे सभी नदियां सागर में गिर जाती हैं, ऐसे सभी रूप उसी एक रूप में समा जाते हैं।
गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।
मैं तो गिरधर के घर जाऊं।
इस जगत की पीड़ा यही है कि प्रेम की हमारे भीतर आकांक्षा तो है, और जगत में उसकी तृप्ति का कोई उपाय नहीं। इसलिए जितने प्रेमी इस जगत में कष्ट पाते हैं, दूसरे लोग नहीं पाते। दूसरे तो कठोर हैं। दूसरों ने तो पत्थर कर लिया है दिल। वे प्रेम की झंझट में ही नहीं पड़ते हैं।
इसे समझना। प्रेम उपद्रव है। क्योंकि प्रेम की प्यास है, और यहां कोई
भी व्यवस्था नहीं है कि उसकी तृप्ति हो सके। परमात्मा ने वह आयोजन रखा है। प्रेम की प्यास दी है और प्रेम का कोई उपाय यहां तृप्त करने का दिया नहीं,

ताकि तुम यहां भटक न जाओ; ताकि तुम घर लौट ही आओ; ताकि तुम्हें घर लौटना ही पड़े। प्यास तुम्हारे रोएं-रोएं में भर दी है।
इसलिए ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो प्रेम पाकर आनंदित न होता हो। ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो जाने-अनजाने प्रेम न पाना चाहता हो। छोटे से बच्चे से लेकर, दुधमुंहे बच्चे से लेकर मृत्यु-शय्या पर पड़े बूढ़े आदमी तक--सतत हम प्रेम के लिए टटोलते रहते हैं, खोजते रहते हैंः कहां से मिल जाए, कैसे मिल जाए। और यहां कभी मिलता नहीं। यह परमात्मा की बड़ी अनुकंपा है। प्रेम की प्यास दी है और प्रेम को तृप्त करने का कोई उपाय नहीं दिया है।
इसलिए एक न एक दिन टकरा-टकरा कर, भटक-भटक कर, द्वार-दीवालों को खटका- खटका कर यह बात समझ में आ ही जाती है कि अगर प्रेम को तृप्त करना है तो तृप्ति का उपाय परमात्मा में है, और कहीं नहीं। जिस दिन यह बोध होता है, उसी दिन व्यक्ति धार्मिक होता है। यहां तो प्रेम के नाम पर ईर्ष्या है, मोह है, मत्सर है। यहां तो प्रेम के नाम पर एक-दूसरे की हत्या है। यहां तो प्रेम के नाम पर गुलामी चलती है।
जैसे हवा में अपने को खोल दिया है इन फूलों ने
आकाश और किरणों और झोंकों को सौंप दिया है अपना रूप
और उन्होंने जैसे अपने में भर कर भी उन्हें छुआ नहीं है
ऐसा नहीं हो सकता क्या तुमसे मेरे प्रति?
नहीं हो सकता शायद, और इसी का रोना है
या ऐसा भी किसी दिन होना है?
तुम्हारे वातावरण में डाल दी है कितनी बार मैंने अपनी आत्मा तुमने उसे या तो अपने अंक में ही नहीं लिया
या फिर इतना अधिक भींच लिया है, जितना तुम्हें न पा सकने पर
मैंने जीवन को छाती तक खींच लिया है
क्यों नहीं रह सकते हम परस्पर फूल और आकाश की तरह?
यह नहीं हो सकता शायद, और इसी का रोना है
या ऐसा भी किसी दिन होना है?
देखा तुमने फूल और आकाश को? आकाश फूल पर कोई बंधन नहीं डालता। फूल आकाश से कुछ अपेक्षाएं नहीं रखता। आकाश फूल को अवसर देता है खिल जाने का। फूल अपना सब लुटा देता है--अपनी सारी निधि; जब खिल जाता है तो सारी सुवास आकाश को लुटा देता है। लेन-देन तो खूब होता है, लेकिन शर्तबंदी बिल्कुल नहीं है। न तो फूल कहता है कि आकाश, तुम मेरे हुए; न आकाश कहता है कि फूल, तुम मेरे हुए। मेरे-तेरे की बात ही नहीं उठती। मैं-तू का भाव ही नहीं उठता। इन पंक्तियों के लेखक ने आदमी के मन की गहरी बात कही है।
जैसे हवा में अपने को खोल दिया है इन फूलों ने
आकाश और किरणों और झोंकों को सौंप दिया है अपना रूप
और उन्होंने जैसे अपने में भर कर भी उन्हें छुआ नहीं है
ऐसा नहीं हो सकता क्या तुमसे मेरे प्रति?
नहीं हो सकता शायद, और इसी का रोना है
या ऐसा भी किसी दिन होना है?
प्रेमियों का रोना क्या है? व्यथा क्या है? पीड़ा क्या है? विडंबना क्या है?
एक ही विडंबना है कि जिससे हम प्रेम करते हैं, वही जंजीरें बन जाता है। जिससे हम प्रेम करते हैं, कर भी नहीं पाते कि वही कारागृह बन जाता है। जिसे हम देने चले थे, हम देने का निवेदन भी नहीं करते कि वह मालकियत की घोषणा कर देता है। जिसे हमने पहले दिन अपने सहज आनंद से दिया था, वह दूसरे दिन अपेक्षा करता है--कानूनी अपेक्षा; मिलना ही चाहिए।
आकाश को आज फूल ने अपना रूप दिया है; कल सुबह आकाश आकर फूल के द्वार पर कहेगा नहीं--अब क्या हुआ तुम्हारा रूप? अब मुझे दो। कल दिया था, आज भी दो, और सदा देना। यह गठबंधन हो गया। नहीं दोगे तो उपद्रव है। न तो फूल ही कल आकर आकाश से कहता है कि कल मुझे खिलाया था; कल मुझे जगह दी थी; मुझे सम्मान से स्वीकारा था, सिंहासन दिया था--आज मैं मिट्टी में गिर रहा हूं, अब मुझे सम्हालो! आज मेरी पंखुड़ियां बिखरी जाती हैं। आज मैं मृत्यु की गोद में जा रहा हूं, मुझे बचाओ! अगर नहीं बचाते तो यह कैसा तुम्हारा प्रेम?

नहीं कोई शर्त है। नहीं कोई आग्रह है। न तो आकाश फूल को छूता, न फूल आकाश को छूता, और लेन-देन पूरा हो जाता है। फूल अपना सब निवेदन कर देता है आकाश को। आकाश अपनी सारी स्वतंत्रता दे देता है फूल को। दोनों एक-दूसरे की मुक्ति में सहयोगी हैं।
यही तो प्रेमी का रोना है। क्योंकि प्रेम की आकांक्षा, मूलतः, बहुत गहरे में स्वतंत्रता की आकांक्षा है। प्रेम बीज है मोक्ष का। लेकिन जैसे ही तुमने किसी को प्रेम किया, स्वतंत्रता गई; परतंत्र हुए। और परतंत्र हुए कि प्रेम मरा, क्योंकि प्रेम परतंत्रता में जी नहीं सकता। प्रेम को परतंत्रता में जिलाने की कोशिश ऐसे ही है जैसे आकाश को कोई डब्बों में बंद करना चाहे; सूरज की किरणों को कोई संदूकों में बंद करना चाहे, फूलों की सुवास को कोई मुट्ठियों में भींच लेना चाहे। यह नहीं हो सकता। यह अस्वाभाविक है। मगर यही प्रेमी करते हैं। और प्रेम के नाम पर फिर जंजीरें रह जाती हैं। बोझिल जंजीरें! मुंह में एक तिक्त और कड़वा स्वाद रह जाता है। मगर इस जगत में यही हो सकता है। तुम जो मांग कर रहे हो कि न फूल आकाश को छुए, न आकाश फूल को छुए--यह तो सिर्फ परमात्मा के ही प्रेम में हो सकता है। इसलिए उसको मीरा ने सांचा प्रीतम कहा है। उसके प्रेम में कोई बंधन नहीं है। उसके प्रेम में परिपूर्ण स्वतंत्रता है। उसके प्रेम में तुम पर कोई सीमा नहीं लगती; तुम्हें कोई मर्यादा नहीं बांधनी होती। उसका प्रेम तुम्हें स्वीकार करता है--तुम जैसे हो वैसा ही। उसका प्रेम यह भी नहीं कहता कि तुम ऐसे होओगे तो मैं प्रेम करूंगा; तुम ऐसे नहीं होओगे तो मेरा प्रेम अवरुद्ध हो जाएगा।
इस जगत में तो सभी प्रेम सशर्त हैं। तुम जब भी किसी को प्रेम करते हो, तुम कहते होः ऐसा करो तो ही मेरा प्रेम मिलेगा; ऐसा नहीं किया तो मैं अपने प्रेम को रोक लूंगा। यह तो प्रेम न हुआ; यह तो सौदा हुआ; यह तो व्यवसाय हुआ। प्रेम तो अबाध बहना चाहिए। उसके पीछे कोई और हेतु और कारण नहीं होना चाहिए।... मेरी मानोगे तो प्रेम दूंगा और मेरी नहीं मानोगे तो प्रेम छीन लूंगा--तो यह प्रेम नहीं था; यह तो केवल रिश्वत थी। यह तो केवल फुसलावा था। यह तो तुम्हें राजी करने के लिए... ऐसा ही था जैसे कि कोई कांटे में आटा लगा कर जल के किनारे बैठ जाता है--मछली को पकड़ने को। कोई मछली को आटा खिलाने के लिए नहीं बैठा है; आटे में कांटा छिपाया हुआ है। ऐसे ही तुम्हारे प्रेम में कांटा छिपा हुआ है।
इसलिए मीरा कहती हैः यह सांचा प्रेम नहीं है। यह सच्चा प्रेम नहीं है। इसमें भीतर तो कांटा है--जहर से भरा हुआ।
गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम...
परमात्मा आकाश जैसा विराट है। विराट से दोस्ती करोगे तो तुम भी विराट
हो जाओगे; क्षुद्र से दोस्ती करोगे तो क्षुद्र हो जाओगे। दोस्ती सोच-समझ कर करना।
और अक्सर हम बड़े नासमझ हैं, हम बड़े क्षुद्र से दोस्ती कर लेते हैं। किसी ने धन से दोस्ती कर ली है; बस वह नोट ही गिनता रहता है। वह नोट को ही देखता रहता है। उसे सारे जगत का सौंदर्य नोट में समाया हुआ मालूम पड़ता है। किसी ने पद से दोस्ती कर ली है; वह दिन-रात एक ही चिंता में रहता हैः कैसे और कुर्सी बड़ी हो जाए; थोड़ी और ऊंची हो जाए, थोड़ी और ऊंची हो जाए! सारी जिंदगी दांव पर लगा कर बस कुर्सी बड़ी कर लेता है। और तब कुर्सी सहित गिर जाता है कब्र में!
ये दोस्तियां तुमने बड़ी क्षुद्र से कर ली हैं। दोस्ती ही करनी है तो कुछ विराट से करो; चरम से करो; परम से करो। वही अर्थ हैः
गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।
रैन पड़ै तब ही उठि जाऊं, भोर भये उठि आऊं।
रैन-दिना बाके संग खेलूं, ज्यूं-त्यूं वाहि रिझाऊं।
मीरा कहती है कि दिन हो कि रात, बस एक ही समाया है हृदय में; सुबह हो कि सांझ, बस एक ही समाया है हृदय में। सांझ भी उसकी पूजा को उठ आती हूं। रात पड़ते ही उसकी याद से भर जाती हूं। उसके ही सपने आंखों में तैरते हैं। हृदय में उसकी ही रसधार बहती है। और सुबह उठते भी उसी की प्रभाती, उसी का नाम-स्मरण, रोआं-रोआं उसी की धुन से भरा है।

रैन पड़ै तब ही उठि जाऊं, भोर भये उठि आऊं।
रैन-दिना बाके संग खेलूं...
सुबह हो कि सांझ, दिन हो कि रात, एक खेल चल रहा है उस प्यारे के संग। जिन्होंने इस रस को कभी नहीं जाना, वे समझेंगे, पागलपन है। किसकी बातें हो रही हैं? यह मीरा किसके रस की बातें कर रही है? जिसने नहीं जाना है इस प्रेम को, उसके लिए ये बातें बिल्कुल ही बेबूझ मालूम पड़ेंगी; बेबूझ ही नहीं, विक्षिप्त मालूम पड़ेंगी। लेकिन जिसने जाना है, उसके लिए सारा जगत फीका हो जाता है।
निर्णय मत लेना बिना जाने। सुन कर ही निर्णय मत ले लेना। क्योंकि तुम
भी अगर मीरा को पाओगे एकांत में बैठे हुए गिरधर-गोपाल से बातें करते, तो क्या सोचोगे?
तुम सोचोगेः दिमाग इस स्त्री का खराब हुआ। यह किससे बातें कर रही है? कौन है यहां? कोई तो दिखाई नहीं पड़ता। यह सुबह से सांझ तक किसकी मस्ती में मस्त रहती है?
अदृश्य की मस्ती भी होती है और अदृश्य से भी संबंध बनते हैं। यह सच है
कि अदृश्य से जो संबंध बनते हैं, वे दूसरों के सामने प्रमाणित नहीं किए जा सकते। मगर प्रमाणित करने की जरूरत किसे है! मीरा मस्त है। मीरा आनंदित है। और तुम दुखी हो।
मुझसे पूछते हो तो मैं तुम्हें एक कसौटी देता हूं। आनंद को तुम सत्य
की कसौटी मानना; और कोई कसौटी मत मानना। जो आदमी दुखी हो, समझना कि असत्य में जी रहा है। और जो आदमी आनंद में मस्त हो, मग्न हो, समझना कि सत्य में जी रहा है। आनंद कसौटी है।
जैसे सर्राफ के घर जाते हो न, तो सोने को कसने का पत्थर होता है; अपने पत्थर पर उठ कर सोने को घिस लेता है। जैसे ही स्वर्ण-रेखा खिंच जाती है उसकी कसौटी पर, समझ जाता है कि असली है या नकली; या कितना असली, कितना नकली। आनंद कसौटी है। तुम अपने हर अनुभव को आनंद पर कस लेना। तुम बैठे अपनी पत्नी से बात कर रहे हो, कोई तुम्हें पागल नहीं कहेगा--क्योंकि पत्नी दिखाई पड़ती है; चित्र लिया जा सकता है, चार गवाह जुड़ाए जा सकते हैं। पत्नी तुमसे बात कर रही है। मगर सवाल यह है कि क्या तुम इस बात करते वक्त आनंदित हो? अगर आनंदित नहीं हो तो सारी दुनिया गवाही दे, कि पत्नी असली है, तुम असली हो और तुम्हारे बीच जो वार्ता हो रही है वह असली है--क्या सार! अगर नरक ही पैदा हो रहा है असली से तो क्या सार!
मीरा को पागल मत कहना; क्योंकि मीरा को अगर पागल कहा, तो तुम उस दिशा में जाने से अपने को रोक लोगे, भयभीत हो जाओगे। पागल तुम हो। पागल यानी जो दुखी है; और जिसने अपने दुख को ही वास्तविक मान रखा है। और जिसने वास्तविकता की ऐसी व्याख्या की है कि सिर्फ दुख ही वास्तविक मालूम होगा, और आनंद कभी वास्तविक नहीं मालूम होगा--वह बड़ी झंझट में पड़ जाएगा। उसने द्वार ही बंद कर दिए परमात्मा के।
थोड़ा-थोड़ा सरको अपने दुख से। अपनी तथाकथित वास्तविकता से थोड़ा-थोड़ा सरको। इसलिए ज्ञानियों ने इस संसार को माया कहा है, जो दिखाई पड़ता है; और परमात्मा को सत्य कहा है, जो दिखाई नहीं पड़ता। यह संसार तो है, चारों तरफ दिखाई पड़ रहा है; हर जगह टक्कर लग जाती है। परमात्मा तो कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा है। अजीब थे ये लोग भी जिन्होंने कहा कि परमात्मा सच है, जो दिखाई नहीं पड़ता; और जो दिखाई पड़ता है, वह झूठ है, माया है, सपना है। रात भी तो तुम्हें सपना दिखाई पड़ता है; दिखाई पड़ने में कोई कमी नहीं होती। सुबह उठ कर पाते हो कि सपना था। ऐसे ही एक दिन जब मौत आएगी द्वार पर, पाओगे कि सब सपना था, मगर तब बहुत देर हो जाएगी। उसके पहले थोड़ा अवसर का उपयोग कर लो।
आनंद को कसौटी समझो। अपने जीवन की हर अनुभूति को आनंद पर कसो कि इससे आनंद उपलब्ध हो रहा है? इससे मस्ती सघन हो रही है? इससे मगन भाव आ रहा है? अगर आ रहा है तो छोड़ो फिकर विज्ञान क्या कहता है। तुम ठीक राह पर हो। जैसे कोई बगीचे के करीब आता है तो धीरे-धीरे हवाएं ठंडी होने लगती हैं। बगीचा दिखाई भी न पड़ता हो, तो भी तुम अनुभव करते हो कि तुम ठीक दिशा में जा रहे हो; हवाएं ठंडी होने लगी हैं। फिर और करीब आते हो, अभी भी बगीचा दिखाई नहीं पड़ता; हो सकता है पहाड़ी की ओट में छिपा हो--लेकिन अब फूलों की गंध भी

आने लगती है। तब तुम जानते हो कि निश्चित हम ठीक दिशा में हैं; यद्यपि अभी कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। और करीब आते हो तो पक्षियों के गीत सुनाई पड़ने लगते हैं; यद्यपि अभी कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। और करीब आते हो तो देखते हो कि दो आदमी पास से गुजर गए उस दिशा से आते हुए और उनके वस्त्रों में फूलों की सुवास थी; वे बगीचे से ही आते होंगे। और प्रमाण मिल रहा है।
जैसे-जैसे तुम्हारे जीवन में आनंद बढ़े, शांति बढ़े, मस्ती बढ़े, समाधि बढ़े--समझना कि परमात्मा की तरफ जा रहे हो। और अगर कभी किसी आदमी में ऐसी मस्ती और समाधि मिल जाए तो समझना कि परमात्मा के पास से आ रहा है। उसकी संगत करना, उसके पास बैठना।
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई।
उसके साथ बिगड़ना। वह ले जाए जहां, वहां जाना।
रैन-दिना बाके संग खेलूं, ज्यूं-त्यूं वाहि रिझाऊं।
और मीरा कहती हैः उसे रिझाती हूं, जैसे बनता है--जिस तरह भी बन जाता है। कभी रूठ जाती हूं, कभी रिझाती हूं, कभी नाराज हो जाती हूं; कभी प्रेम की बातें करती हूं; कभी फुसलाती हूं; कभी गीत गाती हूं--ज्यूं-त्यूं वाहि रिझाऊं!
इसलिए मैंने कहा कि भक्त का भाव बदलता रहता है मौसम की तरह।
तू मुझे बता कि क्या था तू मेरे बयां से पहले
तेरी थी तो क्या हकीकत थी मेरे गुमां से पहले
भक्त पूछता है भगवान से भी कि तू यह मत समझ कि हम ही तुझ पर निर्भर हैं;
तू भी हम पर निर्भर है!
तू मुझे बता कि क्या था तू मेरे बयां से पहले
मैंने जब तक तेरे संबंध में बात न की थी तो तू था ही क्या, यह बता!
तेरी थी तो क्या हकीकत थी मेरे गुमां से पहले
और जब तक मैंने अपनी अनुभूति को स्वर न दिए थे, तेरे होने न होने में क्या था?
यह बात सच है। जैसा मीरा ने गाया है गोपाल को, वैसा किसी ने गाया नहीं। मीरा के गाने के बाद गोपाल में जितना सत्य है, उतना इसके पहले कभी भी नहीं था। अगर मीरा न होती तो गोपाल कुछ कमजोर होते; तो गोपाल कुछ दरिद्र होते। मीरा ने कुछ समृद्धि जोड़ी है।
ऐसा ही नहीं कि भक्त ही भगवान को कुछ देता है। भगवान देता है; भक्त देता है। यह लेन-देन दोनों तरफ से चलता है। यह आग दोनों तरफ लगती है। यह कोई प्रेम ऐसा नहीं है कि एकतरफा है, कि भक्त ही रोता रहता है; नहीं, भगवान भी रोता है। ऐसा होना ही चाहिए; नहीं तो प्रेम का कोई अर्थ ही न रह जाएगा। तू मुझे बता कि क्या था तू मेरे बयां से पहले
तेरी थी तो क्या हकीकत थी मेरे गुमां से पहले
मिला राजे-लामकां भी तो मकां की ही आगही से
न शऊरे-लामकां था कहीं भी मकां से पहले
इसे मैंने ही बसाया, इसे मैंने ही सजाया
यह चमन चमन नहीं था तेरा बागवां से पहले
न पता था बिजलियों को कोई अपनी मंजिलों का यूं ही बस भटक रही थीं मेरे आशियां से पहले तेरे जोहए-लनतरानी को अयां किया था मैंने
तेरा जल्वा कब था जल्वा मेरे इम्तहां से पहले
हुआ है दर्दे-दिल से पैदा ये तसव्वुरे-मुसर्रत
ये निशाते-जहां कहां थी गमे-जाविदां से पहले
न फुगाने-नीमशब थी, न दुआए-सुबहगाही
तेरा जिक्र तक नहीं था मेरी दास्तां से पहले
भक्त कहता हैः न कोई भजन था, न कोई कीर्तन था; न सुबह कोई प्रभाती करता था; न संध्या कोई तेरा गीत गाता था; न मंदिरों में कोई घंटियां बजती थीं, न दीप सजाए जाते थे, न धूप जलाई जाती थी, न पूजा के, आरती के थाल उतारे जाते थे।
न फुगाने-नीमशब थी...

न तो संध्या को मंदिरों की घंटियां बजती थीं और संध्या की प्रार्थना
या नमाज होती थी।
... न दुआए-सुबहगाही
और न सुबह की कोई प्रार्थना थी।
तेरा जिक्र तक नहीं था मेरी दास्तां से पहले
जब तक मेरी कहानी न घटी थी, तब तक तेरी किसी को खबर भी न थी, तेरा जिक्र
भी नहीं था।
मेरे शौक-ए-बंदगी से बने दैर-औ-हरम सब
तेरी सजदागाह कहां थी मेरे आस्तां से पहले
भक्त कभी-कभी जूझता है और वह कहता है कि यह मैंने ही बनाए हैं--ये मंदिर और मस्जिद, ये गुरुद्वारे, ये गिरजे।
मेरे शौक-ए-बंदगी से बने दैर-औ-हरम सब
यह मेरा ही प्रेम है, यह मेरी ही पुकार है--जिसने ये सारे मंदिर-मस्जिद बनाए हैं।
तेरी सजदागाह कहां थी मेरे आस्तां से पहले
और जब तक मेरा माथा झुकने को नहीं था, तब तक कहां थी तेरी प्रतिमा और कहां था तेरा पूजा-स्थल। कहां था तू? तेरा होना मुझसे पहले नहीं हो सकता। मेरे नक्शे-पा से पैदा हुए जिंदगी के रस्ते
मैं ही गामजन हुआ था यहां कारवां से पहले
तेरा नाम, तेरी हस्ती, तेरी अस्ल, तेरी सूरत
ये तमाम लफ्जो-मानी थे कहां बयां से पहले
मेरे कहने के पहले इन शब्दों में अर्थ ही क्या था!
भक्त कभी जूझता, कभी रूठता, कभी मनाता। भक्त सारी उन प्रक्रियाओं से गुजरता है जिनसे इस जगत में साधारणतः प्रेमी गुजरते हैं। फर्क, दो प्रेमियों के बीच जो घटनाएं घटती हैं उसमें और भगवान और भक्त के बीच में इतना ही है कि दो प्रेमियों के बीच थोड़े दिन घटती हैं; सुहागरात ज्यादा लंबी नहीं होती। क्षणभंगुर होती है; आई और गई। जल्दी ही रस-स्रोत सूख जाते हैं; एक-दूसरे के प्रति उदासी हो जाती है। झरने फिर नहीं बहते। फर्क इतना ही हैः परमात्मा और भक्त के बीच झरना फिर सदा बहता है; एक दफा बहा तो बहा।
यही तो अर्थ है सांचे प्रीतम का। शाश्वत प्रेमी है परमात्मा।
रैन-दिना बाके संग खेलूं, ज्यूं-त्यूं वाहि रिझाऊं।
जो पहिरावै सोई पहरूं, जो दे सोई खाऊं।
भक्त कहता हैः तेरी मर्जी, मेरा जीवन। तेरी मर्जी, मेरा अनुशासन।
जो पहिरावै सोई पहरूं, जो दे सोई खाऊं।
भक्त अपनी इच्छा हटा लेता है। प्रेमी अपनी इच्छा को हटा लेता है।
इच्छा होगी तो प्रेम में कमी रह जाती है। इच्छा होगी तो अपने को थोप देने की आकांक्षा रह जाती है। इच्छा होगी तो हम अपनी मर्जी से कुछ करवाना चाहते हैं।
नहीं, प्रेमी अपनी सारी मर्जी हटा लेता है।
जो पहिरावै सोई पहरूं, जो दे सोई खाऊं।
तो जो दे देता है भगवान, वही... ।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उन बिन पल न रहाऊं।
और जैसे-जैसे यह प्रेम का संबंध गहरा होता है, यह संवाद सफल होता है; जैसे-जैसे भक्त का हृदय परमात्मा के करीब धड़कने लगता है; जैसे-जैसे भगवान की मूरत स्पष्ट होती है--वैसे-वैसे पता लगता है कि जन्मों-जन्मों में इसी को तो खोजा है। यह प्रीत पुरानी है। यह कोई नई खोज नहीं है। और जब हम किसी और को भी प्रेमी समझ लिए थे, तब भी हम इसी को खोज रहे थे, यह पता चलता है। जब तुम किसी पुरुष के प्रेम में पड़ गए थे; किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गए थे; किसी बेटे के प्रेम में पड़ गए; किसी मां-पिता के प्रेम में पड़ गए; किसी दोस्त के प्रेम में पड़ गए--जिस दिन तुम परमात्मा से संबंध जोड़ पाओगे, उस दिन चकित होकर देखोगे कि उन सब संबंधों में तुमने वस्तुतः परमात्मा को ही खोजा था। और इसलिए वे कोई भी संबंध तृप्त न कर पाए; क्योंकि तुम खोजते थे परमात्मा को और खोजते कहीं और थे--खोजते थे संसार में। मांग तुम्हारी बड़ी थी। तलाशते थे बूंद में और खोजते थे सागर को। अतृप्त न होते तो क्या होता?

असफल न होते तो क्या होता? खोजते थे हीरों को, तलाशते थे कंकड़-पत्थरों में। विषाद हाथ न लगता तो क्या होता? असफलता स्वाभाविक थी; निश्चित थी।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उन बिन पल न रहाऊं।
और यह मैं तुमसे कहना चाहता हूंः यह मीरा का ही अनुभव नहीं है; यह जिन्होंने जाना, सभी का अनुभव है कि हमारा प्रेम एक ही है--वह परमात्मा है। हम उसी की तलाश कर रहे हैं। कभी गलत दिशा में, तो भी तलाश उसी की है। कभी ठीक दिशा में, तो भी तलाश उसी की है। हम कुछ और खोजते ही नहीं, हम कुछ और खोज ही नहीं सकते।
यहां तक भी मैं तुमसे कहना चाहूंगा कि जिन बातों में तुम कभी नहीं सोचते कि परमात्मा हो सकता है, उनमें भी हम उसी को खोजते हैं। एक आदमी पद को खोज रहा है। जब तुम जागोगे कभी तब तुम पाओगे कि पद में भी परम पद की ही खोज छिपी थी। पद में भी आकांक्षा यही थी कि वहां पहुंच जाऊं जहां से कोई गिरा न सके; वहां पहुंच जाऊं जहां गिरने का भय न रह जाए। वही आकांक्षा थी। जब तुम धन को खोजते हो तब भी परमात्मा को खोजते हो, क्योंकि परमात्मा परम धन है। हालांकि धन में मिलेगा नहीं, लेकिन धन में उसी की तुम्हारी आकांक्षा है। जब तुम धन की इतनी वासना करते हो तो तुम्हारी मूल वासना है क्या?
गरीब आदमी को सीमा मालूम पड़ती है। आज गरीब आदमी ने एक राह से गुजरती कार देखी, वह नहीं खरीद सकता। सीमा आ गई। छाती मसोस कर रह गया। पैसे होते तो खरीद लेता। पैसे होते तो थोड़ी स्वतंत्रता होती। सीमा थोड़ी इतने करीब न होती।
धनी को क्या सुविधा है? धनी को यही सुविधा है कि उसकी जो मौज हो, वह खरीद ले; जो चाहिए, वह पा ले। उसके पास जरा बड़ी रस्सी है। वह जरा लंबा घेरा ले सकता है। गरीब की फांसी बिल्कुल लगी है; उसके पास रस्सी है ही नहीं। बस वह वहीं कोल्हू के बैल की तरह छोटे से घेरे में घूमता रहता है। किसी को सौ रुपये का घेरा है, तो सौ रुपये वाली रस्सी है, उसी के पास घूमता रहता है। किसी को हजार रुपये की सुविधा है, किसी को लाख रुपये की सुविधा है, किसी को करोड़ की सुविधा है--तो घेरा बड़ा हो गया।
धन की तलाश स्वतंत्रता की तलाश है। धन की तलाश शक्ति की तलाश है। और परमात्मा परम शक्ति है; परम स्वतंत्रता है। धन से मिलती नहीं है परम शक्ति, लेकिन तलाश तो वही है।
कोई स्त्री सुंदर रहना चाहती है; सदा जवान रहना चाहती है। स्त्रियां अपनी उम्र कम बताती हैं, ठहर ही जाती हैं एक उम्र पर, उसके आगे हटती ही नहीं। क्यों? क्या बात है? परम सौंदर्य की इच्छा है। शाश्वत सौंदर्य की इच्छा है। और कुछ भी नहीं। इस शरीर में यह घटने वाला नहीं है, तुम चाहे बढ़ो या न बढ़ो, उम्र तो बढ़ ही रही है। तुम चाहे कहो या न कहो, शरीर कहने लगेगा। तुम कितना ही छिपाने की कोशिश करो, कुछ छिपेगा नहीं; यह प्रकट होने ही वाला है। चेहरे की झुर्रियां कह देंगी, हाथ-पैर में आती कमजोरी कह देगी। यह तो हो ही जाने वाला है। कब तक छिपाओगे? कैसे छिपाओगे?
मगर आकांक्षा में समझो, आकांक्षा क्या है? आकांक्षा यही हैः काश ऐसा
हो सकता कि जीवन ऐसा होता कि जो सदा सुंदर और युवा होता! परमात्मा की ही खोज है, क्योंकि उसमें ही जीवन सदा सुंदर है, और शाश्वत है, और सदा युवा है। वहां समय नहीं है; इसलिए कोई बूढ़ा होने का उपाय नहीं है। वहां समय के पार आदमी निकल जाता है। और वहां शरीर भी नहीं है; इसलिए कमजोर होने का भी कोई उपाय नहीं है। और वहां शरीर की जरूरतें भी नहीं हैं; इसलिए कोई गरीब नहीं है, कोई अमीर नहीं है।
हम जीवन में जो भी खोजते हैं--अंतिम विश्लेषण में पाया जाता है कि वह
सब परमात्मा की ही खोज है। हां, कुछ लोग गलत खोजते हैं, मगर फिर भी उनकी मंशा तो वही है। कुछ लोग सही खोजते हैं। मंशा में कोई भेद नहीं है।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उन बिन पल न रहाऊं।
और जब परमात्मा की थोड़ी-थोड़ी झलक मिलने लगेगी, तो फिर पल भी उसके बिना रहना अच्छा न लगेगा। उसके बिना रहने में कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।
तू पास नहीं मेरे तो कुछ पास नहीं है
तेरी जो नहीं आस, कोई आस नहीं है

लब पर है हंसी तेरे तो सब कुछ है मुझे रास रंजीदा अगर तू है तो कुछ रास नहीं है
तेरे लिए हूं चाके-गरेबां को छुपाए
दुनिया का तो कुछ इतना मुझे पास नहीं है
सुन लेते हो तो हो जाती है तसल्ली मेरे दिल की
रूदादे-मोहब्बत मेरी कुछ खास नहीं है
तुमसे नहीं बाबस्ता मेरी कौन सी उम्मीद
कहने को मुझे तुमसे कोई आस नहीं है
धीरे-धीरे परमात्मा के पास जितने क्षण बीतते हैं, वे ही सार्थक रह जाते हैं, जो उसके बिना बीतते हैं--वे विषाद के, दुख के और नरक के क्षण हैं। जो उसके पास बीतते हैं, वे ही स्वर्गीय क्षण हैं।
तू पास नहीं मेरे तो कुछ पास नहीं है
तेरी जो नहीं आस, कोई आस नहीं है
लब पर है हंसी तेरे तो सब कुछ है मुझे रास
रंजीदा अगर तू है तो कुछ रास नहीं है
सुन लेते हो तो हो जाती है तसल्ली मेरे दिल की
रूदादे-मोहब्बत मेरी कुछ खास नहीं है
भक्त कहता है कि मेरी प्रेम की कहानी में कुछ खास मामला नहीं है--कि तुमसे कहूं, कि बार-बार तुम्हें सुनाऊं।
मीरा के इन भजनों में भी क्या खास है। वही भक्त का पुराना भाव। वही प्रीत पुरानी। वे ही उपमाएं, वे ही प्रतीक, वे ही शब्द। खास क्या है? रूदादे-मोहब्बत मेरी कुछ खास नहीं है
प्रेम की हो भी क्या सकती है कहानी! ढाई अक्षर में पूरी हो जाती है; कहानी कुछ खास हो भी क्या सकती है! लेकिन--
सुन लेते हो तो हो जाती है तसल्ली मेरे दिल की
भक्त जब भगवान का भजन कर रहा होता है या भगवान की स्तुति करता है, उसकी प्रशंसा के गीत गाता है--तो इसलिए नहीं कि इस गीत से कुछ भगवान को रस आएगा; इसलिए भी नहीं कि कुछ कहने योग्य बात है। लेकिन बस--
सुन लेते हो तो हो जाती है तसल्ली मेरे दिल की
तुमसे नहीं बाबस्ता मेरी कौन सी उम्मीद
और भक्त कहता हैः तुमसे कहूं भी क्या! ऐसा क्या है जो तुम्हें पता नहीं? मेरी कौन सी आकांक्षा है जो तुम्हें ज्ञात नहीं? कहने को तो कुछ भी नहीं है।
कहने को मुझे तुमसे कोई आस नहीं है
फिर भी भक्त कहता है। फिर भी भक्त रोता है। फिर भी भक्त नाचता है। भक्त उन सारे भावों से गुजरता है जिनसे प्रेमी गुजरते हैं। फर्क इतना ही है कि भक्त ने सांचे प्रेमी को पा लिया और प्रेमी झूठे प्रेमियों के सामने यह सब चर्चा-वार्ता चलाए जाते हैं।
झूठे प्रेमी से जागो, क्योंकि वही बाधा है। और जब मैं कहता हूं कि झूठे प्रेमी से जागो, तो भूल कर भी यह मत समझना कि मैं कह रहा हूं कि घर-द्वार छोड़ कर भाग जाओ, कि पत्नी छोड़ दो, पति छोड़ दो, बच्चे छोड़ दो। नहीं, जब मैं कहता हूं झूठे प्रेमी से जागो, तो मेरा मतलब हैः पत्नी में अब पत्नी मत देखो, परमात्मा देखना शुरू करो। पति में अब पति मत देखो, परमात्मा देखना शुरू करो। वह जो बच्चा तुम्हारे घर में पैदा हुआ है, उसमें परमात्मा तुम्हारे घर आया है। इस मेहमान की फिक्र करो। इस मेहमान को प्रेम दो और स्वतंत्रता दो। भागने की कहीं कोई जरूरत नहीं। सिर्फ दृष्टि बदलनी चाहिए।
जहां बैठावै तित ही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊं।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊं।
जहां बैठावै तित ही बैठूं...
मीरा कहती हैः अब तो वह जहां आज्ञा कर देता है वहीं। उसकी आज्ञा--बस मेरा जीवन है। जहां बिठा देता है वहां बैठ जाती हूं। जहां से उठा देता है वहां से उठ जाती हूं। अब मेरी अपनी तरफ से कोई विचार और निर्णय की व्यवस्था नहीं रही। अब वह बात समाप्त हो गई है।

यही समर्पण-भाव हैः जहां बिठा दे! और जिसने यह कला सीख ली, उसे इस जगत में फिर कोई अड़चन नहीं है। उसे कष्ट आते ही नहीं। कष्ट आते ही इसलिए हैं कि तुम उससे राजी नहीं होते। तुम्हारे भीतर वासना सरकती रहती है--कि मुझे ऐसी जगह बिठाओ, मुझे ऐसा बनाओ। और अगर वैसे तुम नहीं बन पाते तो नाराजगी पकड़ती है। नाराजगी पकड़ती है तो परमात्मा से संबंध टूट जाता है। क्रोध पकड़ता है, तो संबंध टूट जाता है।
एक आदमी ने मुझसे आकर कहा कि मेरा लड़का बीमार था और मैंने जाकर प्रार्थना की। हनुमानजी का भक्त था। और मैंने समय भी दे दिया उनको, अल्टीमेटम दे दिया। किसी फैक्टरी में काम करता था तो हड़ताली शब्द सीख गया होगाः अल्टीमेटम! अल्टीमेटम दे दिया हनुमानजी को, कि अगर पंद्रह दिन के भीतर लड़का ठीक नहीं हुआ तो बस समझ लेना, फिर मुझे पक्का हो जाएगा कि कोई भगवान इत्यादि नहीं है। सब बकवास है।
लड़का ठीक हो गया तो वह मेरे पास आया कि हनुमानजी ने मेरी लाज रख ली।
मैंने कहाः तुम्हारी रखी लाज कि अपनी रखी? अल्टीमेटम तुमने दिया था
कि हनुमानजी ने दिया था? और मैंने कहाः अब दुबारा मत देना अल्टीमेटम, नहीं तो उनकी लाज बार-बार वे न रख पाएंगे। यह तो संयोग की बात कि लड़का बच गया। अब दुबारा भूल कर मत करना, नहीं तो नास्तिक हो जाओगे। यह तुम्हारी आस्तिकता बहुत कमजोर है। लड़का मर जाता तो? तो लड़का नहीं मरता, हनुमानजी मरते। तो लड़के की अरथी नहीं निकलती, हनुमानजी की अरथी निकलती। अब यह भूल कर तुम दुबारा मत करना।
उसने कहाः आप यह क्या कहते हैं? मुझे तो एक कुंजी हाथ लग गई।
तो मैंने कहाः तुम्हारी मर्जी। जल्दी ही तुम पाओगे कि झंझट में पड़े।
और दो महीने बाद वह आया। उसने कहाः आप ठीक कहते थे। सब श्रद्धा, आस्था नष्ट हो गई। मेरे बड़े लड़के की नौकरी नहीं लग रही थी, मैं अल्टीमेटम दे आया।
पंद्रह दिन निकल गए, कुछ नहीं हुआ। फिर मैंने कहा कि चलो पंद्रह दिन और दो।
वे पंद्रह दिन भी निकल गए, फिर भी कुछ नहीं हुआ। अब मुझे अश्रद्धा पैदा हो रही है।
मैंने कहाः भई, पंद्रह दिन और दे। अब तू झंझट में तो पड़ेगा ही।
क्योंकि अब तेरी एक वासना है; वह अगर परमात्मा पूरी करे तो उनका होना न होना इसी पर निर्भर है।
यह कोई श्रद्धा थोड़े ही है; यह सुविधा है। यह तो तुम परमात्मा का भी उपयोग करने लगे।
नहीं, उठा ले परमात्मा तो भी राजी हो जाना। जैसा रखे वैसे से राजी होना। अपनी कोई शर्त ही न हो।
डाक्टर शुक्ल यहां बैठे हैं। उनकी पत्नी चल बसी। उसका नाम मीरा था। उसे मैंने नाम मीरा दिया था। अब वे दुखी हैं; बेचैन हैं। स्वभावतः उन्होंने बहुत लगाव से अपनी पत्नी को रखा था, उनका बड़ा मोह था। अब पत्नी चली गई तो अब वे बिल्कुल दीवाने हैं। अब वे कहते हैंः मैं अकेला कैसे रहूं? कोई बच्चा भी नहीं है; घर सूना है।
और वर्षों से दोनों साथ थे; अब बड़ी बेचैनी है, बड़ी तड़पन है। स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं कि परमात्मा की मर्जी थी, तो इसमें भी कुछ लाभ ही होगा; कुछ कल्याण ही होगा। कौन जाने परमात्मा ने इसीलिए मीरा को उठा लिया कि डाक्टर, अब चौंको! कब तक मीरा से उलझे रहोगे? अब गोपाल की सुध लो! ... नहीं तो वे बिल्कुल छाया बन गए थे। उन्हें लग रहा था कि सब ठीक हो गया है; इससे अन्यथा और क्या चाहिए। शायद इसीलिए मीरा को हटा लिया गया, ताकि यह जो प्रेम क्षणभंगुर में लग गया था, यह शाश्वत की तरफ उठे।
भक्त ऐसा ही सोचेगा। भक्त सदा मार्ग खोज लेगा कि प्रभु ने चाहा है तो कुछ अर्थ होगा। अगर प्रेमी को छीन लिया है तो इसीलिए छीना है कि अब एक नये प्रेम की शुरुआत हो; एक नये प्रेम का जन्म हो। देह तो गई। देह से प्रेम किया था, वह टूट गया; अब अदेही से प्रेम करो। अब ऐसे से प्रेम करो, जो कभी नहीं मरेगा। मरने वालों से तो बहुत प्रेम किया जन्मों-जन्मों में, और हर बार तकलीफ हुई; हर बार वही बेचैनी। यह कोई डाक्टर को पहली दफे थोड़े ही हो गई है; कितनी-कितनी बार नहीं हुई होगी!

चौंको! जागो! सजग हो जाओ! अब एक नये प्रेम की शुरुआत करो। एक नया प्रेम--जो शाश्वत से है; जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उन बिन पल न रहाऊं।
जहां बैठावै तित ही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊं।
और यह भाव होना चाहिए कि बेच दे तो बिकने को राजी; ना-नुच जरा भी नहीं।
नहीं उठेगी ही नहीं। बेच दे तो बिकने को राजी।
हालांकि लोग कहते हैं ऐसा। यहां मेरे पास आ जाते हैं। कहते हैंः हम तो
बस आप जो कहेंगे वही करेंगे। आप जो आज्ञा देंगे वही करेंगे। तो मैं उनको कहता हूं कि ठीक है, अब घर वापस जाओ, ध्यान करो, पत्नी-बच्चे की फिकर करो।
वे मुझसे कहते हैंः अब हम कहीं जाने वाले नहीं।
मैं उनसे कह रहा हूंः घर जाओ।
वे मुझसे कहते हैंः अब हम कहीं नहीं जाएंगे। अब तो आप जो कहेंगे वही
हम करेंगे। अब तो हमने आपके चरण पकड़ लिए, अब हम आपको छोड़ने वाले नहीं हैं।
मैं उनसे कह रहा हूं कि बाबा, अपने घर जाओ; तुम्हारे बच्चे हैं, पत्नी है।
वे कहते हैंः अब! अब नहीं। अब तो समर्पण कर दिया।
उनकी समझ में यह बात नहीं आती, कि वे कह रहे हैं कि जो मैं कहूंगा वह करेंगे; और मैं कह रहा हूंः घर जाओ!
नहीं; वे अभी बातचीत ही कर रहे हैं, कि जो आप कहेंगे वही करेंगे।
कभी-कभी किन्हीं मित्रों को यहां मैं आश्रम में ले लेता हूं। जब वे आश्रम में सम्मिलित होते हैं, तब वे कहते हैंः बस हमने सब आप पर छोड़ दिया-- आप जो कहेंगे, जैसा आप कहेंगे! आप हमारा प्राण लें तो हम तैयार हैं। प्राण-व्राण तो मैं लेता नहीं, क्योंकि कोई अदालत में फंसवाना है! मगर महीने दो महीने में भूल जाते हैं प्राण-व्राण की बात। फिर तो उनको जो काम दो वही नहीं जंचता, कि यह हमसे नहीं होता; हमें यह काम चाहिए। वह काम दे दो, दो-चार-आठ दिन में यह भी हमसे नहीं होता; इसमें हमें रस ही नहीं है। फिर उनकी सब जरूरतें खड़ी होनी शुरू हो जाती हैं। उनको भोजन भी विशेष चाहिए; कमरा भी विशेष चाहिए। इतने से ज्यादा देर वे काम भी नहीं कर सकेंगे। वे घड़ी देख कर उठ जाते हैं। और भाव उनका यह है, कहते वे यही रहते हैं कि सब आप पर समर्पित कर दिया; आप जो कहेंगे सो हम करेंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी प्रेयसी को पत्र लिखा, कि मेरा तुझसे प्रेम ऐसा है कि अगर आग भी बरसती हो तो भी मैं आऊंगा मिलने। अगर बाढ़ भी आ गई हो, प्रलय भी हो जाए, तो भी तैर कर आ जाऊंगा मिलने। और पुनश्च, नीचे लिखा था, कि अगर शनिवार को वर्षा न हुई तो जरूर आऊंगा।
आग बरसे तो भी आ रहे थे, प्रलय आ जाए तो भी आ रहे थे! अब शनिवार को अगर वर्षा न हुई तो मिलने आएंगे। वह जो पुनश्च है, वही असली है।
जहां बैठावै तित ही बैठूं...
इसको खूब गहरे पकड़ो। यह सूत्र है क्रांति का। यह एक सूत्र पर्याप्त है; सारे शास्त्रों का सार इसमें है। सरल सा वचन है--
जहां बैठावै तित ही बैठूं...
मगर इसमें सब आ गया। इतना तुम कर लो तो फिर कुछ और करने को नहीं बचता।
और क्या बचा?
... बेचै तो बिक जाऊं।
मगर मीरा ने प्रमाण भी दिए अपने जीवन से। सब गंवाया गोपाल के लिए-- प्रतिष्ठा, लोकलाज खोई--सम्मान, घर-द्वार, परिवार, सब तरह के अपमान सहे। सब गंवाया। बिकी। पूरी तरह बिकी। इसमें रत्ती भर भी धोखा नहीं दिया। "पुनश्च" रखा ही नहीं। इसीलिए पहुंची। इसीलिए पहुंच पाई परम पद को। बहुत थोड़ी स्त्रियां उस परम पद को पहुंची हैं, जिसको मीरा पहुंची। मगर इसी सूत्र में सारी बात छिपी है।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊं।
और मीरा कहती है कि एक बार तो क्या होगा? बार-बार बलि जाना चाहती हूं।
एक बार निछावर करने से क्या हल होगा! बार-बार निछावर करना चाहती हूं।
क्योंकि हर बार निछावर करती हूं और मोक्ष के द्वार खुलते हैं। हर बार

निछावर करती हूं और स्वर्ग बरस जाता है। हर बार अपने को मिटाती हूं और अमृत की घनी वर्षा होती है।
राजी हो रजा पर तेरी, हुए मजबूर थे हम, मुख्तार बने,
ये हार हमारी हार है वो, जो जीत को भी शरमाती है।
राजी हो रजा पर तेरी, हुए मजबूर थे हम, मुख्तार बने,
यह बड़ा उलटा वचन है। यह बड़ा विरोधाभासी वचन है। लेकिन धर्म का सारसूत्र हमेशा विरोधाभासी वचनों में होता है। यह वचन कहता हैः
राजी हो रजा पर तेरी, हुए मजबूर थे हम, मुख्तार बने,
तेरी बात मानने को राजी क्या हो गए, उसके पहले तो हम बहुत मजबूर थे, असहाय थे; जब से तेरी बात मानने को राजी हुए, सब असहाय अवस्था चली गई-- मुख्तार बने। तब से हम अपने मालिक हो गए। जब से तेरे गुलाम हुए, तब से अपने मालिक हो गए! जब तक अपनी मालकियत का वहम था, तब तक गुलाम थे। जब तक अपने को चलाने की कोशिश की, कहीं पहुंचे नहीं; सिर्फ लंगड़ाए। जब तक अपनी बात कहनी चाही, तब तक तुतलाए, हकलाए। और जब से सब तेरे ऊपर छोड़ दिया, तब से अपूर्व गीतों का जन्म हुआ है; मालकियत पैदा हुई है।
राजी हो रजा पर तेरी, हुए मजबूर थे हम, मुख्तार बने,
ये हार हमारी हार है वो, जो जीत को भी शरमाती है।
एक ऐसी हार भी है प्रेम की जो जीत से बड़ी है; विजय से बड़ी है। प्रेम में
जो हारा सो जीता। प्रेम में जिसने जीतने की कोशिश की, वह प्रेम का शास्त्र ही नहीं समझा। वह तो प्रेम के दरवाजे में प्रवेश ही नहीं पा सकेगा। प्रेम में हार ही विजय का सूत्र है।
ये हार हमारी हार है वो, जो जीत को भी शरमाती है।
ये नूरे-जोहदो-ताअत है, जो बिजली बन कर गिरता है,
इसियां की काली बदली तो रहमत की घटा बन जाती है।
अगर तुमने सोचा कि मैंने तप किया, तपश्चर्या की, व्रत, उपवास, नियम इत्यादि इत्यादि--तो यह तुम्हारा अहंकार ही बन जाएगा। और यह अहंकार तुम पर बिजली की तरह गिरेगा और तुम्हें नष्ट कर देगा।
ये नूरे-जोहदो-ताअत है, जो बिजली बन कर गिरता है,
यह तुम्हारा अहंकार तुम्हें जला देगा, खाक कर देगा। यह तुम्हारा तप,
यह तुम्हारा व्रत, यह तुम्हारी साधना और सिद्धियां काम नहीं आएंगी। इसियां की काली बदली तो रहमत की घटा बन जाती है।
भक्त तो कहता हैः मैं पापी हूं। कहां पुण्य। कैसा तप! कैसा व्रत! मेरी सामर्थ्य क्या!
जहां बैठावै तित ही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊं।
मैं तो तेरा गुलाम; तेरी छाया; तेरा दास। अगर यह भाव हो तो--
इसियां की काली बदली तो रहमत की घटा बन जाती है।
तो पाप की काली बदली भी करुणा को बरसाने लगती है।
... रहमत की घटा बन जाती है।
अहंकार मत निर्मित करना। और अहंकार कैसे निर्मित होता है? --मैं अपनी चला कर रहूंगा, अपनी करके रहूंगा। जब तक तुम्हें ऐसा ख्याल है कि तुम्हें कुछ करके दिखाना है दुनिया में, कुछ होकर दिखाना है, ऐसा होना चाहिए--तब तक तुम अहंकारी हो। भक्त के जगत में अहंकार को कोई जगह नहीं है; संकल्प को कोई जगह नहीं है। सिर्फ समर्पण ही चाहिए--मात्र समर्पण।
जो चाहे दुनिया कहने दो, तुम अपना काम किए जाओ,
मैयार जमाने के हिम्मत इंसान की आप बनाती है।
बख्शी है मुसलसल एक तड़प तो इतना एहसां और करो;
हम पर भी नजर वो हो जाए जो दोनों जहां गरमाती है।
बस इतनी प्रार्थना काफी है कि हम पर भी एक नजर कर लेना। हम राजी हैं।
और अभी न करोगे तो कल भी हम प्रतीक्षा करते होंगे। और कल नहीं तो परसों भी। हमारा धैर्य तो है। निवेदन कर दिया है कि एक नजर हम पर भी करो--वह नजर जिससे दोनों दुनियाओं को प्राण मिलता है; जिससे यह लोक और परलोक, दोनों का जीवन सम्हला हुआ है। एक नजर हम पर हो जाए!
मगर यह नजर उसी पर होती है जो...
जहां बैठावै तित ही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊं।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊं।
... इस भाव से भर जाता है।
मीरा मगन भई हरि के गुण गाए।
और हरि के गुण तुम तभी गा सकते हो, जब यह भाव-दशा तुम्हारी निर्मित हो
गई हो, जब यह समर्पण आ गया हो; नहीं तो तुकबंदी होगी। मीरा तभी गा सकी। फिर मीरा ने नहीं गाया; मीरा तो बांस की पोंगरी हो गई, बांसुरी हो गई--गाया कृष्ण ने ही। वही है गायक।
जहां बैठावै तित ही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊं।
यही तो बांस की पोंगरी हो गए तुम। अब जो मर्जी--गाए तो गाए; न गाए तो न गाए।
मीरा मगन भई हरि के गुण गाए।
और तब एक मगनता आती है; एक तल्लीनता आती है; तब एक समाधि उतरती है।
पीए बगैर ही रहता हूं मस्त, मेरे लिए
ये जामो-बादाओ-पैमानाओ-सुबू क्या है।
भक्त कहता है कि न तो मुझे सुराही चाहिए शराब की, न शराब को पीने के पात्र चाहिए; मुझे कुछ नहीं चाहिए--शराब भी नहीं चाहिए।
पीए बगैर ही रहता हूं मस्त, मेरे लिए
ये जामो-बादाओ-पैमानाओ-सुबू क्या है।
मेरी निगाह में रक्सां है मौजे-हुस्ने-अजल,
जमाल जोहरा जबीना की आबरू क्या है।
मुझे अप्सराएं नहीं चाहिए, सुंदरियां नहीं चाहिए, क्योंकि मेरी आंखों में तो--
मेरी निगाह में रक्सां है मौजे-हुस्ने-अजल,
वह जो अनंत का सौंदर्य है, वह मेरी आंखों में नाच रहा है। गोपाल नाच रहा है आंखों में! अब मुझे कोई अप्सरा और कोई सुंदरी नहीं चाहिए।
मेरी निगाह में रक्सां है मौजे-हुस्ने-अजल,
जमाल जोहरा जबीना की आबरू क्या है।
मेरे ख्याल से तखलीक है बहारों की,
मैं जानता हूं ये अफ्सूं रंगो-बू क्या है।
और अब फूलों में क्या खुशबू है? और अब बहारों में क्या रखा है? अब तो बहारों का बनाने वाला मेरे भीतर बसा है।
मेरे ख्याल से तखलीक है बहारों की,
मैं जानता हूं ये अफ्सूं रंगो-बू क्या है।
मेरे सकूत के पर्दों से राग उठते हैं,
तिलस्म हुस्ने-बयां सहरे-गुफ्तगू क्या है।
मेरे सकूत के पर्दों से राग उठते हैं,
जब तुम्हारा अहंकार गया, तो सकूत, तो शांति आई। सब उपद्रव अहंकार का है। यह सब तू-तू, मैं-मैं जो तुम्हारे भीतर मची है, अहंकार की है। यह जो युद्ध तुम्हारे भीतर चल रहा है सतत, अहंकार का है।
मेरे सकूत के पर्दों से राग उठते हैं,
तिलस्म हुस्ने-बयां सहरे-गुफ्तगू क्या है।
वह जो सुबह हवा दौड़ती है वृक्षों से, सुगंधों से भरी हुई, और वृक्षों में सरसराती है और गीत गाती है, वह कुछ भी नहीं है, जिस दिन तुम शून्य हो गए और तुम्हारे भीतर से परमात्मा के स्वर दौड़ने लगते हैं।
मेरे ही शौके-तमाशा का इक करिश्मा है,
हजूमे-जल्वाए-अनवार चारसूं क्या है।
बिनाए-जीस्त हूं अस्ले-निशात है मुझसे,
मेरा ही खेल है तूफाने-आरजू क्या है।
मेरे ही कदमों से मिलता है मंजिलों का पता,
ये देख जौके-सफर शौके-जुस्तजू क्या है।
मेरा मकामे-फना है सकून, पर्दाए-गैब,
बस इक जहूरे-खुदी शोरिशे-नमूं क्या है।
भक्त का लक्ष्य क्या है? भक्त का लक्ष्य हैः परम शून्य हो जाना--फना
हो जाना।

मेरा मकामे-फना है सकून, पर्दाए-गैब,
मिट जाना! वहीं असली जादू है। वहीं तिलिस्मों का तिलिस्म है। वहीं रहस्यों का रहस्य है। जहां तुम मिटे वहां परमात्मा हुआ। जब भक्त मिट जाता है तो जो गीत उठते हैं उनकी मस्ती बड़ी अनूठी है।
मीरा मगन भई हरि के गुण गाए।
सांप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाए।
मस्ती ऐसी थी जैसे शराबी की। शराबी की क्या मस्ती उस मुकाबले! सांप में भी सांप दिखाई नहीं पड़ा। सांप भेज दिया है राणा ने। परिवार दुखी हो रहा है। मीरा की मस्ती कष्ट का कारण बन गई है। धर्मगुरु, पंडित, पुरोहित जा-जा कर राणा को शिकायत कर रहे हैं, कि अब कुछ करना पड़ेगा; यह तुम्हारी इज्जत-आबरू का सवाल है।
ये पंडित-पुरोहित कबीर के भी खिलाफ थे। ये पंडित-पुरोहित रैदास के भी खिलाफ थे। ये पंडित-पुरोहित जीसस के भी खिलाफ थे, बुद्ध के भी खिलाफ थे। लेकिन मीरा के ये बहुत ही ज्यादा खिलाफ थे। उसका कारण है कि कबीर जुलाहे थे, नाराजगी इस बात से थी कि वे शूद्र हैं। रैदास चमार थे; नाराजगी इससे थी कि वे शूद्र हैं। बुद्ध ऐसी बातें कह रहे थे जो कि हिंदू संस्कार और परंपरा के विपरीत थीं। महावीर नग्न खड़े हो गए थे, जो कि पंडितों को लगता था अशोभन है। मगर मीरा के साथ तो बात और भी गहरी हो गई। गहरी बात इसलिए हो गई कि मीरा स्त्री भी थी। पुरुषों ने पुरुषों को तो किसी तरह बरदाश्त भी कर लिया; लेकिन स्त्री को बरदाश्त करना और भी मुश्किल है। पुरुष का अहंकार यह मान ही नहीं सकता कि स्त्री और परमात्मा को पा ले! पुरुषों के रहते और स्त्री परमात्मा को पा ले! जैनों ने अपने शास्त्रों में निषेध ही कर दिया है कि कोई स्त्री स्त्री-पर्याय से मोक्ष नहीं जा सकती। और मजा यह है कि ये ही स्त्रियां जैन मुनियों के वचन सुनती रहती हैं; ये ही उनको पालती हैं। उन सबको निकाल भगाओ! उनसे कहो कि ये शास्त्र बदलो! यह स्त्रियों का अपमान है।
मगर मजा यह है कि मंदिरों में तुम्हें पुरुष शायद ही कभी दिखाई पड़ते हों। औसत अनुपात, चार स्त्रियां और एक पुरुष, ऐसा रहता है। और वह एक भी ऐसे ही आ गया है; कोई दब्बू पुरुष होगा, पत्नी के साथ चला आया, या कुछ मामला। कुछ मंदिर से उसको लेना-देना नहीं है। पत्नी आती थी तो क्या करें! और पत्नी ने कहा कि चलना पड़ेगा, तो चले आए हैं, ठीक है। या किसी और कारण से आ गया होगा। और ये शास्त्र दोहराते रहते हैं कि स्त्री का मोक्ष नहीं।
देखते हैं, जैन-साधु "पुरुष" हो तो चाहे वह नया दीक्षित हो, तो भी पुरानी दीक्षित स्त्री साध्वी को उसे झुक कर नमस्कार करना पड़ता है। क्यों? वह स्त्री है। वह चाहे बीस साल पुरानी दीक्षित हो, तो भी नये दीक्षित पुरुष के सामने भी उसको झुकना पड़ता है।
और मजा ऐसा है कि स्त्री साध्वियों में थोड़ी साधुता शायद मिल भी जाए, पुरुष साधुओं में कुछ नहीं दिखाई पड़ता। क्योंकि स्त्री में एक सौम्यता है, एक सरलता है। बेईमानी की कमी है। पाखंड की कमी है। स्त्री जब साध्वी होती है तो वह पूरी तरह से हो जाती है। पुरुष तो और भी हिसाब से होता है--न मालूम कौन-कौन से हिसाब उसके हैं! बड़ा गणित बिठाता है। और पहुंच जाने के बाद भी उसका गणित जारी रहता है। उसकी राजनीति जारी रहती है। संघ का मुखिया कैसे हो जाए! फलां कैसे हो जाए! ढिकां कैसे हो जाए! आचार्य-पद पर कैसे बैठ जाए। यह सब राजनीति चलती रहती है।
मगर जैन शास्त्र कहते हैंः स्त्री का मोक्ष नहीं स्त्री-पर्याय से।
यह स्त्री देह का बड़ा अपमान हुआ। और यह ऐसे लोग कहें जो अध्यात्मवादी हैं, वे भी देह को इतना मूल्य दें--यह बात समझ में नहीं आती। आत्मा न तो स्त्री होती है, न पुरुष होती है। लेकिन यह सदा से उपद्रव रहा है। सारे धर्मों ने स्त्रियों का अपमान किया है।
तो तुम सोच सकते हो कि मीरा को कैसी अड़चन का सामना नहीं करना पड़ा होगा!
और सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि पुरुष तो मीरा के खिलाफ रहे ही होंगे; स्त्रियां बहुत खिलाफ रही होंगी। स्त्रियों में एक जन्मजात वैमनस्य है दूसरी स्त्रियों के प्रति।

अभी कल ही जो प्रश्न था न, कि किसी देवी ने लिखा है वह महाशोध का ग्रंथ मीरा के खिलाफ; किसी देवता को नहीं सूझी। देवी को अखरा होगा। स्त्रियां तो बड़ी ईर्ष्यालु हैं एक-दूसरे के प्रति। स्त्रियां जितनी खोज-बीन करती हैं एक-दूसरी स्त्रियों के खिलाफ, उतना पुरुष नहीं करते। और पुरुषों को इतना रस भी नहीं है इसमें... कि ठीक है। मगर स्त्रियां तो पूरा जीवन लगाए रखती हैंः कौन गलत हो रहा है, कहां क्या गलती हो रही है, कौन की स्त्री क्या गलती कर रही है! सारा रस ही इसमें है उनके जीवन का।
तो पुरुषों ने खिलाफत की होगी, क्योंकि मीरा स्त्री थी। स्त्रियों ने खिलाफत की होगी, क्योंकि मीरा स्त्री थी। मीरा को बहुत कष्ट दिए होंगे। मीरा टिक न सकी। राजस्थान छोड़ना पड़ा। मथुरा-वृंदावन गई। फिर वहां से भी भागना पड़ा।... भागती रही।
हमने अब तक इस जगत में जो लोग भी परमात्मा के प्रेम में पूरे डूबे हैं, उनके साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया है। हमारे अहंकार को चोट पड़ती है।
गरेबां चाक भी होगा, फुगां तक बात आ पहुंची।
वहां तक जा ही पहुंचेगी जो यां तक बात आ पहुंची।
मिटा कर अपनी हस्ती तुझको आखिर पा ही लूंगा मैं,
जलेंगे बालो-पर भी, आशियां तक बात आ पहुंची।
बनाया था जलाने ही को आखिर आशियां अपना,
चमन में, शुक्र है, बर्के-तपां तक बात आ पहुंची।
शरीके-कारवां हूं मैं गुबारे-कारवां होकर, मेरे मिटने की मीरे-कारवां तक बात आ पहुंची।
मुझे जो मुस्कुरा कर अपने हाथों जाम बख्शा था,
इनायत थी, मगर अब दास्तां तक बात आ पहुंची।
चमन वालो उठो आराइशे-महफिल का वक्त आया,
खिजां से अब बहारे-बेखिजां तक बात आ पहुंची।
सजाए-दार हो तजवीज अब मेरे लिए शायद,
जो कह बैठा हूं मैं, पीरे-मुगां तक बात आ पहुंची।
जब किसी के भीतर से अनलहक का नाद होता है, अहं ब्रह्मास्मि का नाद होता है...
चमन वालो उठो आराइशे-महफिल का वक्त आया,
खिजां से अब बहारे-बेखिजां तक बात आ पहुंची।
जब कोई उस मोक्ष की खबर लाता है--जहां कभी कोई पतझड़ नहीं आता, जहां वसंत शाश्वत है--जब कोई उस परम आनंद की खबर लाता है, उस परम नृत्य की खबर लाता है, जब किसी के पैरों में थोड़ी सी भनक उस नृत्य की होती है और किसी के कंठ में थोड़ी आवाज उस संगीत की होती है, और जब किसी की आंखों में से परमात्मा थोड़ा झांकता है--तो अड़चन शुरू होती है।
सजाए-दार हो तजवीज अब मेरे लिए शायद,
अब शायद वही मेरे लिए भी इंतजाम होगा जो मंसूर के लिए हुआ था; शायद अब सूली लगेगी।
जो कह बैठा हूं मैं, पीरे-मुगां तक बात आ पहुंची।
वह पंडित-पुरोहितों तक बात पहुंच गई है। वह जो मैं कह चुका।
जो कह बैठा हूं मैं, पीरे-मुगां तक बात आ पहुंची।
वह पहुंच गई है लोगों तक। अब जल्दी ही वही होने वाला है, जो मंसूर के लिए हुआ था--वही जो जीसस के लिए, वही जो सुकरात के लिए।
मीरा ने ऐसे अनूठे वचन कहे, प्यार से ऐसे गदगद, ऐसे मधुरस से भरे--मगर हमने क्या दिया उत्तर में? हमने पत्थर फेंके, हमने गालियां दीं। हमने इस अदभुत स्त्री को गांव-गांव भटकाया, सताया। अड़चन कई तरह की थी। सबसे बड़ी अड़चन तो यह थी कि वह स्त्री थी। और स्त्री ने ऐसी उदघोषणा इसके पहले इस देश में कभी भी नहीं की थी। प्यारे को पा लेने की ऐसी खबर अगर पहले कभी घटी भी होगी स्त्रियों को तो वे चुप्पी मार कर बैठ गई थीं; उन्होंने कभी घोषणा नहीं की थी। क्योंकि कौन उनकी मानेगा! कौन उनका भरोसा करेगा! लेकिन मीरा हिम्मतवर थी। क्षत्राणी थी। छोड़ दी होगी फिक्र। कूद पड़ी। जो हुआ था, कहने लगी। जैसा हुआ था वैसा कहने लगी। नाचने लगी गांव-गांव।

महावीर के नग्न खड़े होने से भी जो लोगों को चिंता नहीं हुई थी, उनको भी मीरा के नाचने से ज्यादा चिंता हुई। वे बड़े हैरानी में पड़ गए। तो राणा ने सांप का पिटारा भेजा।
सांप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाए।
वह तो मस्त होगी। तुमने कभी देखा, छोटे बच्चे हैं--सांप मिल जाए तो उसे
भी पकड़ लें! और एक और आश्चर्य की बात है कि बच्चे अगर सांप को पकड़ लें तो सांप शायद ही काटे। वह बच्चे का भोलापन, वह दोस्ताना--सांप की भी समझ में आता है। तुमने देखा, शराबी कभी-कभी सांप को पकड़ लें, नशे में बैठे हैं--वह मस्ती सांप की भी समझ में आती है।
तो यह तो शराब परमात्मा की थी। और यह तो जो भोलापन था, परमात्मा से उतरा हुआ था। अगर सांप इसे समझा तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
हम जब भी किसी को छूते हैं तो हमारी तरंगें शरीर की, खबर देती हैं-- हमारे भाव की।
तुमने देखा, तुम्हारा कोई हाथ पकड़ता है तो तुमने ख्याल किया कि अलग-अलग लोगों के हाथ से अलग-अलग तरंगों का अनुभव होता है! कोई अगर प्रेम से पकड़ता है तो और तरह की ऊष्मा, गर्मी--तुममें बहती हुई, उसकी जीवन-ऊर्जा तुममें प्रवेश करती हुई! कोई आदमी ऐसे ही पकड़ लेता है उपचार से तो ठंडा, मुर्दा हाथ! और वह जल्दी में है छुड़ाने की कि कब झंझट मिटे; एक उपचार था, पूरा कर दिया। या कोई आदमी दुश्मनी से पकड़ता है।... तो तुमने फर्क देखा? शायद तुमने ख्याल न किया हो, क्योंकि लोग बहुत संवेदनहीन हो गए हैं। लेकिन अगर थोड़ा ही ख्याल करोगे तो तुम समझ जाओगेः हर बात में फर्क होता है। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि वृक्षों तक को तरंगों का पता चलता है। अगर कोई कुल्हाड़ी लेकर वृक्ष को काटने आता है तो वृक्ष के प्राण कंप जाते हैं। इसको अब नापने के उपाय हैं। जैसे आदमी के हृदय पर कार्डियोग्राम लगा देते हैं, ऐसा ही कार्डियोग्राम वृक्ष से भी लग सकता है। पश्चिम में काफी शोध हो रही है। और जब कोई माली पानी की बाल्टी लेकर उंडेलने आता है तो वही वृक्ष आनंदित हो जाता है, पुलकित हो जाता है। अभी न तो कुल्हाड़ी जो लाया है, उसने काटा है वृक्ष; और न जो पानी ले आया है, उसने पानी डाला है। पानी डालने के बाद अगर वृक्ष आनंदित होता तो भी हम समझते कि चलो पानी डालने से हो रहा है, ठीक है; तृप्ति मिली होगी, प्यासा रहा होगा, जड़ें सूख रही होंगी। मगर पानी को आते ही देख कर वृक्ष मस्त हो जाता है। आकाश में घिरे बादलों को देख कर, मोर ही नहीं नाचते, वृक्ष भी नाचते हैं। अब इसके वैज्ञानिक प्रमाण हैं।
तो कुछ आश्चर्य नहीं कि मीरा की वह मस्ती, वह मगन भाव सांप को समझ में
आ गया हो।
सांप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाए।
न्हाय-धोए जब देखन लागी, सालिगराम गई पाए।
तो सांप तो मिला ही नहीं मीरा को। मीरा को सांप मिल ही नहीं सकता।
जिसके मन में परमात्मा बस गया है, उसे सभी जगह सालिगराम ही मिलेगा। उसे जगह-जगह परमात्मा की ही छवि मिलेगी।
जहर का प्याला राणा भेज्यो, अमृत दीन्ह बनाए।
वह कहती हैः हे प्रभु, तुम्हारी लीला, कि भेजा तो था, सुनते हैं, जहर... न्हाय-धोए जब पीवन लागी, हो अमर अंचाए।
लेकिन तुमने क्या चमत्कार किया कि जहर अमृत हो गया!
सब दृष्टि की बात है--कैसे तुम लेते हो! यहां अगर तुम ठीक से लो, सदभाव
से लो, तो कांटे भी फूल हो जाते हैं; और दुर्भाव से लो तो फूल भी कांटे हो जाते हैं। प्रेम से लो तो गालियां भी गीत की तरह बरसती हैं; और प्रेम से न लो तो गीत भी गालियों की तरह हो जाते हैं। सब दृष्टि की बात है। दृष्टि ही सृष्टि है।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाए।
कहते हैं कि राणा ने एक ऐसी सेज बनवाई, जिसमें कांटे ही कांटे थे, और इच्छा यह थी--जहरीले कांटे थे, जहर-बुझाए कांटे थे--कि जब मीरा उन पर सोएगी तो रात कांटे उसमें चुभ जाएंगे, उसके सारे शरीर में, और जहर व्याप्त हो जाएगा।

सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाए।
सांझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाए।
वे कांटे फूल हो गए जैसे!
... मानो फूल बिछाए!
जीवन में अगर हमने परमात्मा का साथ पकड़ लिया तो हमारे लिए दुख समाप्त
हो गए। इतना ही सार-अर्थ है इस बात का। ऐसा वस्तुतः हुआ या नहीं, इसमें मत पड़ना। इतना ही सार-अर्थ है--कि इस जगत में परमात्मा के प्यारे को कांटे होते ही नहीं; फूल ही फूल हैं।
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन घटाए।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पे बलि जाए।
मीरा कहती हैः तुम मेरे विघ्न-बाधाएं काटते चले जाते हो। मेरी कोई पात्रता नहीं है।
मगर और क्या पात्रता होती है? यही तो पात्रता है--
जहां बैठावै तित ही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊं।
बस यही एक पात्रता है। मीरा ने इसे पूरा कर दिया था। तुम इस पात्रता
को पूरा कर दो तो परमात्मा तुम्हें अपने अमृत से भर दे--अभी और यहीं। जिस दिन तुम पूरी कर दोगे यह बात, उसी दिन भर जाओगे। मगर यही कठिन लगता है--कैसे छोड़ें? कैसे सब उस पर छोड़ दें?
हमें यह भ्रांति है कि हम अपने जीवन के नियंता हैं। हमें यह भ्रांति
है कि हम न सम्हालेंगे तो कौन सम्हालेगा! और बड़ा मजा है कि क्या सम्हाल रहे हो तुम? जन्म हुआ तुम्हारा, यह तुमने तय किया था? फिर तुमने सांस लेनी शुरू कर दी, यह तुमने ली थी? फिर एक दिन सांस बंद हो जाएगी; तुम लेना भी चाहो तो न ले सकोगे।
मुल्ला नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा था कि आपकी ज्यादा लंबी उम्र का क्या राज है? मैं भी रहना चाहता हूं ज्यादा दिन तक दुनिया में, मैं क्या करूं?
मुल्ला ने कहाः कुछ नहीं। सांस लेते रहना। बस सांस भर बंद मत करना। कुछ भी हो जाए, सांस तुम लेते रहना।
मगर कैसे लोगे सांस? जब मौत आ जाएगी तो क्या करोगे? जो सांस बाहर गई, बाहर गई, और नहीं आई, तो फिर क्या करोगे? अपनी सांस पर भी तो हक नहीं है, और किस बात पर हक होगा? लेकिन हमको भ्रांति है कि हम नियंता हैं; अगर हमने अपनी व्यवस्था न की तो सब बिखर जाएगा।
तुम्हारी व्यवस्था के कारण बिखर रहा है। तुम कृपा करो और व्यवस्था से
हट जाओ! और तुम कह दो उसी को कि तू सम्हाल! जहां बिठाएगा, बैठ जाएंगे। जो खिलाएगा, खा लेंगे! जो पिलाएगा, पी लेंगे! तेरी जैसी मर्जी! तेरी मर्जी से हम राजी हैं।
ऐसा कहते ही तुम अचानक पाओगेः सब व्यवस्था बैठने लगी। तुम नाहक ही बोझ लिए चल रहे हो। तुम सब बोझ उस पर छोड़ दो। तुम निर्भार हो सकते हो।
आज के सूत्र का सार यही है कि तुम निर्भार हो जाओ तो तुम्हारे जीवन में मस्ती आ जाए।
भजन भाव में मस्त डोलती...
अब रही नहीं कोई चिंता। व्यवस्था न रही, नियंता न रहे, कर्ता न रहे, तो चिंता न रही। और तभी--
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पे बलि जाए।
और यही मार्ग है अपने असली घर तक पहुंचने का।

मैं तो गिरधर के घर जाऊं।
गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।
रैन पड़ै तब ही उठि जाऊं, भोर भये उठि आऊं।
रैन-दिना बाके संग खेलूं, ज्यूं-त्यूं वाहि रिझाऊं।
जो पहिरावै सोई पहरूं, जो दे सोई खाऊं।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उन बिन पल न रहाऊं।
जहां बैठावै तित ही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊं।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊं।

पद घुंघरू बांध
चौथा प्रवचन

मृत्यु का वरणः अमृत का स्वाद

पहला प्रश्नः प्रवचन सुनते समय भीतर ऐसी खलबली मच जाती है कि जिसका हिसाब नहीं। कुछ समझ में नहीं आता है। आंसू बहते ही चले जाते हैं। क्या प्राण लेकर ही रहेंगे?

उससे कम में कभी काम चला नहीं। उससे कम में काम चलाने की सोचना भी नहीं। उससे कम में काम चल जाता तो परमात्मा सस्ता होता। उससे कम में काम नहीं चलता, इसलिए तो इतने लोग वंचित हैं परमात्मा से। स्वयं को दिए बिना उसे पाने का कोई उपाय नहीं।
लेकिन स्वयं में ऐसा मूल्यवान क्या है, जिसको बचाने की इतनी आतुरता? संपदा क्या है तुम्हारे पास? जिसको तुम अपना प्राण कहते हो, उसमें भी क्या है? लेकिन शायद हम इस तरह सोचते ही नहीं कि हमारे होने में क्या है! अगर इसे गंवाना पड़े तो क्या गंवाओगे?
अर्थहीन है यह अस्तित्व; इसमें अर्थ तो परमात्मा के आने से ही आता है।
यह वीणा तो ऐसी ही पड़ी है; जब तक उसके हाथ न छुएं, इसमें कोई संगीत पैदा होता नहीं। और अगर वीणा के टूटने से ही संगीत पैदा होना है, तो टूटने की तैयारी रखो। क्योंकि असली लक्ष्य संगीत है, वीणा नहीं है।
जिन्होंने अपने को गंवाया, उन्होंने परम धन पाया--राम रतन पाया। जो अपने को बचाते रहे, वे अपने को नाहक गंवाते रहे; खाली आए, खाली गए।
मृत्यु तो आनी ही है; उससे भयभीत होने से क्या होगा? तुम भयभीत होते रहोगे, फिर भी मृत्यु तो आएगी ही। मृत्यु तो आ ही गई है उसी दिन, जिस दिन तुम पैदा हुए। जन्म के साथ ही आ गई है। वह जन्म का ही दूसरा छोर है। जन्म के बाद एक बात निश्चित है कि मरोगे। जन्म के बाद ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई जन्मा हो और मरा न हो। फिर सात दिन बाद मरोगे कि सात साल बाद कि सत्तर साल बाद; इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। मृत्यु तो आ ही रही है, चल ही पड़ी है। हम रोज-रोज मृत्यु की तरफ सरकते ही जा रहे हैं। एक-एक पल जो बीत रहा है, उसमें मृत्यु बड़ी होती जा रही है; हम छोटे होते जा रहे हैं।
यह तुम्हारा होना तो छिन जाएगा। इसके पहले कि छिन जाए, क्यों न इसे परमात्मा के चरणों में चढ़ा दो! और मजा यह है कि अगर परमात्मा के चरणों में इसे चढ़ा दो, जो कि छिन जाने वाला है, तो तुम कुछ ऐसा पा लोगे जो कभी नहीं छिन सकता है। मृत्यु को वरण कर लेने से अमृत का स्वाद मिलता है।
दुनिया में दो ही तरह के लोग हैंः मृत्यु से डरे हुए लोग, कंपते हुए लोग; और मृत्यु को सहज स्वीकार करने वाले लोग। जो स्वीकार कर लेते हैं, उनके लिए परमात्मा का द्वार खुला है। जो मृत्यु से डरे हैं, वे अपने ही अंधकार में डूबे रहेंगे; वे कभी द्वार-दरवाजे न खोल सकेंगे, क्योंकि भय उन्हें लगा ही है कि कहीं प्राण न चले जाएं। वे कभी प्रेम न कर सकेंगे, क्योंकि प्रेम भी प्राण मांगता है। वे कभी प्रार्थना न कर सकेंगे, क्योंकि प्रार्थना भी प्राण मांगती है। परमात्मा के द्वार पर वे दस्तक न दे सकेंगे, क्योंकि परमात्मा भी उससे कम नहीं मांगता।
इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है वह प्राण देने से ही मिलता है। और मजा ऐसा है कि प्राण में कुछ भी नहीं है। राख ढो रहे हो।
वही तो है जिंदगी कि जिसमें अटूट अहसास हो बका का,
है मौत का जिसमें खौफ हरदम, वह जिंदगी जिंदगी नहीं है।
वही तो है रौशनी हो जिससे दिलो-दिमागे-बशर दरख्शां,
करे जो दीवारो-दर को रौशन, वह रौशनी रौशनी नहीं है।
वही तो है ताजगी जो दौड़े रगों में मौजे-निशात बन कर,
जो आरिजो-लब को रंग दे बस, वो ताजगी ताजगी नहीं है।
वही तो है कैफे-हस्त जिसमें पता न हो कैफे-हस्त का भी, है जिसमें एहसास बेखुदी का, वो बेखुदी बेखुदी नहीं है।
वही तो है आशिकी सरूरे निशाते रहती हो जिसमें हरदम,

हो गम का एहसास जिसमें पैदा, वह आशिकी आशिकी नहीं है।
वही तो है खुद सुपुर्दगी जिसमें हो शऊरे खुदी फना सब,
ख्याल अपना हो जिसमें बाकी, वो बेदिली बेदिली नहीं है।
वही तो है बंदगी फकत जो तेरी खुशी के लिए अदा हो,
तलब की जिसमें हो लाग कुछ भी, वो बंदगी बंदगी नहीं है।
जिंदगी जिंदगी ही तब है, जब मौत की छाया से तुम मुक्त हो गए। कौन होता
है मौत की छाया से मुक्त? जो मौत को वरण करने को तैयार है। तुम्हारे जीवन में उसी दिन अर्थ होता है जिस दिन तुम्हारे जीवन में ऐसी बात पैदा हो जाती है, जिसके लिए तुम जीवन को भी दे सको। नहीं तो जीवन निरर्थक होता है। जीवन से बड़ी और क्या बात हो सकती है, सिवाय परमात्मा के? जिसके लिए जीवन अर्पित हो सके, उसी के साथ असली जिंदगी शुरू होती है।
वही तो है जिंदगी कि जिसमें अटूट अहसास हो बका का,
और कौन अपने को कुर्बान कर सकता है परमात्मा के चरणों में? वही जिसे पता है; जिसे इस बात का अनुभव होने लगा है कि जो है वह सदा रहेगा और जो नहीं है उसे बचाने से भी कुछ बचता नहीं है।
तुम्हारे भीतर जो है--वह पहले भी था, अभी है, आगे भी रहेगा। और जो तुम्हारे भीतर उधार है, बाहर से आया है, वह लौट जाएगा। जो पृथ्वी ने दिया है, पृथ्वी ले लेगी। जो आकाश ने दिया है, आकाश ले लेगा। जो सूरज ने दिया है, सूरज छीन लेगा। आग-पानी से जो आया है, आग-पानी में वापस लौट जाएगा। हवा से तुमने जो उधार मांगा है वह अमानत है; वह देनी पड़ेगी। यह देह जाएगी। यह श्वास जाएगी। यह रक्त-मांस-मज्जा, यह सब जाएगा। सिर्फ एक तुम्हारे पास कुछ है, जिसका तुम्हें पता ही नहीं चल रहा है--तुम्हारी चेतना--वही भर नहीं जाएगी।
परमात्मा को जब तुम सब चढ़ा देते हो तो जो छिन जाने वाला है वही चढ़ता है
और जो नहीं छिन सकता वही बच रहता है। और जब अकेला बच रहता है, तो प्रगाढ़ता से प्रकट होता है; साफ-साफ दिखाई पड़ता है। चढ़ाना सीखो अपने को।
वही तो है जिंदगी कि जिसमें अटूट अहसास हो बका का,
है मौत का जिसमें खौफ हरदम, वो जिंदगी जिंदगी नहीं है।
वही तो है रौशनी हो जिससे दिलो-दिमागे-बशर दरख्शां,
करे जो दीवारो-दर को रौशन, वह रौशनी रौशनी नहीं है।
घर और मकान को जिस रोशनी से रोशन कर लेते हो, उसको रोशनी मत समझ लेना--
जब तक कि भीतर की चेतना रोशन न हो।
वही तो है कैफे-हस्त जिसमें पता न हो कैफे-हस्त का भी,
और आत्मानंद क्या है? आत्मानंद वहीं है जहां आत्मानंद का पता भी नहीं होता--जहां पता करने वाला अलग नहीं बचता; जहां लीनता परिपूर्ण है।
है जिसमें एहसास बेखुदी का, वह बेखुदी बेखुदी नहीं है।
जहां तुम्हें याद रहे कि मैंने चढ़ा दिया, मैंने सब चढ़ा दिया--तो तुमने कुछ नहीं चढ़ाया। तुम तो बचे ही हो। यह चढ़ाने वाला अभी बचा ही है। इसी को चढ़ाना था। यह अस्मिता, यह अहंकार जाना चाहिए था। अगर तुम्हें ऐसा लगे कि देखो कितना आनंद आ रहा है, कितना आनंदित हूं मैं--तो अभी आनंद नहीं आया। यह जो आया है, यह चला जाएगा। क्योंकि तुम इससे दूर खड़े हो; इसमें डूब नहीं गए हो; इसमें एक नहीं हो गए हो। तुम्हें यह दिखाई पड़ रहा है। यह दृश्य की भांति है। तुम द्रष्टा हो। जब आनंद ऐसा होता है कि तुम उसके साथ एक होते हो--न देखने वाला, न दिखाई पड़ने वाला, दृश्य और द्रष्टा का भेद मिट जाता है--तभी बेखुदी बेखुदी है। और जहां तुम बेखुद हो, वहीं खुदा है। जहां तुम नहीं हो, वहीं परमात्मा है। इधर तुम मिटे, उधर वह हुआ।
वही तो है बंदगी फकत जो तेरी खुशी के लिए अदा हो,
किसे हम कहते हैं प्रेमी? किसे हम कहते हैं भक्त? किसे हम कहते हैं आशिक? उसे कहते हैं--
वही तो है बंदगी फकत जो तेरी खुशी के लिए अदा हो,
जिसकी कोई मांग नहीं परमात्मा से। जो उसकी खुशी के लिए सब समर्पित कर दिया है। उसकी खुशी में जिसकी खुशी है। मीरा ने कहा हैः जहां बिठाता, वहां बैठ जाती; जो खिलाता, खा लेती; जो सुलाता, सो जाती; उठाता, उठ आती। उसकी ही खुशी! अपनी अब न कोई आकांक्षा है, न कोई खुशी है।

वही तो है बंदगी फकत जो तेरी खुशी के लिए अदा हो,
तलब की जिसमें हो लाग कुछ भी, वो बंदगी बंदगी नहीं है।
और जहां कुछ भी पाने की आकांक्षा बनी रहे, वहां तुमने परमात्मा पर अपने को समर्पित नहीं किया; प्राण को बचाए हो अभी। तुम्हारी सारी आकांक्षाओं के जोड़ का नाम ही तुम्हारा प्राण है। जब तुम सारी आकांक्षाओं को उसके चरणों में रख देते हो, फिर तुम कहां बचे? फिर तुम्हारा अलग होना न बचा। बूंद गिर गई सागर में, हो गई सागर। इतना पागलपन चाहिए ही होगा।
जहां तक एहसासे-बेखुदी है, कमाले-दीवानगी नहीं है।
और जहां तक तुम्हें अपना अहसास हो रहा है कि मैं अलग-थलग, वहां तक कमाले-दीवानगी नहीं है--वहां तुम्हें अभी पागलपन का कमाल नहीं आया; अभी तुम्हें भक्त की कला नहीं आई।
पूछा तुमनेः "प्रवचन सुनते समय भीतर ऐसी खलबली मच जाती है कि जिसका हिसाब नहीं।"
मचने दो यह खलबली। ऐसे ही तो परमात्मा आता है। यह उसके आने की खबर है।
यह उसके पैरों की आवाज है। यह तुम्हारे हृदय पर दी गई दस्तक है। यह खलबली खलबली नहीं--यह होने वाली क्रांति का सूत्रपात है। यह पुकार है उसकी। धन्यभागी हो तुम। अभागे तो वे हैं जिनमें कोई खलबली नहीं मचती। परमात्मा का नाम उनके कान पर पड़ जाता है, वे बहरे की तरह बैठे रहते हैं। मीरा का भजन आता है, चला जाता है; उनके हृदय में रोमांच नहीं होता। मीरा नाचती है, चली जाती है; वे ऐसे देखते रहते हैं जैसे कहीं कुछ नहीं हो रहा। जूं नहीं रेंगती; खलबली की तो बात दूर। एक रोआं नहीं कंपता; प्राणों के कंपने की तो बात दूर।
तुम धन्यभागी हो। तुम्हारा बड़ा सौभाग्य है। इस खलबली को आने दो। इसे बुलाओ। इसे मेहमान बनाओ। इसे संवारो। इससे डरना मत। इससे चोट भी लगेगी पहले, क्योंकि बहुत कुछ पुराना गिरने लगेगा। यह भूकंप जैसा होगा। मकान कंपेगा, चीजें गिरेंगी। पुरानी सब व्यवस्था टूटेगी। नई व्यवस्था तो देर से आएगी, पुरानी पहले टूट जाएगी। पुराने को मिट जाना पड़ता है--नये के आने के लिए। तुम डरोगे। तुम्हारी सुरक्षा; तुम्हारे अब तक के आयोजन, तुम्हारे अब तक के विचार, विश्वास, आस्थाएं, मंदिर-मस्जिद, गुरुद्वारे गिरेंगे; तुम्हारी गीता-कुरान, तुम्हारी बाइबिल, वेद लड़खड़ाएंगे। तुम भयभीत होओगे। तुम उन्हें पकड़ लेना चाहोगे।
मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूंः यह खलबली असली चीज है, इसे पकड़ना।
वेद जाए, जाने देना; कुरान जाए, जाने देना। क्योंकि यह खलबली के पीछे वह आ रहा है जिससे वेद आए, जिससे कुरान पैदा हुए। वह इस खलबली के पीछे आ रहा है।
परमात्मा तूफान की तरह आता है; आंधी-अंधड़ की तरह आता है। विराट ऊर्जा है। जैसे एक छोटा सा तिनका आंधी में फंस जाता है, ऐसे ही तुम भी फंसोगे। मगर अगर तिनका राजी है तो आंधी उठा लेगी उसे सिर पर; आंधी उसे आकाशों की यात्रा करा देगी। तुम राजी हो जाना और तिनके बन जाना।
"प्रवचन सुनते समय भीतर ऐसी खलबली मच जाती है कि जिसका हिसाब नहीं।" हिसाब तुम करना भी चाहो तो न कर सकोगे। परमात्मा की तरफ से जो भी आता है, सब बेहिसाब है। उसे तुम गिनती नहीं कर सकते; नाप नहीं सकते तराजू पर; कोई मापदंड नहीं है--कोई माप नहीं है, अमाप है सब।
"कुछ समझ में नहीं आता है।"
समझ तो तुम्हारी जो है, वह जाएगी, तब समझ में आएगा। यह तुम्हारी समझ ही
तो आने में बाधा है। तुम्हारी समझ यानी तुम्हारे अतीत से आए हुए संस्कार, तुम्हारी धारणाएं, तुम्हारे शास्त्र। तुम्हारी समझ यानी क्या? धूल--जो तुमने इकट्ठी कर ली है--बिना अनुभव के। तुम्हारी समझ यानी तुम्हारा पांडित्य, तुम्हारा तर्क, तुम्हारा अहंकार, तुम्हारी बुद्धिमत्ता। तुमने पढ़ी जो बातें, सुनी जो बातें, उन सबका जो संग्रह तुम्हारे भीतर पड़ा है, वही तुम्हारी समझ है।
नहीं, परमात्मा तुम्हारी समझ में न आएगा। परमात्मा इतना छोटा नहीं है
कि तुम्हारी मुट्ठी में आ जाए, कि तुम रेखाबद्ध कर लो उसे, कि उसकी परिभाषा कर सको। जब परमात्मा आएगा, सब परिभाषाएं उखड़ जाएंगी; सब रेखाएं अस्त-व्यस्त हो जाएंगी। तुम्हारे बनाए गए धारणाओं के भवन ऐसे गिर जाएंगे जैसे

पत्तों के मकान गिर जाते हैं। और तुम्हारे शास्त्र ऐसे डूबने लगेंगे जैसे कागज की नावें डूब जाती हैं। शास्त्र हैं भी कागज की नावें। उनमें बैठ कर कभी यात्रा न हुई है, न हो सकती है। हां, जिन्हें कभी जाना ही न हो यात्रा पर, वे मजे से किनारे पर बैठ कर कागज की नाव तैराते रहें; रंग-बिरंगी नावें--हिंदू की, मुसलमान की, जैन की, ईसाई की नावें--और विवाद करते रहें और एक-दूसरे के सिर तोड़ते रहें, कि किसकी नाव सुंदर है और किसकी नाव ज्यादा रंगीन है और किसकी नाव ले जाने वाली है। कोई नाव पर तो बैठता नहीं। नाव का विवाद चलता है। लेकिन जिस दिन उसकी आंधी आनी शुरू होगी, ये सब नावें उलट जाती हैं; फिर न तुम हिंदू रह जाते, न मुसलमान, न ईसाई।
मीरा कौन है? हिंदू है कि मुसलमान है कि ईसाई है? मीरा कोई भी नहीं। मीरा बस "उसकी" है। "उसका" होना ही बस उसकी विशेषता है।
समझ में नहीं आएगा। और जब समझ में न आएगा तब यह घटना घटेगी। जिसने भी प्रश्न पूछा है--स्वामी यश भारती ने--यह प्रश्न बौद्धिक नहीं है। यह प्रश्न बिल्कुल ठीक है; जैसा घटता है वैसा है। पहले खलबली मचती है, फिर कुछ समझ में नहीं आता। फिर आंसू बहे चले जाते हैं। जब समझ में न आएगा, जब बुद्धि थकी हो जाएगी--तो हृदय खुलेगा, आंसू बहेंगे। समझ में आ जाएगा तो फिर आंसू नहीं बहेंगे, फिर जरूरत न रही; तुमने हिसाब-किताब लगा लिया; बुद्धि ने काम कर दिया; निबटा दिया बुद्धि के बाहर ही बाहर। आया था मेहमान, चौकीदार ने ही निबटा दिया; घर के मेजबान को पता ही न चला। उसने ही वहीं सब समझा-बुझा दिया कि सब ठीक है; कोई जरूरत नहीं भीतर जाने की। मैं पहुंचा दूंगा खबर; मैंने सब ठीक से समझ लिया है; आपने जो कहा, बिल्कुल समझ में आ गया; मालिक तक पहुंचा दूंगा। मालिक भीतर सोया है, उसे पता ही नहीं चला।
आंसू तो तभी आएंगे जब चौकीदार समझ नहीं पाएगा। थोड़ी अड़चन आएगी चौकीदार को। उसकी बुद्धि की पकड़ में नहीं आएगा, कि यह क्या कह रहे हो, यह क्या है। आ जाए समझ में तो निश्चिंततः वहीं से निबटा दे। वही बुद्धि का काम है। इसलिए बुद्धि समझने को बड़ी आतुर होती है। जो समझ में आ गया, उसे बुद्धि से पार जाने की जरूरत नहीं रहती।
तो उस क्षण में जब तुम्हें कुछ समझ में न आता हो, स्वभावतः हृदय बहेगा। आंसू आएंगे।
आंसू तुम्हारी प्रार्थनाएं हैं। और ध्यान रखनाः तुम्हारे कृत्य तुम्हें नहीं शुद्ध कर पाएंगे; तुम्हारे आंसू ही तुम्हें शुद्ध करेंगे। तुम्हारे आंसुओं की बाढ़ में ही तुम्हारे पाप बहेंगे। तुम्हारे आंसुओं की बाढ़ में ही तुम्हारा अंधकार बहेगा। ये आंसू ही तुम्हें फिर कुंआरा करेंगे। ये आंसू ही तुम्हें फिर निर्मल और पवित्र करेंगे। भक्ति के शास्त्र में आंसू उपाय है--आंसू ही एकमात्र उपाय है। इसलिए जो रो नहीं सकता, वह भक्त नहीं हो सकता। जिसकी आंखें पत्थर हो गई हैं और जिसका हृदय पथरा गया है, और जिसमें आंसू नहीं खिलते--वह भक्त नहीं हो सकता। भक्त होने की क्षमता उसी की है जिसकी आंखें सरलता से गीली हो सकती हैं; जिसका हृदय आंसू उंडेल सकता है। जिसके भीतर भावना है, वही भक्त हो सकता है। जिसके भीतर भाव है, वही भक्त हो सकता है। और भाव के पास शब्द नहीं हैं। भाव के पास आंसू हैं। भाव के पास तर्क नहीं है। भाव के पास नाच है, गीत है, गान है। इसलिए तो मीरा नाची, रोई, गाई।
आने दो उन आंसुओं को। सहयोग करना। रोकना मत। तुम्हारी जड़ धारणाएं कहेंगी कि क्या करते हो! मर्द होकर और रोते हो! पुरुष होकर रोते हो! यह तो स्त्रियों का काम है। इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातों में मत पड़ना। क्योंकि परमात्मा ने आंखें तुम्हें दी हैं--चाहे तुम पुरुष हो, चाहे स्त्री। और आंखों के पीछे उतनी ही आंसुओं की ग्रंथियां दी हैं--चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, कुछ भेद नहीं किया है। मनुष्य-जाति में एक जो बड़ी से बड़ी भ्रांति फैली है, वह यह है कि मनुष्य में विभाजन है--स्त्री और पुरुष का।
कोई विभाजन नहीं है। जहां तक परमात्मा को पाने का संबंध है, जरा भेद नहीं है। जहां तक जीवन की किसी भी गहरी सच्चाई का संबंध है, कोई भेद नहीं है। अगर भेद है तो बहुत शारीरिक है, जैविक है।

तुम्हारी आंखों के पीछे, यश, उतने ही आंसू की ग्रंथियां हैं जितनी किसी स्त्री के पीछे। तो तुम्हारी धारणा अगर कहे कि रोओ मत, मर्द होकर रोते हो, कोई क्या कहेगा... ।
छोटे-छोटे बच्चों से हम कहने लगते हैं कि अरे, तू रो रहा है! अब तू बड़ा
हो गया! छोटे-छोटे बच्चों से हम कहने लगते हैं कि तू लड़का होकर रो रहा है! यह क्या लड़कियों जैसी, लड़कियाना बात! बेचारा छोटा सा बच्चा रोक लेता अपने आंसू, पी जाता आंसू। घोंट देता आंसुओं की गर्दन को पकड़ कर वहीं, दबा लेता। तुम चकित होओगे यह जान कर कि मनस्विद इस नतीजे पर पहुंचे हैंः दुगुने मनुष्य आत्महत्याएं करते हैं स्त्रियों के मुकाबले। दुगुने पुरुष आत्महत्याएं करते हैं। दुगुने पुरुष पागल होते हैं स्त्रियों की बजाय। और उनमें से एक कारण, बहुत कारणों में एक कारण यह है कि पुरुष रोना भूल गया है। क्योंकि भाव की उमंग नहीं उठती, धीरे-धीरे जड़ होता जाता है। एक दिन पागलपन आएगा, या एक दिन आत्महत्या आएगी, या एक दिन हत्या करेगा। और यह तो संख्या में उनकी गिनती की गई है जो आत्महत्या करते हैं, पागल हो जाते हैं। उनकी क्या कहो जो बड़े-बड़े युद्ध लड़ते हैं! स्त्रियों ने तो कोई युद्ध लड़ा नहीं। स्त्रियों के ऊपर और कोई लांछन हो, यह लांछन नहीं है।
हर दस साल में पुरुषों को एक बड़ा युद्ध लड़ना पड़ता है, जिसमें कि लाखों लोग काटे-पीटे जाते हैं। यह काट-पीट भी मनस्विद कहते हैं कि आदमी के भीतर जो भाव नहीं बहता उसका ही परिणाम है। अगर लोग थोड़े रोने लगें, थोड़े हंसने लगें, थोड़े नाचने लगें, थोड़ी बांसुरी बजाने लगें, थोड़ी कृष्ण की सुनें, थोड़ी मीरा की सुनें--तो युद्ध कम हो जाएंगे; तो हिंसा कम होगी; तो विक्षिप्तता कम होगी।
मगर आदमी की विक्षिप्तता बढ़ती चली जाती है। एटम बम बनाया, हाइड्रोजन
बम बनाया; अब कहते हैं न्यूट्रान बम बना लिया। न्यूट्रान बम बड़ा अदभुत है। उसकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि मकान नहीं उसमें खराब होंगे, दुकानें नहीं जलेंगी, सड़कें नहीं टूटेंगी--आदमी भर मरेगा। पशु-पक्षी, आदमी, जीवन भर मरेगा। न्यूट्रान बम की यह खूबी है।
यह बड़े मजे की बात रही--जैसे कि मकान बचाने को हैं; आदमी मारने को हैं। मकान बचा कर क्या करोगे? जरूर राजनीतिज्ञों को यह चिंता लगी रहती है कि इतना नुकसान हो जाता है, मकान गिर जाते हैं, फिर बनाने पड़ते हैं। आदमी का क्या है! आदमी तो राजनीतिज्ञों को बनाने नहीं पड़ते; वह परमात्मा जाने। पशु-पक्षी मर जाएं, किसको क्या लेना-देना है!
तो न्यूट्रान बम आदमी की आखिरी बुद्धिमत्ता का प्रमाण है। एक वर्गमील में कोई जीवन नहीं बचेगा--चींटी से लेकर मनुष्य तक। किसी तरह का जीवन नहीं बचेगा। वृक्ष भी मर जाएंगे, क्योंकि वे भी जीवित हैं। जो भी जीवित है, मर जाएगा। सिर्फ मुर्दा चीजें बचेंगी--रास्ते, दुकानें, सामान, मकान। जीवन तिरोहित हो जाएगा, लाश पड़ी रह जाएगी। अगर बंबई पर गिरे न्यूट्रान बम, तो बस लाश पड़ी रह जाएगी; बड़े-बड़े मकान खड़े रहेंगे, दुकानें सजी रहेंगी। एक चीज भी नष्ट नहीं होगी, क्योंकि न्यूट्रान बम सिर्फ जाकर जीवन पर सीधा हमला करता है। वह तरंग मात्र है। कपड़ा नहीं जलेगा। कार नहीं जलेगी। सिर्फ जाकर हृदय एकदम से दग्ध होकर रह जाएगा। और किसी को पता भी नहीं चलेगा कि कब घटना घट गई। ये आदमी की विक्षिप्तता के सबूत हैं।
शुभ है कि तुम्हारी आंखों में आंसू आ रहे हैं। सदियों के गलत शिक्षण
ने भी तुम्हारे आंसू समाप्त नहीं किए। इनका सहयोग करना। आनंद-भाव से सहयोग करना। संकोच नहीं करना।
तुम पूछते हो कि "क्या प्राण लेकर ही रहेंगे?"
प्यार से ही पूछा है। अहोभाव से ही पूछा है।
प्राण लिए बिना कोई उपाय नहीं। प्राण दिए बिना कोई उपाय नहीं।
चढ़ा दो जो तुम्हारे पास है प्रभु के चरणों में! और तुम सब पा लोगे--जो तुम सदियों से पाना चाहते हो और नहीं पा सके हो।
मिटे बिना पाने का कोई उपाय नहीं है।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि नारद ने भक्ति का शास्त्र दिया और मीरा ने भक्ति का गीत। भक्ति के शास्त्र और भक्ति के गीत में क्या फर्क है? और क्या भक्ति का शास्त्र संभव है?

पहली तो बात, भक्ति का शास्त्र संभव नहीं है; फिर भी शास्त्र बनाना पड़ा है। बहुत सी बातें संभव नहीं हैं; फिर भी करनी पड़ती हैं। जैसे परमात्मा को नहीं कहा जा सकता; फिर भी कहना पड़ता है। कोई कहने का उपाय नहीं है। जो भी हम कहेंगे, गलत होगा। कहा नहीं, कहते ही गलत हो जाएगा।
सत्य को कहा ही नहीं जा सकता। सत्य तो मौन में अनुभव होता है; मौन में
ही संवादित होता है। लेकिन फिर भी सदा से सत्य को पाए व्यक्तियों ने, चेष्टा की है कहने की। क्योंकि अगर वे चुप रह जाएं, तब तो तुम समझोगे ही नहीं। चिल्ला-चिल्ला कर मर जाते हैं, तब नहीं समझते, तो चुप रह जाने पर तो कैसे समझोगे!
बुद्ध चालीस साल बोलते रहे--सुबह-सांझ, सतत--तब नहीं समझे। तो बुद्ध चुपचाप अपने बोधिवृक्ष के नीचे बैठे-बैठे विदा हो जाते, तब तो तुम कैसे समझते?
जीसस अपने शिष्यों से कहते हैं कि जाओ, चढ़ जाओ मकानों की मुंडेरों पर
और चिल्लाओ, क्योंकि लोग बहरे हैं। हालांकि जीसस यह भी कहते हैं कि जो है उसे कहा नहीं जा सकता। ये दोनों बातों में विरोधाभास मालूम होगा। नहीं, विरोधाभास नहीं है।
सत्य नहीं कहा जा सकता, लेकिन लोग बहरे हैं; उनको चिल्लाना तो पड़ेगा। सत्य को कहने का कोई उपाय नहीं है, लेकिन चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को जगाने का उपाय है।
भक्ति का शास्त्र नहीं हो सकता, लेकिन नारद ने अपूर्व प्रयास किया है;
जो नहीं हो सकता उसको करीब-करीब करके दिखाया है। करीब-करीब ही! हो तो सकता ही नहीं है। हम बिल्कुल भक्ति को शास्त्र में तो बांध नहीं सकते; क्योंकि भक्ति भाव है; शब्द नहीं, विचार नहीं, तर्क नहीं।
शास्त्र का अर्थ होता हैः तर्क, विचार, व्यवस्था। भक्ति तो भाव-दशा है। आंसुओं का कैसे शास्त्र बनाओ! हृदय में उठती हुई तरंगों को कैसे शब्दों में ढालो! प्रेम को कैसे उतारो कागज पर! वह ढाई आखर प्रेम का उतरता ही नहीं। लेकिन फिर भी हम शोरगुल मचा सकते हैं। शोरगुल मचाने से लोगों को सत्य समझ में आ जाएगा, ऐसा नहीं; शोरगुल मचाने से यह समझ में आ जाएगा कि जो हमें नहीं मिला है, वह किसी को मिला है। उससे प्यास जगेगी।
मैं तुमसे रोज बोलता हूं। इसमें कभी भी यह भ्रांति मेरे मन में नहीं
है कि मुझे सुन कर तुम सत्य को समझ लोगे। यह भ्रांति का तो सवाल ही नहीं उठता। फिर मैं क्यों बोलता हूं रोज?
बोलता इसलिए हूं कि सत्य तो तुम्हें मुझे सुन कर समझ में नहीं आएगा; लेकिन मुझे सुन कर, सत्य को समझना है, यह आकांक्षा जग सकती है। फिर आकांक्षा के सहारे तुम चलोगे अपने भीतर, तो किसी दिन सत्य भी समझ में आएगा।
इसलिए सत्य के संबंध में जो बातें कही जाती हैं; अंततः सत्य तक ले जा सकती हैं--मगर बड़े घुमाव से, बड़े परोक्ष रूप से; प्रत्यक्ष, सीधे-सीधे नहीं। ऐसा नहीं कि मैंने कहा और तुम समझ गए और बात खत्म हो गई। मैंने जो कहा, अगर वह तुम समझे तो बात शुरू हुई, खतम नहीं। यात्रा आरंभ हुई। फिर बहुत होने को है।
जिन्होंने भी भक्ति के शास्त्र निर्मित किए हैं, उनमें नारद ने बड़ी कुशलता से, असंभव को संभव करके दिखाया है। लेकिन बस करीब-करीब सत्य के पहुंचते हैं--भनक, आभास।
ऐसा ही समझो कि मेरा कोई चित्र उतारे, तो तुम यह तो नहीं कहोगे कि मेरा चित्र मैं हो गया। कोई तुम्हें मेरा चित्र दे दे, तो चित्र ही दिया उसने; मुझे तो तुम्हें नहीं दे दिया। तुम चित्र को अपनी जेब में रख लोगे, अपने घर ले जाओगे, सम्हाल कर रख लोगे; लेकिन फिर भी उस चित्र में मैं नहीं हूं। यह तो तुम्हें भी समझ में आता है कि चित्र में मैं कैसे हो सकता हूं! कागज पर पड़े हुए सफेद और काले धब्बों में मैं कैसे हो सकता हूं! जीवन को ऐसे नहीं

पकड़ा जा सकता। लेकिन फिर भी चित्र मेरा है। चित्र किसी और का नहीं है। यह भी सच है।
और फिर चित्र उतारने में भी कुशलता हो सकती है। दस लोग चित्र उतारेंगे तो सभी के इतनी कुशलता से नहीं आ जाएंगे। दस चित्रों में तुम कहोगेः यह चित्र सबसे ज्यादा ठीक। क्यों? क्योंकि सत्य के सबसे ज्यादा करीब पहुंचता है। यद्यपि फिर भी सत्य नहीं है।
ऐसे नारद का सूत्र है। बड़े करीब पहुंचता है, यद्यपि स्वयं भक्ति नहीं है। भक्ति के संबंध में बुद्धि जितना सोच-विचार कर सकती है, उसका सार-संक्षिप्त है।
फिर मैंने कहा कि नारद ने तो शास्त्र दिया भक्ति का और मीरा ने गीत दिया।
गीत ज्यादा करीब पहुंचता है; शास्त्र से ज्यादा करीब। क्योंकि शास्त्र होता है तर्कबद्ध। गीत को कोई तर्कबद्धता नहीं होती। गीत होता है मुक्त। शास्त्र में तुम्हारी बुद्धि को समझाने का उपाय होता है; गीत में तुम्हारे हृदय को सहलाने का। शास्त्र तुम्हारे विचार को प्रभावित करता है; गीत तुम्हारे हृदय को आंदोलित करता है। ये दोनों अलग प्रक्रियाएं हैं। क्योंकि हृदय और बुद्धि अलग-अलग हैं।
तुम नारद का शास्त्र समझ कर पारंगत हो सकते हो, फिर भी उससे तुम में भक्ति की कोई शुरुआत होगी, नहीं कहा जा सकता। हो सकता है तुम सिर्फ किसी विश्वविद्यालय में पीएचड़ी. की उपाधि लेने के लिए नारद के सूत्र पढ़ो और उनकी ठीक-ठीक सम्यक व्याख्या, विश्लेषण करो; उनके लिए ठीक-ठीक तर्क, संदर्भ जुटाओ। और तुम बड़े पंडित हो जाओ। मगर उससे कुछ भाव पैदा नहीं हो जाएगा।
मीरा का गीत ज्यादा कारगर हो सकता है, क्योंकि यह तीर सीधा हृदय के लिए है।
जब मैंने कहा कि मीरा भक्ति की साकार प्रतिमा है, तो मीरा को समझने के लिए तुम्हें ज्यादा निकट आना पड़ेगा। नारद को समझना हो तो नारद की किताब पर्याप्त है; नारद के पास जाने की कोई खास जरूरत नहीं है। लेकिन मीरा को समझना हो तो मीरा का गीत काफी नहीं है; गायक के पास जाना पड़े।
तुमने कभी यह बात ख्याल कीः एक ही राग को दो वीणावादक बजाएं, तो भी उसमें भेद होता है! एक ही राग, मगर दो वीणावादक बजाएं तो भेद होता है। एक ही गीत को दो गायक गाएं तो भेद होता है। एक ही गीत है, एक ही राग में बांधा है, एक ही व्यवस्था से गाया गया है; फिर भी दो गायक में भेद हो जाएगा, क्योंकि कंठों का भेद होगा, प्राणों का भेद होगा।
अब तुम देखे, "तरु" सूत्र गाती है, तो डूब कर गाती है! जैसे मीरा ने गाए होंगे, वैसे गाती है। पीछे खड़े होकर, अलग होकर नहीं गाती। रसविभोर हो जाती है। तो तुम्हारे हृदय को छूता है।
गीत को समझना हो तो गायक के पास आना पड़े। नृत्य को समझना हो तो नर्तक
के पास आना पड़े। ध्यान को समझना हो तो ध्यानी के पास आना पड़े। शास्त्र को समझना हो तो शास्त्र के पास जाना पड़ता है; शास्त्रकार के पास जाने की कोई जरूरत नहीं है।
मीरा जीवंत है। मीरा में तो डूबोगे तो समझोगे। मगर मीरा से स्वाद मिल सकता है। नारद से सिद्धांत मिलेगा; मीरा से स्वाद मिल सकता है। और स्वाद ही अंततः निर्णायक है।

तीसरा प्रश्नः आप रोज नई-नई बातें कहे जाते हैं, इससे उलझन बढ़ती है। क्या पुराने शास्त्र और उनकी सिखावन पर्याप्त नहीं है?

उलझन बढ़ सकती है, अगर पुराने शास्त्रों पर बहुत पकड़ हो। अगर सत्य की खोज हो तो जरा भी उलझन न बढ़ेगी। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं, वह सभी शास्त्रों का सार है।
मेरे शब्द नये हो सकते हैं, लेकिन सार वही है। और शब्द हमेशा नये चाहिए। क्योंकि पुराने शब्द पिट जाते हैं; जैसे पुराने सिक्के घिस जाते हैं। जितना शब्द बहुत दिन चल चुकता है, उतना ही अर्थहीन हो जाता है; पिटा-

पिटाया हो जाता है। बार-बार सुनते-सुनते, उसकी चोट चली जाती है। उसमें जो आघात था, जो तुम्हारी हृदय-तंत्री को छेड़ देता--वह नहीं रह जाता।
धर्म को रोज-रोज नये शब्द की देह लेनी पड़ती है। वेद ने कुछ कहा था; जब कहा था तब न मालूम कितने हृदयों की वीणा उनसे छिड़ गई होगी और न मालूम कितने जीवन में सुवास उठी होगी। फिर पंडित दोहराता रहा, दोहराता रहा, सदियां बीत गईं--फिर सब जड़ हो गयाः दोहरते-दोहरते, पंडित को सुनते-सुनते। जिन्होंने पहली दफा कहा था, वे पंडित नहीं थे; वे प्रज्ञावान पुरुष थे। उन्होंने अनुभव किया था, उन्होंने ईश्वर को देखा था, वे प्रत्यक्षदर्शी थे, वे गवाह थे, वे साक्षी थे, उन्होंने जाना था, जीया था, अनुभव किया था। उनके शब्दों में एक जीवंतता थी, एक ज्योति थी। मिट्टी का दीया था जरूर, लेकिन दीये में ज्योति भी थी।
फिर ज्ञानी, ऐसे ज्ञाता गए, उनके शब्द पंडितों के हाथ में पड़ गए। यह हमेशा ही होगा। इससे बचा नहीं जा सकता। अंततः शब्द पंडित के हाथ में पड़ ही जाएगा। क्योंकि पंडित शब्द की तलाश में है।
समझो, मुझे तुम यहां सुन रहे हो। मैं जो कह रहा हूं, वह दो तरह के लोगों
के हाथ में पड़ेगा। एक तो वे, जो मेरी बात को समझेंगे, जीएंगे, डुबकी मार जाएंगे। और दूसरे वे, जो मेरे शब्द को पकड़ेंगे, संग्रह करेंगे, शब्द का विश्लेषण करेंगे, व्यवस्था जुटाएंगे--पंडित हो जाएंगे। इन दोनों का मार्ग अलग हो जाएगा। मेरे साथ जो रस में डूबेंगे, वे एक; और मेरे शब्द को पकड़ कर जो संग्रह करेंगे, वे दो।
और आश्चर्य की बात यह है कि जो रस में डूबेंगे, उनका इतना प्रभाव दुनिया में नहीं होगा। रस में डूबने वाले आदमी को प्रभाव की चिंता भी नहीं होती। वह अपनी मस्ती में जी लेता है और विदा हो जाता है। मगर जो पंडित है, जिसको रस तो कुछ मिला नहीं, जिसने शब्द की ही संपदा इकट्ठी की है, वह शब्द को उछालता फिरेगा। वह सब जगह समझाता फिरेगा, बताता फिरेगा। वह अपने शब्द का फायदा उठाएगा, अपने शब्द से अपने अहंकार को भरेगा। फिर पंडित विवाद करेंगे--कौन ठीक, कौन गलत। और वे निर्णायक हो जाएंगे। जिसने सच में भोगा था रस को, वह तो किनारे से दूर हट जाएगा, अपनी पगडंडियों पर विलीन हो जाएगा। राजपथ बनाता है पंडित। फिर वह शब्द का मालिक हो जाता है। जब तक मैं हूं तब तक तो वह मालिक नहीं हो सकता है; लेकिन जैसे ही मैं गया, वह मालिक हो जाएगा। वह शब्द का धनी है। वह तर्क से सिद्ध कर सकता है; असिद्ध कर सकता है। उसके पास एक कुशलता है।
तो वेद, जिन्होंने परमात्मा जाना, उन्होंने गुनगुनाए। जल्दी ही पंडित
के हाथ में पड़ गए। पंडित के हाथ में पड़े कि वह उनको दोहराने लगा; उछालने लगा, जगह-जगह फेंकने लगा। एक-दूसरे के ऊपर उनका उपयोग करने लगा।
पंडित तो शास्त्र का उपयोग शस्त्र की तरह करता है--दूसरों के अहंकार
को गिराने में, अपने अहंकार को बढ़ाने में। तो ब्राह्मणों का एक बड़ा जाल पैदा हुआ। उस जाल में वेद को फांसी लग गई। वेद को किसी ने मारा तो ब्राह्मणों ने मारा।
मगर सदा ऐसा होता है। कुछ ऐसा यहीं हुआ, वेद के साथ ही हुआ, ऐसा नहीं। ऐसा सदा होता है, सब जगह होता है, सदा होगा, सब जगह होगा। यह अनिवार्य दोष है; इससे बचा नहीं जा सकता।
तो फिर बुद्ध और महावीर को नये शब्द खोजने पड़े। फिर बुद्ध और महावीर
को वेद को इनकार करना पड़ा, क्योंकि वेद के साथ जो पंडित खड़े थे, उनको इनकार करने का और कोई उपाय नहीं था। इस बात को समझना। नहीं तो बुद्ध और महावीर वेद को इनकार करें? बुद्ध और महावीर साक्षी बनते वेद के, गवाह बनते वेद के। वे फिर वैसे ही पुरुष थे, जैसे वेद के ऋषि थे। मगर उनको विरोध करना पड़ा वेद का, क्योंकि अब एक ही उपाय था। वेद की आत्मा को पंडितों से छुड़ाने का एक ही उपाय था, कि वेद के शब्दों का विरोध किया जाए, क्योंकि उसके तो मालिक तैयार हो गए थे। उन्होंने तो पूंजी बना ली थी। तो जैन और बौद्ध धर्म पैदा हुए, जो वेद-विरोधी धर्म हैं। और आश्चर्य की बात यह है कि उनमें जरा भी वेद-विरोध नहीं है। हो ही नहीं सकता। दो सत्य कभी एक-दूसरे के विरोध में नहीं होते, क्योंकि दो सत्य ही नहीं होते; सत्य की दो अभिव्यक्तियां मात्र होती हैं। सत्य तो एक ही है।

लेकिन वही फिर महावीर-बुद्ध के साथ हो गया। पंडित आ गया। तुम्हें यह जान कर हैरानी होगी कि महावीर तो क्षत्रिय थे, लेकिन उनके जो ग्यारह गणधर हैं, वे सब ब्राह्मण हैं। जिन्होंने महावीर के शब्द को इकट्ठा किया, वे सब ब्राह्मण और पंडित। बुद्ध तो क्षत्रिय थे, लेकिन बुद्ध के जो बड़े शिष्य हैं, जिन्होंने बुद्ध का शास्त्र निर्मित किया, वे सब ब्राह्मण हैं। और ब्राह्मण से मेरा मतलब कुछ ब्राह्मण कुल में पैदा होने वाले आदमी से ही नहीं होता। जिसकी भी पकड़ शब्दों पर है वह ब्राह्मण। फिर वही जाल खड़ा हो गया। फिर ब्राह्मणों ने, फिर पंडितों ने बुद्ध-महावीर को मार डाला।
फिर आए कबीर, मीरा, दादू, नानक। फिर शब्द को मुक्त किया। फिर विरोध करना पड़ा उन्हें। और ऐसा निरंतर होगा।
तो मैं जब पुराने शब्दों का कभी विरोध करता हूं तो इसीलिए ताकि पुराने शब्दों में पड़ी हुई आत्मा को मुक्त कर लूं। शब्द का ही विरोध है; आत्मा को बाहर निकाल लेना है। जब तुम समझोगे मेरी बात तो तुम्हें यह बात भी समझ में आएगी ही, निश्चित समझ में आएगी कि जिन्होंने भी जाना है, मैं उनकी ही बात कह रहा हूं। लेकिन संदर्भ नया है; भाषा नई है; उपाय नया है। लोग नये हैं। परिस्थिति नई है। काल नया है। सब बदल गया है। जब सब बदल गया तो पुराने शब्द काम के नहीं रह गए; वे संदर्भ के बाहर पड़ जाते हैं। पांच हजार साल पहले किसी ने कुछ बात कही थी। वह निश्चित ही पांच हजार साल पुरानी भाषा में आबद्ध है। अब न तो तुम बैलगाड़ी में चलते। अब तुम जेट हवाई जहाज में चलते हो। तुम्हारी भाषा जेट हवाई जहाज की भाषा है; बैलगाड़ी की भाषा नहीं है। लेकिन तुम्हारा सत्य अभी भी बैलगाड़ी की भाषा में आबद्ध है। उसे मुक्त करना होगा। तुम्हारे सत्य को भी जेट की यात्रा करानी होगी। संदर्भ बदलने होंगे।
सत्य को हमेशा नये शब्द का आवरण चाहिए; जैसे पुराने वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, फिर हम उन्हें बदल देते हैं; नये वस्त्र पहन लेते हैं। तुम सत्य को पुराने ही वस्त्र पहनाए रखोगे सदा-सदा?
वेद ने संस्कृत के शब्द दिए सत्य को, बुद्ध ने पाली के शब्द दिए, मीरा
ने हिंदी के शब्द दिए। भाषा बदल गई, ढंग बदल गया--क्योंकि लोग बदल गए थे। और अगर तुमने जिद्द की, कि तुम पुराने को पकड़ कर वैसे ही चलोगे जैसा पुराना था, तो तुम अक्सर पाओगे कि तुम समसामयिक नहीं हो। और अक्सर तुम झंझटों में पड़ोगे।
कल मैं एक कहानी पढ़ रहा था। मैं चाहूंगा इस पर तुम ध्यान करो।
एक बड़े मियां, जिन्होंने अपनी जिंदगी में बहुत कुछ कमाया-बनाया था, आखिर बीमार हुए। मृत्यु-रोग में गिरफ्तार हुए। उन्हें कोई फिक्र थी तो बस यही एक कि उनके पांच बेटों की आपस में नहीं बनती थी। गाढ़ी क्या, पतली भी नहीं छनती थी। लड़ते ही रहते थे। कभी किसी बात पर इत्तफाक न होता था। हालांकि इत्तफाक में बड़ी बरकत है। आखिर बड़े मियां ने एकता और इत्तफाक की खूबियां बेटों के दिल में उतारने के लिए एक पुरानी तरकीब ख्याल में लाई। पढ़ी होगी ईसप की किताब में या पंचतंत्र में या लुकमान के वचनों में। पुरानी तरकीब है, तुमने भी सुनी है, पढ़ी है, कि कोई बाप मर रहा था। उसने पांच लकड़ियां एक गट्ठे में बांध दीं, और अपने बेटों को कहाः तोड़ो। उन्होंने बड़ी तोड़ने की कोशिश की, लेकिन गट्ठर नहीं टूट सका। पांच लकड़ियां इकट्ठी मजबूत थीं। फिर उसने गट्ठर खोल दिया और एक-एक लकड़ी बेटों को दे दी और कहाः अब तोड़ो। उन्होंने तत्क्षण लकड़ियां तोड़ दीं। और बाप ने कहा कि देखो, पांच इकट्ठे होते हैं तो शक्ति होती है, पांच अलग-अलग हो जाते हैं तो निर्बल हो जाते हैं। यही मेरा तुमसे आखिरी निवेदन है। ऐसा कह कर बाप मर गया।
बड़े मियां को यह कहानी याद आई। सोचा कि उसी कहानी का उपयोग कर लें। बड़े मियां ने अपने बेटों को पास बुलाया और कहाः देखो, अब मैं कुछ ही दिन का मेहमान हूं। सब जाकर एक-एक लकड़ी लाओ।
एक ने कहाः लकड़ी! आप लकड़ियों का क्या करेंगे?
जमाना बदल गया; पुरानी कहानी में यह बात आती ही नहीं है कि आप लकड़ियों
का क्या करेंगे। वह जमाना और था। बाप ने कहा लकड़ियां लाओ, लड़के लकड़ियां ले आए थे।

एक लड़के ने पूछा कि लकड़ी! आप लकड़ियों का क्या करेंगे?
दूसरे ने आहिस्ता से कहाः बड़े मियां का दिमाग खराब हो गया है। लकड़ी नहीं, शायद ककड़ी कह रहे हैं। ककड़ी खाने को जी चाहता होगा।
तीसरे ने कहाः नहीं, कुछ सर्दी है, शायद आग जलाने को लकड़ियां मांग रहे हैं।
चौथे ने कहाः बाबूजी, कोयले लाऊं?
पांचवें ने कहाः नहीं जी, कोयले से क्या होगा, उपले लाता हूं। वे ज्यादा अच्छे रहेंगे।
बाप ने कराहते हुए कहाः अरे नालायको, मैं जो कहता हूं वह करो।
क्योंकि उसको तो एक सिद्धांत सिद्ध करना था। तो कोयले से तो होगा नहीं सिद्ध, उपले से होगा नहीं सिद्ध--यह तो बात ही इन्होंने बदल दी; सब कहानी खराब किए दे रहे हैं। और वह कहानी की बात भी नहीं कह सकता पहले से कि मैं वह पुरानी कहानी... नहीं तो मतलब ही खत्म हो गया। उसको तो छिपा कर रखनी है; वह तो सिद्धांत निकालना है।
बाप ने कराहते हुए कहाः अरे नालायको, मैं जो कहता हूं वह करो। कहीं से लकड़ियां लाओ जंगल से।
एक बेटे ने कहाः यह भी अच्छी रही, जंगल यहां कहां? और महकमा-जंगलात वाले लकड़ी कहां काटने देते हैं! सजा करवाओगे?
दूसरे ने कहाः अपने आपे में नहीं हैं बाबूजी। बक रहे हैं जुनून में क्या-क्या कुछ।
तीसरे ने कहाः भई, लकड़ियों वाली बात अपनी समझ में तो बिल्कुल नहीं आती।
चौथे ने कहाः बड़े मियां ने उम्र भर में एक ही तो ख्वाहिश की है, उसे पूरा करने में हर्ज भी क्या है? ले भी आओ। दिमाग तो मालूम होता है खराब हो गया है; मगर क्या बिगड़ता है, पांच लकड़ियां ले ही आओ।
पांचवें ने कहाः अच्छा मैं जाता हूं, टाल पर से लकड़ियां ले आता हूं। चुनांचे वह टाल पर गया, टालवाले से कहाः खान साहब, जरा पांच लकड़ियां
तो देना। अच्छी मजबूत हों।
टालवाले ने लकड़ियां दीं। हरेक खासी मोटी और मजबूत थी। बाप ने देखा तो उसका दिल बैठ गया, क्योंकि लकड़ियां इतनी मजबूत थीं कि एक-एक भी नहीं तोड़ी जा सकती थीं, पांच को तोड़ने का तो सवाल ही क्या था। यह बताना तो मतलब के खिलाफ ही था कि लकड़ियां क्यों मंगवाई गई हैं और उससे क्या नैतिक परिणाम निकालने की आकांक्षा है। आखिर बेटों से कहाः ठीक, अब तुम जब इन लकड़ियों को ले ही आए तो गट्ठा बांधो।
बेटों में फिर खुसर-पुसर होने लगी। गट्ठा! वह क्यों? अब रस्सी कहां से लाएं? भई बहुत तंग किया इस बुड्ढे ने! आखिर एक ने अपने पाजामे से इजारबंद निकाला और गट्ठा बांधा।
जमाना बदल गया, तुम कहां की पुरानी कहानी लिए बैठे हो!
बड़े मियां ने कहाः अब इस गट्ठे को तोड़ो।
बेटों ने कहाः लो भाई, यह भी अच्छी रही, कैसे तोड़ें! कुल्हाड़ा कहां से लाएं! अरे इस बूढ़े के दिमाग को हुआ क्या है। मरना हो तो मर ही जाओ। अब और तो न सताओ।
बाप ने कहाः कुल्हाड़े से नहीं, हाथों से तोड़ो, घुटने से तोड़ो। बाप ने देखा कि हाथ से तो टूटने वाली नहीं हैं। यह कहानी सब गड़बड़ ही हुई जा रही है। तो उसने कहाः हाथ से न टूटें तो घुटनों से तोड़ो, मगर तोड़ो।
बाप का हुक्म सिर आंखों पर। पहले एक ने कोशिश की, फिर दूसरे ने, फिर तीसरे ने, फिर चौथे ने, फिर पांचवें ने। लकड़ियों का बाल भी बांका न हुआ। सबने कहाः बाबूजी, हमसे नहीं टूटता यह लकड़ियों का गट्ठा।
बाप ने कहाः अच्छा, अब इन लकड़ियों को अलग-अलग कर दो। इनकी रस्सी खोल दो।
एक ने जल कर कहाः रस्सी कहां है, मेरा इजारबंद है। अगर आपको खुलवाना
ही था तो गट्ठा बंधवाया क्यों था? तुम होश में हो कि तुम्हारा होश बिल्कुल खराब हो गया है? लाओ भाई कोई पेंसिल दो, मैं इजारबंद अपने पाजामे में वापस डाल लूं।

खैर, बाप की भी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि करना क्या है? कहानी तो पुरानी थी और बड़े मतलब की थी। मगर वक्त बदल गया, लोग बदल गए, ढंग बदल गया, सोचने के हिसाब बदल गए। फिर बाप ने कहाः अच्छा। जब लड़के ने अपना इजारबंद निकाल लिया, तो कहाः अब इनको एक-एक लकड़ी को एक-एक करके तोड़ो।
लकड़ियां मोटी-मोटी और मजबूत, बहुत कोशिश की, किसी से नहीं टूटीं। आखिर में बड़े भाई की बारी थी। उसने एक लकड़ी पर घुटने का पूरा जोर डाला, और तड़ाक की आवाज आई। बाप ने नसीहत करने के लिए आंखें एकदम खोल दीं। बाप तो तैयारी में था कि नसीहत करने के लिए एकाध तो टूट जाए। क्या देखता है कि बड़ा बेटा बेहोश पड़ा है। लकड़ी सही सलामत है, उसकी टांग टूट गई।
एक लड़के ने कहाः यह बुड्ढा बहुत जाहिल है।
दूसरे ने कहाः अड़ियल! जिद्दी!
तीसरे ने कहाः खूसट! सनकी! अकल से पैदल! घामड़।
चौथे ने कहाः सारे बुड्ढे ऐसे ही होते हैं, कमबख्त मरता भी नहीं।
बुड्ढे ने इत्मीनान की सांस ली कि बेटे कम से कम एक बात पर एकमत तो हुए। इसके बाद आंखें बंद कीं और बड़ी शांति से जान दे दी।
और तुम पूछते हो कि पुराने को मैं नये-नये शब्द क्यों दिए जाता हूं!
सत्य को नये शब्दों की सदा जरूरत है। सत्य पुराने शब्दों में, पुराने ढांचों में आबद्ध होकर मर जाता है। सत्य को नई उदभावना चाहिए; नई तरंग चाहिए; नये गीत चाहिए--तो ही सत्य हृदय तक पहुंचता है। और जब ताजा-ताजा होता है, तभी पहुंचता है; बासा हो जाता है, फिर अर्थहीन हो जाता है। सुनी-सुनाई बातों को जब तुम बार-बार सुनते हो तो सुनने की जरूरत ही नहीं रह जाती है। क्या सुनना है! कितनी बार तो तुम सुन चुके हो! पहले भी सुनने से कुछ नहीं हुआ; अब क्या हो जाएगा? तुम उसी किताब को पढ़ते रहते हो, पाठ करते रहते हो रोज-रोज। कल भी किया था, आज भी कर लोगे, परसों भी कर लोगे-- न कल कुछ हुआ था, न आज कुछ हुआ है, न परसों कुछ होगा। धीरे-धीरे तुम जड़ हो जाओगे।
मगर मैं समझता हूं कि तुम्हारी तकलीफ क्या है।
तुम पूछते होः "क्या पुराने शास्त्र और उनकी सिखावन पर्याप्त नहीं है?"
सिखावन तो पर्याप्त है, लेकिन उस सिखावन को आज के लिए मौजूं बनाना होगा; तभी वह सिखावन होगी, नहीं तो सिखावन नहीं होगी। जैसे आदमी जिंदगी भर जी लेता है, शरीर पुराना हो जाता है, तो आत्मा उड़ जाती है उस शरीर से; फिर उस शरीर को हम दफना देते हैं, जला देते हैं। फिर आत्मा नया गर्भ लेती है। ऐसा ही सत्य भी बार-बार पुराने शास्त्रों से उड़ जाता है; फिर नया जन्म लेता है; फिर किसी के गर्भ में पैदा होता है।
बुद्धपुरुष सत्य के लिए गर्भ बनते हैं; फिर से जन्म होता है सत्य का। तुम्हारी अड़चन सत्य के नये शब्दों के कारण नहीं है; तुम्हारी अड़चन यह
है कि तुम पुराने को खूब जकड़े बैठे हो। तुम पुराने से खूब उलझे हो। यद्यपि पुराने से कुछ लाभ भी नहीं हो रहा है। लाभ ही होता होता, तो फिर ठीक थी; फिर कोई बात ही न थी; फिर मेरे पास आने की कोई जरूरत भी न थी। अगर पुराने से लाभ हो रहा हो तो मेरे पास आओ भी मत। फिर क्यों उलझन लेनी? पुराने से ही रास्ता बन जाएगा। जाना है परमात्मा तक, रास्ते थोड़े ही देखने हैं कि कहां से तुम गए! पहुंचना है उस तक! कैसे पहुंचे, तुम फिकर कर लो। अगर पुराना काम न दे रहा हो तो मेरी बात सुनो।
मैं वही कह रहा हूं जो पुराने में है, लेकिन मेरा ढंग अपना है। मेरा अंदाजे-बयां अपना है। और कुछ फर्क नहीं है।

चौथा प्रश्नः कई संत-महात्मा कहते हैं कि क्योंकि मीरा बाई कृष्ण के सगुण रूप से बंधी रही, इसलिए वह मुक्ति और परमपद को उपलब्ध न हो सकी।

इन संत-महात्माओं को कुछ भी पता नहीं है। ये संत-महात्मा निर्गुण शब्द से बंधे हैं। कम से कम मीरा तो सगुण कृष्ण से बंधी थी--कम से कम जीवंत कृष्ण! ये तुम्हारे तथाकथित संत-महात्मा सिर्फ निर्गुण शब्द से बंधे हैं। इनकी अड़चन यही है कि शब्दों का जाल इन्होंने फैला रखा है कि निर्गुण से

मुक्ति होगी, सगुण से कैसे होगी? लेकिन सगुण में भी परमात्मा है और निर्गुण में भी परमात्मा है। वे उसके ही रूप हैं। आकार में भी वही है। निराकार में भी वही है। अगर आकार में भी वही है तो आकार से मुक्ति क्यों नहीं होगी? परमात्मा मुक्तिदायी है। तुम कहीं से भी प्रवेश करो, मुक्ति होगी ही। किस द्वार से प्रवेश करोगे, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।
लेकिन संत-महात्माओं को तो आंखें नहीं हैं देखने की। मीरा को नहीं देखेंगे। यह मीरा में जो बरस रहा है अमृत, यह बिना मुक्ति के बरस ही नहीं सकता। यह जो मीरा के घुंघरुओं की झंकार है, यह परम आनंद के बिना हो ही नहीं सकती। और इन संत-महात्माओं में तुम कोई भी झंकार न पाओगे। जरा गौर से देखनाः जो संत-महात्मा ऐसा कहता हो कि मीरा परमपद को नहीं पहुंची, पहले जरा इसकी तरफ देख लेना कि ये सज्जन किस पद तक पहुंचे हैं। जरा इनको हिला- डुला कर देख लेना, ठोंक-बजा कर देख लेना। आदमी दो पैसे की हंडी भी बाजार से खरीदता है तो ठोंक कर खरीदता है, इतनी जल्दी मत खरीद लेना। ठीक से ठोंक-बजा कर देख लेना। और तुम बड़े हैरान होओगे कि परमपद की तो दूर बात, इन्हें सुगंध भी नहीं मिली उस फूल की।
मगर बड़ी आसान है यह बात कह देना कि किसको नहीं मिला, क्यों नहीं मिला! निर्णायक बनने में बड़ा मजा है। क्योंकि निर्णायक बनने में ऐसा लगता है कि हम ऊपर हो गए।
जिसमें थोड़ा भी संतत्व पैदा हुआ होगा, पहले तो वह इस तरह का निर्णायक नहीं बनेगा। वह थोड़ा झिझकेगा। मीरा जैसे व्यक्तित्व पर वक्तव्य देने के लिए थोड़ा झिझकेगा, थोड़ा संकोच करेगा; इतनी निर्लज्जता नहीं करेगा।
और यही संत-महात्मा कहते फिरते हैं कि सब रूपों में वही है, सब आकारों में वही है; कण-कण में वही है। जब वही है पत्ते-पत्ते में, तो फिर पत्ते से भी मुक्ति हो सकती है। गोपाल की तो बात छोड़ो। अगर वही है तो कहीं से भी पकड़ लो उसका हाथ, वहीं से मुक्ति हो सकती है।
सितारों के जहां तक आ गए हैं।
गुबारे-कारवां तक आ गए हैं।
तलाशे-आस्ताने-यार में हम,
जमीं से आस्मां तक आ गए हैं।
मकाम अपना मुअय्यन है न मंजिल,
कहें क्या हम कहां तक आ गए हैं।
फलक की वुसअतों से गुजर कर, हदूदे-लामकां तक आ गए हैं।
ये माना हमने वाइज और मोमन,
सभी बागे-जनां तक आ गए हैं।
मगर ऐसे भी हैं गुमगश्ता कुछ लोग,
जो रब्बे दो जहां तक आ गए हैं।
ये माना हमने वाइज और मोमन,
सभी बागे-जनां तक आ गए हैं।
यह माना कि पंडित, पुरोहित, साधु, तथाकथित सज्जन, संत, वे स्वर्ग तक आ
गए हैं--यह माना हमने। उन्होंने पुण्य के सुख को पा लिया है, यह माना हमने। लेकिन--
मगर ऐसे भी हैं गुमगश्ता कुछ लोग,
मगर कुछ ऐसे भूले हुए लोग भी हैं, भटके हुए लोग भी हैं--
जो रब्बे दो जहां तक आ गए हैं।
जो कि दोनों जहान का जो परमात्मा है, उस तक आ गए हैं, ऐसे कुछ भूले हुए लोग भी हैं। उन्हीं भूले हुए लोगों का नाम प्रेमी है। ऐसे कुछ आशिक भी हैं।
समझदार पहुंचते हैं--स्वर्ग से आगे तक नहीं। स्वर्ग यानी सुख। समझदार ज्यादा से ज्यादा सुख तक पहुंचता है। नासमझ दुख में पड़ जाता है; समझदार सुख तक पहुंच जाता है। लेकिन एक और भी समझदारी है, जो समझदारी से भी पार है। इसलिए उसको कहा--गुमगश्ता कुछ लोग--कुछ भूले-भटके लोग, जिनको समझदार भी नहीं कह सकते, नासमझ भी नहीं कह सकते। इतने भूले-भटके लोग! ऐसे पागल

दीवाने! ऐसे कुछ लोग हैं जो उस परमात्मा तक पहुंच जाते हैं। परमात्मा यानी सच्चिदानंद। इस फर्क को समझो।
दुख का अर्थ हैः तुमने जीवन को बड़ी मूढ़ता से जीया। दुख का अंतिम रूपः नरक। सुख तो तुम पाना चाहते थे, लेकिन तुम इतनी मूढ़ता से जीए कि सुख कभी हो न पाया। सुख यानी स्वर्ग; अंततः जो स्वर्ग बन जाए। सुख का अर्थ होता हैः बड़ी बुद्धिमत्ता से जीए। ऐसी बुद्धिमत्ता से जीए कि दुख जहां था वहां से बचाया; सुख जहां था वहां अपने को सरकाया; जीवन की शैली ऐसी बनाई; जीवन को ऐसा ढंग और सांचा दिया कि सुख ही सुख हुआ।
लेकिन इन दोनों की स्थितियां एक-दूसरे से बंधी हैं, क्योंकि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। नरक और स्वर्ग दूर-दूर नहीं हैं, जैसा आमतौर से तुम सोचते हो--कि स्वर्ग ऊपर और नरक नीचे। स्वर्ग और नरक पड़ोसी हैं। और बीच में दरवाजा है दोनों के; आना-जाना जारी रहता है। पुराने शास्त्र भी कहते हैं कि स्वर्ग जो जाता है, जब उसका पुण्य चुक जाता है तो फिर वापस दुनिया में गिर जाता है। सुख कमा लिया था, वह चुक गया। तुमने दस-पांच दिन मेहनत की, दस-पच्चीस रुपये कमा लिए, फिर चले गए पहाड़ पर, एक-दो-चार दिन आराम कर लिया, वे चुक गए--फिर वापस। सुख चुक जाता है।
और जहां तक सुख है वहां तक दुख की छाया बनी ही रहेगी। और जहां तक दुख
है वहां तक सुख की आशा भी बनी रहेगी। इन दोनों के पार हो जाने की जो अवस्था है उसको हम आनंद कहते हैं। आनंद का अर्थ सुख नहीं होता। खूब समझ लेना। भाषाकोश में कुछ भी लिखा हो, भाषाकोश से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। जीवन के कोश में आनंद का अर्थ सुख नहीं होता। आनंद का अर्थ होता हैः सुख-दुख, दोनों के पार। परमात्मा को पाने का अर्थ होता हैः आनंद को पा लिया; परम शांति को पा लिया। अब न दुख बचा, न सुख बचा; न पाप बचा, न पुण्य बचा। गए सब द्वंद्व, गए सब द्वैत, गई दुई। अब एक बचा।
ये माना हमने वाइज और मोमन,
सभी बागे-जनां तक आ गए हैं।
मगर ऐसे भी हैं गुमगश्ता कुछ लोग,
जो रब्बे दो जहां तक आ गए हैं।
उन भूले-भटकों में मीरा बड़ी अप्रतिम है। उन थोड़े से भूले-भटके लोगों में एक है--जिसने न पुण्य साधा; जिसने न विधि-विधान किए; जिसने न योगासन साधे; न तंत्र-मंत्र-यंत्र जपा; जिसने इस सबकी चिंता ही नहीं की; जो औपचारिकताओं में उलझी ही नहीं; जिसने प्यारे को याद किया। बस इतना ही काफी है। जिसने अपने गिरधर को पुकारा। जिसने इतना ही कहा कि मैं तो गिरधर के घर जाऊं; मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई रे। जिसने बस एक ही रटन... । पागल थी। दीवानी थी। खुद भी मानती है कि दीवानी है। बार-बार कहती हैः मीरा भई दीवानी रे।
ये जो गुमगश्ता लोग हैं, यह तुम संत-महात्माओं से इनकी मत पूछना। संत-महात्माओं को इनका पता भी क्या! इनकी पूछना हो तो गुमगश्ता लोगों से पूछना। इनकी पूछना हो तो दीवानों से पूछना। ये दीवाने कुछ ऐसे रास्तों से जाते हैं जो राजपथ नहीं हैं।
एक तो आदमी होता है जो सामने के दरवाजे से आता है; घंटी बजाता है; अपना विजिटिंग कार्ड भेजता है; पहले से फोन करके समय लेता है। और एक आदमी चोर की तरह रात में आता है, खिड़की छलांग कर। ये गुमगश्ता लोग ऐसे हैं जो परमात्मा में कहीं से भी छलांग लगा जाते हैं। ये न कोई खबर देते पहले से कि हम आते हैं--न कोई समय मांगते हैं। न ये कहते हैं कि हमारी कोई पात्रता है; न दावा करते हैं। ये तो बस चले जाते हैं। ये तो कहते हैंः हमें तेरी करुणा का भरोसा है, और कोई भरोसा नहीं है।
फर्क समझ लेना। वह संत-महात्मा दावा करता है कि मैंने इतना तप किया, इतना जप किया, इतनी पूजा, इतना पाठ--इतना सब लेकर आ रहा हूं कमाई अपनी; सब खाते-बही मैंने तैयार रखे हैं, तुम देख लो। मैं हकदार हूं।
संत-महात्मा दावेदार होता है। भक्त दावेदार नहीं होता। भक्त कहता हैः मेरे पास क्या! मेरे पास कुछ भी नहीं है। तूने जो जीवन दिया था, वह भी लुटा दिया है व्यर्थता में। तूने जो संपत्ति दी थी, वह भी गंवा दी है। सब तरह के पाप कर लिए हैं। सब तरह की भूलें कर ली हैं। मगर मुझे भरोसा है तो

तेरी इस बात का है कि तू रहमान है, रहीम है; तू करुणावान है। बस मुझे भरोसा है तो इस बात का कि मेरे पाप कितने ही हों; तेरी क्षमा मेरे पापों से बड़ी है। बस भक्त का इतना भरोसा है।
इसलिए स्वभावतः अगर तुम किसी जैन मुनि से जाकर पूछो कि मीरा पहुंची मोक्ष? तो वह कहेगाः कहां की बातें कर रहे हो? इसने उपवास कितने किए? पहले उपवास का तो पक्का करो! याद ही नहीं मीरा ने कभी उपवास किया हो, कहीं उल्लेख नहीं। मीरा उपवास करे भी क्यों? न तो मीरा कोई सत्याग्रही है, न मीरा कोई मोरारजी भाई देसाई है, कि वह कोई उपवास करे, कि यह करे कि वह करे, कि किसी तरह घुसो, कि कहीं सत्ता में पहुंच जाओ। मीरा को किसी का मन बदलने की भी कोई जरूरत नहीं है कि सत्याग्रह करो, कि अनशन करो, कि जबरदस्ती करो दूसरे पर। क्योंकि ये उपवास तो सब जबरदस्तियां हैं।
गांधीजी ने उपवास को बड़ा हिंसा का उपाय बना दिया। जिसको भी हिंसा करनी है, उपवास करो। उपवास का मतलब ही यह है कि दूसरे से जबरदस्ती करवा लेंगे। जबरदस्ती यानी हिंसा। समझाने-बुझाने की बात ठीक है, लेकिन आप किसी के सामने छाती पर छुरा लेकर खड़े हो गए, कि हम अपनी छाती में छुरा मार लेंगे अगर हमारी न मानोगे! अब यह भी कोई बात हुई? इसको अहिंसा कहते हो कि हम छुरा मार लेंगे अगर हमारी बात न मानी! मतलबः बात हमारी माननी ही पड़ेगी, नहीं तो हम छुरा मारते हैं। अब उस आदमी में अगर थोड़ी भी दया-ममता हो, या थोड़ी भी सज्जनता हो, तो वह कहेगाः भई ठहरो, इतनी सी बात के लिए ऐसा मत करो। डा.अंबेदकर हरिजनों को हिंदुओं से निकाल लेना चाहते थे। गांधी ने अनशन कर दिया--इसी पूना में। और कहा कि मेरी बात नहीं मानोगे तो मैं मर जाऊंगा--आमरण अनशन। अब यह कोई दलील हुई? यह कोई तर्क हुआ? इसको तर्क कहते हैं? इसको दलील कहते हैं? यह तो सज्जनता भी नहीं है। और अगर अंबेदकर राजी हो गए देख कर कि गांधी मर जाएंगे, तो मैं मानता हूं कि अंबेदकर के मन में कहीं ज्यादा करुणा है बजाय गांधी के। नहीं तो क्या जरूरत थी राजी होने की? अंबेदकर कहते कि ठीक है, मरना हो तो मरो, तुम्हारी मर्जी। तुम्हारी बात तुम्हारे मरने से सही सिद्ध नहीं होती। वैसे तुम्हारी मर्जी; किसी को आत्महत्या करनी हो तो करे।
पर अंबेदकर ने सोचा कि इस आदमी का मरना देश के लिए महंगा होगा। और मेरी जिद्द के कारण कोई मरे, यद्यपि मेरी बात सही है... ।
अंबेदकर की बात बिल्कुल सही है। हरिजनों को हिंदुओं के साथ रहने का कोई कारण नहीं है। उन्हें कभी का अलग हो जाना चाहिए था। सिवाय अपमान और सिवाय दुर्दशा के वहां कुछ भी नहीं है। अंबेदकर बिल्कुल ठीक कह रहा था। और हिंदुओं को अगर कभी कोई बुद्धि आएगी तो वह तभी आएगी जब सारे हरिजन एक दफा इकट्ठे होकर अलग हो जाएं, तो ही इनको कुछ बुद्धि आ सकती है, नहीं तो बुद्धि आ भी नहीं सकती। अभी भी हरिजन जलाए जा रहे हैं, अब भी मारे जा रहे हैं। दलील तो अंबेदकर की ही ठीक थी, तर्कयुक्त थी, विचारपूर्ण थी। लेकिन गांधी जिद्दी! मगर लगता ऐसा है कि गांधी कोई अहिंसात्मक आंदोलन कर रहे हैं। यह अहिंसात्मक नहीं है; यह बिल्कुल शुद्ध हिंसा है।
तो न तो मीरा कोई सत्याग्रही थी, अनशन क्यों करे! और जैन मुनि है, उसका
जो अनशन है, उसका जो उपवास है, वह भी अपने को कष्ट देने की व्यवस्था है। मान्यता यह है कि जितना तुम अपने को कष्ट दोगे उतने पुण्यात्मा हो जाते हो। यह संतत्व नहीं है; यह केवल रुग्ण-दशा है। अपने को कष्ट देना रोगी चित्त का लक्षण है। मनोवैज्ञानिक उसको खास नाम देते हैं; वे कहते हैंः मैसोचिज्म।
पश्चिम में एक आदमी हुआ, मैसोच। वह अपने को मारता था कोड़ों से। कांटे चुभो लेता था अपने शरीर में। उसने कई औजार बना रखे थे। जैसे डाक्टर एक बक्सा रखता है न, ऐसा वह अपना बक्सा अपने पास रखता था, जिसमें कई तरह के औजार थे--खुद को सताने के लिए। कीले कान में डाल लेगा, छेद कर लेगा। वह मैसोच उसका नाम था। उसके नाम पर मैसोचिज्म मनोवैज्ञानिकों ने बना लिया। ऐसे लोग हैं, जो अपने को सताने में मजा लेते हैं।
अब यह जो जैन मुनि है, भूखा मर रहा है... । दिगंबर जैन मुनि होते हैं, जो अपने बाल लोंचते हैं। बाल कटवा नहीं सकते; लोंचते हैं, उखाड़ते हैं। और जब

जैन मुनि बाल उखाड़ता है तो बड़ा जलसा होता है। केश-लोंच हो रही है! सारे भक्तजन इकट्ठे होते हैं; कहते हैंः अहा!
अब यह पागलपन का लक्षण है। पागलों में एक खास किस्म का पागलपन होता है, जिसमें लोग अपने बाल लोंचते हैं। तुमको भी पता होगा। तुम्हारी पत्नी कभी-कभी लोंचने लगती है बाल। वह कोई बड़ी शांति की अवस्था नहीं है। वह सिर्फ क्रोध है। वह जीवन में एक तरह के विषाद, हताशा का लक्षण है। मगर उसको गुण माना जाता है।
तो निश्चित ही, अगर तुम दिगंबर से जाकर पूछोगे, वह पूछेगाः मीरा ने कितनी दफा केश-लोंच किया? बिल्कुल नहीं किया। तो फिर कैसे मोक्ष जाएगी? उपवास कितने किए? बिल्कुल नहीं किए। तो कैसे मोक्ष जाएगी?
उपवास मीरा करे क्यों? केश लोंचे क्यों? कारण क्या है? ये तो रोग के लक्षण हैं। ये कोई साधनाएं नहीं हैं। यह कहीं न कहीं मन में कोई विकृति है। दूसरों को चोट करने में जैसी हिंसा है वैसे ही अपने को चोट करने में भी हिंसा है। और ध्यान रखना, दूसरे को चोट करने में तो एक सुविधा है, कि दूसरा अपनी रक्षा भी कर सकता है, जवाब भी दे सकता है। खुद को चोट करने में तो तुमने बिल्कुल ही हालत खराब कर ली, अब तो कोई बचाने वाला भी नहीं है, कोई रक्षा करने वाला भी नहीं है।
दुनिया में दो तरह के हिंसक लोग हैं। एक वे, जो दूसरों की हिंसा करते हैं। वे इतने खतरनाक नहीं हैं। क्योंकि दूसरे भी तो हैं; वे अपनी रक्षा कर लेंगे। कानून है, पुलिस है, अदालत है--हजार उपाय हैं सुरक्षा के। दूसरे वे लोग, जो अपनी हिंसा करते हैं। इनके साथ कोई उपाय नहीं है। न अदालत इनको दंड देती है। अगर मेरा चले, तो जो आदमी अपनी हिंसा करता है उसको सजा मिलनी चाहिए, क्योंकि यह इस शरीर का अपमान कर रहा है। यह देह परमात्मा की उतनी ही है जितनी कोई और देह है। अगर मैं तुम्हें चांटा मारूं तो अदालत में मुकदमा चल सकता है और खुद को चांटा मार लूं तो कोई अदालत मुझ पर मुकदमा नहीं चला सकती। यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि यह देह को भी उतना ही दर्द होता है जितना तुम्हारी देह को होता है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि देह मेरी है कि तुम्हारी है?
जैन शास्त्रों में तो आत्महत्या की भी व्यवस्था है। जैन मुनि चाहे तो आमरण अनशन करके मर जाए; मर सकता है--उसकी आज्ञा है। निश्चित ही ऐसे लोग कहेंगेः यह मीरा कहां से पहुंचेगी!
फिर जैनों ने तो कृष्ण तक को नरक में डाला है। मीरा को तो कैसे पहुंचने देंगे परमपद! कृष्ण को नरक में डाले हुए हैं, जिनकी यह पूजा कर रही है; उनकी पूजा करके तो यह महानरक में जाएगी। इनके गुरु ही नरक में डले हुए हैं। कृष्ण को नरक में डालना पड़ा है उन्हें; क्योंकि जैन साधुता के हिसाब से कृष्ण साधु नहीं ठहरते। ये कैसे साधु! मोरमुकुट बांधे खड़े, सुंदर वस्त्र पहने हैं रेशम के, हाथ में बांसुरी ली है! और इतना ही नहीं, इतना ही करो, अकेले रहो तो भी ठीक है; गोपियां नाच रही हैं पास! यह तो बरदाश्त के बाहर है। तो कृष्ण को नरक में डाला है।
तुम तो कहते हो मीरा को परमपद नहीं मिला। मीरा को तो मिलेगा कैसे, उनके गोपाल भी नरक में पड़े हैं। उन्हीं के साथ वह भी पड़ी होगी।
नहीं, ये दृष्टियां गलत हैं। ये दृष्टियां भ्रांत हैं। अभी तक धर्म
ने जीवन की स्वस्थता को ठीक-ठीक अंगीकार नहीं किया। जीवन स्वस्थ होना चाहिए, संगीतपूर्ण होना चाहिए, सहज होना चाहिए, समर्पित होना चाहिए। साधना का अर्थ होना चाहिएः अहंकार का विसर्जन, न कि आत्म-दमन। साधना का अर्थ होना चाहिएः प्रभु के चरणों में समर्पण। जहां बिठाए, बैठे; जहां उठाए, उठे। अपना कर्ता-भाव खो जाए। बस यही परमपद है।
पूछा है तुमनेः "कई संत-महात्मा कहते हैं कि क्योंकि मीराबाई कृष्ण
के सगुण रूप से बंधी रही, इसलिए वह मुक्ति और परमपद को उपलब्ध न हो सकी।"
न तो वे कहने वाले संत हैं और न महात्मा हैं। निर्गुण की तो बात दूर, उन्हें अभी सगुण का भी कुछ पता नहीं है। निर्गुण की तो बात ही छोड़ दो। निर्गुण तो आगे का कदम है; वह तो सगुण की ही पराकाष्ठा है। इनमें कुछ विरोध थोड़े ही है। सगुण तो ऐसे है जैसे तुम एक नाव पर बैठे और उस पार गए। निर्गुण ऐसे है कि उस पार नाव छोड़ दी और उतर कर चल पड़े।

निर्गुण सगुण के आगे का कदम है। वह सहज है। मगर जो आदमी डर रहा है सगुण से, वह इसी पार अटका रह जाएगा। तुम्हारे महात्मा इत्यादि इसी पार बैठे हैं--धूनी रमाए हुए। मीरा उस पार गई। उसने सगुण की नाव बना ली। मगर उस पार जाकर तो फिर नाव भी छूट जाती है। कोई नाव में ही थोड़े ही बैठे रहना है। जब तक गोपाल से दूर थी, तब तक गोपाल के लिए रोई। जब तक गोपाल से दूर थी, गोपाल को पुकारा। जब तक गोपाल से दूर थी, नाची, गुनगुनाई। यह तो नाव है। यह नाम-स्मरण तो नाव है। फिर जब गोपाल में प्रविष्ट हो गई, फिर कैसी पुकार! फिर तो दुई न रही तो पुकारेगा कौन किसको! फिर तो कैसा रूप! यह तो अभी कहती है कि नैनन बसो मेरे नंदलाल! यह तो अभी, क्योंकि दूरी है। इस पार है। और प्रभु उस पार, और बड़ी दूरी है--तो पुकारती है कि मेरी आंखों में बस जाओ। मेरे हृदय में रम जाओ। मुझे सम्हालो। मुझे पकड़ लो। मेरे हाथ को हाथ में ले लो। यह तो अभी इस किनारे की बातें हैं। जैसे ही करीब आने लगेगी वैसे-वैसे ये बातें छूटती जाएंगी। जिस दिन हृदय में प्रविष्ट हो जाएगी, जिस दिन दो ज्योतियां मिल कर एक हो जाएंगी, फिर कौन किसको पुकारेगा! फिर जब पुकार न रही तो सगुण न रहा। निर्गुण अपने आप से फलित होता है।
निर्गुण का फल सगुण के ही बीज से लगता है। इनमें भेद नहीं है।
जिन्होंने भेद किया, वे कोरे पंडित हैं; दो कौड़ी की उनकी बातें हैं।
ये जामो-सबू दे उठा मेरे साकी।
अब आंखों से अपनी पिला मेरे साकी।
पिलाता चला जा, जो पीना खता है,
तो होती रहे यह खता मेरे साकी।
मेरी तश्नगी फैज तक तेरे पहुंचे,
बढ़ा और उसको बढ़ा मेरे साकी।
बकाए-हयाते-खिरद से बचा ले,
मुझे बख्श कैफे-फना मेरे साकी।
यही आरजू खत्मे सद आरजू है,
मुझे ऐसा बेखुद बना मेरे साकी।
यही मेरी मंजिल, यही मेरा हासिल,
तू कदमों में दे दे मुझको जां मेरे साकी।
मीरा की अब यही पुकार है। भक्त की यही पुकार है सदा से।
ये जामो-सबू दे उठा मेरे साकी।
भक्त कहता है कि क्या प्यालों में भर-भर कर मुझे दे रहा है! ऐसी भी क्या कंजूसी!
ये जामो-सबू दे उठा मेरे साकी।
अब आंखों से अपनी पिला मेरे साकी।
वह जो मीरा कहती हैः मोहनी मूरत सांवली सूरत, नैना बने बिसाल। आन बसो नंदलाल मेरे नैनों में! मेरी आंखों में! वे तुम्हारी जो बड़ी-बड़ी आंखें हैं, वे मेरी आंखों में झुकाओ।
अब आंखों से अपनी पिला मेरे साकी।
पिलाता चला जा, जो पीना खता है,
और अगर कोई कहता हो कि यह पीना जुर्म है, अपराध है, पाप है--
तो होती रहे यह खता मेरे साकी।
भक्त कहता हैः तो फिर मुझे फिकर नहीं है।
तो होती रहे यह खता मेरे साकी।
मेरी तश्नगी फैज तक तेरे पहुंचे,
बढ़ा और उसको बढ़ा मेरे साकी।
और मेरी प्यास को ऐसा बढ़ा, ऐसा बढ़ा कि मैं तेरे पूरे सागर को पीने में समर्थ हो सकूं।
बकाए-हयाते-खिरद से बचा ले,
यह प्यारा वचन है, ख्याल रखना।
बकाए-हयाते-खिरद से बचा ले,
मुझे बुद्धि से बचा ले, हे परमात्मा!
मुझे बख्श कैफे-फना मेरे साकी।

मुझे--समर्पित हो सकूं, तुझमें लीन हो सकूं, तल्लीन हो सकूं--ऐसा आशीष दे।
बकाए-हयाते-खिरद से बचा ले,
मुझे बख्श कैफे-फना मेरे साकी।
यही आरजू खत्मे सद आरजू है,
मुझे ऐसा बेखुद बना मेरे साकी।
भक्त यही मांगता है कि मुझे बेखुद बना दे। मुझसे मेरा-पन ले ले। मेरा अहंकार छीन ले। मुझमें मैं-भाव न रह जाए।
यही मेरी मंजिल, यही मेरा हासिल,
एक ही मेरी मंजिल है, और एक ही मेरी आकांक्षा हैः
तू कदमों में दे दे मुझको जां मेरे साकी।
तेरे कदमों में मुझे जगह मिल जाए, तेरे चरणों में जगह मिल जाए।
लेकिन चरणों में जगह मिलना तो बस नाव की ही बात है अभी। जैसे ही चरणों में जगह मिली, जैसे ही दीये इतने करीब आए, ज्योतियां एक हो जाती हैं। जिसने चरण पकड़े परमात्मा के, जल्दी ही उसके हृदय में प्रविष्ट हो जाता है। कहीं से पकड़ो उसे। चरण से पकड़ो--मगर पकड़ो। उससे जुड़े कि एक हुए। उससे जुड़े तो दो नहीं रह सकते।
परमपद, भक्त उसकी आकांक्षा भी नहीं करता है। वह तो कहता हैः तेरे चरणों में पड़ा रहूं। मगर इन्हीं चरणों में पड़ने के कारण पहुंच जाता है, परमपद उपलब्ध हो जाता है।
प्रेम मुक्ति है; भक्ति मोक्ष है। और जो प्रेमरहित हैं और निर्गुण की बकवास में लगे हैं और निराकार की बातें कर रहे हैं--उनसे सावधान रहना। जिन्होंने अभी सगुण को भी नहीं जाना, वे निर्गुण को क्या खाक जानेंगे? जो अभी आकार को नहीं पहचान सके, वे निराकार को कैसे पहचानेंगे? पहले आंखों को, आकार को पहचानने के योग्य बनाओ, फिर निराकार भी आता है। क्योंकि निराकार आकार के पीछे ही छिपा है।

पांचवां प्रश्नः मैं हार गया, तब भार गया; और झुक गया, तो रुक गया। अब
आप मिले, प्रभु साथ करें!

पूछा है चंद्रकांत ने। प्रश्न ही नहीं है--चंद्रकांत की पूरी आत्मकथा है। ऐसे वर्षों से मुझसे लड़ते और जुड़ते हैं। लड़-लड़ कर पाया है कि लड़ने में कुछ सार नहीं। लड़ता है, वही पाता है कि लड़ने में कुछ सार नहीं। लड़-लड़ कर चिंता ही पैदा होती है। मुझसे लड़ना--तुम अपने से ही लड़ रहे हो। मुझसे लड़ना छोड़ देना, अंततः तुम्हारे भीतर की सारी लड़ाई की समाप्ति हो जाएगी।
यह प्रश्न नहीं है--चंद्रकांत की पूरी आत्मकथा है। और यह सबके लिए उपयोगी हो सकता है। क्योंकि कुछ न कुछ लड़ाई जारी रहती है। क्योंकि कुछ न कुछ अहंकार सभी के भीतर है। तुम जब आकर मुझसे कहते भी हो कि सब छोड़ दिया, तब भी कहां सब छोड़ते, कहते ही हो! कहते हो सब समर्पित किया, तब भी कहां करते हो! वह भी अभी औपचारिक है। मंशा है, भाव है और भाव अच्छा है, मगर स्थिति बनते-बनते देर लगेगी। और मैं यह भी नहीं कहता कि लड़ना मत। लड़ने की थोड़ी भी वृत्ति शेष हो, उसे निकाल ही लेना; लड़ ही लेना। और लड़ने से कोई हानि भी नहीं है, क्योंकि जो न कहना जानता है, कभी जब हां कहेगा तो उसकी हां का मूल्य होता है।
चंद्रकांत में बड़ी संभावना है। और चंद्रकांत को मुझ तक आने में औरों
से कहीं ज्यादा कठिनाई हुई है। चंद्रकांत बुनियादी रूप से कम्युनिस्ट थे। कम्युनिस्ट से संन्यासी तक लाना, मैं भी जानता हूं, लंबा मामला है। मगर हिम्मत उन्होंने नहीं छोड़ी। संदेह थे, शक-शुबहे थे। मगर कुछ भी रहा हो और कितना ही मेरी बात जंची हो, न जंची हो कभी--एक बात उन्होंने नहीं छोड़ीः लड़ते रहे, मगर मुझे छोड़ा नहीं। पीछे तो लगे ही रहे। लड़ाई जारी रखी। विवाद जारी रहा मन में। जब-तब मुझे पत्र भी लिखते रहे। मगर एक बात, कि मुझसे से जो लगाव था, उसमें कभी कोई कमी नहीं आई। मेरी बात से राजी हुए, न राजी हुए; कभी मेरी बात ठीक लगी, कभी नहीं ठीक लगी। मगर मैं जो ठीक लग गया था, उसमें कभी कोई कमी नहीं पड़ी।

इसलिए मैं जानता था कि धीरे-धीरे क्रांति तो घटने ही वाली है। जो इतनी हिम्मत से लगा रहा है और हिम्मत होती है तो ही लगा रह सकता था; नहीं तो हजार मौके थे तब मुझसे छिटक जाते। और बहुत उन जैसे मित्र थे जो छिटक गए। एक समय था, मेरे पास बहुत से कम्युनिस्टों का आना-जाना था। अधिक उनमें से छिटक गए। चंद्रकांत इस अर्थ में अनूठे हैं।
"मैं हार गया, तब भार गया"--कहा है।
ठीक कहा है। हारोगे, तभी भार जाएगा। और हार में जीत है। और हार में जीत है--यही तो सारी शिक्षा है। यही तो सारी सिखावन है--सब संतों की। वही तो मीरा कहती है। वही तो कबीर कहते हैं।
"मैं हार गया, तब भार गया; और झुक गया, तो रुक गया।"
और रुक जाओ तो सब हो जाए। भागे-भागे हो--तर्क में, विचार में, संदेह में, चिंतन में। रुक जाओ तो ध्यान हो जाए।
"अब आप मिले... "
रुकोगे तो ही मैं मिल सकता हूं; क्योंकि मैं रुका हूं और तुम भाग रहे हो, तो मिलन कैसे हो! मैं हाथ बढ़ाए खड़ा हूं, लेकिन तुम रुकते नहीं एक क्षण, तुम भागे जाते हो। तुम तो चकरी की तरह घूमते हो! मैं रुका हूं और तुम भाग रहे हो, तो दोस्ती कैसे हो? कभी-कभी भागते-भागते करीब भी आ जाते हो, फिर दूर निकल जाते हो। मैं निर्भार हूं और तुम अगर भारी हो, तो साथ कैसे बने? कुछ-कुछ मेरे जैसे होने लगोगे तो ही साथ बनेगा। अगर थोड़ा भार गया है और हार में रस आना शुरू हुआ है और अगर झुकने का मजा समझ में आया है... और झुकने में मजा है, क्योंकि जो झुका वही सम्राट हो गया है। और जो रुका, वही पहुंच गया है। लाओत्सु का प्रसिद्ध वचन हैः खोजो, और खो दोगे। रुक जाओ, और पा लोगे। क्योंकि खोजने वाले को दौड़ना पड़ता है। भागता है यहां-वहां--यहां खोजूं, वहां खोजूं; इस दिशा में, उस दिशा में! जब सारी खोज छोड़ कर कोई बैठ जाता है, जहां बैठे वहीं सब हो गया। वह कल कहा नहीं मीरा नेः जहां बिठाए तित बैठूं! जहां बिठा दिया वहीं बैठ गए, तो सब हो जाएगा। कुछ करना नहीं पड़ता; बिना किए हो जाता है।
यही तो चमत्कार है इस अस्तित्व का कि यहां जो करना चाहते हैं, खाली रह जाते हैं, और जो कुछ नहीं करना चाहते, भर जाते हैं। जो पाना चाहते हैं, नहीं खोज पाते। और जो पाने तक की आकांक्षा छोड़ कर बैठ जाते हैं, उन्हें मिल जाता है।
"और झुक गया, तो रुक गया। अब आप मिले... "
ठीक है, चंद्रकांत, अब थोड़ा मिलन हो रहा है। अब थोड़ी-थोड़ी संगति बैठ रही है। अब थोड़ा-थोड़ा मेरे हाथ में तुम्हारा हाथ रुक रहा है। सावधान रहना। पुरानी आदतें फिर हमला न करें। पुरानी आदतें मजबूत होती हैं। सावधान रहोगे तो ही धीरे-धीरे वे विदा होंगी। सावधान रहोगे तो विदा हो ही जाएंगी। लेकिन यह जो नया अनुभव हो रहा है झुकने का, निर्भार होने का, रुकने का--इसको थोड़ा मौका देना, क्योंकि अभी यह नया पौधा है, ताजा पौधा है, कोमल है--पुराना झाड़ इसे नष्ट न कर दे! इसकी सुरक्षा करना। पुराने की जड़ काटते रहना। पुराने की शाखाएं काटते रहना। और पुराने को काट-काट कर इस नये पौधे की जड़ में खाद की तरह डालते रहना, तो यह नया पौधा मजबूत होगा। इस नये पौधे को तुम्हारी सारी पुरानी आदतों को खाद की तरह डाल दो। जल्दी ही यह भी एक बड़ा वृक्ष बन जाएगा। जल्दी ही इसमें फूल आएंगे। जल्दी ही इस पर पक्षी बसेरा करेंगे। जल्दी ही इसके नीचे यात्री बैठ कर विश्राम करेंगे।
एक बड़ा वृक्ष होने की संभावना सभी की है। मगर हम गलत से जुड़े रह जाते हैं। अहंकार से जुड़े अर्थात गलत से जुड़े। मुझसे जुड़ना है तो अहंकार तो छोड़ना ही होगा।
छूट रहा है धीरे-धीरे। पहली-पहली किरणें आने लगी हैं। प्राची लाल हो
गई है। पहली झलक सुबह की करीब है। इसका स्वागत करना।
"अब आप मिले, प्रभु साथ करें।"
मैं तो बहुत दिन से साथ किए हूं। तुम्हीं साथ नहीं थे, चंद्रकांत। अब तुम भी साथ हो गए तो बात खत्म हो गई।

आखिरी प्रश्नः मैं जो पा रहा हूं, उसे बांटना चाहता हूं। लेकिन शब्द नहीं जुड़ते हैं। मैं क्या करूं?

स्वाभाविक है। जो मिल रहा है वह ऐसा है नहीं जिसे तुम आसानी से शब्दों में बांध सको। लेकिन कोशिश करो। धीरे-धीरे कुशलता आएगी। नये-नये अनुभव हैं तो हमारे पास उन अनुभवों को प्रकट करने के शब्द नहीं होते।
जब पहली दफे तुम्हें ध्यान होता है तो बड़ी मुश्किल हो जाती हैः कैसे कहें? क्या कहें? क्या हुआ है? जब पहली दफे प्रेम होता है, तब भी मुश्किल हो जाती है। जबान लड़खड़ाती हैः क्या कहें? कैसे कहें? और जो भी कहो, लगता है कुछ पूरा नहीं। जो भी कहो, लगता है कुछ चूका-चूका। जो भी कहो, लगता है कि निशाना नहीं लगा।
मगर धीरे-धीरे कोशिश करो। मेरे पास जिन मित्रों को भी कुछ हो रहा है,
उन सभी को बांटना है। बांटना ही है, क्योंकि तुम अगर बांटोगे, तो ही यह बढ़ेगा। तुम बांटोगे तो और मिलेगा। तुम जितना बांटोगे उतना मिलेगा। अगर तुमने जरा कंजूसी की और बांटा नहीं, या जरा सुस्ती की और बांटा नहीं, तो तुम पाओगे कि बढ़ना बंद हो गया। यह कुआं ऐसा है कि जितना उलीचोगे उतने ही नये झरने इसको भरते जाएंगे। मगर तकलीफ तो होती है।
मेरी आंखों ने जो देखा है, दिखलाया नहीं जाता
मेरे दिल ने जो समझा है वो समझाया नहीं जाता
मेरे सर में अजल से गूंजता है राग वहदत का
मगर कुछ बात है ऐसी, अभी गाया नहीं जाता
मेरी आंखों में है जल्वा तेरा, दिल में तेरा मसकन
मगर मुश्किल तो ये है, फिर भी तू पाया नहीं जाता
है तेरे हुस्ने-आलमताब से मुझको शिकायत तो
मगर हरफे-शिकायत लब पे भी लाया नहीं जाता
तेरे दम से हुई कायम शबाबो-शेर की दुनिया
शबाबो-शेर में लेकिन तुझे पाया नहीं जाता
कठिनाइयां हैं। जो खूब कहने में कुशल हैं, वे भी सफल नहीं हुए। रवींद्रनाथ मर रहे थे। और किसी ने कहा कि आप तो धन्यभागी हैं, आपने छह हजार गीत लिखे हैं। इतने गीत दुनिया में किसी और महाकवि ने नहीं लिखे हैं। पश्चिम में बड़ा महाकवि हुआ शैली, उसने भी तीन हजार लिखे हैं। और आपके सब गीत ऐसे हैं कि संगीत में बंध जाते हैं। आप अपूर्व हैं। आप शांति से विदा लें। लेकिन रवींद्रनाथ ने आंख खोलीं और कहाः कैसी शांति? मैं तो परमात्मा से प्रार्थना कर रहा हूं कि हे प्रभु, यह तू क्या कर रहा है? अभी तो मैं साज बिठा पाया था और यह मेरे जाने की घड़ी आ गई! किन गीतों की बात कर रहे हो? जो गीत मैंने गाए, वे वे गीत नहीं हैं जो मैं गाना चाहता था। जो मैं गाना चाहता था, वह तो अभी भी अनगाया मेरे भीतर पड़ा है। जो मैं गाना चाहता था, वह अभी भी मैं गाना चाहता हूं। अभी कहा कहां!
रवींद्रनाथ कहते हैं कि अभी तो मैंने साज बिठाया था। अभी तो यह जो ठोंक-पीट, तबला इत्यादि ठोंक रहा था, तार कस रहा था, इसकी जो आवाज हो रही थी--यही वे छह हजार गीत हैं। अब तार कस गए थे, तबला ठीक बैठ गया था, अब घड़ी करीब आ रही थी कि लगता था अब गा सकूंगा जो गाना है, और यह जाने की घड़ी आ गई। लेकिन मैं तुमसे कहना चाहूंगा कि रवींद्रनाथ अगर और भी सौ साल जी जाते तो भी बात ऐसी की ऐसी रहती, क्योंकि जो गाना है वह तो कभी गाया ही नहीं जाता। हमेशा ऐसा ही लगता है कि बस साज तैयार है, अब तैयार है, अब तैयार है, और तैयार हो गया। बस साज तैयार होता जाता है, लेकिन जो कहना है वह कहा नहीं जा सकता।
तो तुम्हारी अड़चन मेरी समझ में है। रवींद्रनाथ जैसे व्यक्ति की भी अड़चन थी--जो कहने में बड़ा कुशल था; जो गाने में कुशल था; जिसकी अभिव्यक्ति अपूर्व थी; जिसकी अभिव्यक्ति वैसी ही थी जैसी वेद के ऋषियों की है। उतनी ही कुशलता। उतना ही माधुर्य। लेकिन वे भी इतना ही कहते हैं कि मैं साज बिठा पाया था। तो गा तो तुम न पाओगे, मगर फिर भी गाना है। और नाच तो तुम न पाओगे, फिर भी नाचना है। इसकी फिकर मत करना कि तुम्हारा नाच कितना कुशल

है। तुम इसकी ही फिकर करना कि तुम्हारे नाच को देख कर किसी को नाचने की धुन आ जाए। बस पर्याप्त हो गया।
तुम यह मत सोचना कि मेरा गीत कितना पूर्ण है। कोई गीत पूर्ण नहीं है। पूर्ण भाषा में आता ही नहीं। तुम इतनी ही फिकर करना कि तुम्हें गीत गाते देख कर किसी का कंठ खुल जाए। इतनी ही फिकर करना कि तुम्हारा गीत किसी पर चोट कर दे; किसी के तार कंपा दे। तुम्हारे गीत की लय में बंध कर कोई उसी खोज पर निकल जाए जिस खोज पर तुम मेरा गीत सुन कर निकल गए हो।
जिसको भी मिले, उसके लिए यह अनिवार्य शर्त है कि वह बांटे। जितना मिले उतना बांटे। जिस तरह बन सके उस तरह बांटे। कोई नाच कर बांटे, कोई गाकर बांटे। कोई चुप होकर बांटे। कोई शांत होकर बांटे। मगर बांटे। अपना रास्ता खोजे। क्योंकि बांटने से बढ़ती है यह संपदा; न बांटने से घट जाती है। संसार की संपदाएं बांटने से घट जाती हैं; न बांटो तो इकट्ठी होती हैं। परमात्मा की संपदा बिल्कुल उलटी हैः बांटने से बढ़ती है; न बांटो तो घट जाती है।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
पांचवां प्रवचन

पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे

माई री मैं तो लियो गोविन्दो मोल।
कोई कहै छाने कोई कहै चौड़े, लियो री वजंता ढोल।
कोई कहै मुंहगो कोई कहै सुंहगो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल।
याही कूं सब लोग जाणत हैं, लियो री आंखी खोल।
मीरा को प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जनम के कौल।

मैं गोविन्द गुण गाणा।
राजा रूठै नगरी राखै, हरि रूठ्या कहं जाणा।
राणा भेजा जहर पियाला, इमरत करि पी जाणा।
डिबिया में भेज्या ज भुजंगम, सालिगराम करि जाणा।
मीरा तो अब प्रेम दीवानी, सांवलिया वर पाणा।

पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे।
मैं तो मेरे नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
लोग कहैं मीरा भई बावरी, सास कहैं कुलनासी रे।
विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीरा हांसी रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अविनासी रे।

परमात्मा की खोज में तो बहुत लोग निकलते हैं, लेकिन खोज नहीं पाते, क्योंकि मूल्य चुकाने की तैयारी नहीं होती; मुफ्त पाना चाहते हैं; बिना कुछ दिए पाना चाहते हैं; जरा सी भी आंच न आए, और पाना चाहते हैं; एक कांटा पैर में न चुभे, और पाना चाहते हैं। इसलिए पाने की आकांक्षा भी होती है, फिर भी हाथ कुछ नहीं लगता है। और जब हाथ न लगे तो आदमी का अहंकार बहुत कुशल है, जब परमात्मा हाथ नहीं लगता तो फिर उनका तर्क वही होता है जो लोमड़ी का तर्कः जब अंगूर हाथ नहीं लगते, लोमड़ी कहती है खट्टे हैं। जब परमात्मा हाथ नहीं लगता तो लोग सोचने लगते हैं परमात्मा है ही नहीं--होता तो हाथ लगता। लोग नास्तिक बन जाते हैं।
आस्तिक बनने के लिए कोई कीमत नहीं चुकाई। और जब बिना कीमत चुकाए परमात्मा की कोई खबर नहीं मिलती तो नास्तिक बन जाते हैं।
जब भी मैं किसी नास्तिक को देखता हूं तो मैं हारे हुए आस्तिक को पाता हूं। किसी जन्म में, किसी यात्रा में उसने बड़ी कोशिश की होगी; मगर कोशिश ऐसी रही होगी कि अपने को बचा कर की होगी। पूजा का थाल सजाया होगा। पूजा के थाल में दीया जलाया होगा; लेकिन अपने को नहीं जलाया। और तुम्हारा पूजा का थाल व्यर्थ है, अगर तुम्हीं उसमें नहीं जल रहे हो। फूल चढ़ाए होंगे; लेकिन वे फूल अपने प्राणों के नहीं थे, वे किन्हीं वृक्षों पर खिले फूल थे। स्वयं में खिले फूलों को जो चढ़ाता है--वही पाता है। गीत भी गुनगुनाया होगा, भजन भी किया होगा, कीर्तन में भी सम्मिलित हुए होओगे; लेकिन उस कीर्तन में तुम्हारे अपने स्वर नहीं थे; सब उधार था, बासा था। औपचारिकता थी; हार्दिकता नहीं थी; दीवानापन नहीं था।
और जब तक प्रेम पागल न हो, तब तक प्रेम ही नहीं; पागल होकर ही प्रेम का
पद पाता है। प्रेम बिना पागलपन के घृणा से भी बदतर है, क्योंकि थोथा और नपुंसक होगा। घृणा में तो कुछ बल होता है। और जब नहीं मिलता परमात्मा तो विषाद की उन घड़ियों में मन अपने को यही समझा कर सांत्वना देता है कि होता तो मिलता; है ही नहीं। फिर एक इनकार पैदा होता है। एक नास्तिकता का जन्म होता है। फिर आदमी यही कहे चला जाता है कि ईश्वर है ही नहीं; प्रमाण कहां है?
प्रमाण का प्रश्न ही नहीं है। मूल्य जिसके पास है उसके लिए प्रमाण है। जो देने को राजी है वह पाएगा। और देना भी ऐसा नहीं है कि थोड़ा-बहुत

देने से चल जाए--पूरा ही पूरा देना होगा। क्योंकि परमात्मा अखंड है; उसके टुकड़े नहीं हो सकते। ऐसा नहीं है कि हम आधा देते हैं तो थोड़ा सा परमात्मा मिल जाए; कि जितना हम देते हैं उतना मिल जाए। परमात्मा के खंड नहीं हो सकते। तो तुम जब तक अखंड ही समर्पित न होओगे, तब तक उसे न पाओगे। तुम्हारी समग्रता ही चढ़नी चाहिए। शहीद हुए बिना परमात्मा को कोई पाता नहीं।
इसलिए सूफी फकीरों ने शहादत शब्द के दो अर्थ लिए हैं--और बड़े मूल्यवान अर्थ हैं। शहादत का एक तो अर्थ होता हैः जो शहीद हो गया; और एक अर्थ होता हैः जो परमात्मा का साक्षी हो गया। शहादत का अर्थ होता हैः साक्षी। और दोनों बातें जुड़ी हैं। दोनों एक ही घटना के हिस्से हैं, पहलू हैं। जो परमात्मा के चरणों में शहीद हो गया, वही उसका गवाह होता है; वही उसका साक्षी होता है; वही उसे देख पाता है। जो मिटता है वही देख पाता है। जिसने अपने को बचाया वह कितना ही दौड़े, कितना ही शोरगुल मचाए--सब व्यर्थ है। वह कितना ही तर्क करे, विचार करे; पूजा, विधि-विधान करे; तंत्र-मंत्र, योग में उलझे--सब व्यर्थ है, सब असार जाएगा।
एक ही बात करने जैसी है--वह हैः अपने सारे प्राणों को उसके चरणों में समर्पित कर देना। और निश्चित ही अभी उसका हमें पता नहीं है। इसलिए जो व्यक्ति अज्ञात के प्रति समर्पण कर सकता है, वही उसे पा सकता है। मिल जाए परमात्मा, फिर तो समर्पण करना बहुत आसान है। लेकिन अड़चन यही है कि मिलता तब है, जब समर्पण हो जाए।
तो समर्पण तो जुआरी ही कर सकते हैं। जिन्हें लाभ इत्यादि की चिंता है,
जो हिसाब-किताब कर रहे हैं--भक्ति का मार्ग उनके लिए नहीं। यह तो हिम्मतवर दुस्साहसियों का मार्ग है।
आज के सूत्र इसी दुस्साहस की तरफ खबर देने वाले सूत्र हैं।
माई री मैं तो लियो गोविन्दो मोल।
मीरा कहती हैः मैंने तो खरीद लिया गोविंद को।
कैसे खरीदा मीरा ने? कोई कैसे खरीदता है परमात्मा को?
मिट कर खरीदा। अपने को गंवा कर पाया। अपनी गर्दन रख दी वहां उसके चरणों में। बस वही बाधा थी। तुम्हारा सिर ही बाधा है। तुम्हारा अहंकार ही बाधा है। उसी को चढ़ा दिया, तो परमात्मा तुम्हारा हो जाता है। फिर--
देखता हूं तो तेरा रूप नजर आता है
और सुनता हूं तो आवाज तेरी सुनता हूं
देखता हूं तो तेरा रूप नजर आता है
और सुनता हूं तो आवाज तेरी सुनता हूं
सोचता हूं तो फकत याद तेरी आती है
जिक्र करता हूं तो मैं जिक्र तेरा करता हूं खामुशी मेरी तेरा नगमाए-ख्वाबीदा है
मेरी आवाज? जो तू कहता है, मैं कहता हूं
जां तो जां, जिस्म भी रौशन है तेरी लौ से मेरा
तेरे ही नूर से मैं शमा सिफ्त जलता हूं
भूख लगती है तो लगती है तेरे प्यार की भूख
चरण अमृत से ही मैं प्यास बुझा सकता हूं
इधर तुम मिटे कि क्रांति हुई। तुम ही पर्दे की तरह पड़े हो अपनी आंख पर।
लोग मुझसे पूछते हैं कि परमात्मा पर पर्दा क्यों है?
परमात्मा पर पर्दा है ही नहीं। परमात्मा बेपर्दा है। परमात्मा नग्न खड़ा है। तुम्हारी आंख पर पर्दा है। तुम्हारी आंख पर जाली है। तुमने आंख पर पत्थर के चश्मे लगा रखे हैं। धारणाएं, सिद्धांत, शास्त्र, मंदिर-मस्जिद, पंडित-पुरोहित--सब तुम्हारी आंखों में भर गए हैं। और उनकी वजह से परमात्मा के लिए प्रवेश की कोई जगह नहीं है। तुम्हारी आंखें अतिशय से भरी हुई हैं। यह गर्दन झुके। यह सिर चढ़े। तो फिर--
देखता हूं तो तेरा रूप नजर आता है
फिर जहां तुम देखोगे--आंख खोलोगे तो वही; आंख बंद करोगे तो वही।
और सुनता हूं तो आवाज तेरी सुनता हूं

फिर पक्षियों की चहचहाहट में और आकाश से गुजरते हुए बादलों की गड़गड़ाहट में और वृक्षों से सरकती हुई हवाओं की ध्वनि में और पानी के झर-झर में--सब तरफ उसी की आवाज है। उसके अतिरिक्त कोई है ही नहीं। यही आश्चर्य है कि कैसे हम उसे देखने से वंचित हैं! जो सब तरफ मौजूद है--वृक्षों की हरियाली में और आकाश की नीलिमा में और लोगों की आंखों में और लोगों के आंसुओं में और मुस्कुराहटों में--सब तरफ जो मौजूद है। मेरे बोलने में और तुम्हारे सुनने में जो मौजूद है। इधर तुम्हें घेरे हुए है। तुम जहां रहो, सदा तुम्हें घेरे हुए है। और आंख बंद करो तो भीतर भी वही है।
सोचता हूं तो फकत याद तेरी आती है
जिक्र करता हूं तो मैं जिक्र तेरा करता हूं
फिर तुम जो बोलोगे वह उसी का नाम है। जो बोलूं सो हरिकथा! फिर तुम जो बोलोगे, वही उसकी कथा है। अभी भी तुम जो बोल रहे हो, वह उसकी ही कथा है; सिर्फ तुम पहचानते नहीं।
खामुशी मेरी तेरा नगमाए-ख्वाबीदा है
फिर तुम बोलोगे तो उसकी कथा और तुम चुप रहोगे तो भी उसका गीत तुम्हारे भीतर गूंजेगा--उसका अनाहत नाद!
मेरी आवाज? जो तू कहता है, मैं कहता हूं
फिर तुम्हारी कोई आवाज न रह जाएगी। यह ढंग है गोविंद को मोल लेने का--
जब तुम न रह जाओ; तुम्हारी आवाज न रह जाए; तुम्हारा अपना कुछ न रह जाए।
जां तो जां, जिस्म भी रौशन है तेरी लौ से मेरा
प्राणों की तो बात छोड़ो, मेरी देह भी तेरी ही ज्योति से दीप्त है।
जां तो जां, जिस्म भी रौशन है तेरी लौ से मेरा
तेरे ही नूर से मैं शमा सिफ्त जलता हूं
और फिर तुम पहचानोगे कि तुम किसके नूर से जल रहे हो; कौन तुम्हारे इस मिट्टी के दीये में ज्योति बना है; यह तुम्हारी चेतना क्या है; यह तुम्हारा होश क्या है; यह तुम्हारा बोध क्या है। यह परमात्मा की किरण है तुम्हारे भीतर। यह तुम्हारी देह में जो चमक रहा है, यह तुम्हारी आंख से जो झांक रहा है, यह जो मुझे सुन रहा है इस क्षण खामोशी से--वही है।
जां तो जां, जिस्म भी रौशन है तेरी लौ से मेरा
तेरे ही नूर से मैं शमा सिफ्त जलता हूं
भूख लगती है तो लगती है तेरे प्यार की भूख
चरण अमृत से ही मैं प्यास बुझा सकता हूं
लेकिन यह क्रांति तभी घटती है गोविंद को मोल लेने की, जब तुम अपने को बेच दो।
माई री मैं तो लियो गोविन्दो मोल।
किसी ने इतनी हिम्मत से इस तरह की बात नहीं कही कि मैंने परमात्मा को खरीद लिया। यह तो दीवाने ही कह सकते हैं। यह तो बावरे ही कह सकते हैं। यह दुकानदारों की बातचीत नहीं है। यह तो दुस्साहसी ही कह सकते हैं। यह तो वे ही कह सकते हैं जिन्होंने अपने को समर्पित कर दिया और जिनके पास अहंकार का जरा सा भी स्वर नहीं बचा है।
कोई कहै छाने कोई कहै चौड़े...
कुछ लोग कहते हैं कि परमात्मा को पाना हो तो छिप-छिप कर पाना होता है।
और कोई कहते हैं कि परमात्मा को पाना हो तो छिप-छिप कर कैसे पाओगे? मंदिर में, मस्जिद में! खुलेआम, लोगों के बीच में पाना होता है। कुछ लोग कहते हैं कि परमात्मा को अंतरतम में पाना होता है--छिप-छिप कर। और कुछ लोग कहते हैं कि परमात्मा को इस विराट ब्रह्मांड में पाना होता है--खुलेआम।
कोई कहै छाने...
कोई कहता हैः छिप कर पाओ।
कोई कहै चौड़े...
कोई कहता हैः खुलेआम पाओ।
कोई कहता हैः बाहर पाओ। कोई कहता हैः भीतर पाओ।
दो तरह के धर्म हैं पृथ्वी पर--एक अंतर्मुखी और दूसरे बहिर्मुखी।
अंतर्मुखी धर्म कहते हैंः आंख बंद करो, अपने भीतर जाओ; बाहर नहीं है प्रभु--भीतर है। जैन, बौद्ध अंतर्मुखी धर्म हैं। ईसाइयत, हिंदू, इस्लाम

बहिर्मुखी धर्म हैं। परमात्मा सब तरफ मौजूद है। आंख खोलो--पूरी आंख खोलो, ठीक से आंख खोलो और उसे पा लो।
कोई कहै छाने कोई कहै चौड़े...
कोई कहता हैः पास है परमात्मा, कहीं दूर नहीं जाना। कोई कहता हैः दूर
है परमात्मा, बड़ी यात्रा करनी होगी।
... लियो री वजंता ढोल।
और मीरा कहती हैः मैंने न तो इसकी फिकर की कि छिप कर पाऊं, चोरी-चुपके, खामोशी में, मौन में, जंगल में भाग कर, पहाड़ में छिप कर, किसी गुफा में बैठ कर पाऊं उसे; न मैंने मंदिर-मस्जिद, जो व्यावहारिक, सामाजिक, औपचारिक व्यवस्था है, उसमें परमात्मा को खोजा। मैंने तो ढोल बजा कर खोजा।
... लियो री वजंता ढोल।
न भीतर, न बाहर; मैंने तो ढोल बजा कर खोजा। न छिप कर, न चोरी; न सामाजिक, औपचारिक व्यवस्था, विधि-विधान से। मैंने तो बड़े अनूठे ढंग से उसको पाया। मैंने तो भीतर जो पड़ी थी मृदंग, उसको बजा कर पाया।
ख्याल रखना, इसमें एक बड़ी अदभुत बात मीरा कह रही है! जब भीतर का ढोल बजता है तो बजता तो भीतर है, लेकिन बाहर भी सुनाई पड़ता है। जब भीतर कोई गीत पैदा होता है तो बाहर प्रकट होता है। गीत के माध्यम से बहिर्मुखता, अंतर्मुखता जुड़ जाती हैं। गीत सेतु बन जाता है--बाहर-भीतर को जोड़ देता है। इसलिए मीरा कहती हैः न तो मैंने बाहर परमात्मा को खोज कर पाया, न भीतर; मैंने तो इस ढंग से पाया कि बाहर-भीतर जुड़े थे। एक हो गए थे। न कुछ बाहर था, न कुछ भीतर था। एक ही था। वही भीतर था, वही बाहर था।
... लियो री वजंता ढोल।
और हम सब उस अपूर्व नाद को अपने भीतर लिए बैठे हैं। वही नाद बाहर भी बज रहा है। वही नाद तुम्हारे भीतर भी बज रहा है। एक ही नाद से सब जुड़ा है। लेकिन हम करीब-करीब मूर्च्छित हैं। हमें कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा है; न हमें कुछ दिखाई पड़ रहा है। हमारी सारी संवेदनशीलता जड़ हो गई है। और तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरुओं ने तुम्हारी संवेदनशीलता को एकदम नष्ट कर दिया है। क्योंकि वे कहते हैंः स्वाद लेना मत। वे कहते हैंः प्रेम से स्पर्श करना मत। वे सिखाते हैं तुम्हें एक तरह की उदासी; एक तरह की संवेदन-शून्यता, जड़ता। वे सिखाते हैं इंद्रियों का मारना--धीरे-धीरे इंद्रियों को मार डालो।
लेकिन जिसने अपनी इंद्रियां मार डालीं, वह खुद भी मर जाता है। क्योंकि इंद्रियों में तुम्हारी चेतना का आवास है।
ठीक-ठीक जागा हुआ व्यक्ति स्वाद नहीं लेता, यह बात गलत है। ठीक-ठीक जागा हुआ व्यक्ति ही ठीक स्वाद लेता है। उसका स्वाद बड़ा गहरा हो जाता है।
महात्मा गांधी के आश्रम में अस्वाद व्रत था। मेरे आश्रम में स्वाद व्रत है। गांधीजी के आश्रम में भोजन में स्वाद लेना पाप था। इस स्वाद से बचाने के लिए वे साथ में नीम की चटनी भी रखवा देते थे, ताकि अगर कहीं बीच-बीच में स्वाद आने लगे, थोड़ा नीम की चटनी मुंह में डाल लो।
नीम की कोई चटनी होती है? लेकिन यह जीभ को मारने का ढंग है।
पश्चिम का एक बड़ा विचारक, लुई फिशर, गांधी को मिलने आया था। भोजन करने बैठे, तो उसकी थाली में भी नीम की चटनी रखवा दी। उसे तो कुछ पता नहीं, उसने और चीजें चखीं तो वह भी चखी। वह तो घबड़ा गया कि यह जहर किसलिए है! उसने पूछा तो गांधीजी ने समझाया होगा अस्वाद व्रत। उसने सोचा कि अब मेजबान का अपमान करना तो ठीक नहीं। तो उसने सोचा कि बजाय पूरे भोजन को खराब करने के एकबारगी इस गोले को गटक ही जाओ, पानी पी लो, फिर बाकी भोजन ठीक से करो; नहीं तो यह तो पूरा भोजन खराब कर देगा। तो वह पूरा गोला गटक गया। और गांधी ने तत्क्षण कहा अपने रसोइए कोः और लाओ! लुई फिशर को चटनी बहुत पसंद पड़ी है। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि वह फिर चटनी बुला ली उन्होंने। स्वाद मारा जा सकता है। जीभ को अगर जहरीली चीजें देते रहो, देते रहो, जीभ धीरे-धीरे संवेदन-शून्य हो जाएगी। संवेदन-शून्य जीभ हो जाएगी तो कुछ तुम्हारी आत्मा में भी जड़ हो जाएगा। आंखों को धीरे-धीरे इस तरह कर लो कि कुछ सौंदर्य न देखें, फूल न देखें, चांद-तारे न देखें, सुंदर स्त्रियां, सुंदर पुरुष, सुंदर बच्चे--आंखों को धीरे-धीरे सौंदर्य से हटा लो। सूरदास

ने इसीलिए आंखें फोड़ ली थीं, कि सौंदर्य को देखने से कहीं वासना पैदा होने का डर बना रहता है।
आंखें तो फोड़ लीं, लेकिन उसी के साथ आत्मा की एक क्षमता भी नष्ट हो जाएगी। और यही आंखें जो स्त्रियों का सौंदर्य देखती हैं, यही तो परमात्मा का सौंदर्य भी देखेंगी। और यही जीभ जो भोजन का स्वाद लेती है, यही तो परमात्मा का स्वाद भी लेगी। और यही हाथ जो लोगों को छूते हैं, यही तो उसके भी चरणों का स्पर्श करेंगे।
इंद्रियों को मारना मत। इंद्रियों को जगाना है। इंद्रियों को पूरी त्वरा देनी है, तीव्रता देनी है, सघनता देनी है। इंद्रियों को प्रांजल करना है, स्वच्छ करना है, शुद्ध करना है। इंद्रियों को कुंवारा करना है। आंखें ऐसी हो जाएं शुद्ध कि जहां भी तुम देखो वहीं परमात्मा दिखाई पड़े।
यह फर्क समझ लेना तर्क का। यह विचार-भेद समझ लेना।
एक हैं जो डरते हैं कि कहीं सौंदर्य को देखा तो वासना न जग जाए। तो फिर आंख ही फोड़ लो। भोजन में स्वाद आया, तो कहीं ऐसा न हो कि भोजन-पटुता पैदा हो जाए! तो जीभ ही मार डालो। यह जीवन-निषेध है।
भक्त जीवन के प्रेम में है; जीवन के निषेध में नहीं। उसे कान बहरे नहीं करने हैं और आंखें अंधी नहीं करनी हैं। उसे जीवन के रस को इस तरह पहचानना है, इस तरह जीवन के रस से संबंध जोड़ना है, इतनी प्रगाढ़ता से--कि जहां रूप दिखाई पड़े वहां प्रार्थना पैदा हो।
अभी रूप जहां दिखाई पड़ता है वहां वासना पैदा होती है--यह सच है। अब दो उपाय हैं; रूप देखो ही मत, ताकि वासना पैदा न हो; और दूसरा उपाय है कि रूप को इतनी गहराई से देखो कि हर रूप में उसी का रूप दिखाई पड़े, तो प्रार्थना पैदा हो।
भक्त रूप में परम रूप देखने लगता है; सौंदर्य में परम सौंदर्य देखने लगता है; हर ध्वनि में उसी का नाद सुनने लगता है। फिर आंखें फोड़ने की जरूरत नहीं रहती और कान फोड़ने की आवश्यकता नहीं रहती; इंद्रियों को मारने की जरूरत नहीं रहती। और ईश्वर ने जो भेंट दी है इंद्रियों की, वह अगर मारने के लिए ही होती तो दी ही न होती। इंद्रियों को मारने का अर्थ हुआः तुमने उसकी भेंट इनकार कर दी। यह एक तरह की नास्तिकता है।
मैं गांधी को आस्तिक नहीं मानता। वह आस्तिकता बहुत ऊपरी है। आस्तिकता
का तो अर्थ यह होता हैः जो उसने दिया है, ठीक ही दिया होगा। हम शायद ठीक उपयोग न कर रहे हों, यह हो सकता है; मगर देने वाले की तरफ से भूल नहीं हो सकती।
तुम्हें कोई तलवार भेंट दे तो तुम चाहो तो किसी की हत्या भी कर सकते
हो और चाहो तो किसी की होती हत्या बचा भी सकते हो। तलवार तो तटस्थ है। न तो तलवार कहती है हत्या करो और न तलवार कहती है कि किसी की हत्या होती हो तो बचाओ।
तुम्हें कोई धन दे तो तुम चाहो तो जहर खरीद लो, आत्महत्या कर लो अपनी; चाहो तो जीवन के लिए सहयोगी कुछ उपयोग कर लो। सब तुम पर निर्भर है। इंद्रियां भी उसी के लिए द्वार बन सकती हैं। और हर इंद्रिय प्रार्थना में संलग्न हो सकती है। और उसी को हम कलाकार कहेंगे जो सारी इंद्रियों को परमात्मा में संलग्न कर दे; जो आत्मा से ही न पुकारे, देह से भी पुकारे। परमात्मा की रोशनी प्राणों में ही न जगमगाए, रोएं-रोएं में जगमगाए। आत्मा तो उसमें डूबे ही डूबे, यह देह भी उसी में डूब जाए। तुम्हारे प्राण तो उसमें नहाएं ही नहाएं, तुम्हारा तन भी उसमें नहा ले। तुम्हारी श्वास-श्वास उसमें लिप्त हो जाए।
माई री मैं तो लियो गोविन्दो मोल।
कोई कहै छाने कोई कहै चौड़े, लियो री वजंता ढोल।
मीरा कहती है कि मैंने तो ये बंधी-बंधाई लकीरें नहीं सोचीं कि भीतर खोजें कि बाहर खोजें। मैंने तो ढोल बजा कर उसे ले लिया। कौन से ढोल की यह बात कह रही है?
अनाहत! वह जो अनाहत नाद है, वह जो भीतर छिपा हुआ नाद है--उस पर चोट कर दी। उस पर टंकार कर दी। उसकी टंकार होते ही नाद बाहर भी फैल जाता है।

एक कंकड़ तुमने कभी झील में फेंक कर देखा? जहां गिरता है वहां तो लहर उठती है; लेकिन फिर लहर फैलती चली जाती है। दूर-दूर किनारों तक लहरें ही लहरें हो जाती हैं।
परमात्मा का पहला संस्पर्श तो भीतर ही होता है, क्योंकि वहीं से हम उसके निकटतम हैं। इस वृक्ष में परमात्मा को देखोगे, यह तो जरा दूर हो गई बात; अगर अपने में नहीं देखा है अभी तक तो वृक्ष में कैसे देखोगे? चांद-तारों में परमात्मा को देखोगे? और अपने हृदय की धड़कन में उसे अभी सुना नहीं, इतने दूर कैसे देखोगे? पहचान तो पास से ही शुरू करनी होती है। चलना तो वहां से पड़ता है जहां तुम हो।
... लियो री वजंता ढोल।
कोई कहै मुंहगो कोई कहै सुंहगो...
कोई कहता है कि परमात्मा बड़ा महंगा है और कोई कहता है कि परमात्मा बड़ा सस्ता है। महंगा कहने वाले वे लोग हैं जो कहते हैंः शरीर को तपाओ; शरीर को गलाओ; इंद्रियों को काटो। सब सुख छोड़ो। अपने जीवन में पीड़ा ही को सजाओ; उसी की आराधना करो। घाव बनाओ। किसी घाव को भरने मत दो। तपश्चर्या, उपवास, व्रत।
ये जो कृच्छ साधना वाले लोग हैं, जो अपने को सताने में रस लेते हैं, ये
जो दुखवादी लोग हैं--वे कहते हैंः परमात्मा को पाना बहुत महंगा है, क्योंकि बड़े कष्ट से मिलेगा; हजार-हजार नरकों से गुजर कर मिलेगा। और कुछ लोग हैं जो कहते हैं कि बिल्कुल सस्ता है। जैसे महर्षि महेश योगी। वे कहते हैंः बिल्कुल सस्ता मामला है। एक दस मिनट सुबह मंत्र पढ़ लो, दस मिनट शाम मंत्र पढ़ लो--बात खत्म हो गई; और कुछ करना नहीं है।
एक है जो कहता हैः बहुत कठिन है। एक है जो कहता है कि अपने को बड़ा सताना पड़ेगा। दूसरा कहता हैः कोई भी कठिनाई की बात नहीं है; तुम जैसे हो बिल्कुल ठीक हो; बस जरा सी यह तरकीब इसमें जोड़ लो। एक नुस्खा है; इसका उपयोग कर लो, परमात्मा को पा लोगे। यह रहा ताबीज, यह बांध लो। यह रहा मंत्र, इसे दोहराने लगो। यह रहा मंदिर, रोज दो मिनट जाकर सिर पटक आना। यह रही मस्जिद, नमाज पढ़ लेना।
ये सस्ती बातें हैं। तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता। नमाज पढ़ने में तुम्हें क्या करना है! दो-चार दफे उठे-बैठे, थोड़ी कवायद की। मंदिर में गए, पत्थर की मूर्ति पर सिर झुका लिया। तुम्हें करना क्या पड़ता है! तुम जैसे हो वैसे के वैसे; जरा भी फर्क नहीं करना पड़ता। न तुम्हें अपना जीवन बदलना होता है; न अपने जीवन की शैली में कोई तरह की क्रांति लानी पड़ती है। कुछ करना ही नहीं होता। मंदिर गए; सिर पटका, भागे--जैसे थे वैसे ही अंदर गए, वैसे के वैसे वापस गए।
तो मंदिर जाने वाले में और मंदिर न जाने वाले में कोई भेद देखते हो? दुकान पर दोनों को बैठे देख कर तुम यह पता लगा सकोगे कि कौन मंदिर जाता है, कौन नहीं जाता?
हां, अगर तिलक इत्यादि लगाए बैठा हो तो पता चल जाएगा। बाकी बस उतना ही पता चलने वाला है। तिलक न हो तो पता नहीं चलेगा। मगर तिलक से कोई परमात्मा पाने वाला है!
एक तरफ लोग हैं जिन्होंने एक अति कर दी है। वे कहते हैंः बड़ा कठिन है। दुकान पर रहते तो मिलेगा ही नहीं। घर में रहते तो मिलेगा ही नहीं। पत्नी- बच्चे छोड़ो, जंगल भागो, अपने को सताओ, गर्मी भी हो तो भी चारों तरफ धूनी रमा कर बैठे रहो, और ठंड भी हो तो नंगे खड़े रहो खुले आकाश के नीचे; बड़ी कठिनाई से मिलेगा। और एकाध जन्म की बात नहीं है; जन्मों-जन्मों तक मेहनत करनी होगी।
यह एक अति है। दूसरी अति है; वह कहती हैः इस सबकी कोई जरूरत ही नहीं; तुम जैसे हो, ठीक हो वैसे ही। कुछ करना नहीं है। यह माला ले लो; इसको रोज एक दफा घुमा लेना। जल्दी, देर-अबेर जैसे बने, इसको जल्दी घुमा लेना।
तिब्बती हैं, उन्होंने तो प्रार्थना का चका बना रखा है। तो वे चके को घुमा देते हैं। चके पर प्रार्थना लिखी है। चका एक दफा घूम गया, एक प्रार्थना पूरी हो गई। ऐसा अपना काम भी करते रहते हैं; और जब मौका मिला तो एक धक्का मार दिया चके को, वह चका घूमता रहता है।

एक तिब्बती लामा मेरे पास मेहमान था। मैंने उससे कहा कि तुमको पता नहीं है, बिजली हो गई है; इसमें थोड़ा प्लग जोड़ कर इसको बिजली में लगा दो। यह अपने आप घूमता रहेगा, जैसा पंखा घूमता है। या पंखे पर ही लिख दो तुम्हारी प्रार्थना। चौबीस घंटे घूमता ही रहेगा; प्रार्थना ही प्रार्थना हो जाएगी; लाभ ही लाभ मिलेगा।
एक तरफ सस्ते उपाय खोजने वाले लोग हैं। राम-नाम की चदरिया ओढ़ लो।
तुम्हें कुछ कहने की जरूरत नहीं; राम-राम लिखा ही हुआ है।
ये दोनों ही बातें गलत हैं, मीरा कहती है।
कोई कहै मुंहगो कोई कहै सुंहगो, लियो री तराजू तोल।
मीरा कहती हैः ये दोनों अतियां हैं। जहां तराजू समतौल हो जाता है ठीक मध्य में--न कठिन, न सस्ता; न तो तप-तपश्चर्या से मिलता है, न ऐसे बैठे-ठाले मंत्र जपने से मिलता है--जहां चित्त का तराजू समतौल हो जाता है; जहां अति नहीं रह जाती; जहां सम्यकत्व पैदा होता है; जहां समता आ जाती है; जहां समतुलता पैदा होती है।
यह समझने की बात हैः लियो री तराजू तोल।
तराजू में कभी एक पलड़ा भारी होता है तो दूसरा ऊपर उठ जाता है, एक जमीन
से लग जाता है। कभी दूसरा पलड़ा भारी होता है तो वह जमीन से लग जाता है, पहला ऊपर उठ जाता है। लेकिन हर हालत में असंतुलन बना रहता है। जिसने समझा परमात्मा बहुत महंगा है, उसके जीवन में असंतुलन होगा। जिसने समझा बिल्कुल सस्ता है, करना ही क्या है, एकाध दफा याद कर लेंगे, मरते वक्त भी याद कर लेंगे तो चल जाएगा। अजामिल ने मरते वक्त याद कर लिया और चल गया। और परमात्मा को याद भी नहीं किया था; अपने बेटे को बुला रहा था, जिसका नाम नारायण था--और चल गया।
एक तरफ ऐसे लोग हैं जो परमात्मा के नाम पर व्यर्थ की झंझटें खड़ी कर लेते हैं, जिनका परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है। और दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं जो कोई झंझट नहीं खड़ी करना चाहते; जो अपने में किसी तरह का भेद नहीं करना चाहते; जो कुछ भी चुकाने को तैयार नहीं हैं। ये दोनों अतियां हैं। बुद्ध ने जिसको कहा है मध्यम मार्ग, मज्झिम निकाय--मीरा की भाषा में वही हैः लियो री तराजू तोल। जहां तराजू समतुल हो जाता है। जहां चित्त अति नहीं करता। और इस बात को समझनाः जहां चित्त अति नहीं करता वहीं चित्त मिट जाता है। चित्त अति में ही जीता है।
एक राजकुमार बुद्ध के पास दीक्षित हुआ। श्रोण उसका नाम था। वह भोगी था, महाभोगी था। उसके भोग की कथाएं सारे देश में प्रचलित थीं। बुद्ध तक भी उसकी कथाएं बहुत बार पहुंची थीं। उसकी भोग ही भोग की जिंदगी थी। रात भर जागता था--नाच-गाना, शराब; और दिन भर सोता था। सीढ़ियां भी चढ़ता था तो नग्न स्त्रियां सीढ़ियों के दोनों तरफ खड़ी कर रखी थीं, रेलिंग बना रखी थी उसने नग्न स्त्रियों की। उनके कंधों पर हाथ रख कर वह ऊपर जाता। वह कभी महल के बाहर नहीं निकला था, गद्दियों से नीचे नहीं चला था। फूलों में ही जीया था; कांटों का उसे पता ही नहीं था।
फिर उसने बुद्ध को सुना। और लोग चमत्कृत हुए यही देख कर कि वह बुद्ध
को सुनने आया पहले तो। और न केवल सुना, उसने तो खड़े होकर बुद्ध से प्रार्थना की कि मुझे दीक्षित करें; मैं भिक्षु होना चाहता हूं।
लोगों को तो भरोसा ही नहीं आया। कहीं ऐसा तो नहीं कि ज्यादा पी गया है,
कि अभी तक रात का खुमार नहीं उतरा है! उसके संगी-साथियों ने भी कहा कि आप क्या कह रहे हैं? सोच-समझ कर कह रहे हैं?
उसने कहाः मैं थक गया हूं, ऊब गया; देख लिया सब भोग। मैं दीक्षित होना चाहता हूं।
वह लौटा ही नहीं महल। वह संन्यस्त हो गया। बुद्ध के भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि यह बड़ी चमत्कार की घटना है। आपने क्या किया? क्या जादू किया इस आदमी पर?
बुद्ध ने कहाः मैंने कुछ नहीं किया। यह है अतिवादी। यह एक अति से दूसरी अति पर डोल गया है, पेंडुलम जैसे डोलता है। यह बड़ा खतरनाक आदमी है। एक अति से थक गया, अब दूसरी अति पर चला। और उन्होंने कहाः कुछ देर देखो तब तुम समझोगे।

पंद्रह दिन में ही सबको जाहिर हो गया। जो आदमी कभी गद्दियों से नीचे नहीं चला था, वह आदमी कांटों में चलने लगा। दूसरे भिक्षु तो पगडंडी पर चलते, बने हुए रास्ते पर चलते; वह कांटों में चलता। उसने पैर लहूलुहान कर लिए; पैरों में घाव हो गए। दूसरे भिक्षु तो धूप होती तो वृक्ष की छाया में बैठते; वह ठेठ धूप में ही खड़ा रहता। सर्दी होती तो दूसरे भिक्षु धूप में बैठते; वह जाकर छाया में बैठ जाता। वह उलटा ही करता। भिक्षु तो एक बार भोजन करते दिन में, वह दो-चार दिन भूखा रहता और एकाध बार दो-चार दिन में भोजन करता; बस सप्ताह में दो बार से ज्यादा भोजन न करता। सूख गया। सुंदर उसकी देह थी; काला पड़ गया। शरीर से सब मांस-मज्जा चली गई; हड्डी-हड्डी हो गया। तब बुद्ध ने उसके द्वार पर एक दिन दस्तक दी, जिस झोपड़े में वह ठहरा था।
वह तो मरी हुई हालत में था बिल्कुल। बुद्ध ने उससे पूछाः श्रोण, मैं एक प्रश्न पूछने आया हूं। मैंने सुना है कि तू जब राजकुमार था तो तू वीणा बजाने में बड़ा कुशल था। मैं यह तेरे से पूछने आया हूं कि वीणा के तार अगर बहुत कसे हों तो वीणा बज सकती है?
उसने कहाः नहीं बजेगी; तार टूट जाएंगे।
और वीणा के तार अगर बहुत शिथिल हों तो वीणा बज सकती है?
उसने कहाः नहीं, तब भी नहीं बजेगी। बहुत शिथिल हों तो चोट ही पैदा नहीं होगी, स्वर पैदा नहीं होगा।
तो बुद्ध ने पूछाः वीणा कैसी होनी चाहिए कि संगीत पैदा हो?
तो श्रोण ने कहाः तार कसना बड़ी कला की बात है। तार ऐसी स्थिति में होने चाहिए कि न तो ज्यादा कसे, न ज्यादा ढीले। एक ऐसी स्थिति भी है तारों की, जब हम कह सकते हैं कि अब न तो ज्यादा कसे हैं, न ज्यादा ढीले हैं; न कसे हैं, न ढीले हैं--ठीक मध्य में, समतुल। और जब वीणा के तार ठीक मध्य में होते हैं, तभी महासंगीत पैदा होता है।
तो बुद्ध ने कहाः यही मैं निवेदन करने आया हूं कि जो नियम वीणा के संबंध में सही है, वही नियम जीवन के संबंध में भी सही है। जीवन की वीणा में भी संगीत तभी पैदा होता है, जब तार न तो बहुत कसे हों, न ढीले हों। देख, तेरे तार बहुत ढीले थे, तब संगीत पैदा नहीं हुआ। और अब तूने तार बहुत कस लिए, अब तार टूटे जा रहे हैं, वीणा की फांसी लगी जा रही है, अब भी संगीत पैदा नहीं हो रहा है। तू एक मूढ़ता से दूसरी मूढ़ता पर चला गया।
और मन यही करता है। ज्यादा भोजन कर लिया तो मन उपवास करने का विचार करने लगता है कि चलो उपवास कर लें, कि उरलीकांचन चले जाएं। फिर दो-चार दिन उपवास कर लिया तो अब मन विचार करने लगता है कि क्या-क्या भोजन करें। भोजन ही भोजन के विचार आने लगते हैं। यही मन की अवस्था है। एक मूढ़ता से दूसरी मूढ़ता पर छलांग लगा लेता है; मगर बीच में कभी नहीं रुकता। तो या तो तुम्हें भोजन-भट्ट मिलेंगे या उपवास करने वाले लोग मिलेंगे; लेकिन सम्यक भोजन करने वाले लोग मुश्किल से मिलेंगे। सम्यक भोजन का अर्थ हैः न तो जरा ज्यादा, न जरा कम।
वही कला है। वही जीवन की वीणा से संगीत को उत्पन्न करने का शास्त्र है। और यही जीवन के समस्त पहलुओं पर लागू है।
या तो कुछ लोग धन के पीछे दीवाने होते हैं, तो धन ही धन उनके मन में होता है। फिर एक दिन थक जाते हैं, तो धन छोड़ कर भागने लगते हैं; फिर त्याग ही त्याग उनके मन में होता है। ये दोनों ही बातें अतियां हैं। आदमी को समझ होनी चाहिए मध्य में ठहरने की। धन जीवन का लक्ष्य नहीं है, लेकिन जीवन का साधन जरूर है। साध्य बिल्कुल नहीं, लेकिन साधन जरूर है। तो धन ही धन इकट्ठा करने में जीवन को जो गंवाता है, वह नासमझ है; और जो धन को छोड़ने में ही समझता है कि परमात्मा को पा लेगा, वह भी नासमझ है। न तो धन ही धन को पाने से कुछ होता है, न धन को छोड़ने से कुछ होता है। एक सम्यकत्व होना चाहिए। जितना जरूरी है, जितना जीवन की जरूरतों के लिए आवश्यक है, उतना कर लिया। और उतना सभी कर सकते हैं; क्योंकि जीवन की आवश्यकताएं बहुत थोड़ी हैं। जरूरी आवश्यकताएं तो बहुत थोड़ी हैं; गैर-जरूरी बहुत हैं।
तो मैं तुमसे यह नहीं कहता कि सारी आवश्यकताएं छोड़ दो, क्योंकि वह अति है। मैं तुमसे इतना ही कहता हूंः गैर-जरूरी छूट जाएं तो बस पर्याप्त। जो बिल्कुल जरूरी है, उसे निश्चित पूरा करना है। उसे पूरा करने में कोई

कठिनाई भी नहीं है। और दुनिया में अगर सभी लोग अपनी जरूरत की जरूरतें ही पूरी करें तो किसी को कमी न रह जाए। लेकिन कुछ लोग पागल हैं। वे जरूरत से ज्यादा इकट्ठा करते चले जाते हैं। उसी इकट्ठे करने में कुछ लोगों की जरूरत की जरूरतें भी पूरी नहीं होतीं फिर। फिर कलह है, संघर्ष है, वैमनस्य है, द्वंद्व है, हिंसा है।
दो अतियों के मध्य में ठहर जाना तराजू का तौल लेना है; दोनों पलड़े एक
ही दशा में आ गए; तराजू का कांटा मध्य की सूचना देने लगा। मध्य से ही द्वार है।
तो मीरा न तो तपस्वी है, न त्यागी है, न भोगी है। मीरा तो मध्य में ठहरी है। वही उसका सौंदर्य है। वही उसके संगीत का माधुर्य है। यह संगीत का माधुर्य उसके जीवन के माधुर्य से बहा है। यह उसके जीवन का ही स्वाद है, जो उसके संगीत में भी है।
माई री मैं तो लियो गोविन्दो मोल।
मैंने परमात्मा को खरीद लिया--मीरा कहती है। हिम्मत का वक्तव्य है।
किसी ने कभी कहा नहीं कि मैंने परमात्मा को खरीद लिया। और खरीदने की कला क्या है?
लियो री तराजू तोल।... लियो री वजंता ढोल।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल।
कोई कहते हैं परमात्मा ऐसा; कोई कहते हैं परमात्मा वैसा। सभी व्याख्या करते हैं। कोई कहता है काला; कोई कहता है गोरा। कोई कहता है निर्गुण; कोई कहता है सगुण। कोई कहता है इतने हाथ, इतने सिर; कोई कहता है इतने सिर, इतने हाथ। अलग-अलग व्याख्याएं हैं। कोई कहता है शून्य; कोई कहता है पूर्ण। ये सारी की सारी व्याख्याएं मनुष्य-निर्मित हैं। और ये उनके द्वारा निर्मित हैं जिन्होंने जाना नहीं। जो जानते हैं वे कहते हैंः परमात्मा अव्याख्य है; उसकी कोई व्याख्या नहीं; उसका कोई निर्वचन नहीं; उसके संबंध में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। उसे जाना तो जा सकता है, लेकिन जनाया नहीं जा सकता।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो...
मीरा यह कह रही है कि न तो वह गोरा है, न वह काला है; न वह ऐसा है, न वैसा है। वह तो बस अपने जैसा है। इसलिए उसे किसी व्याख्या में तुम न बांध सकोगे। तुम जो भी कहोगे वह सीमा हो जाएगी। और जो भी सीमा हो जाएगी वह उसे नहीं घेर पाएगी। वह असीम है।
... लियो री अमोलक मोल।
मीरा कहती हैः मैं इतना ही कह सकती हूं, उसके मूल्य आंकने का कोई उपाय नहीं; अमोलक है। उसको कसने की कोई कसौटी नहीं। और उसको तौलने का कोई तराजू नहीं। और तुम्हारे सारे शास्त्र और तुम्हारे सारे सिद्धांत दो कौड़ी के हैं। जो निर्गुण कहते हैं वे भी बकवास करते हैं; जो सगुण कहते हैं वे भी बकवास करते हैं। जहां विवाद है वहां बकवास है। और विवाद वहीं है जहां जाना नहीं गया है। जिसने जाना, वह तो जानने के कारण चुप हो जाता है। एकदम सन्नाटा हो जाता है। उससे तुम पूछोः परमात्मा कैसा है? तो वह कहेगाः मेरी आंख में झांक लो। वह कहेगाः मेरा हाथ पकड़ लो। वह कहेगाः मेरे पास थोड़ी देर चुप बैठो, शायद पता चल जाए; मगर मैं क्या कहूं! परमात्मा कैसा है, कैसे कहा जा सकता है? परमात्मा बस परमात्मा जैसा है।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल।
वह अमूल्य है। कोई उपाय नहीं कि हम निर्धारण कर सकें कि कैसा है। जो जाने सो जाने। जो जाने वही जाने। और उधार जनाने की कोई व्यवस्था नहीं हो सकती। मैंने जाना तो मैं तुम्हें नहीं जना सकता। मैं लाख सिर पटकूं, मैं हजार विधि करूं--तुम सुन भी लोगे, फिर भी कुछ पकड़ में न आएगा। क्योंकि शब्द तो मेरे तुम्हारे पास तक पहुंच जाएंगे, लेकिन अर्थ कैसे पहुंचेगा! अर्थ तो अनुभव से आता है।
मैंने कहा गुलाब का फूल; तुमने सुना और अर्थ भी आ गया। क्यों? क्योंकि गुलाब का फूल तुमने देखा है; तुम्हें पता है गुलाब के फूल का। मैंने कहा गुलाब का फूल; गुलाब का फूल तुम्हारी दृष्टि में आ गया। अगर तुम जरा संवेदनशील व्यक्ति हो तो तुम्हें गुलाब के फूल की सुगंध भी आने लगे। अगर

तुम बहुत संवेदनशील व्यक्ति हो तो गुलाब का फूल बिल्कुल यथार्थ होकर तुम्हारे हृदय में खड़ा हो जाए। मगर अगर तुमने गुलाब का फूल जाना ही नहीं, तुम किसी मरुस्थल से आते हो जहां गुलाब का फूल होता ही नहीं और मैंने कहा गुलाब का फूल--तब भी शब्द तो तुम्हारे कानों में पड़ेगा, क्योंकि शब्द मैंने कहा तो पड़ेगा ही; लेकिन तुम्हें कुछ साफ नहीं होगा कि मैं क्या कह रहा हूं। अर्थ प्रकट नहीं होगा।
शब्द से अर्थ नहीं होता; शब्द से, तुम्हारे भीतर अर्थ पड़ा हो, तो जग जाता है। अगर भीतर अर्थ न पड़ा हो तो शब्द कुछ भी नहीं कर सकता। शब्द खड़बड़ करके निकल जाता है।
अंधे आदमी से कहोः प्रकाश। सुनता है। बहरा तो है नहीं। सच तो यह है कि अंधे के कान बहुत अच्छे होते हैं आंख वालों से; क्योंकि अंधे की आंख तो होती नहीं, तो आंख की जो ऊर्जा है वह कान में ही संलग्न हो जाती है। और आंख में बड़ी ऊर्जा लगी है। अस्सी प्रतिशत ऊर्जा आंख से जा रही है। तो अस्सी प्रतिशत ऊर्जा बच जाती है; वह कान की तरफ मुड़ जाती है, क्योंकि नंबर दो की इंद्रिय कान है। तो जो ऊर्जा आंख से जाती थी, आंख से तो निकल नहीं सकती, वह अब कान से रास्ता खोजती है। वह द्वार बंद हो गया; दूसरा दरवाजा खोजती है। इसलिए अंधे की श्रवण-शक्ति तो बहुत गहरी हो जाती है। इसलिए अंधे कुशल संगीतज्ञ हो जाते हैं; क्योंकि उनकी संगीत की पकड़ गहरी हो जाती है। ध्वनि का शास्त्र उन्हें सरल हो जाता है। दूर से आते आदमी की पगध्वनि सुन कर अंधा पहचान लेता है कि कौन आ रहा है। तुम नहीं पहचान सकोगे। आंख वाला नहीं पहचान सकता। आंख वाले ने कभी ख्याल ही नहीं किया इस बात पर कि कोई आदमी चलता है तो उसकी आवाज कैसी होती है। लेकिन अंधा तो कान को ही आंख मान कर चलता है; आवाज ही उसकी जिंदगी है; आवाज ही उसका अनुभव है। तुम बोलते हो तो वह पहचान लेता है कि कौन बोल रहा है। जैसे हम चेहरे को पहचानते हैं कि कौन आ रहा है, तो चेहरा देख कर पहचान जाते हैं कि फलां आदमी आ रहा है--ऐसा अंधा ध्वनि को देखता है। चेहरे को तो नहीं देख सकता; स्वर सुन सकता है। तो अंधे के कान तो बहुत प्रगाढ़ रूप से संवेदनशील हो जाते हैं।
तो अगर मैं अंधे से कहूं प्रकाश तो वह तुमसे ज्यादा अच्छी तरह सुनता है, लेकिन इससे कुछ हल नहीं होता। कितनी ही अच्छी तरह सुने, प्रकाश का उसे कोई अनुभव नहीं है। उसके भीतर कोई भी अर्थ पैदा नहीं होगा। शब्द कोरा आएगा, कोरा चला जाएगा। शब्द खाली रहेगा, भर न पाएगा।
तुम उतना ही समझ सकते हो जितना तुमने जाना हो। परमात्मा को मैं तुम्हें जना सकता हूं अगर तुमने जाना हो; मगर तब तो जनाने की कोई जरूरत नहीं। तुमने नहीं जाना है तो कोई उपाय नहीं। इतना ही बता सकता हूं कि मैंने कैसे जाना; मगर क्या जाना, उस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। इसलिए समस्त ज्ञानियों के वचन विधि की बात करते हैं--कैसे जाना। क्या जाना--उस संबंध में चुप हैं। उस संबंध में कोई भी कुछ न कह सकेगा।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल।
मीरा कहती हैः मैं इस झंझट में नहीं पड़ी कि काला है कि गोरा, निर्गुण
कि सगुण; मैंने तो अमोलक को ही मोल ले लिया। मैं तो सीधी उसी की तरफ चली गई। मैं विवाद में न उलझी। मैं पंडितों-पुरोहितों, संप्रदायों के जाल में न पड़ी। मैंने, इसको मानूं कि उसको मानूं, इस तरह की झंझट में अपने मन को नहीं उलझाया। मैं तो सीधी उसी की तरफ चली गई। और जाने की विधि थी कि समतुल हुई। जाने की विधि थी कि मैंने भीतर के स्वर को जगाया। जाने की विधि थी कि भीतर जो पड़ी थी संभावना नाद की, उसे मैंने तलाशा।
मीरा स्वर से पहुंची है परमात्मा तक; इसीलिए उसके स्वरों में इतनी मिठास है।
याही कूं सब लोग जाणत हैं, लियो री आंखी खोल।
और मीरा कहती हैः सबके सामने मौजूद है वही। सबके बाहर-भीतर वही छाया है। सिर्फ इतनी ही अड़चन हो रही है कि लोग आंख ही नहीं खोल रहे हैं। मैंने आंखें खोलीं और पा लिया।
परमात्मा पर पर्दा नहीं है, जैसा मैंने तुमसे कहा; पर्दा आंख पर है।
आंख खोलो और मिल जाता है।
... लियो री आंखी खोल।

दर्शनशास्त्र में जाने की जरूरत नहीं है। दर्शन की क्षमता जगाने की जरूरत है--देखने की क्षमता!
मेरे तसव्वुर में, मेरे दिल में, मेरी नजर में समा रहे हैं
वो जो हर जल्वाए-हसीं को बहारे-रंगीं बना रहे हैं
वही बसे हैं सुकूते-लब में, सुकूने-दिल में, सुरूरे-जां में
वो बनके इक मौजे-बेखुदी मुझको अपनी सूरत दिखा रहे हैं
मेरी खामोशी की लै वही है, मेरी गजल का वही तरन्नुम
वो पर्दाए-साजे-दिल भी खुद हैं, वो इसपे नगमे भी गा रहे हैं
वही हैं वीणा और वही हैं वादक। वही हैं जगाने वाले और वही हैं जागने वाले। जिस दिन जानोगे उस दिन पाओगेः परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।
मेरी खामोशी की लै वही है...
और जब तुम चुप होते हो तब वही तुम्हारे भीतर चुप है। और--
... मेरी गजल का वही तरन्नुम
और जब तुम गाते हो गीत तो तुम्हारे गीत की धुन भी वही है, तरन्नुम भी वही है।
वो पर्दाए-साजे-दिल भी खुद हैं...
वह जो दिल का साज है, वह जो दिल का वाद्य है, वह जो हृदय की वीणा है--वही है।
... वो इसपे नगमे भी गा रहे हैं
और इसी पर गीत भी उठा रहे हैं; इसी पर गीत भी गा रहे हैं।
अयां है वो मेरी खल्वतों में, निहां है वो अपनी जल्वतों में
ये खेल गैबो-नमूं का यूं ही, वो खेलते हैं, खिला रहे हैं
वही उस तरफ, वही इस तरफ--दोनों किनारे उनके। खेलने वाले वही, खिलाने वाले वही। खेल उनका।
कभी वो मेरी रगों में शोला, कभी वो पलकों पे मेरी शबनम
कभी वो साहिल पे रक्स में हैं, कभी वो तूफां उठा रहे हैं
और यहां सब कुछ उन्हीं का है--अच्छा भी, बुरा भी; दिन भी, रात भी; जन्म भी, मृत्यु भी।
कभी वो मेरी रगों में शोला, कभी वो पलकों पे मेरी शबनम
कभी आग की तरह भड़कते हैं तुम्हारे भीतर और कभी शबनम की तरह भी झरते हैं तुम्हारे भीतर।
कभी वो साहिल पे रक्स में हैं...
और कभी किनारे पर नाच रहे हैं, रास हो रहा है।
... कभी वो तूफां उठा रहे हैं
और कभी आंधियां।
इस जीवन का सभी कुछ परमात्मामय है। बस एक बात चाहिए--
लियो री आंखी खोल।
आंख न खुली हो तो हमें कुछ समझ में नहीं आता। आंख न खुली हो तो हम बड़े भेद कर लेते हैं। हम कहते हैंः यह अलग, वह अलग; हम हजार खंड कर लेते हैं। और यहां एक ही अखंड, अनवरत, एक का ही वास है।
कभी वो मेरी रगों में शोला, कभी वो पलकों पे मेरी शबनम
कभी वो साहिल पे रक्स में हैं, कभी वो तूफां उठा रहे हैं
वही है कैफे-निशाते-हस्ती, वही है सोजे-गुदाजे-हस्ती
कहीं बहाते हैं अश्के-खूं वो, कहीं खड़े मुस्कुरा रहे हैं
इधर खामोशी, उधर खामोशी है गुफ्तगू फिर भी हो रही है
वो सुन रहे हैं बचश्मे-खंदा, बचश्मे-नम हम सुना रहे हैं
जो मुस्कुराहट से उनकी उठती हैं नगमाए-बेखुदी की मौजें
वही तो बनती हैं शेर मेरे, जिन्हें वो खुद गुनगुना रहे हैं
वो बात जिससे जहान सारा है आशना, इसको दिल ही दिल में
समझ के हम राजे-नाशिगुफ्ता जमाने भर से छुपा रहे हैं
आंख से जरा सा पर्दा सरके और एक चमत्कार घटता है--एक चमत्कार कि परमात्मा के सिवाय और कुछ भी नहीं है। जब तक पर्दा पड़ा है, आदमी पूछता हैः परमात्मा कहां है? जब पर्दा उठता है, आदमी पूछता हैः परमात्मा के अतिरिक्त

और तो कुछ नहीं है, और कुछ कहां है? परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ कहां है? जब तक पर्दा है तब तक आदमी पूछता है कि परमात्मा को कहां खोजूं? जब पर्दा उठता है तो आदमी पूछता हैः ऐसी कोई जगह है जहां परमात्मा न हो? कहां परमात्मा को खोऊं? किस जगह?
नानक के साथ वही हुआ। मक्का में पैर करके सो गए सांझ--काबा के पत्थर की तरफ। पुरोहित नाराज हुए। पुरोहितों ने आकर नानक को कहा कि हमने तो सुना था कि तुम संत फकीर हो, यह क्या तुम्हारा दुर्व्यवहार? पैर और पवित्र काबा की तरफ?
तो नानक ने कहाः तुम मेरे पैर उस तरफ कर दो जहां परमात्मा न हो। मेरी बड़ी मुसीबत है। मैं भी नहीं चाहता कि परमात्मा की तरफ पैर करूं। लेकिन कहां करूं फिर? ऐसी कोई जगह है? तुम खुद ही मेरे पैरों को उस जगह कर दो। कहानी बड़ी प्यारी है। यहां तक तो तथ्य मालूम होता है, इसके बाद काव्य है। मगर काव्य सूचक है, अर्थपूर्ण है। तथ्य न हो, मगर सत्य है। कहते हैं पुजारियों ने उनके पैर पकड़ कर काबा के विपरीत मोड़ दिए, और काबा भी उसी तरफ मुड़ गया। यह काव्य है। तथ्य तो नहीं है, लेकिन मैं कहता हूं सत्य है। क्योंकि जहां भी पैर मोड़ोगे, परमात्मा वहीं है, काबा वहीं है। यह काबा जो पत्थर है, यह न मुड़ा हो उस तरफ; मगर इस सत्य को कैसे झुठलाओगे कि जहां भी पैर मोड़ोगे वहीं परमात्मा है, वहीं काबा है, वहीं काशी, वहीं कैलाश। आंख पर पर्दा हो तो परमात्मा दिखता नहीं; आंख से पर्दा उठे तो उसके सिवाय कुछ और दिखता नहीं।
याही कूं सब लोग जाणत हैं...
और मीरा जो कह रही है, यह बात भी समझना। मीरा यह कह रही है कि यह बात सभी की आंखों के सामने है, सभी इसको जानते हैं; फिर भी अनजाने बने बैठे हैं।
जो जागा है वह बड़ा चकित होता है कि तुम बैठे हो! परमात्मा सामने है और तुम पूछते हो परमात्मा कहां है! तुम्हें दिखाई क्यों नहीं पड़ रहा है? तुम्हारी आंखें भली-चंगी मालूम पड़ती हैं। तुम्हारे कान स्पष्ट मालूम पड़ते हैं; तुम्हें सुनाई क्यों नहीं पड़ रहा है? तुम्हारे हाथ जीवित हैं, तुम्हें छूता क्यों नहीं? तुम क्यों नहीं छू पाते? और वही है--सब तरफ वही है।
याही कूं सब लोग जाणत हैं...
मीरा कहती हैः मेरे देखे तो सभी इसको जानते हैं। मगर चमत्कार है कि कैसे भुला रहे हैं! कैसे अपने को भटका रहे हैं! कैसे अपनी आंखों को बंद किए बैठे हैं!
मीरा को प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जनम के कौल।
यहां फिर मीरा याद करती है अपने पिछले जन्म की, जब वह "ललिता" थी और कृष्ण से वचन लिया होगा कि मुझे आगे छोड़ मत देना। आगे भी मुझे मिलते रहना। मैं भूल भी जाऊं--मैं भूल सकती हूं, मैं नासमझ, अज्ञानी--तुम मत भूल जाना। आगे भी मैं भूल जाऊं तो मुझे भुला मत देना। मैं भूल जाऊं तो भी मुझे याद दिला देना। तो मीरा उसी कौल की याद दिलाती है। कहती हैः तुमने जो वचन दिया था, वह भूल तो नहीं गया है? वह याद है न?
मीरा को प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जनम के कौल।
यहां यह बात भी समझ लेनी जरूरी है कि मीरा यह नहीं कहती कि मेरा कोई अधिकार है, कि मेरी कोई सामर्थ्य है, कि मेरी कोई पात्रता है। मीरा इतना ही कहती है कि तुम अपने वचन का ख्याल रखना। मैं अपात्र हूं, चलेगा; लेकिन तुम अपना वचन पूरा करना। तुम्हें अपने वचन का ध्यान है न!
और यह जो बात है, कई अर्थों में महत्वपूर्ण है। तुम भी न मालूम किन-किन जन्मों में किन-किन सदगुरुओं के पास रहे होओगे। और तुमने भी उनसे आश्वासन लिए होंगे, वचन लिए होंगे, कि हमें याद करना, हमें भूल मत जाना। लेकिन तुम यह बात भी भूल गए हो। इसकी तुम्हें कोई याद नहीं। और अगर आज किसी तरह परमात्मा तुम्हारी तरफ आने की कोशिश करे तो तुम हजार बाधाएं खड़ी करते हो; तुम हजार तरह की अड़चनें खड़ी करते हो।
जिन्होंने भी तुम्हें वचन दिया था, वे हर हालत में वचन पूरा करेंगे।
वे चाहे उसी देह में वापस न लौटें; वे किसी और देह से वचन पूरा करेंगे; वे

किसी और के बहाने वचन पूरा करेंगे। बुद्ध आज न हों, इससे क्या फर्क पड़ता है? तो रमण के बहाने पूरा करेंगे। महावीर आज न हों, तो क्या फर्क पड़ता है? रामकृष्ण के बहाने पूरा करेंगे। क्योंकि सत्य तो एक है और सत्य में जागा हुआ भी उस एक के साथ एक हो जाता है। दो बुद्धों में कुछ भेद नहीं। देह अलग-अलग होगी; मगर बुद्ध का तो अर्थ ही यह है कि जो देह से छूट गया; जिसको देह के पार का पता चल गया। उस देह के पार तो कुछ भेद नहीं। यह मकान अलग है, पड़ोस का मकान अलग है--मकान की तरह अलग हैं; लेकिन दोनों मकान के भीतर जो आकाश भरा है, वह तो एक ही है।
शरीर अलग-अलग हैं; भीतर जो आत्माएं प्रविष्ट हो गई हैं वे तो आकाश की तरह हैं। दीवाल किसी की सोने की बनी होगी, किसी की मिट्टी की बनी होगी-- इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। दीवाल के भीतर जो खाली जगह है, अवकाश है, आकाश है--वह तो एक ही है।
तो मीरा यह कह रही है--और भक्त सदा यही कहते रहे हैं--कि हमें तो याद भी नहीं है और हमारी तो पात्रता भी नहीं है; मगर तुम अपना वचन मत भूल जाना और तुम अपनी करुणा मत भूल जाना।
आरजू-ए-बका नहीं बाकी
दिल में खौफे-फना नहीं बाकी
जल्वागर हर तरफ है तू ही तू
कोई तेरे सिवा नहीं बाकी
आलमे-रंगो-बू नहीं कायम
हस्तिए-मासिवा नहीं बाकी
कारवां का पता न मंजिल का
राह गुम रहनुमा नहीं बाकी
भक्त तो कहता हैः हमें कुछ भी पता नहीं है।
कारवां का पता न मंजिल का
हम कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं, किसलिए जा रहे हैं--इसका भी कुछ पता नहीं। हम कहां से आ रहे हैं, क्यों आ रहे हैं, किसलिए आ रहे हैं--इसका भी हमें कुछ पता नहीं। हमें यह भी पता नहीं कि हम कौन हैं।
कारवां का पता न मंजिल का
राह गुम रहनुमा नहीं बाकी
रास्ते भी खो गए हैं, रास्ते को सुझाने वाला भी कोई नहीं।
खत्म किस्सा हुआ मनो तू का
कोई भी माजरा नहीं बाकी
हस्त ही हस्त का है इक एहसास
अब शऊरे-फना नहीं बाकी
तुझसे मैंने तुझे जो मांग लिया
और कुछ इल्तिजा नहीं बाकी
तुझसे मैंने तुझे जो मांग लिया
और कुछ इल्तिजा नहीं बाकी
भक्त कहता हैः अब और कुछ मांगने को बचा भी नहीं।
तुझसे मैंने तुझे जो मांग लिया
और कुछ इल्तिजा नहीं बाकी
शौके-दीदार तेजतर कर दे
और कोई दुआ नहीं बाकी
भक्त कहता हैः और जरा दिखाई पड़, और साफ दिखाई पड़! धुंधलके के बाहर आ, धुएं के बाहर आ! मेरी आंखों को और रोशन कर! मेरी आंखों को और खोल! मेरे पर्दे को और उठा।
शौके-दीदार तेजतर कर दे
मेरी देखने की क्षमता को और चमका दे।
और कोई दुआ नहीं बाकी
और मेरी कोई प्रार्थना नहीं है।
मीरा कहती हैः मीरा को प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जनम के कौल।
मेरी कोई सामर्थ्य नहीं, मेरी कोई पात्रता नहीं। अपनी बात का ख्याल रखना, अपने वचन को मत भूल जाना।

मैं गोविन्द गुण गाणा।
राजा रूठै नगरी राखै, हरि रूठ्या कहं जाणा।
राणा भेजा जहर पियाला, इमरत करि पी जाणा।
डिबिया में भेज्या ज भुजंगम, सालिगराम करि जाणा।
मीरा तो अब प्रेम दीवानी, सांवलिया वर पाणा।
मैं गोविन्द गुण गाणा।
मीरा कहती हैः मेरी सामर्थ्य इतनी, मेरी योग्यता इतनी कि मैं तुम्हारे गुण गा सकती हूं। मुझमें और कोई गुण नहीं है--तुम्हारे गुण गा सकती हूं; तुम्हारी स्तुति कर सकती हूं; तुम्हारे सामने नाच सकती हूं। यह नाच भी मेरा कोई बहुत कुशल नहीं, आड़ा-टेढ़ा है। यह मेरा आंगन भी कुछ साफ-सुथरा नहीं; इरछा-तिरछा है। ये मेरे गीत भी कोई बहुत गीत नहीं, बस हृदय के भाव हैं--अनगढ़। न इनमें मात्रा है, न छंद है, न काव्य के नियमों का कोई हिसाब है। मगर मैं और कुछ कर भी नहीं सकती; और कुछ करना मेरी सामर्थ्य में नहीं है। मैं तुम्हारे गुण गाती रहूंगी। मैं तुम्हारे गुण गा सकती हूं। भक्तों ने परमात्मा के गुण गाने को बड़ी महत्वपूर्ण प्रक्रिया बनाया है। उसके गुण गाते-गाते तुम उसमें लीन हो जाते हो। उसके गुण गाते-गाते, उसकी याद करते-करते तुम मिटने लगते हो; वह होने लगता है। इसलिए भक्त कहते हैंः सत्संग। जहां चार दीवाने मिल बैठें, बात हो--परमात्मा की, उसके गुण की, उसके प्रेम की। चार लोग मस्ती में साथ-साथ डोलें, तो शायद पांचवां भी कुछ छींटे पा जाए! इतनी वर्षा जहां हो, वहां पांचवां भी बिल्कुल बिना भीगे आ जाएगा--ऐसा कैसे हो सकता है! इसलिए भक्तों की जमात होती है, साध-संगत। जिन्होंने थोड़ा सा पा लिया है, वे उसका गुण गाते हैं! जिन्होंने उतना भी नहीं पाया है, वे उसके गुण गाने में धीरे-धीरे डूबते हैं; एक-एक कदम आगे बढ़ते हैं।
मस्ती संक्रामक होती है। मीरा ने बहुत से लोगों को दीवाना किया; अब भी करती है। अब भी उसके वचन बल रखते हैं। और वचन बड़े सीधे-सादे हैं।
अब यह कोई बहुत बड़ी कविता है?
मैं गोविन्द गुण गाणा।
राजा रूठै नगरी राखै, हरि रूठ्या कहं जाणा।
राणा भेजा जहर पियाला, इमरत करि पी जाणा।
डिबिया में भेज्या ज भुजंगम, सालिगराम करि जाणा।
मीरा तो अब प्रेम दीवानी, सांवलिया वर पाणा।
यह कोई कविता है? इसमें काव्य जैसा क्या है? तुकबंदी भी कहनी मुश्किल होगी। मगर यह महाकाव्य है, कविता हो या न हो। शब्दों की चिंता ही मत करना; इसमें शब्दों से ज्यादा कुछ मौजूद है; शब्दों के बीच-बीच में मौजूद है।
खाली जगह में खोजना। यह प्रभु के गुणों का गान है।
मीरा कहती है कि राजा रूठ जाए तो प्रजा कहीं छिपा ले। राजा नाराज हो जाए तो प्रजा कहीं अपने घर में छिपा ले।
राजा रूठै नगरी राखै, हरि रूठ्या कहं जाणा।
लेकिन तुम अगर रूठ गए तो कहां जाऊंगी? फिर तो कहीं कोई जगह छिपने को भी नहीं है। क्योंकि तुम तो सब जगह हो। तो तुम मत रूठ जाना। और मेरी कोई और कुशलता नहीं; सिर्फ तुम्हारे गुण गा सकती हूं। मुझसे रूठ मत जाना। मेरी पात्रता का कोई दावा नहीं है; न साधुता का कोई दावा है; न चरित्र का कोई दावा है; न पुण्य का कोई दावा है। मेरे पास कर्तृत्व के नाम पर कुछ भी नहीं, जो तुम्हारे सामने रख दूं। मेरे पास कोई प्रमाणपत्र नहीं हैं संसार के। लेकिन कुछ प्रमाणपत्र हैं मेरे पास कि तुमने कभी-कभी मुझे याद किया है। वे घड़ियां मुझे याद हैं--मीरा कहती है। जब राणा ने जहर का प्याला भेजा था तो मेरे कारण तो अमृत नहीं हो गया था; तुमने ही किया होगा।
राणा भेजा जहर पियाला, इमरत करि पी जाणा।
यह मेरे कारण तो नहीं हो सकता। मैं तो तुम्हारा गुण गाने वाली हूं।
इससे ज्यादा मेरे पास कुछ है ही नहीं। तुमने ही कुछ किया होगा। मैं तुम्हें याद दिलाए देती हूं कि तुम आए होओगे; तुमने छुआ होगा जहर को; तुमने बदल दिया होगा जहर को।

भक्त की निर-अहंकारिता अदभुत है। भक्त अपने ऊपर कोई गुण लेता ही नहीं। सब गुण उसके हैं; सब दुर्गुण मेरे हैं--ऐसी भक्त की भाव-दशा है। भूल हो तो मेरी, ठीक हो तो उसकी। अगर मीरा जहर पीकर मर जाती, तो मीरा उसका गुण गाते ही मरती--कि मेरी कुछ भूल हुई होगी, इसलिए जहर असर कर गया। जहर अमृत हो गया, मीरा नहीं मरी, जहर से बच गई--तो भी गुण उसका है। हर हाल उसका गुण है। मारे तो उसका गुण है; जिलाए तो उसका गुण है।
राणा भेजा जहर पियाला, इमरत करि पी जाणा।
इसमें क्या खूबी है--मीरा कहती है। तुम पर भरोसा है, इसलिए अमृत समझ कर
पी गई। तुम्हारा भरोसा काम कर गया। तुम्हारे ऊपर श्रद्धा काम कर गई।
जीसस के जीवन में उल्लेख है कि एक स्त्री भागी हुई आई और उसने पीछे से जीसस का पल्ला पकड़ लिया। जीसस ने लौट कर देखा। वह स्त्री बीमार थी वर्षों से। चंगी हो गई थी। स्वस्थ हो गई थी। वह स्त्री पैरों में झुकी और उसने कहाः बहुत-बहुत धन्यवाद! तुमने मुझे ठीक कर दिया।
जीसस ने कहाः क्षमा कर! ठीक करने वाला वही एक है। मैं कैसे ठीक करूंगा?
किसी ने जीसस से कहा कि तुम बड़े महात्मा हो, संत हो, सात्विक हो।
जीसस ने कहाः नहीं। वही एक! अगर कुछ खूबी मुझमें दिखाई पड़ती हो तो उसकी ही कोई बात झलकती होगी। मेरी अपनी कोई खूबी क्या हो सकती है!
भक्त की यह सतत भाव-भंगिमा है।
राणा भेजा जहर पियाला, इमरत करि पी जाणा।
डिबिया में भेज्या ज भुजंगम, सालिगराम करि जाणा।
जिसको सब जगह परमात्मा दिखाई पड़ता हो, वह तो सर्प में भी परमात्मा को
ही देखेगा। और तो कोई है ही नहीं। यह भी रूप उसी का है। वही आया है। और ऐसी भाव-दशा अगर प्रगाढ़ हो तो सर्प में भी वही है। है तो वही; सिर्फ हमारे पास आंख नहीं है श्रद्धा की कि हम देख सकें।
सांप को देख कर तुम घबड़ा जाते हो, भाग खड़े होते हो। अश्रद्धा पैदा हो गई, भय आ गया--तो सांप है। और तुमने देखा, कभी-कभी रस्सी में भी सांप दिख जाता है फिर, भय पैदा हो जाए तो! आदमी डरता हुआ अगर जा रहा है रास्ते से और किसी ने बता दिया कि जरा सम्हल कर जाना, उस रास्ते पर सांप इत्यादि होते हैं--तो वह पहले से ही विचार करते जा रहा है कि अब होते ही होंगे सांप, निकलते ही होंगे सांप। और एक रस्सी पड़ी दिखाई पड़ जाए अंधेरे में--भागे! गिर पड़ो, हाथ-पैर टूट जाएं। और वहां कोई सांप था नहीं। इस बात को समझना। सांप न हो तो भी आदमी हाथ-पैर तोड़ ले सकता है। सांप न हो तो भी आदमी घबड़ाहट में मर सकता है।
मैं एक घर में मेहमान था। उन मित्र को रात कोई चीज काट गई। देखा तो नहीं। बिस्तर पर सोए थे, बिस्तर पर ही काट गई। लेकिन पांव में निशान था। तो मैंने कहाः होगा चूहा इत्यादि, तुम फिकर छोड़ो। मेरी बात, उन्होंने कहाः होगा; चूहे इस घर में हैं भी बहुत। सांप का तो कोई ख्याल भी नहीं था, क्योंकि सांप उस घर में कभी दिखा भी नहीं था; चूहा ही हो सकता था। और लगता भी ऐसा था जैसे चूहे ने थोड़ी चमड़ी खींच ली हो। तीन दिन बीत गए, सब ठीक था; चौथे दिन एक सांप दिखाई पड़ गया घर में। बस वह सांप का क्या दिखाई पड़ना था, वे तो बेहोश हो गए। उनके मुंह से फसूकर निकलने लगा। मैंने उनकी पत्नी को कहाः यह तो गजब हो गया। तीन दिन तक चूहा था तो सब ठीक चल रहा था। अब इतना तो पक्का ही है कि चाहे सांप ने ही काटा हो इनको, मगर तीन दिन से कोई गड़बड़ न हुई थी। अब कोई तीन दिन के बाद थोड़े ही सांप का असर होता है! मगर भाव-दशा! पकड़ गई मन में बात।
सूफी कहानी है। जुन्नैद एक गांव के बाहर ठहरा था और उसने देखा कि रात मौत गांव में आ रही है। तो उसने पूछाः कहां जाती है?
तो उसने कहाः अब जाना पड़ रहा है गांव में; पांच सौ आदमियों को ले जाना है। मौत आ गई उनकी। उनका समय आ गया।
गांव में महामारी फैली थी। मौत भीतर गई। जब सात दिन बाद वापस लौटती थी, तो जुन्नैद ने फिर रोका कि रुक, मैं तो सोचता था कि कम से कम मौत झूठ न बोलेगी। क्योंकि आदमी झूठ बोलता है भय से; मौत के भय से ही झूठ बोलता है

आदमी। मौत को किसका भय? तू किसलिए झूठ बोली? तूने कहा पांच सौ ले जाना है, और पांच हजार मर चुके हैं!
उसने कहाः मैं क्या करूं? मैं तो पांच सौ ही ले जा रही हूं; साढ़े चार हजार अपने आप मर गए--घबड़ाहट में मर गए। उनको ले जाने का मेरे पास है ही नहीं, कोई लिस्ट भी नहीं है। पांच सौ मैंने मारे हैं; साढ़े चार हजार अपने आप मर गए। दूसरों को मरते देख कर मर गए।
यह रोज हो रहा है। यह कहानी अर्थपूर्ण है। बहुत कम लोग हैं जो दूसरों
से प्रभावित नहीं हो जाते। और प्रभाव का परिणाम होने वाला है। क्योंकि अंततः तुम्हारे चित्त में जो भाव बनता है, उसका ही परिणाम है। अगर रस्सी सांप बन जाती है तुम्हारे भाव में तो जहर चढ़ जाएगा। और अगर सांप भी रस्सी समझ ली जाए तुम्हारे भाव में तो जहर नहीं चढ़ेगा। यह तो साधारण मनोविज्ञान की बात है। लेकिन उस मनोविज्ञान के लिए तो क्या कहना--जिसको परमात्मा ही दिखाई पड़ता हो।
तो मीरा कहती हैः लेकिन मेरी इसमें कुछ खूबी नहीं है। मैंने तो पिटारी खोली यही सोच कर कि आए होओगे तुम्हीं, क्योंकि सदा तुम्हीं आते हो। किसी शक्ल में आए होओगे! तो मैंने तो जल्दी से उठा लिया सांप को--सालिगराम समझ कर--कि अच्छे आए, भले आए, सिर आंखों पर। जहर आया था, मैंने समझा तुम्हीं ने भेजा होगा। राणा में भी तुम्हीं हो और जहर में भी तुम्हीं हो! सो अमृत हो गया! याद दिलाए देती हूं तुम्हें कि मेरे पास कुछ और नहीं, सिवाय तुम्हारे गुण गाने के। लेकिन कभी-कभी तुम गुण गाते-गाते भी मेरे पास आए हो किसी बहाने से। मुझे तुमने कभी-कभी धन्य किया है।
मीरा तो अब प्रेम दीवानी...
और तुम्हारे इन्हीं छोटे-छोटे उपकारों के कारण, इन छोटी-छोटी भेंटों
के कारण मीरा प्रेम-दीवानी हो गई है। अब तो तुमने मुझे दीवाना कर दिया है। अब मुझे होश-हवास नहीं है।
... सांवलिया वर पाणा।
अब तो एक ही भाव है कि तुमसे कब मिल जाऊं, कब आलिंगन हो जाए। अब दूर-दूर
से नहीं चलेगा। अब दोस्ती भर से नहीं चलेगा। अब तो कब तुमसे वरी जाऊं, कब तुम्हारे और मेरे बीच के सब फासले गिर जाएं, सब दूरियां गिर जाएं, कब मैं तुममें हो जाऊं और तुम मुझमें हो जाओ।
मीरा तो अब प्रेम दीवानी, सांवलिया वर पाणा।
पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे।
इसी दीवानगी में फिर मीरा नाचने लगी। इसी दीवानगी से नाच उठा। इसी दीवानगी से उसमें उत्सव उठा।
पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे।
मैं तो मेरे नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
और जहां प्रेम है वहां समर्पण है। जहां प्रेम है वहां द्वैत नहीं।
कोई तुम्हें दासी बनाए या दास बनाए, तब तो बगावत होती है, विद्रोह होता है; लेकिन तुम जब प्रेम में खुद ही दास या दासी बन जाते हो, तब बात ही अनूठी होती है। इन दोनों में बड़ा फर्क है। इन दोनों में जमीन-आसमान का फर्क है। पति समझाता है पत्नी को कि मैं परमात्मा हूं और तू मेरी दासी है। और पत्नी जानती है कि दास कौन है! चिट्ठी-पत्री में दस्तखत भी करती है कि आपकी दासी! लेकिन सभी को पता है कि मालिक कौन है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन पत्नी से झगड़ रहा है और पत्नी कलछी लेकर उसे मारने दौड़ी। तो वह घबड़ा कर एक बिस्तर के नीचे घुस गया। बड़ा पलंग! उसमें पीछे जाकर बैठ गया दीवाल से सट कर। तभी किसी ने द्वार पर दस्तक दी। पत्नी ने जाकर दरवाजा खोला, तो दो-तीन पड़ोस से महिलाएं उससे मिलने आई थीं। अब वह बड़ी घबड़ाई कि यह मुल्ला बैठा है बिस्तर के नीचे। उसने उनको कहा कि जरा रुको, मैं अभी आई। मुल्ला से कहा कि जल्दी बाहर निकलो।
मुल्ला ने कहाः नहीं निकलते! देखें कौन हमें निकाल सकता है! आज यह सिद्ध होना है कि कौन मालिक है इस घर में!
यह सिद्ध करने की तरकीब निकाली उन्होंने कि नहीं निकलते। देखें कौन निकाल सकता है!
उसने कहाः धीरे बोलो, पड़ोसनें आई हैं।

उसने कहाः सब आ जाएं और देख लें कि घर का मालिक कौन है!
यह जो पति और परमात्मा और उनकी मालकियत है, वह जबरदस्ती है। जबरदस्ती है, इसलिए पत्नी उससे निरंतर संघर्ष में रहती है; निरंतर चेष्टा में लगी रहती है कि किसी तरह सिद्ध कर दे कि तुम मालिक नहीं हो, मैं मालिक हूं! पत्नी की कलह पैदा होती है उसी भाव से, क्योंकि यह दासीपन जबरदस्ती थोपा गया है; व्यवस्था से थोपा गया है। लेकिन एक प्रेम का भी दासीपन होता है; ऊपर से कोई थोपता नहीं, भीतर से आता है। तब उसकी बड़ी अनूठी महिमा है। ऐसा नहीं कि जब प्रेम का दासीपन आता है तो तुम मालिक हो जाते हो और तुम्हें प्रेम करने वाली स्त्री दासी हो जाती है। नहीं, दोनों ही दास हो जाते हैं प्रेम के; कोई एक-दूसरे का दास थोड़े ही हो जाता है। और एक-दूसरे को पता भी नहीं चलता; कानोंकान खबर नहीं होती।
मीरा कहती हैः
पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे।
मैं तो मेरे नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
नारायण ने बनाया नहीं है मुझे दास; मैं अपने आप हो गई हूं। यह प्रेम से फला है।
लोग कहैं मीरा भई बावरी, सास कहै कुलनासी रे।
स्वाभाविक है, परिवार के लोगों को नहीं जमेगा। कैसे जमेगा! यहां जो मेरे साथ धीरे-धीरे बावरे हुए जा रहे हैं, उनको पता है कि घर के लोगों को कैसे जमेगा! घर के लोगों को अड़चन होगी।
मेरे एक मित्र ने पत्र लिया है कि जब से वे संन्यासी हो गए हैं, उनकी पत्नी को शक है कि वे पागल हो गए हैं। उनके बच्चों को भी शक है; बच्चे भी उनसे कहते हैंः डैडी, आपको क्या हो गया? पहले तो आप बिल्कुल ठीक थे; अब आप यह क्या करते हो? और वे ऐसी मस्ती में हैं कि वे नाचते हैं, गाते हैं। उनके घर भक्तों की जमात इकट्ठी होने लगी है। वहां एक नई घटना घट रही है। लेकिन परिवार के लोग समझाने-बुझाने में लगे हैं कि किसी तरह होश में आओ! यह क्या कर लिया? यह तुम्हें कौन सी सनक आ गई है? ऐसे तो तुम कभी न थे। पढ़े-लिखे आदमी हो, इज्जत-प्रतिष्ठा है। सब गंवा दोगे!
लेकिन एक ऐसी घड़ी आती है, जब ऊपर का धन बरसना शुरू होता है तो यहां सब कुछ गंवाने को आदमी राजी हो जाता है। वह दूसरों को तो दिखाई नहीं पड़ता, अड़चन यह है। मीरा क्यों नाच रही है, उसे क्या मिल गया है, यह तो सास को दिखाई नहीं पड़ता। उसे तो इतना ही दिखाई पड़ता है कि यह क्या हुआ! यह क्या अभद्रता! राजघर की बहू सड़कों पर नाच रही है! सामान्यजनों की भीड़-भाड़ खड़ी देख रही है। सास को तो इतना ही लगता है कि मेरी बहू और बाजार में नाचे! उसे यह तो दिखाई ही नहीं पड़ रहा है कि बहू उस भीड़ में नाच ही नहीं रही है। बहू के सामने भीड़ है ही नहीं। बहू के सामने कृष्ण ही खड़े हैं--बहुत रूपों में। ये गोपाल ही आए हैं अलग-अलग रूपों में। यह बाजार नहीं है; यह उन्हीं का खेल है। वही दुकानदार हैं, वही ग्राहक हैं। बहू को तो कृष्ण ही कृष्ण दिखाई पड़ रहे हैं। सारा संसार कृष्णमय हो गया है। लेकिन यह तो बहू की आंख की बात है। सास कैसे समझे! सास के पास तो यह आंख नहीं है। बहू को क्या मिला है, उसे पता नहीं। उसे भी क्षमा करना। उस पर नाराज मत होना।
अक्सर लोग सोचते हैंः सास दुष्ट रही होगी। ऐसा मत सोचना। गलत बात है। दुष्ट नहीं है; सामान्य है; साधारण है। ऐसी ही है जैसे लोग संसार में होते हैं। लोग सोचते हैंः यह राणा जो जहर भिजवाता है, देवर है मीरा का, यह आदमी शैतान है, कि इसके सिर में शैतान सवार हो गया है, कि यह ईश्वर का दुश्मन है, यह कृष्ण का विरोधी है। नहीं, ऐसी कुछ बात नहीं है। यह राणा भी कृष्णाष्टमी होती होगी तो मंदिर जाता होगा। इसके घर में भी कृष्ण को झूला झुलाया जाता होगा। इसके घर में भी कृष्ण की मूर्ति होगी। यह भी कभी दो फूल चढ़ा आता होगा। लेकिन बस यह औपचारिकता की बात है। यह सामान्य है; कोई शैतान नहीं है। लेकिन यह इसकी समझ के बाहर है कि एक प्रतिष्ठित कुल की बहू और बीच बाजार में निर्लज्ज होकर नाचे। उसको निर्लज्जता दिखाई पड़ेगी।
लोग कहैं मीरा भई बावरी, सास कहै कुलनासी रे।
विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीरा हांसी रे।

और मीरा हंसती है। यह जहर का प्याला आया तो हंसती है। क्योंकि जिसका परमात्मा से संबंध जुड़ गया, अब उसके लिए जहर है ही नहीं, मौत ही नहीं है। उसके लिए अमृत ही अमृत है। अब मृत्यु घट ही नहीं सकती। मृत्यु तो घटती है अहंकार के कारण। जिसने अहंकार छोड़ ही दिया; अब उसके पास मरने को कुछ बचा नहीं। जो मरना था, वह तो त्याग ही दिया। अब जो मिट नहीं सकता, वही शेष रहा। तो हंसी होगी कि जहर किसको भेजते हो!
मंसूर ने यही कहा था अपने हत्यारों को, कि तुम मार किसे रहे हो! जिसे तुम मार रहे हो, वह तो मैं पहले ही छोड़ चुका। और जो मैं हूं उसे तुम मार नहीं सकते; उसे कोई नहीं मार सकता।
यही तो सिकंदर से एक हिंदू संन्यासी ने कहा था। जब सिकंदर ने कहाः अगर मेरे साथ नहीं चलोगे तो गर्दन अलग कर दूंगा! उसने कहाः कर दो। मैं खुद ही पहले अलग कर चुका हूं, अब गर्दन है कहां? तुझे गर्दन दिखाई पड़ती है? सिकंदर ने तलवार खींच ली। वह कोई तत्वचर्चा करने नहीं आया था। वह आदमी अपने ढंग का था। उसने कहाः अगर ज्यादा बकवास की, गर्दन अलग कर दूंगा। वह फकीर हंसने लगा। उसने कहाः तू अलग कर ही दे। तू भी गिरते देखेगा गर्दन को, हम भी गिरते देखेंगे। गर्दन ही कटेगी; तू मुझे न काट सकेगा। नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि, मुझे कोई शस्त्र काट नहीं सकते; नैनं दहति पावकः, मुझे कोई आग जला नहीं सकती। तू काट।
अगर सिकंदर किसी आदमी के सामने हार गया था, तो वह उसी फकीर के सामने। उसने तलवार वापस रख ली। इस आदमी को काटने में कोई अर्थ न था। यह डरता ही न था। यहां कोई मौत का कारण ही नहीं था इसके पास। काट कर खुद ही पछताना पड़ेगा कि एक ऐसे प्यारे आदमी को काट दिया। उसने बहुत लोग देखे थे। उसने लोग देखे थे, जो उसकी तलवार से भाग जाते, कंप जाते। उसने लोग देखे थे, जो उसकी तलवार देख कर अपनी तलवार निकाल लेते और जूझ जाते। मगर यह तीसरी तरह का आदमी था; न भागा, न जूझा, वहीं खड़ा हंसता रहा। और जब सिकंदर ने म्यान में तलवार डाल ली तो उसने फिर कहाः अरे, इरादा बदल दिया क्या? काटोगे नहीं? जो कट सकता है, वह मैं नहीं हूं!
मीरा कहती हैः विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीरा हांसी रे।
मीरा हंसी। अब क्या जहर! अब क्या मृत्यु!
और जब लोगों ने कहा होगा--लोग कहैं मीरा भई बावरी--तब भी मीरा हंसी होगी, तब भी हंसी होगी। लोगों को पता ही नहीं कि महाधन मिल गया! अमृत की वर्षा हो रही है! वसंत आया है! प्यारे का घर रोज-रोज करीब आता जा रहा है। अब जब प्यारे का घर करीब-करीब आता जाता हो रोज-रोज तो पैर में घुंघरू न बांधोगे, नाचोगे न, तो करोगे क्या?
मगर वह प्यारे का घर तो किसी और को दिखाई नहीं पड़ता; वह मीरा को दिखाई
पड़ रहा है। लोगों को तो सिर्फ उसके पैर में बंधे घुंघरू दिखाई पड़ रहे हैं। लोग तो इतना ही देख रहे हैं कि वह नाच रही है। लोग भीतर नहीं देख पा रहे हैं कि कौन उसे नचा रहा है। नचाने वाले को नहीं देख रहे हैं; सिर्फ नाच देख रहे हैं।
मीरा के सामने लोग तो दूर हो गए हैं, अर्थहीन हो गए हैं, धुंधले हो गए हैं--कृष्ण प्रगाढ़ होने लगे। और ये दोनों बातें एक साथ होती हैंः जैसे- जैसे प्रगाढ़ होता जाता है परमात्मा का अनुभव, वैसे-वैसे संसार माया होता जाता है। जैसे सपने में किसी ने कुछ कहा, ऐसी बात हो जाती है।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अविनासी रे।
न तो दुनिया ही बदलती है न दुनिया वाले
फैज जल्वा से नजर अपनी बदल जाती है
परमात्मा के अनुभव से न तो दुनिया बदलती है, न दुनिया वाले, लेकिन उसके जल्वे को देख कर अपनी नजर बदल जाती है।
न तो दुनिया ही बदलती है न दुनिया वाले
फैज जल्वा से नजर अपनी बदल जाती है
न तअय्युन है मकां को न जमां को है करार
जिंदगी कैफे-मोहब्बत से सम्हल जाती है
बेखुदी में हमीं हो जाते हैं फितरत से बुलंद
ये नहीं होता कि फितरत ही बदल जाती है

दूर तक फैले हैं आफाक में गम के साये
जिंदगी चीर के इन सबको निकल जाती है
इश्के-सदमेहरो-दरख्शां वो खुदी बनती है
शोलाए-हुस्ने-तजल्ली में जो ढल जाती है
लोग नहीं बदलते, दुनिया नहीं बदलती; लेकिन जब तुम्हारी दृष्टि बदल जाती है तो सब बदल जाता है।
न तो दुनिया ही बदलती है न दुनिया वाले
फैज जल्वा से नजर अपनी बदल जाती है
अब जहर जहर नहीं दिखाई पड़ता और सांप सांप नहीं दिखाई पड़ता। और लोग कहते हैं कि पागल हो गई है, तो इसमें कुछ अपमान नहीं मालूम होता। और सास कहती है कि कुलनाशी है, इसमें भी कुछ चोट नहीं पड़ती। इससे कुछ घाव नहीं लगते।
न तअय्युन है मकां को न जमां को है करार
जिंदगी कैफे-मोहब्बत से सम्हल जाती है
फिर कोई चीज नहीं डिगाती, जब जिंदगी मोहब्बत से सम्हल जाती है। फिर कोई चीज नहीं हिलाती। फिर तूफान आएं, अंधड़ आएं, अपमान आएं, क्रोध आए लोगों का, वैमनस्य-ईर्ष्या बरसे--कुछ भी नहीं होता।
जिंदगी कैफे-मोहब्बत से सम्हल जाती है
बेखुदी में हमीं हो जाते हैं फितरत से बुलंद
ये नहीं होता कि फितरत ही बदल जाती है
जब आदमी बेखुद हो जाता है, परमात्मा में डूब जाता है, भूल जाता है अपने को--तो प्रकृति से बड़ा हो जाता है। ऐसा नहीं कि प्रकृति बदल जाती है, लेकिन आदमी प्रकृति से बड़ा हो जाता है।
परमात्मा से जुड़ते ही तुम प्रकृति से बड़े हो जाते हो--मालिक से जुड़ गए। चित्रकार से जुड़ गए तो चित्र से बड़े हो गए। कवि से जुड़ गए तो काव्य से बड़े हो गए।
बेखुदी में हमीं हो जाते हैं फितरत से बुलंद
ये नहीं होता कि फितरत ही बदल जाती है
इश्के-सदमेहरो-दरख्शां वो खुदी बनती है
शोलाए-हुस्ने-तजल्ली में जो ढल जाती है
जिस दिन तुम अपनी छोटी सी ज्योति को उस परम ज्योति में मिला दोगे उस दिन सब बदल जाता है। तब जीवन के नियम तुम पर काम नहीं करते। तब कभी जहर अमृत हो जाता है और कभी सांप सालिगराम हो जाता है। तब जिंदगी के साधारण नियम तुम पर लागू नहीं होते। और ऐसा नहीं है कि प्रकृति बदल जाती है; तुम ही बदल गए हो, इसलिए नियम लागू नहीं होते। प्रकृति तो जहां की तहां है, जैसी की तैसी है।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अविनासी रे।
और मीरा कहती हैः यह जो मिलन है प्रभु का, सहज हो जाता है। इसके लिए कोई कृच्छ साधना नहीं करनी पड़ती। इसके लिए कोई जप-तप, व्यर्थ की परेशानियां नहीं उठानी पड़तीं। यह सहज हो जाती है बात। क्यों? सहज का मतलब यह मत समझ लेना कि सरलता से हो जाती है। सहज का अर्थ सरल नहीं होता। सहज का अर्थ स्वाभाविक होता है। सहज का अर्थ होता हैः यह तुम्हारा स्वभाव ही है कि तुम परमात्मा के साथ एक हो सकते हो। जब तक तुमने तय किया कि नहीं होना है, तब तक रुके हो; जिस दिन तुमने ढील डाल दी, अपने अवरोध हटा दिए, द्वार-दरवाजे खोल दिए--सहज हो जाती है।
जैसे सुबह सूरज बाहर निकला है और तुम दरवाजे बंद किए भीतर बैठे हो और आंखें बंद किए हो--अंधेरी रात है तुम्हारे लिए, अमावस है। सूरज बाहर निकला है। मामला बिल्कुल सहज है। तुम दरवाजा खोल दो, सूरज भीतर आ जाए। तुम आंख खोल दो, सूरज के दर्शन हो जाएं। सरल नहीं है इसका अर्थ। क्योंकि अगर आंख बंद करने में तुम्हारा कुछ न्यस्त स्वार्थ है, तो आंख खोलना आसान नहीं होगा। या अगर तुम आंखें जन्मों-जन्मों से बंद किए हो तो आज एकदम से आंख खोलना आसान नहीं होगा। और दरवाजे अगर तुमने कभी खोले ही नहीं हैं तो शायद वे अब तक दीवाल हो चुके होंगे; शायद उनको खोलना इतना आसान न हो।

समझना! सहज का अर्थ सरल नहीं होता; सस्ता नहीं होता। सहज का अर्थ होता हैः स्वाभाविक है यह। ईश्वर से दूर होना अस्वाभाविक है। ईश्वर के पास होना स्वाभाविक है, क्योंकि ईश्वर हमारे प्राणों का प्राण है।
तेरे पास बैठके दो घड़ी तुझे हाले-दिल है सुना लिया
मुझे अपना मान न मान तू, तुझे मैंने अपना बना लिया
मुझे अपना मान न मान तू, तुझे मैंने अपना बना लिया
तेरे पास बैठके दो घड़ी तुझे हाले-दिल है सुना लिया
कई तेजगाम भटक गए, कई बर्करौ हुए लापता
तेरे आस्तां पे जो रुक गए, उन्हें आके मंजिल ने पा लिया
कई तेजगाम भटक गए...
कुछ लोग बड़ी तेज चाल चलने वाले थे, वे भटक गए--बड़े तपस्वी, बड़े संघर्ष वाले, बड़े संकल्प वाले!
कई तेजगाम भटक गए, कई बर्करौ हुए लापता
तेरे आस्तां पे जो रुक गए...
लेकिन जिन्होंने तेरे चरणों में सिर झुका दिया--
तेरे आस्तां पे जो रुक गए, उन्हें आके मंजिल ने पा लिया
उन्हें मंजिल तक नहीं जाना पड़ा। उन्हें खोजती हुई मंजिल आ गई। सहज का यही अर्थ है।
ये नजर का अपनी कसूर है कि हिजाबे जलवा की है खता
कोई इक किरन को तरस गया, कोई चांदनी में नहा लिया
कुछ लोग हैं जो एक किरण को तरस रहे हैं और कोई हैं कि चांदनी में नहा रहे हैं। मामला क्या है? मामला कुछ भी नहीं है। जो सहज की गति से चलेगा वह चांदनी में नहा लेगा। जो चेष्टा करेगा, अपने को सिद्ध करने का प्रयास करेगा--वह एक-एक किरण को तरस जाएगा।
कई तेजगाम भटक गए, कई बर्करौ हुए लापता
तेरे आस्तां पे जो रुक गए, उन्हें आके मंजिल ने पा लिया
ये नजर का अपनी कसूर है कि हिजाबे जलवा की है खता
कोई इक किरन को तरस गया, कोई चांदनी में नहा लिया
मेरे साथ होती न बेखुदी, तो भटक गया होता मैं कहीं
मेरी लग्जिशों ने कदम-कदम मुझे गुमरही से बचा लिया
यह प्यारा वचन याद रखना! अगर मुझमें बेहोशी न होती, बेखुदी न होती; अगर मैं अपने को भूल कर तल्लीन होने का क्षमतावान न होता--तो कभी का भटक गया होता। यह मेरी बेखुदी ने और बेहोशी ने मुझे बचाया।
मेरे साथ होती न बेखुदी, तो भटक गया होता मैं कहीं
मेरी लग्जिशों ने कदम-कदम मुझे गुमरही से बचा लिया
यह बेहोशी के कारण मैं जो लड़खड़ा-लड़खड़ा कर चल रहा हूं, इस लड़खड़ाने के कारण ही भटका नहीं। क्योंकि--
कई तेजगाम भटक गए...
भक्त कहता हैः परमात्मा को पा लेना सहज है। परमात्मा खुद आता है। तुम पुकारो भर! तुम्हारी पुकार पूर्ण हो! तुम प्यासे भर होओ! तुम्हारी प्यास भर समग्र हो।
परमात्मा स्वभाव है; इसलिए सहज है। न तो सस्ता है, न महंगा; अमोलक है।
न तो कुछ करने से मिलता है, न बैठे-ठाले मिलता है। कुछ तीसरी बात चाहिए। हृदय की गहन प्यास चाहिए। कृत्य का सवाल नहीं है और बैठे-ठाले भी नहीं मिलता है। बैठे-ठाले का अर्थ हैः प्यास भी नहीं। और कृत्य का अर्थ हैः बड़ा अहंकार है और बड़ा संकल्प है।
कई तेजगाम भटक गए, कई बर्करौ हुए लापता
तेरे आस्तां पे जो रुक गए, उन्हें आके मंजिल ने पा लिया
भक्त कहता हैः परमात्मा तुम्हें खोज रहा है। तुम्हीं उसे खोज रहे हो, ऐसा नहीं है। इसलिए सहज है। अकेला आदमी खोजता तो पाता भी कैसे! कहीं भटक जाता। लेकिन उसका हाथ भी तुम्हारी तरफ बढ़ा हुआ है। वह तुम्हें तलाश रहा है।
और उसी क्षण मिलन हो जाएगा, जिस क्षण तुम्हारी प्यास तुम्हारे पूरे प्राणों को सुलगा देगी। एक भभक! एक लपट! कि रोआं-रोआं उसमें सम्मिलित हो

जाएगा। कण-कण उसमें समाहित हो जाएगा। तुम प्यास से अलग न बचोगे--तुम प्यास ही हो जाओगे। ऐसी प्रार्थना, ऐसी प्यास, ऐसी पुकार--बस इतना पर्याप्त है।
रोओ उसके लिए--वही प्रार्थना है।
पुकारो उसके लिए--वही साधना है।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
छठवां प्रवचन

श्रद्धा है द्वार प्रभु का

पहला प्रश्नः श्रद्धा क्या है?

श्रद्धा है एक प्रकार का पागलपन; लेकिन सिर्फ धन्यभागियों को ही ऐसा पागलपन मिलता है। अभागे हैं वे जो श्रद्धा के पागलपन से अपरिचित हैं। श्रद्धा का पागलपन जीवन की सबसे बड़ी संपदा है, क्योंकि उसी के आधार पर, जो नहीं दिखाई पड़ता उसकी खोज शुरू होती है।
जिसके जीवन में श्रद्धा का सूत्र नहीं है, वह इंद्रियों पर अटका रह जाता है; उसका यथार्थ--आंख से जितना दिखाई पड़े, हाथ से जितना छूने में आ जाए, कान से जितना सुनाई पड़े--इसी पर अटक जाता है। और इंद्रियों की सीमा है। इंद्रियां बड़ी छोटी हैं; अस्तित्व विराट है।
इंद्रियां ऐसी हैं जैसे चाय की चम्मच; और अस्तित्व ऐसे है जैसे महासागर। चाय की चम्मच से जो सागर को नापने चलता है, कब नाप पाएगा! कैसे नाप पाएगा! चाय के चम्मच में सागर का कोई दर्शन नहीं हो सकता; यद्यपि चाय की चम्मच में जो भर जाता है वह भी सागर है। पर बड़ा गुण-भेद हो गया। कहां सागर के तूफान! कहां सागर की मौज! कहां सागर की मस्ती! कहां सागर की उत्तुंग लहरें! कहां सागर की गहराइयां--जिनमें हिमालय जैसा पहाड़ खो जाए तो पता भी न चले कहां गया! उस चाय की चम्मच में न तो गहराई होगी सागर की, न सागर की तरंगों की मौज-मस्ती होगी, न नृत्य होगा, न तूफान-आंधी होंगे। हालांकि चम्मच में जो भर गया है वह सागर का ही एक छोटा सा हिस्सा है। लेकिन गुणात्मक परिवर्तन भी हो गया। परिमाण तो कम हुआ ही हुआ, गुण का भी अंतर हो गया। सागर में डूब सकते हो; चाय की चम्मच में कैसे डूबोगे!
ऐसी ही इंद्रियों की स्थिति है। इनसे जो हमें दिखाई पड़ता है, वह विराट
का ही हिस्सा है, पर अति क्षुद्र। इतना क्षुद्र कि परिमाण का भेद तो पड़ता ही है, गुण का भेद भी पड़ जाता है। अदृश्य न मिलेगा तो सागर न मिलेगा।
मगर अदृश्य को खोजने के लिए जो पहला सूत्र है, वह है श्रद्धा। श्रद्धा
का मतलब होता हैः जो नहीं देखा, उस पर भी भरोसा; जो नहीं सुना, उस पर भी भरोसा। श्रद्धा का अर्थ होता हैः अनजान में उतरने का साहस।
इसलिए मैं कहता हूंः श्रद्धा एक पागलपन है। जो तथाकथित समझदार हैं,
वे ऐसी झंझट में नहीं पड़ते। वे जाने-माने की सीमा में रहते हैं। जहां तक जाना-माना है वहीं तक जाते हैं, उससे आगे नहीं जाते। उससे आगे विराट का जंगल है; भटक जाने का डर है। भटक जाने की जोखिम उठाने का नाम श्रद्धा है। जोखिम तो है। कोई गारंटी हो नहीं सकती। कौन देगा गारंटी? कोई इंश्योरेंस भी नहीं हो सकता। अज्ञात की तरफ जो चला है उसने एक जोखिम तो ली है। हो सकता है खो जाए। हो सकता है भटक जाए। हो सकता है लौटने की संभावना न रहे। क्योंकि विराट से संबंध जोड़ना खतरनाक तो है ही। जब नदी सागर से संबंध जोड़ती है तो खतरा तो लेती ही है। खतरा यही है कि खो जाएगी। और सौभाग्य यह है कि खोकर ही नदी सागर हो जाती है।
इसलिए मैं कहता हूंः श्रद्धा एक तरह का पागलपन है। और इसलिए जो थोड़े- बहुत श्रद्धा से पागल हैं, उनको ही मैं स्वस्थ कहता हूं, क्योंकि उनके जीवन में झरोखा खुला है। वे आकाश को बाहर छोड़ नहीं दिए हैं; आकाश उनके भीतर आता-जाता है। उनके पंख अभी भी फड़फड़ाते हैं। वे अभी भी उड़ने को तत्पर हैं। वे अभी भी दूर चांद-तारों से मिलने की तैयारी कर रहे हैं। छोटी है क्षमता; छोटी है शक्ति--लेकिन आकांक्षा विराट की है। यही श्रद्धा का अर्थ है।
जब एक किसान बीज बोता है तो श्रद्धा है। क्योंकि कौन जाने बीज पनपेंगे, न पनपेंगे! सभी बीज पनपते तो नहीं। सभी बीज सदा नहीं पनपते। फिर कौन जाने वर्षा आएगी कि नहीं आएगी, मेघ घिरेंगे कि नहीं घिरेंगे! सदा मेघ घिरते भी नहीं। सूखा भी पड़ता है। और कौन जाने, जैसा कल तक हुआ है वैसा आगे भी कल होगा कि नहीं! आज तक सूरज उगा है, सच; लेकिन कल उगे न उगे! कल के बाबत क्या कहोगे! कोई निश्चय से उत्तर नहीं दे सकता।

एक दिन तो ऐसा जरूर आएगा जब सूरज नहीं उगेगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि कभी न कभी वह दिन आएगा जब सूरज का ईंधन चुक जाएगा। आखिर तेल का छोटा सा दीया जलाते हो, वह भी तो उतनी ही देर तक जलता है जितनी देर तक तेल है। सूरज का भी तेल एक दिन चुक जाएगा। उसकी क्षमता भी रोज कम होती जा रही है, प्रतिदिन कम होती जा रही है; क्योंकि जितनी रोशनी देता जाता है, उतना कम होता जाता है। एक न एक दिन ठंडा हो जाएगा। हो सकता है वह दिन कल ही हो। कल का क्या भरोसा--सूरज निकलेगा कि नहीं! बादल घिरेंगे कि नहीं! और क्या भरोसा कि बीज अब तक तो धोखा नहीं दिए, कल भी अपनी पुरानी प्रतिष्ठा कायम रखेंगे कि नहीं रखेंगे! बीज सड़ भी जा सकते हैं।
सब डर है; फिर भी किसान बीज बोता है। हाथ में जो है उसको गंवाता है-- उसकी आशा में, जो अभी हाथ में नहीं है। हालांकि बुद्धिमानों का तर्क यह है कि हाथ की आधी रोटी, आकांक्षा और आशा की पूरी रोटी से बेहतर है। यह बुद्धिमानों का कहना है। श्रद्धालु का कहना यह है कि हाथ में कितना ही हो, वह उसके लिए गंवाने की तैयारी रखनी चाहिए जो हाथ के अभी बाहर है, तो विकास होता है।
बुद्धिमानों की बात मानी तो जड़ हो जाओगे। पागलों की सुनो।
श्रद्धा का सूत्र जीवन में सारी संभावनाओं को अपने में लिए है। आमतौर
से लोग सोचते हैं कि श्रद्धालु व्यक्ति कमजोर होता है। बिल्कुल ही गलत बात है। श्रद्धालु ही शक्तिशाली है। अश्रद्धालु कमजोर होता है। वह अपनी कमजोरी को बड़े तर्क देता है। वह कहता हैः जब तक मुझे प्रमाण न मिल जाएं, मैं मानूं कैसे? लेकिन श्रद्धालु कहता हैः कुछ चीजें जीवन में ऐसी भी हैं कि मानो तो प्रमाण मिलते हैं; अगर मानो ही न तो प्रमाण मिलते ही नहीं। जैसे कोई कहे कि प्रेम मैं तब करूंगा जब प्रेम का पहले मुझे प्रमाण मिल जाए कि होता है। कोई बच्चा यह कहे कि मैं प्रेम तभी करूंगा जब मुझे प्रेम का प्रमाण मिल जाए कि यह रहा प्रेम, ऐसा रहा प्रेम; जब मैं प्रेम का पूरा शास्त्र समझ लूं, सब तरफ से जांच-परख कर लूं, भूल-चूक की कोई संभावना न रहे--तब करूंगा प्रेम। तो फिर इस जगत में प्रेम विदा हो जाएगा। यह तो श्रद्धालु के कारण प्रेम चल रहा है। क्योंकि श्रद्धालु कहता हैः कर लेंगे पहले, फिर जांच-परख हो लेगी; जांच-परख पीछे हो लेगी।
श्रद्धा बड़ी दुस्साहस की बात है; कमजोर के बस की बात नहीं है। यह बलवान की बात है।
मैं पाबगिल हूं, सितारों की बात करता हूं।
खिजांजदा हूं, बहारों की बात करता हूं।
श्रद्धा ऐसा पागलपन है कि जब चारों तरफ मरुस्थल हो और कहीं हरियाली
का नाम न दिखाई पड़ता हो, तब भी श्रद्धा भरोसा रखती है कि हरियाली है, फूल खिलते हैं। जब जल का कहीं कण भी न दिखाई पड़ता हो, तब भी श्रद्धा मानती है कि जल के झरने हैं, प्यास तृप्त होती है। जब चारों तरफ पतझड़ हो, तब भी श्रद्धा में वसंत ही होता है। श्रद्धा में वसंत का मौसम सदा ही होता है। श्रद्धा एक ही मौसम जानती है--वह वसंत। बाहर होता रहे पतझड़, पतझड़ के सारे प्रमाण मिलते रहें, लेकिन श्रद्धा वसंत को मानती है।
संन्यास के लिए इस देश में हमने गैरिक वस्त्र चुना है। गैरिक का एक दूसरा नाम है वासंती रंग। यह वसंत का रंग है। यह वसंत के सौंदर्य की इसमें झलक है--वसंत की जवानी की; वसंत की आशा की, वसंत की श्रद्धा की। यह फूलों का रंग है। यह सूरज का रंग है। यह सुबह का रंग है। इसको वासंती-बाना कहा है।
यह शहीदों का रंग है। जो इतनी दूर तक राजी हो जाते हैं कि अनजान-अपरिचित परमात्मा के लिए अपना जाना-माना प्राण भी चढ़ा देते हैं।
मैं पाबगिल हूं, सितारों की बात करता हूं।
खिजांजदा हूं, बहारों की बात करता हूं।
दबी हुई है जहां-सोज आग सीने में,
मैं राख हूं, पै शरारों की बात करता हूं।
श्रद्धा राख में भी अंगारों की बात करती है; अंगारों को खोजती है।
जहां मृत्यु ही मृत्यु है, जहां मरघट ही मरघट फैला है--वहां श्रद्धा अमृत का राज खोजती है।

यहां है क्या मृत्यु के सिवा? कुछ मर गए हैं; कुछ मरने वाले हैं; कुछ
जो अभी पैदा नहीं हुए हैं, वे भी मरेंगे। यहां मृत्यु के सिवा और कुछ भी निश्चित नहीं है। अगर श्रद्धा के अतिरिक्त सोचो तो मृत्यु भर एकमात्र यथार्थ है, बाकी तो सब श्रद्धा है। जन्म के बाद एक ही बात निश्चित है जो होगी--वह मृत्यु है; बाकी सब अनिश्चित है; बाकी होगा नहीं होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।
जीवन में एक ही बात पूर्ण रूप से निश्चित है--वह मृत्यु है। अगर कोई ठीक-ठीक तर्कवादी हो तो मृत्यु के अतिरिक्त और किसी में उसको विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि और बाकी सब चीजें अनिश्चित हैं।
इसलिए पश्चिम में, जहां तर्क का खूब विचार हुआ है, फैलाव हुआ है--वहां लोगों का जीवन में कोई भरोसा नहीं रहा है। लोग कहते हैंः जीवन अर्थहीन है। वहां मृत्यु एकमात्र तथ्य मालूम होने लगी है। बड़ी संख्या में लोग आत्मघात करते हैं, क्योंकि जीवन अर्थहीन है। मृत्यु में ही शरण लेते मालूम पड़ते हैं।
दबी हुई है जहां-सोज आग सीने में,
मैं राख हूं, पै शरारों की बात करता हूं।
भंवर में है मेरा सफीना, हैं बादबां मौजें,
तलातुमों में किनारों की बात करता हूं।
श्रद्धा का अर्थ हैः जब तूफान उठे हों और नाव डोलती हो, अब डूबी तब डूबी होती हो, तब भी श्रद्धा किनारों की बात करती है। तब भी श्रद्धा किनारों को मानती है। तब भी श्रद्धा किनारों को जानती है। डूबते हुए भी सागर में, श्रद्धा में किनारे ही होते हैं। तुम श्रद्धालु को डुबा नहीं सकते, क्योंकि वह डूबते में भी किनारा पा लेगा।
भंवर में है मेरा सफीना...
नाव उलझ गई भंवर में, नाव बन गई भंवर खुद।
... हैं बादबां मौजें,
और सागर की लहरें, कि बड़ी दुश्मन! मिटाने को तत्पर!
तलातुमों में किनारों की बात करता हूं।
और तूफान उठा है जोर से, बाढ़ आई है भयंकर--कहीं कोई किनारा दिखाई नहीं पड़ता; कहीं कोई आशा की किरण नहीं है, अंधेरा भयंकर और पूर्ण है, अमावस है-- लेकिन फिर भी श्रद्धा किनारों की बात करती है। अंधेरी से अंधेरी रात में भी श्रद्धा चमकते तारे खोज लेती है। अमावस की रात भी श्रद्धा में पूर्णिमा ही रहती है।
सुबू-ओ-जाम, गुलो-नसतरन, महो-अंजुम,
गरीब दिल के सहारों की बात करता हूं।
हुई थी जिनसे मोहब्बत की इब्तिदाए-हसीं,
मैं उन लतीफ इशारों की बात करता हूं।
श्रद्धा उसको खोजती है जिसका इशारा परमात्मा की तरफ हो; जीवन में वही खोजती है जिसका इशारा परमात्मा की तरफ हो। तर्क वही खोजता है जिसका इशारा परमात्मा के विपरीत है।
तर्क है परमात्मा के विपरीत यात्रा। श्रद्धा है परमात्मा की तरफ यात्रा। तर्क है परमात्मा से विमुख होना। श्रद्धा है परमात्मा के सम्मुख होना।
तर्क का अर्थ होता हैः जो प्रमाणित होगा, हमारी बुद्धि से प्रमाणित होगा, वही हम स्वीकार करेंगे।
परमात्मा हमारी बुद्धि से बड़ा है; हमारी बुद्धि से गहरा है; हमारी बुद्धि से पहले है। इसलिए परमात्मा को बुद्धि प्रमाणित नहीं कर सकती। तो फिर बुद्धि कहती हैः परमात्मा नहीं है। जो प्रमाणित न हो सके, बुद्धि कहती है, वह नहीं है।
बुद्धि प्रमाणित क्या कर पाती है? क्षुद्र चीजें प्रमाणित कर पाती है। कंकड़-पत्थर प्रमाणित हो जाते हैं; परमात्मा प्रमाणित नहीं होता। रुपये-पैसे प्रमाणित हो जाते हैं; प्रेम प्रमाणित नहीं होता। पद-प्रतिष्ठा प्रमाणित हो जाती है; काव्य, सौंदर्य, संगीत प्रमाणित नहीं होते।

श्रद्धा, जो प्रमाणित नहीं होता, उसकी तरफ यात्रा है। और ऐसा बहुत कुछ
है जीवन में जो प्रमाणित नहीं होता। और यह शुभ है कि प्रमाणित नहीं होता; नहीं तो जीवन बिल्कुल व्यर्थ हो जाता। अगर सब कुछ प्रमाणित होने वाला होता तो बुद्धि से ऊपर फिर कुछ भी नहीं हो सकता था। फिर बुद्धि को कहां शरण देते? कहीं तो कोई चरण चाहिए जहां तुम जाकर कह सकोः बुद्धं शरणं गच्छामि, कि अब मैं तुम्हारी शरण आता! कहीं तो कुछ चाहिए, जिसे तुम पुकार सको। श्रद्धा का अर्थ हैः मेरे भीतर प्यास है, यही प्रमाण है कि जल होता होगा। और क्या प्रमाण चाहिए? जल का कोई पता नहीं है अभी। कहीं दिखाई नहीं पड़ता। दूर-दूर तक कोई खबर नहीं मिलती। लेकिन एक बात पक्की है कि मेरे भीतर प्यास है। मेरे भीतर प्यास है तो जल भी होगा; नहीं तो प्यास ही कैसे हो सकती थी? मेरे भीतर भूख है तो भोजन भी होगा, नहीं तो भूख ही कैसे हो सकती थी? और मेरे भीतर यह परमात्मा को देखने की अभीप्सा है तो परमात्मा भी होगा; अन्यथा यह अभीप्सा कैसे हो सकती थी?
श्रद्धा ऐसी प्रतीति है। अपने भीतर खोजती है श्रद्धा और जिस चीज की आकांक्षा पाती है उसको मानती है कि होगा; अब खोजने की बात है।
तुमने देखा, छोटा बच्चा पैदा होता है। इस बच्चे को कुछ भी पता नहीं है
कि श्वास कैसे ली जाए। इसने कभी श्वास ली नहीं है अब तक! नौ महीने मां के पेट में मां की ही श्वास से काम चलाता था। पहले दो-चार क्षण, जब बच्चा पैदा होता है, तो बड़ी चिंता के होते हैं--उनके लिए जो चारों तरफ इकट्ठे हैं-- पिता है, मां है, डाक्टर है, बड़े चिंतित रहते हैं कि दो-चार क्षण में सब तय हो जाएगाः बच्चा श्वास लेगा कि नहीं लेगा? चिल्लाएगा कि नहीं? रोएगा कि नहीं? अगर बच्चा रो देता है तो सारे लोग प्रसन्न हो जाते हैं। बच्चा अगर नहीं रोता तो घबड़ा जाते हैं। क्योंकि रोने के द्वारा ही वह श्वास लेना शुरू कर देता है। रोने का और क्या कारण है? रोने के द्वारा वह गले को साफ कर लेता है। उसके फेफड़े एक झटके से खुल जाते हैं। वह जोर की जो आवाज निकलती है, उसमें उसके बंद फेफड़े, जिन्होंने कभी काम नहीं किया, अचानक काम करने लगते हैं। मगर इसने कभी श्वास ली नहीं थी, कैसे सीखा? किसने सिखाया? जीने की आकांक्षा थी जरूर भीतर, नहीं तो श्वास लेना संभव नहीं होता।
और बच्चे को भूख लगती है। और वह मां का स्तन खोजने लगता है। भूख है तो स्तन भी होगा। और बच्चे ने इसके पहले कभी दूध नहीं पीया, और वह मां का स्तन अपने मुंह में ले लेता है और चूसने लगता है। यह चमत्कार है, क्योंकि इसकी कोई शिक्षण व्यवस्था नहीं है। और शिक्षण व्यवस्था होती तो बड़ी मुश्किल हो जाती; दो-चार-पांच साल लग जाते, किंडर गार्टन स्कूल में भेजते, सीखता, तब तक मर ही जाता। कुछ अनसीखा लेकर आया है--एक भरोसा है कि मां होगी। हालांकि इतना स्पष्ट भी नहीं है बच्चे के मन में शब्दों की तरह कि मां होगी; मगर एक श्रद्धा है कि होगी; कि ये ओंठ तड़फते हैं, कि यह कंठ प्यासा है, कि ये प्राण भूखे हैं--तो कहीं कोई जलधार होगी, कहीं कोई दूध होगा, कहीं कोई पोषण होगा। बस श्रद्धा यही है कि तुम्हारे भीतर अगर परमात्मा की आकांक्षा है तो परमात्मा होना ही चाहिए; नहीं तो आकांक्षा कैसे होती!
बच्चा प्रमाण नहीं मांगता कि मुझे स्तन का पहले प्रमाण दो; कि दूध का प्रमाण दो; कि दूध पौष्टिक है, इसका प्रमाण दो--बस दूध पीने लगता है और दूध पौष्टिक है। और प्रमाण मिल जाते हैं अपने आप।
तर्क कहता हैः पहले प्रमाण, फिर अनुभव। श्रद्धा कहती हैः पहले अनुभव, फिर प्रमाण।
हुई थी जिनसे मोहब्बत की इब्तिदाए-हसीं,
मैं उन लतीफ इशारों की बात करता हूं।
किसी के जलवा-ए-रुख का ख्याल आते ही,
मैं महरो-मय की, सितारों की बात करता हूं।
तेरे ख्याल से बाबस्तगी का उजरे-हसीं शिगुफ्ता ताजा बहारों की बात करता हूं।
दुआ करो कि मुझे ताबे-दीद मिल जाए,
मैं बेबसर हूं, नजारों की बात करता हूं।
दुआ करो कि मुझे ताबे-दीद मिल जाए,

कि मुझे उसका दर्शन हो जाए! ऐसी मेरे लिए प्रार्थना करो कि मुझे उसका दर्शन हो जाए।
मैं बेबसर हूं, नजारों की बात करता हूं।
मैं अंधा हूं और नजारों की बात कर रहा हूं।
श्रद्धा का अर्थ हैः अंधेपन में भी प्रकाश का भरोसा। उसी भरोसे के सहारे अंधापन कटता है, आंख मिलती हैं। श्रद्धा इस जगत में सबसे मूल्यवान तत्व है। जिसके पास श्रद्धा है, वह धनी है; और जिसके पास श्रद्धा नहीं है, उससे महानिर्धन दूसरा नहीं है। जिसके पास श्रद्धा नहीं, उसके पास वसंत की संभावना नहीं। इसलिए जगाओ श्रद्धा को।
और मजा यह है कि श्रद्धा सभी लेकर पैदा होते हैं। तर्क यहां सीखते हैं; श्रद्धा परमात्मा से लेकर आते हैं। श्रद्धा को सिखाना नहीं पड़ता; तर्क सिखाना पड़ता है।
तर्क का शास्त्र है; श्रद्धा का कोई शास्त्र नहीं है। और तर्क के लिए विश्वविद्यालय हैं; श्रद्धा के लिए कोई विश्वविद्यालय नहीं। श्रद्धा सिखानी नहीं होती; श्रद्धा तुम लेकर ही आए हो। लेकिन तुम भूल गए हो, कैसे उसका उपयोग करें! तुम तर्क इतना सीख गए हो कि उसी के कारण बाधा पड़ रही है। तर्क को जरा अनसीखा करो। जरा तर्क को हाथ से जाने दो। कभी-कभी तर्क को
एक तरफ हटा कर रख दो। कभी-कभी खोल दो द्वार, आने दो सूरज को और ताजी हवाओं को। देखो चांद-तारों को। कभी-कभी पृथ्वी को भूल जाओ। यह जो क्षुद्र तुम्हें चारों तरफ घेरे है--दुकान है, बाजार है, व्यवसाय--थोड़ी देर को इसे भूल जाओ। यही प्रार्थना है। यही ध्यान है। थोड़ी देर को झरोखा खोलो। थोड़ी देर को बंद कमरे की मुर्दा हवा के बाहर आओ; या कम से कम बाहर की हवा को भीतर आने दो। थोड़ी देर तर्क को उठा कर रख दो। थोड़ी देर के लिए भोले हो जाओ।
इस भोलेपन में ही तुम्हारे जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनुभूतियां उतरनी शुरू होंगी। यहीं से आता प्रेम। यहीं से आता सौंदर्य। यहीं से आता सत्य। और यहीं से एक दिन तुम पाओगे कि परमात्मा का भी आगमन होता है।
तुम्हारे श्रद्धा के द्वार से ही परमात्मा प्रवेश करता है।

दूसरा प्रश्नः
जाने क्या पिलाया तूने, बड़ा मजा आया।
झूम उठी रे मैं मस्तानी दीवानी।
पायल नहीं, घुंघरू नहीं,
छम-छम कैसे होने लगी!
ढूंढ़ो मुझे, मैं खोने लगी।
हुआ क्या मुझे, उई तौबा! मैं न जानी।
झूम उठी रे मैं मस्तानी दीवानी।
जाने क्या पिलाया, मुझे बड़ा मजा आया!

परमात्मा पिलाया जा रहा है। उससे कम कुछ मैं ढालता ही नहीं। यह जो शराब है, परमात्मा की शराब है। तुमने अगर हिम्मत की थोड़ी पीने की, तो फिर चसका लगेगा, फिर स्वाद लगेगा, फिर तलफ पकड़ेगी। मजे पर ही मत रुक जाना। मजा तो सिर्फ शुरुआत है, भनक है। और-और मजे हैं आगे। और-और मौजें हैं आगे। और महोत्सव तुम्हारी प्रतीक्षा करते हैं। यह नृत्य ऐसा हैः शुरू तो होता है, समाप्त नहीं होता। इस यात्रा का प्रारंभ है, अंत नहीं है।
ठीक तुम्हें हुआ।
जाने क्या पिलाया तूने, बड़ा मजा आया!
ठीक, क्योंकि जो मैं पिला रहा हूं, उसके पहचानने की तुम्हारे पास अभी कोई व्यवस्था नहीं है कि वह क्या है। नया है बहुत। तुम्हारे अतीत में कोई अनुभव नहीं है उसका। जब पहली दफा कोई स्वाद लगता है तो समझ में नहीं आता-- किस बात का स्वाद है। बहुत बार तो हम इसीलिए उस स्वाद को अपने में समा नहीं पाते, क्योंकि वह हमारे अतीत से तालमेल नहीं खाता, इतना नया होता है कि हमारे भीतर कहीं भी उसकी जड़ें नहीं जम पातीं। तो बहुत बार स्वाद आता है और चूक जाता है।

मेरे देखे, प्रत्येक व्यक्ति को कई बार जीवन में परमात्मा की झलक मिलती है।
तुम कहोगे कि नहीं, हमें तो नहीं मिली।
फिर भी मैं कहता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को मिलती है। कई बार मिलती है। तुम्हारी यह धारणा कि तुम्हारे प्रयास से ही झलक मिलती है, बिल्कुल गलत है। कई बार अनायास मिलती है, आकस्मिक मिलती है। कभी-कभी परमात्मा प्रसाद-स्वरूप आता है। क्योंकि तुम्हीं थोड़े ही उसे खोज रहे हो; वह भी तुम्हें खोज रहा है। कभी-कभी वह सफल हो जाता है तुम्हें खोजने में। कभी- कभी तुम सफल नहीं हो पाते उससे भागने में। कभी-कभी वह पकड़ ही लेता है। कभी- कभी अनजाने किसी क्षण में तुम्हें आविष्ट कर लेता है, तुम्हें घेर लेता है। तुम्हारे बावजूद कभी-कभी तुम्हें उसका स्वाद आ जाता है।
लेकिन उस स्वाद का तुम्हारे भीतर कोई स्मरण नहीं बनता, क्योंकि तुम्हारे भीतर जो तर्कजाल फैला है, शब्दजाल है, सिद्धांत, शास्त्र हैं-- उसमें कहीं भी उसकी कोई व्यवस्था नहीं जुट पाती, उसके साथ कोई तालमेल नहीं बैठ पाता, कोई प्रसंग नहीं जुड़ पाता। वह अलग रह जाता है--टुकड़े की तरह। तुम्हारी सारी मन की चिंतना में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे इस नये तथ्य का संदर्भ बैठ जाए। तो धीरे-धीरे विस्मृत हो जाता है। या... या तो तुम जब होता है तब ही भरोसा नहीं करते उस पर। तब ही तुम कहते हो कि वह कल्पना कर ली होगी; कोई ऐसे ही ख्याल आ गया; कि आज मन प्रसन्न था, इसलिए ऐसा लग गया। तुम कुछ बहाने खोज लेते हो। या तुम कुछ व्याख्याएं कर लेते हो।
तुमने सुबह सूरज को उगते देखा किसी दिन--और अचानक कुछ हुआ! सूरज के उगते-उगते तुम्हारे भीतर कुछ उग गया। उधर बाहर रोशनी फैली, इधर भीतर भी रोशनी फैल गई। तुम सोच लेते हो मन में कि यह सुबह के सूरज के सौंदर्य की छाया बनी। तुमने समझा लिया अपने को। तुमने एक व्याख्या कर ली। आया था परमात्मा, तुमने सूरज का सौंदर्य समझ कर समझा-बुझा लिया, बात खत्म हो गई। किसी दिन आकाश में चांद को देख कर, किसी दिन किसी सुंदर चेहरे को देख कर, किसी बच्चे की मुस्कुराहट में, कभी किसी की आंख से झलकते आंसू में--तुम ठिठक गए हो; एक क्षण को सब रुक गया है; तुम्हारे विचार ठहर गए हैं और एक क्षण को एक झरोखा आया, एक हवा आई, जो तुम्हें ताजा कर गई। लेकिन तुमने उसकी व्याख्या कर ली। व्याख्या क्षुद्र के साथ कर ली। तुमने कहाः चांद बहुत सुंदर था। बात खत्म हो गई।
लेकिन जिस दिन तुम जागोगे उस दिन तुम पाओगे कि अरे! जिसे जाग कर मैंने पाया, इसका स्वाद बहुत बार जीवन में भी आया था, मगर मेरे पास न तो प्रतीक थे, न संकेत थे, न भाषा थी कि मैं इसे समझ पाता। जिन्हें भी परमात्मा का अनुभव हुआ है उन सबको यह भी अनुभव हुआ है कि अनुभव के पहले भी बहुत बार परमात्मा ने कभी-कभी झलक दी थी।
रामकृष्ण को ऐसा हुआ। छोटे थे, कोई सात साल या आठ साल की उम्र थी। परमात्मा का तो कोई अनुभव नहीं था। खेत से लौट रहे थे। बीच में एक तालाब पड़ता था। तालाब के किनारे से निकलते वक्त उनके पैरों की आहट सुन कर, बगुले बैठे होंगे तालाब के किनारे, वे एकदम से उड़े। कोई दस-पंद्रह बगुलों की सफेद कतार और पीछे एक काला बादल। उस काले बादल में से तीर की तरह उड़ गए सफेद बगुले--एक क्षण में, जैसे बिजली कौंध गई। रामकृष्ण वहीं ठिठक गए, कुछ हुआ, बेहोश होकर गिर गए। आस-पास के किसान उन्हें घर उठा कर लाए। किसी को समझ में न आया कि हुआ क्या! रामकृष्ण को भी समझ में नहीं आया। होश में आ गए, बात भूल गई। सबने यही कहा कि कुछ हो गया होगा। भूखा था--किसी ने कहा--दिन भर का भूखा था, काम करता रहा खेत में, छोटा बच्चा है अभी, थक गया होगा, मूर्च्छा आ गई। जो कुछ ज्यादा होशियार थे, उन्होंने कहा कि... रामकृष्ण से पूछा होगा। रामकृष्ण ने कहा कि बगुलों की एक सफेद पंक्ति उड़ती हुई और पृष्ठभूमि में काला बादल, जैसे बिजली कौंध गई, कुछ हुआ मेरे भीतर! मुझे पता नहीं क्या हुआ। मगर अपूर्व आनंद हुआ! उस आनंद में मैं गिर पड़ा।
लोगों ने कहा होगा कि बच्चा है, अभी इसे क्या पता आनंद का! कहां यहां आनंद! और बगुलों की पंक्ति में क्या आनंद हो सकता है? उन्होंने भी बहुत बार बगुले उड़ते देखे। माना कि काले बादल की पृष्ठभूमि थी और सुंदर लगे होंगे सफेद बगुले उड़ते हुए, बड़े प्रखर लगे होंगे, जैसे काले बादल में

बिजली कौंधी हो, ऐसा हुआ होगा। मगर फिर भी ऐसा क्या कि आदमी मूर्च्छित हो जाए! छोटा बच्चा है।
और रामकृष्ण को तो कोई परमात्मा का अनुभव नहीं था, इसलिए यह तो कैसे कहें कि परमात्मा का अनुभव हुआ। इसका तो कोई उपाय नहीं था। बात आई-गई, भूल गई। ऐसा रामकृष्ण को होता रहा कभी-कभी। अर्थ तो पीछे खुला, जब पूरा परमात्मा मिला। अर्थ तो तब खुला। तब रामकृष्ण ने लौट कर देखा कि अरे! यह जो आज बरस रहा है आकाश से, इसी की बूंदें पड़ी थीं। वे बूंदें इसी की थीं। अब अनुभव हुआ, अब स्वाद आया, तो पुरानी स्मृतियां भी ताजी हो गईं; तब सब सूत्रबद्ध हो गया। तब रामकृष्ण ने कहा कि उस दिन जो सफेद बगुलों को उड़ते देखा था काले बादल के बीच, वह तू ही उड़ा था। वे बगुले नहीं थे, वह काला बादल नहीं था--तू ही उड़ा था। और मैं जो ठिठक गया था, वह समाधि थी। मगर मैं अपरिचित, अनजान, मैं नासमझ, मैं मूढ़--तुझे पहचान न पाया। तूने एक झलक दी थी, लेकिन मैं चूक गया।
तुम भी जिस दिन जागोगे और जानोगे, उस दिन हैरान होओगे कि बहुत बार ऐसा हुआ था। परमात्मा को पाने के पहले बहुत बार पा-पा कर खोना भी पड़ता है। पाते-पाते पाना होता है। होते-होते बात होती है। बहुत बार चोट पड़ती है, तब कहीं जाकर कुआं खुदता है भीतर का।
जाने क्या पिलाया तूने, बड़ा मजा आया!
चलो, इतना भी एहसास हुआ कि मजा आया, तो काफी है। इसको मजा ही मत समझ लेना। जो पिलाया है, वह मजे से आगे ले जा सकता है। मजा समझा, तो मनोरंजन होकर रह जाएगा। मजा समझा, तो ठीक, दिलचस्प बात थी, कुछ अच्छा लगा था, फिर कभी सुनने का भाव होगा तो आ जाओगे। मगर वहीं रुक गए, तो ऐसा हुआ जैसे मैंने तो तुम्हें हीरा दिया था और तुमने समझा कि चलो रख लो, सुंदर लगता है, रंगीन है, घर बच्चे खेलेंगे।
एक गरीब आदमी को हीरा मिल गया, बड़ा हीरा--राह के किनारे पड़ा हुआ। उसको अपने गधे से प्रेम था; और तो उसके पास कुछ था भी नहीं। उसने कहाः बड़ा बढ़िया पत्थर है। गधे के गले में बांध दिया कि चलो गधे का आभूषण हो जाएगा। और गधा भी जितना प्रसन्न हो सकता था उतना प्रसन्न हुआ। न गधे का मालिक समझा कि हीरा है; और गधा तो कैसे समझे जब गधे का मालिक ही नहीं समझा! गधे ने भी खुशी में लातें फटकारी होंगी, जोर से ची-पों ची-पों की होगी। दोनों चल पड़े।
एक जौहरी ने देखा राह पर। जौहरी तो भरोसा न कर सका। हीरे बहुत देखे थे जिंदगी में, इतना बड़ा नहीं देखा था। और गधे के गले में बंधा है! और ये सज्जन बगल में लट्ठ लिए उसकी चले जा रहे हैं। उसने रोका। उसने कहा कि भाई, यह पत्थर... । वह समझ गया कि यह आदमी को पता नहीं कि यह क्या है। तो उसने हीरा तो कहा ही नहीं। उसने कहाः इस पत्थर के क्या दाम लोगे?
अब जो उसे पत्थर समझ रहा हो, वह दाम भी क्या मांगे! उसने बड़ी हिम्मत करके कहा कि एक रुपया। वह भी बड़े सोच-समझ कर कहा उसने--कि एक रुपया देगा कौन, कोई पागल है। सोचा कि चार आने भी मिल जाएं तो बहुत। मगर उसने होशियारी की, जैसा कि अधिक होशियार लोग करते रहते हैं। उसने सोचा कि रुपया मांगो, तब कहीं चार आने मिलेंगे। मगर उसे हैरानी भी हुई कि यह आदमी मूढ़ मालूम होता है; शहर का है मगर बुद्धू, जैसे कि शहर के लोग अक्सर होते हैं। गांव के लोग ऐसा ही सोचते हैं। इसके दाम का सवाल ही क्या है! ऐसे ही मांग लेता तो मैं दे देता। मगर अब जब दाम मांगे ही हैं, इसने पूछे ही हैं, तो उसने कहाः अच्छा एक रुपया लेंगे।
लेकिन जौहरी भी सोचा कि यह है तो बुद्धू, उसको कुछ पता तो है नहीं; एक रुपया मांगता है। लाखों की कीमत का हीरा है। तो एक रुपया मांगता है; इसको पक्का तो है ही नहीं कि यह हीरा है; इसको, पत्थर है, यही पता है; पत्थर के क्या एक रुपये देने। उसने कहाः चार आने लेगा?
उस आदमी ने सोचा कि चार आने? नहीं, चार आने से तो ठीक है कि गधे के गले में ही बंधा रहे या फिर बच्चे घर में खेलेंगे। चार आने में नहीं दूंगा-- उसने कहा। उसने सोचाः कम से कम आठ आने तो करे यह।
मगर जौहरी भी कंजूस था। उसने सोचा कि देगा चार आने में ही। चार आने में भी... पुराने जमाने की कहानी होगी, चार आने बहुत थे--महीने भर का खर्च चल

जाए। तो उसने कहा कि जरा दो कदम चलो, समझ में आएगी इसको बात कि चार आने भी कौन देगा पत्थर के।
वह ऐसा दो कदम आगे चला गया। तभी एक दूसरा जौहरी आ गया। उसने पूछाः कितने दाम?
उस आदमी ने एक रुपया कहा।
उसने कहाः आठ आने में देते हो?
उसने कहा कि ठीक है, अब ठीक आदमी मिल गया। आठ आने में बेच दिया।
तब तक पहला जौहरी वापस आया--फिर मोल-तोल करने को। हीरा तो बिक चुका था। उसने पूछा इस गधे के मालिक को कि कितने में बेचा नासमझ!
उसने कहाः आठ आने में।
तो वह कहने लगाः तेरे जैसा मूढ़ हमने नहीं देखा। यह हीरा लाखों का है
और तूने आठ आने में बेचा!
वह गधे का मालिक खूब हंसने लगा। उसने कहाः सुन भाई गधे। यह हमको मूरख कहता है। हम तो उसको पत्थर समझते थे तो हमने आठ आने में बेचा तो कुछ गलती न की, लेकिन तू तो जौहरी है, तू चार आने में मांग रहा था, आठ आने भी देने को राजी न हुआ। तू महागधा है। हम तो ठीक। हमें तो पता ही नहीं था कि हीरा है। इसलिए हमने तो समझा कि काफी समझदारी की आठ आने में बेच दिया; हमने चार आने में नहीं बेचा, यही क्या कम है। मगर तेरी तो सोच, तुझे तो पता था कि लाखों का है, तूने एक रुपया जल्दी से निकाल कर न दे दिया!
जो मैंने तुम्हें दिया है, हीरा है। अगर तुमने उसका मनोरंजन ही समझा
तो तुमने अपने गधे के गले में लटका दिया; फिर कहीं न कहीं तुम आठ आने में बेच दोगे। उसका कोई मूल्य नहीं रह जाएगा।
मजे से थोड़ा आगे चलो। मजे से थोड़े ऊपर उठो। मजे का सहारा लो। मजे की तरंग को पकड़ो। उसी तरंग पर यात्रा करनी है। उसी तरंग पर सवारी करनी है। मगर वहीं रुक नहीं जाना है। यह जो लहर तुम्हारे भीतर उठी है...
जाने क्या पिलाया तूने, बड़ा मजा आया!
झूम उठी रे मैं मस्तानी दीवानी!
शुभ हुआ। झूमो! लेकिन झूमना गंतव्य नहीं है। झूमना पहला आघात है। खूब झूमो। कंजूसी मत करना। नहीं तो हीरे से चूक जाओगे। झूमने में कृपणता मत करना। सोच-सोच कर मत झूमना। झूमने में भी क्या सोच-सोच कर झूमना!
लेकिन लोग ऐसे ही हैं। लोग प्रसन्न भी होते हैं तो सोच-सोच कर होते हैं कि कितना होना, कितना नहीं होना। लोग आनंदित भी होते हैं तो बड़ी कंजूसी करते हैं कि इतने तक जाएं कि इससे आगे जाएं! मैं देख कर चकित होता रहता हूं कि लोगों की कंजूसी की आदत ऐसी जड़ हो गई है कि अपने को प्रसन्न होने की आज्ञा भी बड़ी मुश्किल से देते हैं। खुशी की लहर भी आए तो बड़ी मुश्किल से उसे स्वीकार करते हैं। दुख के ऐसे आदी हो गए हैं कि सोचते हैंः दुख ही सत्य है; सुख तो हो कैसे सकता है!
श्रद्धा ही नहीं रही तो सुख कैसे होगा?
कमल ने पूछा है यह प्रश्न! कमल, ठीक हुआ।
झूम उठी रे मैं मस्तानी दीवानी!
झूमो, परिपूर्णता से झूमो। ऐसे झूमो कि तुम्हें ऐसा ख्याल भी न रह जाए
कि झूमने वाला कोई पीछे खड़ा देख रहा है। इतना विभाजन भी न बचे। झूमना ही रह जाए--झूमने वाला न बचे। नृत्य रह जाए--नर्तक न बचे। गायक रह जाए तो अड़चन हो गई। नर्तक बच गया तो अड़चन हो गई। तो दो हो गए--गायक और गीत। गीत ही बचे; गायक बिल्कुल गीत में डूब जाए, समाहित हो जाए। ऐसे झूमो कि झूमने वाला न बचे। झूम उठी रे मैं मस्तानी दीवानी!
ऐसी मस्तानी, ऐसी दीवानी दशा को अपने भीतर आने का अवसर दो--आ रही है। द्वार खड़ी दस्तक दे रही है। मगर तुम हो कि भीतर विचार कर रहे हो कि आने देना कि नहीं आने देना। महा-अतिथि भी द्वार पर आएगा तो भी तुम सोचते हो कि आने देना कि नहीं आने देना।
और तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। जब भी आया दुख आया। जब भी किसी
ने दस्तक दी, दुख ही ने दी। आज अगर सुख भी दस्तक देता है तो तुम चिंतित होते हो कि आया फिर कोई दुख; आई फिर कोई अड़चन; फिर झंझट कोई आई।
आने दो इस मस्ती को। आज्ञा दो अपने को।

मेरे पास लोग आ-आ कर पूछते हैं कि बड़ा आनंद आ रहा है, मगर कहीं यह कल्पना तो नहीं है? दुख में कभी नहीं पूछते। मुझसे आज तक नहीं पूछा एक आदमी ने। हजारों लोगों के दुख-सुख मैंने सुने हैं; मगर एक आदमी ने मुझसे आज तक नहीं कहा कि बड़ा दुख हो रहा है; कहीं यह कल्पना तो नहीं है? नहीं, दुख तो बिल्कुल यथार्थ है। उसको तो लोग मानते हैं। उस पर तो बड़ी श्रद्धा है। लेकिन जब सुख होता है तो मुझसे आकर पूछते हैं कि बड़ा सुख आ रहा है; कहीं ऐसा तो नहीं कि हम किसी कल्पना-जाल में पड़ गए हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि आपने हमें सम्मोहित कर लिया?
सुख पर इतनी अश्रद्धा है! इसीलिए तो नहीं मिलता। जिस पर श्रद्धा है वही पाओगे। दुख पर श्रद्धा है तो दुख पाओगे।
लोग कारण जानना चाहते हैं कि क्यों सुख मिल रहा है। मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि दुख मिले तो कारण खोजना, क्योंकि दुख का कारण होता है। सुख का कारण नहीं होता; सुख स्वभाव है। सुख तुम्हारे भीतर की अंतर्दशा है; तुम्हारी अंतरात्मा है। इसलिए तो हमने परमात्मा की परिभाषा सच्चिदानंद की है। अंततः वह आनंद है! सत्य है, फिर चित है, फिर आनंद है; लेकिन अंततः आनंद है। अंततोगत्वा परमात्मा आनंद-रूप है। तुम्हारे भीतर बैठा है आनंद। इसका कोई कारण नहीं होता। और जब तुम्हें कारण समझ में आते हैं, तब भी ख्याल रखना कि वह समझ की ही भ्रांति है।
जैसे तुम ध्यान कर रहे हो और आनंद आया; तुम सोचते होः ध्यान के कारण आनंद आया।
गलत! ध्यान के कारण सिर्फ तुमने दुख की तुम्हारी जो पकड़ थी वह छोड़ी। ध्यान के कारण आनंद नहीं आता। ध्यान के कारण दुख की पकड़ छूटती है। दुख की पकड़ छूटी कि भीतर तो आनंद का झरना था, बहने लगा; दुख की चट्टान हट गई, झरना बह पड़ा।
चट्टान हटाने से झरना पैदा नहीं होता, स्मरण रखना। झरना हो तो ही बहेगा। चट्टान के हटाने से क्या होता है! तुम हटाते रहो चट्टानें, अगर पीछे झरना नहीं है तो कुछ नहीं बहेगा। चट्टान का हटना झरने का जन्म नहीं है। वह झरने के जन्म का स्रोत नहीं है। चट्टान का हटना केवल बाधा का हटना है। झरना था, चट्टान रोके थी; हटी चट्टान, झरना बह पड़ा। ऐसा ही ध्यान में होता है। ध्यान से आनंद नहीं होता। ध्यान से केवल दुख की चट्टान को तुम जो पकड़े थे जोर से, वह छूट गई हाथ से; उसके छूटते ही भीतर तो आनंद भरा था, वह बह पड़ा; वह चला बह कर।
अब तुम पूछते होः इसका कारण क्या है?
कारण होता ही नहीं आनंद का। कारण सिर्फ दुख के होते हैं।
तुमने कभी डाक्टर से जाकर पूछा कि मैं स्वस्थ हूं, इसका कारण क्या है? जाकर पूछो तो डाक्टर भी सिर पीट लेगा तुम्हें देख कर कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया। स्वस्थ हो, इसका कोई कारण होता ही नहीं। स्वस्थ होना सहज है, स्वाभाविक है। स्वस्थ होना ही चाहिए। स्वस्थ होने के लिए कोई चिंता लेने की जरूरत नहीं कि क्यों स्वस्थ हूं। नहीं तो तुम बीमारी के चक्कर में पड़ने की कोशिश कर रहे हो।
हां, दुख होता है तो तुम पूछते हो कि क्या कारण है। निदान, डायग्नोसिस
हो सकती है, क्योंकि दुख का कारण होता है। पीड़ा का कारण होता है। बीमारी का कारण होता है। कारण होता है, उसके लिए औषधि भी होती है।
ध्यान से आनंद पैदा नहीं होता; ध्यान सिर्फ दुख को हटाने की औषधि है। दुख की उपाधि लगी, दुख की व्याधि लगी; ध्यान की औषधि से हट जाती है। और भीतर का जो आनंद है, वह सहज स्फुरित होने लगता है। अकारण।
मगर जब कुछ अकारण घटता है तो तुम्हें बेचैनी होती है। तुम्हें लगता है--यह कहां से आ रहा है? कहीं मैं कल्पना तो नहीं कर रहा हूं? क्योंकि अब और तो कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कहीं भी! न तो कोई लाटरी मिल गई है, न कोई गड़ा हुआ धन मिल गया है; न कोई खजाना मिल गया है। कुछ भी नहीं हुआ। न कोई प्रधानमंत्री बन गए हो तुम, न कोई राष्ट्रपति बन गए हो--कुछ भी नहीं हुआ है। बाहर कुछ भी नहीं हुआ है। कोई कारण नहीं। सब बाहर वैसा का वैसा है, जैसा था। अचानक यह क्या हो रहा है! अकारण! अकारण, तो जरूर कल्पना से आता

होगा! यह तर्क खड़ा होता है कि तो फिर मैं कल्पना कर रहा हूं; या हो सकता है किसी ने मुझे सम्मोहित कर लिया; या मैं किसी की बातों में पड़ गया हूं।
तुम चिंतित हुए। चिंतित हुए तो तुम संकुचित हुए। संकुचित हुए तो फिर दुख की चट्टान पकड़ लोगे। यह आनंद फिर खो जाएगा।
आनंद पर भी श्रद्धा नहीं है लोगों की! आनंद को भी नहीं होने देते।
तो तुमसे मैं कहता हूंः कमल, अच्छा हुआ! आगे बढ़ो! जाओ इसमें!
झूम उठी रे मैं मस्तानी दीवानी।
पायल नहीं, घुंघरू नहीं,
छम-छम कैसे होने लगी!
ठीक ऐसा ही होता है। न घुंघरू हैं, न पायल है--छम-छम होती है। कारण कोई
भी नहीं है। आनंद अकारण है। इसीलिए तो उस नाद को हमने अनाहत नाद कहा है। तबला बजाया तुमने, यह आहत नाद है। हाथ से चोट मारी तबले पर, तब तबला बजा। तबले पर चोट से टंकार हुई। वीणा बजाई तुमने, तो भी हाथ से तार खींचे, तारों को जगाया, चोट की--यह आहत नाद है। मैं तुमसे बोल रहा हूं, यह कंठ का उपयोग हो रहा है, तो आहत नाद है।
एक ऐसा नाद भी है--न तबला वहां, न वीणा वहां, न कंठ वहां। सब खो गया। एक महाशून्य में नाद हो रहा है।
ठीक कहाः
पायल नहीं, घुंघरू नहीं,
छम-छम कैसे होने लगी!
पायल भी छोड़ो, घुंघरू भी छोड़ो--तो ही छम-छम होगी। यह जो मीरा कहती हैः
पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे। इनसे तुम बाहर के घुंघरुओं की बात मत समझ लेना। बाहर भी उसने बांधे थे, मगर वे प्रतीक थे। भीतर बिना घुंघरुओं के छम-छम होने लगी थी। वह भीतर जो घट रहा था, उसी को बाहर प्रकट करने के लिए बाहर भी पैरों पर घुंघरू बांधे थे।
मैं जो तुमसे बोल रहा हूं, यह आहत है; लेकिन अनाहत हो रहा है, इसलिए तुमसे बोल रहा हूं। कुछ भीतर हो रहा है, वह तुमसे कहना चाहता हूं। जो भीतर हो रहा है, वह अनाहत नाद है। जो मैं तुमसे कह रहा हूं, वह आहत के जरिए उसी की खबर पहुंचा रहा हूं। वही मीरा ने किया--पग घुंघरू बांध... जब भीतर बिना घुंघरू के छम-छम होने लगी और मीरा को सुनाई पड़ने लगी...
मगर और किसी को तो सुनाई नहीं पड़ेगी। मीरा बैठी रहेगी, वह छम-छम उसी को सुनाई पड़ेगी, वह किसी और को सुनाई नहीं पड़ेगी। या और कोई मीरा जैसा बैठा होगा तो उसको सुनाई पड़ेगी।
इसलिए तो मीरा कहती हैः भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई!
जब कोई मिल जाएगा प्यारा तो समझेगा। फिर बाहर के घुंघरू न बांधने पड़ेंगे।
लेकिन जो लोग इस जगत में हैं वे तो केवल बाहर को ही देख सकते हैं; कानों से ही सुन सकते हैं; हाथ से ही छू सकते हैं। मीरा ने उनके लिए घुंघरू भी बांधे, ताकि भीतर का नाद बाहर तक पहुंचाया जा सके। इसलिए मैंने मीरा को तीर्थंकर कहा है।
किसी ने प्रश्न पूछा है कि मीरा को आपने तीर्थंकर कैसे कहा? क्योंकि मीरा ने कोई शिष्य नहीं बनाए और मीरा ने कोई संप्रदाय भी नहीं चलाया; आपने मीरा को तीर्थंकर कैसे कहा?
ऊपर से देखने से बात ठीक लगती है। तीर्थंकर उसे कहते हैं जो घाट बनाए;
जो एक संप्रदाय का जन्मदाता हो; एक राह बनाए, जिस राह से और जाने वाले परमात्मा तक पहुंच सकें।
तो मैं तुमसे कहता हूं कि मीरा ने बुद्ध की तरह तो राह नहीं बनाई, महावीर की तरह भी राह नहीं बनाई। लेकिन मीरा ने भी राह बनाई--अपनी तरह। शास्त्र नहीं रचे, मगर पैर में घुंघरू बांधे। शब्द नहीं बोली, मगर गीत गुनगुनाए। किसी को ऐसा औपचारिक ढंग से शिष्य नहीं बनाया, लेकिन न मालूम कितने लोगों के गलों में जाम ढाला और न मालूम कितने लोगों को जाने-अनजाने भीतर की छम-छम की खबर पहुंचा दी! यह दीक्षा इतनी औपचारिक नहीं थी; आंतरिक थी।

मीरा तीर्थंकर है। उसने भी घाट बनाया। उसके घाट से भी बहुत लोग उतरे।
और उसका घाट बड़ा प्यारा है। छोटा सही, लेकिन उसका घाट बड़ा प्यारा है! वहां सदा संगीत की वर्षा हो रही है। वहां अनहद का तूरा बज रहा है।
पायल नहीं, घुंघरू नहीं,
छम-छम कैसे होने लगी!
ढूंढ़ो मुझे, मैं खोने लगी।
हुआ क्या मुझे, उई तौबा! मैं न जानी
झूम उठी रे मैं मस्तानी दीवानी।
जाने क्या पिलाया, मुझे बड़ा मजा आया!
अब आगे बढ़ो। एक-एक कदम मिटो। खोने में ही पाना है। डर लगता है कि कहीं
खो तो न जाएंगे!
झूम उठी रे मैं मस्तानी दीवानी।
ढूंढ़ो मुझे, मैं खोने लगी।
खोने का डर भी आता है--सौभाग्य से आता है। जब आए तो स्वीकार कर लेना, अंगीकार कर लेना। और खो जाना, वाष्पीभूत हो जाना। तुम न बचो, इसी में तुम्हारी धन्यता है। क्योंकि तुम जब नहीं हो, तभी परमात्मा है। तुम जब तक हो, तब तक परमात्मा नहीं है।
क्या जाने क्या से कर दिया है तूने क्या मुझे
ऐ दोस्त, अब तो कुछ भी नहीं सूझता मुझे
क्यों मैं नहीं रहा हूं जमाने के काम का
अब पूछने लगा है जहां, क्या हुआ मुझे
हालत बदल गई है, नहीं मैं रहा वो मैं
हालांकि देखने को नहीं कुछ हुआ मुझे
हर दिल का दर्द सौंप दिया मुझ गरीब को
अच्छा सिला ये इश्क का मेरा दिया मुझे
पर्दे हटे नजर से, मिटे इम्तियाज सब
कोई नहीं है गैर नजर आ रहा मुझे
रौशन तमाम जिंदगी के रास्ते हुए
सब कुछ मिला, मिला जो तेरा नक्शे-पा मुझे
तेरे पैर का चिह्न मिल गया तो मुझे सब कुछ मिल गया। अपने को गंवा दो,
तो ही उसके पैर का चिह्न मिलेगा।
क्या जाने क्या से कर दिया है तूने क्या मुझे
ऐ दोस्त, अब तो कुछ भी नहीं सूझता मुझे
सूझ जाएगी, बूझ जाएगी--तुम खोओगे।
इसलिए मैंने कहा कि श्रद्धा एक प्रकार का पागलपन है। पागल होने की तैयारी हो तो ही मेरे साथ आ सकते हो। समझदार चूकेगा। पागल ही पी सकता है इस घाट से। और सदा ही पागलों ने पीया है। पीने के लिए भी छाती चाहिए।
हालत बदल गई है, नहीं मैं रहा वो मैं
हालांकि देखने को नहीं कुछ हुआ मुझे
क्यों मैं नहीं रहा हूं जमाने के काम का
अब पूछने लगा है जहां, क्या हुआ मुझे
अड़चनें आएंगी। जैसे-जैसे नाचोगे, झूमोगे, मस्त होओगे--वैसे-वैसे पाओगे कि बहुत से काम जो कल तक करने संभव थे, अब संभव नहीं रहे; वैसे-वैसे पाओगे कि कल तक जो जीवन का ढर्रा और ढांचा था उसमें अपने आप चुपचाप कुछ रूपांतरण होने लगा है। और तुम्हारे आस-पास जो लोग हैं उनको अड़चन शुरू होगी, क्योंकि उनकी अपेक्षाएं टूटनी शुरू हो जाएंगी।
दुनिया बहुत अजीब है। अगर कोई आदमी तुम्हें गाली दे और तुम मुस्कुरा
कर चले जाओ, तो तुम उसको बेचैन कर देते हो कि मामला क्या है? मैंने गाली दी, इस आदमी ने जवाब नहीं दिया, यह हंसा क्यों? वह रात भर सो न सकेगा। तुम गाली का जवाब गाली से दे देते, वह भी निश्चिंत हो जाता, तुम भी निश्चिंत हो जाते--बात आई-गई हो जाती, मामला रफा-दफा हो गया। गणित में आ गई बात। किसी ने तुम्हें गाली दी, तुम मुस्कुराए और अपने रास्ते चल दिए। वह आदमी तुम्हें कभी क्षमा नहीं कर सकेगा; ध्यान रखना। गाली देते तो क्षमा कर ही देता।

यहां गाली दी जा रही है, ली जा रही है--यह तो धंधा ही है यहां। मगर यह क्या हुआ, तुमने सब व्यवस्था तोड़ दी! तुमने कुछ ऐसा किया जो अपेक्षित नहीं था। एक महिला ने मुझे आकर कहा कि मैं आपसे कैसे कहूं कि आपके ध्यान से शांति मिल रही है, लेकिन बड़ी अशांति भी हो रही है!
मैंने पूछा कि मैं समझा नहीं, तू क्या चाहती है कहना।
उसने कहा कि मामला यह है कि मैं तो शांत हो रही हूं, लेकिन घर में बड़ी अशांति हो रही है। और उसने कहा कि मैंने तो कभी कल्पना में भी नहीं सोचा था कि मेरी शांति से इतनी अशांति होगी। मैं तो सोचती थीः मैं शांत हो जाऊंगी तो घर भर को प्रसन्नता होगी। मेरे पति भी मुझसे कुछ उखड़े-उखड़े हो गए हैं, जब से मैं शांत हो गई। मैं आपके पास आई ही इसलिए थी कि घर में कलह होती थी, पति से भी कलह होती थी; सोचा कि ध्यान करूंगी, थोड़ी ध्यान से शांति मिलेगी। मैं तो शांत हो गई, कलह भी खो गई; मगर कलह में ज्यादा शांति थी घर में, अब ज्यादा अशांति है। क्योंकि पति कहते हैंः तुझे हुआ क्या? तू पहले जैसी क्यों नहीं रही? पति कहते हैंः अब तेरे पास आता हूं तो ऐसा लगता है तू कोई दूसरी ही स्त्री है; मेरी स्त्री तो बची ही नहीं। इससे बेचैनी हो रही है अब कि मैं नाराज भी होता हूं तो तू चुपचाप सुन लेती है, तो मैं दिन भर फिर बेचैन रहता हूं। तेरे भीतर जो वासना थी उद्दाम, वह कहां खो गई?
पुरुष के अहंकार को रस मिलता है कि स्त्री उसके पीछे दीवानी है। अब वह दीवानी नहीं है, तो अड़चन हो रही है; पुरुष का सारा अहंकार टूटा जा रहा है। अब तो हालत यह आ गई है, उसने मुझे कहा कि पति बाधा डालते हैं, घर में सबको कह रखा है कि इसको ध्यान करने ही मत देना। तो मुझे ध्यान नहीं करने दिया जा रहा है, यहां नहीं आने दिया जा रहा है। बच्चे भी बाधा डालते हैं। बच्चों को भी समझा दिया है कि जब भी यह ध्यान करने बैठे कभी, जल्दी से जाकर खटखटा देना दरवाजा; हिलाना-डुलाना; कहना, बाहर आओ। बच्चे भी प्रसन्न नहीं हैं। वे कहते हैंः मां, तुझे क्या हो गया? तू पहले जैसी नहीं रही।
एक बात समझने जैसी है। तुमने किसी से विवाह किया है। तुमने कुछ बच्चे जन्म दिए हैं। तुम्हारे पिता हैं, मां हैं, परिवार है, दुकान है, बाजार है, हजार संबंध हैं। तुम चालीस साल तक जीए हो एक ढंग से; उन सबने तुम्हें पहचान लिया है। एक तरह से तुम्हारे बाबत उनको जानकारी है। वे जानते हैं। तुम्हारे संबंध में भविष्यवाणी कर सकते हैं कि अगर वे ऐसा करेंगे तो तुम वैसा करोगे। तुम्हारी चालें पहचानी हो गईं। तुम उनकी चालें पहचानते हो, वे तुम्हारी चालें पहचानते हैं; खेल साफ-साफ हो गया है। अचानक तुम बदल गए। तुम ध्यान करने लगे कि नाचने लगे कि गाने लगे कि मस्त होने लगे--अब गड़बड़ हुई। अब फिर चालीस साल में जितने लोगों ने तुमसे संबंध बनाए थे, उनको फिर से अ ब स से शुरू करना पड़ेगा, क्योंकि तुम नये आदमी हो; फिर से व्यवस्था जुटानी पड़ेगी। यह झंझट कौन ले!
तो तुम यह मत सोचना कि तुम बिगड़ जाओ तो ही लोग नाराज होते हैं; तुम सुधर जाओ, तो भी नाराज होते हैं। क्योंकि बिगड़ो या सुधरो, दोनों हालत में उनको फिर से व्यवस्था जमानी पड़ती है। तुम्हारे बाबत फिर से चित्र उतारने पड़ते हैं, फिर अलबम बनाना पड़ता है। फिर से सोचना पड़ता है--शुरुआत से। यह अड़चन कौन उठाए!
तो यह होगा। तुम बदलोगे, तुम्हारे भीतर बड़ी शांति होने लगेगी; तुम्हारे बाहर अशांतियां होने लगेंगी। मगर उन अशांतियों को झेल जाना है, क्योंकि बाहर की अशांति का कोई मूल्य नहीं है। मूल्य तो भीतर की शांति का है। और आज नहीं कल, लोग फिर राजी हो जाएंगे। उन्हें राजी होना ही पड़ता है। तुम अपने मार्ग चले जाना। तुम चुपचाप अपनी धुन में मस्त रहना।
पहले लोग नाराज होते हैं; फिर लोग उपेक्षा करते हैं; फिर लोग पूजा करने लगते हैं। ये लोगों की तीन व्यवस्थाएं हैं। पहले नाराज होते हैं कि यह सब गड़बड़ कर डाला। फिर जब तुम चलते ही जाते हो अपनी धुन में, तो लोग उपेक्षा करने लगते हैं कि अब ठीक है, अब करना क्या, अब कब तक सिर मारो! अब जो करना है, करने दो। तब भी तुम चलते जाते हो, उनकी उपेक्षा की भी तुम फिकर नहीं करते, तो धीरे-धीरे उनको खबर आनी शुरू होती है कि इस आदमी को हो क्या गया! यह आदमी बदल गया। इस आदमी के जीवन में कुछ नई ज्योति उतरी। धीरे-धीरे वे तुम्हें पहचानेंगे। और तब पूजा शुरू होती है। मगर यह लंबी यात्रा है।

और बड़ी कठिनाइयों से रास्ता गुजरता है। मगर कितनी ही कठिनाइयां हों, यह परमधन पाने जैसा है; यह राम रतन धन पाने जैसा है।

तीसरा प्रश्नः प्रवचन में आपका प्यार बरस रहा है, लेकिन उससे भी कहीं अधिक मार पड़ रही है। अब मार की तिलमिलाहट सहन नहीं होती।

पूछा है उमानाथ शर्मा ने।
प्यार अगर साथ में मार न लाए, प्यार में अगर मार न हो, तो प्यार जहर हो जाता है। फिर वह नींद की दवा हो जाता है; वह ट्रैंक्वेलाइजर हो जाता है। फिर तुम्हें सांत्वना देता है, थपकारी देता है। फिर प्यार एक लोरी बन जाता है, जिसको सुन-सुन कर तुम सो जाते हो। लेकिन जगाना है तुम्हें, सुलाना नहीं। कबीर ने ठीक कहा है कि जैसे कुम्हार घड़े को बनाता है तो दो काम करता है। एक हाथ से भीतर सहारा देता है घड़े को और बाहर के हाथ से पिटाई करता है। सहारा-पिटाई, दोनों साथ-साथ, तो घड़ा बनता है।
तो मैं अगर तुम्हें सच में ही प्रेम करता हूं तो मुझे पिटाई भी करनी
ही होगी। और परिणाम आने शुरू हो गए हैं। उमानाथ के मन में संन्यास का अंकुर रोज बढ़ता जा रहा है। मैं समझता हूं दो-तीन दिन के भीतर... इससे ज्यादा देर नहीं चलेगा।
प्यार और मार साथ-साथ। एक हाथ से सहारा, एक हाथ से पिटाई, ताकि तुम सो
भी न जाओ। जगाना है अंततः। और जिसने मेरे प्रेम को समझा, वह उस मार के लिए भी मुझे धन्यवाद देगा, क्योंकि वह मार इसीलिए है क्योंकि प्रेम है। अन्यथा क्या पड़ी? क्या प्रयोजन है?
तुम्हें अगर कभी मैं चोट करता हूं तो इसी आशा में कि चोट तुम्हारी मूर्च्छा को तोड़ेगी। तुम्हारी सुस्त पड़ गई झील में एक कंकड़ गिरेगा, लहरें उठेंगी। तुममें फिर जीवन की शुरुआत होगी।
और बड़ी संभावना है उमानाथ की। मेरे संन्यासियों में वे अग्रिम पंक्ति में शीघ्र ही आ जाएंगे। उनके भीतर मैंने लपट देखी है, इसलिए उन पर चोट भी कर रहा हूं। चोट उन्हीं पर नहीं करता जिनके भीतर मैं देखता हूं कुछ भी नहीं, भूसा भरा है--अब उनको चोट भी क्या करनी! वे तो नाममात्र के आदमी हैं। जैसे खेत में खड़ा कर देता है न किसान, एक झूठा आदमी बना कर, हंडी लटका देता है एक डंडे पर और कुर्ता पहना देता है, बस ऐसे लोग हैं बहुत तो। थोथे! उनमें कुछ है ही नहीं, चोट भी क्या करो! वीणा हो तो तार छेड़ने पड़ते हैं; वीणा ही न हो तो क्या तार छेड़ो!
उमानाथ के हृदय में वीणा मुझे दिखाई पड़ी है। उन्हें अपनी संभावनाओं
का अभी कुछ भी पता नहीं है। मुझे पता है, इसलिए चोट कर रहा हूं। और चोट करता ही जाऊंगा। लेकिन प्रेम भी साथ करता रहता हूं ताकि भाग न जाओ; नहीं तो भागने का भी डर रहता है कि भाग गए, ज्यादा चोट कर दो तो भी गड़बड़। तराजू को तौल कर चलना पड़ता है। एकाध चांटा मारा; फिर देखा कि अब भागने की तैयारी कर रहे उमानाथ, तो फिर थोड़ी दो बातें प्रेम की कहीं। फिर जब राजी हो गए, फिर एक चांटा मारा। ऐसा ही चलेगा। यह कहानी ऐसे ही चलने वाली है। मगर ऐसे ही तुम विकसित हो सकते हो, अन्यथा कोई उपाय भी नहीं है।
तुम्हारी प्रार्थना यही हो--
जला के राख कर अब मेरे सब ख्यालों को
ख्याल तेरा ही बस एक मेरे सर में रहे
कशिश यह हुस्ने-बुतां जिससे मांग लाया है
वही जमाले-हकीकी मेरी नजर में रहे
तेरा ही जोर रहे मेरे दस्तो-बाजू में तेरी ही कुव्वते-परवाज बालो-पर में रहे मुझे दिखा दे तू सहराए-इश्क, ऐ दोस्त!
कि सुबहो-शाम मेरा हर कदम सफर में रहे बस यही तुम्हारी प्रार्थना हो--
जला के राख कर अब मेरे सब ख्यालों को

तो चोट मुझे करनी पड़ती है, क्योंकि बहुत कुछ है जो मुझे जलाना है। और बहुत कुछ जले तो ही तुम्हारे भीतर जो सत्व पड़ा है वह प्रकट हो। कचरा हटे तो हीरा खोजा जा सके। राख झड़े तो अंगारा प्रकट हो।
जला के राख कर अब मेरे सब ख्यालों को
और तुम्हारे विचारों को जलाना होगा, तो ही तुम्हारे प्रेम की लपट उठेगी। तुम्हारे विचार धुएं की तरह हैं--तुम्हारे हृदय के आस-पास। उन्हीं के कारण तुम्हारा हृदय रोशन नहीं हो पा रहा है, रोशनी नहीं बन पा रहा है। ये सब विचार हट जाएं तो निर्धूम ज्योति तुम्हारे भीतर जगे। वही परमात्मा है।
जला के राख कर अब मेरे सब ख्यालों को
ख्याल तेरा ही बस एक मेरे सर में रहे
कशिश यह हुस्ने-बुतां जिससे मांग लाया है
वही जमाले-हकीकी मेरी नजर में रहे
ये सब लोग जिससे सौंदर्य मांग लाए हैं, ये फूल जिससे सौंदर्य मांग लाए हैं, ये चांद-तारे जिससे सौंदर्य मांग लाए हैं--उसकी ही कशिश...
वही जमाले-हकीकी मेरी नजर में रहे
वही स्रोत सारे सौंदर्य का, सारे सत्य का--याद में रह जाए; बाकी सब धीरे-धीरे भूल जाएं।
जो खुद ही मांग लाए हैं, उनसे क्या मांगते हो? तुम जब किसी स्त्री के सामने भिक्षा का पात्र फैलाते हो; कहते होः तेरा सौंदर्य! भर दे मुझे तेरे सौंदर्य से! तो तुम उससे मांग रहे हो, जो खुद ही मांग कर लाई है। जब कोई स्त्री तुमसे मांगती है कि भर दो मेरे पात्र को तुम्हारे प्रेम से--तो वह उससे मांग रही है, जो खुद ही मांग कर लाया है।
ऐसा हुआ, शेख फरीद को उनके गांव के लोगों ने कहा कि अकबर तुम्हें इतना मानता है, जाओ उसके पास, गांव में एक मदरसा खोल दे! हम गरीब आदमी हैं, शहर जा नहीं सकते। हमारे बच्चे पढ़ें तो पढ़ें कहां?
फरीद तो कभी गया नहीं था अकबर के पास; लेकिन गांव के लोगों ने जब यह कहा तो उसने कहा मैं जरूर जाऊंगा। हमेशा तो ऐसा होता था कि अकबर ही उसके पास आता था। उस दिन फरीद गया। जब पहुंचा राजमहल तो द्वारपालों ने कहा कि सम्राट इस समय नमाज पढ़ रहे हैं।
तो उसने कहाः मैं देखना चाहूंगा, वे कैसे नमाज पढ़ते हैं। चलो अच्छे मौके पर आ गया। और मैं यह भी सुनना चाहूंगा कि वे नमाज में मांगते क्या हैं। क्योंकि मैं भी आज कुछ मांगने आया हूं।
तो उन्हें ले जाया गया। अकबर के पीछे जाकर मस्जिद में वे खड़े हो गए। अकबर ने नमाज पूरी की; फिर दोनों हाथ फैलाए आकाश की तरफ, कहाः हे परमात्मा, मेरे धन को और बढ़ा! मेरी दौलत को बड़ा कर! मेरे साम्राज्य को फैला!
फरीद ने यह सुना, सिर झुका कर वे मस्जिद से वापस लौटने लगे। अकबर उठा। उसने फरीद को जाते देखा--सीढ़ियां उतरते। वह भागा। कहा कि आप आए और कैसे चले? मेरा सौभाग्य, मेरे सिर आंखों पर! आप कभी तो आए! चले कैसे?
फरीद ने कहा कि नहीं, अब नहीं। मैं तुझसे कुछ मांगने आया था, लेकिन मैंने देखा कि तू खुद ही किसी से मांग रहा है। तो फिर सोचा, हम भी उसी से मांग लेंगे। अभी तू खुद ही मांग रहा है, तो तेरे धन में कुछ कमी करवाना ठीक नहीं। मदरसा खोलेगा तो कुछ तो पैसा लग ही जाएगा; थोड़ी कमी हो ही जाएगी। कुछ बहुत बड़ी कमी नहीं होगी, मगर तेरे जैसे दीन आदमी को तो बहुत नुकसान हो जाएगा। तू अभी भी हाथ फैला कर धन मांग रहा है, दौलत मांग रहा है, राज्य मांग रहा है। मरने के दिन करीब आ रहे हैं; तू अभी भी व्यर्थ मांग रहा है! फिर मैंने सोचा कि तू जिससे मांग रहा है, जब तू खुद ही भिखारी है, तो भिखारी से क्या मांगना! हम भी उसी से मांग लेंगे।
कशिश यह हुस्ने-बुतां जिससे मांग लाया है
वही जमाले-हकीकी मेरी नजर में रहे
जला के राख कर अब मेरे सब ख्यालों को
ख्याल तेरा ही बस एक मेरे सर में रहे
तेरा ही जोर रहे मेरे दस्तो-बाजू में
तेरी ही कुव्वते-परवाज बालो-पर में रहे

मेरे पंखों में, मेरे परों में तुझ तक उड़ने की आकांक्षा--तू ही भरेगा
तो टिकेगी! यह आकाश बड़ा है और मेरे पंख छोटे हैं। मेरी सामर्थ्य बड़ी छोटी है; तू विराट है, तेरा कोई अंत नहीं है।
तेरा ही जोर रहे मेरे दस्तो-बाजू में
तो मेरी बांहों में अगर तेरी ही शक्ति हुई तो ही पहुंच पाऊंगा तुझ तक। मेरे पैर में अगर तू ही चला तो ही पहुंच पाऊंगा तुझ तक। मेरी प्रार्थना में अगर तू ही बहा तो ही पहुंच पाऊंगा तुझ तक।
तेरी ही कुव्वते-परवाज बालो-पर में रहे
तो मुझमें उड़ने की जो शक्ति है, वह तेरी ही हो तो ही तुझ तक पहुंच पाऊंगा।
ऐसी प्रार्थना करो अब।
मुझे दिखा दे तू सहराए-इश्क, ऐ दोस्त!
तू मुझे प्रेम का रास्ता दिखा दे। मैं तो अंधा हूं। प्रेम तो मैंने जाना नहीं। प्रेम के नाम से और जो जाना, सब ठीकरे थे। प्रेम के नाम से जो भी जाना, वह प्रेम नहीं था, प्रेम का नाममात्र था वहां; प्रेम से कुछ उलटा ही था वहां।
मुझे दिखा दे तू सहराए-इश्क, ऐ दोस्त!
कि सुबहो-शाम मेरा हर कदम सफर में रहे
कि सुबह हो कि शाम, कि दिन हो कि रात, मेरा हर कदम सफर में रहे।
यही संन्यास का अर्थ है। संन्यास का अर्थ हैः यात्री; परिव्राजक। संन्यास का अर्थ हैः जो चल पड़ा। महावीर का एक प्यारा वचन है कि जो चल पड़ा, समझो कि पहुंच ही गया। समझो कि पहुंच ही गया। क्योंकि चलने वाला अंततः पहुंच ही जाता है। देर-अबेर, आज नहीं कल, चलने वाला अंततः पहुंच ही जाता है।
चलो! संन्यास का कुछ और अर्थ नहीं है। संन्यास कोई औपचारिकता नहीं है--एक अंतर्भाव है। एक भाव है कि अब मैं चलने के लिए तैयार हूं। अब खोजूंगा; चाहे इस खोजने में खो ही क्यों न जाऊं। अब सब गंवाने की तैयारी है।
और उमानाथ के मन में अंकुर है--उठ रहा है। इसलिए प्यार भी कर रहा हूं, चोट भी दे रहा हूं। प्रार्थना करो कि यह मैं प्यार भी करता रहूं और चोट भी देता रहूं।

चौथा प्रश्नः स्मृति और स्वप्न से मैं आपके पास कभी-कभी पहुंच जाती हूं। लेकिन इस जन्म के पति की मेहरबानी से मैं अभी तक आप तक नहीं पहुंच पाई। आपकी प्रेम-दीवानी होने के लिए मैं क्या करूं?

पूछा है वीणा ने। प्रश्न लिखा होगा, तब तक वह संन्यासी न थी; कल संध्या उसका संन्यास भी हो गया है। उसे कुछ प्रेम-दीवानी बनने के लिए करना नहीं है--वह प्रेम-दीवानी है। संन्यास उसने मांगा भी नहीं था; मैंने दिया है। संन्यास का सोच कर वह आई भी नहीं थी। प्रेम-दीवानी होने के लिए उसे कुछ करना नहीं है--जो हो रहा है, उसे ही और प्रगाढ़ता से होने देना है।
मेरे पास भौतिक रूप से आ सको या न आ सको, यह बात बड़ी महत्वपूर्ण नहीं है। मेरे पास मन के तल पर रह सको तो सब हो जाएगा।
वीणा नौ साल बाद आई है। कह रही हैः "स्मृति और स्वप्न में मैं आपके पास कभी-कभी पहुंच जाती हूं।"
तो ऐसा मत सोचना कि तू ही यह यात्रा करती है; मैं भी करता हूं। इन नौ सालों में जितनी बार तूने याद किया, उससे दुगुनी बार मैंने याद किया होगा। और मैं देख रहा था कि किसी दिन आएगी। जिस दिन आएगी, उसी दिन तेरा संन्यास करना है। नौ साल बाद आए, कि नब्बे साल बाद आए, कि नौ जन्म बाद आए, लेकिन जिस दिन आएगी उसी दिन तेरा संन्यास करना है। वह तय था। तो कल तू तो अनजाने आई थी, तुझे कुछ पता नहीं था। तुझे पता नहीं था, इस बुरी तरह फंस जाएगी।
और पति से तू इस भांति मत सोच, क्योंकि तुझे सौभाग्य से ऐसा पति मिला
है जो मेरा प्रेम-दीवाना है। पति तेरे डरते होंगे थोड़े-बहुत कि कहीं ज्यादा न चली जाए। पति ही हैं आखिर! उनकी व्यवस्था है, बच्चे हैं, परिवार

है। मगर तू सौभाग्यशाली है कि तेरे पति को मुझसे उतना ही प्रेम है जितना तुझे है; थोड़ा ज्यादा ही भला हो, कम नहीं है। इसलिए कल जब तुझे संन्यासी बना लिया है तो मेरे लिए तेरे पति भी आधे संन्यासी हो ही गए; अब तेरे द्वारा उनको भी संन्यासी बना लेंगे, ज्यादा देर न लगेगी। उनका तुझसे अतिशय प्रेम है, यह बात सच है। शायद उसी प्रेम के कारण कभी-कभी वे तुझे रोक भी देते हों। शायद उसी प्रेम के कारण कभी-कभी भयभीत भी हो जाते हों। मगर बहुत कम सौभाग्यशाली जोड़ों में से तू एक है--जिनके दोनों के संन्यास की बड़ी संभावना है; जो दोनों आगे एक साथ बढ़ सकेंगे।
और जो जोड़ा साथ-साथ बढ़ सके, उसकी यात्रा बड़ी सुगम होती है। कभी पति संन्यस्त हो जाता है और पत्नी नहीं हो पाती, तो अड़चन होती है। पत्नी हो जाती है, पति नहीं हो पाता, तो अड़चन होती है। क्योंकि फिर अनजाने-जाने एक-दूसरे में विरोध, एक-दूसरे में बाधाएं डालनी शुरू हो जाती हैं। और जिनके साथ चौबीस घंटे रहना है, अगर उनसे बाधाएं पड़ने लगें तो हानि होती है। मेरे पास जो जोड़ा साथ-साथ आ जाता है, उसकी गति बड़ी सहज हो जाती है। जैसे तुमने जीवन में एक-दूसरे को साथ दिया है, ऐसे ही संन्यास में भी साथ दो। जैसे तुमने जीवन में एक-दूसरे को सहयोग दिया, सहारा दिया, ऐसे ही ध्यान में भी सहारा-सहयोग दो। जैसे प्रेम में सहारा दिया, ऐसे ही ध्यान में। और तब तुम हैरान होओगे कि जिस दिन तुम्हारा ध्यान दोनों का बढ़ने लगेगा साथ-साथ, तभी तुम पाओगे कि प्रेम ने और जितनी भेंटें दी थीं, वे तो दो कौड़ी की हो गईं, यही भेंट एक काम आने वाली है। तुमने हीरे-जवाहरात दिए थे, मोतियों की मालाएं दी थीं, गहने दिए थे--उनका कोई मूल्य नहीं था। पत्नी ने अपनी देह दी थी, अपना सारा प्रेम दिया था; उसका भी कोई मूल्य नहीं था। असली मूल्य तो उस दिन होगा, जिस दिन तुम ध्यान की भेंट एक-दूसरे को दे पाओगे। उस दिन तुमने राम रतन दिया--जो सदा-सदा साथ रहता है।
"स्मृति और स्वप्न से मैं आपके पास कभी-कभी पहुंच जाती हूं, लेकिन इस जन्म के पति की मेहरबानी से मैं अभी तक आप तक नहीं पहुंच पाई।"
उन्हीं की मेहरबानी से तू पहुंच पाई है। पति के साथ जरा भी ऐसा भाव नहीं रखना कि उनकी मेहरबानी से नहीं पहुंच पाई। उन्हीं की मेहरबानी से पहुंच पाई है। और उनकी मेहरबानी से और आगे जाएगी। यात्रा बड़ी है। और अभी तो बस प्रारंभ हुआ।
"आपकी प्रेम-दीवानी होने के लिए मैं क्या करूं?"
तू है। अब इतनी ही फिकर लेनी जरूरी है कि यह तेरा प्रेम तेरे हृदय में
ही संकुचित न रह जाए; यह फैले। इसे बांट! जिनका मुझसे प्रेम है, उनको मेरे प्रति प्रेम प्रकट करने का एक ही उपाय है कि उसे बांटो, उसे दो। संन्यास की भनक औरों को भी सुनाई पड़े। ध्यान का परिणाम औरों को भी दिखाई पड़े। उलीचो! जितना तुम्हें मिले, दूसरों को बांटो और दो।
मेरे हर संन्यासी का घर मेरा आश्रम बन जाना चाहिए। वहां से सुगंध उठनी चाहिए। वहां से दूर-दूर तक सुवास पहुंचनी चाहिए। इतना मैं तुम्हें कह देना चाहता हूं कि करोड़ों लोग प्यासे हैं। लाखों संन्यासियों की जरूरत है; क्योंकि मैं तो कहीं जाता नहीं। तुम्हें भेज रहा हूं। तुम जहां जाओ, मेरी खबर ले जाओ। तुम इस ढंग से जीओ; तुम इस आनंद और मस्ती से जीओ; तुम इस पागलपन से जीओ और श्रद्धा से जीओ कि दूसरे भी तुम्हारे पास आकर मस्त होने लगें। उनके जीवन में भी नृत्य की शुरुआत हो जाए।
तो वीणा को कहूंगाः नाच मेरे लिए; गा मेरे लिए; लोगों को खबर पहुंचा।
जो घुंघरू तेरे भीतर बजने शुरू हुए हैं, वह अपने पैरों में बांध। और तू चिंता मत कर कि कैसे तू प्रेम-दीवानी बनेगी। अभी कल तूने सुना नहीं, मीरा अपने वचन में कहती हैः पूरब जनम को कौल!
तेरे लिए मेरा पुराना वचन है--पिछले जनम का। तुझे पता न हो, लेकिन इधर मैं नौ वर्ष से प्रतीक्षा करता था कि तू जब आ जाए... । तेरी पहचान नई नहीं है।
सुना मीरा का वचनः मेरी उनकी प्रीति पुरानी!
आनंद से रो! आनंद से गा!
सुना मीरा कोः अंसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई।

शारीरिक रूप से यहां आ सको या न आ सको, यह बात बहुत मूल्यवान नहीं है।
और शारीरिक रूप से भी आ सकोगे, क्योंकि मेरे लिए कोई शरीर का विरोध नहीं है। मगर असली बात हैः जहां हो, वहां मेरे आनंद के प्रतीक बन जाओ!
इश्क का खेल आम है, लेकिन
इश्के-सादत जहां में आम नहीं
लोग प्रेम का खेल ही खेल रहे हैं; असली प्रेम तो कभी-कभी होता है।
इश्क का खेल आम है, लेकिन
इश्के-सादत जहां में आम नहीं
असली प्रेम का अर्थ ही यह होता है कि न अब देह की कोई बाधा है, न अब समय
की कोई बाधा है।
कृष्ण हुए हजारों साल पहले और मीरा ने फिर भी प्रेम कर लिया--और राधा
को फीका कर गई! राधा का नाम छाया की तरह रह गया। मीरा राधा को फीका कर गई। हजारों साल के फासले पर प्रेम कर सकी। समय का भी कोई फासला नहीं है, स्थान का भी कोई फासला नहीं है।
इश्क का खेल आम है, लेकिन
इश्के-सादत जहां में आम नहीं
हर तरफ मय ही मय छलकती है
मस्त यकसर करे जो, जाम नहीं
यहां हर तरफ ऐसे तो शराब ढाली जा रही है, हर तरफ लोग खुशी की कोशिश कर रहे हैं, खुशी के जाम ढाल रहे हैं; लेकिन शराब असली वही है जो एक दफे बेहोश कर दे तो सदा के लिए बेहोश कर दे।
हर तरफ मय ही मय छलकती है
मस्त यकसर करे जो, जाम नहीं
जो सदा के लिए, हमेशा के लिए बेहोश कर दे... वीणा, तेरे सामने वही जाम लिए बैठा हूं कि पीएगी तो सदा के लिए बेहोश हो जाएगी। हिम्मत कर।
हुस्न की हो रही है रुसवाई
इश्क को अपना एहतराम नहीं
आओ आदाबे-इश्क फिर सीखें
सच्ची उल्फत हवस का नाम नहीं
यही मैं सिखा रहा हूं--यह पाठशाला इश्क का आदाब सिखाने की पाठशाला है। यहां प्रेम का पाठ सिखा रहा हूं। यहां परमात्मा से भी ज्यादा मूल्यवान प्रेम है, क्योंकि प्रेम से परमात्मा मिलता है; प्रेम के बिना परमात्मा नहीं मिलता।
आओ आदाबे-इश्क फिर सीखें
सच्ची उल्फत हवस का नाम नहीं
इश्क में अपना खोना है सब कुछ
साजो-सामां से कोई काम नहीं
अपना सब कुछ खोना है। साज-सामान से नहीं चलेगा। धन दे दो, मकान दे दो-- इससे नहीं चलेगा।
इश्क में अपना खोना है सब कुछ
साजो-सामां से कोई काम नहीं
फिर मिटाना है अपना नामो-निशां
गैर-ए-महबूब कोई नाम नहीं
इससे आगे है इक मुकाम ऐसा
जिसका कोई निशानो-नाम नहीं
मस्तियां वां बरसती रहती हैं
खुम के खुम, एक आध जाम नहीं
वीणा, उस तरफ ले चलना चाहता हूं तुम सबको, जहां प्यालियों में शराब नहीं पी जाती; जहां सुराहियों की सुराहियां एक साथ उंडेली जा रही हैं। मस्तियां वां बरसती रहती हैं
खुम के खुम, एक आध जाम नहीं
मटके के मटके! ऐसा नहीं कि छोटे-छोटे कुल्हड़ लिए बैठे हैं। कुल्हड़ों
का वहां काम नहीं है। उस मधुशाला के लिए निमंत्रण है मेरा संन्यास।

वीणा चुपचाप संन्यास के लिए राजी हो गई, चल पड़ी। उसके पति की मुझे प्रतीक्षा है। चितरंजन यहां मौजूद हैं; ज्यादा देर नहीं लगेगी। उनकी आंखों में मैंने सदा मेरे लिए अपूर्व प्रेम पाया है।

आखिरी प्रश्नः यह कैसा विद्यापीठ है आपका, जहां सिखाया जाता है कि दो
और दो चार होते हैं; और चार नहीं भी होते हैं; पांच भी हो सकते हैं!

यह विद्यापीठ कम, अविद्यापीठ ज्यादा है। क्योंकि यहां सिखाया नहीं जाता, सीखे हुए को भुलाया जाता है। सीख तो तुम वैसे ही काफी गए हो; वही तो तुम्हारी अड़चन है; वही तो तुम्हारी जंजीर है; वही तुम्हारा कारागृह है; वही तुम्हारा बोझ है। यहां बोझ हलका किया जाता है।
विश्वविद्यालयों का काम हैः तुम्हारी जानकारी बढ़ाए जाएं। इसलिए मैं इसे अविद्यापीठ कह रहा हूं। यहां सारा काम यह है कि कैसे तुम्हारी जानकारी छिन जाए--आग लगा दें तुम्हारी जानकारी को! तुम्हें खाली छोड़ दें-- ज्ञान से शून्य, मुक्त! ज्ञान के उपद्रव से शांत!
जहां ज्ञान, तथाकथित जानकारियां समाप्त हो जाती हैं, जहां तुम पंडित नहीं रह जाते--वहीं ढाई आखर प्रेम का! वहीं प्रेम जगता है। जब तक पंडित हो, तब तक प्रेम नहीं। पंडित प्रेम का दुश्मन है। पंडित तो हत्यारा है। क्योंकि पंडित का अर्थ हैः बुद्धि। और प्रेम का अर्थ हैः हृदय। बुद्धि और हृदय दो विपरीत छोर हैं। जो बुद्धि के छोर पर जीता है, उसका हृदय धीरे-धीरे धड़कना ही बंद हो जाता है। धुकधुकी चलती रहती है, सांस का काम चलता रहता है; मगर हृदय की असली धड़कन, प्रेम की लहर विदा हो जाती है; प्रेम का कंप विदा हो जाता है। उसे रोमांच नहीं होता। वह गणित और तर्क में खो जाता है। वह हिसाब-किताब में ही बैठा रहता है। उसकी दुनिया में दो और दो चार होते हैं सदा। हृदय की अनूठी दुनिया है।
कहा मैंनेः श्रद्धा पागल है। प्रेम पागल है।
प्रेम और श्रद्धा एक ही अनुभव के दो नाम हैं। प्रेम श्रद्धा है और श्रद्धा प्रेम है। मगर प्रेम तर्क नहीं मानता और प्रेम गणित नहीं मानता।
प्रेम का अपना ही गणित है और प्रेम का अपना ही तर्क है--बड़ा बेबूझ! बुद्धि के लिए तो पहेली है।
इसलिए प्रेम की दुनिया में कभी-कभी दो और दो चार भी होते हैं; कभी दो
और दो पांच भी होते हैं; कभी दो और दो तीन भी होते हैं; और कभी दो और दो मिल कर शून्य भी हो जाता है। प्रेम में बंधी-बंधाई लकीरें नहीं हैं। प्रेम लकीर का फकीर नहीं है। प्रेम परम स्वतंत्रता है। और प्रेम में प्रतिपल जो घटता है, उसकी कोई भविष्यवाणी पहले से नहीं की जा सकती कि क्या होगा। प्रेम एक जादू है।
यहां प्रेम सिखाया जा रहा है। और प्रेम को सिखाया कैसे जा सकता है? एक
ही काम किया जा सकता हैः ज्ञान छीन लिया जाए। चट्टान हट जाए, झरना बह उठे। वही काम यहां चल रहा है। यह अविद्यापीठ है। यह एंटी-युनिवर्सिटी है। इस काम को फैलाना है, क्योंकि दुनिया ज्ञान से बहुत बोझिल है। मनुष्य को ज्ञान से मुक्त करवाना है।
पश्चिम के एक विचारक डी.एच.लारेंस ने कहा थाः अगर सौ साल के लिए सारे विश्वविद्यालय बंद हो जाएं तो आदमी फिर से आदमी हो जाए।
बात कीमत की है। लेकिन मैं इस बात के लिए राजी नहीं हूं कि विश्वविद्यालय बंद हो जाएं। मेरी प्रस्तावना दूसरी है। मेरी प्रस्तावना हैः जितने विश्वविद्यालय हों, उतने एंटी-युनिवर्सिटीज, उतने ही अविद्यापीठ भी हों। विश्वविद्यालय बंद हो जाएं तो कुछ बहुत नहीं हो जाएगा। आदमी इससे बेहतर आदमी होगा फिर भी--आदिम हो जाएगा, जैसे जंगलों के वासी हैं। फिर थाप पड़ेगी। फिर घूंघर बंधेंगे। फिर लोग नाचेंगे चांद-तारों के नीचे। फिर लोग प्रेम करेंगे।
मगर इससे भी ऊंची एक जगह है और वह हैः विश्वविद्यालय से गुजरना और फिर विश्वविद्यालय ने जो भी दिया है उसे छोड़ देना। वह इससे भी ऊंची जगह है। फिर प्रेम की थाप पड़ती है। फिर घूंघर बंधते हैं। लेकिन यह ऊंची जगह है पहली से।

इसको ऐसा समझो तो समझ में आ जाएगा। बुद्ध ने राजमहल छोड़ा, राज-पाट छोड़ा, धन-दौलत छोड़ी, पद-प्रतिष्ठा छोड़ी, भिखारी हो गए। एक तो भिखारी बुद्ध हैं और एक भिखारी पूना की सड़कों पर तुम किसी को भी पकड़ ले सकते हो--भिखारी को। ये दोनों भिखारी हैं ऊपर से देखने में। लेकिन बुद्ध के भिखारीपन में एक समृद्धि है। जान कर छोड़ा। अनुभव से छोड़ा। दूसरा भिखारी सिर्फ दरिद्र है। बुद्ध की दरिद्रता में भी एक समृद्धि है और दूसरे की दरिद्रता में कुछ भी नहीं है; सिर्फ दरिद्रता है। दोनों ऊपर से एक से दिखाई पड़ते हैं। दोनों के कपड़े फटे हैं। दोनों भिक्षापात्र लिए हैं। मगर दोनों के भीतर बड़ा अंतर है। और तुम अगर दोनों की आंखों में झांकोगे तो पता चल जाएगा अंतर। बुद्ध में तुम्हें सम्राट दिखाई पड़ेगा; और भिखारी में सिर्फ भिखारी।
इसलिए हमारे पास दो शब्द हैंः भिक्षु और भिखारी। वह हमने फर्क करने
के लिए बनाए हैं। दुनिया की किसी भाषा में दो शब्द नहीं हैंः भिक्षु और भिखारी। भिक्षु या भिखारी--एक ही शब्द काफी होता है, क्योंकि दुनिया ने दूसरा अनुभव ही नहीं जाना है। बुद्ध जैसे भिखारी सिर्फ भारत ने जाने; भारत के बाहर किसी ने नहीं जाने। तो हमें एक नया शब्द खोजना पड़ाः भिक्षु। भिक्षु में बड़ा सम्मान है; भिखारी में बड़ा अपमान है। भिखारी का इतना ही मतलब हैः इस आदमी के पास धन कभी था नहीं; इसने धन कभी जाना नहीं। भिक्षु का अर्थ हैः धन था, धन जाना और जाना कि व्यर्थ है और उसे छोड़ा। यह बड़ी ऊंची बात है। इसमें बड़ा भेद है। इसमें बड़ी गरिमा है।
ऐसा ही मेरा ख्याल है। डी.एच.लारेंस से मैं थोड़े दूर तक राजी, लेकिन मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि सारे विश्वविद्यालय बंद हो जाएं। विश्वविद्यालय मजे से रहें; लेकिन उनका मुकाबला भी पैदा हो। बुद्धि के विश्वविद्यालय मजे से रहें; उनकी जरूरत है--दुकानदारी में, काम-काज में, विज्ञान में उनकी आवश्यकता है। गणित एकदम व्यर्थ नहीं है। लेकिन इनके मुकाबले हृदय के मंदिर भी हों, प्रेम के मंदिर भी हों--जहां सिर्फ ढाई अक्षर प्रेम के पढ़ाए जाते हों; जहां कुछ और न पढ़ाया जाता हो, जहां पढ़ाया- लिखाया गया छीना जाता हो, झपटा जाता हो।
जब कोई आदमी सब जान कर जानता है कि जानना व्यर्थ है--तो वह सिर्फ आदिम नहीं हो जाता; वह सिर्फ आदिवासी नहीं हो जाता। सुकरात को तुम आदिवासी नहीं कहोगे। और आदिवासियों ने कोई सुकरात पैदा नहीं किया है, यह भी ख्याल रखना। सुकरात के पैदा होने के लिए एथेंस चाहिए; एथेंस की शिक्षा चाहिए; एथेंस के शिक्षक चाहिए। और एक दिन सुकरात कहता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता। सुकरात ने कहा कि जब मैं युवा था, तो मैं सोचता था कि मैं बहुत कुछ जानता हूं; फिर जब मैं बूढ़ा हुआ, प्रौढ़ हुआ, तो मैंने जाना कि मैं बहुत कम जानता हूं, बहुत कुछ कहां! इतना जानने को पड़ा है! मेरे हाथ में क्या है--कुछ भी नहीं, कुछ कंकड़-पत्थर बीन लिए हैं! और इतना विराट अपरिचित है अभी! जरा सी रोशनी है मेरे हाथ में--चार कदम उसकी ज्योति पड़ती है--और सब तरफ गहन अंधकार है! नहीं, मैं कुछ ज्यादा नहीं जानता; थोड़ा जानता हूं। और सुकरात ने कहा कि जब मैं बिल्कुल मरने के करीब आ गया, तब मुझे पता चला कि वह भी मेरा वहम था कि मैं थोड़ा जानता हूं। मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। मैं अज्ञानी हूं।
जिस दिन सुकरात ने यह कहा, मैं अज्ञानी हूं, उसी दिन डेल्फी के मंदिर
के देवता ने घोषणा की कि सुकरात इस देश का सबसे बड़ा ज्ञानी है। जो लोग डेल्फी का मंदिर देखने गए थे, उन्होंने भागे आकर सुकरात को खबर दी कि डेल्फी के देवता ने घोषणा की है कि सुकरात इस समय पृथ्वी का सबसे बड़ा ज्ञानी है। आप क्या कहते हैं?
सुकरात ने कहाः जरा देर हो गई। जब मैं जवान था, तब कहा होता, तो मैं बहुत खुश होता। जब मैं बूढ़ा होने के करीब हो रहा था, तब भी कहा होता, तो भी कुछ प्रसन्नता होती। मगर अब देर हो गई, क्योंकि अब तो मैं जान चुका कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।
जो यात्री डेल्फी के मंदिर से आए थे, वे तो बड़ी बेचैनी में पड़े कि अब क्या करें? डेल्फी का देवता कहता है कि सुकरात सबसे बड़ा ज्ञानी है और सुकरात खुद कहता है कि मैं सबसे बड़ा अज्ञानी हूं; मुझसे बड़ा अज्ञानी नहीं। अब हम करें क्या? अब हम मानें किसकी? अगर डेल्फी के देवता की मानें कि सबसे

बड़ा ज्ञानी है तो फिर इस ज्ञानी की भी माननी चाहिए, सबसे बड़ा ज्ञानी है। तब तो बड़ी मुश्किल हो जाती है, अगर इस सबसे बड़े ज्ञानी की मानें तो देवता गलत हो जाता है।
वे वापस गए। उन्होंने डेल्फी के देवता को निवेदन किया कि आप कहते हैं सबसे बड़ा ज्ञानी है सुकरात और हमने सुकरात से पूछा, सुकरात उलटी बात कहता है। अब हम किसकी मानें? सुकरात कहता हैः मुझसे बड़ा अज्ञानी नहीं।
डेल्फी के देवता ने कहाः इसीलिए तो हमने घोषणा की है कि वह सबसे बड़ा ज्ञानी है।
ज्ञान की चरम स्थिति हैः ज्ञान से मुक्ति। ज्ञान की आखिरी पराकाष्ठा हैः ज्ञान के बोझ को विदा कर देना। फिर निर्मल हो गए। फिर स्वच्छ हुए। फिर विमल हुए। फिर कोरे हुए।
आदिवासी भी कोरा है, लेकिन उसने अभी लिखावट नहीं जानी।
एक छोटा बच्चा, ऐसा समझो, छोटा बच्चा, अभी इसने कोई पाप नहीं किए; लेकिन तुम इसे संत नहीं कह सकते। क्योंकि इसने पाप किए ही नहीं, पाप का रस ही नहीं जाना, पाप का त्याग भी नहीं किया, पाप की व्यर्थता नहीं पहचानी। यह तो सिर्फ भोला है; इसको संत नहीं कह सकते। और चूंकि यह भोला है, इसलिए अभी पूरी संभावना है कि यह पाप करेगा, क्योंकि बिना पाप को किए कोई कब पाप से मुक्त हुआ है! यह जाएगा बाजार में। यह उतरेगा दुनिया में। यह सब चोरी, बेईमानियां, सब करेगा। यह अभी भोला है, यह बात सच है। मगर यह भोलापन टिकने वाला नहीं है, क्योंकि यह भोलापन कमाया नहीं गया है। यह तो प्राकृतिक भोलापन है, नैसर्गिक भोलापन है। यह तो नष्ट होने वाला है। यह कुंवारापन, यह ताजगी जो बच्चे में दिखाई पड़ती है, यह टिकने वाली नहीं है। तुम भी जानते हो, सारी दुनिया जानती है, कि यह आज नहीं कल दुनिया में जाएगा, जाना ही पड़ेगा। हर बच्चे को जाना पड़ेगा।
और अगर तुम बच्चे को घर में ही रोक लो चारदीवारियां बड़ी करके, तो तुम उसके हत्यारे हो। क्योंकि वह बच्चा भोला ही नहीं रहेगा, पोला भी हो जाएगा। उसके जीवन में कुछ वजन ही नहीं होगा। उसके जीवन में वजन तो चुनौतियों से आने वाला है। भटकेगा तो वजन आएगा। जो भटक-भटक कर घर लौटता है, वही घर लौटता है। घर में ही जो बैठा रहा, भटका ही नहीं--उसके घर में बैठने का कोई अर्थ नहीं है। उसके भीतर का चित्त तो भटकता ही रहेगा। वह सोचता ही रहेगाः कैसे निकल भागूं!
इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि अच्छे मां-बाप के बेटे बुरे हो जाते हैं। उनका कारण कुल इतना ही है कि अच्छे मां-बाप होते हैं। जरूरत से ज्यादा अच्छा करने की कोशिश में लगे होते हैं। उनका भी कसूर नहीं है। उन्होंने जिंदगी में देखा, सब व्यर्थ है; अब अपने बच्चे को बचा लें, सोचते हैं। मगर न उनके मां-बाप उनको बचा पाए थे, न वे अपने बच्चों को बचा पाएंगे। अनुभव से ही कोई सीखेगा। अनुभव से जो वंचित रह गया, वह दरिद्र रह जाता है। तो अच्छे मां-बाप अक्सर बच्चों के घातक हो जाते हैं। रोक लेंगे; सब तरह के बंधन डाल देंगेः ऐसा मत करो, वैसा मत करो; यहां मत जाओ, वहां मत जाओ। इन सारे बंधनों का परिणाम यह होगा कि बच्चा गोबरगणेश रह जाएगा--मिट्टी का लोंदा; उसमें कोई शक्ल भी पैदा नहीं होगी। और अगर उसमें जरा भी बल है और आत्मा है, तो वह बगावत करेगा। वह भागेगा बाप से। वह भागेगा घर से। वह चोरी से रास्ते निकालेगा। क्योंकि हर बेटे को अपने मां-बाप को "नहीं" कहना ही पड़ता है। अगर वे "नहीं" न कहें तो उनमें आत्मा पैदा नहीं होती; वे नपुंसक रह जाते हैं। अगर थोड़ा भी बल है, ऊर्जा है, तो वह कोई उपाय खोजेगा कि कैसे... मां-बाप कहते हैंः सिगरेट मत पीओ। वह पीकर बताएगा। उसे बताना ही पड़ेगा पीकर। यह उसकी मजबूरी हो गई अब। नहीं बताएगा तो उसमें प्राण नहीं हैं। वह कोई न कोई उपाय खोजेगा। वह हर तरह से, मां-बाप की जो बंधन की प्रक्रिया है, उसको तोड़ कर मुक्त होने की चेष्टा करेगा। और तब जो मां-बाप चाहते हैं, उससे विपरीत हो जाएगा।
महात्मा गांधी ने अपने बड़े बेटे हरिदास के लिए बड़ी कोशिश की। वह कोशिश बड़ी नासमझी से भरी है। वह महात्मा गांधी के संबंध में कोई बहुत ऊंचा ख्याल पैदा नहीं करवाती। वह कोशिश बिल्कुल अमनोवैज्ञानिक है। महात्मा गांधी चाहते हैं कि बेटा शराब न पीए, सिगरेट न पीए, मांस न खाए, होटल में न

खाए, शाकाहारी हो! महात्मा गांधी चाहते हैंः बेटा स्कूल में भी पढ़ने न जाए, क्योंकि वहां और गलत लोगों से साथ हो जाएगा। वे चाहते हैंः यह शादी भी न करे; ब्रह्मचारी रहे।
अब ये सब बातें बेबूझ हैं। और यह जबरदस्ती है। यह बेटे के अपने अनुभव
से नहीं निकल रही हैं। और बेटे ने इसका ठीक बदला लिया। उसने शराब भी पी। वह वेश्यागामी हुआ, जुआरी बन गया। वह, जो-जो गांधी कहते थे, उससे विपरीत किया। मांसाहारी बन गया। शायद गांधी ने शाकाहार नहीं थोपा होता तो मांसाहारी न बनता। फिर आखिरी, गांधी को चोट पहुंचाने के लिए उसने हिंदू धर्म भी त्याग कर दिया; उसने इस्लाम स्वीकार कर लिया। कुछ हर्जा नहीं इस्लाम स्वीकार करने में--लेकिन गांधी को चोट देने के लिए! क्योंकि गांधी कहते थेः अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम। सब एक ही है। लेकिन जब हरिदास गांधी अब्दुल्ला गांधी हो गया तो गांधी को चोट लगी। और जब हरिदास को खबर मिली कि बाप दुखी हुए तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ; तो उसने कहाः अरे, फिर "अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम" उसका क्या हुआ? जब हिंदू-मुसलमान एक ही हैं तो हरिदास गांधी कि अब्दुल्ला गांधी, क्या फर्क पड़ता है?
हालांकि हरिदास और अब्दुल्ला का एक ही मतलब होता है। अब्द-अल्लाहः अल्लाह का दास; हरिदास। कुछ फर्क नहीं है दोनों में।
मगर वह गांधी की जबरदस्ती! अच्छे बाप की जबरदस्ती! थोपा गया महात्मापन! हरिदास को विकृत कर दिया। उसका जिम्मा गांधी पर है। अगर कहीं कोई आखिरी अदालत है तो हरिदास नहीं पकड़ा जाएगा, मोहनदास कर्मचंद गांधी पकड़े जाएंगे; क्योंकि हरिदास ने कुछ किया नहीं।
छोटा बच्चा अभी भोला है; संत नहीं है। संत की उससे आशा भी मत करो। संत
तो कोई तभी हो पाता है जब बहुत पापों का स्वाद ले और पाए कि सब पाप कड़वे हैं और जहरीले हैं। अपने अनुभव से पाए तो ही पाया। और पाकर एक दिन लौटे। एक दिन दूर निकल जाए, रास्ते से वंचित हो जाए, भटक जाए, अमार्ग पर हो जाए--और फिर एक दिन वापस अपनी ही स्वेच्छा, अपनी ही समझ, अपनी ही प्रज्ञा से घर आए।
जीसस की कहानी बड़ी प्रसिद्ध है।
एक बाप के दो बेटे, दोनों ने बाप से झगड़ा किया, आधा-आधा धन बांट लिया। छोटा बेटा तो छोड़ कर चला गया अपना धन लेकर; बड़ा बेटा बाप के पास ही रहा।
छोटे बेटे ने तो जाकर जुआ खेला, शराब पी, मांसाहार किया, वेश्यागमन किया-- सब धन बर्बाद कर दिया; भिखारी हो गया। भोजन के लिए भी भीख मांगने लगा। बड़ा बेटा बाप के पास रहा, बाप की सेवा भी की, खेती-बाड़ी भी सम्हाली, बगीचों की देखभाल भी की, मेहनत भी की, धन को बढ़ाया भी।
वर्षों बाद बाप को खबर लगी कि बेटा भिखमंगा हो गया है--छोटा बेटा। उसने खबर भेजी कि वह आ जाए घर। छोटा बेटा घर लौटा। तो बाप ने एक भोजन दिया, पूरे नगर को भोज दिया। और बड़े भोजन तैयार करवाए। बड़ा बेटा खेत पर था। किसी ने उसे खबर दी, कि भाई सुनो, यह भी मजा! तुम जिंदगी भर बाप के पास रहे--सेवा की, धन को दुगुना-चौगुना किया। वह छोटा नालायक, वह गया, भाग गया सब लेकर धन, सब बर्बाद कर दिया, सब तरह की गंदगियों में गिरा, सब तरह की नालियों में कीड़ा बना--अब भिखमंगा होकर लौट रहा है और बाप भोज का आयोजन कर रहा है! तुम्हारे लिए कभी भोज का आयोजन नहीं किया! सबसे मोटी भेड़ें काटी जा रही हैं और सबसे पुरानी शराब निकाली जा रही है। और तुम्हारे लिए तो यह कभी नहीं किया।
बड़े बेटे को भी बहुत दुख हुआ कि यह बात तो सच है। उसको भी चोट लगी। वह
घर आया। घर देखा तो वंदनवार लगे हैं; दीये लगाए गए हैं; बाजे बज रहे हैं। वह तो बहुत उदास हो गया। उसने अपने बाप से जाकर कहा कि यह क्या हो रहा है? मेरे स्वागत में तो कभी कुछ नहीं हुआ। मैं तुम्हारे पास रहा। यह कैसा ईनाम! यह कैसा पुरस्कार!
बाप ने कहाः तू समझा नहीं। तू तो मेरे पास ही था। लेकिन जो दूर गया था
और भटक गया था और घर लौटता है, उसका स्वागत करना जरूरी है।
जीसस यह कहानी इस अर्थ में कहते हैं कि जो भटक जाते हैं, परमात्मा उन्हीं का स्वागत करता है, क्योंकि वे जीवन का पाठ लेकर लौटते हैं।
बच्चा तो भटकेगा। बच्चे का कोई मूल्य नहीं है। वह जंगल में जो आदिवासी है, वह कभी न कभी बंबई का वासी और न्यूयार्क का वासी बनेगा; वह बच

नहीं सकता ज्यादा दिन। वह चल ही रहा है उसी तरफ, जा ही रहा है उसी तरफ। लेकिन जो व्यक्ति जीवन की सारी स्थिति को समझ कर, सारे ज्ञान को देख कर एक दिन इस सबको छोड़ देता है, इसके बाहर हट जाता है--वही संतत्व को उपलब्ध होता है। वही सिद्ध है।
तो मैं विश्वविद्यालयों को बंद कर देने के पक्ष में नहीं हूं; लेकिन चाहता हूंः उनके मुकाबले विकल्प होने चाहिए, जहां ज्ञान से थके हुए लोग प्रेम की शरण आ सकें।
जबीने-शौक को सजदों की आरजू है अभी
अभी ये सिलसिला-ए-इज्जो-नाज रहने दे
अभी नजर में फसूने-जमाल बाकी है
अभी चमन में बहारे-मजाज रहने दे
अभी कशिश रुखो-गेसू की मिट नहीं पाई
अभी हजूमे-तमाशा-ए-नाज रहने दे
अभी पसंद है जामो-सुबू की हर बंदिश रसूमे-मयकदा है, चश्मे-नाज रहने दे
अभी बसी है मेरे दिल में आरजू-ए-निशात रगों में मेरे अभी सोजो-साज रहने दे खलिश में दर्दे-मोहब्बत का लुत्फ बाकी है इलाजे-दर्द अभी चारासाज रहने दे
अभी सदा-ए-अनलहक नहीं उठी दिल से
मैं और तू का अभी इम्तियाज रहने दे
कमाले-फन है यही पर अभी मेरी खातिर
शिकस्ते-आईना ऐ आईनासाज रहने दे
इन पंक्तियों पर ध्यान करना--
जबीने-शौक को सजदों की आरजू है अभी
अभी ये सिलसिला-ए-इज्जो-नाज रहने दे
अभी प्रार्थना की इच्छा है। अभी पूजा की आकांक्षा है। अभी किसी देहली
पर झुकना चाहता हूं। तो अभी छीनो मत।
अभी नजर में फसूने-जमाल बाकी है
अभी चमन में बहारे-मजाज रहने दे
और अभी आंखें सौंदर्य को देखने के लिए प्यासी हैं, तो अभी वसंत को रहने दो। अभी वसंत को विदा मत करो।
अभी कशिश रुखो-गेसू की मिट नहीं पाई
अभी सुंदर चेहरे और सुंदर केश आकर्षक हैं।
अभी हजूमे-तमाशा-ए-नाज रहने दे
अभी यह तमाशा थोड़े दिन और रहने दो।
अभी पसंद है जामो-सुबू की हर बंदिश
रसूमे-मयकदा है, चश्मे-नाज रहने दे
अभी पीने-पिलाने में रस है, अभी यह मधुशाला खुली रहने दो। अभी बसी है मेरे दिल में आरजू-ए-निशात
रगों में मेरे अभी सोजो-साज रहने दे
अभी मेरे भीतर बजने दो संगीत।
अभी बसी है मेरे दिल में आरजू-ए-निशात
अभी आकांक्षा है। अभी मेरा संगीत छीन मत लो।
खलिश में दर्दे-मोहब्बत का लुत्फ बाकी है
और अभी मैंने प्रेम किया नहीं, अभी मोहब्बत नहीं की।
खलिश में दर्दे-मोहब्बत का लुत्फ बाकी है
इलाजे-दर्द अभी चारासाज रहने दे
तो अभी मेरे इस प्रेम की पीड़ा को, हे चिकित्सक, दूर न कर! अभी यह पीड़ा रहने दे।
अभी सदा-ए-अनलहक नहीं उठी दिल से
और अभी अनलहक का नाद, अहं ब्रह्मास्मि का उदघोष--जैसा मंसूर को हुआ, जैसे उपनिषद के ऋषियों को हुआ, जैसा बुद्ध-महावीर को हुआ--वैसा अभी मेरे भीतर नहीं उठ रहा है।

अभी सदा-ए-अनलहक नहीं उठी दिल से
मैं और तू का अभी इम्तियाज रहने दे
अभी इतनी दूरी रहने दो कि मैं मैं रहूं, तू तू रहे--और हमारे बीच प्रेम
का सेतु बन सके।
कमाले-फन है यही पर अभी मेरी खातिर
शिकस्ते-आईना ऐ आईनासाज रहने दे
मैं जानता हूं कि यही फन है, यही कमाल है कि टूटे हुए आईने को कोई इस तरह जोड़ दे कि पता भी न चले कि कभी टूटा था।
कमाले-फन है यही पर अभी मेरी खातिर
शिकस्ते-आईना ऐ आईनासाज रहने दे
अभी ये टुकड़े आईने के रहने दो, मेरी खातिर अभी इन्हें जोड़ो मत।
आदमी जहां है वहीं से सीख कर उठ सकता है। अनलहक आकाश से नहीं उतरती।
जब मैं और तू की व्यर्थता दिखाई पड़ जाती है--अनुभव से--तभी उठती है। कोई जबरदस्ती अनलहक नहीं कह सकता कि मैं ब्रह्म हूं, कि मैं ईश्वर हूं। कहोगे तो व्यर्थ होगा, झूठा होगा। तुम्हारी जबान लड़खड़ा जाएगी। कहोगे तो तुम्हारा हृदय साथ नहीं देगा, तुम्हारे वचन में बल नहीं होगा। कहोगे तो तुम्हारी आंखें गवाही नहीं देंगी। कहोगे तो साथ ही साथ तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व कहेगा कि गलत है।
नहीं, प्रतीक्षा करनी होगी। जो सहज घटता है, उसकी प्रतीक्षा।
आदमी को अगर ज्ञान की अभी आकांक्षा है तो उसे जाना ही होगा शास्त्रों में। अगर अभी ज्ञान पर भरोसा है तो उसे शब्दों में उलझना ही होगा; सिद्धांतों में पड़ना ही होगा। पड़-पड़ कर ही मुक्त होगा। अगर पंडित होने की थोड़ी सी भी रसवत्ता है भीतर, तो जाना ही होगा। जाओ, पंडित बनो। पंडित बन कर ही पाओगे--हाथ कुछ भी नहीं लगा।
तो मैं इस स्थान को कहता हूंः अविद्यापीठ; एंटी-युनिवर्सिटी। यहां हम कुछ सिखाते नहीं; जो सीख-सीख कर थक गए हैं और जो अब अनसीख में उतरना चाहते हैं, वहीं ले चलते हैं।
रमण से किसी ने पूछा कि मैं सीखने आया हूं आपके पास, मुझे कुछ शिक्षा दें!
रमण ने कहाः फिर तुम गलत जगह आ गए, तुम कहीं और जाओ; क्योंकि हम यहां सिखाते नहीं, भुलाते हैं। जिस दिन भूलने की तैयारी हो, आ जाना।
मेरा निमंत्रण भी उन्हीं को है जो भूलने के लिए तैयार हैं।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
सातवां प्रवचन

मैंने राम रतन धन पायो

मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, करि किरपा अपनायो।
जनम-जनम की पूंजी पाई, जग में समय खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन-दिन बधत सवायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तरि आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरखि-हरखि जस गायो।

नहिं भावे थारो देसलड़ो रंगरूड़ो।
थारां देसां में राणा साध नहीं छै, लोग बसैं सब कूड़ो।
गहना-गांठी राणा हम सब त्यागा, त्यागो कर रो चूड़ो।
काजल-टीकी हम सब त्यागा, त्याग्यो छै बांधन जूड़ो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो छै पूरो।

मेरा मन रामहि राम रटै रे।
राम नाम जप लीजै प्रानी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम-जनम के खत जु पुराने, नामहि लेत फटै रे।
कनक कटोरे इमरत भरियो, पीवत कौन नटै रे।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटै रे।

एक प्रसिद्ध डेनिश लोककथा है; डेनमार्क के बड़े विचारक और दार्शनिक सोरेन कीर्कगार्ड को बहुत प्यारी थी। कथा का सार-संक्षिप्त ऐसा हैः
एक महासम्राट--और प्रेम में पड़ गया एक साधारण युवती के। अति साधारण स्त्री और बड़ा सम्राट! अड़चन कुछ भी न थी। सम्राट आज्ञा दे--स्त्री भी प्रसन्न होगी, उसका परिवार भी आह्लादित होगा; यह तो उनका सौभाग्य होगा। आज्ञा भर की बात थी कि स्त्री उसकी हो जाएगी। लेकिन सम्राट विचार में पड़ा। विचार यह कि मेरे कहते ही यह युवती मेरी तो हो जाएगी, लेकिन मेरे और इसके बीच फासला इतना है कि यह कभी भूल न पाएगी कि मैं साधारण हूं और मेरा प्यारा महासम्राट है! यह दूरी मिटेगी कैसे? मैं कहूंगा तो विवाह कर लेगी। अनुगृहीत होगी, आनंदित होगी, अहोभाव से भरेगी, जीवन भर धन्यवाद करेगी; लेकिन प्रेम कैसे पैदा होगा? अनुग्रह का भाव ही तो प्रेम नहीं! धन्यवाद ही तो प्रेम नहीं! दूरी इतनी होगी कि प्रेम होगा कैसे? सेतु कैसे बनेगा? संबंध कैसे जुड़ेगा?
बहुत विचार में सम्राट पड़ा। कुछ भी करना तो होगा। राह तो खोजनी होगी। उसने जो राह खोजी, सोचने जैसी है। अंततः उसने निर्णय किया कि मैं सम्राट होना त्याग दूं; मैं सम्राट न रह जाऊं; मैं साधारण आदमी हो जाऊं। फिर कुछ फासला न रहेगा। फिर अनुग्रह की बात न होगी; फिर प्रेम की बात होगी।
लेकिन एक जोखिम थी और जोखिम बड़ी थी। जोखिम यह थी कि सारा देश तो मुझे पागल कहेगा ही। शायद ही कोई समझे इस बात को। वे सभी कहेंगेः स्त्री चाहिए थी, आज्ञा की जरूरत थी; एक क्या, हजार स्त्रियां तैयार थीं। इसके लिए राज्य छोड़ने की क्या जरूरत थी? लोग मूढ़ समझेंगे, पागल समझेंगे। लेकिन यह भी कोई बड़े खतरे की बात न थी। बड़ा खतरा यह था कि हो सकता है वह स्त्री भी यही समझे कि यह आदमी पागल है। और भी खतरा यह था, जोखिम यह थी कि हो सकता है वह स्त्री साम्राज्ञी होने का अवसर चूक गई, इस क्रोध में मुझसे विवाह करने को भी इनकार कर दे। ऐसी जोखिम थी।
फिर भी उस सम्राट ने जोखिम उठाई। उसने कहा कि प्रेम के लिए सब जोखिम उठानी जरूरी है। यह जोखिम भी उठानी जरूरी है कि राज्य भी जाए, प्रतिष्ठा भी जाए; और यह भी हो सकता है कि वह स्त्री भी जाए। यह सारी जोखिम उठानी जरूरी है, लेकिन प्रेम के लिए रास्ता बनाना आवश्यक है।

प्रेम के मार्ग पर कुछ भी खोना ज्यादा नहीं है। प्रेम के मार्ग पर सब खोया जा सकता है, क्योंकि प्रेम ऐसा अपूर्व धन है।
और यह तो कहानी एक सम्राट की एक साधारण स्त्री के प्रेम की है। जब कोई परमात्मा के प्रेम में पड़ता है, तब तो बात बिल्कुल उलटी हो जाती है। खोने को तो हमारे पास कुछ भी नहीं होता और पाने को सब कुछ होता है। सम्राट के पास खोने को सब कुछ था और पाना कुछ पक्का नहीं था। परमात्मा के साथ तो बात उलटी है। हमारे पास खोने को है क्या? ना-कुछ! और जोखिम तो कोई भी नहीं है। सब कुछ मिलने का द्वार खुलता है।
फिर भी लोग कदम नहीं उठा पाते हैं। फिर भी लोग इस यात्रा पर नहीं निकल पाते हैं। क्योंकि जो भी हमारे पास है--क्षुद्र ही सही, क्षणभंगुर ही सही-- हमने उसमें ही सब कुछ मान लिया है। वह हमारी मान्यता है। पद है, प्रतिष्ठा है, धन है, परिवार है, सुरक्षा है, सुविधा है--उसमें हमने सोच रखा है बहुत कुछ है। सोची हुई बात है, मानी हुई बात है; है कुछ भी नहीं। एक सपना है, जो हमने देखा है। सत्य से उसका कोई तालमेल नहीं है। और मौत सब छीन ही लेगी। कितना ही पकड़े रहो, एक दिन छोड़ ही देना होगा; लुट ही जाएगा यह सब। फिर भी परमात्मा के मार्ग पर हम, जहां सब मिलने को हो और कुछ भी खास छोड़ने को नहीं, वहां भी साहस नहीं कर पाते। हमारा बुद्धि-दौर्बल्य अपूर्व है!
मीरा ने सब छोड़ा तो सब पाया। सब छोड़ने वाले ही सब पाते हैं। रत्ती भर
भी बचाया तो उतनी ही अड़चन हो जाएगी।
रवींद्रनाथ की एक छोटी सी कविता है। एक भिखारी सुबह अपने घर से निकला भीख मांगने। पूर्णिमा का दिन था, कोई धर्मोत्सव था और उसे बड़ी आशा थीः आज बहुत मिलेगा। जैसा भिखारी करते हैं, अपने घर से जब चलने लगा तो झोली में उसने थोड़े से चावल के दाने डाल लिए थे। जब भिखारी मांगने जाता है तो अपनी थाली में थोड़े से पैसे खुद ही डाल लेता है। उससे देने वाले को सुविधा होती है। नहीं तो देने वाले को ऐसा लगता है कि इसको किसी ने तो दिया नहीं, तो मैं ही पहला नासमझ इसके चक्कर में पड़ रहा हूं। कोई और लोग दे चुके हैं, थाली में पैसे पड़े हैं, तो फिर इनकार करने में कठिनाई होती है, क्योंकि कुछ और लोग दया कर चुके; इतना कठोर तो मैं नहीं हूं कि एकदम इनकार ही कर दूं। तो सभी भिखारी इतनी होशियारी रखते हैं। वह उनके धंधे का नियम है; कुछ न कुछ लेकर चलते हैं घर से; अपना ही लेकर चलते हैं।
तो झोली में उसने थोड़े से चावल के दाने डाल लिए हैं। झोली बिल्कुल खाली हो तो कोई डालने को भी राजी नहीं होता; थोड़ी भरी हो तो कोई डालने को भी राजी होता है। आदमी भिखारी को थोड़े ही देते हैं--अपनी प्रतिष्ठा के लिए देते हैं; अपने अहंकार के लिए देते हैं।
जैसे ही भिखारी राह पर आया है, वह तो चकित हो गया। उसने देखा कि सम्राट
का रथ आ रहा है। सम्राट के द्वार से ही लौटा दिया जाता था, महल के भीतर, महल में तो प्रवेश का मौका ही नहीं था। सम्राट के सामने झोली फैलाने का तो सौभाग्य कभी नहीं मिला था। सोचाः आज धन्यभाग! आज तो भर जाऊंगा। अब शायद भीख मांगने की जरूरत भी न होगी। सम्राट चला आ रहा है; द्वार पर जाने की जरूरत नहीं है; मेरे ही द्वार पर जैसे आ गया है।
धूल उड़ाता हुआ रथ उसके पास ही आकर खड़ा हो गया। सम्राट रथ से नीचे उतरा,
तब तो भिखारी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। समझ भी न पाया कि अब क्या करूं! भूल ही गया कि झोली फैलाऊं। एक क्षण को ठिठक गया। और इसके पहले कि कुछ करता; सम्राट ने अपनी झोली उसके सामने फैला दी। और सम्राट ने कहाः क्षमा करना, ज्योतिषियों ने कहा है कि आज मैं सुबह-सुबह निकलूं रथ पर और जो पहला आदमी मिल जाए, उससे भीख मांगूं, तो इस राज्य पर आने वाला एक संकट टल सकता है, नहीं तो यह राज्य महासंकट में पड़ेगा। तुम ही पहले आदमी हो। मैं जानता हूं कि तुम भिखारी हो; तुम्हारी झोली सब कह रही है। तुमने सदा मांगा है, दिया कभी भी नहीं--यह भी मुझे पता है। देना तुम्हें बहुत कठिन पड़ेगा। लेकिन आज यह करना ही होगा, क्योंकि यह प्रश्न पूरे साम्राज्य का है। इनकार मत कर देना! कुछ भी दे देना, जो भी देना हो दे देना। एक चावल का दाना दोगे तो भी चलेगा।
भिखारी अपनी झोली में हाथ डालता है। कभी उसने दिया तो था ही नहीं। देने की तो कोई आदत ही न थी। देने का संस्कार ही न था। मांगा! मांगा! मांगा!

जन्मों-जन्मों का भिखारी था। मुट्ठी बांधता है और खोल लेता है। बांधता है और खोल लेता है। हिम्मत नहीं पड़ती। सम्राट कहता है कि अवसर चूका जाता है। यही तो मुहूर्त है; तुम इनकार तो न कर दोगे? देखो इनकार मत कर देना।
तब उसने बहुत हिम्मत करके एक चावल का दाना निकाला और सम्राट की झोली में डाल दिया। सम्राट चढ़ा रथ पर, स्वर्ण-रथ धूल उड़ाता हुआ चला गया। भिखारी धूल में दबा खड़ा रहा और सोचने लगाः यह भी खूब रही! सम्राट से कभी तो मिलना हुआ, मांगने का सौभाग्य था, वह भी गया। उसकी तो छोड़ो कि कुछ मिला नहीं, अपने पास का भी एक दाना गया।
उस दिन उसे दिन में बहुत दान मिला, लेकिन वह एक दाना खटकता रहा--दिन भर! ख्याल करना, मनुष्य का मन ऐसा हैः जो मिलता है उसकी हम चिंता नहीं लेते; जो नहीं मिला, या जो खो गया, उसकी फिकर में लगे रहते हैं। एक पैसा तुम्हारा गिर जाए तो दिन भर याद आती रहती है। जैसे तुम्हारा कभी एक दांत टूट जाता है तो जीभ वहीं-वहीं जाती है। ऐसे सदा से था, तब कभी न गई थी; आज टूट गया तो वहीं-वहीं जाती है। जो हैं उन पर नहीं जाती; जो नहीं है उस पर जाती है। ऐसा मनुष्य का मन है।
वह दिन भर मांगा भी, मिला भी बहुत; ऐसा कभी न मिला था--लेकिन इसमें उसे कुछ रस न था; उसे बार-बार वही सुबह की घटना याद आती। अपने हाथ से एक दाना देना पड़ा! एक तो अवसर मिला था कि मांग लेता, वह भी गया; उलटा अपने पास से भी कुछ गया! उदास लौटा। सांझ जब आया, पत्नी तो बहुत आनंदित हुईः इतनी झोली उसकी कभी न भरी थी; लबालब भरी थी। पत्नी तो बहुत आनंदित हुई, आह्लादित हुई। उसने कहाः धन्यभागी हैं हम, आज तो हमें खूब मिला!
उसने कहाः छोड़! तुझे क्या पता कि आज कितना हमने गंवाया है! एक तो सब कुछ मांग लेता सम्राट से, वह गया। उसने सारी कथा कही। और पास का एक दाना भी गया।
उदास मन उसने झोली उंडेली, और दोनों चकित खड़े रह गए। उन चावल के दानों में एक दाना सोने का हो गया था। तब वह छाती पीट कर रोने लगा। दिन भर तो रोया था उस दाने के लिए; अब छाती पीट कर रोने लगा कि यह तो बड़ी भूल हो गई! अगर मैंने सारे ही दाने सम्राट की झोली में डाल दिए होते, तो सारे ही दाने सोने के हो गए होते।
यह कविता प्रीतिपूर्ण है और बड़ी सूचक। जितना हम देते हैं, उतना ही सोना हो जाता है। जितना हम रोक लेते हैं, उतना ही मिट्टी हो जाता है। जो जितना रोकेगा उतना मिट्टी में जीएगा। जो जितना देगा उतना स्वर्णमय होता जाएगा। जो सब दे देता है, उसका सभी स्वर्णमय हो जाता है।
मीरा ने सब दे दिया। दिया तो राम रतन धन पाया। कुछ भी नहीं बचाया! कुछ
भी नहीं बचाया! यह दोष कोई भी नहीं दे सकेगा मीरा को कि कुछ भी बचाया। सब दे दिया।
सब देते ही क्रांति घटित होती है। उसके पहले क्रांति घटित ही नहीं होती। जरा सा भी बचाया तो उतना तुम्हारा परमात्मा पर संदेह है।
बचाने का मतलब क्या होता है? बचाने का मतलब होता हैः क्या भरोसा, कल देगा कि नहीं देगा! बचाने का मतलब होता हैः होशियारी से काम लो, पता नहीं परमात्मा है भी या नहीं!
मोहम्मद कहते थेः वही साज-संवार रखता है! वही फिकर लेता है! हम क्यों फिकर करें? तो दिन भर में जो भी मिलता था, सांझ बांट देते थे। रात बिल्कुल भिखारी होकर सो जाते थे। दूसरे दिन सुबह फिर कोई न कोई द्वार आ जाता। जब मरने के करीब आए और चिकित्सकों ने कह दिया कि अब बचेंगे नहीं, तो उनकी पत्नी ने सोचा कि आज की रात खतरनाक है; कभी आधी रात दवा-दारू की जरूरत पड़ सकती है। वैद्य को बुलाना पड़े! तो उसने पांच दीनार, पांच चांदी के रुपये छिपा कर रख लिए। और सब बांट दिया। यह कोई साधारण रात न थी। हम उस स्त्री को क्षमा भी कर सकेंगे। यह कठिन रात थी। और आधी रात अगर दवा की जरूरत पड़ी और पैसे की जरूरत पड़ी तो कहां से लाऊंगी! यह तो उसे भी पता था कि दूसरे दिन सुबह कोई न कोई ले आता है; इतने भक्त हैं मोहम्मद के। लेकिन आधी रात किसको खोजूंगी! तो पांच रुपये बचा कर रख लिए थे।
लेकिन मोहम्मद करवट बदलने लगे। बड़े बेचैन होने लगे। अंततः आधी रात उन्होंने पूछा कि मैं एक बात पूछना चाहता हूंः कुछ तूने आज बचाया तो नहीं

है? मेरी सांस अटकी सी लगती है। मेरे और परमात्मा के बीच आज कुछ बाधा मालूम होती है। ऐसी बाधा कभी नहीं थी।
पत्नी तो बहुत घबड़ा गई। सच कहना ही पड़ा। उसने कहाः मैंने पांच रुपये बचा लिए हैं, मुझे क्षमा करना।
मोहम्मद ने कहाः तू पागल जीवन भर मेरे साथ रह कर यह न समझ पाई! हम रोज बांटते रहे, कमी कभी हुई? और जो भर दुपहरी देता है, वह आधी रात क्यों नहीं दे सकता! उसके लिए क्या कठिनाई है? तू बाहर जाकर देख, तुझे पता चलेगा। एक भिखारी द्वार पर खड़ा है।
आधी रात! भिखारी!
वह बाहर गई और एक भिखारी द्वार पर खड़ा था। उसने कहाः मैं रास्ता भटक गया हूं। एक गांव जा रहा था, मुझे राह नहीं मिली। मुझे रास्ते में लूट भी लिया गया है। मुझे अगर पांच रुपये मिल जाएं तो मैं दूसरे गांव तक पहुंच जाऊं।
मोहम्मद ने कहाः देखा! वे पांच रुपये इसको दे दे जो तूने बचाए हैं।
वे पांच रुपये दे दिए गए। मोहम्मद ने चादर ओढ़ ली और सांस छोड़ दी। परमात्मा और उनके बीच कोई बाधा न रही। वह जरा सा संदेह पत्नी के मन में, वह भी बाधा बन गया।
जब तुम बचाते हो तो उसका अर्थ होता हैः संदेह। तुम कहते होः अपने पर
ही भरोसा किया जा सकता है; परमात्मा पर क्या भरोसा?
भक्त का अर्थ होता हैः उसका सारा भरोसा परमात्मा पर है। उसकी श्रद्धा पूर्ण है। उसमें रत्ती भर शक-शुबहा नहीं है।
भक्त का अर्थ होता हैः उसे अपने अहंकार पर श्रद्धा नहीं है; अब परमात्मा के अस्तित्व पर श्रद्धा है। जिनको परमात्मा पर श्रद्धा नहीं होती है, उनको अपने अहंकार पर श्रद्धा होती है।
क्षुद्र से अहंकार पर कितना तुम्हारा भरोसा है! पानी के बबूले पर कितना तुम्हारा भरोसा है! और जिससे विराट चल रहा है, और विराट पैदा हुआ है, और जिसमें विराट लीन हो जाएगा--उसको मानने में तुम कितने प्रश्न उठाते हो! कितने तर्क खड़े करते हो! और इस अहंकार को मानने में तुमने एक भी तर्क नहीं उठाया। तुमने कभी पूछा ही नहीं कि यह "मैं", यह अहंकार है भी? क्योंकि जिन्होंने पूछा उन्होंने पाया कि नहीं है। जिन्होंने खोजा उन्होंने पाया कि नहीं है।
लेकिन परमात्मा को मानने में तुम हजार प्रश्न खड़े करते हो। क्यों? क्योंकि तुम वस्तुतः परमात्मा को मानना नहीं चाहते। तुम अपने को मानना चाहते हो।
दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं। अपने को ही पकड़े हुए लोग--यही दुखी लोग हैं। और जिन्होंने परमात्मा के चरण पकड़ लिए--यही सुखी लोग हैं।
मैंने राम रतन धन पायो।
मीरा कहती हैः मैंने परम धन पा लिया; परम संपदा पा ली। जिसको पा लेने
के बाद फिर कुछ और पाने को नहीं बचता--ऐसा राम रतन पा लिया।
पाया कैसे? सब खोया तब पाया। कुछ भी नहीं बचाया अपने भीतर। शून्य हुई
तो पूर्ण उतरा। मिटी तो परमात्मा का आगमन हुआ।
प्रेम की आग में जलोगे, मिट जाओगे, राख हो जाओगे--तभी उसका आगमन होता है। तुम्हारी राख में ही तुम्हारे भीतर उसका अंकुरण होता है। तुम जब तक हो तब तक बाधा है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि हम क्या करें? कौन सी बाधाएं हैं, जिन्हें हम अलग करें, ताकि परमात्मा मिल जाए?
मैं उनसे कहता हूंः तुम्हारे अतिरिक्त कोई और बाधा नहीं है। तुम हट जाओ बीच से। तुम अपने और परमात्मा के बीच मत खड़े होओ। तुम अपने को विदा दे दो। तुम अपने को नमस्कार कर लो सदा के लिए। और तुम पाओगेः कोई भी बाधा नहीं है।
मैंने राम रतन धन पायो।
धन तो वही है जो कभी खोए न। जिसको हम धन कहते हैं, वह धन का धोखा है। वह केवल मान्यता है। धन तो वही है जो कभी न खोए। धन तो वही है जिसे मौत भी न छीन सके।

ज्ञानियों ने संपत्ति की परिभाषा यही की हैः जिसे मौत न छीन सके।
जिसे मौत छीन ले, वह वस्तुतः विपत्ति है। तुमने उसको संपत्ति समझा है; वह तुम्हारी मान्यता है। मान्यता टूटेगी और तुम बड़े विषाद में गिरोगे। संपत्ति, संपदा उसी तरह के शब्द हैं--जैसे सम्यकत्व, समाधि, संबोधि।
वह जो "सम" प्रत्यय लगा है, बड़ा बहुमूल्य है। वही समाधि में है, वही संबोधि में है, वही सम्यकत्व में है, वही संबुद्धत्व में है। "सम"--जो सदा एक सा रहे; जिसमें कभी लहर न उठे, कोई कंपन न हो; जो शाश्वत हो; जिसे कोई चीज तरंगित न कर सके; जिस पर बाहर का कोई प्रभाव न हो। तूफान आएं और जाएं--और तुम्हारे भीतर "समता" बनी रहे। "समता" भी उसी धारा का एक शब्द है। तुम्हारे भीतर समता बनी रहे--दुख आए, सुख आए; सफलता, विफलता। तुम्हारे भीतर जो जीवन-ज्योति है, वह कंपे भी नहीं; तूफान, आंधियां, हवाएं, अंधड़--तुम्हारी ज्योति वैसी ही जलती रहे--अकंप! समाधि! संबोधि!
और वैसी ही दशा का नाम हैः संपदा, संपत्ति।
संपत्ति तुम्हारे भीतर है और तुम उसे बाहर खोज रहे हो। इसलिए विपत्ति में उलझे हो। जो भीतर है उसे बाहर खोजोगे तो दुख पाओगे ही, क्योंकि उसे तो कभी पा ही न सकोगे जिसे खोज रहे हो। कुछ का कुछ मिलता रहेगा। खोजोगे कुछ, पाओगे कुछ। दौड़ोगे किसी और चीज को पाने को, हाथ में आएगी कोई और चीज। और हर बार विषाद आएगा। और हर बार फिर... लेकिन समझ नहीं आती कि बाहर तो जन्मों- जन्मों से दौड़ कर देख लिया, धन मिला नहीं; अब थोड़ा भीतर भी तलाश कर लें। यह भीतर का जगत भी अनखोजा क्यों रह जाए?
और जिसने भी भीतर झांक कर देखा, वह हंसे बिना नहीं रहा है। हंसे बिना नहीं रहा, क्योंकि बड़ा अजीब मामला हैः जिसे हम खोज रहे हैं वह हमारे भीतर मौजूद ही था। हम नाहक परेशान हो रहे थे। हम व्यर्थ ही दौड़-धाप कर रहे थे। राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सदगुरु, करि किरपा अपनायो।
मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक! यह ऐसा कुछ है भीतर, यह राम रतन, कि इसका कोई मूल्य भी हम चुकाएं, इसकी संभावना नहीं है। क्योंकि हमारे पास है ही क्या देने को? कूड़ा-कर्कट लिए बैठे हैं। अमोलक है। मूल्य इसका चुकाया नहीं जा सकता। यह मूल्य में आंका नहीं जा सकता, कूता नहीं जा सकता; किसी तराजू पर तौला नहीं जा सकता; कोई कसौटी पर कसा नहीं जा सकता। यह परम मूल्य है; बाकी सब मूल्य छोटे पड़ जाते हैं।
अब राम रतन की कितनी कीमत आंकोगे? करोड़ कि दस करोड़, कि अरब कि दस अरब,
कि शंख कि महा शंख? कोई भी आंकड़ा काम नहीं पड़ेगा। सब आंकड़े छोटे पड़ जाएंगे।
यह राम रतन आत्यंतिक मूल्य है; इसलिए हमारे कोई मूल्य इसके काम नहीं आ सकते। फिर भी हम राम रतन नहीं खोजते। हम बड़े डरे हैं कि कहीं राम रतन के खोजने में हमारे पास जो संपदा हम सोचते हैं कि है, खोना न पड़े, कहीं खो न जाए!
क्षुद्र बातों पर लोग अटके हुए हैं। बड़ी क्षुद्र बातें हैं! विचार करोगे तो हंसी आएगी। किसी का मोह मकान से है, किसी का मोह दुकान से है; किसी का पति से, किसी का पत्नी से; किसी का बेटे से, किसी का मां से है। सब छिन जाने हैं। यह मकान तुम्हारा कितनी देर तक रहेगा? यह सराय है; आज नहीं कल खाली करनी होगी। तुम नहीं थे तब भी यह मकान था; तुम नहीं होओगे तब भी यह मकान होगा। कोई और इसके वासी थे; फिर कोई और इसके वासी हो जाएंगे। तुम दो दिन के मेहमान हो। बस रैनबसेरा है। मगर मोह पकड़ लेता है। हम दावेदार हो जाते हैं।
जो आदमी दावा करता है इस संसार में कि यह मेरा है--वही आदमी अज्ञानी है। इस संसार में हमारा कोई दावा सच नहीं है। अगर दावा ही हो सकता है तो एक ही दावा है कि राम मेरा है; कि राम रतन मेरा है। उस दावे को छोड़ कर हम सब दावे करते हैं। क्यों? क्योंकि और सब दावों में हम बच सकते हैं; यह जो राम रतन का दावा है, इसमें हम खो जाते हैं।
मेरा अपना निरीक्षण ऐसा है कि अगर अहंकार बचता हो तो लोग दुखी रहने को
भी तैयार हैं। और अगर सुख भी मिलता हो अहंकार खोने पर, तो तैयार नहीं हैं।

कुछ दिन पहले एक मित्र ने आकर कहा कि बड़ा आनंद आता है जब यहां आ जाता हूं। नाच लेता हूं, तो जैसे जनम-जनम की नाचने की आकांक्षा तृप्त हो जाती है। मगर घर जाकर नहीं नाच पाता। घर तो मैं पता ही नहीं चलने देता किसी को कि पूना में जाकर मैं नाचता हूं। क्योंकि गांव में लोगों को पता चल जाए तो लोग समझेंगे पागल है।
तो मैंने उनसे पूछा कि लोगों का यह समझना कि तुम पागल नहीं हो, यह ज्यादा मूल्यवान है? कि ध्यान के नृत्य में जो आनंद मिलता है, वह ज्यादा मूल्यवान है?
उन्होंने कहाः इसमें क्या मामला है कहने का! मूल्यवान तो वही है जो ध्यान के नृत्य में मिलता है।
तो फिर मैंने कहाः मूल्यवान को छोड़ना और मूल्यहीन को पकड़ना, इसमें कौन सी बुद्धिमानी है? और लोग अगर पागल समझेंगे तो हर्ज क्या है? अहंकार को हर्ज है।
उन्होंने कहा कि यह तो बहुत मुश्किल बात है। मैं सरकारी अधिकारी हूं; प्रतिष्ठा है; लोग सम्मान करते हैं। सब प्रतिष्ठा उखड़ जाएगी! आप भी कैसी बात कह रहे हैं!
प्रतिष्ठा का मतलब क्या होता है? एक अहंकार है। गांव के लोग मानते हैं
कि बड़े बुद्धिमान हो। यही लोग मानने लगेंगे कि यह आदमी काम से गया! इस आदमी की बुद्धि गई! अब यह हुआ निर्बुद्धि!
अहंकार ही खोएगा न! दूसरे क्या मानते हैं, यही तो हमारा अहंकार है। तुम अक्सर अपने जानने के विपरीत भी लोगों के मानने को पकड़े रहते हो! मैंने कहाः तुम्हें न मिलता होता आनंद ध्यान में, न मिलता होता आनंद नृत्य में, तब एक बात थी। तुम कहते हो कि मिलता है और भागा आ जाता हूं, दो-तीन महीने के बाद आना ही पड़ता है; नहीं आता हूं तो बड़ी कमी लगने लगती है; दस-पांच दिन रह कर डूब लेता हूं तो तीन-चार महीने तक ताजगी बनी रहती है। मगर गांव में जाकर मैं पता भी नहीं बताता।
सच तो यह है--उन्होंने कहा--आपसे क्या छिपाना, कि मैं यह अभी तक किसी को बताया ही नहीं कि पूना जाता हूं।
पूना की ऐसी बदनामी!
छुपा-छुपा आता हूं, छुपा-छुपा चला जाता हूं। पूना में भी सरकारी आफिसर हैं--वे कहते हैं--मुझे जानते हैं, उनको भी पता नहीं चलने देता कि मैं यहां आया।
ऐसे क्षुद्र से कारण होते हैं। और क्षुद्र के लिए विराट खोता चला जाता है।
मीरा ने राम रतन पाया, क्योंकि मीरा ने बड़ी हिम्मत की। राजघर से थी, स्त्री थी, प्रतिष्ठित थी। नाचने लगी गांव-गांव। खो दी सब लोकलाज, मान-मर्यादा। मस्त हो उठी। और जब मस्त हुई तो फिर जरा संकोच न लिया; फिर क्षुद्र में न पड़ी। विराट से जो गठबंधन बांधा तो पूरा बांधा। ऐसी मिटी कि कुछ बचाया नहीं। तब राम रतन पाया।
तुम भी पा सकते हो। मिटने की तैयारी दिखानी पड़ेगी। उतनी कीमत तो चुकानी ही पड़ेगी।
तुमने कहानी समझी न! सम्राट को प्रेम करना पड़ा एक साधारण स्त्री से तो साधारण हो जाना पड़ा; सारा राज्य छोड़ देना पड़ा। और तुम तो परमात्मा से प्रेम करने चले हो, फिर भी कुछ छोड़ने की इच्छा नहीं है। सम्राट ने एक साधारण स्त्री से प्रेम किया तो साधारण स्त्री जैसा होना पड़ा; क्योंकि प्रेम तभी संभव है। तुम अगर परमात्मा से प्रेम करने चले हो, तो परमात्मा जैसा होना पड़ेगा, तो ही प्रेम संभव है।
परमात्मा जैसा होने का अर्थ यह होता है कि न कोई चिंता, न कोई फिकर; न
कल आने वाला, न कल जो बीत गया। परमात्मा तो अभी और यहां है; न उसका कोई अतीत है, न उसका कोई भविष्य है। परमात्मा शांत, चैतन्य की, आनंद की एक दशा है-- सच्चिदानंद है। तुम्हें भी इस क्षण में सब भूल जाना पड़ेगा। और एक बार तुम्हारे हाथ में सूत्र आ जाए सब भूल जाने का, तो तुम्हारे हाथ में कुंजी है; तुम जब चाहो तब उसका द्वार खोल लो। तुम जब चाहो तब, जहां चाहो वहां उसके मंदिर में प्रविष्ट हो जाओ।

यह राम रतन तुम्हारा ही है। तुम जब तक अटके हो क्षुद्र बातों में, अटके रहो। तुम जिस दिन तय करोगे, उस दिन कोई रोक नहीं सकता। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हें किसी ने नहीं रोका है। और तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हें कोई रोक भी नहीं सकता। अगर बाधा हो तो तुम हो।
लेकिन लोग अक्सर ऐसा समझते हैं कि क्या करें, दूसरे लोग रोक रहे हैं।
बात झूठी है। मीरा को नहीं रोक सके तो तुम्हें क्या रोकेंगे! किसी को कभी नहीं रोक सके तो तुम्हें क्यों रोकेंगे! लेकिन ये बहाने हैं। तुम बहाने खोज लेते हो। और बहाने ऐसे खोज लेते हो कि बड़े सुंदर मालूम होते हैं। मगर फिर वस्तु अमोलक कभी भी न पा सकोगे।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु...
भक्ति के मार्ग में सतगुरु और परमात्मा में कोई भेद नहीं है, सतगुरु
और परमप्रिय में कोई भेद नहीं है। सतगुरु उसी प्यारे का प्रतीक है। जैसे सूरज की एक किरण आती है तुम्हारे अंधेरे घर में, सूरज तो पूरा आना भी चाहे तो नहीं आ सकता। और आ भी जाए अचानक तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी। तुम झेल न पाओगे। तुम्हारी आंखें अंधी हो जाएंगी। सूरज तुम्हें जला कर भस्म कर देगा। सूरज को तुम न झेल सकोगे। सूरज की तरफ तो टकटकी लगा कर भी देखना मुश्किल है; आंख अंधी हो जाएगी। और सूरज बहुत दूर है। आठ मिनट लगते हैं सूरज से रोशनी के आने में जमीन तक। आठ मिनट हमें छोटा समय मालूम पड़ता है; किरण के लिए छोटा नहीं है, क्योंकि किरण की गति बड़ी तीव्र है। एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड। तो आठ मिनट में किरण बड़ी यात्रा करती है। प्रति सेकेंड एक लाख छियासी हजार मील। तो साठ का गुणा करना इसमें, फिर आठ का गुणा करना उसमें। बड़ी लंबी संख्या बनेगी। उतने मील दूर है सूरज। फिर भी सूरज की तरफ आंख करो तो जलने लगेगी। घबड़ा जाओगे। अंधेरा छाने लगेगा। तुम्हारे घर में सूरज आ जाए तो तुम बचोगे कहां! जल कर खाक हो जाओगे। किरण आती है। मगर किरण काफी है। किरण को पकड़ लिया, किरण को आत्मसात कर लिया, तो तुम्हारी क्षमता बढ़ती जाएगी। फिर किरण के सहारे ही किसी दिन सूरज में भी पहुंच जाओगे।
सतगुरु यानी किरण। वह परमात्मा की खबर है। परमात्मा तो चुप है; सतगुरु बोलता है। वह परमात्मा की तरफ से बोलता है। वह परमात्मा का प्रतिनिधि है। इसलिए मुसलमानों ने ठीक शब्द चुना है--पैगंबर। उसका मतलब होता हैः पैगाम लाने वाला, संदेशवाहक। वह अवतार से भी प्यारा शब्द है। वह तीर्थंकर से भी प्यारा शब्द है। संदेशवाहक! खबर ला रहा है।
सतगुरु को पकड़ना होगा। वहां से यात्रा शुरू होती है, सतगुरु को पचाते- पचाते एक दिन तुम पाओगेः कब गुरु ब्रह्मा हो गया, पता नहीं चला। गुरुर्ब्रह्मा! कब हो जाता है गुरु ब्रह्मा, पता नहीं चलता भक्त को। एक दिन अचानक पाता है कि जिसको मनुष्य की तरह देखा था, उसमें परमात्मा अवतरित हुआ। जिसको मनुष्य की तरह हाथ में हाथ जिसके दिया था, वह अब मनुष्य नहीं है। प्रेम धीरे-धीरे प्रवेश करता है और उसके अति मानवीय रूप को देखना शुरू कर देता है।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, करि किरपा अपनायो।
और मीरा कहती है कि मेरी तो कोई पात्रता न थी, फिर भी तुमने अपना लिया; अपना बना लिया। मुझ अपात्र को भी!
भक्त की यह भाव-दशा सदा बनी रहती है कि मैं अपात्र हूं। यह उसकी अनिवार्य लक्षणा है। ज्ञानी को तो कभी-कभी भ्रम पैदा होते हैं कि मैं पात्र हूं; त्यागी को भ्रम पैदा होते हैं कि मैं पात्र हूं; तपस्वी को भ्रम पैदा होते हैं कि मैं पात्र हूं--मैंने इतना किया, इतना किया! वह खाते-बही रखता है; हिसाब बना कर तैयार रखता है कि दावादार; कभी अगर मौका मिला अदालत में तो दावा करेगा। लेकिन भक्त को यह बात सदा बनी रहती है कि मैं अपात्र हूं। जितना मिलता है भक्त को, उतना ही भक्त को यह लगने लगता है कि मैं अपात्र हूं। मगर जितना तुम्हें यह पता चलता है कि मैं अपात्र हूं, उतने ही तुम पात्र हो जाते हो। क्योंकि अपात्र होने का अर्थ हैः अहंकार जा रहा है। अहंकार गया। पात्रता का दावा तो अहंकार का दावा है।
तुझको मालूम भी है कितने जनम बीत गए,
बादा-ए-तल्खि-ए-अय्याम को पीते-पीते,

तिश्नगी फिर भी तेरी कम नहीं होने पाई, आज पीने का सलीका मैं सिखाता हूं तुझे, मय तो मय पुर्दे-तहे-जाम खुशी से पी जा, डाल दे फिर मेरी आंखों में तू अपनी आंखें, इनमें पा जाएगा तू राजे-शिकस्ते-शीशा, प्यास बुझ जाएगी सब तेरी हमेशा के लिए, जुग के जुग बीत गए, तुझको नहीं इसकी खबर, आम दोरफ्ता का है सिलसिला कब से जारी,
आज चलने का तरीका मैं बताता हूं तुझे,
दे मेरे हाथ में हाथ और इसी राह पर चल,
भूल जा रंजे-सफर, छोड़ दे सब फिक्रे-मयाल,
खौफे-गुमगश्तगी-ओ-दूरिए-मंजिल का ख्याल,
इश्क का पहला कदम ही है नवेदे-मंजिल।
गुरु करता क्या है? एक संदेश! तुम्हारे भीतर जगाता एक तरन्नुम, एक गीत! छेड़ता तुम्हारी हृदय-वीणा को। जहां कभी स्वर न उठे थे, वहां स्वर उठाता। जहां तुम अपने भीतर कभी न गए थे, वहां तुम्हें ले चलता। तुम्हें तुमसे परिचित कराता--तुम्हारी संभावनाओं से परिचित कराता। तुम्हारे भीतर जो बीज की तरह पड़ा है, तुम्हें याद दिलाता, कि इसके वृक्ष बन सकते हैं, इसमें फूल खिल सकते हैं। तुम्हारे भीतर जो केवल संभावना है, उसे वास्तविक बनाने का मार्ग बताता।
तुझको मालूम भी है कितने जनम बीत गए,
गुरु जब मिलता है तो तुम्हें झकझोरता है और कहता हैः
तुझको मालूम भी है कितने जनम बीत गए,
बादा-ए-तल्खि-ए-अय्याम को पीते-पीते,
इन क्षुद्र-क्षुद्र सी चीजों में उलझे-उलझे, गटरों का पानी पीते-पीते,
इन व्यर्थ और क्षणभंगुर में भटकते-भटकते--कितने जनम बीत गए!
तुझको मालूम भी है कितने जनम बीत गए,
कितनी लंबी यात्रा रही है! तुम कितनी बार आए, कितनी बार गए हो! ऐसे ही
इस बार भी जाना है? गुरु झकझोरता है। वह कहता हैः अब तो चौंको! अब तो जागो! बहुत देर वैसे ही हो चुकी है!
तुझको मालूम भी है कितने जनम बीत गए,
बादा-ए-तल्खि-ए-अय्याम को पीते-पीते,
ये क्षुद्र सी शराबें ही पीते रहोगे? ये गंदी मधुशालाओं में ही भटकते रहोगे?
तिश्नगी फिर भी तेरी कम नहीं होने पाई,
और प्यास तुम्हारी कभी बुझी नहीं, बड़े अंधे हो! बड़ा चमत्कार है, दौड़ते जाते हो, दौड़ते जाते हो--कितने घाट, कितने कुओं का पानी पीया! और... तिश्नगी फिर भी तेरी कम नहीं होने पाई,
आज पीने का सलीका मैं सिखाता हूं तुझे,
किसी गुरु के साथ राजी हो जाओगे... । गुरु का अर्थ हैः जो तुम्हारे जैसा है और फिर भी तुम जैसा नहीं; जो ठीक तुम जैसा है और फिर भी तुम जैसा नहीं; जिसमें कुछ थोड़ा सा तुमसे ज्यादा है, तुमसे आगे का है; जिसका एक पैर जमीन पर है और एक पैर आकाश में है; जो बाहर से तुम्हारे जैसा है और भीतर से बिल्कुल तुम्हारे जैसा नहीं है; बाहर से जो तुम्हारे जैसा है और भीतर से वैसा है जैसा तुम कभी हो सकते हो; जो तुम्हारी संभावना को अपने भीतर सत्य बना लिया है।
तिश्नगी फिर भी तेरी कम नहीं होने पाई,
जरा प्यास तो देखो! जरा अपने कंठ में जलती आग तो देखो! कितने घाट, कितने कुएं, कितनी वासनाएं, कितनी तृष्णाएं--और प्यास जरा भी बुझी नहीं है। प्यास वैसी की वैसी है। सच तो यह है कि प्यास बढ़ती चली जाती है; जितना पीते हो उतनी बढ़ती चली जाती है। तो तुम जो पीते हो, यह जल है? यह जल नहीं हो सकता। यह तो ऐसे है जैसे कोई आग में घी को डालता जाता है, सोचता है आग को बुझा रहा हूं, और आग और भभकती है।
तिश्नगी फिर भी तेरी कम नहीं होने पाई,

आज पीने का सलीका मैं सिखाता हूं तुझे,
तो सदगुरु कहता हैः आज मैं तुझे तरीका सिखाता हूं पीने का--कैसे तेरी प्यास बुझेगी!
जीसस एक गांव पर रुके, एक कुएं पर रुके और उन्होंने एक स्त्री जो पानी
भर रही थी, उससे कहा कि मुझे पानी पिला दे; मैं थका-मांदा हूं।
उस स्त्री ने देखा, उनके वस्त्र देखे, उसने कहाः क्षमा करें, मैं अति नीच कुल की हूं। मेरा छुआ पानी गांव में कोई पीता नहीं। आप अजनबी हैं; अच्छे कुल के मालूम होते हैं, शायद आपको पता न हो। इसलिए मैं निवेदन कर दूं कि मेरा छुआ पानी कोई पीता नहीं।
जीसस ने कहाः तू फिकर छोड़। तू मुझे अपना पानी पिला, ताकि मैं तुझे अपना पानी पिला सकूं।
वह स्त्री तो कुछ समझी नहीं। उसने कहाः आप किस पानी की बात कर रहे हैं? जीसस ने कहाः एक पानी मेरे पास है; अगर तू पी ले तो प्यास सदा के लिए बुझ जाए। तेरे पास पानी है जो मेरी देह की प्यास बुझा दे; और मेरे पास पानी है जो तेरी आत्मा की प्यास बुझा दे। यह सौदा महंगा नहीं है, कर ले।
और कहते हैं, वह स्त्री मस्त हो गई जीसस की आंखों में झांक कर। वह स्त्री इतनी मस्त हो गई, उसने जीसस से कहाः तुम रुको, चले मत जाना। मैं जरा गांव के लोगों को भी खबर कर दूं, कुछ थोड़ा वे भी पी लें। उसने गांव के लोगों से जाकर कहा कि एक आदमी कुएं पर आया है, ऐसा आदमी मैंने कभी देखा नहीं। मैंने बहुत वचन सुने हैं, मगर ऐसा वचन कभी किसी ने बोला नहीं। उसने एक क्षण में मुझे कुछ झलक दे दी। उसकी आंखों में झांक कर मुझे उस पर भरोसा आ गया है।
सतगुरु का अर्थ होता हैः किसी की आंख में झांक कर तुम्हें भरोसा आ जाए; किसी की आंख में झांको और अपना घर मिल जाए; किसी की आंख में झांको और तुम्हारे भीतर कुछ कहने लगे कि हां, बस आ गया मुकाम, अब यहां सब छोड़ दें। तिश्नगी फिर भी तेरी कम नहीं होने पाई,
आज पीने का सलीका मैं सिखाता हूं तुझे,
मय तो मय पुर्दे-तहे-जाम खुशी से पी जा,
डाल दे फिर मेरी आंखों में तू अपनी आंखें,
इनमें पा जाएगा तू राजे-शिकस्ते-शीशा,
प्यास बुझ जाएगी सब तेरी हमेशा के लिए,
जुग के जुग बीत गए, तुझको नहीं इसकी खबर,
आम दोरफ्ता का है सिलसिला कब से जारी,
आज चलने का तरीका मैं बताता हूं तुझे,
दे मेरे हाथ में हाथ और इसी राह पर चल,
तुम भी चले हो, अपनी तरफ से बहुत चले; लेकिन तुम्हारी सब चाल बाहर की तरफ ले जाती है। तुम्हारे हर कदम बाहर की तरफ पड़ते हैं। तुम्हें भीतर की तरफ चलने की बात ही भूल गई है, विस्मृत हो गई है। तुमने सुध खो दी। तुम सुन भी लेते हो जब कोई कहता है कि भीतर जाओ, मगर इससे कुछ अर्थ प्रकट नहीं होता। तुम सुन भी लेते हो कि भीतर जाओ; मगर कैसे जाओ, कहां जाओ, यह कहां है भीतर! आंख भी बंद करके बैठते हो, तो भी अपने को बाहर में पाते हो। कान भी रूंध लेते हो, तो भी अपने को बाहर पाते हो। गुफा में चले जाते हो जंगल की, तो भी अपने को बाजार में पाते हो। क्योंकि मन तो वहीं, मन तो वहीं भागा रहता है जहां सदा से भागा रहा है। आंख बंद कर ली तो भी वही मित्र, वही प्रियजन, वही शत्रु, उन्हीं की तस्वीरें, वे ही इरादे; वे ही वासनाएं; वे ही आकांक्षाएं--सब खड़ी हो जाती हैं।
आज चलने का तरीका मैं बताता हूं तुझे,
दे मेरे हाथ में हाथ और इसी राह पर चल,
यह हाथ में हाथ देना जरूरी है। यह आंख में आंख देना जरूरी है।
गुरु से दोस्ती खतरनाक सौदा है, जोखिम है। क्योंकि वह तुम्हें अनजान रास्तों पर ले जाएगा, जिन पर तुम कभी नहीं गए। जोखिम तो है ही। इसलिए मैंने कल श्रद्धा की परिभाषा में तुमसे कहा--जिसमें पागल होने का साहस है। जो कहता है--समझदार रह कर बहुत दिन देख लिया, अब थोड़ा समझदारी को छोड़ कर भी देखें। समझदारी से चल कर बहुत दिन देख लिया; अब जरा समझदारी से मुक्त होकर

भी चलें। इन आंखों पर बहुत दिन भरोसा कर लिया; अब किन्हीं और आंखों से देखें। बुद्धि की बहुत दिन मानी; अब जरा हृदय की भी सुनें।
और बुद्धि कहती हैः हृदय अंधा है। बुद्धि कहती हैः प्रेम अंधा है। बुद्धि कहती हैः श्रद्धा अंधी है। बुद्धि कहती हैः इसमें उलझना मत। यह तुम्हें गड्ढे में ले जाएगी।
और मजा यह है कि बुद्धि तुम्हें सदा गड्ढे में ले गई। तुम्हारे सारे जीवन का अनुभव यही है, सदा गड्ढे में ले गई। फिर भी बुद्धि का जाल बड़ा अदभुत है; तर्क बड़ा होशियार है। हर बार गड्ढे में गिरा कर वह कहती हैः इस बार चलो भूल हो गई; अगली बार सब ठीक हो जाएगा। वह आगे देखते हो, फिर मरूद्यान! फिर मृग-मरीचिका! ऐसे बुद्धि तुम्हें चलाए जाती है।
बुद्धि से जो थक गया है, वही सदगुरु का हाथ पकड़ सकता है। जो अपने से थक गया है, वही सदगुरु का हाथ पकड़ सकता है। जो अभी अपने से नहीं थका है, वह कैसे सदगुरु का हाथ पकड़ेगा! उसे तो अभी ख्याल है कि मैं कर लूंगा; मैं खुद ही कर लूंगा।
मुझसे, कभी-कभी लोग आ जाते हैं, वे पूछते हैं कि क्या हम खुद ही नहीं पा सकते?
मैं कहता हूंः यह भी पूछने के लिए तुम मेरे पास आए हो! यह भी तुम खुद न सोच सके! और क्या तुम खुद सोच सकोगे? खुद पा सकते हो तो मजे से पा लो। लेकिन इसमें यह जो खुद है, यह अहंकार ही तो अड़चन है। आदमी झुकना भी नहीं चाहता। गुरु का हाथ पकड़ना हो तो थोड़ा झुकना पड़े। गुरु की आंख में झांकना हो तो थोड़ा झुकना पड़े। बिना झुके तो कोई उपाय नहीं।
आज चलने का तरीका मैं बताता हूं तुझे,
दे मेरे हाथ में हाथ और इसी राह पर चल,
भूल जा रंजे-सफर, छोड़ दे सब फिक्रे-मयाल,
एक बार सदगुरु का साथ बना तो फिर तुम छोड़ सकते हो सारी फिकर यात्रा की--कि क्या होगा, क्या नहीं होगा!
भूल जा रंजे-सफर, छोड़ दे सब फिक्रे-मयाल,
और परिणाम की चिंता भी छोड़ी जा सकती है।
खौफे-गुमगश्तगी...
और राह भटक तो न जाएगी, यह विचार भी त्यागा जा सकता है।
... ओ-दूरिए-मंजिल का ख्याल,
और मंजिल पर कब पहुंचेंगे, नहीं पहुंचेंगे--यह बात भी छोड़ी जा सकती है।
एक बार किसी सदगुरु से प्रेम लग जाए तो कौन फिकर करता है मंजिल की! कौन फिकर करता है कल की! आज इतना तृप्तिदायी और अभी इतना आनंदपूर्ण, यह क्षण इतना भरा-पूरा, कि कौन चिंता करता है कल की!
इश्क का पहला कदम ही है नवेदे-मंजिल।
और प्रेम का पहला कदम ही मंजिल का शुभ संकेत है। मीरा ने वह प्रेम का कदम उठाया।
मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, करि किरपा अपनायो।
और ध्यान रखना, गुरु का अपनाना तुम्हारी किसी गुणवत्ता पर निर्भर नहीं है--कि तुम बहुत बुद्धिमान हो, कि बहुत सुशिक्षित हो, कि बहुत सुसंस्कृत हो--इस सबसे कोई संबंध नहीं है। एक ही है वहां पात्रता--बड़ी उलटी सी बात--कि तुम्हें अपनी अपात्रता का बोध है, बस। फिर कृपा बरसनी शुरू हो जाती है। और जैसे ही तुमने जाना कि मैं अपात्र हूं, मेरे किए कुछ नहीं होता, मेरे किए कभी कुछ नहीं हुआ--चीजें होनी शुरू हो जाती हैं।
नूर का अपने खुद अमीन है तू
जानता हूं बहुत हसीन है तू
है ये लेकिन कसूर क्या मेरा
जो नहीं मुझको ताबे-नज्जारा
भक्त कहता है कि मुझे मालूम है तेरे सौंदर्य का। परमात्मा परम प्रिय है, परम सुंदर है--यह मुझे मालूम है।
नूर का अपने खुद अमीन है तू

बस तेरे सौंदर्य की तू ही एक उपमा है।
जानता हूं बहुत हसीन है तू
है ये लेकिन कसूर क्या मेरा
लेकिन मैं क्या करूं? अगर मेरे पास तुझे देखने की आंख नहीं है, तो क्या
यह मेरा कसूर है?
ज्ञानी दावा करता है कि मेरे पास तुझे देखने वाली आंख है, तू छिपा कहां है? मैंने सब किया; अगर तू है तो प्रकट क्यों नहीं होता? भक्त कहता है कि मुझे मालूम है तेरे सौंदर्य का और मुझे यह भी पता है कि तू सब तरफ मौजूद है; सिर्फ अगर कोई कमी है तो मेरे पास आंख नहीं।
जो नहीं मुझको ताबे-नज्जारा
मेरी क्षमता तुझे देखने की नहीं है। इसमें मेरा कसूर भी क्या है? मैं ऐसा हूं--अपात्र। अब तू ही कुछ कृपा करे तो हो।
शौके-दीदार तेजतर कर दे
शोलासामां मेरी नजर कर दे
भक्त कहता हैः अब तेरे से प्रार्थना करता हूं--
शौके-दीदार तेजतर कर दे
मेरे देखने की क्षमता को तेज कर, मेरे देखने की चाहत को तेज कर। तू ही कर, मेरे किए कुछ होता नहीं। मेरे हाथ बड़े छोटे हैं।
शोलासामां मेरी नजर कर दे
फिर तू आ, बेनकाब होकर आ
पहले मेरी आंख ठीक कर कि मैं देख सकूं। पहले मेरी आंख को मजबूत कर कि मैं सह सकूं।
फिर तू आ, बेनकाब होकर आ
नूरे-सदआफताब होकर आ
जोशे-हुस्नो-शबाब होकर आ
शोरिशो-इज्तिराब होकर आ
फिर तू अगर नजर को जला देने वाला होकर भी आए तो आ, मगर पहले नजर तो दे दे। फिर तू अगर सूरज होकर भी आए तो आ, मगर पहले देखने की क्षमता तो दे दे। फिर तू उघड़ कर भी आ, नग्न होकर भी आ, तो आ; मगर पहले देखने की क्षमता दे दे। है ये लेकिन कसूर क्या मेरा
जो नहीं मुझको ताबे-नज्जारा
मेरी रग-रग में मस्तियां बनकर
मेरे दिल में शराब होकर आ
एक नजर से खराब हो जाऊं
तू खुद ऐसे खराब होकर आ
मुझमें अपना जवाब पैदा कर
फिर तू मेरा जवाब होकर आ
लेकिन भक्त कहता हैः तू ही कुछ कर। इस भेद को ख्याल में ले लेना। ज्ञानी कुछ करता है; भक्त कहता हैः मेरे किए क्या होगा? तू कर! और मजा यह है कि ज्ञानी कर-कर के भी शायद ही कर पाता है और भक्त बिना किए पा जाता है।
मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, करि किरपा अपनायो।
जनम-जनम की पूंजी पाई, जग में समय खोवायो।
तब पता चलता है, उस अमोलक संपत्ति के मिलने पर पता चलता है कि मैं तुमसे जो कह रहा हूं, उसका क्या अर्थ है? जो मैं तुमसे कहता हूं कि तुमने जनम-जनम व्यर्थ ही समय गंवाया, अभी तुम्हें साफ नहीं होगा; कैसे हो साफ? मैं तुम्हारी मजबूरी समझता हूं। मुझे भी साफ नहीं था। मीरा को भी जब तक वस्तु अमोलक न मिली होगी, तब तक उसे भी साफ नहीं था। तुलना ही नहीं होती। जिसने कंकड़-पत्थर ही देखे हैं, वह उन्हीं में चुनता रहता हैः सुंदर कंकड़-पत्थर खोज लें। जिसे हीरों का पता ही नहीं है, वह कैसे समझेगा कि मैं जिंदगी भर कंकड़-पत्थर बीनता रहा।
मैंने सुना है, एक जौहरी मरा। उसके मरने पर उसकी पत्नी बहुत दुखी थी। उसने अपने बेटे से कहा कि अब हमारे पास एक ही संपदा है। तेरे पिता ने मुझे कुछ हीरे-जवाहरात दिए थे; वे मैंने सम्हाल कर रख दिए हैं तिजोरी में। उनको

बेच दे, ताकि हमारे पास पर्याप्त साधन हो जाएंगे जीने के लिए। तू जब तक बड़ा होगा तब तक हमारे पास सुविधा रहेगी। और उन्हें बेचना है, इसलिए तेरे पिता के एक मित्र हैं, वे भी जौहरी हैं, तू उनके पास जा। यह पोटली ले जा।
वह बेटा गया। उसने अपने पिता के मित्र के सामने पोटली खोली। पिता के मित्र ने कहाः पोटली तू बंद कर और अपनी तिजोरी में जाकर रख आ। कल मैं तेरे घर आऊंगा।
वह कल आया। उसने अपने मित्र की पत्नी से, विधवा से कहा कि अभी हीरों का बाजार ठीक नहीं चल रहा है, अभी बेचना उचित नहीं होगा, थोड़े समय बाद बेचेंगे। लेकिन एक काम तू कर, तेरे बेटे को अब मेरी दुकान पर भेजना शुरू कर दे, ताकि यह भी काम-धाम सीखे। क्योंकि संपत्ति कितने दिन काम आएगी? अंततः कला काम आती है। और वे जब तक बचे रहें, ठीक है। तब तक तेरे खर्च की व्यवस्था मैं कर दूंगा। लेकिन यह बेटा आने लगे दुकान पर, यह काम सीखने लगे।
तो बेटे ने दूसरे दिन से दुकान पर जाना शुरू कर दिया। साल बीत गया, तब
एक दिन वह जौहरी उसके बेटे को लेकर घर आया। उसने कहा कि अब तू तिजोरी खोल और तेरे वे हीरे-जवाहरात निकाल कर ला।
बेटे ने तिजोरी खोली, गठरी खोली, हंसने लगा। बाहर गया, जाकर पूरी की पूरी गठरी कचरेघर में फेंक आया।
उसकी मां तो चिल्लाने लगी कि तू पागल तो नहीं हो गया है! यह तू क्या कर रहा है?
उसने कहा कि ये सब कंकड़-पत्थर हैं।
उसकी मां ने अपने पति के मित्र को पूछा कि तुमने साल भर पहले क्यों न कहा?
उसने कहाः मैं पहले कहता तो शायद तुझे संदेह होता। मैं चाहता था तेरा बेटा खुद परख सीख ले। अब यह हीरे-जवाहरात जानता है। अब इसके पास पहचान है। अब यह समझ सकता है कि कंकड़-पत्थर क्या हैं? मुझे पक्का पता है, मेरे मित्र ने तुझे ये कंकड़-पत्थर सिर्फ सांत्वना के लिए दे दिए थे, ताकि तुझे भरोसा रहे। तूने गांठ बांध कर रख ली थी, तू मस्त थी। बाकी इतना पैसा उनके पास था नहीं; इतने हीरे-जवाहरात उनके पास हो भी नहीं सकते थे। मगर तेरे बेटे को परख मिल जाए, तब तक मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता था, क्योंकि मेरी बात तू समझ भी न पाती।
ध्यान रखना, हम तभी समझ पाते हैं, जब हमारे अनुभव में दोनों चीजें आ जाएं। संसार तुम्हारे अनुभव में है, परमात्मा तुम्हारे अनुभव में नहीं। इसलिए कैसे तुम परखो! कैसे तुम तौलो!
जनम-जनम की पूंजी पाई, जग में समय खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन-दिन बधत सवायो।
अब मीरा कहती है कि अपूर्व संपत्ति मिली, जो दिन-दिन बढ़ती जाती है। एक बार परमात्मा से संबंध जुड़ गया, तो अनुभव बढ़ता ही चला जाता है।
... दिन-दिन बधत सवायो।
फिर रुकता नहीं। वह यात्रा अनंत की है। शुरू होती है, समाप्त नहीं होती। और न तो उसे कोई चोर ले जा सकते हैं और न तुम उसे खर्च कर सकते हो। वह संपदा ऐसी है कि मृत्यु भी नहीं छीन सकती। कोई उसे नहीं छीन सकता। इसीलिए उसको संपदा कहा है। इसीलिए उसको राम रतन कहा है।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तरि आयो।
मीरा कहती हैः सत्य की नाव बनाई; सतगुरु खेवटिया था, मांझी था--सारे संसार से तैरा दिया; भवसागर के पार उतार दिया।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरखि-हरखि जस गायो।
मीरा कहती हैः अब तो मेरे पास कुछ और नहीं है सिवाय इसके कि उन्मत्त होऊं, हरषूं।
... हरखि-हरखि जस गायो।
अब तो तेरे यश के गीत गाऊं, इसके सिवाय और मेरे पास कुछ भी नहीं है।
तूने इतना दिया है कि बस धन्यवाद ही धन्यवाद जन्मों-जन्मों तक देती रहूं तो भी धन्यवाद चुकेगा नहीं।
... हरखि-हरखि जस गायो।
अमन दुनिया में है नसीब किसे,

कौन है जो यहां निराश नहीं।
कौन रंजो-अलम से है आजाद,
किसको ऐशो-तरब की आस नहीं।
दिल में हैं ख्वाहिशात के तूफां,
बस यही एक आध आस नहीं।
अपना दुखड़ा किसे सुनाने जाएं,
क्या कोई है जो यां उदास नहीं।
तेरे कदमों में है निशाते-जां,
कोई दुख दर्द रंजो-यास नहीं।
इस दुनिया में तो सब दुखी हैं। इस दुनिया में तो सब उदास हैं। इस दुनिया में हर्ष तो दिखाई ही नहीं पड़ता। इस दुनिया में आंखें चमकती दिखाई ही नहीं पड़तीं। इस दुनिया में कोई हृदय नाचता हुआ मिलता ही नहीं। इस दुनिया में कभी सौभाग्य से कोई कह पाता है--
पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे!
तुम कह सको, इसकी संभावना है। तुम भी ऐसा कह सको, इसकी संभावना है। तुम
भी हरखि-हरखि जस गाओ, इसकी संभावना है। लेकिन एक काम करना पड़े--बस एक काम-- अपने को पोंछ डालो। अपने को हटा कर रख दो। मरना पड़े। मृत्यु के पहले मरना पड़े। मृत्यु तो शरीर को छीनेगी; तुम्हें और गहरी मौत चाहिए--वह मौत है कि तुम अपने अहंकार को मिटा दो। तुम्हें अहंकार की दृष्टि से आत्मघात करना पड़े तो ही राम रतन मिलता है। उतनी कीमत पर मिलता है; उससे कम कीमत पर नहीं मिलता। हालांकि जब मिल जाता है, तब पता लगता है--
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु!
तब तुम पाते होः जो खोया वह तो कुछ भी नहीं था, छाया मात्र थी; जो खोया
वह तो माया मात्र थी--और जो मिला वह स्वयं परमात्मा है।
नहिं भावे थारो देसलड़ो रंगरूड़ो।
मीरा कहती हैः राणा, तेरा देश मुझे भाता नहीं; हालांकि तेरा देश बड़ा सुंदर है, रंग-बिरंगा है। तेरे देश में सब कुछ है, फिर भी मुझे भाता नहीं, क्योंकि एक कमी है।
नहिं भावे थारो देसलड़ो रंगरूड़ो।
तेरा यह सुंदर रंग-बिरंगा देश मुझे राणा भाता नहीं है। क्यों?
थारां देसां में राणा साध नहीं छै...
तेरे देश में साधु नहीं हैं, राणा।
थारां देसां में राणा साध नहीं छै, लोग बसैं सब कूड़ो।
और आदमी क्या हैं--कूड़ा-कर्कट हैं। देश बड़ा प्यारा है। फूल खिलते हैं वृक्षों पर--सुंदर। पक्षी गीत गाते हैं, सूरज निकलता है। सुबह होती है, सांझ होती है, रात आकाश तारों से भर जाता है। तेरा देश बड़ा प्यारा है, राणा! मगर एक कमी हैः साधु नहीं हैं। और साधु न हों तो क्या तेरे देश में रखा है! क्योंकि साधु ही द्वार है परमात्मा का। सदगुरु नहीं तेरे देश में, राणा! बस कूड़ा-कर्कट लोग हैं।
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई।
इस जगत की ही बात कह रही है; वह राणा को खबर भेज रही है--
नहिं भावे थारो देसलड़ो रंगरूड़ो।
यह रंगीन देश तेरा, मगर बड़ा बेरौनक है; इसमें साधु नहीं हैं। सब है, मगर ऊपर-ऊपर; आत्मवान नहीं कोई।
थारां देसां में राणा साध नहीं छै, लोग बसैं सब कूड़ो।
गहना गांठी राणा हम सब त्यागा, त्यागो कर रो चूड़ो।
मीरा कहती हैः हमने सब छोड़ दिया--गहना गांठी, जो भी थे आभूषण इत्यादि, हाथ की चूड़ियां भी छोड़ दीं।
काजल-टीकी हम सब त्यागा...
वे सब भी छोड़ दिए--शृंगार, साधन।
... त्याग्यो छै बांधन जूड़ो।
बाल तक बांधने छोड़ दिए।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो छै पूरो।
और मैंने पूरा प्यारा पा लिया।

कबीर का वचन याद है नः कहै कबीर मैं पूरा पाया! मीरा का वचन और भी प्यारा हैः वर पायो छै पूरो! कबीर ने तो सत्य की बात कही; लेकिन भक्त के लिए सत्य प्रियतम होकर आता है। भक्त सत्य को तो सूखा-सूखा देखता है, जब तक सत्य में प्रियतम न दिखाई पड़ने लगे। ज्ञानी के लिए सत्य काफी है। भक्त कहता हैः सत्य अकेला तो मरुस्थल जैसा है; उसमें प्रेम की हरियाली चाहिए।
तो कबीर का वचन ज्ञानी का वचन हैः कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घट साहब दीठा।
मीरा कहती हैः वर पायो छै पूरो! मैंने अपना प्यारा पा लिया, अपना प्रियतम पा लिया।
सत्य जब प्रियतम बनता है, तो वसंत आ जाता है। तब हजार-हजार फूल खिलते हैं प्राणों में। अगर बन सके तो भक्त की दशा खोजना; न बन सके तो फिर ज्ञानी की। बन सके तो भक्त। क्योंकि भक्ति का सौंदर्य अपूर्व है। रसधार है वहां। वहां परमात्मा रस-रूप है। रसो वै सः! जब रस-रूप परमात्मा मिलता हो, तो फिर नीरस शब्दों में क्या पड़ना! जब परमात्मा से प्यार हो सकता हो, प्रेम हो सकता हो, जब परमात्मा का आलिंगन हो सकता हो; जब हृदय से मिलन हो सकता हो--तो फिर बुद्धि के ही व्यायाम क्यों करते रहना! हां, जो इतने सौभाग्यशाली न हों, उनके लिए नंबर दो की विधि है। अगर प्रार्थना बन सके तो अपूर्व; न बन सके तो फिर ध्यान।
ध्यान रूखा-सूखा मार्ग है; प्रार्थना, बड़ी रसपूर्ण।

तेरे ही हुक्म से इक-इक सांस मेरी रवां
तेरे इशारे से पैदा नजर में नक्शो-निशां
तेरे ही दम से जबां पर जहूरे-लफ्जो-बयां
तेरी निगाहे-करम ही से रक्से-शोलाए-जां
तेरा गुलाम नहीं हूं तो और क्या हूं मैं

तेरी ही बात से बनती है बात बात मेरी तेरा ही नाम तो है सारी कायनात मेरी तेरा ही जिक्रे-मुकर्रर तो है हयात मेरी तेरी ही यादे-मुसलसल का रूप जात मेरी तेरा गुलाम नहीं हूं तो और क्या हूं मैं

तेरे ही कदमों में रौनक फरोज हर दो जहां यहीं अदब से झुकाए हैं सर मकानो-जमां यहीं से होता है सबको हसूले-अमनो-अमां मैं छोड़ कर तेरे कदमों को जाऊं भी तो कहां तेरा गुलाम नहीं हूं तो और क्या हूं मैं

यकीनो-जोरे-अकीदत यहीं से मिलता है
जनूने-इश्को-मोहब्बत यहीं से मिलता है
शऊरे-राजे-हकीकत यहीं से मिलता है
सरूरे-कैफे-मुसर्रत यहीं से मिलता है
तेरा गुलाम नहीं हूं तो और क्या हूं मैं

भक्त कहता हैः मैं तेरा गुलाम, मैं तेरा दास। भक्त कहता हैः बस तेरी हवा में जी लूं, तेरी सुगंध में जी लूं, तो पर्याप्त है। यही मेरा मोक्ष, यही मेरी परम दशा। तेरे चरण हाथ से न छूटें। तेरी याद हृदय से न बिसरे। और इसलिए भक्त को फिर और कुछ प्यारा नहीं लगता।
नहिं भावे थारो देसलड़ो रंगरूड़ो।
फिर यह दुनिया बहुत रंगीन है, माना; लेकिन उस प्यारे के मुकाबले क्या?
इस दुनिया के रंग बड़े फीके पड़ जाते हैं।
सूफी फकीर हसन राबिया के घर ठहरा था। और सुबह हुई, और पक्षी जगे, और सूरज निकला, और आकाश में तैरती हुई बदलियां, और सुबह की मादक गंध। वह बाहर

आकर खड़ा था--सूरज की किरणों में नाचता। उसने आवाज दीः राबिया, तू भी बाहर आ, परमात्मा ने बड़ी सुंदर सुबह बनाई है। तू भीतर क्या कर रही है?
राबिया हंसी खिल-खिला कर और उसने कहा कि हसन, मैं तुझसे कहूंगी, तू ही भीतर आ। बाहर सुंदर सुबह है, मुझे पता है, क्योंकि वह सुंदर ही बनाता है। लेकिन मैं बनाने वाले को भीतर देख रही हूं, तू तो बनाई गई चीज को बाहर देख रहा है। जगत सुंदर है, लेकिन जगत को बनाने वाला अति सुंदर है। हसन, मेरी सुन, तू भीतर आ।
राबिया ने उस छोटी सी घटना को बड़ी अर्थपूर्ण दिशा दे दी। यही सदगुरुओं की कला है। तुम कहो कुछ, वे कुछ का कुछ बना लेते हैं। हसन ने तो ऐसे ही कहा था कि सुंदर सुबह है। उसने तो सोचा भी नहीं था कि राबिया ऐसा उत्तर देगी। मगर यह उत्तर हसन के जीवन में क्रांति का कारण बन गया; चोट खा गया। बात तो ठीक थी, जब जगत इतना सुंदर है तो जगत को बनाने वाला कितना सुंदर न होगा!
नहिं भावे थारो देसलड़ो रंगरूड़ो।
तेरा जगत प्यारा है, राणा! सुंदर है, मनमोहक है; मगर नहीं भाता। एक कमी है। जैसे सुंदर लाश पड़ी हो, ऐसा है; इसमें प्राण की कमी है।
थारां देसां में राणा साध नहीं छै...
यह मीरा ने भजन कहा है, जब मीरा चली गई द्वारिका और रणछोड़ के मंदिर में रहने लगी, और बार-बार राणा ने खबर भेजी कि तू वापस लौट आ। क्योंकि राणा की निंदा होने लगी। लोगों ने कहा, तुम्हीं ने उस बेचारी को सता-सता कर भगा दिया। राणा ने ब्राह्मण भेजे, पंडित-पुरोहित भेजे कि समझा लाओ, मीरा को लौटा लाओ। तब मीरा ने ये वचन कहे--
नहिं भावे थारो देसलड़ो रंगरूड़ो।
थारां देसां में राणा साध नहीं छै...
न तो साधु हैं तेरे देश में; न साधु की प्रतिष्ठा है, न साधु का सम्मान है। साधु का अपमान है, अनादर है।
... लोग बसैं सब कूड़ो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो छै पूरो।
अब मुझे मेरा प्यारा प्रीतम मिल गया, पूरा-पूरा मिल गया। अब तेरे देश में लौटना संभव नहीं है।
यह प्रतीक इस अर्थ में भी समझा जा सकता है कि राणा के देश से मतलब सिर्फ बाहर के देश से नहीं है, राणा के देश से मतलब राणा की मनःस्थिति से है। वह जो अंतर्देश है, जहां आदमी रहता है--वासनाएं, इच्छाएं, ईर्ष्याएं, महत्वाकांक्षाएं, अहंकार, घृणा, हिंसा--वह देश, अंतर्देश।
नहिं भावे थारो देसलड़ो रंगरूड़ो।
थारां देसां में राणा साध नहीं...
वहां भीतर जब तक साधु का जन्म न हो, तब तक अंधेरी रात ही रहती है। और भीतर साधु का जन्म हुआ कि फिर ये अंधेरे की वस्तुएं, इच्छाएं, कामनाएं, वासनाएं, आकांक्षाएं, महत्वाकांक्षाएं, ये सब विदा हो जाती हैं। जैसे सूरज के निकलने पर अंधेरा विदा हो जाता है।
मीरा मस्त थी--हरखि-हरखि जस गायो। अब कहां जाना था? अब कृष्ण को छोड़ कर कहीं नहीं जाना था। जब बहुत ही बहुत आग्रह किया, तो मीरा ने कहा कि ठीक है, अब इतना आग्रह है तो मैं पूछ लूं अपने प्यारे को। वे कहें तो चली आऊं; उनकी जो आज्ञा, वह सिर आंखों पर।
वह भीतर गई और फिर कभी नहीं लौटी। कहानी तो यही है कि वह भीतर गई और कृष्ण की मूर्ति में समा गई।
अंततः भक्त भगवान हो जाता है। अंततः भक्त को भगवान हो जाना ही है। उससे कम में उपाय नहीं। उससे कम में तृप्ति नहीं है।
जमाने की हर एक शै अब नई मालूम होती है
निशात-अंगेज हरसूं जिंदगी मालूम होती है
तेरे जलवे का परतौ जर्रे-जर्रे में नुमाया है
मेरी आंखों में तेरी रोशनी मालूम होती है
तेरा जलवा मेरी आंखों में कुछ ऐसा समाया है
कि हरेक शक्ले-हसीं सूरत तेरी मालूम होती है

यहां तक हो गई तेरे जलवों से शनासाई
कि तारीकी भी अब तो रौशनी मालूम होती है मेरा हर दर्द अपना आप दरमां होता जाता है चमक में आंसुओं की इक हंसी मालूम होती है मिटाया था तेरी खातिर निशाने-अक्से-हस्ती तक
तेरी हस्ती मगर हस्ती मेरी मालूम होती है
कभी-कभी खुदी का नाम तक बाकी नहीं रहता
कभी लेकिन खुदी ही बेखुदी मालूम होती है
चिरागे-रह बनेंगे एक दिन नक्शे-कदम मेरे
अभी रफ्तार मेरी गुमरही मालूम होती है
मीरा की रफ्तार भी लोगों को गुमरही मालूम हुई थी। जिन्होंने भी पाया
है परमात्मा को, उनकी राह सभी को गुमराह मालूम होती है। स्वाभाविक। यहां करोड़ों-करोड़ों लोग धन के पीछे दौड़ रहे हैं। जब कोई एकाध व्यक्ति परम धन के पीछे दौड़ता है तो निश्चित उसकी राह गुमराह मालूम होती है, क्योंकि वह करोड़ों के विपरीत चलने लगता है। करोड़ों की संख्या बड़ी है। उनका बहुमत है। उनका बाहुल्य है। उनकी भीड़ है। राजपथ पर तो वही लोग हैं। जब भी कोई भगवान का भक्त होता है, उसको पगडंडी पकड़नी पड़ती है; उसे रास्ते से उतर जाना पड़ता है। लोग कहते हैंः कहां चले? गुमराह हुए!
चिरागे-रह बनेंगे एक दिन नक्शे-कदम मेरे
अभी रफ्तार मेरी गुमरही मालूम होती है
लेकिन यही हिम्मतवर लोग, जो कभी-कभी राजपथ को छोड़ कर पगडंडियां पकड़ लेते हैं, अपनी राह खुद बनाते हैं, यही लोग, यही थोड़े से लोग, सारी दुनिया को गौरव देते हैं। एक दिन इनके ही कदम, इनके कदमों के निशान, परमात्मा के मंदिर की राह बन जाते हैं। बहुत लोग उन पर चलते हैं।
मीरा ने हिम्मत की गुमराह कहे जाने की। याद रखना, अगर तुम्हें भी राह पकड़नी हो तो पहले गुमराह समझे जाने की हिम्मत रखनी ही होगी। वह जोखिम उठाना ही होगा। वैसा सदा हुआ; उससे अन्यथा नहीं हो सकता। लोग तुम्हें तभी तक ठीक समझते हैं, जब तक तुम उन्हीं जैसे हो। जैसे ही तुमने जरा फर्क किया कि उन्होंने तुम्हें गलत समझा। लोग चाहते हैं कि तुम उनकी प्रतिलिपि रहो। लोग चाहते हैं कि तुम नियम में आबद्ध रहो। लोग चाहते हैं, तुम लकीर के फकीर रहो। लकीर जरा भी छोड़ी कि लोग बेचैन हो जाते हैं, उद्विग्न हो जाते हैं।
लेकिन जिसे रस लग जाता है वह लोगों की फिकर छोड़ देता है।
मेरो मन रामहि राम रटै रे।
मीरा कहती हैः मुझे अब कुछ सुनाई नहीं पड़ता कि लोग क्या कह रहे हैं, दुनिया में क्या हो रहा है। बाजार का शोरगुल अब मुझ तक नहीं पहुंचता।
लोगों के चित्त का धुआं अब मुझ तक नहीं आता।
मेरो मन रामहि राम रटै रे।
यहां तो भीतर राम ही राम की धुन उठी है। यह धुन अनवरत है। यह सतत हो रही है।
पहले तो तुम्हें शुरुआत करनी होती है, तो भूल-भूल जाते हो। कभी रट लेते हो, फिर भूल जाते हो; फिर याद आ जाती है, फिर रट लेते, फिर भूल जाते। वह पहला कदम है। फिर दूसरा कदम यह हैः कम भूलेगा, ज्यादा याद रहेगा। कभी-कभी भूलेगा। अभी कभी-कभी याद आएगा शुरू करोगे तो, ज्यादा भूलेगा। लंबे समय होंगे भूल जाने के, विस्मरण के। सुरति कभी-कभी आएगी। फिर धीरे-धीरे स्थिति बदलेगी, सुरति ज्यादा रहेगी, विस्मरण कभी-कभी होगा। और फिर तीसरी दशा आती है कि सुरति थिर हो जाती है। जैसे श्वास चलती है ऐसी सुरति चलती है। जागो तो, सोओ तो; उठो तो, बैठो तो; काम करो तो--भीतर अहर्निश एक नाद चलता रहता है; गूंज बनी रहती है; शराब ढलती रहती है; राम से मिलन होता रहता है। बैठे रहो बाजार में दुकान पर, कुछ फर्क नहीं पड़ता; भीतर राम से मिलन होता रहता है। मेरो मन रामहि राम रटै रे।
राम नाम जप लीजै प्रानी, कोटिक पाप कटै रे।
मीरा कहती हैः करोड़ों पाप कट जाएंगे, एक राम की स्मृति कर लो, उससे ही।
यह बात थोड़ी समझने जैसी है। इसका गलत अर्थ भी लोग ले लेते हैं। लोगों
ने गलत अर्थ ही लिया है। लोग सोचते हैंः जब करोड़ों पाप राम के नाम लेने से

कट जाएंगे तो फिर क्या करना? एक दिन राम का नाम ले लेंगे और कट जाएंगे करोड़ों पाप; फिर बार-बार क्या लेना? एक बार ही से कट जाना है तो एक बार ले लेंगे आखिर में। या अगर ऐसा ही है तो रोज जाकर एक दफा ले लेंगे मंदिर में, दिन भर के कट गए। ऐसे ही लोग गंगा चले जाते हैं--सोचते हैंः गंगा में नहा लेने से कट जाएंगे पाप।
रामकृष्ण से किसी ने पूछा; वह गंगा की यात्रा को जा रहा था। रामकृष्ण
से पूछा कि यह गंगा जा रहा हूं परमहंसदेव--इसी आशा में कि जनम-जनम के पाप कट जाएंगे, आप क्या कहते हैं?
रामकृष्ण बड़े सरल चित्त आदमी थे। क्रांति उनके वचनों में नहीं थी; उनके वचन बड़े शांत थे। मगर फिर भी सत्य तो कहना ही होगा। अगर कबीर के पास गया होता यह आदमी तो कबीर ने उठा लिया होता सोंटा, इसका सिर खोल दिया होता-- कि क्या पागलपन की बात कर रहा है तू! पहले तो यह मूढ़ता है कि गंगा के पानी में नहाने से और तेरे पाप कट जाएंगे। दूसरे, अगर गंगा के पानी में नहाने से कटते ही हों पाप, तब तो भूल कर मत जाना! क्योंकि पाप तू करे और गंगा से कटवाए, यह अन्याय है। और अगर गंगा के कारण पाप कट गए, किए तूने और काटे गंगा ने, तो गौरव क्या है?
इसलिए कबीर मरते वक्त काशी छोड़ कर मगहर चले गए। क्योंकि कहावत है कि मगहर में जो मरता है, मर कर गधा होता है। तो कबीर जब मरने लगे, लोग तो काशी जाते हैं मरते वक्त, काशी-करवट, जब मरने के दिन करीब आने लगते हैं तो लोग काशी जाते हैं। इसलिए काशी में तुम पाओगे इस तरह के मरे-मराए मुर्दा लोग; वे प्रतीक्षा कर रहे हैं मरने की। काशी में बैठे हैं, क्योंकि काशी में जो मरता है वह मोक्ष जाता है। जब कबीर के मरने का वक्त आया, कबीर ने अपने शिष्यों से कहा कि बांधो बिस्तर, चलो मगहर।
उन्होंने कहाः आपका होश ठीक है? आप कह क्या रहे हैं?
कबीर ने कहा कि काशी में तो मरूंगा ही नहीं; क्योंकि अगर काशी में मरा
और मोक्ष गया, तो फिर राम का क्या निहोरा! यहां नहीं मरूंगा; मगहर में मर कर मोक्ष जाऊंगा। तो ही कुछ बात हुई। काशी में तो कई मुर्दे, कहते हैं, मर-मर कर जा रहे हैं मोक्ष। यहां से मैं नहीं जाने वाला, यह घाट बहुत गंदा हो गया। यहां से जो गए हैं उनको देखता हूं तो मेरी जाने की इच्छा भी मोक्ष की नहीं होती--कि इन्हीं से मिलना वहां हो जाएगा; इन्हीं से काशी में सिर खपाया! किसी तरह मरने की सुविधा बन रही है अब, तो फिर यही काशी के प्राणियों से मिलना हो जाएगा। नहीं, इस तरफ से जाना ही नहीं। ये जहां जाते हैं, वहां जाना ही नहीं। मैं तो मगहर में मरूंगा।
और मगहर में ही मरे।
तो कबीर से अगर पूछा होता किसी ने तो वे तो डंडा उठा लेते। कबीर तो काशी में भी रह कर गंगा नहाने नहीं गए। क्या जाना गंगा नहाने! ऊपर की गंगा में नहा रहे थे; जमीन की गंगाओं से क्या होगा? स्वर्ग की गंगा में नहा रहे थे। मगर वे क्रांतिकारी दृष्टि के आदमी थे। रामकृष्ण बड़े शांत आदमी थे। मगर शांत भी झूठ थोड़े ही बोलेगा! शांत अपने ढंग से बोलेगा, यह बात जरूर सच है। क्रांत अपने ढंग से बोलेगा, शांत अपने ढंग से बोलेगा; मगर बात तो सच ही बोलनी होगी। रामकृष्ण ने कहाः जाते हो तो भले जाओ, एक डुबकी मेरे लिए भी लगा लेना। लेकिन तुमसे एक बात बता दूं, एक बात की सावधानी रखना--डुबकी लगाओ तो फिर निकलना मत!
उसने कहा कि मारे गए! मर ही जाएंगे, अगर डुबकी लगाई, निकले नहीं!
रामकृष्ण ने कहाः निकले तो फिर क्या फायदा? क्योंकि मैंने यह सुना है
कि काशी में जब तुम नहाओगे गंगा में, तो पाप गंगा ले लेगी जब तुम डुबकी मारोगे! मगर वे पाप भी इतने होशियार हो गए हैं कि वहां झाड़ जो लगे हैं किनारे पर, उन पर चढ़-चढ़ कर बैठ जाते हैं। वे कहते हैंः बेटे, अब निकलो! कभी तो निकलोगे! बेटा जी निकले, वे धमक कर फिर सवार हो जाते हैं। तुम जाओ भले, एक मेरे लिए भी लगा लेना; मगर डूबो तो निकलना मत!
सत्य तो बोलना ही होगा, चाहे रामकृष्ण बोलें, चाहे कबीर बोलें। बोलने
का ढंग अलग हो सकता है, लेकिन सत्य को छिपाया तो नहीं जा सकता। सत्य तो बोलना ही होगा। रामकृष्ण ने अपने ढंग से बात कह दी। अब तुम समझ लो। न तो गंगा के नहाने से कोई पाप धुल सकते हैं, और न राम का एकाध दफा नाम लेने से

धुल सकते हैं। लेकिन राम अगर तुम्हारी सुरति बन जाए तो जरूर। बहने लगे राम की धारा तुम्हारे भीतर। चेष्टा से भी मुक्त हो जाए वह धारा; तुम्हें चेष्टा भी न करनी पड़े। अनायास, बिना प्रयास, सतत; जैसे हृदय धड़क रहा है, ऐसा राम धड़के। उसकी याद बनी ही रहे, तो निश्चित।
कोटिक पाप कटै रे, राम नाम जप लीजै प्रानी।
जनम-जनम के खत जु पुराने, नामहि लेत फटै रे।
वह जो बहुत दिन के खाते-बही में तुम्हारा लिखा हुआ है सब, वह एक दफे नाम लिया तो सब मिट जाता है। मगर नाम लेने का मतलब ठीक-ठीक समझ लेना; यह हो भाव से। यह हो अंतरतम से। यह हो प्राणपण से। यह हो रोएं-रोएं से। यह ऐसा न हो कि ऊपर-ऊपर बैठे हैं, हजार बातें भीतर चल रही हैं और राम-राम भी कह लिया! देखते हैं, कुछ लोग बैठे रहते हैं दुकान पर, राम-राम जप रहे हैं; और कुत्ता आ गया, उसको भी भगा दिया; वह लड़का तिजोड़ी में से पैसा तो नहीं निकाल रहा, उस पर भी आंख लगाए हुए हैं; पत्नी भीतर किसी से बात कर रही है, वह भी सुन रहे हैं; भिखारी आ गया, उसको हाथ बता रहे हैं कि आगे बढ़! यह सब चल रहा है; राम-राम भी जप रहे हैं।
इतनी कुशलता से जपोगे तो कुछ भी न होगा। इतनी होशियारी से नहीं। उसकी मस्ती होनी चाहिए। उसकी मस्ती में डूबे तो डूबे। राम-नाम ऐसा होना चाहिए जैसे भीतर शराब ढलती रहे।
जनम-जनम के खत जु पुराने, नामहि लेत फटै रे।
कनक कटोरे इमरत भरियो, पीवत कौन नटै रे।
मीरा कहती हैः मैं चकित हूं कि परमात्मा सोने के प्याले में अमृत भरे लिए बैठा है। मैं चकित हूं। होना तो यह चाहिए कि कोई भी इसे इनकार न करे। कौन इसको नटे! लेकिन लोग नट रहे हैं। लोग अपनी-अपनी नालियों की तरफ सरक रहे हैं। वे कहते हैंः हम तो अपनी नाली में पीएंगे। लोग गोबर के कीड़े हैं; उन्हें अपने गोबर में मजा आ रहा है। वे कहते हैंः छोड़ो सब, कहां जा रहे? सोने के कटोरों से लोगों की पहचान नहीं है। अमृत से लोगों का कोई संबंध नहीं है। जहर ही पीते रहे हैं, जहर का ही स्वाद आता है। जहर पीते- पीते जहरीले होते गए हैं। और अब जहर की ही पहचान है; और कोई पहचान भी नहीं है।
मैंने सुना, एक स्त्री मछलियां बेचने शहर आई। जब मछलियां बेच कर जाती
थी तो उसे शहर में अपनी पुरानी एक सहेली मिल गई। वह थी मालिन। उसने कहाः आज मेरे घर रुक जाओ, आज रात मेरे घर रुक जाओ। जन्मों के बाद जैसे मिलना हुआ। कितने वर्ष बीत गए! रात खूब बातें करेंगे, बचपन की याद करेंगे।
तो वह रुक गई। स्वभावतः मालिन ने उसकी खाट ऐसी जगह लगाई जहां बाहर खिले मोतिए के फूलों का भंडार था, और जहां से मोतिए के फूलों की गंध प्रतिपल आ रही थी। उसने ऐसी जगह खाट लगाई। मालिन थी; अच्छी से अच्छी बगीचे में जगह चुनी।
मगर वह औरत न सो सके। वह करवट बदले। आखिर मालिन ने पूछा कि बात क्या है? तू सो नहीं पा रही; बार-बार करवट बदल रही।
उसने कहाः मैं सो न पाऊंगी। ये फूल मेरी जान लिए ले रहे हैं। तू तो मेरी टोकरी ले आ, जिसमें मैं मछलियां लाई थी बेचने। और वह टोकरी में जो कपड़ा लगा रखा है, उसमें थोड़ा पानी छिड़क दे, और उसको मैं अपने पास रख लूं तो मुझे नींद आए। मछलियों की गंध के बिना मुझे नींद आएगी ही नहीं।
मछलियों की टोकरी वापस लाई गई। उस पर पानी छिड़क कर उसके पास रख दिया गया। जब मछलियों की गंध ने उसको चारों तरफ से घेर लिया, और मोतिए की गंध कट गई बाहर, दूर रह गई पड़ी, दीवाल खड़ी हो गई मछली की गंध की--तब वह निश्चिंत सो गई, जल्दी ही घुर्राटे लेने लगी।
ऐसा आदमी है। जिसकी हमें आदत हो... मछलियों की आदत पड़ जाए तो वही सुगंध है। मछली खाने वाले को पता ही नहीं चलता कि मछली में दुर्गंध है; वह तो नहीं खाने वाले को पता चलता है। मांस खाने वाले को पता ही नहीं चलता कि वह क्या कर रहा है।
मेरे एक बंगाली डाक्टर थे; सामने ही मेरे रहते थे। कभी मुझे उनसे जरूरत होती तो वे दवा-दारू देते थे। एक बार मैंने उनसे पूछा कि दवा तो ठीक है, आप कुछ पथ्य नहीं सुझाते?

उन्होंने कहाः पथ्य! वे बहुत हंसने लगे, कि आप तो जो खाते हैं, वह पथ्य
है ही। वह तो मरीजों को खाना ही चाहिए। अब आपको और क्या सुझाएं! घास-पात खाने वाले आदमी को पथ्य क्या?
घास-पात!
उन्होंने कहाः बस शाक-सब्जी--यह घास-पात। अरे मछली खाओ, अंडे खाओ, मांस खाओ, तो कुछ पथ्य! कभी बीमार होओ तो छोड़ सकते हो। शाकाहार में यही तो एक खराबी है कि बीमार भी हो जाओ तो कुछ छोड़ने को नहीं है।
उनकी बात भी मुझे जंची कि बात तो ठीक ही कह रहे हैं। उनकी मछली से मैं परेशान था और वे बता रहे हैं कि वही असली भोजन है। जब मुझे कुछ बीमारी पकड़ती तो बीमारी से मैं कम डरता था; मैं कहताः अब डाक्टर दत्ता आएंगे, अब फंसे! क्योंकि उनके मुंह से बास आती, कपड़ों से बास आती, मछली! शुद्ध बंगाली सज्जन! मगर वे उसको भोजन मानते हैं। उनके घर भोजन पकता तो मुझे घर से नदारद हो जाना पड़ता। क्योंकि वे सारे मोहल्ले को मछली से भर देते। मगर वह भोजन था।
आदमी जो करता है, उससे आदी हो जाता है। मेरा भोजन उनके लिए घास-पात। वे
भी ठीक कह रहे हैं। हमारी दृष्टियां हमारे अनुभव से निर्धारित होती हैं। हम संसार में इस बुरी तरह पक गए हैं, इस तरह लिप्त हो गए हैं कि हमें मीरा की बात समझ में ही नहीं आएगी। मीरा कहती हैः
कनक कटोरे इमरत भरियो, पीवत कौन नटै रे।
कहती है कि ऐसा कौन है जो नट जाए? मगर देखती हूं कि करोड़ों लोग नट रहे हैं! परमात्मा प्याला लिए खड़ा है; परमात्मा मधुबाला बन कर खड़ा है। वह कहता हैः पीओ! मगर हम कहते हैं कि नहीं, क्षमा करें। हम तो किसी और घाट जा रहे हैं, किसी और कुएं जा रहे हैं; पहले वहां पीएंगे।
मीरा कहै प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटै रे।
मीरा कहती है कि मैं तुम्हें यह कह दूं कि मुझे जब से यह अविनाशी मिला
है, जब से यह शाश्वत मिला है, तब से मेरा तन-मन, आत्मा सब एक हो गए हैं। वे द्वंद्व भीतर के गए; मैं निर्द्वंद्व हो गई हूं। वे जो भीतर खंड-खंड थे मेरे, वे सब समाप्त हो गए हैं; मैं अखंड हो गई हूं।
अखंड से जुड़ो तो अखंड हो जाओगे।
साधारणतः आदमी संसार में जीता है तो खंड-खंड रहता है, क्योंकि कितने खंडों से तुम जुड़े हो। एक हाथ पश्चिम जा रहा है, एक हाथ पूरब जा रहा है। एक पैर दक्षिण जा रहा है, एक पैर उत्तर जा रहा है। तुम कट गए। एक इच्छा कहती हैः धन कमा लो; एक इच्छा कहती हैः पद बना लो; एक इच्छा कहती है कि ज्ञान अर्जित कर लो; एक इच्छा कहती है कि यहीं संसार की चिंता में पड़े हो, थोड़ा स्वर्ग में भी इंतजाम कर लो, तो कभी कुछ दान-पुण्य भी कर लो। ऐसी हजार इच्छाएं हैं--और तुम हजार हो गए हजार इच्छाओं के कारण। और इन सबमें कलह है। ये इच्छाएं एक दिशा में भी नहीं जा रही हैं। क्योंकि अगर धन कमाना है तो पद न कमा पाओगे। अगर पद कमाना है तो धन गंवाना पड़ेगा। अब चुनाव लड़ना हो तो धन गंवाना ही पड़ेगा। और धन कमाना हो तो फिर चुनाव लड़ने से जरा बचना पड़ेगा। अगर स्वर्ग में कुछ पद-प्रतिष्ठा पानी हो, वहां कुछ सोने के महल और चांदी के रास्तों पर चलना हो, तो फिर आदमी को यहां भूखा मरना पड़े, उपवास करना पड़े--इत्यादि। तपश्चर्या करनी पड़े। चुकाना पड़ेगा फिर।
आकांक्षाएं विपरीत हैं। शरीर कहता हैः भोजन करो। मन की आकांक्षा लोभ
से भरी है; वह कहती है कि यहां क्या करना भोजन, स्वर्ग में ही कर लेंगे इकट्ठा। अभी कुछ दिन की बात है, गुजार लो; वहां शराब के चश्मे बह रहे हैं। मन कहता हैः यह सुंदर स्त्री जा रही है, क्यों छोड़े दे रहे हो? एक मन कहता हैः इस स्त्री में उलझे तो फिर अप्सराएं नहीं मिलेंगी, ख्याल रखना, फिर पछताओगे। अरे, यह तो दो दिन की बात है; एक दफा पहुंच गए स्वर्ग, तो अप्सराएं मिलेंगी। फिर भोगना सुख ही सुख अनंतकाल तक। ऐसा मन अनेक-अनेक खंडों में बंटा है। इन खंडों के कारण तुम भी खंडित हो गए हो; तुम्हारी एकता टूट गई है।
सारे शास्त्रों का शास्त्र एक ही है कि तुम एक हो जाओ।
लेकिन तुम एक कैसे होओगे? जब एक ही आकांक्षा रह जाए। उस एक आकांक्षा
को ही हम राम कहते हैं। उस एक आकांक्षा का अर्थ ही यह है कि राम के सिवा कुछ

भी नहीं पाना है। बाकी सब पाना उसी पर चढ़ा देना है; बस एक परमात्मा को पा लेना है। जब एक ही आकांक्षा रह जाएगी तो तुम एक हो ही जाओगे। और कोई उपाय नहीं है। तुम्हारे भीतर योग सधने का और कोई उपाय नहीं है। जितनी आकांक्षाएं, उतने टुकड़े। यह तो तुम्हारी समझ में आ जाएगी बात कि जितनी आकांक्षाएं, उतने टुकड़े हो जाते हैं। हर आकांक्षा एक टुकड़ा लेकर भागने लगती है। जब एक ही आकांक्षा रह जाएगी तो तुम अखंड हुए। वही है अर्थः
मेरो मन रामहि राम रटै रे।
एक ही आकांक्षा बची है। बस एक ही को पाने की धुन सवार हुई है। सब धुनें
खो गईं। सभी धुनें उसी में लीन हो गईं। जैसे सब छोटे-छोटे नदी-नाले आकर गंगा में सम्मिलित हो गए हैं, और गंगा चली सागर की तरफ--ऐसे ही सब छोटी-छोटी इच्छाएं एक विराट इच्छा बन गई प्रभु को पाने की और सारी आकांक्षाएं उसी में सम्मिलित हो गई हैं। एक ही लक्ष्य बचा।
फिर ज्यादा देर तुम रुक न सकोगे। बहोगे अपने आप, सागर तक पहुंच जाओगे। छोटे-छोटे नाले सागर तक नहीं पहुंच सकते; रास्ते में खो जाएंगे, मरुस्थलों में उड़ जाएंगे। लेकिन सब इच्छाएं मिल जाएं और एक अभीप्सा बन जाए... ।
अभीप्सा शब्द का यही अर्थ है। अभीप्सा का अर्थ होता हैः सारी इच्छाएं
एक इच्छा में निमज्जित हो गईं। छोटी-छोटी लपटें सब एक विराट लपट में खो गईं। तुम एक मशाल बन गए।
मेरो मन रामहि राम रटै रे।
राम नाम जप लीजै प्रानी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम-जनम के खत जु पुराने, नामहि लेत फटै रे।
कनक कटोरे इमरत भरियो, पीवत कौन नटै रे।
मीरा कहै प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटै रे।
अब इस अविनाशी से लगन लग गई; अब तन और मन के बीच जो फासला था वह पट गया।
अब कोई फासले नहीं रहे। अब कोई भेद नहीं रहे। अब कोई खंड नहीं रहे। मैं अखंड हो गई हूं।

मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, करि किरपा अपनायो।
जनम-जनम की पूंजी पाई, जग में समय खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन-दिन बधत सवायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तरि आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरखि-हरखि जस गायो।।

नहिं भावे थारो देसलड़ो रंगरूड़ो।
थारां देसां में राणा साध नहीं छै, लोग बसैं सब कूड़ो।
गहना-गांठी राणा हम सब त्यागा, त्यागो कर रो चूड़ो।
काजल-टीकी हम सब त्यागा, त्याग्यो छै बांधन जूड़ो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो छै पूरो।

इस पूरे वर को पाने में लगो। यह तुम्हारा भी अधिकार है--उतना ही जितना मीरा का; उतना ही जितना मेरा; उतना ही जितना किसी का। और जब तक इसे न पा लो तब तक मत समझना कि तुम मनुष्य हो। जब तक इसे न पा लो तब तक मत रुकना। जब तक इसे न पा लो तब तक दांव पर लगाते चले जाना, खोजते चले जाना। और कुछ भी खोना पड़े तो खो देना। क्योंकि जो मिल रहा है, जो मिलने वाला है, वह अमोलक है। वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु,
मैंने राम रतन धन पायो।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
आठवां प्रवचन

दमन नहीं--ऊर्ध्वगमन

पहला प्रश्नः आमतौर से समझा जाता है कि धार्मिक बनने के लिए इंद्रियों को वश में रखना अनिवार्य है। आप कहते हैं--इंद्रिय-दमन भक्ति का लक्षण नहीं है। आप कहते हैं--प्रेम मुक्ति है और भक्ति मोक्ष है। भेद समझ में नहीं आया। कृपया मुक्ति और मोक्ष का और प्रेम और भक्ति का भेद बताएं।

एक बात सदा ध्यान में रखनाः जो आमतौर से समझा जाता है, वह आमतौर से गलत होता है। भीड़ के पास सत्य नहीं है--कभी नहीं रहा। सत्य सदा व्यक्तियों में घटता है--और उनमें ही घटता है जो अपूर्व रूप से अपनी पात्रता निर्मित करते हैं। विरले व्यक्तियों में घटता है। भीड़ तो कामचलाऊ बातों को मान कर चलती रहती है। भीड़ तो उधार को मान कर चलती रहती है। भीड़ तो झूठे पर भरोसा रखती है।
इसलिए दुनिया में सभी भीड़ों के अलग-अलग नाम हैं। किसी भीड़ को हम कहते हैं हिंदू; किसी भीड़ को हम कहते हैं मुसलमान; किसी भीड़ को हम कहते हैं ईसाई। जीसस के पास सत्य था; ईसाइयत के पास नहीं। कृष्ण के पास सत्य था; हिंदू के पास नहीं। हिंदू तो कृष्ण को मान लिया है; कृष्ण ने जो कहा, उसे स्वीकार कर लिया है। हिंदू ने स्वयं अनुभव नहीं किया। स्वयं अनुभव करे तो कृष्ण हो जाए। दूसरे का मान ले तो हिंदू हो जाता है, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध।
और ध्यान रखनाः जो सत्य स्वयं नहीं जाना है, वह सत्य नहीं हो सकता। मेरा जाना हुआ मेरा है। मैं तुम्हें कहूं, तुम सुन भी लो, शब्द से, बुद्धि से समझ भी लो--फिर भी तुम्हारे लिए सत्य नहीं होगा। तुम्हारे लिए तो शब्द मात्र होंगे; शास्त्र मात्र होगा। तुम्हारे लिए सिद्धांत मात्र होगा, सत्य नहीं। सत्य तो प्राणों की गहराई में अनुभव हो तभी होता है। तुम्हारे लिए बात उधार होगी।
जैसे किसी ने प्रेम किया और उसने तुम्हें प्रेम की बातें कहीं, तुमने सुनीं, समझीं भी; फिर भी क्या तुम प्रेम समझ जाओगे? प्रेम तो अनुभव है। तुम तोते की तरह दोहराने लगोगे उन बातों को। तोते बन जाओगे, पंडित बन जाओगे। सभी पंडित तोते होते हैं। थोड़ी-बहुत तुम्हारे पास सूचनाओं की संपदा हो जाएगी। तुम्हारे अहंकार में थोड़े आभूषण लग जाएंगे। लेकिन तुम्हें प्रेम का अनुभव होगा?
जल के संबंध में लाख पढ़ो, लाख सुनो; जब तक पीया न हो तब तक जल का गुण समझ में न आएगा। और ध्यान रखनाः पीने पर भी तभी समझ में आएगा जब गहरी प्यास हो। अगर प्यास न हो और कोई जबरदस्ती तुम्हें जल पिला दे तो तुम्हें वह तृप्ति अनुभव नहीं होगी। क्योंकि तृप्ति के पहले प्यास चाहिए। तृप्ति जल से नहीं होती, ध्यान रखना। तृप्ति तो प्यास की त्वरा से होती है। जल तो माध्यम बनता है; लेकिन उसके पहले प्यास चाहिए।
मैं तुम में सत्य डाल दूं, तो भी तुम्हारे जीवन में कहीं कुछ परिणाम नहीं होगा। तुम प्यासे ही न थे। प्यासे न थे तो जल कैसे अनुभव में आए? हां, जल का शास्त्र समझ में आ सकता है।
दुनिया में सत्य विरलों को उपलब्ध होता है। और ऐसा नहीं है कि सत्य ने कोई शर्त लगा रखी है कि विरलों को ही उपलब्ध होएंगे। सत्य सभी को उपलब्ध हो सकता है--लेकिन विरले ही प्यासे होते हैं। सत्य सभी की संपदा हो सकती है। सत्य सभी का अधिकार है--जन्मसिद्ध अधिकार है; स्वरूपसिद्ध अधिकार है। लेकिन दावा करोगे, तब न! घोषणा करोगे, तब न! दांव पर लगाओगे अपने को, तब न! तो आमतौर से जो माना जाता है, वह तो समझ लेना कि आमतौर से गलत ही होगा। भीड़ क्या मानती है, इसमें बहुत मत उलझ जाना। भीड़ को कुछ भी पता नहीं है। भीड़ ने मानने की चिंता भी नहीं ली है; खोज भी नहीं की है। भीड़ ने तो औपचारिक रूप से मान लिया है। हिंदू घर में पैदा हुए तो भीड़ हिंदू हो गई। ईसाई घर में पैदा हुए तो भीड़ ईसाई हो गई। जिस भीड़ में तुमने अपने को पाया, वही तुम

हो गए। मंदिर की तरफ जाती थी तो मंदिर चले गए; मस्जिद जाती थी तो मस्जिद चले गए।
यह धार्मिक होने का उपाय नहीं है।
धर्म को तो स्वेच्छा से चुनना होता है।
समझो। तुम यहां मेरे पास बैठे हो, यह चुनाव है; क्योंकि यहां तुम किसी भीड़ के कारण नहीं आ गए हो। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई पारसी है, कोई यहूदी है, कोई सिक्ख है। भीड़ें तो उनकी अलग थीं। यहां तुम किसी परिवार में पैदा होने के कारण नहीं आ गए हो; किसी संस्कार के कारण नहीं आ गए हो। यहां तुम्हारी तलाश तुम्हें लाई है। और इस तलाश के लिए तुम्हें मूल्य चुकाना पड़ेगा। अगर तुम ईसाई हो तो ईसाई तुम पर नाराज होंगे। अगर हिंदू हो तो हिंदू नाराज होंगे। तुम जिस भीड़ को छोड़ कर यहां आ गए हो मुझे सुनने, वही भीड़ तुम पर नाराज होगी। भीड़ बाधाएं खड़ी करेगी। और भीड़ बड़ी बाधाएं खड़ी कर सकती है, क्योंकि रहना तो भीड़ के साथ है। दुकान उनके साथ करनी है, बाजार उनके साथ करना है, काम उनके साथ करना है, शादी-विवाह उनके साथ करना है, जीना उनके साथ, मरना उनके साथ--तो भीड़ हजार उपद्रव खड़े कर सकती है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैंः हमें संन्यास लेना है; लेकिन जरा बेटी की शादी हो जाए; क्योंकि अगर शादी न हुई और हमने संन्यास ले लिया तो अड़चनें आ जाएंगी, शादी करना मुश्किल हो जाएगा। और किसी तरह खोज भी लिया वर तो बारात में कोई सम्मिलित न होगा। एक दफा यह लड़की की शादी हो जाए तो फिर मैं संन्यास लेने के लिए तैयार हूं।
लेकिन कहीं इतनी आसानी से हल होते हैं? लड़की की शादी हो जाएगी; पत्नी बीमार पड़ी है, कल मर जाएगी तो? अरथी में भी लोग सम्मिलित होने वाले नहीं हैं। अरथी पड़ी रहेगी और कोई वहां पर न आएगा। तो घबड़ाहट होगी। अपमान अनुभव होता है, परेशानी होती है, अड़चन होती है। सुख-दुख में आदमी चाहता है कोई साथ हो। लड़की की शादी कर दोगे; कल लड़की का बच्चा होने वाला है, उसकी भी शादी करनी पड़ेगी। चीजें कहीं समाप्त थोड़े ही होती हैं। इस दुनिया में कहीं पूर्णविराम आता है क्या कभी? यहां पूर्णविराम आता ही नहीं। ऐसा थोड़े ही है। वे सिर्फ फिल्मों में आते हैं--दि एंड! यहां नहीं आता। जिंदगी में कभी आता ही नहीं। यहां न कुछ शुरू होता है, न कुछ अंत होता है--सदा बीच में है। तुम भी आए, तब भी कहानी चल रही थी। मंच पर अभिनय चल रहा था। जनता बैठी थी। तुम जब आए, तब भी सब चल रहा था। तुम्हें पता नहीं, आगे काफी चल चुका था। तुम चले जाओगे, तब भी सब चलता रहेगा। यह कहानी बंद होती नहीं। यह सिलसिला है। यह अनंत सिलसिला है। इसमें तुम अगर यह सोचते हो कि जब पूर्णविराम आ जाएगा; सब कर लिया जो करना था, अब भीड़ पर निर्भर रहने की कोई जरूरत न रही--तब भी कम से कम तुम मरोगे! तुम्हें मरना होगा! और वह भी मन में चिंता पकड़ती है कि मर जाऊंगा तो म्युनिसिपल के आदमी ले जाएंगे; कोई भीड़ साथ नहीं देगी।
आदमी मरने के पहले भी मरने का भी विचार करता है कि अरथी में कौन-कौन सम्मिलित होंगे। तुमने कभी सोचा इस पर कि नहीं? कितनी भीड़-भाड़ रहेगी? अखबारों में क्या छपेगा? लोग क्या कहेंगे? मरने के बाद लोग प्रशंसा में कुछ कहेंगे कि नहीं?
अमरीका में एक आदमी हुआः रॉबर्ट रिप्ले। मरने के पहले उसने... । वह आदमी जिंदगी भर से अपने ढंग का आदमी था। अनूठे काम करने की उसे आदत थी। तो उसने अनूठे ढंग से मरना चाहा। उसने अपने सेक्रेटरियों को बुलाया और उनको कहा कि देखो, खबर कर दो अखबारों को कि मैं मर गया। डाक्टर तो कहते हैं कि चौबीस घंटे से ज्यादा बच नहीं सकूंगा।
तो उन्होंने कहाः लेकिन अभी आप जिंदा हैं, अखबारों में खबर करने की अभी क्या जरूरत है? जब आप मरेंगे तब करेंगे।
उसने कहाः तुम पागल हो! मैं पढ़ लेना चाहता हूं कि मेरे मरने के बाद लोग क्या कहेंगे, क्या लिखेंगे! और मैं दुनिया का पहला आदमी होना चाहता हूं, जिसने अपने मरने की खबर पढ़ी! मरने का भी मैं उपयोग कर लेना चाहता हूं।
बात तो उनको भी जंची। उन्होंने सूचना कर दी अखबारों को। अखबारों में खबरें छप गईं, ऐडिटोरियल निकले। वह आदमी प्रसिद्ध था; जीवन भर का खोजी था; उसने अनूठी बातें खोजी थीं। उसकी बहुत सी किताबें हैं; अगर कभी तुमने देखी

हों, उसकी किताबों का नाम एक ही हैः बिलीव इट ऑर नॉट! मानो या न मानो। उसने ऐसे तथ्य खोजे हैं जो माने नहीं जा सकते। लेकिन वे तथ्य हैं। वे सभी वैज्ञानिक अर्थों में तथ्य हैं। ऐतिहासिक हैं। लेकिन एकदम से भरोसा नहीं आता। यही जिंदगी भर उसका काम था।
उसके पास एक मछली थी जो उलटा तैरती थी। वह अकेली मछली थी दुनिया में।
सभी मछलियां उलटा नहीं तैरतीं; मगर उसके पास एक मछली थी जो उलटा तैरती थी।
ऐसी उसने बहुत सी चीजें इकट्ठी की थीं सारी दुनिया में घूम-घूम कर।
अनूठा खोजी था।
मैं जबलपुर रहा वर्षों तक। जबलपुर के पास ही एक खजूर का वृक्ष था, जो किसी ने कभी मुझे नहीं कहा। जब मैं पढ़ा तो रॉबर्ट रिप्ले की किताब में पढ़ा कि जबलपुर के पास, इतने मील दूर पर, फलां जगह एक खजूर का वृक्ष है, जिसमें दो फुनगे हैं। खजूर के वृक्ष में एक ही होता है। शाखाएं नहीं होतीं खजूर के वृक्ष में। वह अकेला वृक्ष है सारी पृथ्वी पर। जब उसकी किताब पढ़ी, तब मैं गया खोजने। मिला मुझे, वह वृक्ष था वहां। मगर वह उसके संबंध में कैसे पता लगाया था, क्या किया था! वह जिंदगी भर खोजता रहा है इसी तरह की चीजें, जो अनूठी हों, विरली हों।
तो उसने कहाः मेरी मौत भी विरली होनी चाहिए। चौबीस घंटे पहले खबर दे
दी कि मर गया। अखबारों में संपादकीय छपे, चित्र छपे, प्रशंसाएं छपीं, स्तुतियां छपीं। वे दूसरे दिन उसने सब पढ़ीं और फोटोग्राफर को बुला कर कहा कि इनको पढ़ते हुए मेरे चित्र निकाल लो; अब ये चित्र छाप दो कि यह आदमी इतिहास का पहला आदमी है, जिसने अपनी मौत की खबर खुद पढ़ी। अब मैं निश्चिंतता से मर सकता हूं, क्योंकि सब ठीक है, कहीं कोई गड़बड़ नहीं है। मरने पर कोई किसी के खिलाफ बोलता भी नहीं। इतनी दया लोग करते हैं। जिंदगी भर तो खिलाफ बोले; फिर पश्चात्ताप करते हैं। जिंदगी में कौन किसके पक्ष में बोलता है! मरने पर कोई खिलाफ नहीं बोलता। लोग कहते हैंः अब तो बेचारा मर गया! अब जैसा भी था। मरे हुए आदमी को सभी कहते हैं कि स्वर्गीय हो गया। वे चाहे नरक जाएं, इससे कोई मतलब नहीं है। सभी तो स्वर्ग नहीं जाते होंगे। दिल्ली में जो मरते हैं, उनके संबंध में भी अखबार कहता हैः स्वर्गीय हो गए! दिल्ली में मरने वाला आदमी स्वर्ग जाए, इसकी संभावना बहुत कम है। फिर नरक कौन जाएगा? फिर नरक का क्या होगा?
मरने के बाद तो लोग प्रशंसा ही करते हैं। यह भी पश्चात्ताप है कि अब जिंदगी भर तो बेचारे की खींचा-तान की, जिंदगी भर तो सताया, निंदा की; अब मरते वक्त तो शांति दे दो। अब तो मर ही गया! अब तो झंझट मिट ही गई! अब तो इसकी प्रशंसा करने में कुछ हर्ज नहीं है।
वोल्तेयर और रूसो में बड़ा विरोध था फ्रांस में। जब वोल्तेयर मरा और रूसो को किसी ने आकर खबर दी कि सुना आपने, वोल्तेयर मर गया! तो रूसो ने पता है, क्या कहा? कहा कि ही वा.ज ए ग्रेट मैन, प्रोवाइडेड ही इ.ज रियली डेड। वे एक महान व्यक्ति थे, अगर सच में ही मर गए हों। मगर सच में ही मर गए हों! यह पक्का हो तो मैं कह सकता हूं कि महान व्यक्ति थे। अगर जिंदा हों तो पुराना झगड़ा जारी है।
जिंदगी में कभी कुछ अंत तो आता नहीं। और सभी कुछ अंत भी आ जाए, जैसा होता नहीं, तो भी तुम्हें अपने मरने का सोचना पड़ेगा कि कोई कफन चढ़ाएगा, कोई अरथी में जाएगा, कोई ठीक से दफना देगा! कुत्ते की मौत तो नहीं हो जाएगी? तो यहां अंत है ही नहीं; यहां सिलसिला जारी रहता है। भीड़ से जब तुम आते
हो मेरी तरफ, तो तुम्हें यह सब जोखिम लेनी पड़ती है। यह जोखिम पुरानी है। जिन लोगों ने क्राइस्ट को चुना था, उन्होंने भी यह जोखिम ली थी। और जिन्होंने कृष्ण को चुना, उन्होंने भी जोखिम ली थी। जिन्होंने कबीर को चुना, उन्होंने भी जोखिम ली थी। जिन्होंने नानक को चुना, उन्होंने भी जोखिम ली थी। यह जोखिम सनातन है। यह धार्मिक व्यक्ति को लेनी ही पड़ती है। और जब भी कृष्ण या क्राइस्ट बोलेंगे तो ध्यान रखना, वे इस लिहाज से नहीं बोलते कि लोग क्या मानते हैं। लोग क्या मानते हैं, इस हिसाब से तो राजनीतिज्ञ बोलता है। राजनीतिज्ञ वही बोलता है जो लोग मानते हैं। राजनीतिज्ञ पहले पता लगाता है कि लोग मानते क्या हैं? लोगों की धारणा क्या है? जो लोग सुनना चाहते हैं, राजनीतिज्ञ वही बोलता है; उसे और बढ़ा-चढ़ा कर

बोलता है। लोगों के विपरीत राजनीतिज्ञ नहीं बोलता, क्योंकि लोगों से मत लेना है। राजनीतिज्ञ तो लोगों पर निर्भर है। जिसको तुम नेता कहते हो, वह अपने अनुयायियों का भी अनुयायी होता है। वह उन्हीं की तरफ देख कर चलता है। मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने गधे पर बैठ कर भागा जा रहा था। बाजार से निकला तो लोगों ने पूछाः अरे! कहां जा रहे हो नसरुद्दीन? उसने कहाः मुझसे मत पूछो, इस गधे से पूछो।
उन्होंने पूछाः हम समझे नहीं कि गधे से क्यों पूछो!
उसने कहा कि मैं बहुत इसको चलाने की कोशिश करके हार चुका; हर जगह उपद्रव खड़ा कर देता है; बीच बाजार में अटक जाएगा, टस से मस नहीं होगा; भीड़ लग जाती है। तो मैंने एक राज सीख लियाः यह जिस तरफ जाता है, मैं उसी तरफ जाने देता हूं। इसमें कम से कम अपनी मालकियत तो कायम रहती है। लोगों को यह तो लगता है कि नसरुद्दीन का गधा बिल्कुल आज्ञाकारी है। इससे किसी को कानोंकान खबर नहीं होती कि मेरे और इसके बीच कुछ झंझट है।
ऐसा ही नेता होता है। नेता पहले देख लेता है--अनुयायी कहां जा रहे हैं? किस तरफ झंडा ऊंचा कर रहे हैं? वह झट से उन्हीं के आगे खड़ा हो जाता है।
इतनी वह कुशलता जानता है कि झंडा किसी तरफ ऊंचा हो रहा हो, उसे आगे खड़ा हो जाना है। बस वह भीड़-भाड़ में पीछे खड़ा नहीं होता; भीड़ के आगे खड़ा हो जाता है।
भीड़ पूरब जाए तो वह पूरब जाता है। भीड़ पश्चिम जाए तो वह पश्चिम जाता है। भीड़ कहती है कि गरीबी हटाओ, तो वह और जोर से चिल्लाता है कि गरीबी हटाओ। भीड़ कहती है कि समाजवाद लाओ, तो वह कहता हैः यही तो लाना है, समाजवाद लाओ! मगर कुछ भी हो, मैं आगे हूं! जो भीड़ कहती है, उसको वह और जोर से कहता है। और कुशल राजनेता उसे कहते हैं, जो भीड़ में बदलते हुए मौसम को पहचान ले; समय के पहले पहचान ले। नहीं तो चूक जाएगा; कोई दूसरा चिल्लाने लगेगा आगे खड़े होकर।
तुम चले जा रहे हो। तुमने पीछे लौट कर नहीं देखा। ऐसा ही इंदिरा का हुआ न! चली गई, चली गई, चली गई; पीछे लौट कर देखा ही नहीं कि भीड़ आ रही है कि नहीं आ रही है। जब देखा तो भीड़ जा चुकी थी। तब वहां कोई भी नहीं था। पुलिस के आफिसर थे, कलेक्टर-कमिश्नर थे, सी.बी.आई. के लोग थे--सब तरह के और चमचे थे, वे थे। लेकिन जनता जा चुकी थी। देर हो गई। चूक हो गई।
बीच-बीच में लौट कर देखना पड़ता है नेता को कि जनता आ रही है कि नहीं, जनता किधर जा रही है? जल्दी से हट कर उसी के आगे हो जाना है। जनता को यह भ्रम बना रहता है कि नेता आगे है; हमारे साथ है।
संत कोई नेता नहीं है। तुम्हें क्या अच्छा लगता है, वह नहीं बोलता; जो
है वह बोलता है। इस फर्क को ख्याल में ले लेना। जैसा है वैसा बोलता है। जैसा है वैसा का वैसा बोलता है--तुम्हें रुचे, न रुचे; तुम्हें मीठा लगे, तुम्हें कड़वा लगे। बहुत संभावना तो है कि कड़वा लगेगा। क्योंकि तुम्हें जो चीज मीठी लग रही है, वह जहर है। और तुम जन्मों से उसके आदी हो गए हो।
जब कोई तुम्हें तुम्हारी आदतों से जगाता है तो पीड़ा होती है। सुबह तुम बड़ी गहरी नींद में सो रहे हो, बड़े मजे के सपने देख रहे हो--और कोई हिलाने लगता है कि उठो! और यह भी हो सकता है कि रात तुम कह कर सोए होओ कि सुबह मुझे उठा देना, कि मुझे ट्रेन पकड़नी है, कि मुझे किसी काम पर जाना है। तुम्हारे ही कहने के कारण कोई आदमी तुम्हें सुबह उठा रहा हो, तो भी दुश्मन मालूम पड़ता है; तो भी लगता है कि यह दुष्ट कहां से आ गया! कि इसको जरा भी अकल नहीं है! कि अभी एक करवट तो और ले लेने दे! तुम खुद कहते हो, तो भी जगाने वाला दुश्मन मालूम पड़ता है। और संतों से तो तुमने कभी कहा नहीं कि जगाओ। और यह तुम्हारी नींद बड़ी पुरानी है और वे तुम्हें झकझोरे डालते हैं। वे तुम्हें हिलाते हैं। वे कहते हैंः उठो! वे तुम्हें चोट करते हैं। तुम मधुर सपना देख रहे थे। तुम महल देख रहे थे सोने का। तुम देख रहे थे सुंदर स्त्रियां। तुम देख रहे थे अप्सराएं। तुम स्वर्ग में विराजमान थे। तुम सिंहासन पर बैठे थे; देवी-देवता तुम्हारे चारों तरफ नाच रहे थे और तुम्हारे यशोगान कर रहे थे। और ये सज्जन आ गए और ये तुम्हें हिलाने लगे कि उठो, कि यह सब सपना है, कि जागो!
संत से तुम सदा नाराज होओगे। जो संत से राजी हो जाए, वह संत हो गया।
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई।

मीरा कहती हैः भगत देख राजी हुई! भगत को देख कर जो राजी हो जाए, वह भगत।
संत को देख कर जो राजी हो जाए, वह संत।
संत बहुत नहीं हैं। तुम्हें अड़चनें हैं। तुम सत्य तो जानना ही नहीं चाहते, क्योंकि तुम जीते झूठ में हो। फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा है कि लोग मर जाएंगे, अगर उनके झूठ छीन लिए जाएं। लोग झूठों के सहारे जीते हैं। झूठों से उनकी जिंदगी में चिकनाई बनी रहती है; लुब्रीकेंट हैं झूठ।
कोई स्त्री तुमसे कह देती हैः तुमसे सुंदर पुरुष कोई भी नहीं! अब यह सरासर झूठ है। इतनी बड़ी पृथ्वी पर तुमसे सुंदर कोई पुरुष नहीं! और इस स्त्री ने ऐसे जाने कितने पुरुष हैं? देखे कितने पुरुष हैं अभी? कोई परीक्षा हुई है? कोई ओलंपिक हुआ है? कोई चुनाव हुआ है, कहीं तय हुआ है कि कौन आदमी सबसे ज्यादा सुंदर है? नहीं, लेकिन तुम भी फिकर नहीं करते, हालांकि तुम भी जानते हो कि यह सरासर झूठ है। मगर यह झूठ मानने जैसा लगता है।
तुम किसी स्त्री से कहते हो कि तुझसे मुझे जितना प्रेम है, किसी से न कभी था, न कभी होगा; और जनम-जनम यह टिकेगा, यह अमर है। यह झूठ है। झूठ इसलिए है कि यही बात तुम और स्त्रियों से भी पहले कह चुके हो। और झूठ इसलिए है कि यही बात बहुत संभव है कि तुम और स्त्रियों से आगे भी कहोगे। और झूठ इसलिए है कि यही बात और पुरुषों ने भी इस स्त्री से पहले कही है, तब भी इसने माना था। और झूठ इसलिए है कि क्षणभंगुर मन से शाश्वत प्रेम हो कैसे सकेगा? मन ही क्षणभंगुर है। आज जो स्त्री सुंदर लग रही है, कल हो सकता है दो कौड़ी की मालूम होने लगे।
अक्सर ऐसा हो जाता हैः स्त्री मिल जाए तो दो कौड़ी की हो जाती है; न मिले तो प्रेम कायम रहता है। धन्यभागी थे मजनू कि स्त्री नहीं मिली; मिल जाती तो सिर फोड़ते। कहीं बैठे बाजार में चना बेचते होते। बाल-बच्चे पालते। तो नहीं मिली, तो मजा कर रहे हैं; तो लैला-लैला चिल्ला रहे हैं।
एक आदमी एक पागलखाने में गया। उसने एक कोठरी में एक आदमी को सिर पीटते देखा। और एक तसवीर हाथ में लिए छाती से लगाए है और आंखों से आंसुओं की जलधार बह रही है। तो पूछा उस आदमी ने कि इस पागल को क्या हुआ?
उसने कहा कि देखते नहीं वह तसवीर! इस स्त्री के पीछे दीवाना था। वह इसे मिली नहीं।
बात समझ में आ गई कि रो रहा है, दुखी हो रहा है। इसी के पीछे पागल हो गया।
उसके सामने की कोठरी में एक दूसरा आदमी था। वह अपने कपड़े फाड़ रहा था
और दीवालों को घूंसे मार रहा था और सिर पटक रहा था जमीन पर और बाल नोंच रहा था। पूछाः इसको क्या हो गया?
उसने कहाः अब इसकी मत पूछो। जो स्त्री उसको नहीं मिली, वह इसको मिल गई। यह उस स्त्री के मिलने की वजह से पागल हो गया।
जो आज इस क्षण में लगता है, वह एक क्षण बाद टिकेगा? जो इस क्षण की प्रतीति है, वह इस क्षण की प्रतीति है; वह कल के क्षण में भी होगी, पक्का नहीं है। मगर आदमी झूठ पसंद करता है। झूठ प्यारे लगते हैं। झूठ में खुशामद है। झूठ फुसलाते हैं। सच में चोट होती है।
यूनान के बहुत बड़े विचारक प्लेटो ने अपने भविष्य के राज्य में कवियों
को प्रवेश नहीं दिया है। उसने आयोजना की है कि उसके रिपब्लिक में, उसका जो भविष्य का कल्पना का राज्य है, उसका जो राम-राज्य है, उसमें कवियों को कोई जगह नहीं होगी। कवि बड़े नाराज थे। और लोगों ने पूछा भी प्लेटो से कि यह बात क्या है? कवियों से ऐसी क्या नाराजगी है? और सब होंगे, कवि क्यों नहीं होंगे?
तो प्लेटो ने कहाः कवियों के कारण झूठ चलता है। और मेरे राज्य में झूठ नहीं चाहिए; सच चाहिए। अब और सपने नहीं, अब यथार्थ चाहिए।
लेकिन प्लेटो का राज्य कभी बनेगा नहीं। नीत्शे ज्यादा सही बात कह रहा
है कि लोग झूठ में ही जीते हैं; लोग झूठ नहीं छोड़ सकते। झूठ हट जाए तो उनकी गाड़ी ठहर जाए। झूठ हट जाए तो जीने योग्य कारण ही न रह जाए।
कोई इस झूठ में जीता है कि धन मिल जाएगा तो बड़ा सुख होगा। यह झूठ है।
किसी को कभी धन मिलने से सुख नहीं हुआ। सारी बातें इस पक्ष में गवाह देती

हैं कि किसी आदमी को धन मिलने से सुख नहीं हुआ। मगर फिर भी यह झूठ चलता है कि धन मिल जाएगा तो सुख होगा; पद मिल जाएगा तो सुख होगा। किसी को कभी नहीं मिला। पूरा मनुष्य-जाति का इतिहास निरपवाद रूप से सिद्ध करता है कि पद मिलने से किसी को सुख नहीं मिला। नहीं तो बुद्ध सिंहासन छोड़ कर जाते क्यों? नहीं तो महावीर राजमहल छोड़ जंगलों में क्यों भटकते? पद से मिलता होता सुख, सुगम हो गई होती बात; तब तो सिकंदर और नेपोलियन और चंगीजखां और नादिरशाह और स्टैलिन, सभी बुद्धपुरुष हो जाते। मगर नहीं, पद से कहीं सुख नहीं मिलता। पर झूठ जारी है। झूठ हमारे रग-रग, रेशे-रेशे में प्रविष्ट हो गया है। आदमी की भीड़ झूठ से जीती है।
संत को कहना है वही--जो है, जैसा है; वैसे का वैसा। पत्थर को पत्थर, गुलाब को गुलाब। जैसा है, वैसा। फिर चोट लगे तो लगे; न लगे तो न लगे। जिसको नहीं लगेगी चोट, या तो वह बहरा है या जाग गया। जिसको चोट लगेगी, उसे लगनी ही चाहिए, क्योंकि चोट ही जगाएगी, नहीं तो वह जागेगा कैसे?
मैं तो वही कहता हूं जैसा है। उसमें रत्ती भर फर्क नहीं करना चाहता हूं।
मैंने सुना, एक गांव में एक महात्मा आए। प्रवचन दे रहे थे। तो सामने
ही एक महिला अपने बच्चे को लिए बैठी थी, वह बच्चा बड़ी गड़बड़ कर रहा था। अब बच्चे को तो कुछ मतलब ही नहीं महात्मा से। कभी कुछ कहता, कभी कुछ कहता। महात्मा भी परेशान हो रहे थे। उनका प्रवचन भी ठीक से नहीं चल पाता था--उस बच्चे के कारण। वह महिला उसे बार-बार डांटती-डपटती, दबाती, मगर वह फिर-फिर उठ कर खड़ा हो जाता, कुछ फिर कहता। आखिर महात्मा के बरदाश्त के बाहर हो गई जब बच्चे ने यह कहा कि मुझे पेशाब लगी है। मां ने उसको कहाः चुप रह, चुप रह! मगर वह काहे को चुप रहे! वह बोला कि मुझे जोर से पेशाब लगी है।
बच्चे भी होते हैं, वे भी अपना रास्ता निकाल लेते हैं कि अब तुम उनको दबा भी नहीं सकते। अभी कभी आइसक्रीम मांग रहा था थोड़ी देर पहले, चलो समझा- बुझा दिया कि शाम को दे देंगे, मगर अब पेशाब लगी है तो अब शाम को थोड़े ही। उसने भी तरकीब निकाली। आखिर बच्चों में भी बुद्धि तो है ही। उसने भी बाधा खड़ी कर दी। उसने कहा कि अब ऐसी चीज लगी है कि अब इसे इसी वक्त होना चाहिए। आखिर महात्मा से नहीं रहा गया। महात्मा ने कहा कि सुन देवी, बच्चे में संस्कार नहीं है। तू बड़े घर की है, प्रतिष्ठित कुल तेरा, समृद्ध है; बच्चे को कुछ संस्कार दे। सत्संग में, मंदिर में इस तरह के शब्द बोले जाते हैं? पेशाब!
तो महिला ने कहाः अब मैं इसको और कौन सा शब्द सिखाऊं?
तो उन्होंने कहा कि कुछ भी सिखा दे, कोई भी एक प्रतीक शब्द। समझो कि यह
कह दे कि मुझे गाना गाना है। जब भी इसको पेशाब लगे, यह कह दे कि गाना गाना है। किसी को पता भी नहीं चलेगा, तू अपने ले गई बाहर। मगर यह क्या कि बीच में खड़ा होकर वह कह रहा है! इधर ब्रह्म-चर्चा चल रही है और इसको पेशाब लगी है। महिला को भी बात तो जंची। उसने जाकर बच्चे को खूब समझाया-बुझाया। वह बच्चा राजी भी हो गया। घर में भी, उससे कहा, तू इसी का अभ्यास कर। नहीं तो एकदम से सत्संग में कैसे अभ्यास करेगा! तो घर में भी वह इसी का अभ्यास करता। कभी भी जाता तो कहता कि गाना गाना है।
फिर तीन महीने बाद झंझट हुई। संयोग की बात कि महात्मा फिर आए गांव। उसी महिला के घर मेहमान हुए। रात को, संयोग, कोई पड़ोसी बीमार हो गया बहुत और महिला को जाना पड़ा। वह बच्चा अकेला सोने को राजी नहीं था तो उसने कहा कि महात्मा के पास सो जाओ। तो महात्माजी के पास सुला गई और चली गई। रात के कोई दो बजे होंगे। महात्माजी की बड़ी तोंद लयबद्ध नीचे-ऊपर हो रही थी और उनकी नाक से सातों स्वर एक साथ निकल रहे थे। और वे बड़े मस्त थे अपनी नींद में। तभी उस बच्चे ने उनको हिलाया और कहा कि महात्माजी, महात्माजी! गाना गाना है!
महात्मा ने कहाः हद्द हो गई! धत तेरे की! आधी रात गाना गाना है? यह भी कोई बात हुई? सो जा चुपचाप!
महात्मा जोर से दबकाए उसको तो वह थोड़ी देर तो पड़ा रहा; लेकिन जब गाना गाना ही है तो वह पड़ा भी कैसे रहे! उसने फिर थोड़ी देर बाद जब उनका फिर स्वर

जमने लगा और तोंद फिर हिलने लगी और आवाज फिर निकलने लगी, बच्चे ने फिर उनको हिलाया और कहा कि महात्माजी, गाना गाना ही पड़ेगा।
महात्मा ने कहाः तू सोने देगा रात भर कि नहीं? यह किस तरह का गाना? दिन में गाना! चुपचाप सो जा, नहीं तो दो चपातें लगा दूंगा।
अब महात्मा ने चपातों की बात कही तो वह बेचारा फिर चुप रह गया। लेकिन
अब वह चुप रहे भी कैसे, गाना गाना ही था। फिर उसने महात्मा को हिलाया थोड़ी देर बाद, उसने कहाः महात्माजी, सुबह तक रुक नहीं सकता, अभी गाऊंगा! महात्मा ने कहाः मोहल्ले-पड़ोस के लोगों को भी जगा देगा। अच्छी झंझट तेरी मां मेरे पीछे लगा गई! यह कोई... । तू चुपचाप सो जा। गाना कोई ऐसी चीज थोड़े ही है कि अभी इतनी जरूरी होगी कि अभी ही गाए।
बच्चे ने कहाः महात्माजी, गा लेने दो; नहीं तो गाना बिस्तर में ही निकल जाएगा।
वे महात्मा बहुत घबड़ा गए कि गाना बिस्तर में निकल जाएगा! तो उन्होंने कहा कि देख, शोरगुल मचेगा, पास-पड़ोस के लोग... । कहां का तेरा गाना, क्या तेरा गाना! तू मेरे कान में चुपचाप गा दे और फिर सो जा।
बच्चे ने कहाः फिर मत कहना आप! उसने गा दिया। गुनगुना-गुनगुना गाना!
जब गा दिया तब महात्मा को बोध आया। मगर तब तक बहुत देर हो चुकी थी।
मैं, बात जैसी है, उसको वैसी ही कह देना पसंद करता हूं। इधर गोल-गोल बातें खोजने से कोई सार नहीं है; उससे झंझटें बढ़ती हैं। तुम्हारे पास काफी झूठ वैसे ही इकट्ठे हो गए हैं। उन झूठों को तोड़ डालना है। इन सारे झूठों में सबसे बड़ा झूठ है कि इंद्रियों को वश में रखना अनिवार्य है धर्म के लिए। यह सबसे बड़ा बुनियादी झूठ है। परमात्मा इंद्रियां देता है और महात्मा सिखाते हैं कि इंद्रियों को नष्ट कैसे करो!
जार्ज गुरजिएफ कहता था कि मेरे अनुभव में एक बात बड़ी अजीब आई है कि महात्मा परमात्मा के विपरीत मालूम पड़ते हैं।
इस बात में बड़ा मूल्य है। परमात्मा इंद्रियां देता है और महात्मा कहते हैंः इंद्रियों का दमन करो। यह बात जंचती नहीं। यह धार्मिक नहीं हो सकती। इंद्रियों को परिशुद्ध करो; दमन नहीं। इंद्रियों का निखार करो; परिष्कार करो। आंखों को इतना उज्ज्वल बनाओ कि जहां भी, जो भी दिखाई पड़े, परमात्मा ही अनुभव हो। कानों को इतना शुद्ध करो कि जो स्वर भी सुनाई पड़े, वह उसी के अनाहत नाद का अंग हो। प्रेम को ऐसा परिपूर्ण करो कि जिस पर भी प्रेम डालो, वही तुम्हारा कृष्ण हो जाए।
तो मैं इंद्रियों के दमन के पक्ष में नहीं हूं। जो पक्ष में हैं, वे धार्मिक नहीं हैं। लेकिन इंद्रियों के दमन करने की बात लोगों को जंची। जंची इसलिए कि दमन करने से अहंकार को मजा आता है। किसी को भी दबाओ तो अहंकार को मजा आता है। दूसरे को दबाओ तो भी मजा आता है। अपने को दबाओ तो भी मजा आता है। अहंकार को मजा ही दबाने में आता है। किसी की छाती पर बैठ जाओ तो मजा आता है; अपनी ही छाती पर बैठ जाओ तो भी मजा आता है। अहंकार संघर्ष से जीता है। तो या तो दूसरों से लड़ो और दूसरों को हराओ। मगर दूसरों से लड़ना हमेशा संभव नहीं होता और महंगी भी बात है--तो अपने से ही लड़ो, अपने को ही दबाओ। या तो दूसरों को जीतो या अपने को जीतो--मगर जीतो जरूर। जहां जीत है वहां अहंकार को मजा आता है कि मैं कुछ हूं, मैं कुछ खास, विशिष्ट।
तो इंद्रियों को दबाने की बात अहंकारियों को खूब जमी। और समाज को भी
यह बात जमी, क्योंकि जो इंद्रियों को दबाने में लग जाता है, वह समाज के लिए सहयोगी हो जाता है; वह दूसरों को नहीं दबाता। नहीं तो वह दूसरों को दबाएगा। दबाने का कहीं उसे रस है तो दबाने का रस वह निकालेगा। अगर अपने को दबाने लगे तो समाज सुविधा में हो जाता है। उस आदमी से झंझट मिटी। वह अब दूसरे को नहीं दबाता। वह पड़ोसियों को नहीं सताता। वह किसी दूसरे को नीचा नहीं दिखाना चाहता। वह अपने ही साथ जूझ रहा है। वह अपने ही दाएं-बाएं हाथ को लड़ा रहा है। वह अंधेरे में अपनी ही छाया से लड़ रहा है। वह जाने, उसका काम जाने।
समाज कहता हैः यह सज्जन आदमी है। दुर्जन समाज उसे कहता है जो दूसरों
को दबाता है; उसको कहता है गुंडा, जो दूसरों को दबाता है--दुष्ट! जो अपने को दबाता है, उसको कहता है साधु। मगर दोनों के पीछे राज क्या है? बात तो एक ही

है। दबाने का रस ही अहंकार है। और जब तक दबाना है तब तक तुम समर्पण न कर सकोगे। क्योंकि दबाना संकल्प है।
परमात्मा के चरणों में तो सब छोड़ देना है--सहज भाव से; इतने परिपूर्ण भाव से कि वह जैसा रखे वैसे रहेंगे। जैसे मीरा कहती हैः जहां उठाता, उठ जाते; बैठाता, बैठ जाते; जो करवाता, करते। कर्ता वह है। हम मात्र निमित्त। हम उपकरण मात्र।
अर्जुन ने वही बात कृष्ण से गीता में पूछी है। अर्जुन बनना चाहता है संकल्पवान। वह कहता हैः यह सब मैं छोड़ कर जाता हूं। इसमें क्या रखा है? जंगल में चला जाऊंगा, संन्यासी हो जाऊंगा। अपने आत्मज्ञान की खोज में लगूंगा। चित्त को शांत करूंगा। इस युद्ध में क्या रखा है? इसमें लोग कटेंगे, मरेंगे, यह मैं नहीं करना चाहता हूं।
लेकिन "मैं नहीं करना चाहता हूं", इसमें कर्ता का भाव है। कृष्ण उसे यही समझाते हैं। पूरी गीता इस एक सूत्र पर घूमती है, इस एक कील पर घूमता है गीता का चाक कि तू निमित्त है; तू कर्ता नहीं है, यह भ्रांति तू छोड़। करने वाला परमात्मा है। वह जो करवाए। अगर उसने तुझे युद्ध में ला खड़ा किया है, तो ठीक, यही मर्जी। होने दे। तू बीच में अड़ मत। तू सिर्फ द्वार खोल दे। परमात्मा को तेरे से उतरने दे और जो उसे करना है, कर। क्योंकि मैं तुझसे कहता हूं अर्जुन कि जो मरने वाले हैं, वे मर ही गए हैं। जो मरेंगे, वे मर ही चुके हैं। मैं उन्हें देख रहा हूं। वे मुर्दे हैं। सिर्फ कोई धक्का देने वाला चाहिए और उनकी लाशें गिर जाएंगी। अगर तू धक्का न देगा तो कोई और धक्का देगा। मौत तो होने ही वाली है। यह तेरे कारण नहीं हो रही है। तू अपने को कारण मान कर अहंकार को मत भर। तू अपने को कर्ता मान ही मत, उपकरण मात्र हो जा।
जो बात कृष्ण बहिर्युद्ध के लिए कहते हैं, वही मैं तुमसे कहना चाहता हूं तुम्हारे पूरे जीवन के युद्ध के लिएः तुम चेष्टा मत करो, कर्ता मत बनो। तुम सहज उसके हाथ में छोड़ दो। उसने आंखें रूप देखने को दी हैं, तो जरूर रूप में कुछ छिपा है, तो तुम रूप को गौर से देखो। तुम प्रगाढ़ता से देखो। तुम रूप में गहरे डुबकी लगाओ। तुम रूप की तलहटी में जाओ--और तुम अरूप को छिपा पाओगे। अगर देह प्यारी लगती है तो और गहरे उतरो; देह के भीतर तुम मन का सौंदर्य पाओगे। और गहरे उतरो; मन के भीतर तुम आत्मा का सौंदर्य पाओगे। और गहरे उतरो; और हर आत्मा के भीतर तुम परमात्मा का सौंदर्य पाओगे। यह जो देह पर थोड़ी सी झलक दिखाई पड़ती है--आभा, सौंदर्य, महिमा--यह आती भीतर से ही है। यह झलक अंतर की ही है। तुम इस छाया में मत अटक जाओ। तुम इसके मूलस्रोत को खोजो। जैसे झील में चांद बना, सुंदर लगता है; लेकिन झील में चांद है नहीं, चांद तो आकाश में है; झील में तो प्रतिबिंब है। जो आदमी झील में डुबकी मार जाए चांद को खोजने के लिए, वह नासमझ है; वह कभी चांद तक नहीं पहुंचेगा। अब ये जो लोग चांद पर गए, अगर झीलों में उतरते तो चांद पर कभी नहीं पहुंचते। कैसे पहुंचते? प्रतिबिंब में तो कोई खोज नहीं हो सकती। प्रतिबिंब में अंततः हाथ में राख लगती है--राख भी नहीं लगती; कोरे खाली हाथ रह जाते हैं।
तो जिस आदमी ने शरीर में सौंदर्य को देखा और शरीर में ही खोजने चला गया, उसने भूल की; वह झील में डुबकी मारने लगा और चांद ऊपर है। और झील में खोजा-बीना और नहीं पाया चांद को। बाहर निकल कर उसने कहा कि चांद है ही नहीं। यह दूसरी भूल है। पहली भूल भोगी की भूल थी कि शरीर में सौंदर्य खोजने गया। दूसरी भूल तुम्हारे तथाकथित त्यागी की भूल है। वह कहता हैः सौंदर्य है ही नहीं; मैंने खोज कर देखा, वहां कुछ भी नहीं है।
मैं तुमसे कहता हूंः दोनों गलत हैं। आंखें ऊपर उठाओ। अगर झील में सौंदर्य है तो कहीं से आता होगा। झील में नहीं मिलता है खोजने से, तो जरूर प्रतिबिंब होगा; इसलिए नहीं मिलता; दिखता तो है, मिलता नहीं। दर्पण के सामने खड़े हो, तुम दिखाई पड़ते हो; मगर अब दर्पण को तोड़ कर खोजने जाओगे तो वहां कुछ नहीं पाओगे।
जब भी कहीं कोई चीज दिखाई पड़े और खोजने पर मिले न, तो एक बात सिद्ध हो जाती है कि वह प्रतिबिंब था, रिफ्लेक्शन था। मगर प्रतिबिंब होने के लिए बिंब तो होना ही चाहिए, नहीं तो प्रतिबिंब कैसे होगा? झील में चांद दिखा,

तो आकाश में चांद चाहिए। और शरीर में सौंदर्य दिखा, तो सौंदर्य कहीं तो चाहिए ही; नहीं तो शरीर में भी कैसे दिखाई पड़ेगा? शरीर में खोजने से नहीं मिला, यह बात सच है। भोगी गलत सिद्ध हुआ। अब त्यागी कहता है कि हम शरीर को छोड़ कर जा रहे हैं; हम शरीर के दुश्मन हो गए हैं, अब हम कभी झील में न झांकेंगे, अब हम झील से भाग रहे हैं; अब हम ऐसी जगह जा रहे हैं जहां झील होगी नहीं, हम रेगिस्तान जा रहे हैं; हम तो अब रेगिस्तान में बैठेंगे जहां जल हो ही नहीं, क्योंकि जल बड़ा धोखेबाज है। मगर यह दूसरी भूल हो गई।
चांद है। झील में नहीं है, यह सच; मगर चांद कहीं है। आकाश में है। आंखें ऊपर उठाओ।
इस जगत में जो भी सौंदर्य है, परमात्मा का है--उसका ही प्रतिफलन। इस जगत में जो भी संगीत है, अनाहत नाद का है--उसका प्रतिफलन।
इसलिए मैं इंद्रिय-विरोधी नहीं हूं। इंद्रियों बेचारियों का क्या कसूर? इनको फोड़ने से कुछ भी न होगा। इनको जड़ कर डालने से कुछ भी न होगा। इनको तुम काट भी डालो तो भी तुम्हारी वासना न जाएगी, क्योंकि वासना तो भ्रांति का नाम है; इंद्रियों से उसका कोई संबंध नहीं है।
तुम क्या सोचते हो बुद्ध की आंखें तुमसे कम देखती हैं? तुमसे बहुत ज्यादा देखती हैं। गहरा देखती हैं। पारदर्शी हो गई हैं। एक्सरे उपलब्ध हो गया उन आंखों को। आर-पार देखती हैं। अब कोई चीज उनके बीच में बाधा नहीं बनती। बुद्ध अंधे थोड़े ही हैं। बुद्ध आंख वाले हैं।
बुद्ध ने कहा है कि मुझमें और तुममें फर्क इतना ही हैः तुम भी आंख वाले हो, मैं भी आंख वाला हूं; तुम आंख बंद किए बैठे हो, मैंने आंख खोल कर देखा। बस इतना ही फर्क है।
तुम कहते होः "आमतौर से समझा जाता है कि धार्मिक बनने के लिए इंद्रियों को वश में रखना अनिवार्य है।"
जरा भी नहीं। चैतन्य को जगाओ--इंद्रियां अपने से वश में हो जाती हैं। इंद्रियों को वश में करने से चैतन्य नहीं जगता। जागरूक बनो। प्रेम और ध्यान को उमगाओ--और इंद्रियां वश में हो जाती हैं। सभी इंद्रियां उसी परमात्मा के चरणों में समर्पित हो जाती हैं। क्योंकि सभी तरफ से उसी की खबर आती है। सभी इंगित उसी की तरफ तीर बने हुए हैं।
"आप कहते हैं--इंद्रिय-दमन भक्ति का लक्षण नहीं है।"
हो ही नहीं सकता। भक्त तो आह्लादित होता है; सारी इंद्रियों के साथ नाचता है परमात्मा के सामने। भक्त की तो सारी इंद्रियां संवेदनशील हो जाती हैं।
तुम जरा मीरा की सोचो, जो ऐसे प्यारे गीत गा सकी। इसकी इंद्रियां बड़ी संवेदनशील रही होंगी। यह जगत के सौंदर्य को नहीं देखती थी, ऐसा नहीं है। कल के गीत में देखा, राणा को कहती हैः तेरा देश रंगरूड़ो। बड़ा रंगीन है, बड़ा सुंदर है। लेकिन मेरा मन तेरे देश में नहीं लगता, क्योंकि राणा तेरे देश में साधु नहीं हैं। सौंदर्य है, लेकिन ऊपर-ऊपर, भीतर का सौंदर्य नहीं है। साधु नहीं हैं। देह का सौंदर्य है; आत्मा का सौंदर्य नहीं है। इसलिए मेरा मन तेरे देश में नहीं भाता। तेरा देश बुरा है, ऐसा नहीं। तेरा देश बड़ा प्यारा है, मगर कुछ चीज की कमी है। मंदिर सुंदर है, लेकिन मूर्ति नहीं है। मंदिर प्यारा है, संगमरमर का है; लेकिन मंदिर का राजा मौजूद नहीं है। तेरे देश में साध नहीं हैं। इसलिए मन नहीं भाता। इसलिए मैं उधर लौट कर नहीं आती। बाहर-बाहर सब कुछ है; भीतर-भीतर सब खाली है।
थाली सोने की है; भोजन उसमें बिल्कुल नहीं है। क्या करोगे ऐसी थाली का? देह सुंदर है और आत्मा कुरूप है। क्या करोगे ऐसी देह का?
लेकिन ध्यान रखनाः इसमें देह का कोई कसूर नहीं है। देह अगर कुरूप है
तो इसीलिए कुरूप है कि भीतर सुंदर आत्मा को जन्माने में तुम असफल हो गए। भीतर जगाओ सौंदर्य को--और तुम एक चमत्कार देखोगे! तुम एक चमत्कार देखोगे कि जैसे-जैसे भीतर ध्यान, जैसे-जैसे भीतर भक्ति, जैसे-जैसे भीतर प्रेम का आविर्भाव होता है, वैसे-वैसे देह पर भी सौंदर्य की आभा छाने लगती है। देह में एक नवीन प्रकाश आ जाता है; एक नई चमक आ जाती है! अलौकिक! इस पृथ्वी की नहीं, परलोक की!

तो दमन तो लक्षण नहीं है। ऊर्ध्वगमन लक्षण है भक्ति का। इंद्रियों को उठाना है परमात्मा की तरफ। इंद्रियां नीचे की तरफ न बहती जाएं पदार्थ की तरफ; इंद्रियां उठने लगें। इंद्रियों को पंख लगें। उड़ें इंद्रियां आकाश की तरफ। फिर बड़ी प्यारी हैं, अदभुत हैं। जिन आंखों ने संसार में भटकाया है, यही आंखें परमात्मा में रमा देंगी। और जिन कानों ने संसार के शोरगुल में तुम्हें उलझाया है, यही कान तुम्हें अनाहत के नाद से भी भर देंगे।
यही सीढ़ी जो नीचे ले जाती है, ऊपर ले जाती है--सीढ़ी तो एक ही होती है। सीढ़ी मत तोड़ डालना; नहीं तो पीछे पछताओगे। इस बात को कभी ख्याल किया, इस छोटे से तथ्य को कभी विचार किया कि जिस सीढ़ी से तुम नीचे आते हो, उसी से ऊपर जाते हो! चूंकि यह सीढ़ी नीचे ले जाती है, इसको जला मत डालना। नहीं तो ऊपर कैसे जाओगे फिर? फिर ऊपर कभी न जा सकोगे। दिशा बदलो अपनी। नीचे मत जाओ, ऊपर चलो; मगर सीढ़ी तो यही है।
यही इंद्रियां उस परम का द्वार बन जाती हैं और यही इंद्रियां उस परम
के लिए दीवार भी बन जाती हैं। तुम इनको द्वार बनाओ, दीवाल न बनाओ--यह समझ में आता है। लेकिन इनके दमन से यह नहीं होगा। इनके शुद्धिकरण से यह होगा। इनको निखारो। और संवेदनशील बनो। जब फूल को देखो तो और भरपूर देखो--ऐसे डूब कर देखो कि उस घड़ी में फूल के अतिरिक्त कुछ भी न रह जाए और तुम्हें अचानक लगेगा कि फूल के पास ही पास कहीं परमात्मा की ध्वनि भी है।
यह जो मैं कह रहा हूं, यह कोई विश्वास करने की बात नहीं। करो और देखो!
यह तो सीधा प्रयोग है। मैं जो भी कहता हूं, सब प्रयोग है। मैं जो भी कहता हूं, वैज्ञानिक है। करना चाहो तो करके देख ले सकते हो।
कोई वीणा बजा रहा है, तुम सुन रहे हो। और गहरे सुनो। सुनते-सुनते मस्त
हो जाओ। ऐसे सुनो कि डूब जाओ। और अचानक तुम पाओगे कि बाहर की वीणा तो बजती ही रही; भीतर की वीणा बजनी शुरू हो गई। बाहर की वीणा की संगत में भीतर की पड़ी हुई सूनी वीणा पर कुछ स्वर कंपने लगे।
संगीतवादक कहते हैं कि अगर एक ही कमरे में, खाली कमरे में एक वीणा कोने में रख दी जाए और दूसरा संगीतज्ञ, कुशल संगीतज्ञ हो, वह दूसरी वीणा को बजाए, तो तुम चकित होकर देखोगे कि वह जो वीणा कोने में रखी है, उसके तार कंपने लगते हैं, उसमें प्रतिसंवाद पैदा हो जाता है। जब एक वीणा के तार नाचने लगते हैं, तो दूसरी वीणा भी बिना अंगुलियों के तारों को कंपाने लगती है। वह जो कंपन पूरे भवन में भर जाएगा, वह वीणा के तार भी पकड़ लेंगे।
और ऐसी ही घटना घटती है साध-संगत में। किसी की वीणा बज रही है... वही तो मीरा कहती है कि इसीलिए वहां मेरा मन नहीं भाता, वहां साधु नहीं हैं, वहां कोई वीणा को बजाने वाले नहीं हैं--जिनकी वीणा सुन कर मेरी वीणा बज उठे। संगति का और क्या अर्थ होता है? सत्संग का और क्या अर्थ होता है? किसी
की वीणा बज उठी है, तुम अपनी वीणा लेकर उसके पास बैठ गए। तुम्हें पता नहीं कि कैसे वीणा के तार छुओ। तुम्हें यह भी पता नहीं कि वे तार कहां हैं। तुम्हें अपनी अंगुलियों का भी कोई भरोसा नहीं। तुमने संगीत कभी सीखा नहीं। तुम्हें स्वरों का कोई ज्ञान नहीं। कोई फिकर नहीं। जिसकी वीणा बज रही है, उसके पास बैठ जाओ। बैठो कुछ दिन। बैठो कुछ समय। बजने दो उसकी वीणा। एक दिन अचानक तुम पाओगेः तुम्हारे भीतर कुछ कंपा; कुछ कंपन हुआ; कोई लहर समा गई। अचानक तुम पाओगे कि बाहर की वीणा तो बज ही रही है, भीतर कुछ बजने लगा।
यही संवाद है जो गुरु और शिष्य के बीच फलित होता है। यही दान है जो गुरु से शिष्य को मिलता है। यह कोई वस्तु नहीं है जो हाथोंहाथ दी जाती है। यह तो एक संस्पर्श है। यह तो बड़ा अदृश्य संस्पर्श है--चुपचाप हो जाता है; किसी और को पता भी नहीं चलता; कानोंकान किसी को खबर नहीं होती। न कोई चीज आती, न कोई चीज जाती। गुरु से कोई चीज निकल कर शिष्य में नहीं जाती। मगर गुरु के भीतर कुछ कंपता है, नाचता है--और उसी नाच में शिष्य के भीतर कुछ नाचने लगता है।
कार्ल गुस्ताव जुंग ने--पश्चिम के एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने--उसके लिए एक ठीक-ठीक शब्द खोजा है। वह शब्द को कहता हैः सिन्क्रानिसिटी, सह-संवेदनशीलता; संवाद। कुछ यहां घट रहा है, कुछ दूसरी जगह घटने लगता है--ठीक

उसके संवाद में। और दोनों के बीच कोई सेतु भी नहीं है। कार्य-कारण का कोई संबंध नहीं है।
ऐसा नहीं है कि गुरु शिष्य को ज्ञान दे देता है, ऐसा नहीं है। ऐसा होता, तब तो एक गुरु सारी दुनिया को ज्ञान दे देता। और ऐसा भी नहीं है कि शिष्य ज्ञान ले लेता है। लेने-देने की बात ही नहीं होती। शिष्य केवल खुले मन से बैठ जाता है; हृदय को खोल कर बैठ जाता है। शिष्य सिर्फ अपने को असुरक्षित छोड़ देता है। वह कहता हैः तुम्हारी राजी में मेरी रजा है। इधर मैं बैठा हूं। इधर मैं तुम्हारे पास हूं।
हमारे पास जो शब्द हैं कुछ, बड़े मूल्यवान हैं। उनमें एक शब्द हैः उपासना। उपासना का अर्थ होता हैः पास बैठना। उप-आसन। गुरु के पास बैठ गए-- उपासना। यही अर्थ उपनिषद का भी होता है। उपनिषद का अर्थ होता हैः गुरु के पास बैठ गए। और यही अर्थ उपवास का भी होता है कि गुरु के पास बैठ गए।
भूखे मरने से उपवास नहीं होता। लेकिन किसी गुरु के पास बैठे-बैठे भूख
की याद न आए तो उपवास। भोजन भूल जाए, तन की सुध भूल जाए--यह मतलब। गुरु के पास बैठे-बैठे तन की सुध न आए तो उपवास। और गुरु के पास बैठे-बैठे दोनों के तालमेल हो जाएं--तो उपनिषद। वहीं उपनिषद का जन्म होता है। वहीं सत्य का आविर्भाव होता है। और यही उपासना है, यही प्रार्थना है, यही पूजा है। इंद्रियों को जगाओ। इंद्रियों को जीवन दो। जड़ मत करो; संवेदनशील करो।
इंद्रियों को नाचने दो। इंद्रियों को रक्स में आने दो, नाच में आने दो।
इंद्रियां जब अपनी परिपूर्णता पर होंगी, वहीं से छलांग लगती है।
इंद्रियां परमात्मा ने ऐसे ही नहीं दे दी हैं। इसलिए नहीं दे दी हैं कि इनको तोड़ो-फोड़ो।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं जो इंद्रियों के दुश्मन हैं। एक भोगी,
वे इनको नष्ट कर देते हैं। वे नष्ट कर देते हैं क्षुद्र में। क्षुद्र का स्वाद लेते-लेते विराट के स्वाद की क्षमता समाप्त हो जाती है। और तथाकथित त्यागी, वे भी इनके दुश्मन हैं; वे भी इनको नष्ट कर देते हैं।
अब कोई आदमी कांटों पर लेटा हुआ है। वह क्या कर रहा है? वह यह कर रहा
है कि स्पर्श की क्षमता समाप्त हो जाए; शरीर जड़ हो जाए। एक आदमी धूप में खड़ा हुआ है। वह धूप में खड़े होकर क्या कर रहा है? वह यह कर रहा है कि चमड़ी मोटी हो जाए। मोटी चमड़ी कहते हैं न! जिसमें बुद्धि कम होती है उसको कहते हैंः मोटी चमड़ी! मोटी चमड़ी हो जाए, चीजों का परिणाम न हो, संवेदनशीलता खो जाए। मगर यह कोई क्रांति नहीं है।
किसी को तुम गाली दो और उसको समझ में न आए कि तुमने गाली दी और वह उत्तर न दे और हंसता हुआ चला जाए--इसको तुम कोई संतत्व तो नहीं कहोगे! यह मोटी चमड़ी। इनकी अकल में ही न आई कि गाली थी। इनको समझने में वक्त लगता है। इन्होंने सुन भी ली, फिर भी पकड़ में न आई, तो इनको तुम बुद्धू कहोगे, बुद्ध तो नहीं।
बुद्ध भी गाली से प्रभावित नहीं होते हैं, लेकिन उसका कारण यह नहीं है
कि वे बुद्धू हो गए हैं। उसका कारण यह है कि समझ इतनी हो गई कि अब तुम पर दया आती है; गाली देने वाले पर दया आती है। ऐसा नहीं कि गाली समझ में नहीं आती।
मगर ये दोनों तरकीबें काम में लाई जा सकती हैं। या तो इतना बुद्धत्व पैदा करो, इतना बोध, कि गाली समझ में आए और जो गाली दे रहा है उस पर दया आए, करुणा आए कि बेचारा। और तुम्हें कोई चोट न लगे। क्योंकि तुम्हारे बुद्धत्व में कैसे चोट लग सकती है! इसकी गाली इसने दी, इसका काम; तुम्हें क्या लेना-देना! यह तुम्हारी समस्या ही नहीं है। तुम्हारी शांति अखंडित रहेगी। मगर इसका मतलब यह नहीं है कि वह जो जड़ बुद्धि आदमी है, जिसको किसी ने गाली दी तो वह समझा ही नहीं, अपना हंसता चला गया। यह भी बचने की सस्ती तरकीब है।
और अक्सर त्यागी ने यही किया हैः वह अपनी क्षमताओं को तोड़ लेता है, जड़
कर लेता है।
मैं इंद्रिय-जागरण के पक्ष में हूं, इंद्रिय-दमन के नहीं। क्योंकि इंद्रियों को पंख देना है; उन्हें परमात्मा तक उड़ने की क्षमता देना है।
इन्हीं इंद्रियों के सहारे तुम संसार में आए हो--इसी सीढ़ी से उतर कर; अब

इसी सीढ़ी पर चढ़ कर परमात्मा तक जाना है। तोड़ मत देना, नहीं तो पछताओगे बहुत। तोड़ना बहुत आसान है, फिर जोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है।
"आप कहते हैं--प्रेम मुक्ति है और भक्ति मोक्ष है। भेद समझ में नहीं आया।"
भेद थोड़ा सूक्ष्म है। ऐसे कठिन नहीं है; सीधा-साफ है। जब मैंने कहाः प्रेम मुक्ति है--तो मैंने कहा कि प्रेम से मोक्ष का स्वाद मिलता है। मुक्ति यानी मोक्ष का स्वाद, झलक। रोशनी आती है, खो जाती है। बिजली कौंधती है, एक क्षण को सब रोशन हो जाता है; फिर अंधेरा छा जाता है।
प्रेम में झलकें आती हैं। प्रेम में झलकें ही आ सकती हैं। बूंदाबांदी होती है; बाढ़ नहीं आती। मोक्ष का अर्थ हैः बाढ़ आ गई--और ऐसी बाढ़ कि फिर कभी न जाएगी। मुक्ति खूब-खूब आती गई, आती गई, आती गई, मुक्ति का अंबार लग गया--तो मोक्ष। मोक्ष का मतलब इतना ही होता है कि अब ऐसी मुक्ति आ गई जो कभी न जाएगी। अब यह कोई अनुभव नहीं रहा; यह तुम्हारा स्वभाव बन गया। जब तक अनुभव तब तक मुक्ति। जब तुम्हारा स्वभाव बन गया, तब मोक्ष। जिससे तुम पतित न हो सको, फिर मोक्ष।
तो प्रेम से तो झलक मिलती है मुक्ति की और भक्ति से मोक्ष। प्रेम का मतलब होता हैः एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से प्रेम। मनुष्य का मनुष्य से प्रेम--मनुष्य की भांति। भक्ति का अर्थ होता हैः मनुष्य का परमात्मा से प्रेम।
दो मनुष्य एक ही तल पर होते हैं। तुमने किसी स्त्री को चाहा, तुमने किसी पुरुष को चाहा--अपने बेटे को, अपनी बेटी को, पत्नी को, मित्र को, किसी को चाहा--यह चाहत भी थोड़ी-थोड़ी झलकें लाएगी, क्योंकि यह भी प्रेम है। इसमें भी कभी-कभी तुम्हें बड़ी शांति मिलेगी, बड़ा आह्लाद होगा। मगर कभी-कभी। फिर विषाद। ऊंचाइयां आएंगी, खाइयां भी आएंगी। ऊंचे शिखर भी छुओगे कभी, तब लगेगा कि सब मिल गया, और जब खाई आएगी, अंधेरी अमावस रात आएगी और पूर्णिमा खो जाएगी, तो लगेगा कि सब खो गया। प्रेम में तुम्हें दोनों घटनाएं घटती रहेंगी।
जब तक प्रेम इतना गहरा न हो जाए कि जिससे तुम्हें प्रेम है उसमें कृष्ण दिखाई पड़ने लगें, तब तक मुक्ति की झलकें मिलेंगी। जिस दिन परमात्मा का अनुभव होने लगेगा, प्रेम भक्ति हो गई। भक्ति का अर्थ हैः प्रेम ने भगवान को खोज लिया। प्रेम टटोलता है; भक्ति ने पा लिया। प्रेम अंधेरे में टटोलता है। मिलेगा दरवाजा; मगर टटोलना है प्रेम में। इसलिए प्रेम में बड़ा विषाद भी है। क्योंकि तुम जिसको भी प्रेम करते हो, इसी आशा में करते हो कि मिल गया प्यारा, और फिर-फिर तुम पाते हो कि नहीं मिला; नहीं, कुछ कमी रह गई। फिर कुछ अड़चन रह गई। बात उतनी ऊंची नहीं गई जितना सोचा था। सपनों के अनुकूल सिद्ध न हुई। तो हर बार प्रेम में विषाद भी होता है। हर बार किसी को प्रेम करके तुम पाते होः कुछ रिक्त हो गए; कुछ खाली हो गए। कुछ छूंछा-छूंछा हाथ में लगता है। सोचा था बहुत, हुआ बहुत कम। निकले थे सागर खोजने, बूंद हाथ लगी। अपेक्षा सागर की थी और बूंद हाथ लगी--तो निश्चित विषाद होता है। इसलिए प्रेमी सुख में भी होते हैं और बड़े दुख में भी होते हैं।
भक्ति में खोजने गए थे बूंद और मिल गया सागर--आह्लाद अपरिसीम होता है। तुमने जितना सोचा भी नहीं था, उतना मिल गया। तुम तो सोचोगे भी कैसे! सागर तुमने देखा नहीं है, सोचोगे भी कैसे! परमात्मा तुमने देखा नहीं है, सोचोगे भी कैसे! तुम तो कुछ गए थे थोड़ा सा लेने, मगर वहां आकाश टूट पड़ा। तुम सम्हाल न सको, इतना मिला; तुम बांध न सको, इतना बरसा; तुम्हारी गठरी छोटी पड़ गई--तो भक्ति। प्रेम जब सीमाओं से मुक्त हो जाता है तो भक्ति हो जाता है। और जब तुम्हारा प्रेम-पात्र सीमाओं से मुक्त हो जाता है तो भगवान हो जाता है। भक्ति से मोक्ष; प्रेम से मुक्ति।

दूसरा प्रश्नः कुछ दिनों से हम यहां प्रेम की ध्वनि सुन रहे थे, लेकिन आश्रम के वातावरण में वह कहीं भी सुनाई नहीं पड़ती थी। वीणा के प्रत्युत्तर के बाद बाहर आनंद और प्रेम का एक अनोखा वातावरण छा गया। क्या कोई अपूर्व घटना घटी या ये हमारी आंखों के गुण-दोष थे?

पूछा है चितरंजन ने।
अनोखी घटना घटी--निश्चित घटी। और अनोखी घटना घटी, इसलिए दृष्टि भी बदल गई। ये दोनों बातें अलग-अलग नहीं हैं--एक साथ हैं।
पूछा है कि "क्या कोई अपूर्व घटना घटी या ये हमारी आंखों के गुण-दोष थे?"
अपूर्व घटना घटी और वही तुम्हारे आंखों के गुण-दोष को बहा ले गई। बाढ़
आई प्रेम की और कचरा बह गया।
अपूर्व घटना कभी भी घट सकती है। अपूर्व घटना का घटने के लिए कोई समय नियत नहीं है। किसी भी क्षण में तुम अगर मेरे प्रति खुले हो गए तो घट जाएगी। वीणा को उत्तर देते समय तुम्हारा हृदय मेरी तरफ खुल गया। पहले तुम सम्हाले-सम्हाले चल रहे थे, अपने को रोके-रोके चल रहे थे।
चितरंजन को मुझसे लगाव है; प्रेम है, गहरा प्रेम है--तो आते हैं। लेकिन
एक अड़चन है। वह अड़चन बहुत मित्रों को है; वह भी समझ लेनी चाहिए। पिछले सात वर्षों से मैं कहीं गया नहीं। उसके पहले पंद्रह वर्षों तक निरंतर पूरे देश में घूमता था। तो मेरे बहुत घर थे, हर गांव में मेरे घर थे। जहां ठहरता वहीं मेरा घर था। जैसे पूना आता तो सोहन का घर मेरा घर था। बड़ौदा जाता तो वीणा का घर मेरा घर था। लुधियाना जाता तो कुसुम का घर मेरा घर था। ऐसे बहुत मेरे घर थे। स्वभावतः जिनके घर में मैं ठहरता था, वे मेरे बहुत निकट होने का मौका पाए थे; चौबीस घंटे मेरे पास थे। मेरे साथ सोते, मेरे साथ उठते, मेरे साथ बात करते। फिर एक अड़चन हुई, मैंने सब जगह जाना बंद कर दिया। अब जिन्होंने मुझे बहुत निकट से जाना है, जिनके घर मैं रुका हूं, रहा हूं, जिनके परिवार के एक सदस्य की तरह रहा हूं--वे जब इस आश्रम में आते हैं तो उनको अड़चन होती है। उनकी अपेक्षाएं वही होती हैं कि वे फिर मेरे पास उसी तरह चौबीस घंटे बैठें; मेरे लिए भोजन तैयार करें; मेरे कपड़े धोएं; मेरी सेवा करें। आकांक्षा में कहीं कोई गलती भी नहीं है; आकांक्षा बिल्कुल ठीक है। लेकिन अगर यह हो तो मेरा भोजन फिर पकेगा ही नहीं। कितने लोग पकाएंगे, वीणा! फिर भोजन नहीं पकने वाला। फिर कपड़े मेरे धुलेंगे नहीं; कपड़े लौटेंगे ही नहीं। जिसके हाथ लग गए, वही ले जाएगा। फिर वह सम्हाल कर रखेगा, लौटाना क्या है!
अब यह एक बिल्कुल दूसरे ढंग की व्यवस्था है यहां। इसलिए जो मेरे बहुत निकट थे, उनको थोड़ी अड़चन होती है। वे आते हैं; प्रेम है मुझसे तो आते हैं। लेकिन उनको लगता है दूरी-दूरी। उनको लगता है कि मिलना है तो समय लेना पड़ेगा। मैं उनके घर में ठहरा था; मिलने का कोई सवाल ही नहीं था। उनको ख्याल ही नहीं कि दूसरे उनसे समय लेते थे; अब उनको समय लेना पड़ता है तो अड़चन होती है। अड़चन बिल्कुल स्वाभाविक है। चोट भी लगती है कि हम और समय लें! फिर समय में भी किसी को तीन दिन बाद समय मिलेगा, किसी को चार दिन बाद समय मिलेगा। तो और भी अड़चन होती है। क्योंकि जब मैं उनके घर ठहरता था, तो उनको आधी रात बात करनी हो तो वे आधी रात मुझे उठा कर बात कर लेते थे। अब उन्हें चार दिन रुकना पड़ेगा तो अस्मिता को चोट भी लगती है।
मगर समझना होगा। यह काम की व्यवस्था बदली है। मैं जब पंद्रह वर्ष घूम रहा था, तब तो केवल संदेश पहुंचा रहा था, लोगों तक खबर पहुंचा रहा था कि किसी को अगर कभी प्यास हो तो आ जाना। वह अलग प्रक्रिया थी काम की। वह प्राथमिक चरण था। अब सारी दुनिया से प्यासे लोग आ रहे हैं। अब तुम्हें ख्याल से सोचना पड़ेगा। अब तुम्हें हिसाब-व्यवस्था रखनी पड़ेगी।
अगर प्रत्येक व्यक्ति जब आए उसी वक्त उसको मिलना हो, तो यहां रोज मिलने के लिए पांच सौ लोग होंगे, हजार लोग होंगे, दो हजार लोग होंगे, मिलना असंभव हो जाएगा। हालांकि तुम्हें लगता है कि तुम अभी मिलो; लेकिन अगर तुम्हीं अकेले होते तो ठीक था, कोई अड़चन न थी। और बहुत हैं जिनको ऐसा ही लगता है। तो फिर मिलना ही नहीं हो पाएगा। अगर मिलना संभव रखना है जारी, तो कुछ व्यवस्था देनी होगी; नहीं तो मिलने का कोई उपाय नहीं रह जाएगा।
सारी दुनिया से लोग आ रहे हैं, इस सबका ख्याल रख कर आश्रम को एक ढांचा लेना जरूरी है। जो बिना ढांचे के मुझसे मिले हैं उनको अड़चन होगी। मगर अगर उनका मुझ पर प्रेम है तो वह अड़चन गल जाएगी। वह अड़चन जाएगी ही, क्योंकि वे समझेंगे। आखिर सोहन को तकलीफ होती है; वीणा को तकलीफ होती है; चितरंजन को

तकलीफ होती है; चंद्रकांत को तकलीफ होती है--सभी को तकलीफ होती है। मगर धीरे-धीरे समझ आती है। प्रेम है तो समझ आएगी ही। यह समझ में आ जाएगी बात कि कारण क्या है।
आश्रम तुम्हें बाधा नहीं डाल रहा है; सिर्फ आश्रम मेरे लिए सुविधा जुटा रहा है। नहीं तो बहुत अड़चन हो जाएगी। वे जो पंद्रह वर्ष मेरे थे, अगर वैसा ही मैं जारी रखूं तो काम बिल्कुल नहीं हो पाएगा। और अब काम करना है। अब मुझे लोगों की जिंदगी बदलनी है। अब सिर्फ बातचीत करने से नहीं होने वाला, अब कुछ काम करना है। काम करना है तो उसकी व्यवस्था होनी चाहिए। व्यवस्था अड़चन लाती है।
अब यह मीरा ही रो रही है वहां सामने बैठी। उसने पत्र लिख कर पूछा है कि पिछली दफे मैं आई दर्शन में, आपने मेरी तरफ देखा ही नहीं!
अब मेरे पास दो आंखें हैं और देखने को मुझे अब बहुत लोग हैं। गलत कहती
है कि मैंने नहीं देखा। मैंने जरूर देखा। जरा आंख के कोने से देखा था। मुझे याद है कि आई थी और यह भी मुझे याद है कि उसे लगा होगा कि मैंने नहीं देखा। लेकिन अपेक्षा उसकी भी समझ में आती है--मुझे देखा क्यों नहीं? मेरी तरफ ध्यान क्यों नहीं दिया?
अब तुम मेरी तरफ ध्यान दो; कब तक मेरे ध्यान को तुम अपनी तरफ खींचते रहोगे? मैंने तुम्हें काफी ध्यान दिया। वह इसी आशा में दिया था कि एक दिन तुम मुझे ध्यान दोगे। मैं तुम्हें ध्यान दूं, इससे बहुत तुम्हें लाभ नहीं होगा। तुम मुझे ध्यान दो तो लाभ होगा। इस रूपांतर को समझोगे तो अड़चन न होगी।
तो चितरंजन को अड़चन रही होगी। अपने को रोके-रोके रहे होंगे, आश्रम से अपने को अलग-अलग जाना होगा; भिन्न-भिन्न माना होगा। आश्रम में जो लोग व्यवस्था करते हैं, वे दुश्मन की तरह दिखाई पड़े होंगे कि हर जगह खड़े हुए हैं लोग, कि अंदर नहीं जाने देते, रोकते हैं, यह क्या मामला है? लेकिन जब मेरी बात सुनते हुए उनका हृदय मेरी तरफ खुला, प्रेम का थोड़ा संस्पर्श हुआ, तो आंख बदल गई होगी; तब समझ में आया होगा कि आश्रम सिर्फ मेरे लिए व्यवस्था दे रहा है।
और व्यवस्था कठोर होनी चाहिए तो ही हो सकती है।
तुमने देखा, नारियल की गिरी के ऊपर मजबूत खोल होती है! वह मजबूत खोल नारियल की दुश्मन नहीं है; वह जो भीतर नारियल है उसको बचाने के लिए व्यवस्था है।
उन पंद्रह वर्षों के तुम मेरे संस्मरण सुनोगे तो बहुत हैरान होओगे। दिनों बीत जाते जब मैं सो ही नहीं पाता था। सोने का उपाय ही नहीं था। क्योंकि आज मैं इस घर में था, कलकत्ते में था, दूसरे दिन बंबई था, तीसरे दिन अमृतसर था। तो जिनके घर बंबई में रात भर ठहरा हुआ हूं, वे मुझे सोने कैसे दें! वे कहें कि आप फिर सो लेना; जब सो लेना आपको जहां सोना हो; हमें तो आप एक दिन मिलते हैं साल भर में, हम नहीं सोने देंगे! रास्ते में ट्रेन में लोग चढ़ जाते, आधी रात चढ़ जाते, मुझे उठा लेतेः सत्संग करना है!
शारदाग्राम में मैं रात सोया। कोई दो बजे रात एक आदमी चुपचाप कमरे में घुस आया। उसने मेरे पैर दाबने शुरू कर दिए। मैंने पूछाः भाई, तू करता क्या है?
उसने कहाः सेवा कर रहा हूं।
तू मुझे सो लेने दे। दिन भर का मैं थका-मांदा हूं।
उसने कहा कि आपकी आप जानो, मैं चार दिन से सेवा करने की उत्सुकता किए बैठा हूं, लेकिन मुझे वे प्रेमचंद घुसने नहीं देते।
प्रेमचंद वहां मेरी फिकर करते थे। तब तक प्रेमचंद, वे भी सो रहे थे बगल के कमरे में, उन्होंने अपना नाम सुना तो वे उठ कर आ गए। उसने कहाः लो वे आ गए। फिर मेरी... आपको बोलने की जरूरत ही क्या थी? आप चुपचाप पड़े रहते! मैं सेवा कर लेता, चला जाता।
ट्रेन में लोग आधी रात डब्बे में आ जाते। वे कहतेः हमें सेवा करनी है, पैर दबाने हैं।

उनका भी कसूर नहीं है। उनका भी प्रेम है। कैसे प्रेम को प्रकट करें! लेकिन उनको इसकी कोई फिकर नहीं है कि उनका प्रेम जिस ढंग से प्रकट कर रहे हैं, वह सेवा नहीं हो रही, वह कुसेवा हुई जा रही है।
लोगों के घर मैं रहता, वे जबरदस्ती मुझे खिलाते। जो चीज मुझे नहीं खानी है वह खानी पड़ती। मैं उनको कहता भी कि यह नुकसान करेगी। नहीं सुना उन्होंने। पंद्रह साल में मेरे शरीर को बुरी तरह खराब कर दिया। मगर उन्होंने प्रेम से ही किया था। उन्होंने कोई दुश्मनी से नहीं किया था। उनकी समझ के बाहर थी बात। उनको मैं कहता भी तो वे मानते नहीं, वे कहते, अब एक दिन खा लेने में क्या होगा? लेकिन यह मुझे रोज का सवाल था। इतना थोड़ा और खा लेंगे तो क्या हर्जा है?
सुबह एक घर में चाय पीनी पड़ती; दूसरे घर में दोपहर भोजन करना पड़ता; तीसरे घर चाय पीनी पड़ती; चौथे वक्त शाम को किसी और के घर भोजन करना पड़ता। जिसके घर भोजन करता, एक ही बार करता, तो वह तो अपना पूरा दिल खोल कर भोजन करवाता। करीब-करीब हालत ऐसी हो जाती कि जब तक मैं नाराज न हो जाऊं तब तक वे मुझे छोड़ते ही नहीं। जबरदस्ती!
वह पंद्रह साल तक एक व्यवस्था थी। जरूरी था कि मैं जाऊं लोगों तक। खबर पहुंचा दी है। खबर पहुंचाते समय बहुत लोगों से मेरे निकट संबंध बने, प्रेम के नाते बने। अब जब वे आते हैं और यहां व्यवस्था का जाल देखते हैं, तो उनको अड़चन होती है। उन्हें स्वीकार करना पड़ेगा व्यवस्था का जाल। और यह तो अभी कुछ भी नहीं है। यह तो शुरुआत है व्यवस्था की। क्योंकि हजारों लोग आने वाले हैं। अभी तुम्हें तीन-चार दिन बाद समय मिलता है मिलने का; कभी महीने भर बाद मिले तो भी स्वीकार करना पड़ेगा। और इतना प्रेम तो होना चाहिए कि मैं सभी के काम आ सकूं।
और अब जो काम है--वह काम है। अब मैं चाहता हूंः जिस व्यक्ति से मैं बात
कर रहा हूं, उस व्यक्ति के साथ पूरा का पूरा तल्लीन होकर बात कर सकूं; दस मिनट कर सकूं, लेकिन पूरा तल्लीन होकर कर सकूं। चाहे तुम्हें मैं दस घंटे नहीं दे पाऊं, दस मिनट दे पाऊं; लेकिन अब मैं दस मिनट पूरी तरह देना चाहता हूं। दस मिनट में मैं तुम्हारे आर-पार होना चाहता हूं। दस मिनट में मैं तुम्हारी पूरी समस्या को आत्मसात कर लेना चाहता हूं। दस मिनट में मैं तुम्हें पूरे जीवन की व्यवस्था दे देना चाहता हूं।
तो जरूरी है कि यहां हजार आदमी इकट्ठे मुझे मिलने न आ जाएं। नहीं तो
वे न सुनने देंगे, न बात करने देंगे; न वे किसी की समझने देंगे, न किसी को समझने देंगे। उनके लिए व्यवस्था करनी ही पड़ेगी।
और यह तो सिर्फ शुरुआत है। अब जो नया रूप होगा इस परिवार का, वह बहुत बड़ा होने वाला है। तो तुम्हें धीरे-धीरे दूसरों पर भी दया रख कर अपने दावे, अपनी अपेक्षाएं छोड़ देनी पड़ेंगी।
और मैं जानता हूंः जिनका मुझसे प्रेम है, वे छोड़ ही देंगे, देर-अबेर।
चितरंजन कितनी देर तक इस बात को लेकर चल सकते थे! यह छूटनी ही थी, यह छूट गई। अब इसे दुबारा सिर मत उठाने देना। इसको जाने ही देना। और यह दृष्टि बदलेगी तो तुम्हें यह पूरा का पूरा आश्रम तुम्हें अपना घर मालूम पड़ेगा। यह तुम्हारा घर है।
और यहां जितने लोग काम में लगे हैं, सदा ध्यान रखना कि वे मेरे काम में लगे हैं। अगर कभी तुम्हें कुछ अड़चन भी देते मालूम पड़ते हैं, तो वे मेरे लिए दे रहे होंगे, इसको ख्याल में रखना। उन पर नाराज मत होना और उनके प्रति एक शत्रुता का भाव मत ले लेना। यहां जो भी हो रहा है, वह मेरे इशारे से हो रहा है। यहां कुछ भी मेरी जानकारी के बाहर नहीं हो रहा है।
और एक बात तो स्वाभाविक है कि जैसा प्रेम तुम मुझसे पा सकते हो, वैसा प्रेम आफिस में जो व्यक्ति तुम्हें मिलने का समय देगा, उससे नहीं पा सकते; वह मैं नहीं हूं। यह तो ठीक ही है। जैसा प्रेम तुम मुझसे पा सकते हो, वैसा द्वार पर खड़े द्वारपाल से नहीं पा सकोगे; वह मैं नहीं हूं। यह तो ठीक ही है। उससे अपेक्षा भी यह करोगे तो गलत अपेक्षा हो जाएगी। तुम जरूरत से ज्यादा उससे मांग रहे हो। वह जितना कर सकता है उतना कर रहा है। लेकिन एक बात उसके मस्तिष्क में साफ हैः उसे मेरा ध्यान है कि मैं क्या चाहता हूं;

कैसे चाहता हूं, कैसे हो, उसे उसका ध्यान है, वह उसी को ध्यान में रख कर कर रहा है।
मगर लोग अपने ढंग के होते हैं। छोटी-छोटी बात में जिद्द पकड़ लेंगे। अहंकार के बड़े सूक्ष्म रास्ते हैं। कोई आदमी दस मिनट लेट द्वार पर पहुंचेगा; वह कहता है कि मुझे भीतर जाने दो। न आने दिया जाए भीतर तो उसे दुख हो जाता है, उसे कठिनाई हो जाती है। और उसे कठिनाई होनी बिल्कुल स्वाभाविक है। अगर मैं उसके घर में ठहरा हूं तो उसे कठिनाई होनी स्वाभाविक है। वह एक भाव लेकर आता है कि वह मेरे बहुत निकट है। और है भी मेरे निकट। मगर अहंकार बीच में सिर उठा सकता है।
उस अहंकार को जाने देना। तुम समझना कि अगर वह तुम्हें रोक रहा है, तो मेरे कारण रोक रहा होगा। अगर कोई अड़चन खड़ी की जा रही है, तो उसे स्वीकार कर लेना। और जैसे-जैसे स्वीकार भाव आएगा, वैसे-वैसे ही तुम इस बढ़ते परिवार के हिस्से आसानी से बन जाओगे। तब मैं अकेला था; अब मेरा बड़ा परिवार है। तब मैं अकेला था; मेरे और तुम्हारे बीच कोई भी नहीं था। अब मेरे और तुम्हारे बीच एक बड़ा परिवार है। इस परिवार को ध्यान में रखना जरूरी है। और मैं चाहता हूं कि यह परिवार हो, क्योंकि इसके बिना काम नहीं हो सकता।
अब समझो, एक ही सांझ को मेरे पास कोई जर्मन होता है, कोई फ्रेंच होता है, कोई इटालियन होता है, कोई बेल्जियन होता है, कोई जापानी होता है, कोई रशियन होता है--इन सबके अनुवाद करने वाले लोगों की व्यवस्था करनी होती है कि इन सब का अनुवाद हो; नहीं तो अनुवाद न हो तो ये मुझसे बात ही नहीं कर पाएंगे, मैं इनसे कुछ कह नहीं पाऊंगा।
जब मैं तुमसे सीधे बात करता हूं तो एक बात है। मगर एक अनुवादक बीच में खड़ा हो जाता है। अब उसको तुम दो ढंग से देख सकते हो। या तो तुम देख सकते हो कि यह आदमी बीच में क्यों? यह बाधा डाल रहा है! हम सीधी बात क्यों नहीं करें? मगर सीधी बात करें कैसे? यह आदमी बाधा नहीं डाल रहा है। यह आदमी सहयोगी बनने की कोशिश कर रहा है। हालांकि बीच में खड़ा तो हो गया। तुम अगर सीधे मुझसे बात करते तो एक बात होती; जो मैं कहूंगा, उसका यह अनुवाद करेगा। अनुवाद में कुछ तो भूल-चूक होने वाली है। अनुवाद अनुवाद ही होगा। मेरा बल तो उसमें से खो जाएगा। मेरी मौजूदगी उसमें से कम हो जाएगी। फिर यह कुछ अपनी जोड़ेगा, कुछ घटा भी देगा, क्योंकि आखिर इसकी भी अपनी सीमाएं हैं। मगर फिर भी ध्यान रखना कि यह सहयोग के लिए ही है।
वह दरवाजे पर जो खड़ा है, आफिस में जो बैठा है--वे सब सहयोग के लिए ही हैं। जितना बड़ा काम होगा... और यह काम बड़ा होने वाला है। ये गैरिक वस्त्र सारी पृथ्वी के कोने-कोने तक फैलने वाले हैं। पहली दफा एक अंतर्राष्ट्रीय परिवार पैदा हो रहा है; ऐसा कभी नहीं हुआ था। तो जितना बड़ा परिवार होगा, उतनी जिम्मेवारी हो जाती है। तुम्हारी भी, चितरंजन, जिम्मेवारी हो जाती है। इसको सहयोग दो। अहंकार को बीच से हटाओ।
अच्छा हुआ। अहंकार थोड़ा गला। आंख थोड़ी बदली।
झुकाई कदमों में जब से तेरे खुदी मैंने
तो पाई जिंदगी में एक नई खुशी मैंने
वह जो खुदी है, अहंकार है, वह जरा झुक जाए!
झुकाई कदमों में जब से तेरे खुदी मैंने
तो पाई जिंदगी में एक नई खुशी मैंने
न लुत्फ जुर्रते-इनकार में रहा बाकी
तो फिर से सीखे हैं आदाबे-बंदगी मैंने
वह जो इनकार करने में, न कहने में...
अहंकार हमेशा न कहने में मजा पाता है। अहंकार हां कहना ही नहीं चाहता। अहंकार नहीं कहता है; नहीं पर ही जीता है। नहीं भोजन है अहंकार का। हां कहा और अहंकार मरा। हां जहर है अहंकार के लिए। नहीं अमृत है अहंकार के लिए।
न लुत्फ जुर्रते-इनकार में रहा बाकी
तो फिर से सीखे हैं आदाबे-बंदगी मैंने
मुझे बहुत लोगों ने बहुत ढंग से प्रेम किया है। उनको बार-बार बंदगी के नये-नये ढंग सीखने होंगे, क्योंकि मैं बदलता जाता हूं, व्यवस्था बदलती

जाती है। अगर उन्होंने जिद्द की कि हम पुराने ढंग से ही बंदगी करेंगे, तो उनका ही नुकसान है। उन्हें बंदगी के नये आदाब, नई शैली सीखनी पड़ेगी। गमे-जहां का असर दिल पे अब नहीं होता
बदल दिया है अब एहसासे-जिंदगी मैंने
दिखाई देते थे चारों तरफ मुझे अगयार
रखी थी मुफ्त में ले सबसे दुश्मनी मैंने
सब तरफ दुश्मन दिखाई पड़ते थे।
दिखाई देते थे चारों तरफ मुझे अगयार
पराए! चितरंजन ऐसे ही देख रहे होंगे--सब दुश्मन हैं, जो बाधा डाल रहे हैं मेरे और उनके बीच में।
दिखाई देते थे चारों तरफ मुझे अगयार
रखी थी मुफ्त में ले सबसे दुश्मनी मैंने
वह मेरे प्रेम की उन पर वर्षा हुई, वे बह गए, धुल गए, नहा गए। तब आंखें खोल कर उन्होंने देखाः यहां कोई दुश्मन नहीं है। कुछ अपूर्व घटा। उसी अपूर्व के कारण दृष्टि भी बदली।
तेरी नजर से जो देखा तो सब हुए अपने
जहां में चारों तरफ पाई दोस्ती मैंने
मेरी नजर से देखो। मेरी नजर तुम्हारी नजर बने!
तेरी नजर से जो देखा तो सब हुए अपने
जहां में चारों तरफ पाई दोस्ती मैंने
हंसी-खुशी में गमे-इश्क को न भूला मैं
गमे-जहां को सहा है हंसी-खुशी मैंने
ये पा के वादा कि अपनाओगे मुझे आखिर
तुम्हारे दर्द में होने न दी कमी मैंने
यह वादा मेरी तरफ से है कि तुम पा लोगे। तुम वह पा लोगे जो मैंने पाया है। लेकिन बीच-बीच में छोटी-छोटी बाधाएं मत खड़ी करो। उन्हें जाने दो। उन्हें विदा करो। तुम यहां मिटो, तो ही तुम मेरे साथ हो पाओगे। तुम्हारा मिटना ही मेरे साथ होने का एकमात्र उपाय है।

तीसरा प्रश्नः मैं आपके पास आया तो मेरी आंखें खुलीं, लेकिन मुझे लोग
तब से अंधा कहने लगे हैं। मैं धीरे-धीरे जाग रहा हूं और लोग कहते हैं कि मैं गुमराह हो गया हूं। जो कभी मेरी सलाह मांगते थे, वे ही अब मुझे बिना मांगे सलाह देने चले आते हैं। मैं क्या करूं?

तुम और अंधे हो जाओ। तुम और गुमराह हो जाओ। तुम इतने गुमराह हो जाओ कि तुम्हें यह भी याद न रहे कि कौन क्या कह रहा है! तुम इतने अंधे हो जाओ कि तुम्हें ये और लोग दिखाई भी न पड़ें। तुम इतने बहरे हो जाओ कि इनकी सलाह भी तुम्हें सुनाई न पड़े। अब जब हुए ही हो पागल तो अब कंजूसी क्या करनी! लोग हंसेंगे, हंसने दो, तुम भी हंसो।
अगर तुम हंस दिए अहवाले-दिल पर, क्या ताज्जुब है
कि मैं खुद भी बमुश्किल जब्त करता हूं हंसी अपनी
अगर तुम हंस दिए अहवाले-दिल पर, क्या ताज्जुब है
अगर लोग हंसते हैं तो कुछ आश्चर्य मत करना। कभी-कभी खुद भी हंसना। कभी-कभी खुद भी देखनाः क्या से क्या हो गया! क्या थे और क्या हो गए! भले- चंगे आदमी थे; पागल हो गए, संन्यासी हो गए। सुध-बुध वाले आदमी थे। तभी तो लोग तुमसे सलाह मांगने आते रहे होंगे। ज्ञानी समझते होंगे। अज्ञानी हो गए। अब लोग, वे ही लोग सलाह देने चले आते हैं।
कि मैं खुद भी बमुश्किल जब्त करता हूं हंसी अपनी
हुई हैं बारिशें संगे-मलामत की बहुत, लेकिन
जहे वजअे-जुनूं कायम है शौरीदासरी अपनी
पत्थर तो बहुत गिरेंगे तुम्हारे सिरों पर।
हुई हैं बारिशें संगे-मलामत की बहुत, लेकिन
मेरे साथ जुड़े हो तो यह सस्ता सौदा नहीं; पत्थर तो बहुत पड़ेंगे ही सिर पर। लेकिन अगर तुमने मेरे साथ जुड़ने का आनंद समझा तो तुम उन पत्थरों को भी

आनंद से सह लोगे। तुम्हें वे गालियां भी फूल जैसी हो जाएंगी। वे कांटे भी तुम्हें चुभेंगे नहीं। पीड़ा में भी एक माधुर्य होगा।
हुई हैं बारिशें संगे-मलामत की बहुत, लेकिन
जगह-जगह पत्थर की वर्षा होगी, जगह-जगह गालियां पड़ेंगी, जगह-जगह लोग अपमान की बातें कहेंगे।
जहे वजअे-जुनूं कायम है शौरीदासरी अपनी
लेकिन तुम अपना पागलपन कायम रखना। तुम अपना दीवानापन कायम रखना।
तुम पूछते होः "मैं क्या करूं?"
मैं कहता हूंः दीवानापन मजबूत करो। ऐसा मजबूत करो कि सारी दुनिया भी उसे मिटा न पाए।
जहां वालों का क्या है, वो तो दीवाना समझते हैं
मुझे कुछ अक्ल से अपने भी बेगाना समझते हैं
अजब अंदाज से मेरे सकूते-लब पे हंसते हैं
जो सच्ची बात कहता हूं तो अफसाना समझते हैं
बहारे-जाविदां इसमें, जमाले-दोजहां इसमें
मेरी दुनिया को फिर भी लोग दीवाना समझते हैं
बहारे-जाविदां इसमें...
तुम एक ऐसी बहार से भरते जा रहे, एक ऐसे वसंत से, जो शाश्वत है। बहारे-जाविदां इसमें...
एक ऐसी बहार तुम्हें दे रहा हूं जो कभी मिटेगी नहीं; जिसमें फूल खिलते हैं तो मुर्झाने को नहीं; जिसमें पत्ते आते हैं तो गिर जाने को नहीं। बहारे-जाविदां इसमें, जमाले-दोजहां इसमें
और दोनों दुनियाओं का--इस लोक का और परलोक का--सारा रस इसमें है, सारी ज्योति इसमें हैं, सारा प्राण इसमें है।
मेरी दुनिया को फिर भी लोग दीवाना समझते हैं
लेकिन फिर भी लोग तो तुम्हें पागल ही समझेंगे। लोग तुम्हें पागल इसलिए समझते हैं कि लोग अपने को पागल नहीं समझना चाहते। और कोई कारण नहीं है। क्योंकि दो बातों में एक ही हो सकती है। या तो तुम पागल हो, या फिर वे पागल हैं। कौन अपने को पागल समझना चाहता है! फिर उनकी भीड़ है, उनकी बहुसंख्या है। अगर मत लिया जाएगा तो वे ही निर्णायक होंगे, तुम तो पागल ही होओगे। वे अपनी रक्षा कर रहे हैं।
सच तो यह है, मेरा निरीक्षण यही है कि लोग जब भी तुम्हें पागल कहें तो उसका कारण इतना ही होता है कि उन्हें भी आकर्षण पैदा हो रहा है। वे जब तुम्हें सलाह देने आने लगें तो समझना कि उनमें रस जग रहा है, उनमें जिज्ञासा आ रही है। वे घबड़ा रहे हैं। वे इंतजाम कर रहे हैं, अपनी व्यवस्था कर रहे हैं कि तुम गलत हो। क्योंकि उन्हें डर पैदा हो रहा है कि कहीं तुम ठीक न होओ। नहीं फिर हमारा क्या होगा! तुम्हारे ठीक होने की बात उनके लिए खतरे की सूचना है। वे सब आयोजन करेंगे तुम्हें गलत सिद्ध करने का। उन्हें करने दो। उन्हें बेचारों को अपनी सुरक्षा करने दो; इसका हक उन्हें है। कोई अपनी सुरक्षा करना चाहे, करे। जब वे तुम्हें दीवाना कहते हैं तो असल में वे यह कह रहे हैं कि हम बुद्धिमान हैं; इतना सीधा कहते नहीं, क्योंकि अहंकार इस तरह की सीधी भाषा नहीं बोलता। अहंकार कहता हैः तुम पागल हो। मगर अहंकार कहना यह चाहता था कि हम होशियार हैं। बस इतना ही कहना चाहता था; तुम्हारे पागल होने से कुछ प्रयोजन नहीं। तुमसे क्या लेना-देना! तुम पागल भी हो जाओ तो क्या लेना-देना है!
तुमने ख्याल किया, जब कोई आदमी असली में पागल हो जाता है, तब उसे कोई सलाह देने नहीं जाता; क्योंकि उसको क्या सलाह देनी, वह तो पागल है ही! लेकिन जब कोई संन्यस्त हो जाए या धार्मिक हो जाए या परमात्मा की मस्ती में लग जाए, या मीरा जैसा लोकलाज खो दे--तब लोग सलाह देते हैं। क्योंकि वे जानते हैं भीतर से कि पागल तो नहीं है। सच तो यह है कि उनको शक होने लगता है अपनी बुद्धिमानी पर कि कहीं ऐसा तो नहीं, यह आदमी रस पा रहा हो और हम चूके जा रहे हैं! इसकी आंखों में कुछ झलक दिखाई पड़ती है--तो या तो पागलपन की होनी चाहिए, या किसी अनुभव की। या तो परमात्मा की थोड़ी-थोड़ी किरण इसमें

उतरने लगी है और या फिर ये सज्जन अपना दिमाग खो बैठे। दो में से एक ही बात हो सकती है।
इस दुनिया में या तो पागल हंसते हैं या परमहंस हंसते हैं; बाकी तो सब रोते हैं। जब कोई आदमी हंसता है तो शक पैदा होता है कि यह परमहंस या पागल। अब किसी को परमहंस मानने में बड़ी अड़चन होती है। लोग बड़ी मुश्किल से मानते हैं। सदियां हो जाती हैं, मर जाता है आदमी, तब कहीं मानते हैं। मानते-मानते वक्त लग जाता है, तब मानते हैं। एकदम से नहीं मान लेते, क्योंकि दूसरे को परमहंस मानना, मतलब फिर झुकाओ इसके चरणों में अपना सिर। पागल मानते हैं। हर परमहंस पहले पागल माना जाता है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि हर पागल परमहंस है। मगर हर परमहंस पागल माना जाता है।
बहारे-जाविदां इसमें, जमाले-दोजहां इसमें
मेरी दुनिया को फिर भी लोग दीवाना समझते हैं
शऊरे-फिक्र की मैं हर बुलंदी से गुजर आया
मुझे ये अक्ल वाले फिर भी दीवाना समझते हैं
तुम्हें मैं, बुद्धि जहां तक ले जा सकती है, वहां तक ले जा रहा हूं और उसके पार भी। मेरी बातें, बुद्धि की जो भी संभावना हो सकती है, उसके विपरीत नहीं हैं, उसके आगे की हैं। मैं बुद्धि का विरोधी नहीं हूं; मैं बुद्धि का पूरा उपयोग करना चाहता हूं। बुद्धि भी परमात्मा की दी हुई है; उसका पूरा उपयोग करो। बस उसमें अटक मत जाना। उसके पार भी बहुत कुछ है। बुद्धि के ऊपर भी बहुत कुछ है। मगर बुद्धि के ऊपर भी जा सकोगे तभी, जब बुद्धि से जाओगे। बुद्धि से जाओ। बुद्धि का उपयोग कर लो। बनाओ सीढ़ी बुद्धि की। मगर बुद्धि को अंत मत समझ लेना। अस्तित्व बुद्धि से बहुत बड़ा है। बुद्धि उसका छोटा सा अंश है।
शऊरे-फिक्र की मैं हर बुलंदी से गुजर आया
मुझे ये अक्ल वाले फिर भी दीवाना समझते हैं
कभी का शामिले-शोला हूं अहले-महफिल क्यों
हयाते-नौ को मेरी मर्गे-परवाना समझते हैं
हुआ मुझको अबूरे-वुसअते-अक्लो-खिरद हासिल
मगर सब मुझको दीवाने का दीवाना समझते हैं
तुम समाधि भी पा लोगे तो भी लोग तुम्हें पागल ही समझेंगे, दीवाना ही समझेंगे। तुम बुद्धि की आखिरी ऊंचाई के पार निकल जाओगे...
हुआ मुझको अबूरे-वुसअते-अक्लो-खिरद हासिल
तुम्हें बुद्धि के पार जो विराट आकाश है--ऊंचाइयों का, विशालताओं का--
वह भी मिल जाए, तो भी लोग तो तुम्हें पागल ही समझेंगे।
मगर सब मुझको दीवाने का दीवाना समझते हैं
निगाहे-मस्ते-साकी ने किया है बेनियाजे-मय
मुझे मयकश अभी पाबंदे-पैमाना समझते हैं
अभी तक देख ले थामे हुए हैं होश का दामन
इशारों को तेरे हम पीरे-मयखाना समझते हैं
यह तो मधुशाला है। यहां तो शराब ढाली जा रही है। ये शब्द नहीं हैं जो मैं तुमसे बोल रहा हूं; यह शराब है। और ये सिद्धांत नहीं हैं जो मैं तुम्हें सिखा रहा हूं; यह सत्य है। मैं तुम्हें ज्ञानी बनाने की कोशिश नहीं कर रहा हूं। तुम्हारे साथ मैं ऐसा व्यवहार नहीं कर रहा हूं जैसा शिक्षक विद्यार्थी के साथ करता है। मैं तुम्हारे साथ वह व्यवहार कर रहा हूं जो गुरु शिष्य के साथ करता है।
फर्क क्या है?
शिक्षक समझाता है, सूचनाएं देता है; विद्यार्थी सूचनाएं इकट्ठी करता है, परीक्षा देता है।
गुरु सूचनाएं नहीं देता; अपने हृदय को उंड़ेलता है। शिष्य अपने पात्र
को खोलता है और भरता है। और परीक्षा किसी विश्वविद्यालय में नहीं होती। परीक्षा तो परमात्मा के सामने है फिर। परीक्षा तो फिर पूरा जीवन है।
अगर तुम मुझसे पूछते हो तो मैं कहूंगाः अच्छा हो रहा है कि लोग तुम्हें दीवाना समझने लगे! चलो कुछ तो हुआ! शुरुआत तो हुई! कदम ठीक रास्ते

पर पड़ने लगे। जब लड़खड़ाने लगो तो समझना कि कदम ठीक रास्ते पर पड़ने लगे। जब डोलने लगो तो समझना कि कदम ठीक रास्ते पर पड़ने लगे।

आखिरी प्रश्नः आपने कहा कि मीरा कृष्ण के समय में ललिता नामक गोपी रह चुकी थी। ललिता से मीरा तक की यात्रा में साढ़े चार हजार वर्ष का समय लग गया। क्या प्रेम का मार्ग इतना ज्यादा कठिन और इतना ज्यादा लंबा है?

न तो कठिन है, न लंबा है। और साढ़े चार हजार साल कोई लंबाई नहीं। साढ़े चार हजार साल कुछ भी नहीं है। इस अस्तित्व की अनंतता को देखो, यहां साढ़े चार हजार साल में क्या मतलब होता है! एक क्षण जैसे! हिंदू शास्त्र एक सृष्टि से एक प्रलय तक को ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं--चौबीस घंटे। अगर चौबीस घंटे का ऐसा हिसाब रखो तो मीरा और ललिता के बीच क्या फर्क पड़ा? आंख की पलक भी नहीं झपी! पल नहीं बीता।
लेकिन तुम्हारी बात मेरी समझ में आती है। साढ़े चार हजार साल तुम्हें बहुत लगते हैं। सत्तर साल की उम्र के हिसाब से सोचते हो। तुम्हारा पैमाना छोटा है, इसलिए बहुत बड़े लगते हैं। अस्तित्व का पैमाना बहुत बड़ा है। कुछ भी नहीं हुआ। साढ़े चार हजार साल में भी मिल जाए परमात्मा तो बिना चले मिल गया; बिना उठे मिल गया; बैठे-बैठे मिल गया। ख्याल रखना कि कितना ही चलने के बाद परमात्मा मिले तो भी जल्दी मिला; क्योंकि अनंत है यह यात्रा। और कठिनाई कुछ खास नहीं है, कठिनाई छोटी सी है, बड़ी छोटी सी! ललिता में कुछ अहंकार रह गया होगा--साढ़े चार हजार साल लग गए गलाने में। नहीं तो ललिता उसी समय राधा बन जाती। थोड़ी अटक रह गई होगी। थोड़ी दूरी रह गई होगी। थोड़ा फासला रह गया होगा। साढ़े चार हजार साल लग गए--उसी फासले को काटने-काटने-काटने में। मगर फिर भी कोई ज्यादा देरी नहीं हो गई।
तुममें से भी बहुत कृष्ण के समय में रहे होंगे। ऐसा थोड़े ही है कि तुम नये हो कुछ। यहां नया तो कोई भी नहीं। यहां सब बड़े-बड़े प्राचीन लोग बैठे हैं। जब मैं तुम्हारे पीछे झांकता हूं--तुमसे कहता नहीं, क्योंकि तुम घबड़ाओगे--जब मैं तुम्हारी पूरी कथा को देखता हूं, तो तुम कितने लंबे हो, कितने पुराने, कितना जीए हो! और फिर भी अभी वहीं के वहीं! अभी ललिता भी नहीं बने, अभी मीरा बनना तो दूर। ललिता तो बनो। फिर किसी दिन मीरा भी बन सकते हो।
और सवाल यह नहीं है कि कितनी देर लगी यह ललिता और मीरा में। एक क्षण में हो सकती है बात। सवाल इतना ही है कि तुम कितने जल्दी अपने अहंकार को खोने को तैयार हो।
और अहंकार बड़ा कुशल है तर्क देने में, समझाने में। वह कहता हैः अभी इतनी जल्दी न करो, थोड़ा सोच-समझ से काम लो।
अब देखते हैं, चितरंजन की तैयारी हो रही है संन्यास की--मगर थोड़ा सोच-समझ से काम ले रहे हैं। थोड़ा रोक रहा है। ललिता बनने का मौका आ रहा है, चूके जा रहे हैं। फिर मत कहना। फिर पीछे मत कहना।
ललिता को भी बहुत मौके आए होंगे उस समय, चूकती गई होगी। कभी छोटी-छोटी बातों ने अड़चन डाल दी होगी। कभी यही बात अड़चन की हो गई होगी कि राधा कृष्ण के इतने करीब क्यों? मैं इतने करीब क्यों नहीं? कभी यही बात अड़चन बन गई होगी। कभी यही बात अड़चन बन गई होगी कि कृष्ण राधा का हाथ जिस मस्ती से पकड़ कर नाचते हैं, मेरे हाथ में जब हाथ देते हैं तो थोड़ा ठंडा मालूम पड़ता है; उतनी गर्मी नहीं मालूम पड़ती।
मगर कृष्ण के हाथ में गर्मी उतनी ही होती है। वह हाथ न ठंडा होता है न गरम। वह हाथ एक जैसा है--सदा एकरस। वहां प्रेम एक सा है। तुम जितना ले लेते हो उतना मिलता है। ललिता उतना नहीं ले पाई होगी। उतनी जगह खाली नहीं होगी, हाथ ठंडा लगेगा। हाथ ठंडा लगेगा तो ललिता और अकड़ जाएगी। और उसी अकड़ के कारण हाथ और ठंडा होता जाएगा। ऐसी कोई छोटी-मोटी बात अटक गई होगी।
छोटी ही बातें अटका लेती हैं। परमात्मा और तुम्हारे बीच बड़ी बातें हैं भी क्या! हो भी क्या सकती है बड़ी बात! आदमी छोटा है; उसकी बातें सब छोटी हैं। परमात्मा बड़ा है; उसकी सब बातें बड़ी हैं। परमात्मा बाधा नहीं डाल रहा

है; इसलिए कोई बड़ी बात बाधा नहीं डाल सकती। छोटी-छोटी बातें हैं। बड़ी छोटी- छोटी बातें हैं।
रहे-फना पे कदम अब बढ़ा रहा हूं मैं
तमाम उम्र की बिगड़ी बना रहा हूं मैं
रविश-रविश को सजाया था जिस गुलिस्तां की
उसी के शाखो-शजर को जला रहा हूं मैं
जो हार बनाया था हाथों से अपने खिश्त-ब-खिश्त
उसी को खाक में यकसर मिला रहा हूं मैं
बड़े ही शौक से जो आशियां बनाया था
उसे खुद अपने ही हाथों जला रहा हूं मैं
दुआएं मेरी चली हैं कबूल होने को
कि खुद-ब-खुद तेरे कदमों में आ रहा हूं मैं
अहंकार की अड़चन यही है कि जो घर ईंट-ईंट रख कर बनाया था, वह खुद ही गिराना पड़ता है।
रहे-फना पे कदम अब बढ़ा रहा हूं मैं
रहे-फना पर--मिटने के मार्ग पर।
आत्मघात है संन्यास। आत्मघात है भक्ति।
रहे-फना पे कदम अब बढ़ा रहा हूं मैं
तमाम उम्र की बिगड़ी बना रहा हूं मैं
और मजा यह है कि अहंकार को बनाने में जितना समय गया, वह उम्र को बिगाड़ने में ही गया। उसको, अहंकार को बिगाड़ो, तो बिगड़ी बनती है। रविश-रविश को सजाया था जिस गुलिस्तां की
जिस बगीचे में एक-एक पौधा लगाया था, एक-एक फूल सम्हाला था!
उसी के शाखो-शजर को जला रहा हूं मैं
फिर घड़ी आती है, तब उसी के एक-एक पत्ते, एक-एक फूल, एक-एक वृक्ष, एक-एक शाखा को जला देना पड़ता है। अपने हाथों! यही अड़चन है। अहंकार हमने ही बनाया, फिर मिटाते वक्त अड़चन होती है।
जो हार बनाया था हाथों से अपने खिश्त-ब-खिश्त
ईंट पर ईंट रख कर... फूल पर फूल रख कर जो हार बनाया था...
उसी को खाक में यकसर मिला रहा हूं मैं
बड़े ही शौक से जो आशियां बनाया था
वह जो घर अहंकार का बनाया था, नीड़!
उसे खुद अपने ही हाथों जला रहा हूं मैं
यह करना ही होता है। यही साधना है। बस यही! और यह जिस दिन पूरी हो जाए, उसी दिन सिद्धि उतर आती है।
दुआएं मेरी चली हैं कबूल होने को
कि खुद-ब-खुद तेरे कदमों में आ रहा हूं मैं
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
नौवां प्रवचन

राम नाम रस पीजै मनुआं

कोई कहियो रे प्रभु आवन की, आवन की, मनभावन की।
आप न आवै लिख नहिं भेजै, बांण पड़ी ललचावन की।
ये दोई नैन कह्यौ नहिं मानै, नदिया बहै जैसे सावन की।
कहा करूं कछु बस नहिं मेरो, पांख नहिं उड़ जावन की।
मीरा कहै प्रभु कब रे मिलोगे, चेरी भई हूं तेरे दामन की।

राम नाम रस पीजै मनुआं, राम नाम रस पीजै।
तज कुसंग सतसंग बैठि नित, हरि चरचा सुण लीजै।
काम क्रोध मद मोह लोभ कूं, चित्त से बहाय दीजै।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजै।

दरस बिन दूखन लागे नैन।
जब के तुम बिछुड़े प्रभु मोरे, कबहुं न पायो चैन।
सबद सुनत मेरी छतिया कांपै, मीठे-मीठे बैन।
विरह कथा कांसू कहूं सजनी, बह गई करवत ऐन।
कल न पड़त तल हरि मग जोवत, भई छमासी रैन।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख-मेटन, सुख-दैन।

लाख हुशियार बना कर खालिक
एक मखमूर बना देता है
इख्तियाराते-जहां सौंप के सब कुछ
कितना मजबूर बना देता है
दौलते-दर्दे-दोआलम दे कर
दिले-रंजूर बना देता है
फिर इनायत ये कि दर्दे-दिल को
एक नासूर बना देता है
बालो-पर करके सपुर्दे-शोला
हमांतन नूर बना देता है
बेबसर आंख को तेरा जलवा
मतलाये-नूर बना देता है
लाख लोग बनाता है परमात्मा, तो बड़ी उसकी कृपा है कि एक उसमें मस्त भी बना देता है। लाख होशियार बनाता है तो एक मस्त बना देता है। उन लाख होशियारों से जीवन रेगिस्तान जैसा बन जाता है। उस एक मस्त के कारण थोड़ा मरूद्यान रहता है, थोड़ी हरियाली रहती है।
मीरा उन थोड़े से मस्तों में से एक है, जो लाख के पीछे एक ही होता है। मीरा एक मरूद्यान है। उसके पास आओगे तो शीतल हो जाओगे। उसमें डूबोगे तो मोती पाओगे। वहां बड़ी हरियाली है, बड़ी बहार है। मीरा एक वसंत है--ऐसा जहां पतझड़ आना बंद ही हो गया। वहां अब गीत ही लगते हैं। और अगर आंसू भी पाओ तो आनंद के ही पाओगे। और उसे मांगते भी देखोगे तो सिवाय परमात्मा के और कुछ नहीं।
मस्त ही मांग सकते हैं परमात्मा को। होशियार तो और कुछ-कुछ मांगते हैं--धन मांगते हैं, पद मांगते हैं, प्रतिष्ठा मांगते हैं। होशियार तो कचरा मांगते हैं। होशियारी कचरा है। यहां धन्यभागी हैं वे थोड़े से लोग जो होशियार नहीं--जो सरलचित्त हैं; जो भोले-भाले हैं। इस जीवन में जो भी विराट है, वह उन्हीं के आंगन में बरसता है जो भोले-भाले हैं।
होशियारी से सावधान रहना। होशियारी ने ही तुम्हें डुबाया है। होशियारी ने ही तुम्हारे पैरों में जंजीरें डाल दी हैं। होशियारी ने ही तुम्हारे गले में फांसी लगा रखी है। और मजा यह है कि तुम सोचते हो कि

होशियारी से ही इस सबसे बच जाएंगे। तुम सोचते होः रास्ता निकाल लेंगे अपनी ही बुद्धिमानी से; अपनी ही समझदारी से कुछ उपाय कर लेंगे।
तुम्हारी समझदारी ही तुम्हारा कारागृह है। इसी से तुम उपाय कैसे करोगे? जब भी कोई इस कारागृह से सरका है तो मस्ती के द्वार से सरका है। उस मस्ती को कहो समाधि, कहो भाव! उस समाधि को कहो हाल। उस समाधि को जो तुम्हें नाम देना हो। लेकिन जो भी इस कारागृह से खिसका है, वह मस्ती से खिसका है। मस्ती का मतलब ठीक से समझ लेना, तो मीरा का मतलब समझ में आ जाएगा। मस्ती का मतलब होता हैः मेरे किए कुछ भी न होगा। समझदारी का अर्थ होता हैः मैं सब कर लूंगा। मुझे किसी के सहारे की कोई जरूरत नहीं है। मैं पर्याप्त हूं। अगर आज तक नहीं कर पाया हूं तो सिर्फ इसीलिए कि मैंने अपनी पूरी बुद्धिमानी नियोजित नहीं की है। जो आज तक नहीं हुआ, कल करूंगा। आज तक अगर हारा हूं, कोई फिकर नहीं। इन सारी हारों से मेरी समझदारी और निखर गई है। कल जीतूंगा। समझदारी कहती है कि अंततः मैं सफल होने ही वाला हूं। समझदारी एक तरह का अहंकार है, कि मुझे किसी सहारे की जरूरत नहीं है; मुझे किसी परमात्मा की जरूरत नहीं है; मुझे किसी सदगुरु की जरूरत नहीं है।
इसी अहंकार से आदमी उलझा है। और यह जाल रोज बढ़ता चला जाता है। जीसस ने कहा हैः जो छोटे बच्चे की भांति होंगे, वे ही केवल मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।
छोटे बच्चे की भांति! छोटे बच्चे के पास क्या है, जिसकी इतनी प्रशंसा
कर रहे हैं जीसस?
छोटे बच्चे के पास समझदारी नहीं है। क्या है, यह कहना ठीक नहीं है। छोटे बच्चे के पास कुछ है जो नहीं है और जो तुम्हारे पास जरूरत से ज्यादा है। समझदारी तुम्हारे पास जरूरत से ज्यादा है; छोटे बच्चे के पास कोई समझदारी नहीं है। उसकी आंखें शास्त्र, सिद्धांत से शून्य हैं और इसीलिए आश्चर्य से लबालब हैं। और जहां आश्चर्य है वहां परमात्मा का दर्शन है। जितने तुम समझदार होते जाते हो उतना ही आश्चर्य मरता चला जाता है। फिर तुम्हें कोई चीज आश्चर्यचकित करती ही नहीं। फिर कोई भी वस्तु रहस्यपूर्ण नहीं मालूम होती। फिर तुम यह कोयल की आवाज सुनते हो तो भी तुम्हें सुनाई नहीं पड़ती। फिर तुम वृक्षों में खिले फूल देखते हो; मगर वे सामान्य हो गए। तुम जानते ही हो कि यह गुलाब का फूल है; कि यह चमेली; कि यह चंपा।
क्या खाक जानते हो? अंग्रेजी के महाकवि टेनिसन ने कहा हैः अगर मैं एक फूल को पूरा समझ लूं, पूरा-पूरा, तो इस अस्तित्व में फिर कुछ भी समझने को शेष नहीं रह जाता है।
एक फूल में सब समाया हुआ है--सब चांद-तारे; अतीत, वर्तमान, भविष्य। एक फूल में सारा सौंदर्य छिपा है और सारा सत्य। एक फूल में सारा अस्तित्व झलक रहा है। एक छोटे से फूल को भी अगर पूरा समझने जाओगे तो तुम्हें पूरा अस्तित्व ही समझना पड़ेगा, तभी समझ पाओगे। और पूरे अस्तित्व को कौन कब समझ पाया है! पूरे अस्तित्व को न कोई कभी समझ पाया है और न कोई कभी समझेगा।
यह पूरा अस्तित्व ऐसा नहीं है जैसे अखबार में छपी हुई क्रासवर्ड पहेली होती है, कि घड़ी आधा घड़ी में हल कर ली और फिर फेंक दी। अस्तित्व ऐसी पहेली है, जो सदा पहेली है और सदा पहेली रहेगी। पहेली होना अस्तित्व का स्वभाव है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है अस्तित्व का पहेली होना। अस्तित्व पहेली है। इसका कोई हल नहीं है। और बुद्धिमान आदमी हल खोजने की कोशिश करता है। बुद्धिमान आदमी हल बनाने की कोशिश करता है। वह गणित, तर्क का जाल फैलाता है और सोचता है कि इस जाल में रहस्य की मछली फंस जाएगी। रहस्य की मछली फंस ही नहीं सकती। रहस्य की मछली केवल आश्चर्य से भरे हृदय में फंसती है। आश्चर्य ही उसके लिए जाल है। छोटे बच्चे की आंखों में आश्चर्य है। और छोटे बच्चे की आंखों में आशा है। वह आशा तुम्हारी खो गई है। जैसे-जैसे तुम्हारी उम्र बड़ी होती जाती है, वैसे-वैसे निराशा ठहरती जाती है। धीरे-धीरे निराशा की धूल जम जाती है।
निराशा क्यों आ जाती है जीवन में? निराशा के आने का वही कारण है, वही अहंकार कि मैं सब सुलझा लूंगा। और बार-बार तुम पाते हो कि सुलझता तो है नहीं और अहंकार छूटता भी नहीं। यह भी नहीं कह सकते कि मुझसे नहीं सुलझेगा;

हे प्रभु, तू सुलझा दे! यह तुम्हारे अहंकार के विपरीत है। यह तुम कैसे कहो! यह तो कमजोर लोग कहते होंगे! तुम तो बड़े शक्तिशाली हो, तुम यह कैसे कहो! तुम कैसे हथियार डाल दो! तुम तो प्रभु पर आक्रमण करने निकले हो। तुम तो उसे भी जीतने की आकांक्षा रखते हो। तुम कोशिश करते हो; हर कोशिश पराजय में परिणत हो जाती है। तुम दौड़ते हो; हर दौड़ गड्ढे में ले जाती है। तो धीरे- धीरे निराशा इकट्ठी होने लगती है। कितने दूर तक आशा को बचाए रखोगे?
गलत दिशा में जो चला है, वह आज नहीं कल निराश हो ही जाएगा। आशा तो ठीक दिशा में ही बनी रह सकती है। न मिले सत्य आज, लेकिन मिलता हुआ मालूम भी पड़ता रहे तो भी आशा बनी रहती है। दूर हो सूरज, कोई फिकर नहीं; पर आंखों में दिखाई तो पड़ता रहे! मगर अगर तुम पीठ सूरज की तरफ करके चले हो, तब तो आंखों में भी दिखाई नहीं पड़ता। दूर का तो सवाल ही नहीं। दूर-पास का प्रश्न ही नहीं। और तुम चलते ही जाते हो अंधेरे की तरफ।
जीसस जब कहते हैं, "छोटे बच्चे की भांति जो है वह धन्यभागी है"--क्यों? क्योंकि अभी उसकी आशा कायम है। अभी उसने निराश होने का उपाय ही नहीं किया। अभी अहंकार की मान कर चला ही नहीं, इसलिए हारा नहीं।
इस सूत्र को खूब ख्याल में ले लेना। जो जीतने चला है वह हारेगा। जो जीतने चला है वह निश्चित हारेगा। और जब हारेगा तो निराशा पकड़ेगी; उदास हो जाएगा। छाती पर पत्थर पड़ जाएंगे। हिम्मत खो जाएगी। साहस खो जाएगा। जीवन में आस्था खो जाएगी। जीवन दुश्मन मालूम होने लगेगा, तो फिर आस्था कैसे होगी? मित्र तो नहीं मालूम होगा जीवन।
तुम जो भी करते हो, जीवन उसे मिटा डालता है। तुम जो भी बनाते हो, जीवन उसे नष्ट कर देता है। तुम जिस तरफ जाते हो, वहीं हार देता है जीवन। तो जीवन मित्र कैसे हो सकता है? और जब जीवन मित्र नहीं है, तो क्रोध पैदा होता है; विध्वंस पैदा होता है; हिंसा पैदा होती है--कि हम बना तो नहीं सकते, तो चलो मिटा दें! कुछ नहीं कर सकते तो मिटा दें। आदमी अपनी असहाय अवस्था को स्वीकार न करके, मिटाने में लग जाता है कि कम से कम मिटा तो सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि दुनिया में जो बड़े से बड़े हत्यारे हुए हैं, वे बड़े से बड़े महात्मा हो सकते थे। उनमें और महात्माओं में इतना ही फर्क है कि महात्मा सृजन की दिशा में चले गए; अपराधी, भयंकर पापी, विध्वंस की दिशा में चले गए। विध्वंस की दिशा में गए ही इसलिए, कि बना तो नहीं सकते, तो कम से कम तोड़ तो सकते हैं। कुछ तो कर लें! एक आदमी को बनाना तो मुश्किल है; मुश्किल क्या, असंभव है; लेकिन हम हजार आदमी मार तो सकते हैं। चलो यही ठीक, लेकिन कुछ अपना कर्तृत्व तो दिखा दें!
चंगीजखान और तैमूरलंग और अडोल्फ हिटलर वही दिखा रहे हैं। वह इस बात
की घोषणा है कि मेरा अहंकार बना तो नहीं पाता, लेकिन मिटा तो सकता हूं। चलो यही ठीक। यही करके रहूंगा। लेकिन अहंकार नहीं छोड़ सकता।
जो यहां जीतने चला है वह हारेगा। जीत की आकांक्षा में हार छिपी है। जीत की आकांक्षा बीज है हार के वृक्ष का। जो जीतने नहीं चला है, वही जीतता है। जो हारने चला है, वही जीतता है। वही मस्त का मार्ग है। वह कहता हैः प्रभु, मुझे हराओ! वह कहता हैः मुझे डुबाओ! वह कहता हैः मुझे मिटाओ!
यह मस्त ही कह सकता है। बुद्धिमान कैसे कहेगा! बुद्धिमान तो यह बात ही पागलपन की समझेगा कि मिटाओ! मुझे डुबाओ! यह बात कैसी हो रही है? बुद्धिमान तो परमात्मा का भी सहारा मांगता है, तो मैं कैसे जीतूं, इसी में सहारा मांगता है। मैं कैसे और शक्तिशाली हो जाऊं! बुद्धिमान कहता हैः मेरी शक्ति बढ़ाओ।
मस्त कहता हैः मेरी शक्ति बिल्कुल ले लो। मुझमें कुछ छोड़ो ही मत। मुझे खाली कर दो। क्योंकि खाली होकर ही मैं तुम्हारा हो पाऊंगा। मेरे में थोड़ी भी शक्ति रही तो मैं गलत ही करूंगा। मुझसे गलत ही होगा। मैं गलत हूं। मेरा होना ही गलत है। तुम मुझे पोंछ डालो।
लाख हुशियार बना कर खालिक
एक मखमूर बना देता है
मखमूर--मस्त, दीवाने, पागल--बहुत थोड़े हैं। लेकिन उन्हीं थोड़ों के कारण जिंदगी में थोड़ी रौनक है, अर्थ है, गरिमा है। जरा तुम सोचो कि मीरा न हो, कबीर न हों, कबीर की जगह एक और कुबेर हो जाए--तो जिंदगी में जो थोड़ा-

बहुत अर्थ है, कहीं-कहीं किरण फूटती मालूम पड़ती है, वह भी न फूटे। इस अंधेरी रात में जो कोई तारा जगमगाता है, वह भी न जगमगाए। इन कांटों में जो कभी-कभी एक फूल खिल जाता है, वह भी न खिले।
ये थोड़े से जो पागल हैं--जीसस ने कहा है--इन्हीं के कारण जीवन में नमक है, स्वाद है। दीज आर दि साल्ट ऑफ दि अर्थ। यह वचन प्यारा हैः ये पृथ्वी के नमक हैं। इन्हीं के कारण जिंदगी बेरौनक नहीं हो पाती; बेस्वाद नहीं हो पाती। ये थोड़े से लोगों पर ही आशा है।
मगर इन थोड़े से लोगों का सूत्र बड़ा सरल है। काश, तुम बुद्धिमानी को जरा एक किनारे रख कर समझो तो सूत्र बड़ा सरल है। इनका सूत्र इतना ही है कि हम बहुत छोटे हैं; अस्तित्व विराट है। हम विराट के खिलाफ लड़ कर कैसे जीत सकेंगे? यह तो ऐसे ही है जैसे एक बूंद सागर से लड़ने लगे; कि एक किरण सूरज से लड़ने लगे; कि एक पत्ता वृक्ष से लड़ने लगे। यह बुद्धिमानी तो पागलपन है। यह बुद्धिमानी बुद्धिमानी नहीं है। यह तो ऐसे ही है जैसे एक छोटी सी लहर और नदी से लड़ने लगे। कैसे जीतेगी? जीत का तो कोई उपाय ही नहीं रहा। पहला कदम ही गलत दिशा में पड़ रहा है। लहर जीत सकती है नदी के साथ।
तुम भी जीत सकते हो परमात्मा के साथ। मगर परमात्मा के साथ होने के लिए तुम्हें पहले बिल्कुल मिट जाना होता है; तभी तुम उसके साथ हो सकते हो। तुम्हारी थोड़ी भी अकड़ भीतर बनी रहती है, उतनी ही तुम्हारी दूरी बनी रहती है; उतना ही फासला बना रहता है।
परमात्मा दूर नहीं है; तुम परमात्मा से दूर हो। परमात्मा बिल्कुल पास है, मगर तुम अपनी लड़ाई के कारण दूर हो। तुम अपनी अकड़ से मरे जा रहे हो। और आदमी इन्हीं अकड़ के कारण न मालूम कितने विधि-विधान खोज लेता है--धर्म के नाम पर भी! उपवास करेगा, व्रत करेगा, धूप में खड़ा होगा, शरीर को कोड़े मारेगा, कांटों पर लेटेगा--और न मालूम कितनी तरह की मूढ़ताएं करेगा! ये मूढ़ताएं हैं और ये रुग्ण स्थितियां हैं। इनको तुम पूजा देते रहे हो। मगर ये चित्त से विक्षिप्त लोग हैं। ये स्वस्थ लोग नहीं हैं। यह फिर भी वही लड़ाई जारी है। अब नये ढंग से लड़ाई जारी है। पहले ये रुपया कमा कर लड़ रहे थे; अब ये पुण्य कमा कर लड़ रहे हैं। मगर ये परमात्मा को हराने को तैयार हैं। ये कहते हैं कि ठीक है, तप से होगा तो तप से, मगर जीत कर रहेंगे। गला देंगे अपने को, शरीर को काट डालेंगे, लेकिन जीत कर रहेंगे! सब कुछ दांव पर लगाने को तैयार हैं, लेकिन एक "मैं" को दांव पर लगाने को तैयार नहीं हैं। वह "मैं" पहले धन के कारण भरता था, अब तप के कारण भरता है। पहले भी ये सिंहासन पर विराजमान थे, वह सिंहासन सोने का था; अब इन्होंने पुण्य का एक सिंहासन बना लिया है--व्रत, त्याग-तपश्चर्या का सिंहासन बना लिया है। लेकिन सिंहासन पर ये अब भी बैठे हुए हैं।
भक्त कहता हैः उतरो सिंहासन से। यह सिंहासन उसका है। अंशी का है; अंश
का नहीं। सागर का है; बूंद का नहीं। विराट का है; क्षुद्र का नहीं। उतरो सिंहासन से। जगह खाली करो। और तुम्हारे जगह खाली करते ही वह तुम्हें भर देता है। इतना ही सरल है मामला।
इसलिए जीसस कहते हैंः छोटे बच्चे की भांति!
मखमूर बनो, मस्त बनो!
छोटे बच्चे में मस्ती देखी? और अकारण होती है मस्ती, तभी मस्ती है। तुम जब चुनाव में जीत जाते हो, तब तुम बैंड-बाजे में बड़ी मस्ती प्रकट करते हो; वह मस्ती नहीं है, क्योंकि उसमें कारण है। जिसमें कारण है, वह मस्ती नहीं। तुम्हें धन मिल गया, लाटरी खुल गई तुम्हारे नाम, तुम बड़े मस्त हो, पार्टी दी है, घर में संगीत बह रहा है, लोग नाच रहे हैं--मगर यह मस्ती नहीं है; इसमें पीछे कारण है। लाटरी न मिलती तो? तो तुम मस्त नहीं हो सकते थे। चुनाव न जीतते तो? तो तुम मस्त नहीं हो सकते थे। यह मस्ती बाहर है; इसका आधार है। यह मस्ती तुम्हारे भीतर से आविर्भूत नहीं है।
मखमूर उसे कहते हैं, जिसकी मस्ती उसके भीतर से आती है--जो शराब तो पीता है, लेकिन भीतर की पीता है, बाहर की नहीं; जिसकी मस्ती अकारण है।
छोटे बच्चों की मस्ती अकारण होती है। छोटे बच्चे की मस्ती उसके भीतर
से होती है। वह अपनी मस्ती के कारण दौड़ता है। तुम मस्ती पाने के लिए दौड़ते हो। छोटा बच्चा उछल-कूद कर रहा है; इसलिए नहीं कि कुछ उसको लाटरी मिल गई है,

कि चुनाव जीत गया है, कि प्रधानमंत्री हो गया है--कुछ भी नहीं। उछल-कूद कर रहा है, क्योंकि मस्ती है भीतर। इस मस्ती को तो छलकाना पड़ेगा। यह मस्ती नाच रही है। तुम्हें हैरानी भी होती है कि कारण क्या है? क्यों इतने खुश हो?
कारण की कोई जरूरत नहीं है। खुशी स्वाभाविक है। जैसे बच्चे की खुशी स्वाभाविक है।
ख्याल करनाः बच्चा दुखी होता है, जब कारण हो; और खुश होता है--अकारण।
एक बच्चा अपने झूले में पड़ा मस्त हो रहा है; अपना अंगूठा ही चूस रहा है। अब यह भी कोई चूसने की चीज है! मगर मस्त है; आनंदित हो रहा है, गदगद है। फिर रोने लगा। रोने लगा तो भूख है कारण। जब मस्त था तो कोई कारण न था। बच्चा दुखी होता है कारण से; सुखी होता है बिना कारण के।
तुम्हारी हालत ठीक उलटी है। सुख के लिए कारण खोजते हो; दुखी अकारण हो। इधर मैं रोज लोग देखता हूं; रोज एक के बाद एक कतार में मुझसे मिलते रहते हैं। बड़े दुखी हैं! कारण कुछ दिखाई नहीं पड़ता। उनसे भी जरा खोज-बीन करके पूछो तो वे भी कहते हैंः हमें भी पता नहीं चलता कि कारण क्या है! मगर दुख है, यह बात पक्की है। जिंदगी में कुछ नहीं मालूम होता; सब थोथा है। यह तो जीवन का बिल्कुल गणित उलटा कर लेना हुआ। यह तो तुम शीर्षासन करने लगे।
इस प्रक्रिया को बदलना होता है। इसलिए अगर तुम अकारण हंसोगे तो लोग चौंकेंगे, कि पागल तो नहीं हो गए! किस कारण हंस रहे हो? इसलिए अगर कोई अकारण हंसे तो उसे लोग पागल कहते हैं।
यहां आश्रम में हमारी अंतेवासी हैः सत्या। वह हंस रही है तीन महीने से--अकारण! तीन महीने तक कोई हंस भी नहीं सकता। कारण तो होता ही नहीं; इतनी देर चलता ही नहीं। लाटरी मिली, खतम! चुनाव जीते, गया। दस-पंद्रह दिन बाद मुसीबतें शुरू। जिन्होंने वोट दिया था, वे ही खड़े हैं छाती पर, कि अब आश्वासन का क्या हुआ? जो वचन दिए थे, वे पूरे करो! बाहर से आया कारण थोड़ी देर चल सकता है। लेकिन सत्या तीन महीने से हंस रही है। पहले तो खुद भी डरी कि यह क्या हो रहा है! क्योंकि रात बिस्तर पर पड़े-पड़े नींद खुल गई और हंसी आ जाए!
उसके पति भी यहां हैं। वे भी मेरे पास भागे आए कि मामला क्या है? यह पागल तो नहीं हो रही? क्योंकि पड़े-पड़े बिस्तर पर कोई कारण ही नहीं, कोई बात ही नहीं और ऐसा हंसती है खिलखिला कर! और फिर रुकती नहीं। और अगर इससे पूछो, क्यों हंस रही है? तो और हंसती है। इससे पूछना भी खतरनाक है। और इसका जो कुछ भी हो, मैं पागल हो जाऊंगा अगर यह इस तरह चलता ही रहा तो। क्योंकि सुबह बैठी है, हंसने लगती है; दोपहर बैठी है, हंसने लगती है--कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।
उससे मैंने पूछा कि तुझे क्या हुआ?
उसने कहाः कुछ कह नहीं सकती कि क्या हुआ। बस एक गुदगुदी आती है, भीतर
से आती है, एकदम भीतर जैसे कोई गुदगुदाने लगता है; फिर रोकना मुश्किल हो जाता है। फिर हंसती हूं। और दूसरों को परेशान देखती हूं तो और हंसी आती है कि यह भी खूब रहा! फिर अपनी हंसी पर हंसती हूं कि यह मैं क्या पागल हुई जा रही हूं! फिर इसका कोई अंत ही नहीं है! नींद कम हो गई है; मगर कोई थकान नहीं है।
और हंसी नहीं थी जिंदगी भर से। कारण होता था, तब भी नहीं हंसी थी। हंसना उसकी आदत में शुमार नहीं था, इसलिए पति और भी हैरान हैं कि यह तो इस तरह की थी ही नहीं कभी। गंभीर, सदा गंभीर! मेरे पास भी जब आती थी इन तीन महीनों के पहले, तो सदा रोती। कुछ न कुछ शिकायत, कुछ न कुछ गलत दुनिया में हो रहा है। कहीं उसे शांति नहीं, कहीं चैन नहीं। इधर तीन महीनों में हालत बिल्कुल बदल गई है। मैं उससे कहता थाः सत्या रुक, थोड़ी प्रतीक्षा कर! थोड़ी और प्रतीक्षा कर।
अब कहती हैः किसी तरह मेरा यह हंसना रोको।
ऐसा हेमा को भी हुआ था। अब यह रोके रहती है अपनी हंसी, मगर जब आती है तो फिर रोकना उसे मुश्किल हो जाता है। यह तीन दिन तक सतत हंसती रही थी--बिना सोए, बिना खाए-पीए। लोग तो पागल ही कहेंगे। और ऐसी हंसी का गुणधर्म ही अलग होता है। उसकी ताजगी अलग होती है। वह कहीं बड़े दूर से आती है, जैसे

परमात्मा तुम्हारे भीतर हंसा। वह तुम्हारी नहीं होती; तुमसे आती जरूर है, तुम्हारी नहीं होती।
मस्ती का अर्थ होता हैः आनंद स्वभाव है; दुख स्वभाव नहीं है। आनंद सतत होना ही चाहिए; दुख कभी-कभी हो जाए, चलेगा। भोजन में चटनी की तरह चल सकता है। मगर तुमने चटनी का भोजन बना लिया है। तुम उसी का भोजन कर रहे हो। तो स्वभावतः तुम्हारे जीवन में बड़ी कुरूपता हो गई है। अंधेरा हो गया है। अमावस हो गई है।
लाख हुशियार बना कर खालिक
एक मखमूर बना देता है
एक मस्त पैदा होता है आदमी--लाखों में कभी; विरला होता है।
मीरा उन विरले लोगों में से एक है। ये सारे गीत उसकी मस्ती के गीत हैं। यह भीतर की गुदगुदी है--जिसे वह सम्हाल नहीं पा रही; जो बाहर बही जा रही है। मीरा को तुम रोते भी पाओ तो अपने आंसुओं जैसे आंसू मत समझना; वे आंसू परम आनंद के हैं। वे आंसू परम आह्लाद के हैं। मीरा को तुम परमात्मा की शिकायत करते भी पाओ तो भूल कर भी ऐसा मत समझना कि वह शिकायत कर रही है। वे तो प्रेम के शिकवे हैं, शिकायत नहीं है। वह तो प्रेम की मान-मनौवल है, रूठना इत्यादि है। वह जो परमात्मा से प्रार्थना करती है कि और आओ, और आओ, और आओ--वह तो सिर्फ इस बात की खबर है कि प्रेम कभी तृप्त नहीं होता।
प्रेम तृप्त हो ही नहीं सकता। जितनी तृप्ति मिलती है प्रेम को, उतना
ही प्रेम विराट होता जाता है। जितना मिलता है उतना और मिलने की संभावना साफ होती जाती है। जितना मिल जाता है, इससे और भी ज्यादा मिल सकता है, इसका भरोसा बढ़ता है। फिर परमात्मा से कोई तब तक तृप्त नहीं होता जब तक कि उसी में लीन न हो जाए। तो विरह है। लेकिन विरह का यह मत समझना मतलब कि मीरा को परमात्मा मिले नहीं हैं। विरह का इतना ही मतलब है कि मिले हैं और मिलने से ही उपद्रव शुरू हुआ है। मिले हैं और विरह जगा है।
तो दुनिया में दो तरह के विरही हैं। एक तो वे जिन्हें परमात्मा नहीं मिला है; उनका विरह बहुत गहरा नहीं होता। क्योंकि जो मिला ही नहीं उसका विरह भी कैसे करोगे? रो भी लोगे कभी-कभी तो तुम खुद ही पाओगे कि रोना कुछ उधार है। जिसको कभी देखा नहीं, उससे प्रेम कैसा? जिससे कभी मुलाकात नहीं हुई, उसकी याद कैसी? उसका स्मरण कैसा? जिसने कभी तुम्हारे हाथ में हाथ नहीं लिया, उसके स्पर्श का तुम्हें अनुभव ही नहीं है; तो उसके आलिंगन की आकांक्षा में सचाई कितनी हो सकती है?
तो भक्तों के साथ याद रखना, उनके विरह का मतलब तुम सदा ऐसा मत समझ लेना
कि उन्हें परमात्मा नहीं मिला, इसलिए रो रहे हैं। तुम्हें मैं यह सचेत कर देना चाहता हूं। वे रो ही इसलिए रहे हैं कि मिला है। मिला है और मुश्किल हो गई। मिला क्या कि मुश्किल हो गई। स्वाद ले लिया है। ऐसा स्वाद ले लिया कि उस स्वाद के कारण संसार के सारे स्वाद तो एकदम फीके हो गए। यह अड़चन हो गई। पहले जिन चीजों में रस था, वह रस गया।
यहां एक फर्क समझना। जिसको तुम त्यागी कहते हो, वह पहले संसार में रस छोड़ता है। वह सोचता हैः संसार में रस छूटे तो परमात्मा में रस लगे। छूट-छूट कर भी नहीं छूटता। लड़ता-झगड़ता है। भागता है। इधर-उधर दौड़ता है। आंखें बंद करता है। व्यायाम, प्राणायाम करता है। सब तरह के उपाय करता है। संसार से दूर-दूर निकल जाता है हिमालय में--कि न रहेगा संसार, न रस आएगा।
मगर कुछ नहीं होता, इससे फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि जो रस का अनुभव किया
है वह पीछा करेगा। सच तो यह है कि हिमालय पर ज्यादा पीछा करेगा, बजाय बस्ती में रहने के। बस्ती में तो उपाय भी हैं; हिमालय पर उपाय भी नहीं रह जाएंगे-- सिर्फ भागती अंधी वासना रह जाएगी। झंझावात होगा भीतर एक वासना का। याद आएगी उन स्वादों की जो लिए थे। स्त्रियां साधारण थीं, जिनको तुम छोड़ आए हो; हिमालय की गुफा में बैठे-बैठे वे सब अप्सराएं हो जाएंगी। तुम्हारी भूखी वासना उनको रंग देगी, रूप देगी, उनको सजाएगी, संवारेगी।
भागने से नहीं कुछ होता। लेकिन वह साधारण गणित है आदमी का कि जिस परिस्थिति में वासना जगती है, वहां से भाग जाओ; न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। यह बांसुरी कुछ ऐसी है कि बिना बांस के बज सकती है। यह बांसुरी तुम्हारे भीतर है; इसका बांस से कुछ लेना-देना नहीं है। क्योंकि वासना

तुम्हारे भीतर है, बाहर तो परिस्थितियां केवल उकसाने का काम करती हैं।
तुम भाग गए तो इससे कुछ अंतर नहीं पड़ेगा; भीतर जो है वह भीतर है, वह तुम्हारे साथ चला जाएगा।
भक्त की प्रक्रिया दूसरी है। भक्त पहले परमात्मा में रस को लगा लेता है, फिर अपने आप संसार में विरस हो जाता है। भक्त की प्रक्रिया विधायक है। त्यागी की प्रक्रिया नकारात्मक है। अगर चुनना हो तो भक्त की चुनना। उसका साफ-सुथरा मार्ग है। वह यह कहता हैः पहले परमात्मा में थोड़ा रस लगाएं।
तो पहले तो भक्त रोता है; उस रोने में बहुत वजन नहीं होता, बहुत बल नहीं होता। उस रोने में सिर्फ जीवन की पीड़ा होती है। उन आंसुओं में, इस जीवन में कुछ सार नहीं मालूम पड़ता, इसका विषाद होता है। लेकिन धीरे-धीरे जैसे-जैसे भक्त में विषाद बढ़ता जाता है, विरह बढ़ता जाता है--एक घड़ी आती है क्रांति की। जैसे पानी को हम गरम करते हैं, सौ डिग्री पर भाप बन जाता है। ऐसे ही विषाद को गरम करते-करते, गरम होते-होते एक डिग्री है, एक खास जगह है, हर एक में अलग-अलग होती है। आदमी पानी जैसा नहीं है कि सब आदमी सौ डिग्री पर भक्त हो जाएं। हर आदमी में अलग-अलग होती है, क्योंकि हर आदमी अलग-अलग यात्रा करके आया है। जन्मों-जन्मों के अलग-अलग संस्कार हैं। एक-एक आदमी अपने आप में एक दुनिया है; उस जैसा दूसरा कोई आदमी नहीं है। तो कब होगी, कहना मुश्किल है। लेकिन अगर कोई विषाद में पड़ता ही रहे, पड़ता ही रहे, तो एक दिन होती जरूर है। और सबमें अलग-अलग समयों में होती है; अलग अलग घड़ियों में होती है। इसलिए भविष्यवाणी भी नहीं हो सकती। लेकिन होती निश्चित है। रोते-रोते एक दिन तुम पाते हो कि रोने का गुणधर्म बदल गया। अब तक रो रहे थे विषाद से; एक दिन अचानक पाते हो कि अब विषाद नहीं है--हर्ष के, आनंद के, सुख के आंसू आने शुरू हो गए हैं।
वह क्रांति का क्षण है। तुम अचानक पाते हो कि सारा गुणधर्म बदल गया।
अब भीतर तुम इसलिए नहीं रो रहे हो कि परमात्मा नहीं मिला है--इसलिए रो रहे हो कि अब उसकी झलक मिली है। अब झलक और मिले। अब झलक बार-बार मिले। अब झलक रोज-रोज मिले। अब झलक हर पल मिले। अब एक पल को भी आंख से ओझल न हो।
ये उसी आनंद की अवस्था में गाए गए भजन हैं।
कोई कहियो रे प्रभु आवन की...
मीरा कहती हैः कोई मुझे खबर कर देना अगर प्रभु आएं, क्योंकि मैं तो ऐसे रोने में लगी हूं कि मुझे पता ही नहीं चलेगा। वे द्वार पर आकर खड़े हो जाएं और मैं अपना रोना ही करती रहूं; ये मेरे आंसू बहते ही रहें! मेरी आंखें आंसुओं से भरी हैं; कोई मुझे खबर कर देना। वे द्वार पर दस्तक दें तो ऐसा न हो कि मैं स्वागत को तैयार भी न होऊं।
कोई कहियो रे प्रभु आवन की...
और कोई खबर मुझे दे देनाः कब आने को हैं, कब तक आएंगे, ताकि मैं तैयारी
कर लूं।
यह बात ऐसी नहीं है कि मीरा ने प्रभु न जाने हों। जाना है। उनका आगमन देखा है। उनकी बांसुरी सुनी है। उनकी पगध्वनि का इसे स्मरण है। मगर यह कह रही है कि मैं इतनी विह्वल हो रही हूं उनके वियोग में, मैं ऐसी रो रही हूं, मैं ऐसी लोट रही हूं जमीन पर; मेरी आंखें आंसुओं से भरी हैं; मुझे कुछ और दिखाई नहीं पड़ता; मेरा चित्त उन्हीं पुराने स्मरणों से भरा है; उनकी तस्वीर मेरे भीतर है--कहीं ऐसा न हो कि वे सामने खड़े हो जाएं और मैं तस्वीर से ही उलझी रहूं!
स्वामी रामतीर्थ कहते थेः एक प्रेमी दूर देश चला गया। वह अपनी प्रेयसी को पत्र लिखता कि अब आता हूं, अब आता हूं। लेकिन उलझन बढ़ती गई, काम बढ़ता गया। प्रेयसी थक गई। अंततः वह एक दिन यात्रा की उसने; उस दूर के गांव पहुंच गई। जब वह पहुंची उसके द्वार पर तो सांझ का दीया जल चुका था। वह दीया जलाए, टेबल पर झुका कुछ लिख रहा था, तो वह द्वार पर ही बैठ गई--उसके काम में बाधा न दे, उसका लिखना पूरा हो जाए! और वह पत्र लिख रहा था इसी प्रेयसी को। प्रेयसी द्वार पर बैठी है, प्रेमी पत्र लिख रहा है--इसी प्रेयसी को! इस ख्याल में कि वह दूर कहीं, जहां छोड़ आया है। प्रेमी की आंख से आंसू टपक रहे हैं। और जिसके लिए वह रो रहा है, वह द्वार पर बैठा है। जिसके लिए रो रहा है, उसे आलिंगन करने में क्षण भर की भी देरी की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन उसे

रोते देख कर प्रेयसी और परेशान हो गई कि वह इतना दुखी है, बीच में बाधा डालनी ठीक नहीं, उसे निपट ही लेने दो अपने दुख से। उसे जो लिखना है, लिख लेने दो।
और वह प्रेयसी को पत्र लिखता था लंबे-लंबे, जैसे प्रेमी लिखते हैं। कुछ लिखने को होता भी नहीं, तो भी लिखते चले जाते हैं। वह पत्र का अंत ही नहीं आता; मजबूरी में करना पड़ता है। क्योंकि लिफाफे में एक सीमा होती है। लिखते ही जाते हैं। लिखते ही जाते हैं। लिखने को कुछ भी नहीं होता; और ऐसे बहुत कुछ होता है। वह लिखता ही जा रहा है--पन्ने पर पन्ने! आधी रात तक वह लिखता रहा। उसने एक बार आंख उठा कर न देखी कि कौन द्वार पर बैठा है।
और जब उसका पत्र पूरा हुआ और उसने आंख उठा कर देखी तो उसे भरोसा नहीं आया। भरोसा आए भी कैसे! सैकड़ों मील दूर छोड़ आया है। और यह ग्रामीण युवती इस बड़े महानगर में आ जाएगी उसे खोजती हुई, यह तो सवाल ही नहीं उठ सकता। वह घबड़ा गया। वह समझा कि कुछ भूल-चूक हो रही है, कोई भ्रांति हो रही है। शायद मैं इतनी देर तक पत्र लिखता रहा, इसी-इसी की याद करता रहा, इसी का चेहरा देखता रहा--तो शायद मेरे मन में प्रतिमा समा गई। शायद मैं आत्मसम्मोहित हो गया हूं। तो उसने चौंक कर देखा। उसे भरोसा नहीं आया। उसने स्वागत नहीं किया। उसने यह नहीं कहा कि तू कब आई। वह थोड़ा सा घबड़ाया दिखाई पड़ा, कि यह हो क्या रहा है!
उसकी प्रेयसी ने पूछाः तुम इतने घबड़ाए क्यों हो?
तब तो वह बोलाः अरे! तो तू बोलती भी है!
उसने कहा कि मैं यहां हूं और यहां घंटों से बैठी हूं!
तब उसे होश आया। तब दौड़ कर गले लगा। तब रोने लगा बहुत और कहने लगाः यह
भी हद्द हो गई! मैं तुझे ही पत्र लिख रहा था और जीवित तू यहां मौजूद थी! साकार तू यहां मौजूद थी और मैं कल्पनाओं में उलझा था।
मीरा यही कह रही है। मीरा कह रही हैः कोई कहियो रे प्रभु आवन की!
कि मैं ऐसी ही उलझी न रह जाऊं। मैं ऐसे ही मन ही मन में न अपनी कल्पनाओं के जाल बुनती रहूं। मैं अपने सपनों में ऐसे ही न डूबी रहूं। अब मुझे अपना होश नहीं है; कोई मुझे कह देना कि प्रभु आ गए, फिर आ गए! कोई मुझे जगा देना। अब मेरी हालत शराबी की है। कोई मुझे घर तक पहुंचा देना। कोई मुझे सम्हाल लेना। और प्रभु द्वार पर खड़े हों तो कोई मुझे हिला देना और कह देना कि वे आ गए हैं, तू अब मत रो! किसके लिए रोती है?
कोई कहियो रे प्रभु आवन की, आवन की, मनभावन की।
उन्होंने मेरे मन को भा लिया है। उन्होंने मेरे मन को जीत लिया है। उन्होंने मुझे मिटा दिया है। उन्होंने मुझे अपना निवास बना लिया है। लेकिन फिर भी कभी होते हैं, कभी नहीं होते हैं; कभी उन्हें पाती हूं, कभी खो देती हूं। यह खोने-पाने का खेल चल रहा है।
प्रेमी चाहता हैः सतत, चौबीस घंटे, जिससे प्रेम हो उसके पास रहे; जिससे प्रेम हो वह उसके पास रहे। एक क्षण को भी प्रेमी व्यवधान नहीं चाहता। प्रेम की आकांक्षा समग्रीभूत रूप से एक हो जाने की है; तादात्म्य हो जाने की है। भक्त भगवान में लीन हो जाना चाहता है और भगवान को अपने में लीन कर लेना चाहता है। दुई नहीं चाहता--यह द्वैत न बचे।
आप न आवै लिख नहिं भेजै, बांण पड़ी ललचावन की।
मीरा कहती हैः यह भी बड़ा मजा है! आप आते भी नहीं, खुद तो आता नहीं! इतना
भी नहीं होता कि पाती ही लिख भेजे। पत्र भी नहीं भेजते। और तुम्हें खूब आदत पड़ गई है मुझे ललचाने की। तुम मुझे दूर खड़े-खड़े ललचाते हो। तुम मुझे पुकारते हो दूर चांद-तारों से। और मैं जितनी तुम्हारी पुकार से भर जाती हूं, मुझे लगता है कि तुम प्रसन्न हो रहे हो। इधर मैं तड़पी जाती हूं, उधर तुम आनंदित हो रहे हो।
चोट पर चोट खाए जाते हैं
और हम मुस्कुराए जाते हैं
दाग दिल के जलाए जाते हैं
तीरगी यूं मिटाए जाते हैं
दर्द पर दर्द, गम पे गम देकर राजे-उल्फत सिखाए जाते हैं

बख्श कर बेबसी-ओ-मजबूरी
इख्तियार आजमाए जाते हैं
खार फैला के बागे-हस्ती में
गुंचा-ओ-गुल खिलाए जाते हैं
बिजलियां गिर रही हैं हम पे इधर
वो उधर मुस्कुराए जाते हैं
दर्द पर दर्द, गम पे गम देकर
राजे-उल्फत सिखाए जाते हैं
यह कैसा प्रेम का राज तुम सिखाते हो--दर्द पर दर्द देकर, गम पर गम देकर! मगर यही रास्ता है। प्रेम पीड़ा में से उमगता है; पीड़ा में ही निखरता है, उज्ज्वल होता है। पीड़ा में ही कटता है, जो-जो गलत है। पीड़ा की अग्नि से गुजरे बिना प्रेम का सोना शुद्ध नहीं होता, शुद्ध कुंदन नहीं बनता।
दर्द पर दर्द, गम पे गम देकर
राजे-उल्फत सिखाए जाते हैं
बख्श कर बेबसी-ओ-मजबूरी
इख्तियार आजमाए जाते हैं
और एक तरफ तो दे दी है असहाय अवस्था--बेबसी और मजबूरी--और फिर दूसरी तरफ हमारी परीक्षा लिए जाते हैं। इधर बना दिया असहाय--और परीक्षा के बड़े मापदंड हैं, जिससे गुजरना असंभव मालूम होता है।
खार फैला के बागे-हस्ती में
और सारे बगीचे में कांटे लगा दिए हैं।
गुंचा-ओ-गुल खिलाए जाते हैं
और इन कांटों में ही फूल को खिलने की चुनौती है। इन्हीं कांटों में फूल को खिलना है। इन्हीं पीड़ाओं में प्रेमी को जगना है।
ध्यान रखनाः धन से मिला सुख भी दुख से बदतर है। प्रेम से मिला दुख भी
धन के मिले सुख से बेहतर है। अंतिम निर्णय में, प्रेम के लिए जिसने पीड़ा झेली है वही सौभाग्यशाली है। क्योंकि जितनी पीड़ा झेलेगा उतना प्रेम का पात्र बनता जाएगा। जितनी पीड़ा झेलेगा उतना ही शुद्ध होता जाएगा, निखरता जाएगा। पीड़ा को जितने अहोभाव से झेलेगा, उतने ही परमात्मा के करीब होने लगेगा।
सुख में आदमी भटक जाते हैं। तथाकथित सुख में आदमी उलझ जाते हैं। क्षुद्र वासनाएं और क्षुद्र वासनाओं से मिले सुख आदमी को छिछला बनाते हैं। तुमने कभी कोई धनी और गहरा आदमी देखा? जिसके पास सब होता है, अक्सर भीतर खाली होता है; भीतर कुछ भी नहीं होता। असल में बाहर सब इसीलिए इकट्ठा करता है कि भीतर का खालीपन किसी को दिखाई न पड़े।
जब तुम अमीर के पास जाते हो, तो अमीर को नहीं देखते; उसका मकान देखते, उसकी दुकान देखते, उसकी बाजार में प्रतिष्ठा देखते, उसका नाम-धाम देखते, अमीर को छोड़ देते हो। गरीब को तो गरीब को ही देखना पड़ेगा; उनके पास और तो कुछ दिखाने को है नहीं; वही खड़ा है, नग्न, उसी को देखना पड़ेगा। अक्सर यह हो जाता है कि जो लोग साधारण सुखों में जीते हैं, छिछले हो जाते हैं। रोटरी क्लब और लायंस क्लब में तुम्हें उस तरह के लोग मिलेंगे। छिछले! टाई इत्यादि वगैरह बिल्कुल ठीक से लगा कर आए हैं, कोट-कमीज सब बिल्कुल ठीक है-- मगर सब ऊपर-ऊपर; भीतर कुछ भी नहीं है। आत्मा जैसी चीज बहुत मुश्किल है। उसे खोजनी हो तो कहीं और खोजनी पड़ती है--फकीरों में खोजनी पड़ती है; साधु-संगत में खोजनी पड़ती है। उसे खोजनी हो तो वहां खोजनी पड़ती है जिसने व्यर्थ की चीजों में समय नष्ट नहीं किया है। क्योंकि आखिर समय तो सीमित है। सुविधा सीमित है। शक्ति सीमित है। चाहे जाग जाओ, चाहे धन इकट्ठा कर लो--ऊर्जा तो वही है। चाहे अंतर की संपदा पा लो और चाहे बाहर की संपदा पा लो--समय तो वही है। जब कोई बाहर का धन इकट्ठा कर रहा है, तब कोई भीतर का धन इकट्ठा कर रहा है। भीतर का धन ही असली धन है, क्योंकि मौत उसे छीनती नहीं। बाहर का धन तो छिन जाएगा। थोड़ी देर को चमक आएगी। लोगों की आंखों को तुम चौंधिया दोगे। थोड़ी देर को लोगों को तुम अपने प्रति ईर्ष्या से भर दोगे। लेकिन ज्यादा देर नहीं; जल्दी ही तुम मिट्टी में पड़े होओगे और धूल तुम्हारे मुंह में होगी। और तो तुम्हारे भीतर कुछ था भी नहीं।

मौत के समय क्या ले जा सकोगे? जिसे तुम सोचते हो बड़ा, तुम्हारी कमाई है--उसमें से क्या ले जा सकोगे?
मैंने सुना है एक धनी आदमी के संबंध में, कि किसी फकीर ने उससे कहा कि देख, इसी धन में मत उलझा रह, मरते वक्त क्या ले जा सकेगा?
उसने कहाः छोड़ो फिकर! दूसरे न ले गए हों, लेकिन मैं ले जाऊंगा।
फकीर बहुत हैरान हुआ; ऐसा किसी ने कभी कहा नहीं था। उसने कहाः तू कैसे
ले जाएगा?
उसने कहाः तुम देखो तो।
संयोग की बात, वह आदमी दो साल बाद मरा, तो फकीर उसके द्वार पर पहुंच गया कि देखें वह कैसे ले जाता है! उसने इंतजाम कर रखा था, अपने नौकरों को कह रखा था कि नाव पर मुझे बिठा कर--जब मैं मर जाऊं--सारी संपत्ति मेरी नाव पर रख देना। वही उसकी वसीयत थी। वकील और अदालत के लोग सामने मौजूद रहेंगे, सब नाव पर रख देना--मेरी लाश भी--और बीच नदी में जाकर नाव डुबा देना।
मगर तो भी क्या तुम ले जाओगे? वह जो डूब गई नाव, न तो उसमें तुम हो अब।
ले जाने वाला कहां है? वह तो उड़ चुका पहले। अब तुम भी वहां नहीं हो और तुम्हारी संपत्ति वहीं गंगा में पड़ी रह जाएगी। उसे तुम ले कैसे जाओगे? ले जाने का कोई उपाय ही नहीं है। एक छोटी सी सुई भी तो न ले जा सकोगे। बड़ी बातें तो छोड़ दो; कुछ भी न ले जा सकोगे। जो तुम्हारा शुद्धतम भीतर हुआ है, वही तुम्हारे साथ जाएगा।
तो या तो बाहर की संपदा में उलझे रहो और भीतर को गंवा दो; बाहर से अमीर
हो जाओ, भीतर से दरिद्र हो जाओ--या भीतर की संपदा कमा लो; भीतर से अमीर हो जाओ। भीतर से जो अमीर है, वही अमीर है।
सौभाग्यशाली हैं वे जिनको प्रेम की पीड़ा पकड़ती है, क्योंकि वे धीरे- धीरे भीतर से अमीर हो जाते हैं। प्रेम खूब काटता है; जैसे मूर्तिकार पत्थर को काटता है, छैनी लेकर, हथौड़ा लेकर लगा रहता है पत्थर पर। निश्चित ही पत्थर रोता होगा और पत्थर सोचता होगाः जो पत्थर नहीं मूर्ति बनाए जा रहे हैं, बड़े धन्यभागी हैं। मगर यह ऊपर की बात है। जिस दिन मूर्ति बन जाएगी, उस दिन पता चलेगा कि जो पत्थर मूर्ति बन गया उसमें कुछ घटा।
ऐसा हुआ कि पश्चिम का एक बड़ा मूर्तिकार माइकलएंजलो एक दिन संगमरमर, पत्थर बेचने वाले की दुकान पर गया। कोई पत्थर खरीदना चाहता था--कोई मूर्ति गढ़ने के लिए। कोई पत्थर उसे जंचा नहीं। एक पत्थर सड़क के उस तरफ, दुकान की दूसरी तरफ पड़ा था किनारे पर रास्ते के; वह कई दिन से पड़ा था। माइकलएंजलो ने कहाः यह पत्थर किसका है?
उस दुकानदार ने कहाः यह मेरा ही है; लेकिन यह इतना अनगढ़ है कि इसे कोई लेता भी नहीं। वर्षों हम इसको रखे रहे, जगह ही घेरे था; हमने इसे फेंक दिया। इसमें तुम्हारी उत्सुकता है? इसे तुम मुफ्त में ले जा सकते हो। हम चाहते हैं कि यह जगह खाली हो।
माइकलएंजलो वह पत्थर ले गया। उसने उस पर तीन साल मेहनत की। उसमें उसने मरियम और जीसस को उभारा। कुछ दिन पहले तुमने अखबारों में खबर पढ़ी होगी कि एक पागल आदमी ने वेटिकन के चर्च में जाकर जीसस की एक मूर्ति तोड़ दी थी। वह वही मूर्ति थी। वह दुनिया की सर्वाधिक सुंदर मूर्ति थी। मरियम-- जीसस की मां--बैठी है; उसकी आंख से आंसू टपक रहे हैं, क्योंकि बेटे को सूली लग गई है। और जीसस सूली से उतारे गए हैं। वह लाश लिए बैठी है। वह अपूर्व मूर्ति थी।
जब तीन साल बाद उस संगमरमर के दुकानदार ने वह मूर्ति देखी तो उसे विश्वास भी नहीं आया, कि उस पत्थर से यह मूर्ति निकल ही नहीं सकती, तुम मुझे धोखा दे रहे हो! उस पत्थर में यह मूर्ति हो ही नहीं सकती। और तुम्हें कैसे दिखाई पड़ा? वह अनगढ़ बेकार सा पत्थर जिसे कोई खरीदने को राजी नहीं था, न मालूम कितने मूर्तिकार इनकार कर चुके थे, तुम्हें उसमें कैसे कुछ दिखाई पड़ा?
माइकलएंजलो ने कहाः इसमें मेरा कुछ भी हाथ नहीं। जब मैं वहां से निकलता था तो मरियम ने मुझे, जीसस ने मुझे पुकारा, कि देखो हम यहां छिपे पड़े हैं, हमें मुक्त करो।

यह बात बड़ी प्यारी है कि माइकलएंजलो कहता है कि मूर्ति मैंने बनाई नहीं; वह तो मूर्ति में जो छिपा था, उसने मुझे पुकारा कि मुझे मुक्त करो! तो मैंने कुछ किया नहीं है; व्यर्थ जो पत्थर इसके चारों तरफ जुड़े थे, उन्हें छांट कर अलग कर दिया है, बस। मूर्ति तो थी ही; प्रकट हो गई है।
प्रेम ऐसे ही निखारता है, जैसे मूर्तिकार छैनी लेकर पत्थर को काटता है। पीड़ा बहुत होती है। लेकिन पीड़ा धन्यभाग है। क्योंकि धीरे-धीरे तुम्हारी मूर्ति निर्मित होती है।
भक्त भगवान की पीड़ा में जितना जलता है उतना ही भगवान के करीब होने लगता है। एक दिन वह घड़ी आती है कि भक्त तो विलीन हो जाता है, भगवान ही शेष रह जाता है। भक्त तो अनगढ़ पत्थर था; जब मूर्ति उघड़ आती है तो भगवान ही रह जाता है।
तुम सभी ऐसे पत्थर हो जिनके पीछे भगवान छिपा है। जब मैं तुम्हें संन्यास देता हूं तो उसी आशा से संन्यास देता हूं जिस आशा से माइकलएंजलो उस पत्थर को उठा कर ले गया था। तुम्हारे भीतर जो छिपा है वह मुझे पुकारता है--उसी की आशा से कि शायद कुछ संभावना है। चोट करनी होगी निश्चित।
खार फैला के बागे-हस्ती में
गुंचा-ओ-गुल खिलाए जाते हैं
बिजलियां गिर रही हैं हम पे इधर
वो उधर मुस्कुराए जाते हैं
और पीड़ा बहुत होती है भक्त को कि हम यहां मुश्किल में पड़े हैं, और तुम वहां खड़े मुस्कुरा रहे हो--आकाशों में, बादलों पर सवार, चांद-तारों में बैठे! तुम वहां मुस्कुरा रहे हो; यहां हम पीड़ा से जले जा रहे हैं! लेकिन परमात्मा मुस्कुराता है, जब कोई प्रेम से जलता है। क्योंकि परमात्मा को भविष्य पता है; तुम्हें भविष्य पता नहीं है। जब कोई बीज टूटता है तो बीज को कैसे पता हो कि वृक्ष पैदा होगा और हजारों फूल लगेंगे और पक्षी मुझ पर बसेरा करेंगे और घोंसले बनाएंगे और यात्री मेरी छाया में विश्राम करेंगे। बीज जब टूटता है तो बीज को कैसे पता हो! यह तो माली जो बैठा है किनारे और मुस्कुरा रहा है, उसको पता है कि टूटो, जल्दी टूटो!
यह तो गुरु को पता होता है कि शिष्य जब टूट रहा है, नष्ट हो रहा है, तो अपूर्व घट रहा है। शिष्य तो तड़फता है, परेशान होता है। वह तो सोचता है कि यह किस झंझट में पड़ गए। पहले ही भले-चंगे थे। सब ठीक तो था। जैसा था, ठीक था। न कोई बड़ी आकांक्षा थी, न कोई बड़ी पीड़ा थी। बड़ी आकांक्षा के साथ बड़ी पीड़ा आती है। और परमात्मा सबसे बड़ी आकांक्षा है। इसलिए परमात्मा के साथ सबसे बड़ी पीड़ा आती है। जो उस पीड़ा को झेलने को तैयार हैं वे ही केवल चल पाते हैं।
कोई कहियो रे प्रभु आवन की, आवन की, मनभावन की।
आप न आवै लिख नहिं भेजै, बांण पड़ी ललचावन की।
ऐसा लगता है भक्त को, कि इतने खड़े हो पास, आ क्यों नहीं जाते? यह दूरी क्यों? यह दूरी बचाते क्यों हो? यह दूरी मिटा क्यों नहीं देते? मेरे तो बस में नहीं है; तुम्हारे तो बस में है! मैं न आ सकूं तुम तक, तुम तो मुझ तक आ सकते हो! और खड़े वहां मुस्कुरा भी रहे हो, जैसे कोई घाव पर नमक छिड़के!
आप न आवै लिख नहिं भेजै...
सांत्वना हो जाती--कुछ खबर ही भेज देते; कुछ इतना ही कह देते कि आऊंगा,
कल आऊंगा, परसों आऊंगा, कुछ आश्वासन दे देते! आश्वासन भी कुछ नहीं कि कब आओगे। आओगे भी कि नहीं आओगे, इसका भी कुछ पक्का नहीं। ऐसे दूर खड़े मुस्कुराते ही रहोगे?
लेकिन यह प्रक्रिया है। जब तक तुम पूरे तैयार न हो जाओ, परमात्मा झलकें देता रहेगा, ताकि तुम भूल भी न जाओ। और परमात्मा पास आएगा भी नहीं, क्योंकि जब तक तुम तैयार नहीं हो तब तक कैसे पास आ जाए? झलक देना तो जारी रखेगा, ताकि तुम भाग ही न जाओ, भूल ही न जाओ। बुलाता भी रहेगा, पुकारता भी रहेगा। उसका हाथ का इशारा तुम्हें अपनी तरफ खींचता भी रहेगा। चुंबक की तरह तुम उसकी तरफ खिंचते भी रहोगे--और साथ ही मिलन भी एकदम से नहीं हो जाएगा। इस मिलन और विरह के बीच भक्त डोलता है। मीरा ने इन दोनों के बीच बड़ी डुबकियां ली हैं।

ये दोई नैन कह्यौ नहिं मानै...
मीरा कहती है कि मैं अपनी आंखों को भी समझाती हूं कि छोड़ो, जाने दो; आंख बंद कर लो, भूल ही जाओ इस बात को! सब अच्छा था, राजमहल था, पद-प्रतिष्ठा थी--वह सब भी गई। जिसके लिए घर छोड़ा, वह एकदम हाथ में हाथ नहीं दे देता है। जिसके लिए परिवार छोड़ा, वह अभी भी दूर है। सब छोड़ दिया जो छोड़ा जा सकता था, कुछ भी बचाया नहीं; फिर भी यह दूरी क्यों है? अब यह दूरी अखरती है।
हां, मीरा ने अगर सब न छोड़ा होता तो शायद उसको एक बीच में मन में ख्याल
भी रहता कि मैंने अभी कुछ बचा रखा है, इसलिए दूरी है। सब छोड़ दिया, फिर भी दूरी है?
ये दोई नैन कह्यौ नहिं मानै...
मीरा कहती हैः अपनी आंखों को समझाती हूं कि छोड़ो, यह किस असंभव वासना में पड़ गई मैं! यह कैसी असंभव मांग मैंने खड़ी कर ली अपने जीवन में! यह ईश्वर को खोजने की झंझट मैंने ली क्यों? प्रेम में पड़ना था तो बहुत थे और, प्रेम में पड़ जाती किसी के भी; यह कृष्ण के प्रेम में क्यों पड़ी? जो मिल सकते थे सहज, उनके प्रेम में पड़ती! जो मिलना बहुत कठिन मालूम होता है, उसके प्रेम में पड़ी। समझाती हूं अपने को। आंखें मानती नहीं। आंखें तो झपकती ही नहीं। आंख तो टकटकी लगाए रहती हैं।
ये दोई नैन कह्यौ नहिं मानै...
समझाती हूं कि रोने से क्या होगा? वह कठोर है। रोने से क्या होगा? उसका हृदय पत्थर जैसा है। नहीं तो कभी का आ जाता! रोने से क्या होगा? लेकिन ये हैं कि रोए चली जाती हैं और वहां तुम हो कि खड़े मुस्कुराते हो।
ये दोई नैन कह्यौ नहिं मानै, नदिया बहै जैसे सावन की।
और ये आंसू हैं कि बहे चले जाते हैं। इन पर मेरा कोई बस नहीं रहा। अब मेरे हाथ की बात नहीं है। अब मैं अवश हूं। अब मुझ पर मेरा कोई नियंत्रण नहीं है।
यह अहंकार जब नियंत्रण छोड़ता है तो यह घड़ी आती है। एक समय तक जब तक अहंकार रहता है, हम नियंत्रित होते हैं, हमारे भीतर एक सुव्यवस्था होती है। अहंकार ने एक इंतजाम कर रखा है, एक शैली बना रखी है। अहंकार के जाते ही अराजकता फूट पड़ती है। पुरानी व्यवस्था गई और नई व्यवस्था तो तब आएगी जब परमात्मा उतर आए। अहंकार के छूटते-छूटते, टूटते-टूटते भक्त बिखरने लगता है, खंड-खंड होने लगता है। सम्हालने का कोई तत्व नहीं रह जाता। अहंकार का पुराना केंद्र टूट गया; वह पुरानी कील उखड़ गई; और नई कील परमात्मा की अभी तक मिली नहीं। वह जो बीच का अंतराल है, वह सर्वाधिक पीड़ा का है। वहीं आस्था की कसौटी है। वहीं श्रद्धा की परख है। अगर श्रद्धा होगी तो ही टिक पाएगा कोई; नहीं तो लौट जाएगा। वहीं कसौटी है कि तुम्हारे भीतर आस्था थी।
कहा करूं कछु बस नहिं मेरो, पांख नहिं उड़ जावन की।
मीरा कहती हैः पंख होते तो मैं उड़ आती। तुमने पंख भी नहीं दिए। आकाश में थे तो मुझे पंख देते। दूर थे तो मुझे शक्ति देते। मुझे पंख नहीं दिए, फिर यह आकांक्षा क्यों दी आकाश को छूने की? चांद-तारों को हाथ में लेने की यह अभीप्सा क्यों दी?
यह भक्त का परमात्मा से विवाद है। बहुत विवाद हैं भक्त के। भक्त ही हकदार है विवाद करने का; दूसरे को तो कोई हक भी नहीं है।
कहा करूं कछु बस नहिं मेरो...
मैं गई, मेरा बस गया।
... पांख नहिं उड़ जावन की।
और पंख मेरे पास नहीं हैं कि उड़ आऊं। तुम क्यों वहां खड़े हो? तुम्हारे पास तो पंख हैं! तुम तो आ सकते हो! मैं असहाय, तुम तो असहाय नहीं। मैं निर्बल, तुम तो निर्बल नहीं। मैं पापी, तुम तो महाकरुणावान हो। मेरी हजार भूल-चूकें हैं; मगर तुम क्षमा तो कर सकते हो! तुम तो आ सकते हो!
मीरा कहै प्रभु कब रे मिलोगे, चेरी भई हूं तेरे दामन की।
तेरे पल्ले को पकड़ा है। तू तो अभी पकड़ में नहीं आया, लेकिन तेरा पल्ला पकड़ में आ गया! यह बात बड़ी प्यारी है। तेरी तो दास हूं ही, उसकी तो बात छोड़।
तेरे दामन की भी दासी हूं।
... चेरी भई हूं तेरे दामन की।

यह तेरा जो छोटा सा पल्ला मेरे हाथ में, मेरी मुट्ठी में आ गया है-- इसकी भी गुलाम हो गई हूं। ऐसे यह भी सौभाग्य है कि तेरा पल्ला मेरे हाथ पड़ गया है।
पल्ला निश्चित हाथ पड़ जाता है भक्त के। परमात्मा के मिलने में समय लगता है; लेकिन पल्ला मिल गया तो परमात्मा भी मिलता है। पल्ला ही मिल गया तो अब देर-अबेर हो सकती है; लेकिन अब असंभावना नहीं है।
क्या अर्थ होता है परमात्मा के पल्ले के मिलने का?
वह जो कभी-कभी झलक मिल जाती है, कभी-कभी किसी शांत क्षण में एकदम सारा जगत रूपांतरित हो जाता है; अभिभूत हो जाता है प्रभु से। वृक्ष नहीं दिखाई पड़ते--वही दिखाई पड़ता है। तारे नहीं दिखाई पड़ते--वही दिखाई पड़ता है। लोग नहीं दिखाई पड़ते--वही दिखाई पड़ता है। ऐसे चमत्कारिक क्षण भक्त के जीवन में आने लगते हैं, जब वह अपनी आंखें मल कर देखता है कि क्या हो रहा है! लोग खो गए--ईश्वर है! वृक्ष खो गए--ईश्वर है! वही हरा है वृक्षों में। वही जलधार में बह रहा है। वही आकाश में बादल बन कर उड़ रहा है। ऐसी छोटी-छोटी खिड़कियां खुलती हैं और एक क्षण में सब रूपांतरित हो जाता है। हम दूसरे जगत में प्रवेश कर जाते हैं। हम एक दूसरे यथार्थ में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसा होता है, यही पल्ला है।
लेकिन फिर-फिर गिर जाते हैं हम वापस अपनी दुनिया में। ऐसे ही जैसे कोई छलांग लगाए और एक क्षण को आकाश में उठ जाए, फिर जमीन पर गिर पड़े। इस जमीन में हमारे पैर जमानों से गड़े हैं। इस पृथ्वी से हमारा नाता बहुत पुराना है--जन्मों-जन्मों का है। परमात्मा से नाता हमारा बहुत नया है। वह संबंध नया है। यह पृथ्वी की कशिश पुरानी है। यह हमें खींच-खींच लेती है वापस। अक्सर तुमने देखा होगा, तुम्हारे जीवन में भी ऐसे मौके आते हैं; चाहे इतने स्पष्ट न आते हों जैसे मीरा के जीवन में आए। इतने स्पष्ट नहीं ही आएंगे, क्योंकि तुम इतने मस्त नहीं हो। लेकिन कभी ऐसे मौके जरूर आते हैं। इतना अभागा कोई भी नहीं है पृथ्वी पर, जिसके जीवन में कभी-कभी क्षण भर को किरण नहीं कौंध जाती। किस स्थिति में कौंधेगी, यह कहना मुश्किल है। लेकिन ऐसा आदमी मैंने नहीं देखा जिसके जीवन में कभी कोई किरण न कौंधती हो। भला स्वयं वह भरोसा न करे, क्योंकि उस किरण की कोई संगति नहीं होती उसके भीतर। उसे खुद ही शक होता है कि मैंने कोई कल्पना कर ली होगी, कि मैंने कोई सपना देखा होगा; कि यह हो कैसे सकता है! या उसकी धारणाएं ऐसी हो सकती हैं, जिनके यह प्रतिकूल पड़ता हो। उसकी धारणाएं ऐसी हो सकती हैं, जिसमें परमात्मा की कोई जगह न हो, तो परमात्मा शब्द नहीं आएगा। या उसकी धारणाएं ऐसी हो सकती हैं कि इस तरह की बातें तो केवल कल्पना-जाल हैं। तो घटना घटेगी, वह समझा लेगा अपने को कि कल्पना का जाल है।
अमरीका में एक विश्वविद्यालय में उन्होंने बड़ी शोध-बीन की है इस बात
पर कि कितने लोगों को कभी-कभी धार्मिक अनुभव होता है।
तो बड़ी हैरानी की बात है, हर पांच आदमी में एक आदमी को कम से कम। बड़ी संख्या है पांच आदमी में एक आदमी। बीस प्रतिशत आदमियों को कभी-कभी झलक मिलती है। जब मैं उनका सर्वे पढ़ रहा था तो मुझे कुछ बातें ख्याल में थीं। यह जिन लोगों ने कहा कि हां, हमें कुछ अनुभव होता है, इनमें वे ही लोग हैं जिन्हें ईश्वर पर आस्था है। वे बहुत से लोग, जिन्होंने कहा हमें अनुभव नहीं होता, बहुत संभव है उन्हें भी अनुभव हुआ हो, लेकिन उनकी ईश्वर पर आस्था नहीं है; वे ईश्वर शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते। इनमें वे भी लोग सम्मिलित हैं।
और अमरीका जैसे मुल्क में, जहां चीजें बिल्कुल ही तकनीकी और वैज्ञानिक और तर्क से भर गई हैं; जहां लोगों ने अपने हृदय को बिल्कुल ही समाप्त कर दिया है; जहां हृदय धड़कता ही नहीं; जहां लोग हृदय से बच कर निकल गए हैं, सिर्फ खोपड़ी में जी रहे हैं--अगर वहां बीस प्रतिशत लोग कहते हैं कि उन्हें ईश्वर की कभी-कभी झलक मिली है, तो आदिवासियों में कितनों को मिलती होगी? दूर जंगल में बसे लोगों को कितनों को मिलती होगी? बड़ी संख्या होगी! मेरे हिसाब से पचास प्रतिशत लोगों को सहज ही मिलती है। यही अनुपात है
हर चीज में। जैसे आधे स्त्री होते हैं दुनिया में, आधे पुरुष होते हैं--ऐसे पचास लोग झलक वाले और पचास लोग गैर झलक वाले होते हैं। यह अनुपात है। ये

दोनों एक-दूसरे को सम्हाले रहते हैं। जिसको परमात्मा की झलक मिलती है, वह दुनिया को एकदम उजाड़ नहीं देता; क्योंकि वे जो पचास प्रतिशत लोग हैं, वे दुनिया को बसाए रखते हैं। नहीं तो बाजार कैसे चले? दुकान कैसे चले?
मैंने सुना है, एक कोयले का दुकानदार था। दो पार्टनर थे। एक गया एक दिन साधु-संग में और बड़ा प्रभावित हो गया और उसने दीक्षा ले ली। वह वापस आया तो उसने अपने साझीदार को कहा कि अदभुत आनंद आ रहा है, अब तू भी दीक्षा ले ले। मगर वह साझीदार सुने, कुछ बोले न। दिन बीते, दो दिन बीते। निश्चित ही जब किसी को आनंद अनुभव होता है तो अपने निकट को बांटना चाहता है। तुम भी मेरे पास आते हो तो कभी चाहते हो तुम्हारी पत्नी आ जाए, पति आ जाए, बेटा आए। वह बड़ा ही कोशिश करता था कि चल तू भई, एक दफा सुन भी तो! कुछ अदभुत होता है। मगर उसने कहा कि देख, अब ज्यादा मेरे पीछे मत पड़। अगर मैं भी धार्मिक
हो गया तो कोयला कौन... तौलेगा कौन कोयला? और दांडी कौन मारेगा? यह भी तो सोच! देख रहा हूं कि जब से तू यह साधु-सत्संग में पड़ा है, दांडी नहीं मार रहा है। यह दुकान चलानी है कि नहीं?
तो यह दुनिया है, यहां दुकान है। यहां आधा-आधा है हर चीज में। यहां अगर आधे लोग हृदयपूर्ण जीते हैं, तो आधे लोग मस्तिष्क से पूर्ण जीते हैं। ये संतुलन बनाए रखते हैं। नहीं तो संतुलन उखड़ जाए।
मेरे देखे, पचास प्रतिशत लोगों को सहज ही अनुभव होते हैं; हालांकि वे अपने अनुभवों को संगृहीत नहीं करते हैं। और भय के कारण किसी को कहते भी नहीं, कि लोग कहेंगे पागल हो गए हो!
कल सुमित्रा का प्रश्न था। सुमित्रा काठमांडू से आई है। उसने पूछा है
कि मैं इतनी प्रसन्न कभी भी नहीं थी अपने जीवन में; ये सात दिन मेरे जीवन में अपार आनंद के दिन थे। मैं कभी हंसी नहीं जीवन में; ये सात दिन मैं हंसती रही हूं, प्रसन्न रही हूं, गदगद रही हूं। अब मैं डरती हूं कि लौट कर जाऊंगी तो कहीं यह खो तो नहीं जाएगा!
यह खोने का डर क्यों पैदा होता है?
यह डर इसलिए पैदा होता है कि वे लोग जो सुमित्रा को एक ढंग से जानते रहे हैं--यहां तो ठीक है, यहां तो मस्तों की एक जमात है। यहां तुम न हंसो, न रोओ, तो लोग सोचते हैं कुछ गड़बड़ है! बात क्या है? लेकिन वहां काठमांडू वापस जाएगी तो वहां दूसरे तरह के लोग हैं। उनसे तो यह यह भी नहीं कह सकेगी कि सात दिन मैं आनंदित रही। वे कहेंगेः तुम्हारा दिमाग ठीक है? आनंद! होता रहा होगा पहले कभी सतयुग में, अब नहीं होता! इस कलियुग में कहां आनंद! किसी जैन से कहेगी कि आनंद, वह कहेगाः पागल हो गई हो! पहले होता था; अब पंचमकाल चल रहा है, अब कहां आनंद! अंधेरी रात चल रही है, अब कहां आनंद!
कहेगी कि कुछ झलकें मिलीं, कोई मानेगा नहीं। जब कोई नहीं मानेगा तो कह
भी न सकेगी। कह भी न सकेगी और प्रकट भी न कर सकेगी। दबा लेगी। थोड़े दिन में, बात जो घटी थी, वह स्मृति रह जाएगी। फिर थोड़े दिन में स्मृति धूमिल हो जाएगी। साल दो साल के बाद सोचने लगेगी कि ऐसा हुआ था? सच हुआ था या मैंने कल्पना कर ली थी? क्योंकि अगर सच था तो टिकता। टिका क्यों नहीं? मन का ही भाव रहा होगा। शायद सम्मोहित हो गई थी वहां। इतने लोग प्रसन्न थे, आनंदित थे, नाच रहे थे--उसी रौ में मैं भी बह गई थी।
नहीं तो जो तुम्हारे भीतर यहां हो रहा है, वह कहीं भी होगा। काठमांडू में कोई अड़चन नहीं है। कहीं कोई अड़चन नहीं है। पर अड़चन इस बात से आती है कि हम अपनी बात को प्रकट तक नहीं कर पाते हैं।
तुमने कभी सोचा कि तुम्हें ईश्वर का अनुभव हो जाए, तुम अपनी पत्नी से जाकर कह सकोगे कि मुझे ईश्वर का अनुभव हुआ? वह फौरन फोन करेगी पुलिस में, कि मेरे पति को कुछ गड़बड़ हो गई, पुलिस भेजो! या खबर करेगी डाक्टर को, कि जल्दी आओ। या अपने रिश्तेदारों को बुलाएगी, कि इनको बांधो, कि इनको कुछ हो गया, इनको ट्रैंक्वेलाइजर वगैरह दिलवाओ, या इलेक्ट्रिक शॉक, इनको कुछ हो गया!
ऐसा हुआ, मेरे एक मित्र यहां से संन्यास लेकर काशी गए। कुछ दिन बाद उनकी खबर आई कि मैं अस्पताल में पड़ा हूं। रही खूब मजाक! मैं आनंदित हूं, इसलिए अस्पताल में पड़ा हूं। घर के लोगों ने जबरदस्ती अस्पताल में भर्ती करवा दिया है कि तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं। मैं उनसे कहता हूं कि मुझे

अनुभव हो रहा है; वे कहते हैं--तुम चुप रहो, तुम बोलो ही मत, तुम शांति रखो। मैं उनसे कहता हूं कि मैं शांति के ही कारण तो आनंदित हो रहा हूं। वे मुझे नाचने भी नहीं देते, गाने भी नहीं देते। डाक्टर है, वह कहता है कि तुम ये गैरिक वस्त्र छोड़ो, इसी से झंझट में पड़े।
उन मित्र ने लिखा है कि मुझे लगता है कि ये सब पागल हैं, मगर इन सबको लगता है कि मैं पागल हूं। मैं जिंदगी में कभी इतना आनंदित नहीं था, तब मुझे किसी ने अस्पताल में भर्ती नहीं किया। मेरे बच्चे रोते हैं। वे मुझसे कहते हैं कि आप ठीक हो जाओ। और मुझे हंसी आती है कि मैं इतना ठीक कभी था ही नहीं, जितना ठीक अब हूं। दफ्तर के लोगों ने मुझे छुट्टी दे दी है। वे कहते हैंः तुम दो-तीन महीने आराम ही कर लो। क्योंकि जाकर बैठता हूं टेबल पर, प्रसन्न, तो उनको जंचता नहीं। वही पुराना आदमी वे चाहते हैं कि चला आ रहा है घसीटता हुआ अपने को, सिर पर बोझ लिए हुए, मरा-मराया, किसी तरह। वे वही आदमी देखना चाहते हैं। अब मैं क्या करूं?
मैंने उनको कहा कि तुम यहां आ जाओ।
वे आकर गए। मैंने उनको समझाया कि तुम्हें जो हुआ है, बिल्कुल ठीक हुआ है। मगर काशी जैसी खतरनाक जगह में! यह काठमांडू से काशी ज्यादा खतरनाक है! यहां काठ के उल्लू ज्यादा हैं। काशी! नहीं! तुम काशी में हो तो सोच-समझ कर चलो। जब एकांत में निकल गए कहीं, हंस लिए। नाच लिए कहीं एकांत में मंदिर में जाकर। या गंगा में चले गए; वहां अपनी उछल-कूद कर लिए रेत में जाकर। मगर दफ्तर इत्यादि में अगर तुम नाचते प्रसन्न जाओगे, इतने उदास लोग यह बरदाश्त न कर सकेंगे! और उनकी भी अपनी व्यवस्था है। वे सोचते हैं कि यह स्वाभाविक नहीं है। स्वाभाविक दुख है। यह अस्वाभाविक है। कुछ गड़बड़ हो रही है। फिर उनकी भीड़ है। अस्पताल भी उनके हैं, डाक्टर भी उनके हैं। सब उनका जाल है। तुम वहां बिल्कुल अकेले हो, तुम्हें थोड़ा सोच कर चलना पड़ेगा।
वही मैं सुमित्रा से कहता हूं। यह आनंद तो रह सकेगा, इसमें कोई अड़चन नहीं है। द्वार-दरवाजे बंद करके आनंदित हो लेना। मैं काठमांडू में उतना ही उपलब्ध रहूंगा जितना यहां हूं; जरा भी फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन इसको अभी एकदम से प्रकट मत करने लगना। जब देख लो, आदमी को पहचान लो कि हां, अपने ही जैसा है, तब प्रकट करना; नहीं तो मत प्रकट करना। पहले जरा जांच-परख कर लेना कि है, पियक्कड़ है, तो ठीक है, तो इससे पीने की बातें करना; निकाल लाना अपनी सब शराब इत्यादि और प्याले फैला देना और दस्तरख्वान बिछा देना, और होने देना आनंद! मगर पहले गौर से देख लेना--यह आदमी किस तरह का है? यह उन लोगों में से तो नहीं है जिनको भगवान बनाता हुशियार? अगर उनमें से है, इससे बात ही मत करना। नहीं तो यह तुम्हें झंझट में डालेगा, क्योंकि ये लाख हैं और तुम एक हो। अपनी मस्ती को अपने भीतर रखना। एकांत में प्रकट हो जाने देना। वृक्षों से बात कर लेना। चांद-तारों से बोल लेना। पहाड़-पत्थरों से कह देना। उनके पास भी हृदय है और आदमियों से ज्यादा बेहतर है; अब भी धड़कता है। चश्मे-साकी की तरजुमानी से
जिंदगी भर गई मआनी से
एक बार झलक मिल जाए तो जिंदगी में बड़ा आनंद भर जाता है।
चश्मे-साकी की तरजुमानी से
उस प्यारे की जरा सी झलक मिल जाए।
जिंदगी भर गई मआनी से
जहल में बस रहा है जोमे-शऊर
अलअमां ऐसी नुक्तादानी से
जब भक्त को पता चलता है कि मेरे बिना किसी ज्ञान के और परमात्मा मुझमें झलक दे दिया है, तब वह हैरान होता है कि लोग फिर क्यों ज्ञान में उलझे हैं! क्यों शास्त्रों से सिर फोड़ रहे हैं!
जहल में बस रहा है जोमे-शऊर
और जिन लोगों को भी ज्ञान का घमंड है, उन्हें पता नहीं है कि अज्ञानी
को मिलता है परमात्मा। सरल को मिलता है, सीधे-सादे को मिलता है; ज्ञान-शून्य को मिलता है। क्योंकि ज्ञान भी अहंकार का आभूषण है।
अलअमां ऐसी नुक्तादानी से

हे प्रभु! ऐसे ज्ञान से मुझे बचाना, जिसके कारण अटकाव पड़ जाते हैं। मस्तों को मिलता है परमात्मा।
सब फसूने-जमाल कायम है
इश्क की अपनी पासबानी से
यह सारा जगत एक ही धुरी पर घूम रहा है। वह धुरी है--इश्क की; प्रेम की; ज्ञान की नहीं।
चांद तारों ने नूर पाया है
एक तबस्सुम की जोफसानी से
एक ही चमक है--प्रेम की चमक, जिससे चांद-तारों में नूर है; वृक्षों में फूल हैं; आदमियों की आंखों में अर्थ है, पैरों में नृत्य है, कंठों में गीत हैं।
जल्वाए-दोस्त, रंगे-हुस्ने-यकीं
हिज्र पैदा है बदगुमानी से।
सिर्फ अहंकार के अतिरिक्त और कहीं नरक नहीं है। और जहां अहंकार गया वहां परम सौंदर्य की वर्षा हो जाती है, स्वर्ग की वर्षा हो जाती है।
हमने पाई मुसर्रते-अबदी
अपने ही सोजे-जाविदानी से
और अनंत आनंद तुम्हारे भीतर पड़ा है और तुम उसे कहां खोज रहे हो? परमात्मा तुम्हारे भीतर खड़ा तुम्हें पुकार रहा है। तुम्हारी और परमात्मा की दूरी ऐसी नहीं है कि तुम भीतर हो और परमात्मा वहां दूर खड़ा है। दूरी ऐसी है कि तुम वहां दूर खड़े हो और परमात्मा तुम्हारे भीतर खड़ा तुम्हें पुकार रहा है। क्योंकि जिस दिन तुम परमात्मा के पास आओगे, उसी दिन तुम पाओगे कि तुम अपने पास आ गए। जिस दिन तुम परमात्मा को पाओगे उस दिन पाओगे कि तुमने अपने को पहली दफा पाया है।
हासिले-जिंदगी हैं वो आंसू
जो गिरे फर्ते-शादमानी से
और जिंदगी का सारा अर्थ उन आंसुओं में है, जो आनंद से टपकते हैं। वही काव्य है जीवन का।
हासिले-जिंदगी हैं वो आंसू
जो गिरे फर्ते-शादमानी से
पाई मर्गे-खुदी से सच्ची खुशी
नगमे उठे हैं नोहाखानी से
सच्ची खुशी मिली एक चीज से--
पाई मर्गे-खुदी से सच्ची खुशी
जब खुदी मर गई; जब अहंकार का नाश हुआ; जब मैं न रहा।
पाई मर्गे-खुदी से सच्ची खुशी
नगमे उठे हैं नोहाखानी से
और वह जो अहंकार का विसर्जन हो गया, आंसू बहे, रोना उठा--वही एक दिन गीतों में ढल जाता है। ये आंसू ही हैं--भजन बन गए जो मीरा के। यह उसके आंसुओं से बहता हुआ आनंद ही है, जो भजनों में ढल गया।
मुझको कहना हो राज की गर बात
काम लेता हूं बेजबानी से
राज की जो बात है वह तो चुप-चुप कही जाती है। और उस चुप-चुप बात को शब्दों में कहने का जो करीब से करीब उपाय हो सकता है, वह काव्य है। काव्य कम से कम बोलता है और ज्यादा से ज्यादा कहता है। गद्य और पद्य का वही भेद है। पद्य बहुत संक्षिप्त में बोलता है--सार। और पद्य में मौन बहुत ही करीब है; पीछे ही खड़ा है; छाया की तरह खड़ा है।
इन भजनों को तो पढ़ना ही; इन भजनों के, पंक्तियों के बीच-बीच में जो खाली जगह है, उसको मत छोड़ जाना। शब्दों को तो समझना; दो शब्दों के बीच में जो खाली अंतराल है, वहीं मंदिर का द्वार है।
... नदिया बहै जैसे सावन की।
कहा करूं कछु बस नहिं मेरो, पांख नहिं उड़ जावन की।
मीरा कहै प्रभु कब रे मिलोगे, चेरी भई हूं तेरे दामन की।

तेरा पल्ला तो हाथ में आ गया, अब तुम मुझे कब मिलोगे? झलक तो मिलने लगी, आलिंगन कब होगा? झलक तो मिलने लगी, हम एक-दूसरे में लीन कब हो जाएंगे? यह फासला भी अब नहीं सहा जाता।
राम नाम रस पीजै मनुआं, राम नाम रस पीजै।
रस तो एक ही है, अमृत तो एक ही है, पीने योग्य शराब तो एक ही है--वह राम है।
कल किसी ने पूछा था कि मीरा कृष्ण में रमी है; राम का इतना स्मरण नहीं करती।
जिसमें रम जाओ--वही राम। राम का और क्या अर्थ होता है? जिसमें रम गए-- वही राम। कृष्ण मीरा के राम हैं। हर एक को अपना-अपना राम खोजना पड़ता है। उधार राम मत लेना। उधार राम काम नहीं पड़ते। अपना राम खोजना पड़ता है। अपना प्यारा खोजना पड़ता है। अपने ढंग से खोजना पड़ता है। अपनी ही आंख से खोजना पड़ता है। निश्चित ही तुम्हारा प्यारा तुम्हारा प्यारा होगा।
मीरा को कृष्ण जंचे, रुचे। और अच्छा हुआ कि मीरा ने कृष्ण चुने। राम चुनती तो तुलसीदास जैसी रह जाती--कोरी की कोरी! और दकियानूसी हो जाती। राम बड़े चरित्रवान हैं, पर रसधार नहीं है। चरित्र रूखा-सूखा है। मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, मगर बहुत रेगिस्तान जैसे हैं। कृष्ण का बगीचा बड़ा प्यारा है। कृष्ण को चुना तो ये गीत पैदा हुए। कृष्ण को चुना तो यह मस्ती पैदा हुई।
मगर फिर भी मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम राम को मत चुनना। अपनी-अपनी मौज है। किसी-किसी को रेगिस्तान खूब जंचता है, तो रेगिस्तान में भी परमात्मा है। वह भी परमात्मा के ही होने का ढंग है। कोई वृक्षों में है, ऐसा थोड़े ही; रेगिस्तान में भी है।
मगर मेरे हिसाब से मीरा ने अच्छा किया जो कृष्ण चुने; नहीं तो ये प्यारे गीत से हम वंचित रह जाते। ये गीत पैदा नहीं हो सकते थे। तुलसीदास में काव्य तो है--आत्मा नहीं है। और परंपरागत है; दकियानूसी है; ओछा है। क्रांति नहीं है। न तो कबीर की क्रांति है और न मीरा का भाव है--दोनों नहीं हैं। इसलिए तुलसीदास लोगों को खूब रचे-पचे। तुलसीदास की रामचरितमानस घर-घर में बैठ गई। इसीलिए बैठ गई कि दकियानूसी लोगों से तालमेल पड़ा। बात जंची लोगों को भी। लोगों की यही धारणा थी। तुलसीदास तो लोगों के मुख हो गए। जो आम आदमी मानता है, वही तुलसीदास ने अच्छे ढंग से कह दिया। इसमें कुछ नया नहीं है। जो तुलसीदास ने कहा है, उसमें कुछ मौलिक नहीं है।
मुझसे कई बार लोग पूछते हैं कि आप तुलसीदास पर क्यों नहीं बोलते?
कभी नहीं बोलूंगा! तुलसीदास से अपनी कोई दोस्ती नहीं! तुलसीदास में मुझे पहुंचे हुए व्यक्ति की प्रतीति नहीं होती--पंडित की, पुरोहित की; समाज की धारणाओं से बंधे हुए आदमी की। मौज नहीं है, बहार नहीं है। न क्रांति की लपट है, न प्रेम की झपट है--कुछ भी नहीं है।
कबीर पर बोलता हूं--वहां क्रांति की लपट है। उनसे मेरे हृदय के तार जुड़ते हैं। मीरा पर बोल रहा हूं। वहां प्रेम की चमक है। और यह व्यक्तियों का अपना अनुभव है।
तुलसीदास पंडित की तरह लिख रहे हैं; सिद्ध नहीं हैं, बुद्ध नहीं हैं। बुद्ध और सिद्ध के दो ही ढंग होते हैं। या तो वहां से प्रेम का झरना बहेगा या क्रांति की आग बहेगी। बस दो ही ढंग होते हैं। परंपरागत, लकीर के फकीर, दकियानूस, समाज की मान्यताओं के समर्थक, पोषक--ये ठीक हैं; इनका अपना काम है, ये करते रहते हैं। बाकी इनसे किसी के लिए परमात्मा का द्वार नहीं खुलता। कबीर विराजमान हो जाएं लोगों के हृदय में तो ज्यादा लाभ हो; मीरा पहुंच जाए तो ज्यादा लाभ हो।
राम नाम रस पीजै मनुआं...
तो फिर राम का नाम मीरा उपयोग तो करती है कभी-कभी। राम शब्द का, ख्याल रखना कि बहुत तरह से उपयोग किया गया है। दशरथ के बेटे राम से मीरा का प्रयोजन नहीं है। राम से तो अर्थ है, जिसमें रम गया मन। तो ईसाई के लिए जीसस राम हैं, और जैन के लिए महावीर राम हैं, और बौद्ध के लिए बुद्ध राम हैं। जब मीरा राम की बात कर रही है, तब भी वह कृष्ण की ही बात कर रही है--

जिसमें मन रम गया। वह राम की बात नहीं कर रही है; दशरथ के बेटे से उसको कुछ लेना-देना नहीं है।
राम नाम रस पीजै मनुआं...
राम तो प्रतीक है परमात्मा का। राम प्यारा नाम है। इसे तुम ऐतिहासिक राम से बांध कर छोटा मत कर देना; यह बड़ा नाम है। इसका अर्थः अल्लाह, भगवान, ईश्वर। और इसका वही अर्थः जिसमें तुम्हारा प्रेम है, वही तुम्हारे लिए राम।
राम नाम रस पीजै मनुआं, राम नाम रस पीजै।
तज कुसंग सतसंग बैठि नित, हरि चरचा सुण लीजै।
मीरा कहती हैः एक ही काम कर लो तो सब हो जाए--तज कुसंग।
कौन है कुसंग?
कुसंग वही है, जहां संसार की बात चल रही हो; और जहां संसार में उत्तेजना पैदा करने के उपाय चल रहे हों। कुसंग का अर्थ वही है। कुसंग का यह अर्थ नहीं है कि जहां हत्यारे बैठे हों। कुसंग का अर्थ यह है कि लोग बैठे हैं और लोग बातें कर रहे हैं कि धन और कैसे कमाया जाए; कि लोग बातें कर रहे हैं कि इस बार चुनाव में तो हार गए, अगली बार कैसे जीता जाए; कि इस बार तो दिल्ली जरा दूर पड़ गई, अगली बार कैसे उसको पास बनाया जाए; कि इस बार तो दिल्ली पहुंच गए, अब अगली बार भी कैसे वापस पहुंचा जाए--इस तरह की जहां बात चल रही है। कुसंग का मतलब यह होता हैः जहां संसार की, क्षुद्र की बात चल रही है--धन, पद-प्रतिष्ठा कैसे पाई जाए। कुसंग का अर्थ होता हैः जहां लोग क्षुद्र को ही पूछते हैं।
तुमने देखा, गए रोटरी क्लब, लोग पूछते हैंः अरे, यह कोट कब बनाया, कहां बनाया, किस दर्जी से बनवाया? यह भी कोई बात है? यह कुछ पूछने की बात है? कि यह साड़ी कहां से खरीदी?
तो लोग यही कर रहे हैं। कपड़े-लत्ते पहन कर पहुंच गए हैं, गहने-जवाहरात पहन कर पहुंच गए हैं। और ये सब क्लब इत्यादि इसी काम के लिए हैं, जहां सब अपनी-अपनी प्रदर्शनी कर दें, तो एक-दूसरे को सब देख लें कि किसके पास क्या है, किसके पास क्या नहीं है। और फिर दौड़ में लग जाएं लौट कर घर, कि फलां एयरकंडीशंड कार ले आया, अब मारे गए!
मैं एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन के साथ उसकी कार में उसके घर तक गया। गर्मी के दिन, भयंकर धूप! मैंने उससे दो-चार बार कहा भी कि सांस घुटी जाती है, कांच क्यों नहीं उतारते?
उसने कहाः रहने भी दीजिए! क्या मेरी बदनामी करवानी है मोहल्ले में कि मेरे पास एयरकंडीशंड कार नहीं है? मर जाएं भला! झेल लेंगे तकलीफ, मगर मोहल्ले वालों को यह ख्याल पैदा नहीं होने देंगे कि कार एयरकंडीशंड नहीं है।
अब कांच कैसे खोलें! हवा आ सकती है, उसको भी नहीं ला सकते!
कुसंग का अर्थ हैः जहां क्षुद्र की बात चल रही है; जहां लोग उतनी ही बात करते हैं जितनी सुबह अखबार में पढ़ लेते हैं। वह कुसंग है। जहां लोग बात करते हैंः कौन सी फिल्म चल रही है, किस सिनेमा में चल रही है, कौन सी अच्छी है, कौन सी बुरी है--वह कुसंग है।
सत्संग का क्या अर्थ है?
... हरि चरचा सुण लीजै।
जहां परमात्मा की याद होती है। जहां लोग बैठ कर उसके गुण गाते हैं। जहां उसका गीत सुनते हैं। जहां थोड़ी देर को अपने हृदय को उसके प्रति खोलते हैं।
जमा सब हुस्ने-कायनात करो
इश्के-जल्वातलब की बात करो
कुछ उसकी बात हो! कुछ उस प्यारे की बात हो! कुछ उसके जल्वे की बात हो! कुछ उसके सौंदर्य की बात हो!
जमा सब हुस्ने-कायनात करो
और उसका सौंदर्य ऐसा है कि तुम अगर सारे विश्व का सौंदर्य भी इकट्ठा
कर लो, तो उससे छोटा है।
इश्के-जल्वातलब की बात करो

शाहिदे-नौ से इश्क ताजा करो
उस नये प्रीतम की बात करो। इस दुनिया में तुमने बहुत प्यारे जाने, बहुत प्रीतम जाने--सब कचरा साबित हुए। तो कहती है न मीरा कि तेरे देश में साध नहीं हैं, लोग बसैं सब कूड़ो। तेरी दुनिया में, राणा, बस कचरा-कूड़ा ही लोग रहते हैं और वहां साधु नहीं हैं! इसलिए मेरा मन वहां नहीं लगता। मेरा मन तेरे देश में नहीं लगता। सुंदर है देश तेरा, लेकिन आत्मा नहीं है। वहां साधु नहीं है।
शाहिदे-नौ से इश्क ताजा करो
अज-सरे-नौ तकल्लुफात करो
फिर नये सिरे से परमात्मा से प्रेम जुड़े जहां! नये प्यारे की बात हो! नये प्रेम के अंकुर उगें! नई फसल काटने की तैयारी हो!
खेल के अब जहान के गुजरो
आओ कुछ तल्ख तजरुबात करो
अब जिंदगी का खेल बहुत देख लिया, अब कुछ और अनुभव में उतरो--कुछ और गहरे अनुभव में। कड़वे भी होंगे वे अनुभव शुरू में, फिर बहुत मीठे हो जाते हैं।
संसार और परमात्मा की परिभाषा में यह ख्याल रखनाः संसार के अनुभव शुरू में मीठे, फिर कड़वे हो जाते हैं। परमात्मा के अनुभव शुरू में कड़वे, फिर मीठे हो जाते हैं।
ये हकीकत तो रोज मिटती है
इसको नजरे-तवहहुमात करो
यह क्या बकवास लगा रखी है अखबारों की? यह क्या बातें कर रखी हैं धन-पैसे की? पद-प्रतिष्ठा की?
ये हकीकत तो रोज मिटती है
इसको नजरे-तवहहुमात करो
छोड़ो इसे! इसको आंख से ओझल होने दो।
जिंदगी कर रही है मानी तलब
इश्क को मकसदे-हयात करो
और जिंदगी खड़ी पूछ रही है कि तुम्हारी जिंदगी का अर्थ क्या है? --यही
कि कितना धन तिजोड़ी में है?
जिंदगी कर रही है मानी तलब
परमात्मा पूछेगाः तुम्हारी जिंदगी का अर्थ क्या है? अर्थ कहां है? तुम्हारा गीत कहां है? जिसे तुम्हें गाने भेजा था वह गा सके कि नहीं?
मगर फुर्सत कहां मिली! तुम कहोगेः अखबार पढ़ते रहे। पहले लोग भगवद्गीता पढ़ते थे सुबह, अब अखबार पढ़ते हैं। भगवद्गीता पढ़ना सुंदर था; शायद कभी किसी क्षण में कोई बात चोट कर जाती। पहले लोग कुरान पढ़ते थे, अब अखबार पढ़ते हैं। कुरान पढ़ना सुंदर था। वह तरन्नुम भी सुंदर है। वह छंद भी प्यारा है। वह चोट कुछ जगा सकती है। तुम्हारे सोई वीणा के तार कंप सकते हैं।
जिंदगी कर रही है मानी तलब
इश्क को मकसदे-हयात करो
और जिंदगी में एक ही अर्थ हो सकता है--एक ही अर्थ की संभावना है--कि तुम्हारा प्रेम जगे। और प्रेम उतना ही होता है जितना बड़ा प्यारा हो। प्यार ही करना हो तो बड़े से करना, विराट से करना। क्षुद्र से प्रेम किया, क्षुद्र हो जाओगे। तुम्हारा प्रेम तुम्हारी परिभाषा बनता है। तुमने जिससे प्रेम किया, अंततः तुम वही हो जाओगे।
तुमने देखा, मीरा अंततः कृष्ण की मूर्ति में समा गई।
अक्सर लोग रुपये में, नोट में समा जाते हैं। खतम! सौ के नोट में समा गए, समाप्त हो गए! अक्सर लोग वही हो जाते हैं जो खोजते हैं, वहीं समा जाते हैं। तुम मीरा पर भरोसा नहीं करते। मगर मैं मानता हूं कि यह बात तो सभी के संबंध में सच है। लोग वहीं समा जाते हैं जो उनका प्रेम है। कोई कामवासना में समा जाता है। कोई धन-वासना में समा जाता है। कोई अहंकार में समा जाता है। लोग वहीं समा जाते हैं। तुम्हारा प्रेम ही अंततः तुम्हारा घर बन जाता है। जिंदगी कर रही है मानी तलब

इश्क को मकसदे-हयात करो
देखो तुम खुद हो मतलाए-अनवार
रोजे-रोशन अंधेरी रात करो
तुम्हारे भीतर बड़ी रोशनी पड़ी है, उसे जगाओ। जहां यह बात होती हो, वह सत्संग। जहां यह याद तुम्हें बार-बार दिलाई जाती हो कि तुम्हारे भीतर रोशनी पड़ी है, इसे जगाओ; तुम दीये हो, क्यों बुझे पड़े हो? तुम्हारी क्षमता है सूरज बनने की, कम से कम दीया तो बनो! तुम्हारे भीतर बड़ी सुगंध पड़ी है, तुम कहां खोज रहे हो? कस्तूरी कुंडल बसै! और तुम कहां-कहां भटक रहे हो और तुम्हारी नाभि में कस्तूरी पड़ी है, वहीं से गंध आ रही है। जहां यह बात होती हो--जहां यह बात ही न होती हो, जहां यह घटना धीरे-धीरे घटने लगे--वही सत्संग है। वही है हरि-चर्चा।
काम क्रोध मद मोह लोभ कूं, चित्त से बहाय दीजै।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजै।
जहां प्रभु के रंग में रंगे जाते हो, वहां सत्संग है। वहां जाओ। उस रस में डूबो। उसी रस में डूबोगे तो उबरोगे। संसार में डूबे तो खो जाओगे।
दरस बिन दूखन लागे नैन।
और मीरा कहती हैः अब तो आंखें भी दुखने लगीं। पलक नहीं झपती, देखती ही रहती हूं टकटकी लगाए द्वार पर कि कब आओ, कब आओ, कब आओ--पता नहीं कब आ जाओ-- दिन कि रात, सुबह कि सांझ... ।
दरस बिन दूखन लागे नैन।
जब के तुम बिछुड़े प्रभु मोरे, कबहुं न पायो चैन।
वे जो झलकें मिल गई हैं, बड़ी मुश्किल कर रही हैं।
जब के तुम बिछुड़े प्रभु मोरे, कबहुं न पायो चैन।
जब से तुम्हें देखा, जब से तुम्हें थोड़ा छुआ, तुम्हारा स्वाद लिया, तुम्हारा अरस-परस हुआ...
कबहुं न पायो चैन।
फिर चैन नहीं मिला है। फिर रो ही रही हूं, फिर पुकार ही रही हूं।
सबद सुनत मेरी छतिया कांपै, मीठे-मीठे बैन।
वे जो तुम्हारे प्यारे शब्द सुने थे, उनकी ध्वनि भी मुझे कंपा जाती है, मेरी छाती कंपती है।
विरह कथा कांसू कहूं सजनी...
और मीरा कहती हैः किससे कहूं यह अपनी प्राणों की पीड़ा! कोई समझेगा नहीं। इसको समझने वाला वही हो सकता है, जो इसमें जल रहा हो।
विरह कथा कांसू कहूं सजनी...
हे मेरी सखी! मैं किससे कहूं जाकर यह अपने प्राणों की तकलीफ, यह पीड़ा,
यह जलती आग, यह प्यास--कोई इसे समझेगा नहीं!
... बह गई करवत ऐन।
वह परमात्मा का जो संस्पर्श क्या हुआ, जैसे आरी से कोई हृदय को काट गया, ऐसी मेरी हालत हो गई है। मैं टुकड़े-टुकड़े हो गई हूं।
कल न पड़त तल हरि मग जोवत...
बस रास्ता देखती हूं। जरा भी कल नहीं पड़ता। बस रास्ता ही जोहती रहती हूं। आंखें द्वार पर ही टिकी हैं।
... भई छमासी रैन।
और दुख के ये क्षण, विरह के ये क्षण बड़े लंबे हो गए हैं! एक-एक रात छह-
छह महीने लंबी मालूम पड़ती है।
दुनिया की हकीकत से हरगिज इंकार नहीं मुझको लेकिन,
हर दम के बिगड़ने-बनने से तसकीन नहीं, आराम नहीं।
अब दीदाओ-दिल मुतलाशी हैं इस हाजिरो-नाजिर हस्ती के,
जिसका न कोई आगाज कहीं और कोई कहीं अंजाम नहीं।
जो दूर हो तो एक-एक घड़ी सदियों के बराबर होती है,
जो पास हो तो कुछ अपने लिए ये सुबह नहीं, ये शाम नहीं।
प्रेमी पास हो, साधारण जगत में भी प्रेमी पास हो, तो समय मिट जाता है। ज्यादा देर नहीं मिटता यह समय, क्योंकि साधारण प्रेमी कैसे समय मिटा देगा! लेकिन परमात्मा का अनुभव शुरू हो जाए तो समय के बाहर उतरना शुरू हो जाता

है। जितनी देर को परमात्मा में होता है भक्त, उतनी देर समय में नहीं होता, संसार में नहीं होता। और फिर जितनी देर परमात्मा में नहीं होता, उतनी देर ऐसे तड़फता है जैसे मछली सागर के बाहर किनारे पर पटक दी गई हो--जलती धूप में आग जैसी रेत पर तड़फती हो। और पीड़ा के क्षण लंबे हो जाते हैं।
कल न पड़त तल हरि मग जोवत, भई छमासी रैन।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख-मेटन, सुख-दैन।
मीरा कहती हैः बस एक ही पुकार, एक ही पुकार श्वास-श्वास में है, धड़कन-धड़कन में है, एक ही आकांक्षा कि कब मिलोगे! अब कब मिलना होगा! अब फिर मिलना कब होगा!
भक्त की यही प्रार्थना है और यह प्रार्थना एक दिन पूरी होती है। पुकारता ही जाता है भक्त। एक ऐसी घड़ी आती है कि पुकार ही रह जाती है, भक्त नहीं रह जाता। प्यासा ही रह जाती है, प्यासा नहीं बचता। और जिस दिन प्यास ही बची, प्यासा नहीं बचा, उसी क्षण पूर्णता हो जाती है। उसी क्षण क्रांति घट जाती है। उसी क्षण पर्दा गिर जाता संसार पर और पर्दा उठ जाता परमात्मा पर।
कोई कहियो रे प्रभु आवन की...
मीरा कहती हैः मुझे तो कुछ होश-हवास नहीं है। मैं तो रोने में पड़ी हूं। अगर वे आ जाएं, उन पर पर्दा उठ जाए, तो कोई मुझे खबर कर देना।
दुनिया ही बदल जाती है मेरी जब उनकी इनायत होती है।
मिट जाते हैं दिल के गम सारे, राहत ही राहत होती है।
आते हैं नजर सब अपने ही, यां कोई गैर नहीं होता,
सब दिल की कदूरत मिटती है, उल्फत ही उल्फत होती है।
कुछ ऐसा अपनी आंखों में बस जाता है नूरे-हुस्ने-अजल,
हर वक्त निगाहों में रक्सां एक मोहनी सूरत होती है।
दुख है तो यही मस्ती अपनी कायम नहीं होने पाई है,
एहसासे-दुई जब होता है, बेहद ही कुल्फत होती है।
जिस दिन से परमात्मा की पहली झलक मिलती है, उस दिन से असली तकलीफ शुरू होती है, असली कांटा चुभता है।
दुख है तो यही मस्ती अपनी कायम नहीं होने पाई है,
मस्ती आती-जाती है, कायम नहीं हो पाई है।
एहसासे-दुई जब होता है, बेहद ही कुल्फत होती है।
और जब भी यह ख्याल आता है कि हम अभी भी परमात्मा से दूर हैं, जब कि उसमें हो सकते हैं, क्योंकि एक दफा होकर जान लिया--तो बड़ा दुख होता है, बड़ी बेचैनी होती है।
कुछ ऐसा अपनी आंखों में बस जाता है नूरे-हुस्ने-अजल,
एक बार देख लिया उस अपार सौंदर्य को तो वह ऐसा आंखों में बस जाता है!
हर वक्त निगाहों में रक्सां एक मोहनी सूरत होती है।
फिर एक मोहनी सूरत आंखों में नाचती ही रहती है।
और कृष्ण से प्यारी सूरत कहां खोजोगे! मीरा ने ठीक प्यारा खोजा; प्यारे की ठीक प्रतिमा खोजी। और मीरा मगन होते-होते एक दिन उसी मूर्ति में खो गई।
भक्ति में तुम्हें रस आता हो तो जैसे मीरा ने दामन पकड़ लिया कृष्ण का, तुम मीरा का दामन पकड़ लो। जो मीरा को हुआ वह तुम्हें भी हो सकता है। लेकिन ध्यान रखना, भक्ति तुम्हारे लिए सहज हो--तो ही। असहज को मत चुन लेना।
दो ही मार्ग हैं--ध्यान और प्रेम। प्रेम सहज हो तो मीरा का रास्ता चुन लेना और ध्यान सहज हो तो बुद्ध का रास्ता चुन लेना। बस दुनिया में दो ही धर्म हैं, क्योंकि दो ही तरह के लोग हैं। और सबसे महत्वपूर्ण बात यही है-- निर्णय--कि तुम्हारे लिए किसमें रस है। और किसी कारण को ध्यान मत देना, सिर्फ अपने रस को ध्यान देना।
मेरे पास कुछ दिन पहले किसी सज्जन ने आकर कहा, कि मुझे रस तो नाचने में, भजन में आता है, लेकिन वह मेरी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है। तो सीखना मैं ध्यान चाहता हूं।
अब यह अड़चन में पड़ जाएगा आदमी। यह ऐसी कोशिश कर रहा है जिससे यह भटकेगा, परेशान होगा, पहुंचेगा नहीं।

और कोई कारण से मत सोचना; बस एक ही बात पर्याप्त है सोचने के लिए--जो तुम्हारे हृदय में रम जाए; जो तुम्हें जंचे; जिससे तुम्हारे हृदय का फूल खिले; जिसकी बात सुनते ही तुम्हारे भीतर एक कंपकंपी दौड़ जाती हो, रोमांच हो जाता हो--बस वही तुम्हारे लिए है। फिर सब चिंता छोड़ कर उस पर चल पड़ना। यहां खोने को कुछ भी नहीं है--पाने को परमात्मा है। इसलिए क्या खो जाएगा, इसकी बहुत फिकर मत करो। ध्यान रखो उस पर जो मिलने को है--वह अमोलक निधि! वह राम रतन धन!
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
दसवां प्रवचन

फूल खिलता है--अपनी निजता से

पहला प्रश्नः परंपरा में भी फूल खिलते हैं और परंपरा के कारण भी फूल खिलते हैं। व्यवस्था कहें या परंपरा, वह तो मिटेगी नहीं; उसी में कभी-कभी जान डालनी पड़ती है। और तुलसीदास ने यही किया था। महाजन जो कुछ करते हैं, उसी से परंपरा आरंभ हो जाती है।

परंपरा में न तो कभी फूल खिले हैं और न कभी खिल सकते हैं। परंपरा से किसी चीज का कभी कोई जन्म नहीं होता। यद्यपि जब फूल खिलते हैं तो परंपरा बनती है।
इस भेद को ठीक से समझ लेना। जब भी फूल खिलेगा तो परंपरा बनेगी। जब भी कोई चलेगा तो पग-चिह्न बनते हैं। जब भी कोई बोलेगा तो शास्त्र बनेंगे। जब भी कोई सत्य का अनुभव करेगा तो संघ बनेगा। जब कहीं परमात्मा घटेगा तो लोग मधुमक्खियों की तरह उस शहद की तरफ दौड़ेंगे।
लेकिन परंपरा से सत्य का जन्म नहीं होता। परंपरा तो मुर्दा लकीर है।
जब कोई जन्मता है तो फिर उसके बाद तो मृत्यु घटती है जरूर, लाश पड़ी रह जाती है; लेकिन लाशों से किसी का जन्म नहीं होता। जन्म तो मृत्यु में बदल जाता है। इसे स्मरण रखना।
बुद्ध पैदा हुए। जो कहा, वह अपूर्व था। सुन कर लोग मोहित हुए। सुन कर लोग आंदोलित हुए। सुन कर लोग प्रभावित हुए। बुद्ध को देख कर साथ चलने की आकांक्षा जगी, अभीप्सा जगी; लोग साथ चले। बुद्ध विदा हो गए। जो भीड़ चली थी; वह चलती ही रही। उस भीड़ के बाद और भीड़, और भीड़। क्योंकि जो बुद्ध के पास आए थे उनके बच्चे हुए, बच्चों के बच्चे हुए। परंपरा बनी। लेकिन जो लोग बुद्ध के पास आए थे वे बुद्ध को देख कर आए थे। बुद्ध के जादू ने उन्हें खींचा था। वह जो सत्य जगा था बुद्ध में, उसने उन्हें आकर्षित किया था। वह आंखों की लपट बुद्ध की उन्हें बुला लाई थी। लेकिन उनके बेटे होंगे, बेटियां होंगी, वे इसलिए मानेंगे कि बाप मानते थे, मां मानती थी। फिर बेटों के बेटे होंगे, वे इसलिए मानेंगे कि परिवार में माना जाता रहा है। अब वह बात नहीं रही। अब इस परंपरा में ये जो जड़ लकीरें छूटी रह गई हैं, इनमें कभी फूल नहीं खिलेंगे। और जब भी कभी कोई फूल खिलेगा तो यह परंपरा उसका विरोध करेगी।
कई बातें समझ लेने जैसी हैं।
पहली बातः जब किसी को सत्य का अनुभव होता है, शब्दों में कहते ही नब्बे प्रतिशत तो खो जाता है, दस प्रतिशत मुश्किल से बच पाता है। शब्द में कहते ही सत्य खोने लगता है। सत्य की छाया ही पड़ती है शब्द में। ऐसा ही जैसे सुबह का सूरज निकला और किसी ने एक तस्वीर बनाई। तस्वीर प्रतीक-मात्र है। तस्वीर का सूरज सूरज नहीं है; सिर्फ सूरज के लिए एक अंकन है। जैसे तुमने संगीत सुना और फिर संगीत को लिपिबद्ध करके कागज पर लिख लिया--वही राग, वही गीत। लेकिन कागज पर जो लिपिबद्ध संगीत है, वह संगीत नहीं है। उससे तुम नाचोगे नहीं।
ऐसा समझो कि कोई संगीतज्ञ बांसुरी बजाता था और सांप नाचने लगा। अब इस सांप के सामने तुम रख दो लिपिबद्ध कागज पर संगीत, इसे तुम धोखा न दे पाओगे। सिर्फ आदमियों को धोखा हो जाए, यह सांप धोखा नहीं खाएगा। यह सिर नहीं हिलाएगा। इस पर कोई परिणाम नहीं होगा तुम्हारे लिपिबद्ध करने से। और मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि लिपिबद्ध करने का कोई उपयोग नहीं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सुबह का सूरज निकले तो तस्वीर मत उतारना। लेकिन तस्वीर को सुबह का सूरज मत समझना।
तो जब कोई जागता है, जानता है, स्वभावतः शब्दों में कहेगा, और तो कहने
का कोई उपाय नहीं। शब्द में कहते ही बात तस्वीर बन गई। मैंने तुमसे कुछ कहा। जब मैं कह रहा था, तब वह सत्य था; तुम तक पहुंचते-पहुंचते खो गया; बस एक तस्वीर रह गई, जिसमें अब कोई प्राण नहीं।

लेकिन अगर तुमने मुझे शांति से सुना है तो शायद शब्द में लिपटी हुई मेरी अनुभूति थोड़ी सी तुम तक पहुंच जाए। अगर सहानुभूति से सुना है तो शायद थोड़ी सी लपट तुम तक पहुंच जाए। लेकिन तुम अपने बच्चों को कैसे यह लपट दे सकोगे? यह तो, पहली बात, तुम्हारे पास ही नहीं है। फिर ये बच्चे अपने बच्चों को कैसे दे सकेंगे? यह कठिन होता जाएगा। यह प्रतिपल कठिन होता जाता है।
पहले तो सत्य का अनुभव करने वाला जब बोलता है, तभी बहुत कुछ खो जाता है; फिर सुनने वाला जब सुनता है, तब बहुत कुछ खो जाता है। क्योंकि तुम सुनोगे, अपना मिला दोगे, कुछ घटा दोगे। कुछ का कुछ सुनोगे।
जिन मित्र ने प्रश्न किया है, उन्होंने भी कुछ का कुछ सुन लिया है। उन्होंने भी अपने पक्षपात की बेचैनी से पूछा है। तुलसीदास से लगाव होगा, जैसा कि सामान्यतया हिंदुओं का है। तो बेचैनी हुई होगी चित्त में। उस बेचैनी में जो भी उन्होंने सुना, चूक गए। उस बेचैनी में तुलसीदास महत्वपूर्ण हो गए; मैं जो कह रहा था, वह गैर-महत्वपूर्ण हो गया। उस बेचैनी में पुराना हिंदू-मन विवाद करने लगा।
संस्कार पुराने हैं; अतीत से आते हैं। मैं जो कह रहा हूं, बिल्कुल नया है। नया जब भी अतीत से आती हुई धारा के विपरीत पड़ता है तो बहुत ही हिम्मतवर आदमी नये के साथ हो पाता है। कमजोर आदमी पुराने के साथ होगा, क्योंकि पुराने की साख है, प्रतिष्ठा है। और फिर कितने जन्मों से सुना है! फिर यह पूरा जीवन उसी से भरा है। पांडित्य बाधा बना होगा।
तुम समझ नहीं पाए कि मैंने क्या कहा। तुम समझ पाओगे भी नहीं तब तक जब
तक तुम्हारे पक्षपात हैं। तुलसीदास से तुम्हारा कोई मिलना नहीं हुआ। मेरे सामने तुम मौजूद हो। तुलसीदास महाजन थे कि नहीं, यह सिर्फ तुम्हारी धारणा होगी। थे कि नहीं, इस संबंध में तुम निर्णय नहीं ले सकते। तुम्हें अभी सत्य का अनुभव भी नहीं हुआ है कि तुम तौल कर सको कि तुलसीदास को सत्य का अनुभव हुआ था या नहीं हुआ था। तुम्हारे पास क्या उपाय है तौल का? तुम्हारे पास कोई उपाय नहीं है।
और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुलसीदास महाकवि नहीं थे। न तो मीरा वैसी कवि है और न कबीर वैसे कवि हैं। तुलसीदास महाकवि थे। लेकिन मैं कह रहा हूंः मीरा ने जाना और तुलसीदास ने नहीं जाना। कविता में माधुर्य है। उनकी कविता श्रेष्ठतम है; जैसे कालिदास; जैसे शेक्सपियर--उस कोटि की है।
मीरा या कबीर की कविता में क्या है? अपढ़! असंस्कृत!
लेकिन फिर भी तुमसे मैं कहना चाहता हूंः कबीर ने जान कर कहा है। तुलसीदास ने मान कर कहा है। तुलसीदास परंपरा के अनुकूल हैं। जो चला आया है, जैसा चला आया है--उसे वैसा ही स्वीकार किया है। उसके परिपोषक हैं। फर्क समझना। जब जीसस ने कुछ कहा, जब भी सत्य कहा जाएगा तो नई परंपरा बनती है। तुलसीदास ने किसी नई परंपरा को जन्म नहीं दिया; पुरानी परंपरा को ही मजबूत किया। कबीर से नई परंपरा बनी। नानक से नई परंपरा बनी। बुद्ध से नई परंपरा बनी। जब भी सत्य का आविर्भाव होगा तो नई परंपरा बनेगी। हालांकि मैं तुमसे कह रहा हूं कि यह परंपरा भी उतनी ही झूठी हो जाएगी जितनी पुरानी परंपरा थी; क्योंकि यह भी जब पुरानी होगी तो झूठी हो जाएगी। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, इसकी भी परंपरा बन जाएगी; लेकिन परंपरा बनते-बनते झूठी हो जाएगी।
तुम्हारी अड़चन यह है कि तुम्हें ऐसा लगता है कि जो मैं कह रहा हूं, अगर यही किताब में लिखा गया, बिल्कुल यही लिखा गया, तो फिर कैसे झूठा हो जाएगा? फिर भी झूठा हो जाएगा। क्योंकि सत्य अनुभव में होता है; शब्द में नहीं होता। सत्य कहने वाले में होता है; कही गई बात में नहीं होता। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, ऐसा का ऐसा तुम जाकर दोहरा देना, बिल्कुल ऐसा का ऐसा, इसमें रत्ती भर फर्क मत करना--तो भी सत्य नहीं होगा। क्योंकि सत्य, मैं जो कह रहा था, मेरे अनुभव में जुड़ा था। तुम जो कह रहे हो, सुनी हुई बात कह रहे हो। तुम जो कह रहे हो, उधार बात कह रहे हो।
तुलसीदास उधार हैं, तुलसी में कोई क्रांति नहीं है। लकीर के फकीर हैं। इसलिए लोगों को जंचे। क्योंकि लोग भी लकीर के फकीर हैं। क्रांतिकारी इतने थोड़े ही जंचते हैं। क्रांति तो तिलमिलाती है।

तो दुनिया में दो तरह के महात्मा हैं। एक, जिनसे क्रांति का जन्म होता है; जिनसे सूत्रपात होता है किसी दीये का, कोई ज्योति जलती है। और दूसरे, जो पुराने दीयों की प्रतिष्ठा का सहारा लेकर प्रतिष्ठित होते हैं। दूसरों को मैं झूठे संत कहता हूं। और मैं जरा भी लीपा-पोती नहीं करना चाहता। जैसा देखता हूं वैसा ही तुमसे कहता हूं। तुम जरा अपने पक्षपात एक तरफ रख कर सोचना।
तुलसीदास वर्ण-व्यवस्था के पक्षपाती हैं; बुद्ध नहीं, कबीर नहीं, नानक नहीं। तुलसीदास--सब सड़ा-गला जैसा भी है, पुराना होना चाहिए--तो उसके पक्षपाती हैं। जरा भी काटने की, तोड़ने की हिम्मत नहीं है। पोषक हैं परंपरा के। इसलिए हिंदू-मन को खूब जमे। जमना ही चाहिए। जो तुम्हारा पोषण करे, जो तुम्हारी रक्षा करे, तुम्हारी धारणाओं को बचाए--वह जमना ही चाहिए। कबीर नहीं जमे। कबीर कोई घर न बना सके हिंदुओं में। कबीर की तो छोड़ दो; बुद्ध जैसा आदमी नहीं जमा! बुद्ध जैसा आदमी पृथ्वी पर मुश्किल से कभी होता है; हिंदू उससे भी चूक गए; उसको भी घर के बाहर कर दिया।
मगर यह सदा से होता रहा। यहूदियों ने जीसस से बड़ा बेटा पैदा नहीं किया
और उसी को घर के बाहर कर दिया। क्यों? छोटे-मोटे धर्मगुरु भी स्वीकृत हैं; जीसस स्वीकृत नहीं हैं। वही स्वीकृत है जो पुराने का समर्थन करता है। जो पुराने का समर्थन नहीं करता, वह स्वीकृत नहीं हो सकता। वह तुम्हारी जड़ें हिला देता है। वह तुम्हारे पुराने भवनों को गिरा देता है। वह नई सुबह की बात करता है। उस नई सुबह तक थोड़े से हिम्मतवर लोग ही जा सकते हैं।
तो कबीर कहते हैंः जो घर बारै आपना, चले हमारे संग।
तुलसी तुम्हारे पुराने घर में ही लीपा-पोती कर देते हैं, छपाई कर देते हैं, रंग बदल देते हैं; पुराना घर, उसी को साज-संवार देते हैं कि मजे से रहो। यह तो बड़ा प्यारा घर है, यह तो कितने महापुरुषों ने बनाया, इसको छोड़ कर कहां जाते हो!
और कबीर कहते हैंः जो घर बारै आपना!
ये किस घर की बात कर रहे हैं? यह संस्कार, संस्कृति, सभ्यता, धर्म-- पुरातन का जो घर है, इसे जला दो, तो ही तुम आगे बढ़ पाओगे। अन्यथा यह धूल तुम्हारे दर्पण को घेरे ही रहेगी।
महाजन मैं उसे कहता हूं जो नये को अवतरित करता है; जो जगत में परमात्मा को फिर से लाता है। बाकी नेतागण हैं; महाजन कुछ भी नहीं। उनकी अपनी कलाएं हो सकती हैं, अपनी कुशलताएं हो सकती हैं। उनमें मुझे कोई संदेह नहीं--उनकी कला और कुशलता में। अगर काव्य की तरह सोचो तो तुलसीदास बड़े कवि हैं; लेकिन अगर अनुभव की तरह सोचो तो कोई अनुभव नहीं है, किसी तरह का अनुभव नहीं है। अनुभव होता तो हिंदू दुश्मन हो गए होते। वह कसौटी होती। अनुभव होता तो हिंदुओं ने त्याग दिया होता। वह कसौटी होती। अनुभव होता तो हिंदू दुश्मन की तरह पीछे पड़ गए होते। लेकिन हिंदू ने सिर आंखों पर लिया। वे हिंदू की जड़ता के सहयोगी थे। जब भी सत्य होगा तो क्रांतिकारी होगा, बगावती होगा, विद्रोही होगा। होगा ही; क्योंकि तुम असत्य में जीते हो। जब भी सत्य आएगा, तो तुमसे टक्कर होगी। सत्य तुमसे टकराएगा। तुमसे टकराएगा, तो ही तुमको रूपांतरित कर सकता है।
इसलिए परंपरा में कभी फूल नहीं खिलते--कभी नहीं खिले। और जो फूल खिले हैं, उनका परंपरा से कोई संबंध नहीं है, वे अपने कारण खिले हैं; वे किसी परंपरा के कारण नहीं खिले हैं। तुम ऐसा नहीं कह सकते कि जीसस यहूदी परंपरा के फूल हैं। नहीं। यहूदी परंपरा तो स्वीकार ही नहीं करती; इसलिए तो ईसाइयत पैदा हुई। ये फूल उस परंपरा के नहीं हैं।
मेरे देखे, जब भी कोई आदमी धर्म के अनुभव को उपलब्ध होता है तो वह परमात्मा का नया आविर्भाव है, नई तरंग है। उसका अतीत से कोई संबंध नहीं है। वह अतीत की पुनरुक्ति नहीं है। वह पीछे का दोहरावा नहीं है। हालांकि जिन्होंने भी अतीत में सत्य का अनुभव किया था, वही सत्य उसने अनुभव किया है; फिर भी मैं तुमसे कहता हूंः उनका दोहरावा नहीं है। उनसे कुछ लेना-देना नहीं है।
बुद्ध न भी हुए होते तो भी मैं होता और ऐसा ही होता। बुद्ध हुए, तो भी ऐसा ही हूं। मैं बुद्ध की पुनरुक्ति नहीं हूं। कृष्ण न हुए होते तो भी

बुद्ध होते। कृष्ण के होने न होने से बुद्ध के होने में कोई फर्क नहीं पड़ता। बुद्ध कोई कृष्ण के ही नये संस्करण नहीं हैं।
हालांकि जो कृष्ण ने जाना वही बुद्ध ने जाना। यह भी ख्याल में रख लेना। जो कृष्ण ने जाना वही बुद्ध ने जाना। जो बुद्ध ने जाना वही कबीर ने जाना। जो कबीर ने जाना वही मीरा ने जाना। इस जानने में जरा भी फर्क नहीं है। क्योंकि सत्य तो एक है; जब भी कोई जानेगा उसी को जानेगा। सत्य तो समयातीत है; उसका समय से कोई संबंध नहीं है। सत्य न नया है, न पुराना है। सत्य तो शाश्वत है। एस धम्मो सनंतनो! वह तो सदा से वही है। सदा एकरस है। जब भी कोई जानेगा तो उसी को जानेगा। लेकिन न तो बुद्ध ने कृष्ण की आंखों से जाना, न कबीर ने बुद्ध की आंखों से जाना। परंपरा का कोई संबंध नहीं। कबीर ने अपनी आंख खोली; बुद्ध ने अपनी आंख खोली। दोनों ने अपनी आंख खोल कर देखा। तुलसीदास के पास अपनी आंख नहीं है। तुलसीदास के पास परंपरा की आंख है। परंपरा की आंख यानी अंधापन। परंपरा की आंख ही तब हम उपयोग करते हैं जब हमारे पास अपनी आंख नहीं होती। जब अपनी आंख होती है तो हम अपनी आंख से देखते हैं; हम क्यों किसी और की आंख से देखें? तुलसीदास ने ऐसे देखा जैसे हिंदू को देखना चाहिए।
कबीर ने ऐसा देखा जैसा कबीर देख सकते हैं। फर्क ख्याल में ले लेना। मंसूर ने ऐसे देखा जैसे मंसूर को देखना चाहिए; ऐसा नहीं जैसा मोहम्मद देखते हैं। हालांकि जो देखा वह वही है जो मोहम्मद ने देखा; लेकिन देखा अपने ढंग से। निजता है, व्यक्तित्व है, अपना हस्ताक्षर है।
कबीर जो कहते हैं, यह इसमें कोई बुद्ध की गवाही नहीं है। ऐसा नहीं है
कि बुद्ध ने कहा, इसलिए यह ठीक है। कबीर कहते हैंः मैंने देखा, इसलिए ठीक है। मेरे देखे के कारण बुद्ध भी ठीक होते हैं। लेकिन बुद्ध के देखे के कारण मैं ठीक नहीं होता।
इस फर्क को ख्याल में लेना। यह फर्क बुनियादी है।
कोई कहता है कि मैं ठीक हूं, क्योंकि ऐसा ही मनुस्मृति में लिखा है। कोई कहता है कि मैं ठीक हूं, क्योंकि ऐसा ही कुरान में लिखा है। कोई कहता है कि मैं ठीक हूं, क्योंकि वेदों का भी यही उच्चार है। यह परंपरागत बात है। कोई कहता है कि मैं ठीक हूं, क्योंकि मैंने जाना। और वेद भी ठीक होने चाहिए, क्योंकि जैसा मैंने जाना वैसा वेद में लिखा है। लेकिन अंततः निर्णायक मैं हूं; निर्णायक वेद नहीं है। वेद के कारण मैं सही नहीं हूं; मेरे कारण वेद सही हो तो हो; गलत हो जाए तो गलत हो जाए।
मेरे पास कोई आया। मैं नागपुर में मेहमान था। एक बौद्ध भिक्षु, बड़े प्रसिद्ध भिक्षु मुझे मिलने आए। उसके एक दिन पहले ही मैं एक सभा में बुद्ध पर कुछ बोला था। तो उन्होंने कहाः बात तो आपने बड़ी प्यारी कही, लेकिन शास्त्र में कहीं लिखी नहीं है। मैं जिंदगी भर हो गया बौद्ध शास्त्रों का अध्ययन करते, कभी कहीं मैंने यह बात पाई नहीं। बात तो आपने बिल्कुल ठीक कही, लेकिन शास्त्र में नहीं लिखी है।
तो मैंने कहाः शास्त्र में लिख लेना। अगर बात ठीक है, तो शास्त्र में नहीं लिखे होने से गलत नहीं हो जाती। अगर बात ठीक नहीं है, तो सभी शास्त्रों में लिखी हो तो भी ठीक नहीं हो जाती।
तो मैंने कहा कि तुम्हारी हिम्मत न पड़ती हो तो शास्त्र मेरे पास ले आना, मैं उसमें लिख दूंगा। तुम मेरी गवाही पर लिख लो।
तो थोड़े बेचैन हुए कि यह कैसे हो सकता है! उनको अड़चन वही हो रही है जो तुम्हें अड़चन हो रही है--कि यह कैसे हो सकता है! शास्त्र में कुछ कैसे बात जोड़ी जा सकती है!
शास्त्र पर हम रुक जाते हैं। और कोई शास्त्र परिपूर्ण नहीं है। कोई शास्त्र परिपूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि सत्य को पूरा का पूरा कहा ही नहीं जा सका है कभी। सागर बड़ा है; हम शब्दों में जो थोड़ी-बहुत बूंदें भर लाते हैं, उनसे सागर नहीं चुकता।
मेरे बाद जो लोग होंगे, वे बहुत सी बातें कहेंगे, जो मैंने नहीं कही हैं। क्योंकि मनुष्य कुशल भी होता जाता है--सोचने में, विचारने में, शब्द में मनुष्य की क्षमता रोज बढ़ती जाती है। जो मैंने नहीं कहा, वह आने वाले लोग कहेंगे। तुम यह मत कहना उनसे कि यह हमारे शास्त्र में नहीं लिखा है।

तुम्हारे शास्त्र में उतना लिखा है जितना मैंने कहा। लेकिन उसके बाद भी जानने वाले होते रहेंगे। और जो जानता हो उसकी मान लेना। शास्त्र कभी भी निर्णायक नहीं हो सकता। निर्णायक तो शास्ता होता है--जिसने जाना। जिसकी आंखों में तुम्हें सत्य की झलक मिले, उसको पकड़ लेना। अगर तुम मुझे मान कर भी चल रहे होओ और तुम्हें किसी की आंख में सत्य की झलक मिले, तो किताब को जला देना, किताब को फेंक देना। किताब से कुछ लेना-देना नहीं है। यह सत्य का नया आविर्भाव हुआ।
लेकिन परंपरा इतनी हिम्मत नहीं कर सकती। परंपराएं बंद होने की जिद्द करती हैं। मोहम्मद के बाद मुसलमानों ने कह दिया कि अब आखिरी किताब आ गई भगवान के यहां से। क्यों? आखिरी क्यों आ गई? हिंदू कहते हैंः वेद में ही आखिरी किताब आ गई। अब आगे कोई जरूरत नहीं है। जैन कहते हैंः महावीर में तीर्थंकर पूरे हो गए; अब आगे कोई तीर्थंकर नहीं होगा। सभी धर्म अपनी परंपरा को बंद कर लेना चाहते हैं। बंद इसलिए कर लेना चाहते हैं कि खतरा है--कल नये संस्करण होंगे, नया सत्य अवतरित होगा, फिर हमारे शास्त्रों का क्या होगा! शास्त्रों की प्रतिष्ठा बनी रहे, इसके लिए आगे का द्वार बंद कर देते हैं।
पच्चीसवां तीर्थंकर नहीं हो सकता। क्यों? चौबीस पर क्यों अटक जाते हो? क्या कारण है? इसका तो मतलब यह हुआ कि चौबीसवें तीर्थंकर ने जो कहा, उससे आगे अब बात कभी न बढ़ेगी; उसमें कोई परिमार्जन न होगा; उसमें कोई सौंदर्य न बढ़ेगा; उसमें कुछ जोड़ा न जाएगा। तो फिर नये फूल कैसे खिलेंगे? यह तो ऐसे ही हुआ कि जैसे एक वृक्ष ने कह दिया कि अब मेरे बाद कोई वृक्ष न होंगे, बस यह जो सूखा ठूंठ खड़ा रहेगा, यही वृक्ष है; अब तुम इसी की पूजा करते रहना।
जीवन तो बहा जाता है। और जीवन के बहने के साथ परमात्मा रोज बहा जाता है। और जीवन के बहने के साथ परमात्मा रोज नये रंग-रूप में आता है। रोज की भाषा में उतरता है। हर युग के अनुकूल अवतरित होता है। सत्य तो रुकता नहीं; वह शाश्वत आता रहता है। लेकिन शास्त्र रुक जाते हैं; शास्त्र जड़ हो जाते हैं।
तुलसीदास जड़ परंपरा के भक्त हैं।
परंपरा में फूल नहीं खिलते। फूलों को सदा परंपरा के विद्रोह में खिलना पड़ता है। परंपरा सदा नये फूलों को नष्ट करने की कोशिश करती है; नई अभिव्यक्तियों को रोकने की, अवरोध करने की चेष्टा चलती है, ताकि पुरानी अभिव्यक्ति प्रतिष्ठित रहे।
कहा तुमनेः "परंपरा में भी फूल खिलते हैं।"
मैंने कभी सुना नहीं, कभी देखा नहीं। आज तक तो नहीं हुआ कि परंपरा में फूल खिले हों। जब भी फूल खिले हैं, परंपरा के बावजूद खिले हैं; परंपरा के कारण नहीं खिले। इसलिए तो इतने कम फूल खिलते हैं। नहीं तो दुनिया में बहुत फूल खिलें। अगर परंपराएं न हों तो फूल ही फूल खिलें। लेकिन खिलें कैसे? परंपरा खिलने नहीं देती।
हेनरी थॉरो विश्वविद्यालय से पढ़ कर वापस लौटा। एक बुजुर्ग उससे मिलने
आए और उन बुजुर्ग ने कहाः मैं बड़ा हैरान हूं, तुम विश्वविद्यालय से अपनी बुद्धि को बचा कर कैसे आ गए? क्योंकि अक्सर विश्वविद्यालय में बुद्धि तो नष्ट हो जाती है; कूड़ा-कर्कट भर जाता है। क्योंकि विश्वविद्यालय की सारी चेष्टा यही है कि तुम्हारा मन सूचनाओं से भर दिया जाए। तुम्हारे हृदय का तो कोई परिष्कार नहीं होता; तुम्हारी स्मृति प्रगाढ़ हो जाती है। तुम एक टेपरिकार्डर होकर लौट आते हो। बुद्धि की परीक्षा यह है विश्वविद्यालय में--कि तुम कितना पचाओ, यह परीक्षा नहीं है--कितना वमन कर सकते हो, यह परीक्षा है। पीए जाओ ज्ञान और उतारते जाओ परीक्षा में, परीक्षा में उलटी करो; सब किताब पर फैला दो। कितनी कुशलता से तुम उलटी कर देते हो, यह तुम्हारी परीक्षा है बुद्धि की।
यह कोई बुद्धि की परीक्षा हुई? याददाश्त बुद्धि की परीक्षा है? याददाश्त तो बुद्धि की परीक्षा नहीं। याददाश्त तो पुराने की होती है। बुद्धि की परीक्षा तो नये के अनुभव से होनी चाहिए। कुछ नया लाओ जगत में।
बुद्धि की परीक्षा सृजनात्मक होनी चाहिए, क्रिएटिव होनी चाहिए। तुम कुछ

नया देखो, नया सुनो, नया बनाओ। बुद्धि तो नये का अन्वेषण करती है। स्मृति पुराने को संगृहीत करती है। लेकिन बुद्धि की तो कोई परीक्षा नहीं है।
उस बूढ़े ने ठीक कहा कि तुम कैसे बच कर आ गए?
मेरा भी यही अनुभव है। जब भी बच्चे स्कूल भेजे जाते हैं, तब तो उनमें प्रतिभा सभी में होती है; मगर जब तक लौटते हैं तब तक शायद एकाध की बचती है। बच जाए, सौभाग्य। प्रतिभा का बच जाना अपवाद है। क्योंकि पच्चीस साल पड़े हैं पंडित पीछे; सब तरह का जाल उन्होंने फैला रखा है; सब कुंजियां उन्होंने हाथ में ले रखी हैं। वे तोड़-मरोड़ डालते हैं, प्रतिभा को नष्ट कर देते हैं। प्रतिभा की जगह स्मृति को पकड़ा देते हैं। इसलिए तुम पाओगे कि जिंदगी में तुम्हारे विश्वविद्यालय से आए हुए प्रथम वर्ग के विद्यार्थी और गोल्डमेडलिस्ट और इत्यादि जिंदगी में खो जाते हैं। जिंदगी में उनका कोई पता नहीं चलता। जिंदगी उनको गोल्डमेडल नहीं देती।
आइंस्टीन मैट्रिक में फेल हो गया था--और गणित में ही! कोई सोच भी नहीं सकता था कि गणित में यह आदमी इस पृथ्वी का सबसे बड़ा गणितज्ञ होगा। गणित में! और फेल हो जाने का कारण यही था कि प्रतिभा थी। प्रतिभा के साथ झंझट है। जैसे प्रतिभाशाली आदमी हर बात में सोचता है नये का।
अब तुम अगर कोई साधारण विद्यार्थी से पूछो कि दो और दो कितने होते हैं? वह कहेगाः चार होते हैं। बस इतना ही परीक्षक जानना चाहता है कि दो और दो चार होते हैं। यह भी कोई प्रतिभा है कि दो और दो चार होते हैं! यह विद्यार्थी ने लिख दिया तो उत्तीर्ण हो गया। आइंस्टीन को शक है इस पर कि दो और दो चार जरूरी नहीं है कि हों। दो और दो तीन भी हो सकते हैं; दो और दो पांच भी हो सकते हैं।
तुम कहोगेः यह कैसे हो सकता है?
यह आइंस्टीन की प्रतिभा को समझोगे तो ख्याल में आना शुरू होगा। आइंस्टीन कहता हैः दो और दो चार होने में कोई अनिवार्यता नहीं है। यह तो केवल आदमी की मजबूरी है कि उसने अपनी अंगुलियों के हिसाब से आंकड़े बनाए हैं। दस का आंकड़ा बना लिया--दस अंगुलियों की वजह से। अतीत से आदमी अंगुलियों पर गिनता रहा। अभी भी जंगल का आदमी अंगुलियों पर गिनता है। अभी भी छोटे बच्चे अंगुली पर गिनते हैं।
कल ही रात एक छोटे से संन्यासी अभिषेका से मैं पूछ रहा था कि स्कूल में कितने बच्चे हैं? उसने जल्दी से दस अंगुलियां बता दीं। गिनती तो उसको है नहीं, लेकिन उसने दस अंगुलियां बता दीं।
दस से गिनते हैं, इसलिए दुनिया भर के गणित में "दस" आंकड़ा हो गया--एक से
दस तक की संख्या होती है। फिर तो सब उसी की पुनरुक्ति होती है--ग्यारह, बारह, फिर करोड़, शंख, महाशंख--वह सब उसी की पुनरुक्ति है। असली आंकड़े तो दस हैं--दस अंगुलियों के कारण हैं।
आइंस्टीन कहता है कि दस का आंकड़ा कोई अनिवार्यता नहीं है। यह तो एक सांयोगिक बात है कि आदमी के पास दस अंगुलियां हैं। समझो किसी आदमी को दुर्घटना हो गई और चार अंगुलियां खराब हो गईं, छह ही अंगुलियां बचीं तो? या ऐसा समझो कि आदमी को दस की जगह बारह अंगुलियां होतीं। या ऐसा समझो कि आदमी को दो ही अंगुलियां होतीं। तो गणित बिल्कुल बदल गया होता, सारी दुनिया का गणित बदल जाता। आइंस्टीन कहता हैः दस की संख्या हो तो दो और दो चार होते हैं। लेकिन समझो कि तीन ही की संख्या है, तीन से ज्यादा संख्या नहीं है। एक, दो, तीन; फिर आता है दस, ग्यारह, बारह, तेरह; फिर आता है बीस, क्योंकि तीन के ही आंकड़े हैं। और आइंस्टीन कहता हैः तीन के आंकड़े से ही सारी समस्याएं हल हो जाती हैं तो दस के आंकड़े मानना क्यों? तो अगर तीन का ही आंकड़ा हो--एक, दो, तीन--तो दो और दो चार तो हो ही नहीं सकते, क्योंकि चार का तो आंकड़ा ही नहीं है। तो दो और दो कितने होंगे? दो और दो दस होंगे। क्योंकि तीन के बाद आएगा दस। और आइंस्टीन ने सारे सवाल तीन के आंकड़ों से ही हल कर दिए। वह कहता है कि इससे ज्यादा की मानने की कोई जरूरत नहीं है। एक दूसरे गणितज्ञ लीबनिज ने तो कहा कि तीन भी व्यर्थ हैं; दो काफी हैं। एक और दो, बस इससे काम चल जाएगा। और विज्ञान का यह सिद्धांत है कि जितने कम से काम चल जाए उतने से चलाना चाहिए, ज्यादा बढ़ाने की कोई व्यर्थ उलझन क्यों खड़ी करनी? एक से काम नहीं चल सकता; यह बात सच है; लेकिन दो से

काम चल जाता है। लीबनिज ने सारे गणित के सवाल दो के आंकड़े से हल कर दिए। तब तो अड़चन हो जाएगी।
तो इस विद्यार्थी को गणित में पास होना बहुत मुश्किल है, क्योंकि यह
इस तरह की झंझटें बता रहा है कि दो और दो चार हो भी सकते हैं, न भी हों; दो और दो दस भी हो सकते हैं। वह जो कुटा-पिटाया हुआ शिक्षक है, बुद्धिहीन, जिसके पास प्रतिभा नहीं है, वह बरदाश्त नहीं कर सकेगा। वह तो इसे उत्तीर्ण ही नहीं होने देगा।
आइंस्टीन मैट्रिक में फेल हुआ। फेल होने को राजी हुआ, लेकिन अपनी प्रतिभा गंवाने को राजी नहीं हुआ। अधिक लोग प्रतिभा गंवाने को राजी हो जाते हैं, अनुत्तीर्ण होने को राजी नहीं होते। तो आइंस्टीन बचा कर आ गया अपनी प्रतिभा को।
दुनिया में सारे बच्चे प्रतिभा लेकर पैदा होते हैं, लेकिन शिक्षा, संस्कार, समाज प्रतिभा नष्ट करने वाले हैं। पच्चीस साल काफी समय होता है। पच्चीस साल बहुत बड़ा समय है। आदमी अगर पचहत्तर साल जीएगा तो एक तिहाई समय तो विश्वविद्यालय ले लेता है। जिंदगी का एक तिहाई! और परिणाम क्या है? जो लोग विश्वविद्यालय से निकलते हैं, लेकर क्या आते हैं? बस थोड़ी सी स्मृति की कुशलता लेकर आते हैं; इससे ज्यादा कुछ भी नहीं।
वैसी ही हालत परमात्म-अनुभव की है। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा का अनुभव करने की क्षमता लेकर पैदा होता है, फूल खिलने की क्षमता लेकर पैदा होता है। लेकिन फूल खिल नहीं पाते; परंपराएं मार डालती हैं। परंपराओं का बोझ भारी है। परंपराएं कहती हैंः ऐसे जीओ, ऐसे उठो, ऐसे बैठो, ऐसा करो। परंपरा तुम्हें तुम्हीं होने का मौका ही नहीं देती। परंपरा कहती हैः तुम किसी और जैसे होओ। परंपरा कहती हैः विवेकानंद बनो।
अब तुम्हारा क्या कसूर है? क्यों तुम विवेकानंद बनो? छोटे बच्चों से कहा जा रहा है कि तुम महात्मा गांधी बनो। इनका क्या कसूर है? ये क्यों महात्मा गांधी बनें? यह भारी अपमान है कि किसी से कहो कि तुम विवेकानंद बनो, महात्मा गांधी बनो, कि शंकराचार्य बनो। यह अपमान है। प्रत्येक व्यक्ति यहां स्वयं होने को पैदा हुआ है। कोई और वह बने क्यों? अगर परमात्मा को विवेकानंद ही बनाने थे तो वे फोर्ड की तरह कोई कंपनी खोल देते--एसेंबली लाइन से बस विवेकानंद, विवेकानंद, चले आ रहे हैं! भर दो दुनिया को विवेकानंद से! एक सी कारें ही एक सी कारें! दुनिया बड़ी बेरौनक हो जाए।
परमात्मा यह भूल नहीं करता। परमात्मा एक आदमी को एक ही बार पैदा करता है, दुबारा नहीं दोहराता, परमात्मा पुनरुक्ति नहीं करता। परमात्मा कार्बनकापी में विश्वास ही नहीं करता; सब मूल लिपियां ही भेजता है।
मगर इस दुनिया में कार्बनकापी पर विश्वास करने वाले लोग हैं; वे मूल
पर भरोसा ही नहीं करते। वे सब मूलों को मिटा देना चाहते हैं। उनकी बुद्धि वही है, जैसा मैंने एक सरकारी आफिसर के संबंध में सुनी है। एक सरकारी आफिसर के जिम्मे रेकार्ड थे पचास सालों के। और वे रेकार्ड बहुत हो गए थे; उनको रखने की भी जगह नहीं थी। और रेकार्ड बढ़ते ही जाते हैं। आखिर सभी अधिकारियों ने मिल कर तय किया कि ये रेकार्ड अब नष्ट करने होंगे, बहुत हो गए पुराने, दस साल पुराने बचा लो, बाकी जाने दो। मगर जैसी आफिसरों की बुद्धि होती है--बुद्धि कहना भी ठीक नहीं उसे। तो प्रधान ने जो सूचना भेजी क्लर्कों को वह यह थी कि ऐसा निर्णय किया गया है कि दस साल के पूर्व के जो रेकार्ड हैं, अब उनकी कोई जरूरत नहीं है, वे नष्ट कर दिए जाएं। लेकिन नष्ट करने के पहले उनकी कार्बनकापी कर ली जाए, ताकि वक्त पड़े काम आए।
सभी इसी तरह जाता है सरकारी आफिस में तो। हर चीज की कापी होनी चाहिए;
एक भी नहीं, पांच-पांच सात-सात कापियां होनी चाहिए। तो पुरानी आदत। नष्ट करना है। इसीलिए नष्ट कर रहे हैं कि जगह नहीं रखने की। अब कापी कर लोगे तो वह उतनी की उतनी जगह कापी घेर लेंगी।
लेकिन तुम अपने बच्चे को कहते हो कि बेटा ऐसे बनो, बेटा ऐसे बनो, बेटा ऐसे बनो! तुम अपमान कर रहे हो उसका। तुम परमात्मा का अपमान कर रहे हो। वह जैसा है वैसा ही बनने को परमात्मा ने उसे भेजा है।
परंपरा मारती है। परंपरा काटती है। परंपरा बरदाश्त नहीं करती।

एक सूफी कहानी है कि एक सम्राट के महल पर एक अजनबी पक्षी आकर बैठ गया,
जो उसने कभी नहीं देखा था। उसके देश में नहीं होता था, परदेशी था। उसे बड़ी हैरानी हुई। वह बड़ा बेचैन हुआ। उसने पक्षी को पकड़वाया और कैंची उठा कर पंख काट दिए उसके, क्योंकि ऐसे पंख होने नहीं चाहिए। ऐसे पंख उसके देश में होते नहीं थे। इतने बड़े पंख! उसने देखे थे छोटे-छोटे पंखों वाले पक्षी। उसने उसके पंख काट दिए। हालांकि वह उसकी सेवा कर रहा है। उसकी चोंच भी बड़ी लंबी थी, उसने उसकी चोंच भी कटवा दी। वह पक्षी चीख रहा है, चिल्ला रहा है; मगर राजा उसकी सेवा कर रहा है। वह यही सोच रहा है कि उसको ढंग पर ला रहा है। यही हो रहा है। जब तुम किसी बच्चे को ढंग पर ला रहे हो, तुम कर क्या रहे हो? पंख काट रहे हो उसके, कि तेरे पंख विवेकानंद जैसे नहीं हैं; तेरी चोंच बुद्ध जैसी नहीं है, तुझे हम काट-पीट कर बिल्कुल ठीक बना देंगे।
पक्षी मर गया! आदमी बेशर्म है, बच जाता है। सब तरह कट-पिट जाता है, फिर
भी बच जाता है। सब तरफ से छांट देते हो उसको, उसकी सारी आत्मा नष्ट हो जाती है, फिर भी घिसटता रहता है।
कहां फूल हैं? तुम किसी माली को पूछो जाकर। अगर एक माली एक हजार वृक्ष लगाए और कभी एक वृक्ष में एकाध फूल आए, इसको तुम कुछ माली कहोगे कि यह माली है? तुम इसको कहोगे, यह फूल दिखता है इसकी नजर से बच कर आ गया, नहीं तो आता कैसे? हजार पौधे लगाए, एक-एक पौधे में हजारों फूल लगने चाहिए; वे तो लगे ही नहीं कभी, एक पौधे में एक फूल लगा है। तुम जाकर इसका गुणगान करोगे कि आप बड़े भारी माली हैं, आप बड़े कुशल हैं, आप बड़े कलाकार हैं? कैसा गजब कि एक फूल आ गया! इस माली की कोई प्रशंसा नहीं करेगा। हमें यही शक होगा कि ऐसा लगता है, हो सकता है कि माली की नजर चूक गई। हजार पौधे थे, फिकर में दूसरों की रहा होगा। जहां-जहां फिकर रही, वहां तो फूल आ ही नहीं सके; यह जरा कुछ नजर से ओझल रह गई बात, यह कोना कुछ अपरिचित रह गया, तो फूल खिल गया।
इतने आदमी पैदा होते हैं, इसमें फूल लगते कहां हैं? इस परमात्मा को तुम माली कहोगे?
मगर इसमें परमात्मा का कसूर नहीं है। परमात्मा तो हरेक को इसी क्षमता
से भेजता है कि तुम्हारे भीतर बुद्धत्व का प्रकाश हो; तुम्हारे भीतर मोक्ष उतरे। मगर आस-पास के लोग उतरने नहीं देते। इसके पहले कि मोक्ष उतरे, वे सब तरह के कारागृह निर्मित कर देते हैं।
परंपरा है क्या? एक कारागृह है! अतीत से आई हुई जंजीरें तुम्हें पहना
दी जाती हैं। हालांकि पहनाने वाले कहते हैं कि ये आभूषण हैं। इस मंदिर जाओ, यह किताब पढ़ो, यह मंत्र जपो, इस तरह का तिलक लगाओ; कि तुम हिंदू हो, कि तुम मुसलमान, कि ब्राह्मण, कि शूद्र--सब तुम्हें समझा दिया जाता है कि तुम कौन हो। और तुम्हें जरा भी पता नहीं कि तुम कौन हो! और सब तुम्हें बता दिया गया है। असली सवाल तुमने पूछा ही नहीं कि मैं कौन हूं? इसके पहले कि तुम पूछो, बताने वाले, उत्तर देने वाले तैयार हैं। वे कहते हैंः तुम हिंदू हो, पूछने की जरूरत क्या, हम तो बता रहे हैं! तुम ब्राह्मण हो, कि तुम यह हो, कि तुम वह हो। और जिंदगी ऐसे ही बीत जाती है इन्हीं उधार बातों के साथ और तुम सदा दूसरा बनने की कोशिश में लगे रहते हो।
फूल खिलता है--स्वयं की ऊर्जा से। फूल खिलता है--निजता से। और ध्यान रखनाः तुममें जो फूल खिलेगा, वह पहले कभी नहीं खिला था--उस तरह का फूल। और फिर उस तरह का फूल दुबारा कभी नहीं खिलेगा। परमात्मा पुनरुक्ति करता ही नहीं।
तो तुम्हारे ऊपर एक बड़ी जिम्मेवारी है। परमात्मा ने तुम्हारे ऊपर बड़ा भरोसा किया है। तुम्हें एक बड़ी क्षमता दी है कि तुम खिलना। लेकिन तुम्हीं जैसे!
मैं फिर इसे दोहरा दूंः तुम जैसा फूल न पहले कभी उसने पैदा किया था, न कभी पैदा करेगा। तुम नहीं खिले तो यह फूल बिना खिला ही रह जाएगा। तुमने, परमात्मा ने तुम्हें जो दिया था, जो संपदा दी थी, उसको अस्वीकार कर दिया। और हालांकि मैं तुमसे यह भी कह दूं कि कोई भी फूल खिले, खिलने का आनंद
एक जैसा है। बुद्ध का फूल खिलता है, कबीर का फूल खिलता है, क्राइस्ट का फूल खिलता है कि जरथुस्त्र का--ये अलग-अलग फूल हैं। बुद्ध का रंग अलग, ढंग अलग-- साफ ही है। कृष्ण का रंग अलग, ढंग अलग। क्राइस्ट का रंग अलग, ढंग अलग। ये

फूल बिल्कुल अलग-अलग हैं। कोई चंपा है, कोई चमेली है, कोई गुलाब है, कोई कमल है। ये बिल्कुल अलग-अलग हैं। फिर भी एक बात ख्याल रखनाः जब भी कोई फूल खिलता है तो जो खिलने की स्थिति है, वह बिल्कुल एक जैसी है। चाहे गेंदे का फूल खिले और चाहे गुलाब का--खिलावट एक जैसी है। खिलने का आनंद एक जैसा है। मीरा नाची और बुद्ध शांत वृक्ष के नीचे बैठे रहे। यह बुद्ध के खिलने
का ढंग है--शांत बैठे रहना। यह मीरा के खिलने का ढंग है--नाचना। महावीर नग्न खड़े रहे--यह उनके खिलने का ढंग है। कृष्ण ने बांसुरी बजाई--यह उनके खिलने का ढंग है। लेकिन कृष्ण की बांसुरी में वही स्वर है, जो महावीर की निर्दोष नग्नता में है। बुद्ध के पैरों पर घुंघरू नहीं बंधे हैं, लेकिन जो सुन सकता है उसे सुनाई पड़ेंगे। वही घुंघरू जो मीरा के पैरों पर बंधे सुनाई पड़ रहे हैं!
जगत में फूल अलग-अलग ढंग के हैं, लेकिन खिलावट एक है। कोई फूल परंपरावादी नहीं होता। यहां परंपरा बन ही नहीं सकती। तुम जैसा आदमी ही पहले नहीं हुआ, परंपरा बनेगी कैसे?
असली धार्मिक दृष्टि सदा व्यक्तिवादी होती है, परंपरावादी नहीं। परंपरावाद राजनीति है, धर्म नहीं।
तुलसीदास हिंदू-राजनीति के साथ जमे; पसंद पड़े, घर-घर विराजमान हो गए। इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। लेकिन मेरी बात तुम ख्याल में ले लेना।
तुम पूछते होः "परंपरा में भी फूल खिलते हैं और परंपरा के कारण भी फूल खिलते हैं।"
नहीं, कभी नहीं! परंपरा में कभी फूल नहीं खिले और परंपरा के कारण ही तो फूल खिल नहीं पाते।
तुम पूछते हो कि परंपरा के कारण!
परंपरा के बावजूद कभी-कभी खिल जाते हैं। परंपरा कभी-कभी चूक जाती है। कुछ बगावती लोग पैदा हो जाते हैं और परंपरा में नहीं अटते और कोई रास्ता निकाल कर छिटक जाते हैं; निकल जाते हैं चक्कर से। घेरा तो उन पर भी डाला जाता है, मगर वे कोई द्वार-दरवाजा खोज लेते हैं और कारागृह के बाहर हो जाते हैं। जो भी कारागृह के बाहर हो जाता है, वह तुम्हें भी पुकारता है कि आ जाओ बाहर। वही मैं कर रहा हूं। तुमसे कह रहा हूंः आओ बाहर! मगर तुम कहते हो कि हम तुलसीदासजी को पकड़े बैठे हैं! हम कैसे बाहर आएं?
"व्यवस्था कहें या परंपरा, वह तो मिटेगी नहीं।"
वह मैं भी जानता हूं कि नहीं मिटेगी, क्योंकि आदमी की जड़ता नहीं मिटती। जड़ता मिट जाए तो व्यवस्था भी मिट जाए, परंपरा भी मिट जाए। नहीं मिटेगी, क्योंकि आदमी का अंधापन नहीं मिटता। नहीं मिटेगी, क्योंकि आदमी की मूढ़ता नहीं मिटती। वह सब मूढ़ता के कारण बची है।
अस्पताल कैसे मिटेंगे जब तक बीमारी न मिटे? मंदिर-मस्जिद कैसे मिटेंगे जब तक आदमी की जड़ता न मिटे? तब तक हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन कैसे मिटेंगे? धार्मिक आदमी पैदा नहीं हो पा रहा इन्हीं की वजह से। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन--इनके कारण धार्मिक आदमी पैदा नहीं हो पाता। क्योंकि धार्मिक आदमी का कोई विशेषण नहीं हो सकता। धार्मिक आदमी विशेषण-शून्य होगा; उसकी कोई सीमा नहीं हो सकती। उस पर कोई लेबल नहीं लगाया जा सकता। धार्मिक आदमी परम स्वतंत्रता है। उसका नामकरण भी नहीं हो सकता। धार्मिक आदमी बस धार्मिक होता है।
और तुम कहते होः "व्यवस्था कहें या परंपरा, वह तो मिटेगी नहीं और उसमें कभी-कभी जान डालनी पड़ती है।"
मुर्दों में कभी तुमने जान डाल कर देखी? हालांकि यह सच है कि मुर्दा
भी कल तक सांस लेता था। मैं यह नहीं कह रहा कि कल तक नहीं लेता था। तुम्हारे पिताजी चल बसे, अब फूंको उनकी नाक में सांस, फूंकते रहो। इसमें तुम भी मरोगे, अगर यह ज्यादा देर तक किया। ज्यादा देर में यही संभावना है कि पिताजी तुममें कहीं सांस न फूंक दें। क्योंकि मुर्दा पड़ा-पड़ा आखिर परेशान हो जाए कि बहुत हो गया, यह आदमी मरने भी नहीं देता।
ऐसा हुआ, मुल्ला नसरुद्दीन गया था अपने पशुओं के डाक्टर के पास। कहने लगाः मेरे गधे की हालत खराब है।

तो उसने कहाः तुम ऐसा करो, यह दवा ले जाओ। और दवा के साथ-साथ उसने एक बांस की पोंगरी भी दे दी।
तो मुल्ला ने कहाः करना क्या है इसमें?
तो उसने कहाः दवा को पोंगरी में डाल देना, पोंगरी गधे के मुंह में लगा देना और जोर से फूंक मार देना--तो दवा उसके अंदर चली जाएगी।
ठीक। मुल्ला गया।
कोई दो घंटे बाद आया; पागल हो रहा था बिल्कुल। एकदम पकड़ लिया डाक्टर
को कि गर्दन दबा दूंगा तुम्हारी।
वह बोलाः भई, बात क्या हो गई? तुम इतने पागल क्यों हुए जा रहे हो?
उसने कहाः गधे ने पहले फूंक मार दी! आग लगी जा रही है पूरे शरीर में!
अब गधे तो गधे!
मुर्दों के साथ दोस्ती मत करना। कभी कोई शैतान मुर्दा मिल गया और सांस मार दी, तो गए काम से। मुर्दों को कौन जिला पाता है!
और तुम कहते होः "परंपरा में कभी-कभी जान डालनी पड़ती है।"
जान डालने की जरूरत ही क्या है? जो मर गए सो मर गए। जो मर गया सो मर गया। जब परमात्मा ने उसे छोड़ दिया तो तुम क्या जान डाल पाओगे? परंपरा का मतलब यह होता हैः अब लकीर रह गई, सांप तो चला गया। पगचिह्न रह गए रेत पर; यात्री तो जा चुका। अब तुम बैठे उन्हीं पगचिह्नों की पूजा कर रहे हो, फूल लगा रहे हो, ऊदबत्ती लगा रहे हो। करते रहो पूजा। इसमें तुम भी मरोगे। इससे उन पगचिह्नों में प्राण नहीं आ सकते। इससे तुम जड़ हो जाओगे।
मुर्दों से दोस्ती सोच-समझ कर करना, क्योंकि जिससे दोस्ती करोगे वैसे
ही हो जाओगे। इसीलिए तो लोग इतने मुर्दा हो गए हैं। लिए बैठे हैं मुर्दों को। जब जीसस भी तुम्हारे सामने खड़े हों, तब भी तुम अब्राहम की बात करते हो। जब बुद्ध तुम्हारे सामने खड़े हों, तब तुम कृष्ण की बात करते हो। और जब कृष्ण तुम्हारे सामने खड़े होते हैं, तब भी तुम किसी और की बात करते हो। तुम जीवित को देखते ही नहीं। तुम्हारी आंख पीछे की तरफ अटक गई है। तुम चलते आगे की तरफ, देखते पीछे की तरफ। इसलिए तुम्हारे जीवन में दुर्घटनाएं ही दुर्घटनाएं हैं।
जैसे कोई आदमी कार को चलाता हो, देखे पीछे और चलाए... कार तो आगे ही चलेगी। और कार में तो रिवर्स गेयर भी होता है; जिंदगी में वह भी नहीं है। जिंदगी बिल्कुल आगे ही जाती है। उसमें रिवर्स गेयर है ही नहीं। पहली कार जो फोर्ड ने बनाई थी, उसमें नहीं था रिवर्स गेयर। वह बिल्कुल जिंदगी जैसी कार थी। वह तो पीछे समझ में आई। पहली कार बनाई तो उसे ख्याल भी नहीं था रिवर्स गेयर का। वह तो फिर पीछे समझ में आया कि यह तो बड़ी झंझट की बात है। घर लौटना हो तो कई मील का चक्कर लगाओ! तो उसने रिवर्स गेयर डाल दिया। भगवान ने अभी तक रिवर्स गेयर नहीं डाला जिंदगी में। क्योंकि पीछे भगवान लौटना ही नहीं चाहता और लौटने भी नहीं देना चाहता। जो गया सो गया। जो बीता सो बीता। अब उस पर क्या जाना! अब वहां धूल उड़ती रह गई है। आगे है विकास। आगे है गति। आगे है जीवन; पीछे नहीं। परंपरा यानी पीछे। जहां से तुम गुजर गए वहां के दृश्य पकड़े बैठे हो।
और तुम पूछते हो कि "परंपरा में कभी-कभी जान भी डालनी पड़ती है।"
किसलिए? तुम्हारे पास जान जरूरत से ज्यादा है, जो परंपरा में डालने पड़े हो? अपने लायक ही तो जान है नहीं। जान वैसे ही तो कम है। जल भी तो नहीं रही है जान; धुंधिया रही है। लपट भी तो नहीं पकड़ती; धुआं-धुआं निकलता है। पहले अपने में तो जान डाल लो; परंपरा में जान डाल कर क्या करोगे? तुम जीओ। तुम्हारा फूल बने।
तो मैं तुमसे कह दूंः जब भी कोई आदमी जीता है ठीक से तो परंपरा बनती है, निश्चित। क्योंकि दूसरे लोग मूढ़ हैं, इसलिए बन जाती है। नहीं तो बनने की कोई जरूरत नहीं है, कोई कारण नहीं है। मूढ़ता न हो तो परंपरा बनेगी ही नहीं।
तुम जीओ--जाग कर जीओ। प्राण अपने में जगाओ। तुम्हारा फूल खिले। तुम्हारा फूल खिले, औरों को भी खिलने की सुध आए। तुम जब चले जाओगे, अगर लोग नासमझ होंगे, तो वे तुम्हारी याददाश्तों को संजो कर रख लेंगे और उनकी पूजा

करेंगे। और उनकी पूजा के कारण, उस समय जो असली फूल खिल रहे होंगे, उनको न देखेंगे। इस कारण बड़ी हानि हुई है।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूंः तुम्हें जितना लाभ मुझसे लेना हो ले लो; लेकिन मैं जब चला जाऊं तो मुझे चले जाने देना, फिर मुझे पकड़ कर मत बैठे रहना। क्योंकि मुझे पकड़ कर बैठे रहोगे, तो उस समय जो फूल खिले होंगे, वे तुम्हें दिखाई न पड़ेंगे।
आदमी बड़ा अजीब है! जब तक मैं मौजूद हूं, फायदा न लेगा; जब मैं चला जाऊंगा, तब वह पकड़ कर बैठ जाएगा। तब कोई फायदा हो नहीं सकता। जब तुम्हें कोई जीता-जागता हुआ दीया मिल जाए तो करो सत्संग। उसके पास जाओ। उसकी लपट से लपट के राज सीखो। उसकी आंखों से आंखें मिलाओ। उसके शून्य से दोस्ती गांठो। मैत्री का हाथ बढ़ाओ, उसका हाथ पकड़ो। यह बिल्कुल ठीक है। इसका उपयोग करो। इस अवसर का उपयोग करो। यह झरोखा जो खुला है परमात्मा पर, इसमें तुम भी झांक लो--शायद तुम्हें भी चांद-तारे दिख जाएं और उनकी पुकार आ जाए और तुम भी चल पड़ो। लेकिन जब यह आदमी चला जाए तो धन्यवादपूर्वक इसे विस्मरण कर देना। नहीं तो इसकी याद ही तुम्हें अड़चन डालेगी। तब जो दूसरी खिड़कियां खुलेंगी, तुम कहोगेः हम उन खिड़कियों से नहीं देख सकते, हम तो अपनी खिड़की पर बैठे हुए हैं! और यह खिड़की बंद हो चुकी। यह खिड़की गई। यह जब थी तब थी। हम तो अपनी खिड़की पर बैठे हैं। हम तो अपनी परंपरा में जान डाल रहे हैं!
तुम जान अपने में नहीं डाल पाते, परंपरा में क्या डालोगे? और जिस व्यक्ति को स्वयं सत्य मिल गया है, वह परंपरा के सत्यों में क्यों जान डाले? उसके पास जीवन-सत्य है, वही क्यों न दे दे?
तुलसीदास परंपरा में जान डालने की कोशिश करते हैं। सफल तो कोई कभी हो नहीं पाता--हो नहीं सकता। कबीर नई ज्योति जलाते हैं। मीरा नई ज्योति जलाती है। मेरे देखे, कबीर और मीरा और नानक वह करते हैं जो करना चाहिए। तुलसीदास तो ब्राह्मणवाद, पंडितवाद, पुरोहितवाद और हिंदू-अहंकार के परिपोषक हैं। यह परिपोषण इतने ढंग से हुआ है कि अगर तुम पूरी रामायण पढ़ोगे तो तुम जरा हैरान होने लगोगेः इसको धर्मग्रंथ कहना भी कि नहीं कहना! तुम्हें भी दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि तुम्हारी भी धारणाएं वही की वही हैं।
अब जैसे समझो। सीधी-सीधी बातें दिखाई पड़ती हैं। राम के पिता दशरथ लंपट मालूम होते हैं। एक जवान लड़की से शादी कर ली, उसको वचन दे दिया है। उस वचन की पूर्ति के लिए अपने बेटे को अकारण, बिना किसी कारण के, बिना किसी न्यायसंगत कारण के जंगल भेज देते हैं। और यह बेटा चुपचाप इसे स्वीकार कर लेता है, क्योंकि बाप की आज्ञा है। गलत आज्ञा बाप की माननी या नहीं, यह सवाल है। कबीर कहेंगेः आज्ञा गलत हो तो बाप की ही नहीं, बाप के बाप की हो, तो भी नहीं माननी। आज्ञा ठीक हो तो दुश्मन की हो तो भी माननी। बात तो सीधी ऐसी होनी चाहिए। इससे क्या फर्क पड़ता है, किसने दी? यह आदमी गलत है। यह दशरथ कोई ढंग का आदमी नहीं मालूम होता। इसको कोई न्याय-बोध भी नहीं है। इसकी आज्ञा माननी क्यों? सिर्फ इसलिए कि बाप है? मगर परंपरागत जो आदमी है, वह इसका सम्मान करता है, क्योंकि उसकी यह धारणा हैः बाप की आज्ञा हर हालत में माननी है। क्यों? अतीत की आज्ञा हर हालत में माननी है। अनुभवी गलत भी कहे तो भी मानना और गैर-अनुभवी ठीक भी कहे तो भी न मानना। ये परंपरा की आधारशिलाएं हैं। इस पर पूरी रामायण खड़ी है। आधारशिला यह है।
अगर मैं लिखूं तो राम को जंगल नहीं जाने दूंगा। क्यों? कैसे जंगल जाने दूंगा? ये दशरथ चले जाएं और ले जाएं अपनी स्त्री को भी। इनको जंगल जाना हो, मजे से चले जाएं। राम का जंगल जाने के लिए राजी होना गलत के लिए झुकना है। इसको मैं सदधर्म नहीं कहता। इसमें क्रांति नहीं है--नपुंसकता है। मेरे लिए इसमें कोई बड़ी आदर की बात नहीं मालूम होती। इसमें मुझे कोई सम्मान नहीं मालूम होता। हां, अगर बाप ने ठीक बात कही थी तो जरूर माननी थी। मगर बात ठीक और गलत के कारण मानी जानी चाहिए या नहीं मानी जानी चाहिए; लेकिन बाप कोई आधार नहीं बनता है।
यह जो वृत्ति है राम की, यह हिंदुओं को खूब जंची। यह हिंदू पुराणपंथियों को खूब जंची। पुरानी जो मुर्दा, मरने वाली पीढ़ी है, उसको खूब जंची। नई पीढ़ी को जाल में बांध रखने का यह अच्छा उपाय हो गया कि राम जैसे बनो! मगर कोई यह नहीं देख रहा कि राम जैसा बनना दशरथ की गलत मनोदशा को

सहयोग देना है। राम को बगावत करनी चाहिए, राम को विद्रोह करना चाहिए। तो राम की कथा दकियानूसी है। उसमें मूल आधार ही रूढ़िगत है।... रघुकुल रीति सदा चली आई!
कुल की रीति से क्या लेना-देना है? प्रत्येक व्यक्ति के पास अपनी रीति होनी चाहिए। जिसके पास अपनी रीति है, उसी के पास आत्मा है। कुल की रीति में क्या रखा है?
तुम्हारा पड़ोसी तुम्हारे बाप से लड़ रहा हो और तुम देख रहे हो कि तुम्हारे बाप गलत हैं और झूठ बोल रहे हैं--तो तुम्हें किसका साथ देना चाहिए? तुलसीदास कहेंगेः अपने बाप का, क्योंकि वे तुम्हारे बाप हैं। यह भी कोई बात हुई? अगर पड़ोसी का लड़ना ठीक है तो तुम्हें पड़ोसी के साथ खड़े होना चाहिए और बाप से जूझना चाहिए कि आप गलत हो। पक्ष तो सत्य का होना चाहिए, सुंदर का होना चाहिए। यह पक्षपात पिता का होना कारणभूत नहीं हो सकता है जीवन के निर्धारण में। लेकिन इसको हिंदुओं ने खूब सम्मान दिया, मर्यादा पुरुषोत्तम कहा।
राम की पूरी कथा अगर बहुत विचार से तुम देखोगे तो बहुत चकित होओगे। और मैं ऐसा नहीं कहता कि ऐसा हुआ होगा। मगर जिन्होंने कथा लिखी है उन्होंने यही लिखा है। कुछ भी हुआ होगा, उसको आधार बना कर एक रूढ़िगत जड़ परंपरा को थोपने की व्यवस्था की।
राम ने फिर यही सीता के साथ किया--उसे जंगल भेज दिया--जो बाप ने किया था। यह जंगल भेजने की आदत! यह छूटती ही नहीं। फिर हिंदू इसका भी सम्मान करते हैं कि सीता ने ना-नुच न की; वह चुपचाप जंगल चली गई, क्योंकि पति की आज्ञा है! पति परमात्मा! उसकी आज्ञा माननी पड़ेगी! यह जाल है। यह स्त्रियों को फंसाने का जाल है। पति की आज्ञा क्यों? गलत हो तो भी? सीता को इनकार करना चाहिए। यह भी कोई बात हुई कि कोई धोबी कह दे, कि उसकी स्त्री रात भर घर के बाहर रह गई, तो वह कह दे कि मैं कोई राम नहीं हूं कि स्त्री इतने वर्षों तक रावण के घर रह गई और ले आए, अब तू मेरे घर में नहीं रुक सकती! इससे राम को चोट लग गई। चोट ही लगी थी तो सीता को लेकर जंगल चले जाते, दोनों जंगल चले जाते। चोट लगी तो यह कि सीता को जंगल भेज दिया; खुद राजमहल में ही रहे आए। यह भी खूब रहा! कष्ट सीता को मिल रहा है; मर्यादा पुरुषोत्तम वे हो रहे हैं!
मगर स्त्री के साथ व्यवहार ऐसा हुआ है--संपत्ति की तरह--जहां चाहो बिठा दो, जहां चाहो फेंक दो। और गर्भवती स्त्री को भेज दिया, और फिर भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। जरा भी सोच-विचार न किया। राज्य छोड़ देते! राज्य नहीं छूटा। प्रेम-पात्र को छोड़ दिया। लेकिन यह स्त्रियों के लिए शिक्षा है इसमें कि ऐसा स्त्रियों को करना चाहिए। पहले शिक्षा थी कि बेटों को कैसा करना चाहिए; अब शिक्षा आती है कि स्त्रियों को कैसा करना चाहिए-- चुपचाप आज्ञा पति की माननी चाहिए।
सीता को रावण के चंगुल से छुड़ा कर आए तो उसकी अग्नि-परीक्षा ली। इतना भरोसा राम को सीता पर नहीं है! लेकिन सीता ने कुछ नहीं कहा कि महाराज आप भी... । अब मैं जा ही रही हूं अग्नि में, आप भी आ जाइए, दोनों की परीक्षा हो जाए--क्योंकि मैं भी अकेली थी वहां, आप भी यहां अकेले थे।
और शबरी इत्यादि की कहानियां उसको भी तो आई होंगी।
क्योंकि खोजियों का ख्याल है कि शबरी से राम का प्रेम था, उस पर किताबें लिखी गई हैं। बड़ी शोध की गई है। क्योंकि अक्सर जब बहुत प्रेम होता है, इतना प्रेम हो, तभी कोई एक-दूसरे की जूठी चीज खा सकता है, नहीं तो खा नहीं सकता। राम शबरी के जूठे बेर खा गए। यह सिर्फ प्रेमी ही कर सकते हैं; प्रेम में ही चलती हैं ये बातें। ऐसा आधा कौर खा लिया, आधा खिला दिया--ये बहुत प्रेम में ही चलती हैं। तो गहरा प्रेम था, क्या पता!
आखिर सीता भी कह सकती है कि आप भी आ जाइए, संग-साथ अच्छा रहेगा! लेकिन सीता ने अग्नि-परीक्षा के लिए कोई आग्रह नहीं किया।
नहीं, हिंदू यह शिक्षा देना चाहते हैं कि स्त्री की ही परीक्षा ली जा सकती है, पुरुष की नहीं। पुरुष पुरुष है। गलत हो सकती है तो स्त्री; पुरुष कभी गलत नहीं होता। और मर्द बच्चा कुछ भी करे।

यह सब मूढ़ताओं का परिपोषण है। और चूंकि यह परिपोषण पंडित-पुरोहित और समाज के ठेकेदारों को लाभपूर्ण था, इसलिए राम की कथा को खूब प्रचारित किया गया। तुलसी उनके हाथ में एजेंट हैं। मैं उनको कोई महाजन नहीं कहता।

दूसरा प्रश्नः मेरा मन न धन में लगता है, न यश में; लेकिन मैं यह भी नहीं जानता हूं कि मेरा मन कहां लगेगा। आप कुछ कहें।

अच्छा ही है कि मन न धन में लगता, न यश में। यह तड़प की पहली शुरुआत। यह निषेधात्मक धर्म का आरंभ। पहले ऐसा ही होता है कि जिसमें कल तक लगता था उसमें अब नहीं लगता। स्वभावतः एक खालीपन छूट जाता है। कल तक धन में उलझे थे, पद में उलझे थे, दौड़-धूप थी, आपाधापी थी, मन व्यस्त था, लगे थे कहीं; अब अचानक वहां नहीं लगता, तो एक खालीपन आ जाता है--कि अब कहां जाएं? अब क्या करें? अब कहां लगाएं? बेचैनी होती है। उसी बेचैनी से प्रश्न उठा है।
इस बेचैन क्षण का ठीक उपयोग हो सकता है, गलत उपयोग भी हो सकता है। जब
पद में न लगे मन, धन में न लगे मन, तो आदमी या तो शराब पीने लगता है कि अब कहीं मन नहीं लगता, तो अब मन को डुबाओ, भुलाओ; पी लो शराब और भूल जाओ सब दुनिया को थोड़ी देर के लिए, विस्मृत हो जाए सब। वह गलत रास्ता हो जाएगा। दूसरा है--परमात्मा के प्रेम की शराब पीने लगता है। पहली शराब शरीर को भी नष्ट कर देगी, मन को भी नष्ट कर देगी और कहीं ले जाएगी नहीं। दूसरी शराब बेहोश भी करती है, होश भी लाती है। यह घड़ी बड़ी बहुमूल्य है तुम्हारी। अगर पद और धन में मन नहीं लग रहा है तो एक बड़ा अवसर है। इसका उपयोग कर लो। इस क्षण को परमात्मा की खोज बनाओ।
और मन किसी का भी सदा के लिए पद और धन में नहीं लग सकता, क्योंकि मन अंततः तो परमात्मा में ही लग सकता है; उससे छोटे में नहीं लग सकता। मन की आत्यंतिक आकांक्षा परम को पाने की है; क्षुद्र को पाने की नहीं। इसलिए तो क्षुद्र को तुम कितना ही पाओ, तृप्ति नहीं होती। दस हजार थे, तब तृप्ति नहीं; दस लाख हो गए, तब तृप्ति नहीं; दस करोड़ हो गए, तब तृप्ति नहीं। मन कहता हैः नहीं, इससे कुछ भी नहीं होगा। मन कहता हैः जब तक पूरा न मिले... !
मीरा कहती हैः मैंने पूरा वर पाया! मैंने पूरा प्यारा पाया! कबीर कहते हैंः कहै कबीर मैं पूरा पाया!
उस पूरे को पाए बिना तृप्ति नहीं होगी। मन में वह बीज है। मन उसी की जाने-अनजाने तलाश कर रहा है। कभी-कभी गलत दिशाओं में करता है, फिर थक जाता है; समझ आती है, फिर ठीक दिशाओं को खोजने लगता है।
तो तुम्हारे जीवन में एक क्रांति का क्षण आया है। इसका सम्यक उपयोग करो, अन्यथा इससे चूक जा सकते हो। फिर कहीं तो लगाओगे ही मन। कहीं तो भुलाओगे ही। कुछ तो करोगे ही। और नहीं तो फिर बेमन से सरकते रहोगे, बोझ ढोते रहोगे जिंदगी का। जिंदगी में काव्य न रह जाएगा। जिंदगी एक बोझिल बात हो जाएगी--एक उदास घटना हो जाएगी। फिर मौत की प्रतीक्षा ही रहेगी कि कब आए और कब छुटकारा मिले, कब इस झंझट से छूटें।
जीवन झंझट हो जाती है, अगर कोई रस न रहे। पद और धन में रस न रहा अर्थात संसार में रस न रहा, क्योंकि वहां दो ही चीजें हैं--पद और धन; यश और धन। बस वही दो चीजें हैं।
एक चीनी सम्राट अपने महल पर खड़ा था और उसने सागर में चलते बहुत से जहाज देखे। उसने अपने बूढ़े वजीर से पूछाः कितने जहाज चल रहे हैं? कितने होंगे संख्या में, कुछ अंदाज कर सकते हो?
उस बूढ़े वजीर ने कहा कि मेरी आंखें ऐसे कमजोर हो गईं, लेकिन अगर आप मुझसे पूछते हों तो दो ही जहाज हैं।
सम्राट ने कहाः दो! सैकड़ों दिखाई पड़ रहे हैं!
उसने कहाः लेकिन मेरे हिसाब से सिर्फ दो ही हैं। जिंदगी भर का अनुभव
यह कहता है--या तो लोग धन खोजते हैं या लोग यश खोजते हैं। बस ये दो ही जहाज हैं--धन के यात्रियों के जहाज और यश के यात्रियों के जहाज। फिर कितने ही जहाज हों, वह फिर विस्तार की बात है, मगर जहाज दो ही हैं।

अगर ये दोनों जहाज तुम्हें व्यर्थ हुए तो अब परम जहाज को पकड़ो। नानक
ने कहा हैः नानक नाम जहाज। वह जो नाम का जहाज है उसको पकड़ो। अब परमात्मा को पकड़ो।
मुझे दर्दे-दिल की है जुस्तजू, मुझे चश्मे-तर की तलाश है।
मुझे सोजो-साजे-हयात की, गमे-मोतबर की तलाश है।
जिन्हें शौके-जलवाए-बाम हैं, उन्हें हों नसीब बुलंदियां,
मेरा सर जहां से न उठ सके, मुझे ऐसे दर की तलाश है।
जिन्हें बिजलियों की है आरजू, उन्हें शोलगी मिले बर्क की,
मुझे आशियां की है जुस्तजू, मुझे बालो-पर की तलाश है।
जिन्हें जौके-कैफो-सुरूर है, वो गरीक मस्तियो-हाल हों,
मेरे दिल को साकिए-मयकदा, तेरी इक नजर की तलाश है।
है जुनूने-सैरे-फलक जिन्हें, उन्हें राहे-कहकशां मिले,
मुझे तेरे दर की तलाश है, तेरी रहगुजर की तलाश है।
है तलाशे-लालो-गुहर जिन्हें, मिलें उन्हें बहरो-बर की ये दौलतें
मुझे नक्शे-पा की तेरे तलब, तेरे खाके-दर की तलाश है।
जो खुदा के जोया हैं अर्श पर, वो खुदा से जाके हों हमसुखन,
जिसे ढूंढ़ता फिरे खुद खुदा, मुझे उस बशर की तलाश है।
अब तुम्हारी जिंदगी में एक क्रांति का क्षण आया। सौभाग्य का क्षण है यह। इसे अहोभाग्य समझो। अब तुम उसकी खोज में निकलो जिसकी खोज असली खोज है।
मुझे दर्दे-दिल की है जुस्तजू...
अब दिल की पीड़ा खोजो। अब हृदय के प्रेम को खोजो।
... मुझे चश्मे-तर की तलाश है।
अब उस झरने को खोजो जिसे पीकर तृप्ति हो जाती है; जिसे पीकर सब प्यास बुझ जाती है; जिसे पीने के बाद फिर कोई प्यास नहीं बचती; जिसे पा लेने के बाद फिर कुछ पाने को नहीं बचता।
मुझे सोजो-साजे-हयात की, गमे-मोतबर की तलाश है।
अब खोजो उस संगीत को, जहां डूब जाओ, विसर्जित हो जाओ; जहां संगीत ही बचे, तुम न बचो। और वैसा संगीत तुम्हारे भीतर पड़ा है। अब बाहर की खोज खत्म हो गई। अगर धन और यश में रस नहीं रहा, तो अब आंख बंद करो; अब भीतर की यात्रा शुरू हो।
जिन्हें शौके-जलवाए-बाम हैं, उन्हें हों नसीब बुलंदियां,
मेरा सर जहां से न उठ सके, मुझे ऐसे दर की तलाश है।
अब उस घर को खोजो, उस जगह को खोजो जहां एक बार सर झुक गया तो झुक गया, फिर उठ न सके; फिर उठने की कोई जरूरत न रहे; जहां विश्राम है; जहां अंतिम विश्राम आ जाता है, पड़ाव आ जाता है। बहुत रह लिए धर्मशालाओं में, अब घर खोजो।
जिन्हें बिजलियों की है आरजू, उन्हें शोलगी मिले बर्क की,
मुझे आशियां की है जुस्तजू, मुझे बालो-पर की तलाश है।
अब पंख खोजो, जो तुम्हें उड़ा कर ले चलें अनंत की तरफ। बहुत सरक लिए जमीन पर, क्षुद्र में बहुत ज्यादा भटक लिए--अब विराट को खोजो।
जिन्हें जौके-कैफो-सुरूर है, वो गरीक मस्तियो-हाल हों,
मेरे दिल को साकिए-मयकदा, तेरी इक नजर की तलाश है।
अब उस आंख को खोजो जिस आंख में एक दफा झांक लेने पर अमृत बरस जाता है; जहां से ऐसी शराब मिलती है कि उसमें जो डोला सो डोला, डोलता ही रहा--समय के बाहर, सारी परिस्थितियों से मुक्त होकर; जहां होश भी है और जहां बेहोशी भी है; जहां दोनों साथ-साथ हैं; जहां बेहोशी का आनंद पूर्ण है और जहां होश का आनंद भी पूर्ण है।
मेरे दिल को साकिए-मयकदा, तेरी इक नजर की तलाश है।
वह परमात्मा की एक आंख भर तुम्हें मिल जाए। और वह आंख दूर भी नहीं। और
वह आंख तुम्हें खोज रही है। मगर तुम उस आंख से आंख नहीं मिलाते। तुम आंख बचाते हो।
है जुनूने-सैरे-फलक जिन्हें, उन्हें राहे-कहकशां मिले,
मुझे तेरे दर की तलाश है, तेरी रहगुजर की तलाश है।

अब परमात्मा के द्वार की, अब परमात्मा के मार्ग की चिंता करो। और तुमने अगर चिंता की तो एक अपूर्व घटना भी घटती है।
है तलाशे-लालो-गुहर जिन्हें, मिलें उन्हें बहरो-बर की ये दौलतें,
मुझे नक्शे-पा की तेरे तलब, तेरे खाके-दर की तलाश है।
मुझे तेरे पगचिह्नों की, तेरे द्वार पर पड़ी धूल की... वही मेरा स्वर्ण है, वही मेरी संपदा है।
जो खुदा के जोया हैं अर्श पर, वो खुदा से जाके हों हमसुखन,
जिसे ढूंढ़ता फिरे खुद खुदा, मुझे उस बशर की तलाश है।
और मुझे ऐसी पात्रता दो कि अगर मैं तुम्हें न खोज पाऊं तो तुम मुझे खोज लो। मुझे ऐसा निर्दोष भाव दो, मुझे ऐसी अ-मनी दशा दो, मुझे ऐसी समाधि दो, कि शायद मैं तुम्हें न खोज पाऊं। मेरे हाथ छोटे हैं। मेरे पैर छोटे हैं। मेरी तुमसे कोई पहचान भी नहीं। तुम्हें खोजूंगा भी तो कहां खोजूंगा? मुझे तुम्हारा पता-ठिकाना भी मालूम नहीं है। चलूंगा भी तो किस तरफ चलूंगा? मुझे ऐसी क्षमता दो कि अगर मैं तुम्हें न खोज पाऊं तो तुम तो कम से कम मुझे खोज लो।
भक्त जानता है कि मेरी अपात्रता गहन है, मैं कैसे खोज पाऊंगा! इसलिए भक्त कहता हैः तुम्हीं मुझे खोज लो।
मगर जिस दिन तुम्हारी प्यास पूरी है और तुम्हारी पुकार पूरी है और तुम्हारे पूरे प्राणों में एक ही धुन रह गई है, एक ही धुन बजती है--उस प्यारे की--उस दिन वह तुम्हें जरूर खोजता हुआ आ जाता है।
तुम पूछते होः "मेरा मन न धन में लगता है, न यश में।"
शुभ है। शुभ घड़ी है। तुम सौभाग्यशाली हो। बहुत कम लोग इतने सौभाग्यशाली होते हैं।
"लेकिन मैं यह भी नहीं जानता हूं कि मेरा मन कहां लगेगा।"
मैं जानता हूं कि कहां लगेगा। क्योंकि वही एक जगह है जहां सभी का मन लगने वाला है। देर-अबेर, आज नहीं कल; कल नहीं परसों; इस जनम में नहीं, अगले जनम में; अगले जनम में नहीं तो और अगले जनम में--मगर एक ही जगह है जहां मन लग सकता है। और कहीं से भी नहीं शांति मिलेगी। हां, थोड़ी-बहुत देर को भुला लो, भटका लो, समझा लो--और बात है। किसी की देह के सौंदर्य में थोड़ी देर भटक सकते हो, धन की खुशी में थोड़ी देर भूल सकते हो, पद की प्रतिष्ठा में थोड़ी देर के लिए मजा आ जाए--मगर बस यह सब क्षणभंगुर है। ये पानी के बबूले हैं; बन भी नहीं पाते और मिट जाते हैं। इनमें मन लगे तो लगे कैसे? इनमें मन लगता ही नहीं।
और यह अच्छा है कि परमात्मा ने ऐसी व्यवस्था की है कि हमारा मन इनमें
लग नहीं पाता। अगर लग जाता तो परमात्मा की खोज ही नहीं हो सकती थी। परमात्मा ने तुम्हें पूरा तैयार करके भेजा है। उसके लिए तैयार करके भेजा है। तुम्हें एक ऐसी आकांक्षा दी है कि इस जगत में कोई चीज उसे तृप्त नहीं कर पाएगी, ताकि अंततः तुम भटक कर खोजते-खोजते असली दरवाजे पर पहुंच जाओ। अब उसी गुरुद्वारे की पुकार आई है। अब उठो, साहस करो और चलो।

तीसरा प्रश्नः मैं जो पा रहा हूं, उसे अपने प्रियजनों को भी देना चाहता हूं, लेकिन कोई लेने को तैयार नहीं है।

ऐसी अड़चन आती है। मैं ही दे रहा हूं, तुम लेने को तैयार हो? कौन लेने
को तैयार है! लेना महंगा धंधा है। यह लेना सस्ती बात नहीं है। क्योंकि लेने में सिर्फ लेना ही होता तो कोई भी ले लेता, लेने में कुछ गंवाना भी पड़ता है। और जो गंवाना पड़ता है, उसे लोग जकड़े हुए हैं, जोर से पकड़े हुए हैं। बामुश्किल उसे पाया है। जब तुम किसी से कहते होः ले लो, परमात्मा ले लो! वह कहता हैः भाई, क्षमा भी करो। अभी बामुश्किल तो मकान बनाया है; अभी बामुश्किल दुकान जमाई है; अभी बामुश्किल थोड़ा धन इकट्ठा किया है; बैंक में अभी-अभी तो खाता खुला है--अभी तुम जरा रुको, अभी नहीं। लेंगे, अभी तो जिंदगी है, अभी जवान हैं। अभी तुम कहां की बेसुरी बात उठा दिए! परमात्मा--यह तो बूढ़ों की बात है; यह तो जब आदमी मरने लगता है तब स्मरण कर लेता है। अभी हम कहां लेंगे!

परमात्मा की बात लोग सुनना भी नहीं चाहते। नहीं सुनना चाहते इसलिए कि
वह सौदा महंगा है; वह खतरनाक मामला है। वह बात कहीं कान में पड़ जाए तो फिर कुछ करना पड़ेगा। फिर तुम ऐसे ही बैठे न रह जाओगे; फिर तुम्हें कुछ बदलाहट करनी होगी। वह परमात्मा का नाम भी तुम्हारे भीतर गूंजने लगे तो तुम्हारी जिंदगी में क्रांति होनी शुरू हो जाएगी; तुम्हें पता भी न चलेगा। तुम्हें पता भी न चलेगा कब क्रांति होने लगी।
कल ही काठमांडू से आए एक मित्र ने संन्यास लिया। उन्हें नाम मैंने दियाः भरतयोगी। वे पूछने लगे कि अब मैं क्या करूं? कैसे अपनी जीवन-शैली बदलूं? विचारशील व्यक्ति हैं।
मैंने उनसे कहाः तुम जीवन-शैली बदलने की फिकर ही मत करो, तुम सिर्फ ध्यान में लगो। तुम सिर्फ ध्यान में मस्त होओ। वही मस्ती सारी जीवन-शैली को बदल देगी।
जीसस ने कहा हैः सीक यी फर्स्ट दि किंग्डम ऑफ गॉड, देन ऑल एल्स शैल बी ऐडेड अनटू यू। पहले खोजो प्रभु का राज्य, फिर सब अपने आप आ जाएगा।
तो न तो मैं तुमसे कहता हूं कि आचरण बदलो। क्योंकि मैं जानता हूं, तुम आचरण कैसे बदलोगे? धन की खोज जारी है, तुम आचरण कैसे बदलोगे? धन चोरी से मिलता है, बेईमानी से मिलता है। धन की खोज जारी है और तुम आचरण बदलना चाहते हो। आचरण बदलोगे तो धन न मिलेगा। धन पाना चाहते हो तो आचरण कैसे बदलोगे? ज्यादा से ज्यादा पाखंड कर सकते हो, ऊपर-ऊपर दिखाने लगो कि सज्जन हो गए और भीतर-भीतर सब चलता रहे। मुख में राम, बगल में छुरी--ऐसा हो जाएगा। यही तो हुआ है तथाकथित धार्मिकों के जीवन में।
पद की खोज चल रही है। सत्ता चाहते हो। कैसे दिल्ली पहुंच जाएं, इसका नशा चढ़ा है। अब तुमसे मैं कहूं कि आचरण बदल लो। तुम कहोगेः अभी जरा ठहरो। एक दफे पद पर पहुंच जाऊं, फिर बदल लूंगा। मगर पहले पद पर तो पहुंच जाने दो। नहीं तो गए काम से! आचरण बदला तो पद पर कैसे पहुंचेंगे? वहां तो धक्कमधुक्का करोगे तो ही पहुंच सकोगे। वहां सज्जन तो पहुंच ही नहीं पाते। वहां तो जो हर हालत में पहुंचने के लिए पागल हैं; जो सिर देकर घुस जाते हैं; कुछ भी हो, मगर पहुंच कर ही रहना है। वहां तो जो सबसे ज्यादा पागल हैं, वे पहुंच पाते हैं। वहां जिनमें थोड़ी-बहुत समझ-बूझ है, वे नहीं पहुंच पाते। कैसे पहुंचेंगे? क्योंकि समझ-बूझ ही बाधा बन जाती है। वे देखते हैं सारी व्यर्थता; इतना उपद्रव, इसमें सार क्या है! वे किनारे पर ही खड़े रह जाते हैं। मूढ़ सिर देकर घुस जाते हैं।
राजधानियों में विक्षिप्त ही पहुंच पाते हैं। जिनमें थोड़ी सोच-समझ है, वे तो कभी रास्ते के किनारे खड़े हो जाएंगे। वे कहेंगेः भाई जाओ, जिनको जाना है जाओ, मुझे छोड़ो, मुझे बख्शो। क्योंकि वहां सिवाय मार-पिटाई के और कुछ भी नहीं है; सिवाय खींचातानी के कुछ भी नहीं है। पद पर बैठो तो लोग तुम्हारी टांगें खींच रहे हैं। पद पर न बैठो तो तुम दूसरों की टांगें खींच रहे हो। मगर खिंचा-खिंचाई जारी रहती है। इसमें कोई फर्क पड़ता ही नहीं। सच तो यह है कि पद पर बैठ कर जितनी मुश्किल हो जाती है उतनी पद पर बैठने के पहले कभी भी नहीं थी। न हो तो तुम मोरारजी भाई से पूछ लो। पद पर जब तक नहीं हो, तब तक ठीक है, धक्कमधुक्की कर रहे हो, ठीक है। कुछ खोने को तो है नहीं। मिलेगा कुछ तो मिल जाएगा; नहीं मिला तो कुछ खोने को तो है नहीं। लेकिन एक दफे पद पर पहुंच गए, फिर अड़चन होती है; अब खोने का डर पैदा होता है। क्योंकि अब खींच रहे हैं लोग। और ऐसा नहीं है कि दुश्मन खींचते हैं; दुश्मन तो दूर हैं, वे जो मित्र, जो पास हैं, वे ही असली खींचतान करते हैं। एक तरफ जगजीवनराम खींचेंगे, एक तरफ चरणसिंह खींचेंगे। क्योंकि वे करीब हैं, कुर्सी के इतने करीब हैं कि वे क्यों न बैठें? ऊपर-ऊपर दोस्ती चलती है, भीतर-भीतर दुश्मनी चलती है। राजनीति में, कहते हैं, कोई किसी का दोस्त नहीं होता। राजनीति में कोई किसी का दोस्त हो ही नहीं सकता। वहां दोस्ती संभव ही नहीं है। वहां तो सब दुश्मन हैं। जिनको दोस्त कहो, वे भी दुश्मन हैं। जिनको दुश्मन कहो, वे तो हैं ही। वहां हर आदमी अपने अहंकार की तृप्ति में लगा है, दोस्ती हो कैसे सकती है?
तो जो पद की तरफ भाग रहा है उससे कहो कि तुम अपना आचरण ठीक कर लो। वह कहेगाः आप कहां की बातें कर रहे हो! मेरी जिंदगी की यात्रा खराब करवा

देंगे! क्योंकि आचरण ठीक हुआ कि फिर यह यात्रा नहीं हो सकती। दुराचरण गति है राजनीति में। वहां जितना क्रूर, जितना कठोर, जितना दुष्ट, जितना हिंसक, जितना आक्रामक चित्त हो--उतनी ही आसानी है। शांत आदमी तो दूर खड़ा रह जाएगा। गुबार उड़ती रह जाएगी, कारवां निकल जाएगा। शांत आदमी पहुंच ही नहीं पाएगा उस भीड़-भड़क्के में।
तो मैं तुमसे न तो कहता आचरण बदलने को, क्योंकि मैं तुम्हें जानता हूं
कि तुम यह न कर सकोगे। मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम पद छोड़ दो, धन छोड़ दो; क्योंकि यह तुमसे बहुत जरूरत से ज्यादा मांगना हो जाएगा। मैं तुम्हें कुछ और ही बात कहता हूं। मैं कहता हूंः तुम ध्यान में डुबकी लो, थोड़ा ध्यान का स्वाद लो। ध्यान का स्वाद आए तो धन का स्वाद फीका हो जाता है। ध्यान का स्वाद आए तो पद का स्वाद फीका हो जाता है। इधर ध्यान का स्वाद बढ़ने लगता है, उधर पुराने स्वाद फीके होने लगते हैं। और जब पुराने स्वाद फीके होने लगते हैं तो पुराने स्वादों के कारण जो आचरण था वह अपने आप खंडहर होने लगता है। उसे बदलना नहीं पड़ता। यह रसायन है आध्यात्मिक जीवन का। यह उसका सार-विज्ञान है।
तो तुम जो पा रहे हो उसे तुम एकदम से दूसरों को देना चाहोगे, वे लेने
को राजी न होंगे। अभी उनको उस तरह की संपत्ति चाहिए ही नहीं। इसलिए अकारण चेष्टा न करना। नहीं तो लोग तुमसे ऊबेंगे। लोग तुमसे बचने लगेंगे। तुम्हें देख लेंगे तो दूसरी गली में निकल जाएंगे जल्दी से कि यह भैया आ रहा है! यह कुछ ज्ञान देगा। अभी हमको ज्ञान चाहिए नहीं।
नहीं, इस तरह तुम सलाह बिना मांगी देना भी मत। तुम आनंदित होओ। बजाय इसके कि तुम उपदेश दो, आनंदित होओ। तुम्हारा आनंद ही तुम्हारा उपदेश बनेगा। शांत हो जाओ, मग्न हो जाओ।
पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे।
नाचो! हां, जिसको तुम्हारा नाच रुच जाएगा, वह आकर तुमसे पूछेगा कि ऐसा नाच का ढंग मुझे भी... । ऐसा नाच मेरे जीवन में कैसे हो सकेगा? यह शांति तुम्हें कहां मिली? ये तुम्हारी आंखें मानसरोवर जैसी झील कहां बनीं? यह तुम्हारा हृदय, कहां पाया? मुझे भी उस खदान के पास ले चलो। या मुझे भी वह राह बता दो। मुझे भी इशारा दे दो। मुझे भी नक्शा दे दो।
जब कोई आकर तुमसे पूछे तो देना, नहीं तो मत देना। बिना मांगी सलाह देना व्यर्थ है, कोई लेता नहीं। हां, कोई मांगता हो तो जरूर देना। तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। जब आनंद मिलना शुरू होता है तो बंटना चाहता है। और जो तुमसे मांगने आए, यह भी जरूरी नहीं है कि वह तुम्हारी माने ही। क्योंकि हो सकता है तुम्हारे आनंद को देख कर लोभ में पड़ गया हो और पूछे कि कहां मिला? लेकिन जब देखे कि लंबा मार्ग है, पहाड़ों की यात्रा है, चढ़ाई है और बहुत कुछ दांव पर लगाना होगा--तो कहेगा कि धन्यवाद, आपने सलाह दी, बात ठीक है, कभी जरूरत होगी तो उपयोग कर लूंगा। तो दुखी मत हो जाना।
इस दुनिया में हजार में से नौ सौ निन्यानबे तो पूछेंगे ही नहीं, क्योंकि वे ऐसी झंझटों में पड़ना ही नहीं चाहते। वे बच कर निकल जाते हैं। वह जो एक पूछेगा, वह भी मानेगा या नहीं मानेगा, यह पक्का नहीं है। तुम उंडेल देना अपना हृदय उस पर, लेकिन यह अपेक्षा मत रखना कि वह माने। नहीं तो तुम अकारण दुखी होओगे।
और दूसरे को सुख देने गए और खुद दुखी हो गए--तो बात ही खराब हो गई। चिकित्सा करने गए थे और खुद बीमार पड़ गए, ऐसी झंझट में न पड़ना। अपेक्षा मत रखना। अपेक्षा रखना ही मत। कोई माने, उसकी मर्जी; न माने, उसकी मर्जी। मान ले तो ऐसा मत सोचना कि मैंने कोई बड़ा काम किया। नहीं तो उससे अहंकार मजबूत होने लगेगा। न माने तो यह मत सोचना कि उसने तुम्हें दुत्कार दिया। इसकी तुम फिकर ही मत करना। तुम तो एक फूल की तरह खिलना। कोई सुवास ले ले, ठीक; कोई न ले, ठीक। कोई राह से गुजरे, ठीक; कोई न गुजरे तो ठीक। फूल कहां फिकर करता है! फूल अपनी सुवास बांटता रहता है। ले ले, उसकी मर्जी; न ले, उसकी मर्जी। जो ले उसका धन्यवाद, जो न ले उसका धन्यवाद।
मेरी निगाह में हुशियार हैं वो दीवाने
जो जानबूझ के खुद ही बने हैं अनजाने

ये शहरवाले भला उनकी शान क्या जानें जो बस्तियों को भी शर्मा रहे हैं वीराने वो वक्फ रखते हैं अपने लिए ही राजे-हयात जो लौ का जुज्ब कभी बन सके न परवाने तेरी नजर से जो देखा तो कोई गैर न था
मेरी नजर में तो अपने थे और बेगाने
यही थी तेरी रजा इक सदा लगा के चले
अब इससे क्या मेरी कोई माने या न माने
कोई भी आज हमें पूछता नहीं, इक दिन
जबाने-खल्क पे होंगे हमारे अफसाने
तुम फिकर न करना। अगर परमात्मा ने तुम्हें भीतर से आवाज दी कि दे दो इसे, जो तुम्हें मिला है उसकी इसे खबर दे दो, और यह आदमी तुम्हारे द्वार पर पूछने आया है--तो ठीक।
यही थी तेरी रजा इक सदा लगा के चले
अब इससे क्या मेरी कोई माने या न माने
कोई माने न माने, इस चिंता में जरा भी न पड़ना। नहीं तो दूसरे को तो दे
ही न पाओगे; खुद जो पाया है वह भी खो जा सकता है।

आखिरी प्रश्नः आप जैसे महान दाता के सामने होते हुए भी मेरा भिक्षापात्र क्यों नहीं भरता है?

भिक्षापात्र कभी भरता ही नहीं। तुम भिखारी की तरह मेरे पास आओ ही नहीं। यहां सम्राटों का काम है। भिक्षापात्र फेंको। मैं थोड़े ही तुम्हें कुछ दे रहा हूं। तुम्हारे भीतर जो पड़ा है, उसको जगाना है; भिक्षापात्र की कोई जरूरत नहीं। भिक्षापात्र तो तब होता है, जब दूसरे से कुछ लेना हो। मैं तो जो तुम्हारे पास है, वही तुम्हें दे रहा हूं; और तुम्हारे पास जो नहीं है, वही तुमसे ले रहा हूं। तुम्हारे पास जो कूड़ा-कर्कट तुमने इकट्ठा कर लिया है, जो वस्तुतः तुम्हारी संपत्ति नहीं है, वह छीन रहा हूं। और तुम्हें वही दे रहा हूं जो हीरा तुम्हारे भीतर पड़ा है। मैं तुम्हें कुछ अलग से नहीं दे रहा हूं। मैं कुछ तुम्हें अपने भीतर से नहीं दे रहा हूं। तुम्हारी ही तुम्हें याद दिला रहा हूं।
तो अगर भिक्षापात्र लेकर आओगे तो खाली रह जाओगे, क्योंकि बात ही गलत
हो गई। यहां काम सम्राटों का है। यहां मांगने मत आओ, यहां जागने आओ। मांग की बात ही गलत है। अपने को भिखारी मान लेने में ही भूल हो जाती है। वही तो तुमने संसार में किया, अपने को भिखारी समझा--कभी धन मांगा, कभी पद मांगा, कभी यश मांगा--वहां भी भीख मांगते रहे; अब यहां भी आ गए, मगर भिक्षापात्र साथ ही ले आए।
यह भीख मांगने की आदत छोड़ो। परमात्मा यहां किसी को भिखारी बना कर भेजता ही नहीं। परमात्मा सम्राट से कम किसी को बनाता ही नहीं। यहां सभी को सम्राट की तरह भेजता है; फिर तुम अपनी भूल से भिखारी हो जाओ, यह तुम्हारी मर्जी। भिक्षापात्र तोड़ो! जला डालो! भिक्षापात्र कभी किसी का नहीं भरा है। क्योंकि भिखारी का मन ही नहीं भर सकता। वह भिखारी के मन की क्षमता नहीं।
एक भिखारी ने एक सम्राट के द्वार पर दस्तक दी थी--भिक्षापात्र सामने
कर दिया था। सम्राट ने कहाः क्या चाहते हो?
भिखारी ने कहाः कुछ भी दें, चलेगा। एक शर्त हैः मेरा पूरा पात्र भर दें।
सम्राट ने कहाः यह भी कोई शर्त हुई? तू किसके सामने खड़ा है, यह तुझे पता है? तू सम्राट के सामने खड़ा है। किस चीज से भर दूं?
भिखारी ने कहाः कूड़े-कर्कट से भी भरो, चलेगा, लेकिन भर दो। खाली-खाली
से बहुत तंग आ गया हूं। भरता ही नहीं।
सम्राट भी मौज में था। और इस भिखारी ने बड़ी चुनौती दे दी। और यह आदमी कुछ अजीब मालूम होता था। आंख में इसके कुछ पलट थी। देह में इसके कुछ ज्योति थी। साधारण भिखारी नहीं मालूम होता था। असल में सम्राट थोड़ा फीका

लग रहा था। उसने अपने वजीरों को कहा कि लाओ, हीरे-जवाहरातों से इसका पात्र भरो। मुझे कभी किसी ने यह चुनौती दी भी न थी।
हीरे-जवाहरातों से पात्र भरा जाने लगा, तब सम्राट समझा कि चूक हो गई।
वह पात्र भरे ही न। हीरे-जवाहरात उसमें गिरें और खो जाएं। वह खाली का खाली रहे। मगर सम्राट भी जिद्दी था। उसने कहाः चाहे सारा खजाना खाली हो जाए, चाहे मेरी सारी संपदा, सारा राज्य चला जाए, मगर इसका पात्र भरना है। मैं सम्राटों से नहीं हारा, आज भिखारी से नहीं हारूंगा।
मगर जो सम्राटों से नहीं हारा था, सांझ होते-होते भिखारी से हार जाना पड़ा। सारे खजाने खाली हो गए। भिक्षापात्र खाली का खाली था। सम्राट उस भिखारी के पैर में पड़ गया। उसने कहाः मुझे शक पहले ही हुआ था। जब मैंने तेरी आंखें देखी थीं और तेरी ज्योति देखी थी, तब भी मैं थोड़ा डरा था। उसी से चुनौती भी ले ली थी कि तुझे नीचा दिखाना है। मगर मुझे क्षमा कर। इतना ही कह दे कि इस तेरे भिक्षापात्र का राज क्या है? यह तो जादुई मालूम होता है। हम भर-भर कर थके जा रहे हैं, इसमें कुछ पता ही नहीं चलता; यह खोता जाता है। वह फकीर हंसा। उसने कहाः यह भिक्षापात्र साधारण भिक्षापात्र नहीं है। जादू इसमें कुछ नहीं है। इसे मैंने आदमी के भिखारी-मन से बनाया है। यह आदमी का भिखारी-मन है। यह कभी नहीं भरता। यह सिकंदर का नहीं भरता। यह नेपोलियन का नहीं भरता। यह रॉकफेलर का नहीं भरता। यह बिरला का नहीं भरता। यह किसी का नहीं भरता। यह भरता ही नहीं। भरना इसका लक्षण नहीं है।
तुम मेरे पास आओ--भिखारी होकर न आओ। मैं तुम्हारा भिक्षापात्र नहीं भरूंगा। मैं उस सम्राट जैसा नासमझ नहीं हूं। तुम मुझे चुनौती भी दो तो भी नहीं।
पूछने वाले का इरादा यही है। पूछता हैः "आप जैसे महान दाता... !"
मुझको फुसलाने की कोशिश चल रही है। इस तरह की बात यहां काम नहीं आएगी। मैं दाता हूं ही नहीं। यहां देने का सवाल नहीं है, तुम्हारे पास पड़ा है, सिर्फ तुम्हें याद दिलानी है। मैं तुम्हें याद दिलाने की क्षमता दे सकता हूं; स्मरण दिला सकता हूं। सुधि आ जाए, सुरति आ जाए--बस हो गई बात। मगर जो तुम पाओगे वह तुम्हारा है; वह किसी और का नहीं है।
तो तुम कहते होः "आप जैसे महान दाता के सामने होते हुए भी मेरा भिक्षापात्र क्यों नहीं भरता है?"
तुम भिखारी हो, तो तुम्हारा भिखारीपन मुझे दाता बनाने की चेष्टा में लगा है। मैं चाहता हूंः तुम्हारा भिखारीपन छूट जाए। और तुम चाहते होः मैं दाता हो जाऊं।
मैं दाता नहीं हूं। दाता होने की बात ही मूढ़तापूर्ण है। तुम सब परमात्मा के रूप हो। तुम्हारे पास कमी क्या है जो तुम किसी से मांगो या किसी को दाता कहो? न यहां कोई दाता है, न यहां कोई भिखारी है; यहां एक ही है। जो तुममें बैठा है, वही मुझमें बैठा है। तुम मुझे धोखा न दे पाओगे। तुम्हारी चुनौतियां यहां कुछ काम न करेंगी।
यह पूछा है कुसुम ने। होशियार है बहुत। वह सोचती है, इस तरह शायद मैं उसका पात्र भर दूं।
पात्र जब तक तेरे हाथ में है कुसुम, तब तक तू न भर सकेगी। तू पात्र फेंक दे। पात्र के फेंकते ही पता चलेगा कि भीतर तो सब भरा ही हुआ है। यह पात्र पर नजर अटकी है, यही उलझन है।
जहाने-शौक की नाकामी-ओ-तहीदस्ती,
हमारी कमनजरी के सिवा कुछ और नहीं।
यह हमारा खाली हाथ हमारी दृष्टि की कमी है, और कुछ भी नहीं।
जहाने-शौक की नाकामी-ओ-तहीदस्ती,
यह हमारा खाली होना, खाली हाथ--
हमारी कमनजरी के सिवा कुछ और नहीं।
ये दर्दे-हिज्र, ये बेचारगी, ये महरूमी,
दुआ की बेअसरी के सिवा कुछ और नहीं।
हमारी प्रार्थना कमजोर है, इसलिए हमें मांगना पड़ता है। प्रार्थना मांग नहीं है, ध्यान रखना। जिस प्रार्थना में मांग है, वह कमजोर है।
प्रार्थना तो सिर्फ अहोभाव है; आनंद-भाव है। प्रार्थना धन्यवाद है--इस बात

का कि परमात्मा ने जितना दिया, वह जरूरत से ज्यादा है; पहले ही जरूरत से ज्यादा है। उसने पहले ही इतना दिया है कि जो चुक न सके। उसने न चुकने वाला दिया है।
ये दर्दे-हिज्र, ये बेचारगी, ये महरूमी,
यह हमारा दुख, यह हमारी कमजोरी, यह हमारी असहाय अवस्था--
दुआ की बेअसरी के सिवा कुछ और नहीं।
हमें प्रार्थना करनी नहीं आई अभी तक, इसीलिए।
गुरूरे-इल्मो-हुनर फख्रे-अक्लो-दानिशो-फन,
जहूरे-बेखबरी के सिवा कुछ और नहीं।
और हमारा तथाकथित ज्ञान, पांडित्य हमारी गहरी अज्ञानता के सिवा कुछ
और नहीं। क्योंकि हम ज्ञान को पकड़ने चलते हैं--इसी आशा में कि हमने मान रखा है कि हम अज्ञानी हैं; ज्ञान को पकड़ लेंगे तो ज्ञानी हो जाएंगे। हम सोचते हैं कि खूब शब्द इकट्ठे कर लेंगे तो ज्ञानी हो जाएंगे; सिक्के इकट्ठे कर लेंगे तो धनी हो जाएंगे; पुण्य इकट्ठा कर लेंगे तो पुण्यात्मा हो जाएंगे। नहीं, यह धारणा गलत है। तुम पुण्यात्मा हो; इकट्ठा करना बंद करो। तुम ज्ञानी हो; ज्ञान इकट्ठा करना बंद करो। तुम धनी हो; तुम धन की मांग बंद करो। तुम सारी मांग छोड़ कर एक बार अपने को देख तो लो! एक बार, सिर्फ एक बार अपने पर नजर तो डाल लो! और सब हो जाएगा।
हिजाबे-रंगे-खुदी हो कि बेखुदी का जमाल,
बशर की दीदावरी के सिवा कुछ और नहीं।
या तो इस दुनिया का सारा रंग-बिरंगापन, ये फूल, ये पत्ते, ये चांद-तारे,
यह सारे जगत का सौंदर्य--वह जो मीरा कहती है कि राणा, तेरा देश बड़ा प्यारा-- रंगरूड़ो देशलड़ो--तेरा देशलड़ा बहुत रंगरूड़ा, बड़ा रंगीन, लेकिन तेरे देश में साध नहीं, साधु नहीं, इसलिए मेरा मन नहीं रमता, मुझे नहीं भाता, कुछ कमी है। तो चाहे बाहर का रंग, यह बाहर का सौंदर्य हो और चाहे तुम्हारे भीतर जब शांति और आनंद के फूल खिलते हों, वे हों, अंतिम निष्कर्ष में... हिजाबे-रंगे-खुदी हो कि बेखुदी का जमाल,
इस दुनिया का सौंदर्य हो या कि आत्म-विस्मृत जब तुम हो गए हो, समाधि में खो गए हो, तब का जमाल हो...
बशर की दीदावरी के सिवा कुछ और नहीं।
सब आंख का ही खेल है। बस आंख चाहिए। जिसके पास बाहर ठीक से आंख, देखने
की क्षमता है, वह परम सौंदर्य को देख लेता है। जिसके भीतर देखने की क्षमता है, वह भीतर परम सौंदर्य को देख लेता है। असली बात आंख की है। असली बात दृष्टि की है।
तुम भिखारी नहीं हो। और यही मेरे संन्यास का संदेश है कि तुम भिखारी नहीं हो। तुम मालिक हो। तुम साहिब हो।
इस वचन को याद में रखनाः

वो नगमा जो हुआ तखलीक कोहसारों में
जवां हुआ जो हिमाला के पाकगारों में
लतीफ जिसका तरन्नुम है आबशारों में
रवां-दवां है जो गंगो-जमन के धारों में जगाओ नगमाए-संन्यास को ओम तत्सत ओम्

जिसे जहान की अलाइशें न छू सकें जनो-पिसर की कोई बंदिशें न छू सकें जमानो-जर की जिसे ख्वाहिशें न छू सकें हसूले-मरतबा की काविशें न छू सकें
वो पाक नगमाए-संन्यास ओम तत्सत ओम्

बस एक ओम को अपनाओ ओम तत्सत ओम्
बस ओम में ही समा जाओ ओम तत्सत ओम् तुम अपनी अस्ले-खुदी पाओ ओम तत्सत ओम् जनम-मरन से निकल जाओ ओम तत्सत ओम्

लगाओ नाराए-संन्यास ओम तत्सत ओम्

संन्यास तुम्हें भिखारी बनाने को नहीं। इसलिए बुद्ध का प्यारा शब्द भिक्षु मैंने नहीं चुना संन्यासी के लिए--स्वामी चुना। भिक्षु भी प्यारा शब्द है, लेकिन भिखारी से मेल खाता है। तो कहीं भ्रांति न हो, इसलिए स्वामी चुना।
स्वामी तुम हो। मालिक तुम हो। सम्राट तुम हो। साहिब तुम हो।
तोड़ो भिक्षापात्र। आग लगा दो भिक्षापात्रों में। मांगना बंद करो--और तुम पाओगे कि जो भी तुम चाहते थे, वह सदा से मिला हुआ है।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
ग्यारहवां प्रवचन

भक्तिः एक विराट प्यास

म्हारो जनम-मरण को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊंची चढ़-चढ़ पंथ निहारूं, रोवै अंखियां राती।
यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती।
दोउ कर जोड़यां अरज करत हूं, सुण लीजो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूं मदमातो हाथी।
सतगुरु हस्त धरयो सिर ऊपर, अंकुस दे समझाती।
पल-पल तेरा रूप निहारूं, हरि चरणां चित राती।

मोहे लागी लगन गुरु चरनन की।
चरन बिना कछुवै नहिं भावै, जग माया सब सपनन की।
भवसागर सब सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहे तरनन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आस वही गुरु सरनन की।

होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति ब्रजनारी।
चंदन केसर छिड़कत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
भरि-भरि मूठि गुलाल लाल चहुं देत सबन पै डारी।
छैल-छबीले नवल कान्ह संग, स्यामा प्राण प्यारी।
गावत चार धमार राग तंह दै दै कल करतारी।
फागु जु खेलत रसिक सांवरो, बाढ़यो ब्रज रस भारी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मोहन लाल बिहारी।

हां, छलकती हुई शराब आए
जोश में फिर मेरा शबाब आए
फिर थिरकते हुए उठें नगमे
हाथ में इश्क का रुबाब आए
हर तरफ से निगाहे-शौक को आज
इक शिगुफ्ता हसीं जवाब आए
भक्ति है नाचता हुआ धर्म। और धर्म नाचता हुआ न हो तो धर्म ही नहीं। इसलिए भक्ति ही मौलिक धर्म है--आधारभूत।
धर्म जीता है--भक्ति की धड़कन से। जिस दिन भक्ति खो जाती है उस दिन धर्म
खो जाता है। धर्म के और सारे रूप गौण हैं। धर्म के और सारे ढंग भक्ति के सहारे ही जीते हैं।
भक्त है तो भगवान है। भक्त नहीं तो भगवान नहीं। भक्त के हटते ही धर्म केवल सैद्धांतिक चर्चा मात्र रह जाती है; फिर उसमें हृदय नहीं धड़कता; फिर उसमें रसधार नहीं बहती; फिर नाच नहीं उठता।
और यह सारा अस्तित्व भक्त का सहयोगी है, क्योंकि यह सारा अस्तित्व उत्सव है। यहां परमात्मा को जानना हो तो उत्सव से जानने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। आंसू भी गिरें, तो आनंद में गिरें। पीड़ा भी हो, तो उसके प्यार की पीड़ा हो!
देखते हैं चारों तरफ प्रकृति को! उत्सव ही उत्सव है। नाद ही नाद है।
सब तरह के साज बज रहे हैं। पक्षियों में, पहाड़ों में, वृक्षों में, सागरों में--सब तरफ बहुत-बहुत ढंगों और रूपों में परमात्मा होली खेल रहा है।
कितने रंग फेंकता है तुम पर! कितनी गुलाल फेंकता है तुम पर! और अगर तुम नहीं देख पाते, तो सिवाय तुम्हारे और कोई जिम्मेवार नहीं।
लोग परमात्मा को खोजने निकलते हैं; उन्हें उत्सव खोजने निकलना चाहिए।
उत्सव जिस दिन समझ में आ जाएगा, उसी दिन परमात्मा भी समझ में आ जाएगा।
परमात्मा को सीधे-सीधे पकड़ लेने का कोई उपाय भी नहीं है। रस में ही पकड़ो

उसे--रस में डूब कर, विमुग्ध होकर। नाच में पकड़ो उसे। पकड़ लिया नाच में तो पकड़ लिया; नहीं पकड़ पाए नाच में, तो फिर कहीं न पकड़ पाओगे। शास्त्रों में नहीं है। सिद्धांतों में नहीं है। ज्ञानियों की व्यर्थ की चर्चाओं में नहीं है। जहां भक्त उठते हैं, बैठते हैं; जहां भक्तों के आंसू गिरते हैं; जहां भक्त रस में डूब कर उसके गुणगीत गाते हैं; जहां उसकी प्रशंसा के स्वर उठते हैं; जहां कोई भक्त अपनी खंजड़ी बजा कर नाच उठता है--वहां खोजो। मंदिरों में भी नहीं मिलेगा। जिसने अपने मन के मंदिर में विराजमान किया है, वहां मिलेगा। भगवान को खोजना हो तो भक्त को खोजो। भक्त मिल गया तो भगवान के मिलने में ज्यादा देर न रही।
हां, छलकती हुई शराब आए
परमात्मा शराब है। भक्त ही इतनी हिम्मत कर सकता है कहने की।
जोश में फिर मेरा शबाब आए
और भगवान तो सदा युवा है। शाश्वत यौवन है वहां। इसलिए तो हमने कृष्ण
की वार्धक्य की कोई प्रतिमा नहीं बनाई--न राम की, न बुद्ध की। अस्तित्व कभी बूढ़ा होता ही नहीं। अस्तित्व सदा युवा है, सदा ताजा है, सदा कुंआरा है; कभी विकृत होता ही नहीं। अस्तित्व सदा स्वस्थ है। ऐसा नहीं कि बुद्ध बूढ़े नहीं हुए। ऐसा नहीं कि कृष्ण बूढ़े नहीं हुए। लेकिन हमने कोई प्रतिमा नहीं बनाई। जो बूढ़ी हो गई स्थिति उनमें, वह केवल आवरण है। देह जराजीर्ण हो गई; जैसे कि वस्त्र जराजीर्ण हो जाते हैं। लेकिन जो भीतर चिरंतन छिपा है, वह सदा युवा है; वह कभी बूढ़ा नहीं होता। क्योंकि जो बूढ़ा होगा वह मरेगा भी। देह बूढ़ी होती है, मरती भी है। देह के भीतर जो चिरंतन है--न बूढ़ा होता, न मरता; उस पर कोई उपाधि नहीं है।
जोश में फिर मेरा शबाब आए
फिर थिरकते हुए उठें नगमे
हाथ में इश्क का रुबाब आए
और जब तक हाथ में इश्क का रुबाब न आ जाए, इश्क का सितार न आ जाए और जब तक तुम्हारे जीवन में प्रेम का गीत न बजने लगे, तब तक जाओ लाख काशी और काबा, भटको कैलाश और गिरनार, पूजो पत्थर-पहाड़, मंदिरों में पटको सिर; लेकिन जब तक हाथ में प्रेम की वीणा न होगी, तब तक तुम परमात्मा को न पहचान पाओगे। न तो उससे कोई संबंध तर्क से बनता है, न उससे कोई संबंध त्याग से बनता है। तार्किक उलझा रह जाता है--अपनी बुद्धि में। और त्यागी उलझा रह जाता है-- अपनी देह में।
ख्याल रखना, जैसे भोगी उलझा रहता है देह में, वैसा ही त्यागी भी उलझा रहता है देह में; उनमें भेद नहीं है। हां, एक-दूसरे की तरफ पीठ किए खड़े हों, लेकिन दोनों में जरा भी भेद नहीं है। भोगी निरंतर इसी फिकर में लगा रहता हैः कैसे इत्र-फुलेल; कैसे शरीर को सजाए, संवारे,शृंगार करे; कैसे सुंदर वस्त्र, कैसे सुंदर आभूषण! त्यागी भी शरीर में उलझा हैः कैसे शरीर को सताए, कैसे शरीर को गलाए, कैसे कांटों पर बैठे और कांटों पर सोए, कैसे धूप में खड़ा रहे, कैसे उपवास करे, कैसे सिर के बल खड़ा हो शीर्षासन करे। मगर दोनों देह में उलझे हैं।
तार्किक उलझ जाता है बुद्धि में। त्यागी उलझ जाता है देह में। दोनों चूक जाते हैं। क्योंकि परमात्मा हृदय में है, न तो बुद्धि में है और न देह में है। बुद्धि तो क्षुद्र है। क्षुद्र पर कारगर भी है। व्यर्थ का हिसाब लगाना हो तो बुद्धि का उपयोग करना पड़ेगा। देह भी उपयोगी है। बाहर जाना हो तो देह की सहायता लेनी होगी। लेकिन परमात्मा भीतर है। परमात्मा क्षुद्र नहीं कि बुद्धि उसका हिसाब लगा ले; सीमित नहीं कि बुद्धि के जाल में आ जाए। परमात्मा इतना छोटा नहीं है कि तुम उसकी परिभाषा कर सको विचार से। तुम्हारी सब परिभाषाएं टूट जाती हैं, तब परमात्मा मिलता है। तुम्हारे
सब तर्क निराश हो जाते हैं, तब परमात्मा मिलता है। तुम्हारा सिर गिर जाता है, तब परमात्मा मिलता है। और परमात्मा बाहर भी नहीं है कि शरीर के रथ पर बैठ कर यात्रा करनी हो। परमात्मा भीतर है। परमात्मा तुम्हारा होना है। जब तुम भीतर हृदय में गदगद होते हो, तब तुम उसके निकट होते हो। जब तुम भीतर रसविभोर होते हो, तब तुम उसके निकट होते हो। जब तुम तल्लीन होते हो, तब तुम उसके निकट होते हो।

फिर थिरकते हुए उठें नगमे
जब तुम्हारे प्राणों में गीत उठते हैं--अहोभाव के, कृतज्ञता के! जब तुम्हारे हाथ में वीणा होती है--प्रेम की! जब प्रेम की वीणा पर तुम तार छेड़ते हो।
हाथ में इश्क का रुबाब आए
हर तरफ से निगाहे-शौक को आज
इक शिगुफ्ता हसीं जवाब आए
और जब तुम्हारे भीतर ऐसी अपूर्व घटना घटती है कि वीणा बजे प्रेम की और नगमे उठें आनंद के, तो सब तरफ से परमात्मा तुम्हारी तरफ दौड़ता है।
भक्त को परमात्मा के पास जाना नहीं पड़ता; परमात्मा ही भक्त के पास आता है। भक्त को सिर्फ पुकारना पड़ता है। और हम जाना चाहें तो जा भी कैसे सकेंगे? हमारे पैर बहुत छोटे हैं, यात्रा बड़ी है। फिर, हमें उसका पता- ठिकाना भी तो मालूम नहीं। जाएं भी तो जाएं कहां? किस दिशा में खोजें--पूरब कि पश्चिम? किस भाषा में उससे बोलें? उसकी कौन सी भाषा है? किस विधि-विधान से उसे मनाएं?
नहीं, भक्त को कुछ भी पता नहीं है। भक्त को उसका पता-ठिकाना पता नहीं; उसका दिशा-द्वार पता नहीं। वह कौन सी भाषा समझेगा, इसका पता नहीं। भक्त को अपनी प्यास का पता है। भक्त अपनी प्यास को ढालता है--गीतों में। भक्त अपनी प्यास को ही उभाड़ता है। भक्त की प्यास ही सघन होती जाती है। भक्त एक विराट प्यास बन जाता है--एक उत्तप्त अग्नि। और उस प्यास में ही परमात्मा दौड़ा हुआ आता है।
तुमने देखा, गर्मी के बाद वर्षा होती है। ग्रीष्म के बाद आकाश में बादल घिरते हैं, मेघ घिरते हैं। ग्रीष्म के बाद ही क्यों घिरते हैं? क्योंकि ग्रीष्म के कारण, घने ताप के कारण, जलते हुए सूरज के कारण, वायु विरल हो जाती है, जगह-जगह वायु विरल हो जाती है, गड्ढे बन जाते हैं वायु में। जब वायु में गड्ढे बन जाते हैं तो मेघ भागे चले आते हैं उन गड्ढों को भरने। क्योंकि इस जगत में अस्तित्व गड्ढों को बरदाश्त नहीं करता। इसलिए तो पहाड़ खाली रह जाते हैं और झीलें भर जाती हैं। ग्रीष्म के बाद घिर आते हैं बादल, क्योंकि खाली गड्ढे शून्य पैदा हो जाते हैं वायु में। और जहां- जहां शून्य है वहां-वहां आकर्षण है। शून्य में बड़ा प्रबल आकर्षण है। शून्य खींच लेता है। बादल भागे चले आते हैं।
ऐसी ही घटना अंतरतम में भी घटती है। प्यास जब प्रज्वलित हो जाती है, प्राण जब उसकी आकांक्षा-अभीप्सा से आतुर हो उठते हैं, विरह की अग्नि जब जलती है, तो तुम्हारे भीतर एक शून्य पैदा हो जाता है। जिस शून्य को ज्ञानी ध्यान से पैदा करता है और बड़े श्रम से पैदा करता है और मुश्किल से सफल हो पाता है, उस शून्य को भक्त प्रेम से पैदा कर लेता है और सुगमता से पैदा कर लेता है और सदा सफल हो जाता है! रोकर पैदा कर लेता है। विरह में जल कर पैदा कर लेता है। यहां भक्त एक शून्य बना कि वहां परमात्मा के मेघ उसकी तरफ चलने शुरू हो जाते हैं।
तुम नहीं परमात्मा को पहुंच पाओगे, परमात्मा ही तुम तक सदा पहुंचता है। यही उचित भी है।
छोटा बच्चा तो रोता है; मां भागी आती है। वह छोटा बच्चा जो झूले पर पड़ा है--असहाय--वह चेष्टा भी करे तो भी मां को खोजने कहां जाएगा? चलने की भी तो सामर्थ्य नहीं। अपने पैरों पर खड़ा भी तो नहीं हो सकता। लेकिन रो सकता है। भक्त की सारी कला उसके आंसुओं में है। भक्त की सारी साधना-पद्धति उसके विरह में है।
मीरा के इन पदों में प्रवेश के पहले इस बात को खूब ख्याल में ले लो, क्योंकि ये सारे पद मीरा के प्रेम के पद हैं। मीरा प्रेम का रुबाब लेकर बजाती है। बड़ा रस है इनमें। आंसू भी बहुत हैं। प्रेम भी बहुत हैं। आनंद भी बहुत है। सबका अदभुत समन्वय है। क्योंकि भक्त आनंद से भी रोता है, क्योंकि जितना मिला वह भी क्या कम है! भक्त विरह में भी रोता है, क्योंकि जो मिला उससे और मिलने की प्यास जग गई है। भक्त धन्यवाद में भी रोता है, क्योंकि जितना मिला है वह भी मेरी पात्रता से ज्यादा है। और भक्त अभीप्सा में भी रोता है कि जब इतना दिया है तो अब और मत तरसाओ, और भी दो।

तो इन आंसुओं में तुम आनंद के आंसू भी पाओगे, विरह के आंसू भी पाओगे, अनुग्रह के आंसू भी पाओगे, अभीप्सा के आंसू भी पाओगे। इन आंसुओं में बड़े स्वाद हैं। और मीरा से सुंदर आंसू तुम और कहां पा सकोगे? ये भजन ही नहीं हैं, ये गीत ही नहीं हैं--इनमें मीरा ने अपना हृदय ढाला है। अगर तुम सावधानी से प्रवेश करोगे इन शब्दों में, तो तुम मीरा को जीवित पाओगे। और जहां मीरा को जीवित पा लिया, वहां से कृष्ण बहुत दूर नहीं हैं। जहां भक्त है वहां भगवान है। भक्त को समझ लिया तो भगवान के संबंध में श्रद्धा उत्पन्न होती है। भगवान तो दिखाई पड़ता नहीं--अदृश्य है। भक्त दृश्य है। कृष्ण को जानना हो, मीरा को सेतु बनाओ। और मीरा से अपूर्व सेतु तुम कहीं पा न सकोगे। क्योंकि भक्त तो पुरुष भी हुए हैं, लेकिन पुरुष अंततः पुरुष है। उसके प्रेम में भी थोड़ी परुषता होती है। रोता भी है तो झिझक कर रोता है--शरमाता-शरमाता। नाचता भी है तो संकोच से। पुकारता भी है परमात्मा को तो चारों तरफ देख लेता है--कोई सुनता तो न होगा! यह स्वाभाविक है। स्त्री-हृदय जब पुकारता है तो निःसंकोच पुकारता है। पुकार स्वाभाविक है वहां। स्त्री-हृदय जब रोता है तो उसे संकोच नहीं होता। आंसू सहज हैं, स्वस्फूर्त हैं।
ये भजन मीरा ने बैठ कर नहीं लिखे हैं, जैसे कवि लिखते हैं। ये नाचते- नाचते पैदा हुए हैं। इनमें अभी भी उसके घूंघर की झंकार है। ये अभी भी ताजा हैं। ये कभी बासे नहीं पड़ेंगे। जो बैठ-बैठ कर कविताएं लिखता है, उसकी कविताएं तो जन्मने के पहले ही मर गई होती हैं। जन्म ही नहीं पाती हैं, या मरी हुई ही जन्मती हैं। ये गीत कविता की तरह नहीं लिखे गए हैं। यही इनका गौरव है, गरिमा है। यही इनकी महिमा है। ये पैदा हुए हैं--नाचते-नाचते किसी धुन में, नाचते-नाचते अनायास! इनके लिए कोई प्रयोजन नहीं था, कोई चेष्टा नहीं थी।
मीरा कोई कवि नहीं है। मीरा भक्त है। कविता तो ऐसे ही आ गई है, जैसे तुम राह पर चलो और तुम्हारे पैर के निशान धूल पर बन जाएं। बनाने नहीं चाहे थे, बनाने निकले नहीं थे, सोचा भी नहीं था--राह से गुजरे थे, धूल पर निशान बन गए। आकस्मिक हुआ। धूप में चले थे; पीछे-पीछे छाया चली। छाया चलाने को न चले थे। छाया पीछे चले, इसकी कोई योजना भी न थी, न कोई विचार किया था। ऐसे ही ये गीत पैदा हुए हैं। मीरा तो नाचने लगी। मीरा तो नाचती चली। ये पगचिह्न बन गए।
इन पगचिह्नों में अगर तुम गौर से उतरो, प्रेम से उतरो, सहानुभूति से उतरो, तो तुम्हें मीरा के ही पैर नहीं, मीरा के पैरों के भीतर जो नाच रहा था, उसकी भी भनक मिलेगी। इन शब्दों में मीरा के ही शब्द नहीं; मीरा के हृदय में जो विराजमान हो गया था उसका स्वर भी लिपटा है। ये मीरा ने अकेले गाए, ऐसा मानो ही मत। अकेले मीरा ये गा ही नहीं सकती। ऐसे अपूर्व गीत अकेले गाए ही नहीं जाते। ये परमात्मा ने मीरा के साथ-साथ गाए हैं। मीरा तो जैसे बांसुरी थी, गाए परमात्मा ने ही हैं। मीरा तो जैसे केवल माध्यम थी, ये बहे तो उसी से हैं। इस भाव को लेकर हम इन अपूर्व शब्दों में उतरें।
म्हारो जनम-मरण को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।
तीन शब्द ख्याल में लोः जन्म, जीवन, मृत्यु--मरण। तुमने जीवन के तो बहुत साथी खोज लिए हैं। मगर जीवन के साथी तो जीवन के साथ ही खो जाएंगे। जन्म और मृत्यु के बीच में जीवन है। जो तुमने जीवन में खोजा है, वह जीवन के साथ ही खो जाएगा। पति है, पत्नी है, मित्र हैं, पिता हैं, मां हैं, पुत्र हैं, भाई हैं, बंधु हैं--वे सब जीवन के साथी हैं। जन्म के पहले उनसे कोई संबंध न था। जिनसे जन्म के पहले कोई संबंध न था उनसे मृत्यु के बाद भी कोई संबंध कैसे रह जाएगा? जिससे जन्म के पहले संबंध था, उसे खोज लो; उससे मृत्यु के बाद भी संबंध रहेगा।
और एक मजे की बात, कि जिससे जन्म के पहले संबंध नहीं था और मृत्यु के बाद भी संबंध जिससे टूट जाएगा, उससे जीवन में भी क्या संबंध हो पाएगा? कल्पना ही मालूम होगी। सपना ही मालूम होगा। न जो पहले साथ है, न जो पीछे साथ होगा, उससे बीच में कैसे साथ हो जाएगा--अचानक? अनायास? अकारण? जो कभी पहले साथी नहीं था, जो कभी फिर साथी नहीं होगा; उससे मिलना ऐसे ही है जैसे रास्ते पर चलते दो राहगीर मिल गए--न जानते थे पहले, घड़ी भर बाद फिर

रास्ते अलग हो जाएंगे, अलविदा हो जाएंगे, और फिर कभी न जानेंगे। जैसे ट्रेन की यात्रा में किसी से पहचान हो गई, क्योंकि पास ही बैठना हो गया था; ट्रेन में चढ़ते वक्त याद भी न थी कि किससे मिलना होने वाला है; ट्रेन से उतरते ही याद भी भूल जाएगी। जो आकस्मिक हुआ था, वह पानी के बबूले की तरह खो जाएगा।
जिससे जन्म के पहले भी साथ था, उससे मृत्यु के बाद भी साथ रहेगा। और जिससे जन्म और मृत्यु की दोनों घड़ियों में साथ रहने वाला है, उससे ही असली साथ हमारा जीवन में भी हो सकता है। धन्यभागी हैं वे जो जीवन में भी उसी का साथ खोज लेते हैं, जिसका साथ जन्म के पहले भी था और मृत्यु के बाद भी होगा। वह शाश्वत साथी है। उस शाश्वत साथी को ही भगवान कहा है। वही है मित्र। शेष सब प्रवंचनाएं हैं। शेष सब मन के भुलावे हैं। शेष सब धोखे हैं। ठीक है, थोड़ी देर को राहत मिल जाएगी। थोड़ी देर को मन उलझा रहेगा; जैसे बच्चे खेल-खिलौनों में उलझ जाते हैं। या ऐसे कि जैसे कोई कागज की नाव बहाता है। कहने को ही नाव होती है; न तो उसमें बैठा जा सकता है, न उसमें पार हुआ जा सकता है। दूसरे की तो बात छोड़ो, नाव खुद भी पार न जा पाएगी--कागज की है। अब डूबी, तब डूबी। डूबने को ही है। डूबने को ही बनी है।
इस जगत की सारी मैत्रियां कागज की नावें हैं, कि ताश के बनाए गए घर हैं; हवा का जरा सा झोंका आता है और गिर जाते हैं।
तुमने देखा, तुम्हारी मित्रता, जरा सा हवा का झोंका और खो जाती है। जो मित्र थे, वे क्षण में शत्रु हो जाते हैं। जो अपने थे, क्षण में पराए हो जाते हैं। यहां कौन अपना है, कौन पराया है? यहां सब मन के भुलावे हैं। हां, सांत्वना मिल जाती है; मन व्यस्त हो जाता है, उलझा रहता है। और एक भ्रांति बनी रहती है कि अपने हैं यहां; मैं अकेला नहीं हूं।
ध्यान रखो, जब तक परमात्मा न मिले, तब तक तुम अकेले हो--अकेले हो और अकेले ही हो! कितना ही झुठलाओ, कितना ही समझाओ, कितना ही भुलाओ--मगर हर झूठ के पीछे सत्य खड़ा है, कि तुम अकेले हो। दिन दो दिन के लिए सपने से आंखें भर जा सकती हैं, लेकिन इससे कुछ अंतिम परिणाम हाथ में नहीं आएगा।
मीरा ने वे साथी छोड़ दिए जो जन्म के बाद बने थे, वे साथी छोड़ दिए जो मृत्यु के साथ छूट जाएंगे। मीरा कहती हैः जिनसे मृत्यु में साथ छूट जाएगा, जब असली में साथ की जरूरत होगी... ।
यहां तो ठीक है, बिना संग-साथ के भी चल सकता है। कोई संगी-साथी न भी हो,
तो बाजार की भीड़ में भी चलते रहे तो भी चलता है। रेस्तरां में जाकर बैठ गए, होटल में बैठ गए, सिनेमाघर में बैठ गए। भीड़ तो सदा मौजूद है। न भी हो संगी- साथी, तो भी तुम अपने अकेलेपन को कहीं न कहीं भुला ले सकते हो। मृत्यु में तो तुम बिल्कुल अकेले हो जाओगे; न सिनेमा होगा, न क्लब होगा, न बाजार होगा, कोई भी न होगा, बिल्कुल अकेले हो जाओगे। एकांत होगा। उस एकांत में जो साथ न पड़ेंगे, उनके साथ का मूल्य भी क्या है? कहते हैंः मित्र तो वही जो दुर्दिन में काम आए। और दुर्दिन मृत्यु से बड़ा और क्या होगा? मगर उस दिन कोई काम नहीं आता। न तुम्हारी पत्नी तुम्हारे साथ जाएगी, न तुम्हारा पति तुम्हारे साथ जाएगा। सब तुम्हें विदा दे देंगे। तुम जब चिता पर चढ़ोगे तो अकेले, कि कब्र में उतरोगे तो अकेले। उस अनंत अंधकार में--जिसका नाम मृत्यु है--कोई तुम्हारे साथ न जाएगा, कोई हाथ न बढ़ाएगा, कोई न कहेगाः मैं आता हूं, रुको! मीरा ने वे सब साथ छोड़ दिए जो जन्म के बाद बने थे। वे सांयोगिक हैं। नदी-नाव संयोग, उनका कोई मूल्य नहीं। वे सब साथ छोड़ दिए जो मृत्यु के साथ छूट जाएंगे। जिन्हें मृत्यु ही छीन लेगी, उन्हें स्वयं ही छोड़ देना उचित है। मृत्यु और जन्म के आर-पार, जिसका शाश्वत साथ है, उसकी खोज, उसका नाम ही कृष्ण। उसका नाम ही, तुम जो देना चाहो--राम, कि बुद्ध।
म्हारो जनम-मरण को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।
मीरा कहती हैः अब मैं पहचान गई कि कौन मेरा साथी है, कौन असल मेरा साथी है। झूठों से जाग गई। धोखों से सचेत हो गई, सावधान हो गई।
म्हारो जनम-मरण को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।
यह दूसरी पंक्तिः थानें नहिं बिसरूं दिन-राती! समझना। शब्द उपयोग किया हैः बिसरूं, विस्मरण। मैं तुझे भूल नहीं पाती। आमतौर से लोग पूछते हैंः भगवान को स्मरण कैसे करें? और मीरा कहती है कि विस्मरण कैसे करूं?

यहीं से फर्क शुरू होता है--असली भक्त में और तथाकथित भक्त में। तथाकथित भक्त पूछता हैः भगवान का कैसे स्मरण करें? क्योंकि भूल-भूल जाता है। संसार का स्मरण नहीं करना पड़ता; उसका स्मरण शाश्वत बना रहता है। धन की याद बनी रहती है, दुकान की याद बनी रहती है, बाजार की याद बनी रहती है। और सबकी याद बनी रहती है। भगवान के लिए पूछता हैः भगवान का स्मरण कैसे करें?
जब कोई पूछता है कि भगवान का स्मरण कैसे करें? तो उसका अर्थ साफ है कि भगवान का स्मरण अभी हो नहीं रहा है, करना पड़ रहा है। किए हुए का कोई मूल्य नहीं है। जो कोई पूछता है कि भगवान का स्मरण कैसे करें? वह यही पूछता है कि संसार का स्मरण तो होता है, स्वाभाविक हो रहा है; अब भगवान के स्मरण को खींच-तान कर करना होगा। इसलिए तो लोग मंदिर जाते हैं, मस्जिद जाते हैं, पूजा-पाठ करते हैं; नियम बना लेते हैं कि रोज सुबह घंटे भर, कि रोज रात घंटे भर स्मरण करेंगे। और जब स्मरण करने बैठते हैं तब भी स्मरण बंधता नहीं, छूट-छूट जाता है। तब भी याद संसार की आ-आ जाती है। माला फेरते रहते हैं और भूल जाते हैं कि माला फेरना कब बंद हो गया और कब उन्होंने रुपये गिनने शुरू कर दिए। राम-राम जपते-जपते भूल जाते हैं। जप तो जारी रहता है--तोतों के रटंत की तरह; ओंठ बुदबुदाते रहते हैं और भीतर हजार बातें और चलने लगती हैं--कल अदालत में मुकदमा है, कि परसों कुछ और काम है, कि बेटे का विवाह है, कि पत्नी बीमार है। राम-राम ऊपर चलता रहता है और सब तरह की वासनाएं भीतर हिंडोले लेती रहती हैं। यह साधारण स्थिति है।
मीरा बड़ी उलटी बात कह रही है। मीरा कहती हैः थानें नहिं बिसरूं दिन-राती!
कि मैं चाहूं तो भी तुझे भूल नहीं पाती। दिन आते, रात आती, विस्मरण नहीं होता।
इसलिए सवाल यह नहीं है कि ईश्वर का स्मरण कैसे हो? सवाल यह है कि ऐसी चैतन्य की दशा कैसे बने जहां उसका विस्मरण न हो?
इस भेद को खूब ख्याल में ले लेना। राम-राम जपने से कुछ न होगा। राम-राम जपना सिर्फ अपने को धोखा देना है। जप उठे, जैसे श्वास चलती है; जैसे रक्त बहता है धमनियों में; जैसे हृदय धड़कता है--ऐसा जप चले। जिसको नानक ने "अजपा जाप" कहा, ऐसा जप चले। तुम्हें जप करना न पड़े--होता ही रहे; अहर्निश हो। तुम उठो और बैठो, तुम बाजार जाओ और दुकान जाओ, तुम काम करो और विश्राम करो--और जप चलता ही रहे। जप की अंतरधारा बन जाए।
यह कब होगा? यह कैसे होगा?
यह परमात्मा को स्मरण करने से नहीं होगा, यह संसार को ठीक से देख लेने
से होगा।
लोग गलत प्रश्नों से शुरू करते हैं, इसलिए कहीं नहीं पहुंच पाते। एक बार गलत प्रश्न पूछ लिया तो तुम बड़ी झंझट में पड़ोगे। क्योंकि जो भी उत्तर मिलेंगे वे गलत होंगे। तुमने किसी से पूछाः परमात्मा का स्मरण कैसे करें? तुमने गलत प्रश्न पूछ लिया। वह बता देगा कि ठीक है, यह कापी ले लो, इस पर बैठ कर लिखते रहो राम-राम, राम-राम, ऐसे अभ्यास हो जाएगा।
अभ्यास? राम का अगर अभ्यास कर लिया और अभ्यास से अगर राम-राम हुआ तो प्राणों का उसमें कोई संबंध ही न होगा। अभ्यास तो यंत्रवत हो जाता है। अभ्यास का तो कोई मूल्य ही नहीं है। प्रेम का कहीं अभ्यास होता है? अभ्यास का तो मतलब ही यह है कि जबरदस्ती थोप लिया। भीतर से तो नहीं उठता था; बाहर से पकड़ कर किसी तरह चारों तरफ आयोजन कर लिया।
अभ्यास तुम्हें सरकसी बना देगा। सरकस में अभ्यास करवा देते हैं जंगली जानवर को भी। कोड़े के डर से, भोजन के प्रलोभन से--दंड और भय, प्रलोभन और लोभ, इनके बीच में अभ्यास करा देते हैं। सिंह भी अभ्यास कर लेता है--स्टूलों पर बैठने लगता है; ढोल बजाने लगता है; आग के गोलों में से कूदने लगता है... कोड़ा और प्रलोभन! नहीं किया तो पिटेगा; किया तो सुस्वादु भोजन मिलेगा।
तुम जब परमात्मा का अभ्यास करते हो तो नरक और स्वर्ग के कारण, वह अभ्यास सरकसी है। उसका दो कौड़ी मूल्य है। भक्त परमात्मा का अभ्यास नहीं करता।
ठीक प्रश्न यह नहीं है कि मैं परमात्मा को कैसे याद करूं? ठीक प्रश्न
यह है कि संसार की मुझे इतनी याद आती है--क्यों? यह संसार की याद इतनी गहरी

मुझमें क्यों है? कहां है इसका बीज? कहां है इसकी जड़ों का विस्तार? कैसे इन जड़ों को काट डालूं? कैसे संसार का स्मरण छूट जाए? यह असली सवाल है। और अगर संसार का स्मरण छूट जाए तो अचानक तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर से उठी सुवास, भर गए प्राण, उठा नाद, डोलने लगा रोआं-रोआं!
तब तुम समझोगे मीरा की बातः थानें नहिं बिसरूं दिन-राती!
मीरा कहती हैः मैं तुम्हें भूल ही नहीं पाती। क्या कर दिया है? कैसा जादू! उठती हूं, बैठती हूं, काम भी करती, स्नान भी करती, भोजन भी कर लेती हूं; मगर तुम्हारी याद है कि अहर्निश सतत बही चली जाती है।
म्हारो जनम-मरण को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।
इसलिए परमात्मा को स्मरण नहीं करना है--एक ऐसी चेतना की दशा जगानी है, जहां परमात्मा का विस्मरण न हो। दोनों में बड़ा फर्क है। और दोनों ऊपर से एक जैसे लगते हैं, इसलिए खतरा भी बहुत है।
प्लास्टिक का फूल देखा! फूल जैसा लगता है। कभी-कभी तो फूल से भी ज्यादा सुंदर लगता है। और प्लास्टिक के फूल की कई खूबियां हैं, जो असली फूल में नहीं हैं। एक, कि प्लास्टिक का फूल शाश्वत है। असली फूल तो सुबह खिला, सांझ मुरझा जाता है। असली फूल अभी था, अभी गया। क्षण भर नाचा हवाओं में, क्षण भर बातचीत की चांद-तारों से, फिर धूल में खो गया, फिर सो गया--अतल गहरी निद्रा में। अभी था, तो पक्षियों के साथ नाचा, हवाओं से जूझा, बड़ी शान से जीया। अभी नहीं है, तो पंखुड़ियां धूल में खो गईं, कोई निशान भी न रह गया, कोई चिह्न भी पीछे न छूट गया। चार दिन बाद, फूल था भी कभी या नहीं था, कुछ तय करना संभव न रहेगा। प्लास्टिक का फूल अपनी जगह बैठा रहेगा, बैठा रहेगा, तुम मर जाओगे, तुम्हारा लगाया हुआ प्लास्टिक का फूल न मरेगा। प्लास्टिक के फूल में बड़ा खतरा है; धोखा है, शाश्वत का धोखा है। है झूठा, लेकिन बड़ा मजबूत है।
और ऐसी ही हालत असली परमात्मा के स्मरण की और नकली परमात्मा के स्मरण
की है। नकली स्मरण प्लास्टिक जैसा है--अभ्यास! बैठे हैं घंटों, अभ्यास कर रहे हैं, राम-राम-राम दोहराए जा रहे हैं, दोहराए जा रहे हैं। दोहराते- दोहराते अभ्यास सघन हो जाएगा, प्लास्टिक का फूल पैदा हो जाएगा। लेकिन इसका कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि इसमें कोई जड़ें नहीं हैं। इसका कोई मूल्य नहीं, क्योंकि इससे तुम्हारे हृदय का कोई संबंध नहीं। इसका कोई भी मूल्य नहीं। दूसरों को भला धोखा हो जाए राम-राम की चदरिया देख कर कि भक्त जी आ रहे हैं; मगर मुंह में राम, बगल में छुरी रहेगी। अपने को कैसे धोखा दोगे? तुम तो जानोगे ही कि प्लास्टिक का फूल है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन रोज अपनी खिड़की में आकर खड़ा होता, और खिड़की पर उसने एक गमला लटका रखा था फूलों से भरा हुआ, उसमें पानी डालता। पड़ोसी देखते थे--एक बार देखा, दो बार देखा, तीन बार देखा--पानी तो डालता था, लेकिन फव्वारा खाली।
आखिर पड़ोसी से न रहा गया, जिज्ञासा जगी, उसने कहा कि नसरुद्दीन, पानी
तो रोज डालते हो, लेकिन पानी गिरता हुआ दिखाई नहीं पड़ता।
नसरुद्दीन ने कहाः ये फूल ही कौन सच हैं! प्लास्टिक के फूल हैं। इनको असली पानी की जरूरत भी नहीं।
तो फिर क्यों रोज व्यर्थ झूठा पानी डालते हो?
वह पड़ोसियों के लिए। नहीं तो लोगों को शक हो जाएगा कि पानी तो पड़ता ही नहीं गमले में कभी और फूल हैं कि खिले ही हुए हैं।
वह जो तुम राम-राम जपते हो, वह पड़ोसियों के लिए जपते हो--वह अपने लिए नहीं है। और तुम कितना ही पड़ोसियों को धोखा दे लो, अपने को कैसे धोखा दे पाओगे? और अपने को ही न दे पाए, तो अपने भीतर निहित अंतरतम में छिपे परमात्मा को कैसे धोखा दे पाओगे? तुम तो जानोगे ही न कि फूल प्लास्टिक के हैं, कि राम-राम अभ्यास है, कि सामाजिक प्रतिष्ठा पाने का उपाय है, कि स्वर्ग जाने की विधि है, कि नरक से बचने का आयोजन है।
लेकिन नरक से बचना जो चाहता है, उसका परमात्मा से प्रेम लगा? अगर परमात्मा नरक में हो तो प्रेमी नरक जाना चाहेगा। वह कहेगाः परमात्मा जहां हो, वहीं रहेंगे, नरक में रहेंगे, लेकिन रहेंगे उसी के पास। जिसको नरक से

भय है, वह अगर परमात्मा नरक जा रहा होगा, तो वह कहेगाः आप अकेले जाइए; हम स्वर्ग की तरफ जा रहे हैं। मुझे नरक से कुछ लेना-देना नहीं।
भगवान को जिसने चुना है, यह अभ्यास से नहीं हो सकता। तो करें क्या? फिर
तो बड़ी उलझन हो गई। क्योंकि अभ्यास सुगम मालूम पड़ता है। कर सकते हैं, घड़ी आधा घड़ी रोज निकाल कर स्मरण कर सकते हैं। इतना गरीब तो कोई भी नहीं कि आधा घड़ी न निकाल ले। बिस्तर पर पड़े-पड़े ही राम-राम जप सकते हैं; आधा घड़ी कम सो लेंगे। एक थैली रख कर उसमें माला सम्हाल कर बस में बैठे-बैठे भी चला सकते हैं, ट्रेन में बैठे-बैठे भी माला चला सकते हैं।
लेकिन अभ्यास से कभी कोई परमात्मा तक पहुंचा ही नहीं। फिर कैसे पहुंचें? फिर जरा घबड़ाहट होती है। फिर तो द्वार बंद मालूम होते हैं। नहीं; द्वार बंद नहीं हैं। तुम गलत प्रश्न न पूछो। ठीक प्रश्न यह है
कि संसार की इतनी याद क्यों आती है? धन की इतनी याद क्यों आती है? पद की इतनी याद क्यों आती है? आदमी मरने-मरने को भी हो जाता है, तो भी धन की ही सोचता रहता है।
मैंने सुना है, एक धनपति मर रहा था। आखिरी घड़ी, उसने अपनी पत्नी से कहाः मेरा बड़ा बेटा कहां है?
पत्नी ने कहाः आप चिंता न करें, लेटे रहें। बड़ा बेटा आपके बगल में ही बैठा है।
आंखें धुंधली हो गई हैं। अस्सी-पचासी साल का बूढ़ा है; दिखाई भी नहीं पड़ता; सुनाई भी मुश्किल से पड़ता है; उठ भी नहीं सकता। चिकित्सकों ने कहा है कि यह आखिरी रात है।
उसने पूछाः और छोटा बेटा?
कहाः वह भी बैठा हुआ है तुम्हारे पैर के पास। तुम चिंता न करो। तुम आराम करो।
और मंझला बेटा?
और पत्नी ने कहाः वह इस तरफ बैठा हुआ है। हम सब यहीं हैं। सारा परिवार यहां मौजूद है। तुम चिंता न करो।
वह तो हाथ टेक कर उठ बैठा। उसने कहाः फिर दुकान कौन देख रहा है? सब यहीं बैठे हैं! अरे नालायको, अभी तो मैं जिंदा हूं। मेरे मर जाने पर बैठना। जो करना हो, करना। अभी कुछ तो मेरा ख्याल रखो। अभी मैं जिंदा हूं। अभी मैं मर नहीं गया हूं।
यही आदमी फिर दूसरे दिन मरने की हालत में आ गया; सुबह-सुबह आखिरी सांसें ले रहा है। जैसा बाप वैसे बेटे। बेटे विचार करने लगे कि कैसा इंतजाम करना, अब ये तो मरे, इनको मरघट तक कैसे ले जाना?
बड़े बेटे ने कहा कि शान से ले जाएंगे; सारे गांव की कारें इकट्ठी कर लेंगे; जितनी टैक्सी हैं, सब बुला लेंगे।
मझले बेटे ने कहाः इतना खर्चा? इससे फायदा? अब जो मर गया सो मर ही गया। चाहे रॉल्स रॉयस लाओ, चाहे केडिलक लाओ, क्या फायदा? अपने घर की एंबेसेडर अच्छी है; उसी में रख कर ले चलेंगे।
तीसरे बेटे ने कहाः एंबेसेडर की क्या जरूरत है इसमें? म्युनिसिपल का ठेला... !
बाप यह सब सुन रहा है। बाप उठ कर बैठ गया। बाप उठ कर बैठ गया। उसने कहाः मेरे जूते लाओ, मैं पैदल चला चलता हूं। आखिर ठेले वाले को भी पैसा देना ही पड़ेगा। अभी मैं जिंदा हूं।
आदमी क्यों धन का इतना स्मरण रखता है? क्यों पद का मरते दम तक पीछा करता है? मोरारजी भाई देसाई को पूछो। बयासी साल! मगर एक ही बात प्राणों में अटकी रहीः पद! पद! पद! कैसे भी मिले। जीते-जी मिले तो ठीक, मर कर मिले तो ठीक--मगर पद मिले! आदमी क्यों धन, पद, संसार के लिए इतना स्मरण करता रहता है?
ईश्वर को स्मरण करने के पहले इस स्मरण को समझना जरूरी है। इसकी समझ जितनी गहरी होती जाएगी उतना ही यह शिथिल होता जाएगा। अगर आंख से ठीक से देख लिया कि मैं धन की क्यों आकांक्षा कर रहा हूं; अगर यह बात समझ में आ गई कि धन की चाह में सुरक्षा की चाह है; धन की चाह में यह ख्याल है कि अगर धन मिल गया तो सब मिल जाएगा। लेकिन धन से क्या मिलता है? किसको क्या मिला है?

अगर तुम्हें यह दिखाई पड़ गया कि धन से कभी किसी को कुछ नहीं मिला और धन से कभी किसी को कुछ नहीं मिल सकता है, यह झूठी यात्रा है--तो धन का स्मरण धीरे- धीरे अपने आप अवरुद्ध हो जाएगा। पद से क्या मिलेगा? पद वाला वैसे ही मर जाता है जैसे पदहीन मर जाता है। और पद वाले कब्रों में पड़े हैं, जैसे पदहीन कब्रों में पड़े हैं। मृत्यु सबको एक सा पोंछ देती है; फिकर नहीं करती कि कौन प्रसिद्ध थे, कौन अप्रसिद्ध थे; कौन शक्तिशाली थे, कौन शक्तिहीन थे। ठीक से अपने पद और धन की आकांक्षा को समझो, उसी समझ में तुम्हें यह बोध आएगा कि न धन से कुछ मिलता है, न पद से कुछ मिलता है--और मौत रोज आ रही है। अगर तुम्हें दिखाई पड़ जाए कि धन से कुछ नहीं मिलता, तो धन की याद अपने आप विसर्जित हो जाएगी। और पद की दौड़ व्यर्थ है--तो पद का जो धुआं तुम्हारे मन में सदा घूमता रहता है, वह तिरोहित हो जाएगा।
जहां संसार की आकांक्षाएं समर्पित हो गईं, शांत हो गईं, शून्य हो गईं-- वहां उठती है याद परमात्मा की। तुम्हारे किए नहीं उठती। तुम तो एकदम अवाक अवस्था में हो जाते हो, क्योंकि तुम्हारी सब पुरानी चाहें गिर गईं। अब तुम्हें कुछ समझ में नहीं आता। एक अचाह की घड़ी आ जाती है। लेकिन उस अचाह में ही तुम्हारे भीतर पहली बार एक नई सुवास प्रकट होती है; एक नया सरगम बजता है। उस सरगम का नाम ही परमात्मा की याद है।
म्हारो जनम-मरण को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
मीरा कहती हैः मेरा हृदय जानता है कि तुम्हें बिना देखे मुझे क्षण भर
भी कल नहीं पड़ती। जरा मौका मिलता है कि आंख बंद करके तुम्हें देख लेती हूं। जहां मौका मिलता है वहीं आंख बंद करके तुम्हें देख लेती हूं।
संसार को देखना हो तो आंख खोल कर देखना पड़ता है और परमात्मा को देखना
हो तो आंख बंद करके देखना पड़ता है। ये आंखें संसार को देखने के काम आती हैं। ये आंखें बंद हो जाती हैं तो भीतर की आंख खुलती है। बाहर की तरफ जाती हुई तुम्हारी दर्शन की जो क्षमता है, जब बाहर नहीं जाती, तो यही दर्शन की क्षमता भीतर की तरफ लौटती है। यही तरंग, यही पात्रता देखने की, भीतर बरसने लगती है। और वहां विराजमान है वह जो सदा का साथी है। वहां विराजमान है तुम्हारा अंतरतम, अंतर्यामी!
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊंची चढ़-चढ़ पंथ निहारूं, रोवै अंखियां राती।
और मीरा कहती हैः मेरी आंखें देखते हैं, रो-रो कर लाल हो गई हैं!
ऊंची चढ़-चढ़ पंथ निहारूं...
और जितना ऊंचा बन सकता है उतनी चढ़ कर तुम्हारी राह देखती हूं।
क्योंकि हो सकता है, नीचे से देखूं, तुम दिखाई न पड़ो।
ऐसा समझो कि तुम खड़े हो एक राह पर; देखते हो कि कौन आ रहा है राह पर। कितनी दूर तक देखोगे? ज्यादा दूर दिखाई नहीं पड़ता। फिर एक वृक्ष पर चढ़ जाओ तो रास्ता दूर तक दिखाई पड़ता है। फिर अगर हवाई जहाज में बैठ जाओ तो बड़ी दूर तक रास्ता दिखाई पड़ता है। जैसे-जैसे तुम ऊंचे जाते हो, उतने दूर तक राह दिखाई पड़ती है।
यह ऊंचे जाने का अर्थ तुम्हें अगर समझना हो तो इसके लिए ठीक-ठीक व्यवस्था योग में है। जिनको योगियों ने सात चक्र कहे हैं, वे सीढ़ी हैं तुम्हारे भीतर ऊंचे चढ़ने की।
अगर तुमने मूलाधार से देखा तो परमात्मा दिखाई नहीं पड़ेगा। मूलाधार से
तो सिर्फ कामवासना दिखाई पड़ती है। अगर तुम पुरुष हो तो स्त्री दिखाई पड़ेगी; अगर स्त्री हो तो पुरुष दिखाई पड़ेगा। अगर मूलाधार से देखा तो परमात्मा का स्त्री-पुरुष रूप दिखाई पड़ेगा; इससे ज्यादा नहीं दिखाई पड़ेगा। वह सबसे नीची सीढ़ी है। वहां परमात्मा इसी ढंग से दिखाई पड़ता है। अगर थोड़े ऊपर बढ़े, स्वाधिष्ठान से देखा, तो स्त्री की देह ही दिखाई नहीं पड़ेगी, पुरुष की देह ही नहीं दिखाई पड़ेगी; स्त्री का मन भी दिखाई पड़ेगा। थोड़ा सूक्ष्म हुई दृष्टि।
मूलाधार से जो देखता है, उसे सिर्फ देह दिखाई पड़ती है। स्त्रियां यानी सुंदर देह। जो स्वाधिष्ठान से देखता है, उसे स्त्रियों का मन भी

दिखाई पड़ता है; वे सिर्फ देह मात्र नहीं हैं। और जो थोड़ा और ऊपर चढ़ा, मणिपुर से देखा, उसे स्त्री की आत्मा भी दिखाई पड़ेगी।
ये तीन नीचे के चक्र हैं। चौथा चक्र हैः अनाहत, हृदय--जिसको मीरा छाती
कह रही है। जो हृदय से देखेगा, वह कामवासना से मुक्त हो गया। उसके जगत में, उसके जीवन-चैतन्य में प्रेम का आविर्भाव हुआ। अब उसकी आंखों पर प्रेम की छाया होगी। अब भी वही लोग दिखाई पड़ेंगे, लेकिन अब न उनमें देह दिखाई पड़ती, न मन दिखाई पड़ता, न आत्मा दिखाई पड़ती; अब उनमें परमात्मा की झलक मिलनी शुरू होती है। झलक--कभी दिखती, कभी खो जाती। जैसे रात में बिजली कौंध जाए, फिर अंधेरा हो जाता है; एक क्षण भर को रोशनी, फिर अंधेरा, ऐसी झलकें होंगी। फिर पांचवां चक्र हैः विशुद्ध। झलकें ठहरने लगती हैं। देर-देर तक ठहरती हैं। प्रकाश होता है तो रुकता है; एकदम चला नहीं जाता। प्रकाश के क्षण बढ़ने लगते हैं; अंधेरे के क्षण कम होने लगते हैं।
फिर छठवां चक्र हैः आज्ञा। अब प्रकाश बिल्कुल थिर होने लगता है; लेकिन अभी भी कभी-कभी अंधेरा उतर आता है। कभी-कभी। जैसे पहले कभी-कभी रोशनी उतरती थी, अब कभी-कभी अंधेरा उतरता है। दिनों गुजर जाते हैं, मन रसलीन रहता है; भाव में डूबा रहता है। लेकिन एकाध दिन चूक हो जाती है, पैर फिसल जाता है।
उसको मीरा ने कहा हैः यो मन मेरो बड़ो हरामी!
मंदिर चढ़ते-चढ़ते पैर फिसल जाता है। मगर यह अब कभी-कभी होता है। साधारणतः सजगता बनी रहती है।
फिर सातवां चक्र हैः सहस्रार। वह आखिरी सीढ़ी है। उस पर से खड़े होकर जो देखता है, उसे परमात्मा के सिवाय कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।
मूलाधार से जो देखता है, उसे संसार दिखाई पड़ता है, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। और सहस्रार से जो देखता है, उसे परमात्मा दिखाई पड़ता है, संसार दिखाई नहीं पड़ता।
इसलिए तो ज्ञानी और अज्ञानियों के बीच बात नहीं हो पाती; बड़ी मुश्किल बात।
अज्ञानी कहता हैः संसार है; परमात्मा कहां? ज्ञानी कहता हैः परमात्मा है; संसार कहां? उनकी भाषा बड़ी विपरीत हो जाती है। अज्ञानी कहता हैः संसार सत्य है; परमात्मा भ्रांति है, कल्पना है, सपना है, कविता है। ज्ञानी कहता हैः परमात्मा सत्य है; संसार माया है। कैसे हो मेल? इनकी सीढ़ियां अलग-अलग हैं। इनके देखने के ढंग अलग-अलग हैं। संसारी देख रहा है निम्नतम तल से, जैसे कोई जमीन पर घिसटता हो और देखता हो और उसे सिर्फ आस-पास पड़ा हुआ कूड़ा- कचरा दिखाई पड़ता हो। और फिर कोई आकाश में उड़ता हो पंख फैला कर, चांद-तारों से गुफ्तगू करता हो और वहां से देखता हो पृथ्वी को--उसे कोई कूड़ा-कर्कट न दिखाई पड़े। हरी-भरी पृथ्वी! बहू की तरह सजी पृथ्वी! वहां से गड्ढे भी नहीं दिखाई पड़ते; डबरे भी नहीं दिखाई पड़ते। वहां से सब सुंदर दिखाई पड़ता है। सत्यम शिवम सुंदरम है वहां से सब। हम पर निर्भर है, हम कहां से देखते हैं, कैसे देखते हैं, कौन सी जगह से देखते हैं।
ऊंची चढ़-चढ़ पंथ निहारूं...
मीरा कहती हैः ऊपर चढ़-चढ़ कर देखती हूं। मूलाधार से सरकी, स्वाधिष्ठान
से सरकी, मणिपुर से सरकी, अनाहत पर खड़े होकर तुम्हें देखा, विशुद्ध में तुम्हें देखा, आज्ञा से तुम्हें देखा, सहस्रार पर चढ़ आती हूं कभी-कभी, वहां जहां सहस्रदल कमल खिलता है--वहां विराजमान होकर तुम्हें देखती हूं। ऊंचे चढ़-चढ़ कर देखती हूं, ताकि तुम्हें भरपूर देख लूं; ताकि तुम्हें ऐसा देख लूं जैसे तुम हो। ऐसा न देखती रहूं जैसा मैं देखना चाहती हूं। वैसा देख लूं जैसे तुम हो। तुम्हारा रूप प्रकट हो जाए। मेरी कल्पनाएं सब भस्मीभूत हो जाएं। तुम्हारा सत्य आविर्भूत हो जाए।
ऊंची चढ़-चढ़ पंथ निहारूं, रोवै अंखियां राती।
यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती।
और मीरा कहती हैः अब दिखाई पड़ रहा है कि यह सब संसार झूठा है। नाते, रिश्ते, संबंध, सब झूठे हैं।
दोउ कर जोड़यां अरज करत हूं, सुण लीजो मेरी बाती।
दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर रही हूं, मेरी अरजी सुन लेना।

दोनों हाथ जोड़ने की बात तुम्हें समझ लेना जरूरी है। दुनिया में कहीं भी, किसी देश में दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार करने की प्रथा नहीं है। यह आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे एक बड़ी भारी परंपरा है; एक बड़ा बोध है। ये दो हाथ, मनुष्य के भीतर जो द्वंद्व है, उसके प्रतीक हैं। और दोनों हाथ जोड़ कर जब तक निर्द्वंद्व अवस्था न हो जाए, जब तक अद्वैत की अवस्था न हो, तब तक अरजी उस तक पहुंचेगी नहीं। द्वंद्व से उठे सब स्वर संसार में खो जाते हैं। द्वैत से उठी सब चिट्ठियां यहीं संसार में एक-दूसरे के पास पहुंच जाती हैं। तुम्हारी चिट्ठी परमात्मा तक तभी पहुंचेगी, जब अद्वैत से उठे; जब तुम्हारे दोनों हाथ जुड़ जाएं; जब बायां और दायां एक हो जाएं; जब बुद्धि और हृदय एक हो जाएं; जब शरीर और आत्मा एक हो जाएं; जब तुम्हारे भीतर जन्म और मृत्यु एक हो जाएं; जब तुम्हारे भीतर सुख और दुख एक हो जाएं, यश-अपयश एक हो जाएं, सफलता-असफलता एक हो जाएं; जब तुम्हारे सब विरोध संयुक्त हो जाएं, तुम्हारे भीतर एक का स्वर उठे। जिस क्षण तुम्हारे भीतर निर्द्वंद्व भाव-दशा होती है, उसी क्षण तुम्हारी पाती परमात्मा तक पहुंच जाती है; उसके पहले नहीं।
दोउ कर जोड़यां अरज करत हूं...
मीरा कहती हैः दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर रही हूं, अब तो पहुंचनी
ही चाहिए। निर्द्वंद्व होकर प्रार्थना कर रही हूं। तुम्हारे अकेले की ही अभीप्सा बची है, और कोई अभीप्सा नहीं।
... सुण लीजो मेरी बाती।
अब तो तुम मेरी बात सुन लो।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूं मदमातो हाथी।
हालांकि मीरा कहती हैः मैं जानती हूं, भलीभांति जानती हूं, कि हाथ जोड़-जोड़ कर बिठाती हूं, कि हाथ छूट-छूट जाते हैं।
यो मन मेरो बड़ो हरामी...
किसी तरह बांधती हूं एक में और छूट-छूट जाता है, खो-खो जाता है, फिसल-फिसल जाती हूं। तुम्हारे मंदिर की सीढ़ियों पर से भी गिर जाती हूं। वह जो सहस्रदल कमल है, उसको छू पाती हूं कि फिर बिखर जाता है। उठती हूं एक बड़ी लहर की तरह, मगर फिर छितर जाती हूं।
मीरा ने भक्त के मन की पूरी दशा चित्रित की है। ऐसा ही है। कभी-कभी क्षण भर को दो हाथ जुड़ते हैं। और जब दो हाथ जुड़ जाते हैं, तभी आशीष की वर्षा हो जाती है। कभी-कभी तुम्हारे जीवन में भी जुड़ जाते हैं; किसी सुबह, अकारण, तुम्हें समझ में भी नहीं आता कि क्यों! शायद रात नींद अच्छी हुई, शायद शरीर स्वस्थ है। सुबह उठे हो, सूरज उगा है, पक्षी स्तुतियां कर रहे हैं परमात्मा की, मंदिर की घंटी बज रही है--और अचानक तुम्हारे दोनों हाथ जुड़ गए! यह चारों तरफ की स्थिति सहयोगी बनी। अचानक तुम्हारे दोनों हाथ जुड़ गए। एक क्षण को तुम्हारे भीतर निर्द्वंद्व भाव उठा। तुम पकड़ भी नहीं पाओगे और खो जाएगा। लेकिन उस एक क्षण को तुम्हारे भीतर अमृत की धार बह जाएगी। ऐसा सबके जीवन में हुआ है। आकस्मिक हुआ है, इसलिए तुम इसके मालिक नहीं हो। और चूंकि आकस्मिक होता है और इतने जल्दी होता है और खो जाता है कि तुम पकड़ भी नहीं पाते, कि तुम्हें भरोसा भी नहीं आता; तुम सोचते होः रही होगी कोई कल्पना।
कल ही किसी ने मुझे पत्र लिखा। लिखा कि जब यहां आश्रम में होती हूं... (किसी संन्यासिनी का पत्र है)... तो चित्त बड़ा शांत होता है। नाचती हूं, तो भी भीतर सब थिर रहता है। गाती हूं, तो भी भीतर सन्नाटा होता है। और तब उन क्षणों में आपकी यह बात, कि तुम सभी बुद्ध हो, पूरी-पूरी समझ में आ जाती है। लेकिन गई बाजार की तरफ कि सब चूक जाता है, सब खो जाता है। फिर यह बात कि प्रत्येक बुद्ध है, बिल्कुल समझ में नहीं आती। राह से गुजरती हूं, दुकान पर चीजें दिखाई पड़ जाती हैं, खरीदने का मन हो जाता है--यह खरीद लूं, वह खरीद लूं। तब भरोसा नहीं आता कि मैं और कैसी बुद्ध! राह पर सुंदर किसी व्यक्ति को देखती हूं, मन आकर्षित हो जाता है। तब भरोसा नहीं आता आपकी बात पर कि मैं और कैसी बुद्ध! और ऐसा भी नहीं है कि ऐसे क्षण नहीं आते जब भरोसा न आता हो; ऐसे क्षण भी आते हैं। कभी-कभी दोनों हाथ जुड़ जाते हैं।

दोनों हाथ हैं; मुश्किल से जुड़ते हैं। लेकिन जोड़ने की सारी कला ही ध्यान, प्रार्थना, पूजा, अर्चना, या जो भी नाम दो--दोनों हाथ जोड़ने की कला का नाम है। ऐसी घड़ी पैदा करनी है जहां तुम्हारे दोनों हाथ सहजता से जुड़ जाएं। ऐसी भाव-दशा, ऐसा बोध जगाना है।
इसलिए कोई अवसर मत चूको। सुबह सूरज उगता हो, झुक जाओ नमस्कार में। इसलिए हिंदू सूर्य नमस्कार करते रहे। क्योंकि जब सूरज उगता है, सारे जगत में नया पदार्पण हो रहा है प्रकाश का। इस घड़ी को चूको मत। कौन जाने हाथ जुड़ जाएं! इस लहर पर सवार हो जाओ। सूरज के रथ पर सवार हो जाओ। रात टूटी है, अंधेरा टूटा है, तंद्रा टूटी है; वृक्ष जागे, पक्षी जागे, पशु जागे, लोग जागे--जागरण की घड़ी है। कौन जाने इस जागरण की घड़ी में, इस प्रवाह में तुम भी बह जाओ और क्षण भर को जागरण लग जाए, क्षण भर को जागरण बन जाए, सध जाए! मत चूको।
इसलिए हिंदू सूर्य नमस्कार करते हैं। वह नमस्कार अर्थपूर्ण है। वह सूरज को ही नहीं है नमस्कार। वह सिर्फ एक घड़ी का उपयोग कर लेना है, ताकि दोनों हाथ जुड़ जाएं। और अगर कोई भाव से झुका है, बरसती हुई सूरज की रोशनी, कोई भाव से झुक गया है, एक होकर झुक गया है, तो सूरज खो जाएगा, सूरज की जगह परमात्मा की रोशनी बरसने लगेगी।
रात चांद निकला है, जोड़ लो हाथ, झुक जाओ पृथ्वी पर। गुलाब का फूल खिला है, मत चूको अवसर। बैठ जाओ पास, जोड़ लो हाथ, झुक जाओ। कौन जाने यह गुलाब की ताजगी, यह गुलाब जो गुलाल फेंक रहा है, कृष्ण ने ही फेंकी हो! है तो सब गुलाल उसी की। अब तुम ऐसे मत बैठे रहना कि वह लेकर पिचकारी आएगा तब। कुछ नासमझ ऐसे बैठे हैं कि जब वह पिचकारी लेकर आएगा तब। और कपड़े भी उन्होंने पुराने पहन रखे हैं कि कहीं खराब न कर दे। वह रोज ही आ रहा है, प्रतिपल आ रहा है। उसके सिवाय और कुछ आने को है भी नहीं। वही आता है।
इन वृक्षों में से झलकती हुई सूरज की किरणों को देखते हो! इन वृक्षों में जो किरणों ने जाल फैलाया है, उसे देखते हो! इन वृक्षों के बीच जो धूप-छाया का रास हो रहा है, उसे देखते हो! यह उसी का रास है। इन वृक्षों में जो पक्षी कलरव कर रहे हैं, यह वही है। अब तुम यह मत सोचो कि जब वह बांसुरी बजाएगा, तब हम सुनेंगे। यह उसी की बांसुरी है। कभी पक्षियों से गाता है, कभी बांसों से भी गाता है। यह सारा अस्तित्व उसका है। यह सब गुलाल उसकी है। चंदन की सुगंध में उसी की सुगंध है। वह फेंक रहा है, लुटा रहा है। मगर तुम्हारे दोनों हाथ नहीं जुड़े हैं; सो चूक-चूक जाते हो। दोनों हाथ जोड़ो, अंजुलि बनाओ। दोनों हाथ जोड़ो, ताकि तुम उसे भर लो। कोई अवसर न चूको। जहां तुम्हें लगे कि यहां इशारा है, वहीं झुक जाओ। मंदिर-मस्जिद की राह मत देखो।
अजीब मूढ़ता छाई है लोगों पर! हिंदू चला जा रहा है अपने मंदिर की तलाश में, मुसलमान चला जा रहा है अपनी मस्जिद की तलाश में। मीलों चलता जा रहा है। रास्ते भर परमात्मा फैला हुआ है। राह के किनारे वृक्षों में खड़ा है। रास्ते के किनारे खेलते बच्चों में हंस रहा है। आकाश में उड़ते पक्षियों में उड़ रहा है। शुभ्र बदलियों में तैर रहा है। तुम पर सब तरफ से रोशनी फेंक रहा है; गुलाल लुटा रहा है; चंदन बांट रहा है। और तुम मूढ़ की तरह मंदिर चले जा रहे हो! तुम्हें अगर यहां नहीं दिखाई पड़ता तो मंदिर में कैसे दिखाई पड़ेगा? इतने विराट में नहीं दिखाई पड़ता, उस क्षुद्र से मंदिर में कैसे दिखाई पड़ेगा? इतने स्वाभाविक रूप में नहीं दिखाई पड़ता, तो वहां तो आदमी ने व्यवस्था बनाई है, वहां तो आदमी के बनाए हुए देवता विराजमान हैं, उनमें तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगा?
वहां भी दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन औपचारिकता वश तुम झुक जाते हो। जो फूल
के पास न झुका, जो सूरज के सामने न झुका, जो बहती हुई नदी की धार के पास न झुका--वह मंदिर और मस्जिद में झुके, बात झूठी है। उसने धोखा दे लिया अपने को और दूसरों को।
तो असली सवाल है, जहां भी दोनों हाथ जुड़ जाएं, जैसे भी दोनों हाथ जुड़ जाएं। खोना ही मत अवसर। चुनाव भी मत करना। चुनाव की वजह से चूक रहे हो। जैन है, वह जाता है, जैन मुनि के सामने हाथ जोड़ कर झुकता है; हिंदू संन्यासी के सामने हाथ जोड़ कर नहीं झुकता। चुनाव है। जड़ता है। हिंदू

मुसलमान फकीर के सामने नहीं झुकता; मुसलमान के सामने, और झुके! और निश्चित ही मुसलमान हिंदू संत के सामने नहीं झुकता।
ये चुनाव तुम्हें छोटा कर रहे हैं।
चुनाव छोड़ो। जहां झुकने का अवसर हो, चूको ही मत। और तब तुम पाओगेः चौबीस घंटे में बहुत अवसर आते हैं जब दोनों हाथ जुड़ जाते हैं। और जितने- जितने हाथ जुड़ने लगेंगे, उतने-उतने वे अपूर्व क्षण तुम्हारे जीवन में उतरने लगेंगे--वे अमूल्य क्षण, वे अमृत क्षण।
दोउ कर जोड़यां अरज करत हूं, सुण लीजो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूं मदमातो हाथी।
सतगुरु हस्त धरयो सिर ऊपर, अंकुस दे समझाती।
पल-पल तेरा रूप निहारूं, हरि चरणां चित राती।
इस देश में सदियों से सदगुरु सिर पर हाथ रखता है। वह प्रतीक है। वह प्रतीक है तुम्हारी ऊर्जा को सिर पर खींच लेने का। तुम्हारी ऊर्जा पड़ी है कहीं नीचे के चक्रों में। गुरु तुम्हारे सिर पर हाथ रखता है--वह तुम्हारे सहस्रार पर हाथ रखता है। गुरु तुम्हारी ऊंचाई से, तुम्हारी ऊंची से ऊंची सीढ़ी पर हाथ रखता है। गुरु की ऊर्जा के संपर्क में तुम्हारी ऊर्जा भी खींची जा सकती है। गुरु चुंबक है। वह तुम्हारे सिर पर हाथ रखता है, ताकि क्षण भर को ही सही, तुम्हारे सहस्रार की याद तुम्हें आ जाए। क्षण भर को ही सही, तुम्हारी ऊर्जा ऊर्ध्वगामी हो जाए।
जब गुरु शांति से तुम्हारे सिर पर हाथ रखे है, तो तुम भूल जाओगे नीचे
के तल को। मस्ती छाने लगेगी। कुछ गुनगुनाने लगेगा। कुछ कंपने लगेगा। ऊर्जा उठेगी। एक प्रगाढ़ धारा की तरह ऊर्जा ऊपर की तरफ खिंचेगी। गुरु हाथ रखता है सिर पर। शिष्य चरणों में सिर रखता है। वे दोनों एक ही बात के प्रतीक हैं। गुरु सिर पर हाथ रखता है, ताकि ऊर्जा को खींचे। शिष्य पैर पर सिर रखता है, ताकि ऊर्जा को उंडेले। लेकिन असली बात एक ही है कि ऊर्जा सहस्रार में आ जाए। जब शिष्य सिर झुकाता है तो वह भी यही कह रहा है कि यह है जगह, जहां मेरी ऊर्जा को चाहूंगा; यह है स्थान, जहां जीना चाहता हूं; यह सीढ़ी है, जहां उठना चाहता हूं। और गुरु जब सिर पर हाथ रखता है तब वह भी यही कह रहा है कि यह है जगह, जो मूल्यवान है; यह है मोक्ष, यहां उठ जाओ।
सतगुरु हस्त धरयो सिर ऊपर, अंकुस दे समझाती।
जब से गुरु ने मेरे सहस्रार पर हाथ रखा है तब से बहुत-बहुत समझाती हूं
इस मन को; फिर भी हरामी है; फिर भी धोखेबाज है; फिर भी कभी-कभी भाग जाता है, जैसे पागल हाथी। अंकुश रखती हूं। जब से गुरु ने सिर पर हाथ रखा है तब से अनुभव में एक बात आ गई है कि रस वहां है; तब से एक बात समझ में आ गई है कि सौभाग्य वहां है; तब से एक अनुभव हो गया है कि रोशनी वहां है, कि परमात्मा वहां है। लेकिन फिर भी यह मन है धोखेबाज; फिर-फिर उतर जाता है। पुरानी आदतें हैं। फिर चला जाता है नीचे के चक्रों में। फिर सोचने लगता है नीचे के भाव। फिर सोचने लगता है नीचे के सपने। फिर वासनाओं में उलझ जाता है। लेकिन मीरा कहती हैः तुम मेरा ख्याल रखना। मैं दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती हूं। मैं तो तुम्हें भूल ही नहीं पाती; तुम भी अगर कभी-कभी मुझे याद कर लिए तो यात्रा पूरी हो जाएगी।
मोहे लागी लगन गुरु चरनन की।
चरन बिना कछुवै नहिं भावै, जग माया सब सपनन की।
एक बार गुरु के चरण छू लिए, तो फिर कुछ और भाएगा भी नहीं। और अगर चरण छूकर भी कुछ भाता हो तो इतना ही समझ लेना कि चरण अभी छुए नहीं। औपचारिकता पूरी कर ली होगी। गए, गुरु के चरण छू आए। चमड़ी से चमड़ी छू गई, लेकिन अंतर-ऊर्जाओं का मिलन नहीं हुआ। नहीं तो यही होगा, जो मीरा कहती है--
मोहे लागी लगन गुरु चरनन की।
एक बार वह ज्योतिर्मय स्पर्श हो जाए, तो फिर लगन लग जाती है। जैसे पपीहा रटता हैः पी-कहां! पी-कहां! पी-कहां! जैसे चातक टेरता आकाश की तरफ; राह देखता है; स्वाति की बूंद की प्रतीक्षा करता है--ऐसी ही दशा भक्त की हो जाती है।
चरन बिना कछुवै नहिं भावै, जग माया सब सपनन की।

और जिसने एक बार गुरु के चरणों में सहस्रार की थोड़ी सी झलक पा ली, खिलते देख लिए अपने भीतर के अंतर-कमल, फिर अब सब सपना लगेगा।
तुम लाख कहो कि संसार सपना है, तुम्हारा कहना सिर्फ कहना है। तुम लाख दोहराओ कि संसार माया है, मगर तुम्हारा जीवन कहे चला जाता है कि नहीं, माया नहीं है, यही सत्य है। तुम्हारे वचन नहीं, तुम्हारा अंतस्तल ही गवाही दे सकता है।
इस देश में सभी लोग संसार को माया कहते हैं। जो देखो वही संसार को माया बताता है। और उसी माया में सारे लोग उलझे हैं और बुरी तरह उलझे हैं। अच्छा है, जब तक तुम्हें माया दिखाई न पड़े, कम से कम मत कहो कि माया है, ईमानदारी तो होगी। परमात्मा तुम्हें बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ता है और कहते हो कि परमात्मा सत्य है। ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या--कहे चले जाते हो, मगर ब्रह्म का कोई अनुभव नहीं है। और जो अनुभव है, वह इसी जगत का है। और इसके ही अनुभव को तुम जी रहे हो। कम से कम यह झूठ तो छोड़ो। इस देश का सौभाग्य था कि यहां महाज्ञानी हुए। और इस देश का दुर्भाग्य है कि इस देश के सभी अज्ञानियों ने ज्ञानियों के वचन कंठस्थ कर लिए। यहां तोतों की इतनी जमात हो गई है!
मोहे लागी लगन गुरु चरनन की।
चरन बिना कछुवै नहिं भावै, जग माया सब सपनन की।
भवसागर सब सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहे तरनन की।
मीरा कहती हैः मुझे तरने की भी चिंता नहीं है। तरना क्या है? जिस दिन
से तुम्हें देखा, भवसागर सूख गया।
यह बात अनूठी है। यह बात बड़ी प्यारी है। इसे खूब सम्हाल कर रख लेना हृदय में। यह हीरों जैसी मूल्यवान बात है। क्यों इतनी मूल्यवान है? क्योंकि जिसने उसका दर्शन पा लिया, एक क्षण को भी उसकी झलक पा ली, उस क्षण में ही संसार असत्य हो गया। अब इसको भवसागर क्या कहना; यह तो सूखा रेगिस्तान हो गया। अब इसको तरने की बात भी क्या है; यह तो कभी था ही नहीं। यह ऐसा ही समझो कि रात तुमने सपना देखा कि समुद्र के किनारे खड़े हो और
उस तरफ जाना है, और बड़े रो रहे हो, और बड़े चिल्ला रहे हो कि कोई मांझी मिल जाता, कि कोई नाविक आ जाता, कि कोई जहाज किनारे लग जाता। दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता और तुम.जार-.जार हुए जा रहे हो और रो रहे हो और चिल्ला रहे हो। उसी चिल्लाने और रोने में तुम्हारी नींद खुल गई। और तुमने पाया कि कोई सागर नहीं है। तुम हंसने लगे। तुमने कहाः मैं व्यर्थ ही परेशान होता था। सागर ही नहीं है, तो पार होने की बात क्या? मांझी का सवाल क्या? नाव की जरूरत कहां?
भवसागर सब सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहे तरनन की।
मुझे तरने की भी कोई चिंता नहीं है।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आस वही गुरु सरनन की।
मीरा कहती हैः बस एक ही आशा, एक ही अभीप्सा कि जिन चरणों में बैठ कर तुम्हारा स्वाद मुझे मिला है, जिन चरणों में बैठ कर मेरी नींद टूटी है, उन चरणों में पूरी की पूरी डूब जाऊं।
जिस दिल की हर तड़प थी नई जिंदगी मुझे
जांबख्शो-जांनवाज वो अब दिल नहीं रहा
है दर्द अब भी दर्द मगर वो कसक नहीं
अपना वो अब जिगर नहीं वो दिल नहीं रहा
है बर्क अब भी दुश्मने-खिरमन, मगर मुझे
जाने न क्यों कोई गमे-हासिल नहीं रहा
जब से हुआ हूं खाके-कफे-पाए-दोस्त मैं
मुझको ख्याले-जादाओ-मंजिल नहीं रहा
जब से उस परम प्रिय, उस परम मित्र के पैरों की धूल हो गया हूं, तब से न
तो कहीं जाना है, न कोई रास्ता है, न रास्तों का कोई ख्याल है, न कोई मंजिल है।
जब से हुआ हूं खाके-कफे-पाए-दोस्त मैं
जब से उस प्यारे दोस्त के पैरों की धूल हो गया हूं।
मुझको ख्याले-जादाओ-मंजिल नहीं रहा

अब तो न कोई मंजिल है, न कहीं जाना है, न मंजिल तक ले जाने वाले कोई रास्ते हैं, न रास्तों की मुझे कोई सुध है। सब बात खतम हो गई।
मीरा कहती हैः बस इतना ही बना रहे--आस वही गुरु सरनन की।
होरी खेलते हैं गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति ब्रजनारी।
इस देश का यह सौभाग्य है। धर्म तो दुनिया में और भी पैदा हुए, लेकिन नाचता हुआ धर्म सिर्फ इस देश में पैदा हुआ। क्राइस्ट उदास मालूम होते हैं। मोहम्मद के जीवन में भी नृत्य नहीं है; युद्ध है, नृत्य नहीं है।
जरथुस्त्र बड़े ज्ञानी हैं, लेकिन बांसुरी जरथुस्त्र के पास नहीं। लाओत्सु परम दशा में रहे, लेकिन उस परम दशा से वीणा की टंकार नहीं उठी, पैरों में घुंघरू नहीं बंधे।
इस देश का सौभाग्य है कि कृष्ण हुए। और इस देश ने ठीक ही किया जो कृष्ण
को पूर्ण अवतार कहा। राम सुंदर हैं; मर्यादा पुरुषोत्तम हैं--लेकिन कुछ कमी है। नृत्य नहीं, गान नहीं, मस्ती नहीं। राम के जीवन में मधुशाला नहीं है। वहां पीना-पिलाना नहीं है। वहां रसधार नहीं बहती। रूखा-सूखा है सब।
अतिशय रूखा-सूखा है। मर्यादा रखनी हो तो आदमी रूखा-सूखा हो ही जाता है। बुद्ध अपूर्व हैं, लेकिन मौन हैं। मौन उनका गीत नहीं बन पाया।
महावीर खूब हैं, अनूठे हैं, लेकिन इस जगत से महावीर का मेल नहीं पड़ता।
महावीर जिस वृक्ष के पास खड़े हैं, उस वृक्ष से भी मेल नहीं बैठता; क्योंकि वृक्ष कभी खिलता है हजार-हजार फूलों में, महावीर कभी नहीं खिलते। जिन चांद-तारों के नीचे महावीर खड़े होते हैं, उनसे भी मेल नहीं है। वे चांद-तारे नाच रहे हैं, सदा से नाच रहे हैं। रास चल रहा है। अनंत रास चल रहा है। महावीर का उस रास से कुछ संबंध नहीं जुड़ता। महावीर जहां खड़े हैं, कहानियां तो ये हैं कि कभी पक्षियों ने भी उनके बालों में घोंसले बना लिए। मगर उन पक्षियों में जो गीत फूटते हैं, वे महावीर में कभी नहीं फूटे। कहानी तो यह है कि वृक्षों की लताएं महावीर के शरीर पर चढ़ गईं, खिलीं, फूलों को उपलब्ध हुईं, गंध बिखरी; मगर वैसे फूल महावीर में कभी नहीं खिले।
महावीर खूब हैं। मगर हिंदुओं ने ठीक ही किया, कृष्ण के अतिरिक्त किसी
को पूर्ण अवतार नहीं कहा। कृष्ण की पूर्णता क्या है? कृष्ण की पूर्णता यही है कि कृष्ण में परमात्मा और जगत मिलता है, मेल खाता है। कृष्ण संगम हैं। वहां देह और आत्मा का नाच है, नृत्य है। कृष्ण के साथ जगत का अपूर्व मेल है--चांद-तारों, फूलों, पक्षियों, वृक्षों, नदियों, पहाड़ों, मनुष्यों-- कृष्ण जीवन से जरा भी विपरीत नहीं हैं; जीवन के मध्य में खड़े हैं।
होरी खेलत हैं गिरधारी।
कृष्ण हैं अकेले, जिनमें रस है और रास है; जिनमें रहस्य है, सौंदर्य है,शृंगार है। जीवन की बड़ी गरिमा, महिमा कृष्ण में प्रकट हुई है। सब रंगों में, सब कलाओं में जीवन कृष्ण में प्रकट हुआ है।
होरी खेलते हैं गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति ब्रजनारी।
चंदन केसर छिड़कत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
ऐसा चंदन और केसर छिड़कता हुआ परमात्मा पृथ्वी पर कहीं किसी ने कल्पना
भी नहीं की है।
भरि-भरि मूठि गुलाल लाल चहुं देत सबन पै डारी।
यह रसमुग्ध दशा, यह समाधि, यह जीवन के साथ अविरोध! भक्त के लिए कृष्ण
के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। भक्त बुद्ध के पास नहीं जा सकता। वहां मुरली नहीं बजती, चंग नहीं बजता, डफ नहीं बजता। वहां ध्यानी बैठ सकता है चुप, मगर प्रेमी क्या करे? भक्त क्राइस्ट के पास भी नहीं जा सकता। वहां करुणा है अपार, बलिदान है महान, जगत के लिए अपने को समर्पित करने की बड़ी कुर्बानी है; मगर उदासी है, सन्नाटा है। चंदन-केसर वहां कोई नहीं छिड़कता। वहां चंदन-केसर की सुगंध नहीं। और कोई नहीं है कि गुलाल फेंक दे। कोई नहीं है जो तुम्हें गैरिक रंग में रंग दे।
ख्याल रखना, गैरिक रंग, गुलाल का रंग, बहुत बातों का प्रतीक है। सूरज का। सुबह का ऊगता सूरज गैरिक होता है। जीवन का, रोशनी का, फूलों का--सारे

फूल हरियाली में लाल होते हैं। रक्त का, लहू का--वही जीवन की धारा है।
उल्लास का रंग है लाल। आनंद का रंग है लाल।
भरि-भरि मूठि गुलाल लाल चहुं देत सबन पै डारी।
छैल-छबीले नवल कान्ह संग...
परमात्मा की ऐसी छैल-छबीली प्रतिमा जिन्होंने खोजी, जिन्होंने सोची, जिन्होंने विचारी, उन्होंने अपूर्व रूप से प्रेम किया होगा, तभी यह हो पाया। इस रूप में परमात्मा का अवतरण तभी हो सकता है, जब इस रूप में हजारों- लाखों लोग परमात्मा को पुकारे हों। इस रूप में अवतरण तभी हो सकता है, जब लाखों इस रूप में स्वागत करने को तैयार रहे हों। परमात्मा उसी रूप में उतरता है, जिस रूप में हम पुकारते हैं। हमारी पुकार ही उसे लाती है। छैल-छबीले नवल कान्ह संग...
नये हैं कृष्ण--सदा नये हैं! छैल-छबीले हैं! बड़े सुंदर हैं! सारे जगत
का सौंदर्य उनमें समाया हुआ है। सारे जगत का सौंदर्य जैसे संगठित हो आया है, एक जगह हो गया है, एक स्थान पर एकत्रित हो गया है! जैसे सारे फूलों की गंध और सारे पक्षियों के गीत और सारे तारों की रोशनी और सारी नदियों का कलरव, सारे वाद्यों का संगीत, सारी आंखों की गरिमा, सारे चेहरों का रूप एक जगह संगृहीत हो गया है!
छैल-छबीले नवल कान्ह संग, स्यामा प्राण प्यारी।
और "श्यामा" उनके आस-पास नाच रही है। मीरा राधा के लिए अक्सर "श्यामा" शब्द का उपयोग करती है; वह बड़ा प्यारा है। क्योंकि जो श्याममय हो गई, अब उसका अलग नाम क्या! इसलिए "राधा" न कह कर मीरा अक्सर "श्यामा" कहती है।
श्याम जैसी ही हो गई जो। श्याममय हो गई। श्याम हो गई।
और कृष्ण के पास नाचना हो तो श्यामा हुए बिना और कोई उपाय भी नहीं। जिसे भी नाचना हो, उसे श्यामा होना ही पड़ेगा।
अब यह ख्याल रखना, भक्त को पुरुष की कठोरता छोड़नी पड़ती है। भक्त को स्त्रैण... सौंदर्य, सरलता, ग्राहकता ग्रहण करनी पड़ती है। भक्त तो स्त्री ही होता है। वह पुरुष हो कि स्त्री, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। भक्ति स्त्रैण है। क्योंकि भक्त के लिए तो सिर्फ एक ही प्यारा है--वह कृष्ण है।
एक ही प्रीतम है।
श्याम के पास श्यामा होने की तैयारी हो, तो ही भक्त गति कर पाता है। अहंकार छोड़ना पड़ेगा। स्त्री को तो इतना कठिन नहीं है भक्त होना, पुरुष को बहुत कठिन है। क्योंकि उसे पुरुष होने का अहंकार भी छोड़ना पड़ेगा।
इसलिए कभी-कभी ऐसा हुआ है कि जब पुरुष कोई भक्त हुआ है तो स्त्रियों
से भी बाजी मार ले गया है। मीरा का भक्त होना तो बिल्कुल ठीक, सुगम है; लेकिन चैतन्य का? चैतन्य का भक्त होना... ! मीरा को तो अहंकार छोड़ना है, चैतन्य को दो अहंकार छोड़ने हैं। अहंकार तो छोड़ना ही है, फिर पुरुष होने का भाव भी छोड़ना है। वह और भी गहन अहंकार है। लेकिन श्यामा हुए बिना कोई मार्ग नहीं है। भक्त बनना हो तो श्यामा बनना पड़ेगा।
छैल-छबीले नवल कान्ह संग, स्यामा प्राण प्यारी।
गावत चार धमार राग तंह, दै दै कल करतारी।
फागु जु खेलत रसिक सांवरो...
वह प्यारा फाग खेल रहा है। रोज खेल रहा है! फागुन में ही नहीं, रोज खेल रहा है, दिन-रात खेल रहा है। आंख खोलो और देखो। रोज गुलाल फेंक रहा है। तुम अंधे हो। कभी-कभी तो तुम समझते हो कि गुलाल नहीं, आंख में धूल पड़ गई। रोज पुकार रहा है। रोज तुम्हें रंगने को राजी है, तत्पर है। मगर तुम रंगे जाने को राजी नहीं हो। इसलिए फागुन चूका जाता है।
भक्त के लिए बारह मास फागुन है। फाग ही चल रही है। क्योंकि परमात्मा प्रतिपल अपनी सृष्टि से खेल रहा है; निरंतर लेन-देन चल रहा है।
फागु जु खेलत रसिक सांवरो, बाढ़यो ब्रज रस भारी।
परमात्मा तो खेल ही रहा है; अगर तुम भी समझ जाओ इस खेल को, तो तुम्हारे हृदय में बड़े रस की वर्षा हो जाए। ब्रज में बहुत रस की बाढ़ आ जाए।
ब्रज से कुछ अर्थ किसी भौगोलिक स्थान से नहीं है। ब्रज है तुम्हारे भीतर प्रेम की पुकार का नाम। ब्रज है तुम्हारे भीतर प्रार्थना का नाम। जब भी तुम उसे पुकारोगे आतुरता से, तुम ब्रज हो गए। तुम्हारे भीतर अगर उसके

विरह की आग ऐसे बहने लगे जैसे ब्रज में यमुना बहती है, तो यमुना के किनारे तुम उस रसिक को नाचता हुआ पाओगे।
हर काल में, हर समय में, हर स्थिति में परमात्मा उपलब्ध है। ये बातें अतीत की नहीं हैं, न भविष्य की--ये बातें शाश्वत के लिए सत्य हैं।
फागु जु खेलत रसिक सांवरो, बाढ़यो ब्रज रस भारी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मोहन लाल बिहारी।
मीरा कहती हैः खूब रस बह रहा है, खूब रस बढ़ रहा है, खूब परमात्मा बरस रहा है! फाग हो रही है। ऐसी फाग तुम्हारे जीवन में भी हो सकती है। मीरा पर हम विचार इसीलिए करेंगे कि शायद मीरा को सुनते-सुनते तुम्हारे हृदय को भी पुलक लग जाए। बगिया से कोई गुजरता है, तो चाहे फूलों को न भी छुए तो भी वस्त्रों में थोड़ी फूलों की गंध समा जाती है। माली फूल तोड़ कर बाजार ले जाता है, लौट कर पाता है कि हाथ फूलों की सुवास से भर गए हैं।
मीरा को सुनते-सुनते शायद रस की एकाध-दो बूंद तुम्हारे चित्त में भी
पड़ जाएं। और ध्यान रखना, रस की एक-एक बूंद एक-एक सागर है। एक बूंद डुबाने को काफी है। एक बूंद तुम्हें सदा को डुबाने के लिए काफी है। क्योंकि फिर अंत नहीं आता। एक बूंद आई कि सिलसिला शुरू हुआ। पहली बूंद ही कठिन बात है। फिर तो सब सरल हो जाता है।
खोलना अपने हृदय को। इन आने वाले दस दिनों में नाचना, गाना, आनंदित होना, ऊंचे चढ़-चढ़ कर देखने की कोशिश करना।
म्हारो जनम-मरण को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊंची चढ़-चढ़ पंथ निहारूं, रोवै अंखियां राती।
यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती।
दोउ कर जोड़यां अरज करत हूं, सुण लीजो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूं मदमातो हाथी।
सतगुरु हस्त धरयो सिर ऊपर, अंकुस दे समझाती।
पल-पल तेरा रूप निहारूं, हरि चरणां चित राती।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
बारहवां प्रवचन

मनुष्यः अनखिला परमात्मा

पहला प्रश्नः आपने कहा कि संसार से विमुख होते ही परमात्मा से सन्मुखता हो जाती है। आखिर संसार कहां खत्म होता है, परमात्मा कहां शुरू होता है? इस रहस्य, पहेली पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

संसार का अर्थ हैः आकांक्षा, तृष्णा, वासना, कुछ होने की चाह। संसार
का अर्थ, ये बाहर फैले हुए चांद-तारे, वृक्ष, पहाड़-पर्वत, लोग--यह नहीं है। संसार का अर्थ हैः भीतर फैली हुई वासनाओं का जाल। संसार का अर्थ हैः मैं जैसा हूं, वैसे से ही तृप्ति नहीं; कुछ और होऊं, तब तृप्ति होगी। जितना धन है, उससे ज्यादा हो। जितना सौंदर्य है, उससे ज्यादा हो। जितनी प्रतिष्ठा है, उससे ज्यादा हो। जो भी मेरे पास है, वह कम है--ऐसा जो कांटा गड़ रहा है, वही संसार है। और ज्यादा हो जाए, तो मैं सुखी हो सकूंगा। जो मैं हूं, उससे अन्यथा होने की आकांक्षा संसार है।
जिस दिन यह आकांक्षा गिर जाती है; जिस दिन तुम जैसे हो वैसे ही परम तृप्त; जहां हो वहीं आनंद रसविमुग्ध; जैसे हो वैसे ही गदगद--उसी क्षण संसार मिट गया। और संसार का मिटना और परमात्मा का होना दो चीजें नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि पहले संसार मिटा, फिर बैठे राह देख रहे हैं कि अब परमात्मा कब होगा। संसार का मिटना और परमात्मा का होना एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। चाहे कहो रात मिट गई, चाहे कहो सुबह हो गई, एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। ऐसा नहीं है कि रात मिट गई, फिर लालटेन लेकर खोज रहे हैं कि सुबह कहां है। रात मिट गई तो सुबह हो गई। संसार गया कि परमात्मा हो गया। सच तो यह है, यह कहना कि परमात्मा हो गया, ठीक नहीं। परमात्मा तो था ही; संसार के कारण दिखाई नहीं पड़ता था। तुम कहीं और भागे हुए थे, इसलिए जो निकट था वह चूकता जाता था। तुम्हारा मन कहीं दूर चांद-तारों में भटकता था, इसलिए जो पास था वह दिखाई नहीं पड़ता था।
पश्चिम के एक बड़े विचारक माइकल अदम ने अपने संस्मरण लिखे हैं। समझने योग्य संस्मरण हैं। लिखा है कि सब तरह से सुख को खोजने की कोशिश की; जैसा सभी करते हैं--धन में, पद में, यश में। कहीं सुख पाया नहीं। सुख को जितना खोजा उतना दुख बढ़ता गया। जितनी आकांक्षा की कि शांति मिले, उस आकांक्षा के कारण ही अशांति और सघन होती चली गई। अतीत में सुख खोजा; बीत गया जो, उसमें सुख खोजा, और नहीं पाया; और भविष्य में सुख खोजा, कि अभी जो नहीं हुआ, कल जो होगा; वह कल कभी नहीं आया। जो कल आ गए, अतीत हो गए, उनमें सुख की कोई भनक नहीं मिली; और जो आए नहीं--आते ही नहीं--उनमें तो सुख कैसे मिलेगा! दौड़-दौड़ थक गया। सब दिशाएं छान डालीं। सब तारे टटोल लिए। सब कोने खोज लिए। फिर सोचाः सब जगह खोज चुका--अतीत में, भविष्य में, यहां-वहां; अब जहां हूं वहीं खोजूं; जो हूं उसी में खोजूं; इसी क्षण में खोजूं, वर्तमान में खोजूं--शायद वहां हो। और वर्तमान में खोजा और वहां सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं था। तुम चकित होओगे। संस्मरण पढ़ते वक्त ऐसा लगता है कि यह आदमी यह कहने जा रहा है कि वर्तमान में खोजा और पाया। नहीं; लेकिन वह कहता हैः वर्तमान में खोजा और वहां सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं। वहां पीड़ा ही पीड़ा का अंबार है, राशि लगी है। तो फिर एक बात तय हो गई कि सुख है ही नहीं। जब कहीं मिलता नहीं, तो नहीं ही होगा। तो जो नहीं है, उसे क्या खोजना! तो फिर खोज छोड़ दी। फिर दुख के साथ रहना ही भाग्य है, तो दुख को स्वीकार कर लिया। दुख ही जीवन है, इस समीकरण को और इनकार करने का कोई उपाय न रहा। जैसा है वैसा है। वृक्ष हरे हैं। रात अंधेरी है। दिन उजाला है। आदमी दुखी है। दुख को स्वीकार कर लिया। सुख होता ही नहीं। सुख केवल सपना है, मृग-मरीचिका है। है दुख। गड़ता दुख है। तो हम सुख के सपने बना कर अपने को भुलाए रखते हैं, भरमाए रखते हैं। सुख मात्र आशा है। जब सुख होता ही नहीं तो खोजना क्या! तो व्यर्थ खोज क्या करनी!

तो अदम ने कहाः दुख से राजी हो गया। दुख को भोगने लगा। दुख से कुछ भेद
न रखा। दुख से कुछ दुश्मनी भी न रखी। यही मित्र है, यही संगी-साथी है, यही मैं हूं। और तब अचानक पाया कि सुख की एक तरंग उठ रही है। दुख की स्वीकृति में सुख की तरंग उठने लगी--जो कभी न उठी थी! तब अचानक पाया कि सुख था, लेकिन खोजने के कारण चूकता जाता था।
तुम सुख को खोजने के कारण चूक रहे हो।
संसार का अर्थ हैः सुख को खोजने वाला मन।
परमात्मा का अर्थ हैः सुख नहीं है; जो है, उसकी स्वीकृति। जैसा है, वैसी ही स्वीकृति।
उसी क्षण सुख की तरंग आने लगती है। फिर तुम्हें सुख को खोजने जाना नहीं पड़ता--किसी अनजाने द्वार से सुख तुम्हें खोजता आ जाता है।
इस बात को खूब ध्यानपूर्वक समझना। इसमें ध्यान का सारा राज छिपा है। इससे अन्यथा ध्यान और कुछ भी नहीं है। जरा सोचो! जो है, जैसा है--उससे अन्यथा नहीं होगा। नहीं हो सकता है! नहीं कभी हुआ है। उपाय ही नहीं है! फिर करने को कुछ भी न बचा। फिर जहां थे, वहीं थिर रह गए। फिर दौड़ गई, तृष्णा गई। और जहां दौड़ गई, तृष्णा गई, क्या वहां सुख तुम पर बरस न जाएगा? फिर कमी क्या रही? कुछ भी तो कमी न रही। जब तुम पूरे के पूरे स्वीकार कर लिए जीवन को जैसा है, उसी स्वीकृति में तो स्वर उठ आता है सुख का।
सुख तो चारों तरफ है, लेकिन तुम खोज रहे हो। कभी-कभी देखा, आदमी अपनी नाक पर चश्मा रखे होता है और उसी चश्मे से अपने खोए हुए चश्मे को खोजता है! भागता है, खोजता है, यहां-वहां। जल्दबाजी में हो तो और मुश्किल हो जाती है। किताबें पलटता है, बिस्तर खोलता है। और चश्मा नाक पर चढ़ा है। कभी-कभी कान में तुम खोंस लेते अपनी कलम और फिर खोजने लगते। फिर तुम जब तक खोजते रहोगे तब तक पा न सकोगे। खोज ही बाधा हो जाएगी।
संसार का अर्थ हैः खोज। परमात्मा का अर्थ हैः खोज गई; अब खोजना नहीं है। परमात्मा को भी नहीं खोजना है। अगर परमात्मा को भी खोजना है तो संसार कायम है; नाम बदल गया। अगर तुम कहो कि ठीक है, धन न खोजेंगे, पद न खोजेंगे, प्रतिष्ठा न खोजेंगे, परमात्मा तो खोजें!
खोजे कि चूके। खोजे कि गंवाया। खोजे तो... किसी ने कभी खोज कर नहीं पाया। संसारी खोज रहा है। त्यागी खोज रहा है। दोनों चूक रहे हैं। संसारी धन खोज रहा है, त्यागी धर्म खोज रहा है। दोनों चूक रहे हैं, क्योंकि दोनों खोज रहे हैं। पाता कौन है?
पाता वह है, जो खोजता नहीं। लेकिन न खोजने की दशा पा लेना कठिन है; क्योंकि हमारे पास बुद्धि का इतना निखार भी नहीं है--मंदबुद्धि हैं। बुद्धि को साफ भी नहीं करते; कूड़ा-कर्कट अलग भी नहीं करते; घास-पात उखाड़ कर भी नहीं फेंकते।
अक्सर ऐसा हो जाता हैः एक खोज बंद हुई, दूसरी शुरू कर देते हैं। बंद नहीं हुई, उसके पहले ही शुरू कर देते हैं। भोग से चूके नहीं कि त्याग ने जकड़ा। इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूंः भोग से बचना और त्याग से बचना। भोग से चूके, त्याग में पड़ जाते हैं। कुएं से बचे, खाई में गिर गए। मध्य में है मार्ग। खोज से बचना। धन तो खोजना ही मत; धर्म भी मत खोजना। खोज जाने दो, क्योंकि खोज तनाव पैदा करती है। खोज का मतलब ही यह होता है कि मैं यहां हूं और जिससे मुझे शांति मिलेगी, जिससे मुझे सुख मिलेगा, वह वहां है दूर! या तो दिल्ली में है या स्वर्ग में है--लेकिन दूर। मैं यहां, सुख वहां--दोनों के बीच लंबा फासला। इसी को जोड़ने-जोड़ने में जीवन गंवा दिया जाता है।
संसार जाने का अर्थ पूछते हो, संसार कहां समाप्त होता है?
जिस दिन तुम जहां हो, वहीं सब है। संतुष्टि संसार की मृत्यु है। संतोष।
लेकिन फिर ख्याल रखना, क्योंकि ये प्यारे शब्द खराब हो गए हैं। ये इतनी जबानों पर चले हैं कि नष्ट-भ्रष्ट हो गए हैं। इनके अर्थ विकृत हो गए हैं। आमतौर से "संतोष" शब्द सुनते ही ऐसा ख्याल आता है कि ठीक है, जो है उसी में संतोष कर लो। अपने बस में भी नहीं है कि बहुत धन कमा लो, तो अब जितना है, इसी में संतोष कर लो। ऐसा मन मारने का नाम संतोष हो गया है।

संतोष क्रांति है--मन मारने का नाम नहीं है। संतोष का मतलब यह नहीं है
कि अब क्या करें? बड़ा मकान बनता तो है नहीं, चलो छोटे में ही रहेंगे। मगर भीतर-भीतर कीड़ा काट रहा है, भीतर-भीतर घुन लग रहा है। भीतर-भीतर आत्मा सड़ रही है। मन तो पीड़ा से भरा है कि होता बड़ा मकान! काश, कुछ कर लेते! कि लाटरी ही मिल जाती! कि राह चलते किसी का बटुवा पड़ा मिल जाता! अपने में सामर्थ्य तो नहीं है, इसलिए मन को मार लिया है।
लेकिन सपना इतनी आसानी से नहीं मरता। सपना तो कायम रहेगा। सपना तो कहता है कि चमत्कार भी हो सकते हैं--किसी साधु महाराज की कृपा हो जाए, कि कोई ताबीज मिल जाए, कि चलो अब ऐसे तो कुछ नहीं होता, राम-राम जपने से शायद हो जाए!
मैंने सुना है, एक प्रार्थना-सभा के बाद एक औरत अपनी सहेली से बात करने लगी। अचानक उसे याद आया कि वह अपना बटुवा मंदिर के अंदर ही भूल आई है। वह दौड़ कर अंदर पहुंची, पर बटुवा गायब था। महिला बड़ी हैरान हुई--भक्तों में और बटुवा गायब हो जाए! उसने पुजारी को कहा। पुजारी ने कहाः घबड़ाओ मत, मैंने बटुवा उठा कर रख लिया है, क्योंकि कुछ भक्त इतने भोले होते हैं कि इसे देख कर वे यह समझते हैं कि ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुन ली है।
आते ही किसलिए हैं लोग मंदिर में? बटुवों के लिए ही प्रार्थनाएं की जा रही हैं। जो बटुवे अपनी मेहनत से नहीं मिले, अब शायद परमात्मा के कंधे पर सवार होकर मिल जाएं।
फिर, संतोष... तथाकथित संतोष ऐसा ही है जैसा ईसप की कहानी में है। एक लोमड़ी छलांग लगाती है। अंगूर के गुच्छे--रस भरे हैं, हवा में झूलते हैं! सुबह का सूरज निकला है। और लोमड़ी के मुंह से लार टपकती है। उछलती है, कूदती है, मगर गुच्छे बड़े ऊपर हैं; पहुंच नहीं पाती। और तभी एक खरगोश छिपा देख रहा है--पास की ही झाड़ी में बैठा। लोमड़ी को जाते देख कर--उदास, थका-मांदा-- वह कहता हैः चाची, क्या बात? अंगूर मिले नहीं? और लोमड़ी अकड़ कर सीना फुला कर कहती हैः मिले नहीं, किसने तुझे कहा नासमझ? खट्टे हैं। अभी खाने योग्य नहीं।
यह भी संतोष है। जो अंगूर न मिलें, उन्हें हम खट्टे होने की घोषणा कर देते हैं। तुम भी कहते होः पद में क्या रखा है! मगर जरा भीतर टटोलना! अंगूर खट्टे हैं, ऐसा तो नहीं? तुम भी कहते होः धन में क्या रखा है! सब ठीकरे हैं! मगर यह बात तुम्हारे भीतर अनुभव से आ रही है? या कि अपने को झुठला रहे हो? या कि अपने को समझा रहे हो? कि मलहम-पट्टी कर रहे हो अपने घाव पर? धन नहीं मिला है, इसके घाव पड़ गए हैं। किसी तरह मलहम करके घावों को भुलाते हो। ऐसा तुम्हारा संतोष है। इसलिए मैं तो शब्दों का उपयोग करने में भी डरता हूं, क्योंकि तुम्हारे कुछ अर्थ और होते हैं। इधर मैंने कहा कि संतोष, और तुमने समझा कि अरे ठीक है, संतोषी सदा सुखी! हम तो पहले से ही संतोषी हैं।
मगर तुम्हारे संतोष को ठीक से समझ लेना। संतोष बड़ी क्रांति है; इतना सस्ता नहीं, जैसा तुम समझते हो। संतोष केवल उन्हें मिलता है, जिनके पास दृष्टि है, जीवन को समझने की कला है। संतोष ऐसी मुर्दा चीज नहीं है, जैसा तुमने उसे बना दिया है। संतोष जीवंत अग्नि है। उससे जो गुजरा, वह परमात्मा में ही उतर जाता है।
संतोष का फिर मैं क्या अर्थ करता हूं? अर्थ करता हूंः ऐसा नहीं कि मैं कमजोर हूं, इसलिए नहीं पहुंच सका, तो अब समझा लेता हूं अपने को। आखिर अहंकार को भी तो बचाना है! अब रोने से क्या फायदा! अब कहने से भी क्या सार कि दौड़ा तो बहुत था, पहुंच नहीं पाया। उछला तो बहुत था, अंगूर के गुच्छे दूर थे। इससे अब क्या सार है कहने से! वैसे ही तो पिट गई है प्रतिष्ठा, अब और क्या पिटवाना! तो अब ऐसे ही कह देते हैं कि दौड़ा ही कहां। दौड़ने में मुझे रस ही न था; वह तो मोहल्ले के लोगों ने कहा तो चुनाव में खड़ा हो गया। वह तो लोग नहीं माने। मेरी तो कोई इच्छा थी ही नहीं चुनाव में खड़े होने की। तो मैं तो खड़ा ही नहीं हुआ था; हारने का सवाल ही क्या है! मोहल्ले वालों ने खड़ा कर दिया। अगर मैं हारा तो वे ही हारे।
लेकिन, यह संतोष नहीं है। संतोष का अर्थ होता हैः जीवन को सब तरफ से देखा, सब तरफ से परखा, सब तरफ से स्वाद लिया--और कड़वा पाया। स्वाद लिया और

कड़वा पाया। अंगूर के गुच्छे दूर थे; स्वाद लेने का मौका न मिला इसलिए खट्टा कहा, तो काम नहीं होगा।
संतोष जीवन का सार-निचोड़ है; जीवन की सबसे बड़ी संपदा है। लेकिन उन्हीं
को मिलता है संतोष, जो जीवन को चखते हैं; जीवन को चखने की कठिनाई से गुजरते हैं। तिक्त है स्वाद। मन-प्राण कड़वे हो जाते हैं। सब तरफ से दौड़ कर देख लिया कि भविष्य की आकांक्षा व्यर्थ है; न कभी आता है कल, न कभी आएगा--इस बोध से दौड़ गई, तृष्णा गई। इस बोध से अब जहां हूं, जैसा हूं, उसी में मगन-भाव हुआ। इस मगन-भाव का नाम संतोष है। संतोष बड़ी अदभुत बात है। जहां संतोष आया, संसार गया। संसार गया, संतोष आया। कहने का ही भेद है। और जहां कोई दौड़ न रही, वहां तुम परमात्मा को बिना देखे कैसे रहोगे? क्योंकि दौड़ से ही आंखें अंधी हैं।
यूनान में पुरानी कथा है कि एक ज्योतिषी रात आकाश के तारों का अध्ययन करता हुआ चल रहा था, एक कुएं में गिर पड़ा। चिल्लाया, घबड़ाया। पास कोई किसान बूढ़ी औरत ने दौड़ कर रात में इंतजाम किया, लालटेन लाई, रस्सी लाई, उसे निकाला। वह बड़ा प्रसिद्ध ज्योतिषी था। उसकी फीस भी बहुत बड़ी थी। सम्राटों का ज्योतिषी था। साधारण आदमी तो उसके पास पहुंच नहीं सकते थे। उसने कहाः बूढ़ी मां, तुझे पता है मैं कौन हूं? तेरा सौभाग्य है कि तूने यूनान के सबसे बड़े ज्योतिषी को सहायता देकर कुएं से बाहर निकाला है। मेरी फीस इतनी है कि सिर्फ सम्राट चुका सकते हैं। मगर तेरा हाथ और तेरा भविष्य मैं बिना फीस के देख दूंगा। तू सुबह आ जाना।
वह बूढ़ी हंसने लगी। उसने कहाः बेटा, तुझे अपने सामने का कुआं नहीं दिखाई पड़ता, तू मेरा भविष्य कैसे देखेगा? तुझे अपना ही... भविष्य तो छोड़, वर्तमान भी दिखाई नहीं पड़ता। तू पहले रास्ते पर चलना सीख। तू चांद-तारों पर चलता है!
जिसकी आंखें चांद-तारों पर लगी हैं, अक्सर हो जाता है कुएं में गिरना। तुम सब भी ऐसे कुएं में ही गिरे हो। आंखें चांद-तारों पर लगी हैं, यहां देखो तो कैसे देखो! पास देखे तो कौन देखे! तुम्हारे सारे प्राण तो वहां अटके हैं।
और बचपन से ही यह दौड़ शुरू हो जाती है। तुम्हारे चारों तरफ जो लोग हैं,
वे सब पागल हैं। वही पागलपन छोटे बच्चों के प्राणों में भी हम डाल देते हैं। छोटा बच्चा सोचता हैः बस परीक्षा पास हो जाऊंगा, तो बड़ा सुख होगा। परीक्षा अभी साल भर दूर है, अभी तो दुख उठा रहा है; आशा है कि परीक्षा पास होगा तो सुखी होगा। फिर पहली कक्षा पास हो जाता है; एकाध-दो दिन फूला-फूला सा रहता है, फिर पिचक जाता है। फिर सोचता हैः इस साल तो वह बात नहीं घटी, शायद अगले साल घटे; शायद प्राइमरी स्कूल से निकल आऊं, तब सुख हो।
और चारों तरफ लोग हैं कहने वाले। वे कहते हैंः फिकर मत करो, एक दफा पास
हो गए, स्कूल से निकल आए तो सुख ही सुख है। फिर कालेज से निकल आए तो सुख ही सुख है। फिर विश्वविद्यालय से निकल आए तो सुख ही सुख है। फिर शादी हो गई तो सुख ही सुख है। फिर बच्चे हो गए तो सुख ही सुख है।
सुख कभी होता नहीं। बस लोग आगे सरकाए जाते हैं। वे कहते हैंः जरा और चले चलो।
सुख ऐसा ही है... जैसा बुद्ध एक बार यात्रा करते थे। राह भटक गए। जंगल था। एक लकड़हारे से पूछा कि गांव कितनी दूर है? उसने कहाः बस पहुंचे जाते, दो मील समझो। दो मील गुजर गए, गांव का कोई पता नहीं। फिर एक घसियारिन से पूछा कि मां, कितनी दूर होगा गांव? उसने कहाः यही कोई दो मील। दो मील फिर निकल गए, लेकिन गांव का कोई पता नहीं। एक लकड़हारे से पूछा कि भाई, गांव कितनी दूर होगा? उसने कहाः यही कोई दो मील।
आनंद से न रहा गया। बुद्ध का शिष्य था। उसने कहा कि भगवान, इन लोगों को कुछ होश है? पहला आदमी भी बोला दो मील, दूसरा भी बोला दो मील, यह तीसरा भी बोल रहा है। छह मील तो हम चल ही चुके।
बुद्ध ने कहाः तू यही गनीमत समझ कि फासला बढ़ नहीं रहा है; दो मील का दो मील ही है। तीन भी हो सकता था, चार भी हो सकता था, छह भी हो सकता था। फिर सोच! ये भले लोग हैं।

ऐसी ही जिंदगी है। इतनी ही गनीमत है कि तुम्हारा और तुम्हारे सुख का फासला उतना ही रहता है जितना पहले दिन था। अंतिम दिन भी उतना ही रहता है-- दो मील। बढ़ता नहीं, यही काफी गनीमत है। मगर सुख कभी मिलता नहीं। फिर आदमी जब बिल्कुल थक जाता है तो सोचता हैः मृत्यु के बाद स्वर्ग में मिलेगा, परलोक में मिलेगा। अगले जनम में मिलेगा; इस जनम में शुभ कर्म कर लिए, अब अगले जनम में सुख मिलेगा।
तुम मूढ़ता छोड़ोगे या नहीं छोड़ोगे? तुम अपनी मूढ़ता को फैलाए ही चले जाते हो। जीवन बीत जाता है, तो तुम मौत के पार रख लेते हो सुख को। मगर सदा आगे! अब यहां जगह भी नहीं है रखने की; आदमी मर रहा है, खाट पर पड़ा है, अब यहां कह भी नहीं सकता कि कल सुख मिलेगा, क्योंकि कल तो यहां होने वाला नहीं। आज का सूरज आखिरी सूरज है, कल सुबह नहीं उगेगा। तो वह कहता हैः अगले जनम में मिलेगा। मगर मिलेगा जरूर! लेकर रहूंगा! इधर चूक गए, कोई हर्जा नहीं; कब तक चूकेंगे? कभी तो मिलेगा! इस तरह आदमी अपने सुख को आगे रखता जाता है।
सुख को आगे रखने की प्रक्रिया का नाम--संसार। संसार यह नहीं है जो तुम्हें दिखाई पड़ रहा है फैला हुआ। लोग कहते हैं कि हमने संसार छोड़ दिया। एक वृद्ध संन्यासी कुछ दिन पहले आए थे। वे बोले कि मैंने बीस साल पहले संसार छोड़ दिया।
मैंने उनसे पूछाः आनंदित हैं?
उन्होंने कहाः खाक आनंदित!
तो मैंने कहाः संसार छूट गया और आनंदित नहीं हैं? फिर कब आनंद होगा?
तो संसार छूटा नहीं होगा।
उन्होंने कहाः आप कह क्या रहे हैं? पत्नी छोड़ दी, बच्चे छोड़ दिए, घर-दुकान, सब छोड़ दिया।
यह तो संसार है ही नहीं। इसको पकड़ने से सुख नहीं मिला था, इसको छोड़ने
से भी सुख नहीं मिल सकता। पहले सोचते थे कि पकड़ने से मिलेगा; फिर सोचा कि छोड़ने से मिलेगा; लेकिन सुख सदा आगे रहा--कुछ करने से मिलेगा! बाद में मिलेगा! स्थगित होता रहा। अब ये बीस साल से राह देख रहे हैं कि पत्नी छोड़ दी, घर छोड़ दिया, दुकान छोड़ दी, अभी तक सुख नहीं मिला! अब धीरे-धीरे भीतर नाराज भी हो रहे होंगे परमात्मा पर, कि यह तो हद्द हो गई, यह तो धोखा हो गया। जो था, वह भी गया। हाथ कुछ आया नहीं। अब धीरे-धीरे नाराज हो रहे होंगे।
इसलिए अगर तुम संन्यासियों को नाराज देखो तो आश्चर्य मत करना। उनकी नाराजगी का कारण है। अगर तुम संन्यासियों को क्रोधी पाओ तो आश्चर्य मत करना। दुर्वासा होना उनकी नियति है। वे क्रोधित न हों तो क्या करें? संसार, जिसको सोचते थे, वह भी गया; और कुछ बदलाहट नहीं हुई। हाथ, धन इत्यादि से खाली हो गए--और धन से भरे नहीं।
नहीं; न तो पत्नी में संसार है, न पति में संसार है, न धन में, न दुकान में, न बाजार में। संसार है तुम्हारी इस आशा में कि कल सुख मिलेगा। यह संसार का मनोविज्ञान है। यह उसका तत्व-शास्त्र है। सुख कल मिलेगा, यह भ्रांति जिस दिन छूट गई, फिर तुम्हें सुख मिलने से कोई रोक नहीं सकता। सुख तो है ही। चांद-तारों से नजर वापस लौट आई। आस-पास देखने लगे। जरा इस घड़ी, इसी क्षण टटोलोः सुख नहीं है? यह वृक्षों में सन्नाटा, ये पक्षियों की आवाजें, ये सूरज की तुम पर उतरती किरणें! सुख और क्या है? सुख और क्या होगा? यह शांति, यह मौन, इतने शांत लोगों की मौजूदगी, यह शांति से भरा हुआ सरोवर--क्या सुख नहीं है? और सुख क्या होता है? यह मौन, यह सन्नाटा, यह सन्नाटे का संगीत, यह श्वासों का सरगम, यह हृदय की धड़कन--सब ठहरा है। जैसे ही तुम इस क्षण में जागे, सब ठहरा है। तरंग भी नहीं होती। लहर भी नहीं उठती। और क्या है? इससे ज्यादा की मांग ही गलत है। और जिसने ज्यादा मांगा, वह संसार में गिर गया। और जिसने इसको भोगा, वह परमात्मा में उतरने लगा। जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः जिसके पास है, उसे और दिया जाएगा। और जिसके पास नहीं है, उससे वह भी ले लिया जाएगा जो उसके पास है।
बड़ा बेबूझ वचन है! अन्याय मालूम पड़ता है कि जिसको है, उसको और दिया जाएगा। और जिसके पास नहीं है, उससे और ले लिया जाएगा। यह तो हद्द हो गई!

गरीब को और गरीब बना दोगे, अमीर को और अमीर बना दोगे! मगर यह वचन बड़ा अदभुत है, बड़ा बहुमूल्य है!
इस क्षण का सुख भोगो। इस भोगने में ही तुम पाओगे--और सुख बरसने लगा।
सुख सुख को खींचता है। दुख दुख को खींचता है। एक दुख तुम बनाओ, दस दुख
और चले आते हैं। दुख अकेला नहीं आता। सुख भी अकेला नहीं आता। एक कांटा तुम बुलाओ, दस उसके पीछे चले आते हैं। एक सुख तुम उतरने दो, और तुम पाओगे-- पंक्तिबद्ध सुख चले आ रहे हैं! सब द्वार-दरवाजों से चले आ रहे हैं। सब दिशाओं से उतरने लगे।
वर्तमान में होना संसार के बाहर हो जाना है। भविष्य में होना संसार में होना है।
तुमने पूछाः "आपने कहा कि संसार से विमुख होते ही परमात्मा से सन्मुखता हो जाती है।"
एक ही बात है। संसार से विमुख हुए यानी तृष्णा गई; यानी संतोष आया। अब
और क्या देरी रही? संतोष में ही तो झलक आ जाती है परमात्मा की, सत्य की। शांति में ही तो उसके स्वर उतरने लगते हैं। उतर ही रहे थे।
ऐसा ही समझो कि तुम्हारे घर में आग लगी है। तुम रो रहे हो, चिल्ला रहे हो। और पास में कोई बांसुरी बजा रहा है। तुम्हें बांसुरी सुनाई पड़ेगी? जिसके घर में आग लगी है, उसे बांसुरी सुनाई पड़ेगी? जिसका घर धू-धू करके जल रहा है, उसे बांसुरी सुनाई पड़ेगी? लेकिन तभी कोई आया और उसने कहा कि क्यों परेशान होते हो? तुम्हारे बेटे ने तो घर का इंश्योरेंस कर रखा था। बस ये दो शब्द शास्त्र बन गए, आप्त-वचन हो गए। ये दो शब्द--आंसू उड़ गए। घर अब भी जल रहा है, लेकिन अब चिंता न रही। और अचानक तुम पाओगे कि बांसुरी के स्वर सुनाई पड़ने लगे।
बांसुरी पहले भी बज रही थी, मगर तुम उद्विग्न थे। तुम छाती पीट रहे थे। जिंदगी भर की कमाई मिट्टी में मिल गई। अब क्या होगा? अब कैसे होगा? अब कहां जाऊंगा? तुम्हारे भीतर इतना हाहाकार था! यह आग जो जलती थी, बाहर ही नहीं जलती थी; तुम्हारे भीतर भी जल रही थी, धू-धू करके जल रही थी। कहां बांसुरी! लेकिन किसी ने कहा कि क्यों घबड़ा रहे हो? बेटे ने इंश्योरेंस कर रखा है। कल ही तो किस्त भरी है, पैसे सब मिल जाएंगे। तो शायद जलने का दुख तो दूर हुआ, अब मन में योजना उठने लगेगी कि नया मकान बना लेंगे, पुराने से बेहतर बना लेंगे। इसके द्वार-दरवाजे भी सड़ गए थे, अच्छा ही हुआ कि जल गया। चलो, परमात्मा की कृपा है। एक शांति आई। अब भीतर कोई आपाधापी नहीं है, चिंताओं का शोरगुल नहीं है। बांसुरी की आवाज सुनाई पड़ने लगी।
बांसुरी पहले भी बज रही थी। बांसुरी बजती ही रही है। अनहत बाजत बांसुरी! कृष्ण की बांसुरी बज ही रही है। वह कभी रुकी नहीं। वह रुकती ही नहीं। वह रुक सकती नहीं। वह शाश्वत है। लेकिन तुम्हारे कान कैसे उसे पकड़ें? तुम्हारे भीतर इतना शोरगुल है! तुम्हारे भीतर बाजार है। बाहर बाजार है, उससे चिंता मत लो। बाहर कुछ भी नहीं है। तुम्हारे भीतर बाजार है। तुम्हारे भीतर हजार वासनाओं का तुमुल नाद है। तुम्हारे भीतर महाभारत छिड़ा है--यहां जाऊं, वहां जाऊं; यह करूं, वह करूं; इसमें धन लगाऊं, उसमें धन लगाऊं। जिस दिन तुम्हारे भीतर यह तुमुल नाद शांत हो जाएगा, परमात्मा कभी भी कहीं गया नहीं--घेरे तुम्हें खड़ा है। बाहर-भीतर वही है; उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।
संसार से विमुख होते ही परमात्मा से सन्मुखता हो जाती है--इसलिए मैं कहता हूं। जहां संसार खत्म हुआ वहीं परमात्मा शुरू हो जाता है। बाहर से भीतर की तरफ आ गए तो संसार से परमात्मा की तरफ आ गए। भविष्य से वर्तमान की तरफ आ गए तो संसार से परमात्मा की तरफ आ गए। तृष्णा से, वीत-तृष्णा में आ गए। असंतोष से संतोष में आ गए।
समझो। करने का बहुत कुछ नहीं है। समझ लेने की बात है। समझ आ जाए तो करना अपने आप इसके पीछे उतर आता है। जब भी अवसर मिले, तभी संतुष्ट होकर बैठ जाओ। संतुष्ट होकर यानी स्वयं में समाहित होकर। समाधान में! न कहीं जाना, न कहीं आना। न कुछ पाने को, न कुछ खोने को। बस वहीं ध्यान, वहीं बज उठेगी बांसुरी।

और जितनी तुम बांसुरी सुनने लगोगे, उतनी ही साफ होने लगेगी; उतने ही स्वर स्पष्ट होने लगेंगे। सुनते-सुनते एक दिन तुम पाओगे कि यह बांसुरी बाहर नहीं बज रही है--यह बांसुरी तुम ही हो। तत्त्वमसि! यह तुम ही हो। परमात्मा तुम्हारे ही प्राणों में नाद उठा रहा है।
समझ की बात है। नासमझी में कुछ कर लोगे तो कुछ भी न होगा। नासमझी में तुम धन छोड़ दो, मकान छोड़ दो, पत्नी छोड़ दो, हिमालय भाग जाओ--करोगे क्या हिमालय में बैठ कर? तुम्हारा मन वहां भी वासनाओं में ही रचा-पचा रहेगा। बैठ कर हिमालय की गुफा में तुम सोचोगे कि अहा, सब छोड़ आया! अब स्वर्ग आने ही वाला है! अब थोड़े ही दिन की बात और है। आते ही होंगे रामजी, पुष्पक विमान पर ले जाएंगे! अप्सराएं तैयार ही हो रही होंगी। स्वर्ग में बंदनवार बांधे जा रहे होंगे--महात्मा आ रहे हैं! यही बैठे-बैठे सोचोगे कि कौन सी अप्सरा चुननी है--उर्वशी ठीक रहेगी कि कोई और ठीक रहेगी? और फिर बैठे-बैठे थोड़ी देर में नाराजगी भी आएगी कि रामजी अभी तक नहीं आए; पुष्पक विमान का कुछ पता भी नहीं चल रहा है। कम से कम हनुमानजी को तो भेज ही देते! कोई संदेशवाहक तो आ जाता। इधर हम बैठे-बैठे परेशान हो रहे हैं। और सब छोड़ कर आ गए हैं। घर-द्वार छोड़ा; धन, पत्नी, बच्चे छोड़े--अब और क्या चाहिए! ऐसे गुस्सा बढ़ेगा। क्रोध भभकेगा। शिकायत उठेगी, प्रार्थना नहीं।
जहां वासना है, वहां शिकायत है। जहां वासना है, वहां प्रार्थना हो भी
तो झूठी है।
मैंने सुना है, दिल्ली की घटना है। कुछ लोगों का एक दल मोरारजी भाई जिंदाबाद, जिंदाबाद चिल्ला रहा था। बड़े जोरों से, बड़ी ताकत से! फिर अचानक मोरारजी भाई मुर्दाबाद चिल्लाने लगा। वही दल! और उतनी ही ताकत से! इस आकस्मिक परिवर्तन को देख कर पत्रकारों ने उधर रुख किया और पूछा कि भाई, माजरा क्या है? अभी जिंदाबाद, अभी मुर्दाबाद!
उन लोगों ने कहा कि हमें जिंदाबाद चिल्लाने के लिए सिर्फ आधे घंटे के पैसे दिए गए थे; और अब इकतीस मिनट हो गए हैं।
तुम्हारी प्रार्थनाएं, तुम्हारी स्तुतियां, तुम्हारी पूजा--अगर उनके पीछे कुछ वासना है, कुछ मिलने का लोभ है--ज्यादा देर टिकने वाली नहीं। तीस मिनट पूरे हो जाएंगे, फिर? फिर तुम टूट पड़ोगे। क्योंकि जहां वासना है, वहां क्रोध है। क्योंकि जहां काम है, वहां क्रोध है। क्रोध काम की छाया है।
प्रार्थना और वासना का फर्क यही है। प्रार्थना का अर्थ होता हैः जो दिया है, इतना है कि धन्यवाद मेरा ले। वासना का अर्थ होता हैः जो दिया है, यह कुछ भी नहीं है। मेरी योग्यता के योग्य ही नहीं है। कहां मैं पात्र आदमी, और क्या मुझे दिया है! अन्याय हो रहा है। सुध ले मेरी! बहुत हो चुका। सुनते थे कि तेरे द्वार पर देर है, अंधेर नहीं। देर भी हो गई, अब अंधेर भी हुआ जा रहा है।
जहां वासना है, जहां मांग है--वहां क्रोध खड़ा ही है, तत्पर है। क्योंकि वासना का मतलब यह है कि मुझे कुछ मिले; जब तक मिलता रहे तब तक ठीक।
कल मैं एक कहानी पढ़ रहा था, एक यहूदी कहानी। दो यहूदी मित्र, दोनों ने धंधा शुरू किया। एक तो गरीब ही था बीस साल के बाद। दूसरा बहुत अमीर हो गया था। कभी-कभी अमीर मित्र गरीब के द्वार पर आकर रुकता था। एक सांझ आकर रुका। रविवार है। उसने अपनी केडिलक गाड़ी आकर रोकी मित्र के द्वार पर। अंदर आया। उसके कपड़े शानदार। इत्र की खुशबू। मित्र की दुकान तो हालत खस्ता। आधी दुकान तो खाली सी पड़ी। अलमारियों में भी कुछ नहीं, धूल जमी।
धनी मित्र ने कहा कि भई, बात क्या है? हम दोनों ने एक सा ही काम शुरू किया था और एक सी पूंजी से काम शुरू किया था। मेरी हालत देख--धन है कि बढ़ता चला जाता है। तू गरीब क्यों हुआ चला जाता है?
उस गरीब मित्र ने कहा कि जो कुछ मैं कर सकता हूं, करता हूं। आप ही बताओ राज क्या है? तुम्हारी सफलता का राज क्या है?
तो धनी मित्र ने कहा कि मेरी सफलता का राज यह है कि जिस दिन मैंने धंधा शुरू किया, मैंने परमात्मा की याद से शुरू किया। मैंने उसको साझीदार बना लिया है। मैं अकेला नहीं हूं; उसको साझीदार बना लिया है। और दस रुपये महीने चर्च को भी देता हूं। और हर साल एक दिन उपवास भी करता हूं। इसी से सब

ठीक चल रहा है। परमात्मा की कृपा है। उसको साझीदार बना लिया; अब उसकी ही इज्जत का सवाल है। मेरी हार, उसकी हार; मेरी जीत, उसकी जीत।
गरीब चुप रहा। सोचने जरूर लगा कि यह कैसा मामला हुआ! यद्यपि उसने जब दुकान शुरू की थी तो परमात्मा को याद करके शुरू की थी, लेकिन परमात्मा को साझीदार नहीं बनाया था। क्योंकि बात ही बेहूदी है। हम तो पड़े ही हैं कीचड़ में, उसे भी कीचड़ में खींचें! प्रार्थना यह की थी कि मुझे कीचड़ से निकालना। मगर सोचा कि यह कुछ समझ में नहीं आया। और जितना भी कमाता था, उसमें से आधा पैसा तो गरीबों को जाता, अस्पताल को देता, चर्च को देता, मंदिरों को देता, जहां जरूरत होती वहां देता। इसलिए गरीब भी रह गया था। हर महीने उपवास भी करता। हर रोज जाकर पूजागृह में पूजा भी करता। सोचने लगा कि यह खूब हुआ कि एक आदमी कहता है कि एक दिन उपवास करता है साल में और दस रुपये महीने दान भी करता है--और लाखों कमा रहा है! और कहता है कि मैंने परमात्मा को भागीदार बना लिया है। वह हंसा, मुस्कुराया। कहा कि जैसी तेरी मर्जी, जरूर इसमें ही मेरा हित होगा, नहीं तो तू मुझे गरीब रखता? इसमें ही मेरा हित होगा। धन्यवाद। उस रात भी हृदयपूर्वक उसने प्रार्थना की।
दूसरे दिन, हैरानी की बात, संयोग की बात, अमीर का मकान जल गया, उसमें आग
लग गई, दुकान जल गई, सब राख हो गया। तो इस गरीब ने उसे पत्र लिखा कि मेरी कोई सामर्थ्य तो नहीं है कि तुम्हें साथ दूं, लेकिन जो भी मेरे पास है, उसमें से आधा तुम ले लो, फिर काम शुरू कर दो। और भगवान तुम्हारे साथ है, तो जल्दी ही सब फिर ठीक हो जाएगा।
अमीर ने उत्तर में सिर्फ इतना ही लिखाः कोई भगवान नहीं। सब धोखा है।
मैंने इतना भरोसा किया और वक्त पर दगा दे गया। कोई भगवान नहीं। ईश्वर इत्यादि सब बकवास है।
यह अंतरतम बात है। वह जो साझीदार इत्यादि बनाया था, वह सब ऊपर-ऊपर था।
सफलता मिल रही थी तो ठीक था; असफलता आई तो कठिन हो गया।
कामी भी परमात्मा को याद करता है, लेकिन उसकी याद झूठी है, वह याद कर
ही नहीं सकता। उसके पास ओंठ नहीं, जिनसे प्रार्थना हो सके। उसके पास प्राण नहीं, जिनसे प्रार्थना हो सके। प्राण तो उसी के पास होते हैं, ओंठ तो उसी के पास होते हैं, जिसने एक सत्य जीवन का समझ लिया कि काम, कामना कहीं नहीं ले जाती, सिर्फ भटकाती है--अरण्य में भटकाती है। अरण्यरोदन है कामना। जिसको ऐसी प्रतीति हो गई, प्रगाढ़ प्रतीति हो गई...
और ख्याल रखना, मेरे कहने से तुम्हें प्रतीति नहीं हो जाएगी, न बुद्ध
के कहने से प्रतीति होगी। तुम्हारा ही जीवन-अनुभव तुम्हें प्रतीति करवाएगा। अपने ही जीवन के अनुभव में तलाशो। तुम परमात्मा को खोजने शास्त्र में जाते हो, वहीं भूल हो जाती है। परमात्मा यहीं सब तरफ पड़ा है। अपने जीवन में ही खोजो। अपने ही जीवन के अनुभव में उलटो, पलटो। अपने ही जीवन का विश्लेषण करो। तुम्हारे जीवन भर की कथा अगर एक बात कहती है तो यही, कि दौड़ने से कहां पहुंचे, कि दौड़ने से क्या मिला! अब जरा बैठ कर देखो!
उस बैठने का नामः ध्यान। उस बैठने का नामः संतोष। उस बैठने का नामः प्रार्थना। अब जरा बैठ कर देखो! अब जरा चुप होओ, सन्नाटे में उतरो।
जिस क्षण भी तुम्हारे भीतर कोई भाग-दौड़ न होगी, कोई ताना-बाना न बुना
जा रहा होगा वासना का--एक क्षण को ही सही, ऐसा हो जाए--उसी क्षण तुम पाओगेः हवा के झोंके की तरह परमात्मा तुममें प्रवेश कर गया। कर गया ताजा। उड़ा गया सब धूल। कर गया कंचन अपने स्पर्श से।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा--गदगद हो जाओ, रसविभोर हो जाओ, तल्लीन हो जाओ
और जीवन को उत्सव ही उत्सव बना लो। लेकिन यह सब हो कैसे? मुझे तो यह मालूम ही नहीं कि रस क्या है, उत्सव क्या है, तल्लीनता क्या है, गदगद होना क्या है। बड़ा निष्क्रिय सा महसूस करता हूं। कुछ करने का भाव नहीं उठता। और अपने आप होश में कभी हुआ नहीं। बड़ी उलझन में हूं। समझाएं, कृपा करें!

नीरस हो, निष्क्रिय हो, रस से कोई अनुभव नहीं हुआ--तो तुम्हारी बात मैं समझता हूं कि कैसे गदगद हो जाओगे! तो तुमसे मैंने यह कहा भी नहीं। यह उनसे कहा है, जो गदगद हो सकते हैं। तुमसे तो मैं यह कहूंगाः भरपूर नीरस हो जाओ।

जो हो, वही हो जाओ। मरुस्थल हो, तो मरुस्थल ही हो जाओ। पूरी तरह हो जाओ! उससे अन्यथा होने की चेष्टा में ही भूल हो जाएगी।
अब तुम कहते होः "मैं नीरस हूं।"
और मुझे सुना, कि रस से भर जाओ, डूब जाओ, ब्रज बन जाओ, उतर आए प्रभु का
रस तुममें! अब तुम्हारे भीतर वासना उठेगी। तुम कहोगेः मैं नीरस हूं, होना है रसपूर्ण। इधर मैं जानता नहीं कि क्या है आनंद--और होना है आनंदपूर्ण। अब तुम यह शब्द से अटकोगे। यह शब्द तुम्हारा भविष्य बन जाएगा। वासना पैदा होगी। और जो वासना से भरा, वह कभी गदगद नहीं हो पाएगा। तो तुम अड़चन में मत पड़ जाना।
ऐसी अड़चन बहुत होती है। अब यहां बहुत तरह के लोग हैं। मैं बहुत तरह के लोगों से बात कर रहा हूं। इतना समझ लेना कि गदगद हो जाओ, यह मैंने तुमसे नहीं कहा। तुमसे तो कह भी कैसे सकता हूं! और तुम अगर अपनी इस नीरसता में किसी तरह जबरदस्ती हिलने-डोलने लगे, तो वह झूठी होगी। यह मरुस्थल, जो तुमने अपने भीतर बना रखा है, अगर सोचने लगे कि फूल खिलाने हैं, गुलाब के फूल खिलाने हैं--कैसे खिलाएगा? हां, आंख बंद करके कल्पना कर सकते हो गुलाब के फूलों की। वे कभी खिलेंगे नहीं। रहेगा तो मरुस्थल ही।
तो तुम इस झूठ में मत पड़ जाना। यह वचन तुम्हारे लिए नहीं कहा गया है।
यह उनके लिए कहा गया है, जिनके भीतर इस बात की संभावना आ गई है कि गदगद हो सकते हैं।
यहां सारे लोग एक ही जगह नहीं हैं, अलग-अलग स्थानों पर हैं; अलग-अलग सीढ़ी के सोपानों पर हैं। कोई मूलाधार पर खड़ा है। कोई अनाहत तक पहुंच गया है। किसी ने विशुद्धि को छू लिया है। कोई आज्ञा के करीब आ रहा है। और किसी का सहस्रार खुलने के निकट है। यहां बहुत तरह के लोग हैं।
तुम जहां हो वहीं से यात्रा शुरू करनी पड़ेगी। अब तुम बैठे मूलाधार में और सहस्रार की कल्पना करोगे, तो सब झूठ हो जाएगा।
फिर इसमें दुखी होने का भी कोई कारण नहीं है, क्योंकि जो जहां है वहीं
से ही यात्रा शुरू हो सकती है। इसमें चिंतित भी मत हो जाना कि अरे, दूसरे मुझसे आगे हैं, और मैं पीछे हूं! दूसरों से तुलना में भी मत पड़ना। नहीं तो और दुखी हो जाओगे। सदा अपनी स्थिति को समझो। और अपनी स्थिति के विपरीत स्थिति को पाने की आकांक्षा मत करो। अपनी स्थिति से राजी हो जाओ।
तुमसे मैं कहना चाहता हूंः तुम अपनी नीरसता से राजी हो जाओ। तुम इससे बाहर निकलने की चेष्टा ही छोड़ो। तुम इसमें आसन जमा कर बैठ जाओ। तुम कहोः मैं नीरस हूं, मैं नीरस हूं। तो मेरे भीतर फूल नहीं खिलेंगे, नहीं खिलेंगे। तो मेरे भीतर मरुस्थल होगा; मरूद्यान नहीं होगा, नहीं होगा। मरुस्थल का भी अपना सौंदर्य है। मरुस्थल देखा है? मरुस्थल का भी अपना सौंदर्य है। मरुस्थल का भी अपना सन्नाटा है। मरुस्थल की भी फैली दूर-दूर तक अनंत सीमाएं हैं--अपूर्व सौंदर्य को अपने में छिपाए हैं। मरुस्थल होने में कुछ बुराई नहीं। परमात्मा ने तुम्हारे भीतर अगर स्वयं को मरुस्थल होना चाहा है, बनाना चाहा है, तुम उसे स्वीकार कर लो।
तुम्हें मेरी बात कठोर लगेगी, क्योंकि तुम चाहते हो कि जल्दी से गदगद
हो जाओ। तुम चाहते हो कि कोई कुंजी दे दो, कोई सूत्र हाथ पकड़ा दो कि मैं भी रसपूर्ण हो जाऊं। लेकिन हो तुम विरस। तुम्हारी विरसता से रस की आकांक्षा पैदा होती है। आकांक्षा से द्वंद्व पैदा होता है। द्वंद्व से तुम और विरस हो जाओगे। तो मैं तुम्हें कुंजी ही दे रहा हूं। हालांकि तुम्हें कुंजी बड़ी उलटी मालूम पड़ेगी। मैं तुमसे कह रहा हूंः तुम विरस हो, तो तुम विरस में डूब जाओ। तुम यही हो जाओ। तुम कहोः परमात्मा ने मुझे मरुस्थल बनाया, तो मैं अहोभागी कि मुझे मरुस्थल की तरह चुना। तुम इसी में राजी हो जाओ। तुम भूलो गीत-गान। तुम भूलो गदगद होना। तुम छोड़ो ये सब बातें। तुम बिल्कुल शुष्क हो रहो। तुम जरा भी चेष्टा मत करो, नहीं तो पाखंड होगा। ऊपर-ऊपर मुस्कुराओगे और भीतर-भीतर मरुस्थल होगा। ऊपर से फूल चिपका लोगे, भीतर कांटे होंगे। तुम ऊपर से चिपकाना ही भूल जाओ। तुम तो जो भीतर हो, वही बाहर भी हो जाओ।
और तुमसे मैं कहता हूंः तब क्रांति घटेगी। अगर तुम अपने मरुस्थल होने
से संतुष्ट हो जाओ, तो अचानक तुम पाओगेः मरुस्थल कहां खो गया, पता न चलेगा।

अचानक तुम आंख खोलोगे और पाओगे कि हजार-हजार फूल खिले हैं। मरुस्थल तो खो गया, मरूद्यान हो गया!
संतोष मरूद्यान है। असंतोष मरुस्थल है। और तुम जब तक अपने मरुस्थल से असंतुष्ट रहोगे, मरुस्थल पैदा होता रहेगा। क्योंकि हर असंतोष नये मरुस्थल बनाता है।
तुम्हें मेरी बात समझ में आई? बात उलटी है, लेकिन ख्याल में आ जाए, तो कीमिया छिपी है उसमें। तुम जैसे हो, उससे अन्यथा होने की चेष्टा न करो। आंख में आंसू नहीं आते, क्या जरूरत है? सूखी हैं आंखें, सूखी भली। सूखी आंखों का भी मजा है। आंसू भरी आंखों का भी मजा है। और परमात्मा को सब तरह की आंखें चाहिए, क्योंकि परमात्मा वैविध्य में प्रकट होता है।
तुम जैसे हो, बस वैसे ही संतुष्ट हो जाओ। और एक दिन तुम अचानक पाओगे कि
सब बदल गया, सब रूपांतरित हो गया--जादू की तरह रूपांतरित हो गया!
"आपने कहा--गदगद हो जाओ, रसविभोर हो जाओ, तल्लीन हो जाओ और जीवन को उत्सव ही उत्सव बना लो।"
ये सब शब्द तुम्हारे लिए झूठे हैं। तुम्हारे लिए कहे भी नहीं गए हैं। "लेकिन यह सब हो कैसे?"
कृपा करके इसको करने की कोशिश भी मत करना, नहीं तो यह कभी नहीं होगा।
ये कुछ बातें ऐसी हैं जो करने से होती नहीं।
यह मामला कुछ ऐसा है, जैसे रात नींद न आती हो और तुम पूछो कि कैसे सो जाऊं? आप कहते हैं कि मस्ती से सो जाओ, सोओ आनंद में, खींच लो चादर, सपने देखो प्यारे! आप तो कहते हैं, मगर नींद ही नहीं आ रही। सपने कहां से देखूं? चादर भी खींच लेता हूं तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। भीतर जगा पड़ा हूं। आप कहते हैं कि भीतर की सुषुप्ति में डुबकी मारो। मुझे सिर्फ मच्छरों का संगीत सुनाई पड़ता है। और घबड़ाहट लगती है। और सब सो रहे हैं। और मैं अकेला जागा हूं। और देखता हूं, आज की रात भी ऐसे ही बीत जाएगी।
तुम्हें विधियां देने वाले लोग भी हैं। कोई कहेगाः ऐसा करो, भेड़ें गिनो। गिनते जाओ--एक से लेकर सौ तक। फिर उलटी गिनो--फिर सौ से उलटो एक तक; फिर एक से सौ तक। ऐसा चढ़ो सीढ़ी नीचे-ऊपर। कोई कहेगाः राम-राम, राम-राम जपो। कोई कहेगाः माला हाथ में ले लो, माला फेरो। कोई और तरकीबें बताएगा। लेकिन ये तरकीबें काम नहीं करेंगी। क्यों नहीं काम करेंगी? क्योंकि इनका मौलिक विरोध है निद्रा से। निद्रा आती तब है, जब तुम कुछ भी नहीं करते। न करने की अवस्था में निद्रा उतरती है। तुमने कुछ भी किया कि नींद में बाधा पड़ गई। अब तुम राम-राम ही जप रहे, अब ये राम ही बाधा बनेंगे। अब नींद आए तो कैसे? ये रामजी तो बीच में खड़े हैं! नींद बड़ी संकोची है! बड़ी परोक्ष है। नींद आएगी ही नहीं। तुम राम-राम जपोगे, जितनी त्वरा से जपोगे, उतने ही जाग जाओगे। उतना ही तुम पाओगेः नींद और खो गई। कुछ-कुछ झपकी आती थी, वह भी गई। भेड़ें गिनोगे, तो गिनती करने में ख्याल रखना पड़ेगा कि सत्तानबे के बाद अट्ठानबे आता है, अट्ठानबे के बाद निन्यानबे आता है। उतना ही ख्याल निद्रा में बाधा बन जाएगा, कि अब पीछे लौटना है, अब आगे जाना है।
मुल्ला नसरुद्दीन को किसी ने कहा कि नींद नहीं आती तो तुम भेड़ें क्यों नहीं गिनते?
तो उसने कहाः अच्छा गिनेंगे।
दूसरे सुबह तो वह लकड़ी लेकर उस आदमी के घर पहुंच गया। दरवाजे पर लकड़ी मारी और कहाः कहां है वह आदमी? रात भर मर गए गिनते-गिनते। तीन करोड़ तक पहुंच गए। और फिर घबड़ाहट आई कि इतनी भेड़ें, अब इनका करना क्या? अब इनको रखो तो रखो कहां? फिर सोचा कि अभी तो रात बाकी है, तो चलो इनका ऊन ही उतार लो। तो ऊन उतार डाला। अब? अब ऊन को कहां रखो? तो सोचा कि चलो कपड़े बनवा दो। अब कपड़े बन गए, बेचो कहां? वह आदमी कहां है?
और इस तरह के सुझाव--मुल्ला ने कहा--किसी और को मत देना। रात खराब हो गई। वैसे तो चार-छह घंटे में नींद आ जाती थी।
तुम जब गिनती करोगे, तो स्वभावतः गिनती तो क्रिया है, मन सक्रिय होगा। सक्रियता में उलझे रहोगे। कोई विधि काम नहीं आती, जब नींद न आती हो। लेकिन फिर भी एक विधि है जिसको विधि कहना ठीक नहीं है। वह विधि हैः कुछ मत करो, पड़े रह जाओ। स्वीकार कर लो कि नींद नहीं आती तो नहीं आती। आज परमात्मा की

इच्छा सोने की नहीं है मेरे भीतर, तो जागा रहे। तेरी मर्जी! पड़े रहो। नींद की सोचो ही मत। नींद से लड़ने का उपाय भी मत बनाओ। और तुम अचानक पाओगेः कब नींद आ गई, पता भी न चला! क्योंकि इस निष्क्रिय दशा में ही नींद आती है।
और ऐसा ही जीवन का गणित है। तुम नीरस हो, नीरस रहो। राजी हो जाओ। सभी
रस से भर जाएंगे तो वैविध्य खो जाएगा। जीवन बड़ा ऊब से भर जाएगा। एकरसता हो जाएगी।
इसलिए तो परमात्मा दो आदमी एक जैसे नहीं बनाता। माना कि गुलाब का सौंदर्य है, कैक्टस में भी सौंदर्य है। कांटों ही कांटों का सौंदर्य है। तुम नाहक की बिगूचन सिर पर मत लो।
मेरी सलाह तुमसे यही हैः तुम नीरस हो, अब तुम यह रस की बात ही मत सुनो। तुम नीरस को ही अपना रस बना लो। नीरसता को ही अपना रस बना लो। चलो यही ठीक! मरुस्थल राजी हैं, ऐसे तुम भी राजी हो जाओ। उसी राजीपन में संतोष की वर्षा होगी। उसी वर्षा में मरुस्थल में पौधे उगेंगे, फूल खिलेंगे, हरियाली फैल जाएगी!

तीसरा प्रश्नः मनुष्य के जीवन में इतना द्वंद्व क्यों है?

द्वंद्व है, क्योंकि मनुष्य मध्य है--यात्रा है, सेतु है। मनुष्य अभी जैसा होना चाहिए, जो होना चाहिए, वैसा नहीं है--विडंबना में है। एक तरफ पशुओं का जगत है और एक तरफ परमात्मा का; और बीच में अटका हुआ मनुष्य है--न यहां का, न वहां का। अगर वासनाओं की सुने, तो पशुओं में खींच ले जाती हैं वासनाएं। अगर विवेक की सुने तो परमात्मा की तरफ उठाता है विवेक।
और दोनों मनुष्य के भीतर हैं--विवेक और वासना। वासना पीछे की तरफ खींचती है; विवेक आगे की तरफ खींचता है। खिंचा हुआ मनुष्य द्वंद्व से भर जाता है। सूझ नहीं पड़ताः पीछे जाऊं, आगे जाऊं? आगे जाता है, तो जो हिस्सा पीछे जाना चाहता है, वह अड़चन डालता है। पीछे जाता है, तो जो हिस्सा आगे जाना चाहता है, वह अड़चन डालता है।
शराब पीने जाओ तो तुम्हारे भीतर कोई हिस्सा है जो प्रसन्न होता है। तुम्हारी मूर्च्छा, तुम्हारा प्रमाद प्रसन्न होता है। लेकिन तुम्हारा विवेक, तुम्हारी चेतना दुखी होती है। ध्यान करने जाओ तो चेतना प्रसन्न होती है, विवेक प्रसन्न होता है, लेकिन वासना दुखी होती है। वासना कहती हैः क्या समय खराब कर रहे हो? कुछ और नहीं सूझता? क्या बैठे मंदिर में? यहां रखा क्या है? अरे उठो, इतनी देर में कुछ कमा ही लेते! बाजार चलो, दुकान खोलो! दूसरों ने दुकान खोल ली और तुम यहां मंदिर में बैठे! ऐसे बुद्धूपन से कुछ लाभ न होगा, वासना कहती है।
तुम जब मंदिर में बैठते हो, तब तुमने वासना की आवाज सुनी? वासना निरंतर कहती हैः जल्दी करो, निपटा लो। चलो कोई बात नहीं, आ गए, जल्दी कर लो। मंत्र इतने धीरे-धीरे क्यों जप रहे हो?
तुमने देखा नहीं, जब जल्दी होती है, तुम जल्दी मंत्र जप लेते हो! जब सुविधा होती है, तुम आराम से जपते रहते हो। तुम हिसाब जमा लेते हो। कभी-कभी यूं सिर पटका और भागे। सिर लग भी नहीं पाता और तुम भाग गए। मंदिर में जब भी बैठते हो, तब वासना बड़े तूफान उठाती है, सपने जगाती है। कहती हैः यह घंटा भर व्यर्थ गया। इतने में तो कुछ कमा लेते। इतने में कुछ गपशप ही कर लेते; कि नई फिल्म लगी है, वही देख आते; मित्रों से मिल लेते; कि आज गांव में कव्वाली हो रही है, कव्वाली ही सुन लेते; कि वेश्या का नृत्य हो रहा है। यहां बैठे क्या कर रहे हो?
तुमने कहानी सुनी? एक वेश्या मरी और उसी दिन उसके सामने रहने वाला एक बूढ़ा संन्यासी मरा। साथ ही साथ मरे। संयोग की बात। देवता लेने आए तो संन्यासी को नरक ले जाने लगे और वेश्या को स्वर्ग ले जाने लगे। संन्यासी तो बहुत नाराज हुआ, एकदम अपना डंडा पटक कर खड़ा हो गया। उसने कहाः तुम यह कर क्या रहे हो? दंडीधारी संन्यासी रहा होगा। उसने कहाः सिर खोल दूंगा! संन्यासी को नरक ले जा रहे हो, वेश्या को स्वर्ग ले जा रहे हो! मेरी आंखों के सामने अन्याय हो रहा है। जरूर कुछ भूल हो गई है। दफ्तर की गलती है। मेरे

नाम आया होगा संदेशा स्वर्ग का और तुम गलती से इसको ले जा रहे हो। फिर पीछे पछताओगे। तुम पूछताछ कर लो।
संन्यासी की अकड़ और डंडा देख कर देवता भी डरे। कहा कि भाई पूछ लेते हैं। पूछ कर आए, लेकिन पता चला कि कोई भूल-चूक नहीं है, ऐसा ही है।
तो संन्यासी ने कहाः इसके पहले कि मुझे नरक ले जाया जाए, मैं परमात्मा
का सामना कर लेना चाहता हूं। दो-दो बातें हो जाएं। जिंदगी गुजर गई उसी की याद करते--और यह परिणाम! और यह वेश्या नाचती और शराब पीती और भोग में पड़ी रही--और यह परिणाम! अगर यह हो रहा है तो तुम्हारे सब शास्त्र झूठे हैं। और मुझे नाहक धोखे में डाला। और न मालूम कितने और लोग धोखे में पड़े हैं; उनको चेताना जरूरी है। तुम मुझे परमात्मा के सामने ले चलो।
ले जाया गया। परमात्मा ने कहाः कारण है। वेश्या यद्यपि शराब भी पीती थी, पिलाती भी थी, भोगी भी थी, भोग में ही रहती थी; लेकिन जब भी तुम अपने पूजागृह में बैठ कर भगवान के लिए, मेरे लिए घंटियां बजाते थे, धूप-दीप जलाते थे, भजन गाते थे--तो रोती थी। सोचती थी कि कब मेरे जीवन में यह सौभाग्य होगा! कब मैं भी पूजागृह में प्रवेश कर पाऊंगी! यह जीवन तो गया। और न मालूम कितने जीवन गए! और न मालूम कितने जीवन जाएंगे! मैं अभागी! रोती थी, .जार-.जार रोती थी। तुम्हारे पूजागृह की धूप जब उठ कर, उसकी सुगंध जब इसके घर में पहुंच जाती थी, तो यह अपने नासापुटों में भर लेती थी; अपना अहोभाग्य मानती थी कि इतना भी क्या कम सौभाग्य है कि एक परम महात्मा के पास रहने का अवसर मिला है! रोज कम से कम मेरे कान में प्रभु का नाम तो पड़ जाता है! चाहूं न चाहूं, याद करूं न करूं, रोज तुम्हारे मंदिर में बजती हुई घंटी की आवाज सुन कर मगन हो जाती थी। और एक तुम थे कि तुम यद्यपि घंटियां बजाते थे और धूप-दीप भी जलाते थे, लेकिन तुम्हारे मन में यही लगा रहता था कि वेश्या है तो सुंदर! तुम्हारे मन में इरादे तो यही बने रहते थे कि किसी रात मौका मिल जाए तो घुस जाओ। जा नहीं पाए, क्योंकि हिम्मत नहीं जुटा पाए, तुम्हारी प्रतिष्ठा आड़े आई--गांव भर के लोग तुम्हें संन्यासी और महात्मा मानते थे।
और जब कोई किसी को महात्मा मानता है, तो गांव भर के लोग पहरा भी देते हैं कि यह महात्मा है, जरा ख्याल रखना। महात्मा पर तो लोग पहरा देते हैं। महात्मा को देखते रहते हैंः क्या कर रहे, क्या नहीं कर रहे।
तो तुम्हारी इतनी हिम्मत न थी कि तुम अपनी प्रतिष्ठा तोड़ कर इसके पास चले जाओ। मगर तुम्हारे मन में वासना जगती थी। और जब इस वेश्या के घर में नाच होता था और शराब ढाली जाती थी, तो तुम रोते थे कि मैं अकारथ, मेरा जीवन अकारथ गया। हे प्रभु! मुझे क्यों महात्मा बना दिया? मुझे क्यों फंसा दिया? दुनिया में इतना रस है, इतना आनंद बह रहा है! यहां सामने ही लोग मस्त हो रहे हैं। इधर एक मैं बैठा अपनी माला फेर रहा। मैं अभागा!
इसलिए यह वेश्या स्वर्ग ले आई गई है; क्योंकि रहती तो वासना में थी, लेकिन विवेक इसे पुकारता रहा, प्रार्थना इसे पुकारती रही। थी तो कीचड़ में, लेकिन कीचड़ से कमल की तरह ऊपर उठती रही। एक तुम थे कि तुम बने तो कमल थे, लेकिन पड़े कीचड़ में रहे। और असली सवाल यह नहीं है कि बाहर से तुम क्या थे-- असली सवाल यह है कि भीतर से तुम क्या थे? भीतर ही निर्णायक है।
मनुष्य में द्वंद्व है, क्योंकि मनुष्य में दो तत्व हैं--प्रकृति और परमात्मा। क्योंकि मनुष्य में दो जगतों का मेल है--शरीर और आत्मा। अदृश्य और दृश्य का मिलन हो रहा है मनुष्य में। मनुष्य सीमा पर खड़ा है। एक तरफ प्रकृति खींचती है, एक तरफ परमात्मा बुलाता है। मनुष्य के लिए बड़ी चुनौती है। मनुष्य अगर सिर्फ परमात्मा ही परमात्मा होता, तो कोई द्वंद्व न था। इसलिए परम अवस्था में, बुद्धत्व की अवस्था में द्वंद्व मिट जाता है; क्योंकि मनुष्य परमात्मा ही परमात्मा हो जाता है। और निम्नतम अवस्था में भी द्वंद्व मिट जाता है; क्योंकि मनुष्य प्रकृति ही प्रकृति रह जाता है। जहां एक बचता है, वहीं द्वंद्व मिट जाता है।
इसलिए दुनिया के सारे उपदेशक--और दो हिस्सों में बांटे जा सकते हैं सारे उपदेशक--एक चार्वाक, जो कहता हैः कोई परमात्मा नहीं, कोई विवेक नहीं, कोई प्रार्थना नहीं। डूबे रहो प्रकृति में। ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत। ऋण लेकर भी घी पीना पड़े तो पीओ, कोई चिंता की बात नहीं, क्योंकि मरने के बाद न

कोई बचता है; न कोई पाप है, न कोई पुण्य है। न मरने के बाद कोई लेना है, न देना है; न कोई ऋण है, न कोई भुगतान है। ऋण लेकर भी पीना पड़े तो घी पीओ--मगर घी पीओ! आदमी सिर्फ शरीर है।
यह भी अद्वैतवाद है--यह निम्नतम अद्वैतवाद है। देह के तल पर अद्वैतवाद। ख्याल रखना, यह भी अद्वैतवाद है। यह कहता हैः सिर्फ शरीर है, और कुछ भी नहीं। दूसरा है ही नहीं।
फिर एक दूसरा, आत्मा के तल पर अद्वैतवाद है। शंकर हैं, बुद्ध हैं, वे कहते हैंः सिर्फ आत्मा है, देह तो भ्रांति है। सिर्फ आत्मा की सुनो, आत्मा की गुनो। उसी में रमो।
ये दो उपाय हैं शांत होने के। या तो शरीर के साथ एकरस हो जाओ, तो शांति मिलती है। लेकिन मूर्च्छित शांति होगी, जैसे गहरी नींद में होती है, सपना भी नहीं बचता। गहरी नींद में पड़ गए, तो मौत जैसी हो जाती है; तुम तो बचते ही कहां! सुबह उठ कर कहते हो कि अच्छी नींद आई, लेकिन नींद में तो पता भी नहीं चलता। मूर्च्छा है।
चार्वाक जिस सुख की बात करता है, वह मूर्च्छित सुख है।
और फिर एक और सुख है--समाधि का--जब तुम परिपूर्ण जाग्रत हो गए; जब तुम्हारा अंतरतम आलोक से भर गया; जब विवेक जीत गया; वासना विजित हो गई, विवेक विजेता हो गया; जब तुम्हारे भीतर चैतन्य का प्रादुर्भाव हुआ, तुम चैतन्य ही चैतन्य हो गए। तब द्वंद्व खो जाता है।
तो या तो द्वंद्व खोता है नास्तिक का, या आस्तिक का। और तुम्हारी कठिनाई यह है कि न तो तुम आस्तिक हो, न तुम नास्तिक हो; तुम बीच में खड़े हो। घर के न घाट के--धोबी के गधे हो! तुम्हारी तकलीफ यही है। तुम न तो असली नास्तिक हो, न तो तुम में इतनी हिम्मत है कि कह सको कि परमात्मा नहीं है। और जब तुममें इतनी ही हिम्मत नहीं कि तुम कह सको कि परमात्मा नहीं है, तो उतनी हिम्मत तो तुम में कहां से होगी कि तुम कह सको कि परमात्मा है। वह तो बहुत बड़ी हिम्मत की बात है। तुम तो अभी नास्तिक होने में भी हिम्मत नहीं जुटा पाते, आस्तिक कैसे हो सकोगे? अभी तो निम्नतम अद्वैत भी संभव नहीं है, तो श्रेष्ठतम अद्वैत कैसे संभव होगा? अभी मूलाधार पर भी तुम अद्वैत नहीं साध पाते, तो सहस्रार का अद्वैत तो तुम कैसे साध पाओगे? इसलिए द्वंद्व है। इसलिए तनाव है। इसलिए बड़ी रस्साकसी है। इसलिए आदमी महाभारत है। एक तरफ नीचे का गुरुत्वाकर्षण है और एक तरफ ऊपर की पुकार है।
अब इस द्वंद्व में क्या करोगे? नीचे गिर भी जाओ, कई बार गिर ही जाते हो... वही तो होता है कामवासना में, शराब में, संगीत में, सिनेमा में--थोड़ी देर को भूल गए सब चिंता, विवेक खो गया, थोड़ी देर को मूर्च्छित हो लिए। अच्छा लगता है। लेकिन बड़ी कीमत पर अच्छा लग रहा है। फिर लौटना पड़ेगा। चेतना फिर आएगी। क्योंकि मूर्च्छित तुम ज्यादा देर नहीं रह सकते। एक बार आदमी चैतन्य हो गया तो ज्यादा देर मूर्च्छित नहीं रह सकता, क्योंकि पीछे लौटने का उपाय है ही नहीं। यहां आगे ही जाने का उपाय है। गति सिर्फ आगे की तरफ है, पीछे की तरफ कोई गति नहीं है। तुमने जो जान लिया, जान लिया; अब उसे अनजाना नहीं किया जा सकता। थोड़ी-बहुत देर को भुला सकते हो शराब पीकर, मगर शराब कितनी देर टिकेगी? नशा उतरेगा, तुम लौटोगे। और तब तुम पाओगे, तुम और भी दुखी हो गए--पहले से भी ज्यादा दुखी हो गए। वह थोड़ी देर का भुलाना महंगा पड़ा। अब जिंदगी और भी बेचैनी से भर गई, और तनाव से भर गई। और पीओ शराब... शराब... तुम और टूटते चले जाओगे।
ख्याल रखना, जो बच्चा जवान हो गया, अब बच्चा नहीं हो सकता। अब वह लाख उपाय करे, फिर से अपने खिलौनों को छाती से लगा कर बैठ जाए, तो भी बच्चा नहीं हो सकता। फिर अपनी मां का आंचल पकड़ कर घूमने लगे, तो भी बच्चा नहीं हो सकता। कितना ही अपने को समझाए-बुझाए, कितने ही बीते दिन की याददाश्त करे, फिर भी बच्चा नहीं हो सकता।
जैसे कोई जवान बच्चा नहीं हो सकता, ऐसे मनुष्य अब वापस प्रकृति नहीं
हो सकता। वह लौटने का उपाय नहीं रहा है। अब बच्चे को तो जवानी के आगे जाना होगा--और प्रौढ़ होना होगा, और जागरूक। मनुष्य को भी परमात्मा होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। अगर तुम समझ लो बात तो जल्दी घट जाएगी क्रांति; अगर न समझो तो देर लगाते रहोगे, स्थगित करते रहोगे। और बार-बार

गिरते रहोगे, उठते रहोगे; इसमें समय गंवाओगे, जीवन गंवाओगे, ऊर्जा गंवाओगे।
द्वंद्व है जरूर, और इस द्वंद्व के बाहर उठना है जरूर। उठने के दो उपाय हैं--या तो बिल्कुल मूर्च्छित हो जाओ, या बिल्कुल जाग्रत हो जाओ। मूर्च्छित होने का उपाय संसार है--तृष्णा में खो जाओ, वासना में खो जाओ। बिल्कुल खो जाओ! और या जाग्रत हो जाओ। जाग्रत होने का उपाय संतोष है, तृप्ति है--बोध, ध्यान, प्रार्थना। इन दो में से कुछ चुनना पड़ेगा। चुनना ही पड़ेगा! चुनना ही पड़ता है! जो नहीं चुनता, वह नाहक धक्के खाता रहता है। वह लकड़ी के टुकड़े की तरह हो जाता है, जो नदी में इस किनारे से उस किनारे धक्का खाता फिरता है; उसकी कोई नियति नहीं रह जाती। उसके जीवन में कोई दिशा नहीं रह जाती। उसके जीवन का अर्थ भी खो जाता है, महिमा भी खो जाती है।
मनुष्य में बड़ी महिमा छिपी है। मनुष्य में परम महिमा छिपी है, क्योंकि परमात्मा मनुष्य में छिपा है।
गरज नहीं मुझे इससे कि सरवरी क्या है
मैं जानता हूं मगर शाने-बंदगी क्या है
बुलंदियों को जो अर्शे-बरीं की छू न सके
वो मौजे-खाके-फकीरी व आजिजी क्या है
खुदा है जिसके लिए बेकरार वो सजदा
जबीं में जिसकी न तड़पे वो आदमी क्या है विसालो-हिज्र की जो कैद से न हो आजाद
वो दोस्ती, वो मोहब्बत, वो आशिकी क्या है ख्याले-यार में खुद से भी वो रहे आगाह
वो जां सुपुर्दगी क्या है, वो बेदिली क्या है जो इर्तिकाए-खुदी से खुदा तक आ न गया फरिश्ता रह गया बन कर वो आदमी क्या है
न बेखुदी को समोये जो अपने दामन में
जो राजे-मर्ग न पा जाए वो खुदी क्या है
रहे जो दायराए-हुस्नो-इश्क में महदूद
जो अपना आप न पाए वो आगही क्या है
जो शोरे-जीस्त को अपने में जज्ब कर न सके
न जिसमें उठें तराने वो खामुशी क्या है
नफस-नफस में न जिसके बहारे-ताजा हो
जो रंगो-बू न बिखेरे वो जिंदगी क्या है
जिंदगी बड़े रंग अपने में लिए है, बड़ी सुगंध अपने में लिए है। जिंदगी उतनी ही नहीं है, जितनी तुमने उसे समझा है। जिंदगी बहुत बड़ी है। जिंदगी में पूरा परमात्मा छिपा है।
नफस-नफस में न जिसके बहारे-ताजा हो
जिसकी श्वास-श्वास में जीवन की ताजी बहार न हो, वसंत न हो...
जो रंगो-बू न बिखेरे वो जिंदगी क्या है
और जिसकी जिंदगी में फूल न खिलें, सतरंगे इंद्रधनुष न उठें, जिसकी जिंदगी मोर बन कर न नाचे, जिसकी जिंदगी में आह्लाद न हो--वह नाम मात्र को ही जीवित है। जीया न जीया बराबर है।
जिंदगी में बड़ी महिमा छिपी है। और महिमा जब तक प्रकट न हो जाए, तब तक द्वंद्व रहेगा, तब तक बेचैनी रहेगी। यह बेचैनी बड़ी सृजनात्मक है। जैसे बीज बेचैन होता है--टूट पड़ने को, फूट पड़ने को। बीज बेचैन होता है--अंकुरित होने को। अंकुरित हो, वृक्ष बने, बड़ी शाखाएं आकाश में फैलें। चांद-तारों से बातचीत हो, सूरज और हवाओं के साथ नाच हो, नृत्य हो, पक्षी बसेरा बनाएं, फूल खिलें--तो बीज तृप्त हो! बीज तो बेचैन रहेगा ही। बेचैनी बीज के लिए स्वाभाविक है। ऐसा ही द्वंद्व है आदमी के भीतर। यह तुम्हारे भीतर की बेचैनी है, जो तुमसे कहती हैः बहुत कुछ तुममें छिपा पड़ा है। उसे प्रकट होने दो। गीत पड़ा है तुम्हारे प्राणों में, उसे गुनगुनाओ! नाच पड़ा है तुम्हारे पैरों में, उसे प्रकट होने दो! तुम्हारे भीतर बड़ी सुगंध पड़ी है, उसे बिखेरो!

कस्तूरी कुंडल बसै! तुम्हारे कुंडल में कस्तूरी बसी है। और तुम कहां भागे-भागे फिर रहे हो? तुम कहां तलाश रहे हो? तुम किनके सामने हाथ फैला कर भिखारी बन गए हो? तुम सम्राट होने को हो।

चौथा प्रश्नः ऊंचाई से, सहस्रार की ऊंचाई से प्रभु को देखने वाली मीरा भी जब कहती है कि "मेरो मन बड़ो हरामी, ज्यों मदमातो हाथी", तो हम मूलाधार की नीचाई से देखने वाले लोगों के मन के लिए क्या कहा जाएगा?

नहीं; तुम अपने मन को हरामी न कह सकोगे, क्योंकि तुमने मन के ऊपर कुछ जाना नहीं है। तुलना ही नहीं कर सकते तुम।
मीरा ही कह सकती है कि मेरो मन बड़ो हरामी! क्योंकि मीरा को तुलना है। मीरा ने वे क्षण भी जाने हैं, जहां मन खो जाता है, जहां बेमन दशा आ जाती है। मीरा ने वह रोशनी भी अनुभव की, वह उत्सव भी अनुभव किया। इसलिए तुलना है। इसलिए जब मन खिसकाता है नीचे, तो मीरा कह सकती हैः मेरो मन बड़ो हरामी! कि इतने ऊंचे स्वर्ग पर उठ जाती हूं, फिर भी यह नीचे खींच लेता है!
लेकिन तुम तो स्वर्ग पर उठे नहीं। मन ने तुम्हें कभी नीचे खींचा ही नहीं। तुम तो नीचे हो ही। ऊपर जाओ, तब नीचे का पता चलता है। ऊपर जाओ, तब पता चलता है कि कहां जी रहे थे! किस नरक में जी रहे थे! तुम्हें पता नहीं चलेगा। तुम तो सोचते होः अपना मन--बड़ा गजब का है! अपना मन--बड़ा बुद्धिमान! अपना मन--बड़ा होशियार, बड़ा कुशल, बड़ा कारीगर!
तुम तो अपने मन पर बड़ा भरोसा रखते हो। क्योंकि तुम यह जानते ही नहीं
कि मन तुम्हारी जंजीर है। तुमने तो मन को आभूषण समझा है। समझ-समझ की बात है। जंजीर को कोई आभूषण भी समझ सकता है। और समझने वाले ऐसे भी हैं जो आभूषण को जंजीर समझते हैं। समझ-समझ की बात है।
मैंने सुना है, एक नवजवान विक्रेता ने कंपनी के सबसे पुराने और सफल विक्रेता के पास आकर कहाः मैं इस काम के लायक नहीं हूं। महीना भर काम करने के बाद भी कुछ बिक्री नहीं कर पाया हूं। और जहां भी गया हूं, वहां से बेइज्जती करा कर लौटा हूं।
अजीब बात कर रहे हो--पुराना विक्रेता बोला। मैं बीस साल से सेल्समैन
का काम कर रहा हूं। कई बार ऐसा हुआ है कि लोग मेरी बातें सुनने के लिए तैयार नहीं हुए। कई बार उन्होंने बीच में ही टोक कर मुझे चले जाने को भी कहा है। ऐसा भी हुआ है कभी कि जब मैंने बात करने की जिद्द की तो उन्होंने मुझे धक्का देकर बाहर निकाल दिया और मेरी चीजें भी उठा कर फेंक दीं। गाली- गलौज भी हुई है। पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि किसी ने मेरी कभी बेइज्जती की हो। अब और क्या बेइज्जती होती है! अपनी-अपनी दृष्टि। अपने-अपने देखने का ढंग।
मैंने सुना है, जापान की एक कंपनी ने दो आदमियों को इस सदी के प्रारंभ में अफ्रीका भेजा। वे जूता बनाने वाली कंपनियां थीं। अफ्रीका में बाजार खोजने भेजा। एक आदमी ने तो तीन दिन बाद तार दिया कि यहां बेकार है मेहनत करना, यहां कोई जूता पहनता ही नहीं। और दूसरा आदमी तीन महीने तक वहां रहा और तीन महीने के बाद उसने पत्र लिखा कि यहां दुनिया का सबसे बड़ा बाजार है, क्योंकि यहां किसी आदमी के पास जूते हैं ही नहीं।
अब ये दोनों बातें ठीक हो सकती हैं। जब कोई आदमी जूता पहनता ही नहीं,
तो पहले आदमी ने सोचाः इनके साथ सिर मारना, इनको समझाना कि जूता पहनो। यहां कभी किसी ने जूता पहना ही नहीं। बात खत्म। यहां कहां का बाजार है! दूसरे ने सोचा कि ये हैं लोग, यहां एक के पास भी जूता नहीं है; पूरा का पूरा बाजार है। हर आदमी अपना ग्राहक बन सकता है।
देखने की बात है--कैसे तुम देखते हो!
मीरा ने ऊंचे शिखर देखे, तो फिसलन का पता चलता है। जो गौरीशंकर पर चढ़ा हो, उसे फिर नीचे कोई भी शिखर न जमेगा। उसको तुम पूना की पहाड़ी पर ले जाओ और खड़ा कर दो और कहो कि यह बड़ी ऊंची पहाड़ी है, तो वह ऐसे ही खड़ा रह जाएगा कि तुम क्या बात कर रहे हो! तुम्हारे लिए ऊंची पहाड़ी हो सकती है। शायद तुम पहली दफे यहां चढ़े हो, तुम शायद बड़े आनंदित अनुभव कर रहे हो कि देखो कितनी ऊंचाई पर चढ़ आए!

मीरा जहां पर खड़ी है वहां से इंच भर भी नीचे उतरने में पीड़ा है। और मन खींच लेता है। पुराना बल है मन का। पुराने संस्कार हैं मन के। पुरानी आदतें हैं मन की। इस परम अवस्था से भी नीचे उतार लेता है। इसलिए मीरा कहती है--मेरो मन बड़ो हरामी, ज्यों मदमातो हाथी।
"हम मूलाधार की नीचाई से देखने वाले लोगों के मन के लिए क्या कहा जाएगा?"
कुछ भी नहीं कहा जा सकता। आपकी बेइज्जती हो ही नहीं सकती। जिस गड्ढे में आप विराजमान हो, उससे नीचे कोई गड्ढा नहीं है। तो मन घसीटेगा भी कहां? ले भी जाए तो कहां ले जाए?
सिर्फ सम्राट ही दरिद्र हो सकते हैं; दरिद्र नहीं। सम्राट दरिद्र हो सकता है। जिसने महल जाने हों उसे कभी अगर राह पर चलना पड़े, तो उसे पता चलता है। जो राह पर ही पैदा हुए थे, राह पर ही चलते रहे हैं, वहीं उनका घर है, वहीं उनका निवास है--उन्हें तो पता ही नहीं चल सकता कि राह पर कुछ अड़चन है। और सम्राट अगर कहे कि बड़ी तकलीफ है, तो वे हंसेंगे कि क्या बातें कर रहे हो! अब इतनी न हांको। यहीं तो हम रहते रहे सदा से, और यहां मजा ही मजा है। और तुम्हें यहां तकलीफ हो रही है!
एक आदमी राह पर गिर पड़ा। वह राह थी, सुगंधियों की दुकानें थीं उसके आस-पास। एक आदमी राह पर गिर गया, भीड़ लग गई। एक सुगंधि-विक्रेता, एक गंधी, अपनी तिजोड़ी से सबसे कीमती सुगंध लेकर आया। क्योंकि कहा जाता है कि गहरी सुगंध हो तो आदमी बेहोशी से होश में आ जाता है। उसने फाहा भिगो कर उस आदमी की नाक के पास रखा। वह तो हाथ-पैर तड़फाने लगा आदमी। होश में आने की तो बात दूर रही, वह मछली की तरह तड़फने लगा। भीड़ में एक और आदमी खड़ा था। उसने कहाः भाई, तुम उसको मार डालोगे। मैं उसको जानता हूं। हम दोस्त हैं। आप कृपा करके यह अपना इत्र अलग करो।
उस गंधी ने कहाः बात क्या है? यह इत्र तो बेहोश से बेहोश आदमी को होश में ले आता है। इसकी चोट ऐसी है।
उसने कहाः वह चोट होगी, तुम इत्र जानते होओगे, मैं इस आदमी को जानता हूं। यह मछलीमार है। यह मछली बेच कर आ रहा है बाजार से।
उस आदमी की टोकरी भी पास में पड़ी थी, जिसमें मछलियां लाया था बेचने। टोकरी में गंदा कपड़ा भी था, जिसमें मछलियां बांधी थीं। उनसे भयंकर बदबू उठ रही थी। वह दूसरा आदमी भागा गया नल के पास। थोड़ा सा पानी उस गंदे कपड़े पर छिड़का और लाकर वह गंदा कपड़ा उस आदमी की नाक पर रख दिया। उसने गहरी सांस ली-- परम सांस शांति की! आंखें खोल दीं और वह कहने लगाः भाई, किसने मुझे बचा लिया? कोई दुष्ट मुझे मारे डाल रहा था।
मछलियों की गंध को ही जिसने जाना हो, उसे वही सुगंध है।
तो मीरा कह सकती है कि मेरो मन बड़ो हरामी, तुम न कह पाओगे। थोड़े ऊंचे चढ़ो सीढ़ियों पर, तब यह सौभाग्य तुम्हें मिलेगा कि तुम इस वचन को कह सको; उसके पहले नहीं।

अंतिम प्रश्नः मनुष्य की पात्रता कितनी है?

मनुष्य की पात्रता परम है--उतनी ही जितनी परमात्मा की पात्रता। मनुष्य छिपा हुआ परमात्मा है। मनुष्य बीज है परमात्मा का। परमात्मा खिला हुआ परमात्मा है; मनुष्य अनखिला परमात्मा है। कहो बीज, कहो कली। पात्रता बड़ी है आदमी की। इससे कम अपनी पात्रता सोचना ही मत। इससे कम सोचा तो तुमने परमात्मा का अपमान किया। यह तुम नहीं हो--तुम्हारे भीतर परमात्मा विराजमान है। अपने को हटाओ! अपने को बीच में मत लाओ। तुम ज्यादा से ज्यादा देह हो, घर हो--मंदिर उसका है; विराजा वही है। तुम सिंहासन हो; राजा वही है। तुम्हारी पात्रता परम है। और जब मैं यह कहता हूं तो यह मत सोच लेना कि तुम्हारे अहंकार को बढ़ावा दे रहा हूं। अहंकार को बढ़ावा तब मिलता है, जब तुम सोचोः मेरी पात्रता दूसरे से ज्यादा है। तब अहंकार को बढ़ावा मिलता है। लेकिन परमात्मा सभी की पात्रता है। इसमें बड़ा-छोटा कोई नहीं। इसमें जितना तुम्हारा परमात्मा है, उतना ही तुम्हारी पत्नी का भी, उतना ही तुम्हारे बेटे का भी, उतना ही पड़ोसी का भी। परमात्मा सबकी पात्रता है।

इसलिए परमात्म-भाव में कोई अहंकार का उपाय नहीं। अहंकार तुलना से पैदा होता है। परमात्मा सबका स्वभाव है। और जिस दिन तुम्हें समझ आनी शुरू होगी, उस दिन तुम पाओगेः वृक्षों का भी स्वभाव वही है। वृक्षों में वही है हरा। जो तुम में थोड़ा है जगा-जगा, वृक्षों में वही है सोया-सोया। चट्टानों में भी वही है। खूब गहरी निद्रा में सोया है--सुषुप्ति में पड़ा है। चांद-तारों में भी वही है। क्योंकि अस्तित्व और परमात्मा पर्यायवाची हैं। अस्तित्व और परमात्मा दो अलग-अलग बातें नहीं हैं। अस्तित्व मात्र परमात्मामय है। इसे स्मरण रखो। अपनी इस पात्रता को स्मरण रखो। यह स्मरण भी तुम्हें जगाने में सहयोगी होगा। क्योंकि आदमी जो अपने को मान लेता है, वही हो जाता है। विचार की बड़ी गहन परिणति होती है। तुम जो अपने को मान लेते हो वही हो जाते हो। तुमने अगर अपने को क्षुद्र मान लिया तो क्षुद्र रह जाओगे। तुमने अगर विराट से दोस्ती बनाई तो विराट हो जाओगे। तुम उतने ही हो सकोगे, जितना तुम स्वीकार करोगे, उससे ज्यादा नहीं हो सकोगे।
इसलिए नास्तिक अभागा है, क्योंकि वह अपने को बड़े क्षुद्र के साथ एक कर लेता है। खोल के साथ एक कर लेता है; भीतर का असली तत्व चूक जाता है। नास्तिक अभागा है। आस्तिक हो जाना सौभाग्यशाली है। हालांकि तुम यह मत सोच लेना कि तुम मंदिर जाते हो और मानते हो कि ईश्वर है, इसलिए तुम आस्तिक हो। आस्तिक होना दुर्लभ भी है। जितना सौभाग्य की बात है, उतना ही दुर्लभ भी है। कभी करोड़ आदमियों में एकाध आदमी आस्तिक होता है। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा जाने वालों की भीड़ को मैं आस्तिक नहीं कह रहा हूं। वे तो नास्तिक से भी गए-बीते हैं। नास्तिक कम से कम ईमानदार है। कहता हैः मुझे पता नहीं, तो कैसे स्वीकार करूं? और ये तो बड़े बेईमान हैं। इन्हें पता भी नहीं है। इन्होंने कभी स्वीकार भी नहीं किया है। स्वीकार करने के लिए जो श्रम उठाना चाहिए, वह भी नहीं उठाया है। इनकी स्वीकृति उधार है। इनके बाप मानते थे, बाप के बाप मानते थे--इसलिए ये भी मानते हैं। इनको मुफ्त मिला है परमात्मा।
मुफ्त नहीं मिलता परमात्मा। जीवन के मूल्य से कीमत चुकानी पड़ती है।
जो चुकाता है उसको मिलता है। तुम्हारे पिता कहते थे कि परमात्मा है, इसलिए तुमने मान लिया। न उनको पता है। और उनके पिता उनसे कह रहे थे। और उनके पिता उनसे कह गए थे। ऐसा लोग कहते चले गए हैं और लोग मानते चले गए हैं। ऐसी परंपरा से जो स्वीकृति आती है उसका नाम आस्तिकता नहीं है। उस तरह की आस्तिकता झूठी है। और तुम्हें हिंदू बना देती है, मुसलमान बना देती है, ईसाई बना देती है, जैन बना देती है; लेकिन धार्मिक नहीं बना पाती। और धार्मिक को क्या लेना-देना है हिंदू से, ईसाई से, मुसलमान से?
धार्मिक हिंदू होगा? कैसे होगा? अगर धार्मिक भी हिंदू होगा, तो फिर धार्मिक धार्मिक नहीं। धर्म पर कोई सीमा नहीं, कोई विशेषण नहीं। धर्म विराट आकाश है, जिस पर कोई बंधन नहीं। उस विराट आकाश को न तो वेद घेरते हैं, न उपनिषद घेरते हैं, न कुरान, न बाइबिल। उस विराट आकाश पर कोई दीवाल नहीं है, कोई सीमा नहीं है।
धार्मिक व्यक्ति तो सिर्फ धार्मिक होता है। लेकिन वैसा धार्मिक व्यक्ति करोड़ में एक होता है। उसी को मैं आस्तिक कहता हूं।
आस्तिक का अर्थ होता हैः जिसने अपने अनुभव से कहा कि हां, परमात्मा है; जिसने अपने अनुभव से कहा कि हां, परमात्मा मुझमें है। क्योंकि और कहां अनुभव होगा? अगर मुझ में नहीं है तो अनुभव हो ही नहीं सकता। जिसने अपने स्वाद से कहा कि हां, मैं परमात्मा हूं!
यद्यपि, ध्यान रखना, जब कोई कहता है कि मैं परमात्मा हूं, तो उसका यह अर्थ नहीं होता कि वह यह कहता है कि तुम परमात्मा नहीं हो। जब कोई कहता है कि मैं परमात्मा हूं--अनुभव से--तो उसकी घोषणा में तुम भी परमात्मा हो गए। उसकी घोषणा सबके लिए की गई घोषणा है। उस एक मनुष्य की घोषणा ने सभी मनुष्यों के भीतर जो सोया है, उसमें तिलमिलाहट उठा दी, उसको जगा दिया।
एक मनुष्य परमात्मा हो सकता है, इसका अर्थ है कि सभी मनुष्य परमात्मा
हो सकते हैं। राम ही अवतार नहीं हैं, कृष्ण ही अवतार नहीं हैं--तुम भी अवतार हो। तुम्हें अभी इसकी पहचान नहीं है।

अवतार का अर्थ होता हैः परमात्मा से उतरा हुआ, अवतरित। और कहां से उतरोगे? उसके अतिरिक्त और कोई मूलस्रोत नहीं है। सिर्फ पहचान की कमी है; प्रत्यभिज्ञा नहीं हो रही है।
तुम्हें पता नहीं कि तुम कौन हो। राह के भिखारी बने हो--हो सम्राट।
साम्राज्य तुम्हारा है। सारी संपदा तुम्हारी है। लेकिन बने भिखारी हो।
भिक्षापात्र के साथ जुड़ गए हो। यह भिक्षापात्र का ही नाम तृष्णा है, वासना है। यह भिक्षापात्र कभी भरेगा नहीं। यह भरता ही नहीं।
तुमने पूछी यह बातः "मनुष्य की पात्रता कितनी है?"
उतनी जितना परमात्मा है, क्योंकि मनुष्य में परमात्मा समा सकता है। उनकी सीमा या असीमा बराबर है, एक जैसी है।
जुनूने-आगही हूं, शोरिसे-हको-सदाकत हूं
मैं इरफाने-मोहब्बत हूं, मैं तूफाने-मुसर्रत हूं
सदा जो कामयाबो-कामरा हो, मैं वो लज्जत हूं
न हो जो आशनाए-रंजो-कुल्फत, मैं वो राहत हूं
वकूरे-जल्वा मुझसे, इश्क की सरमस्तियां मुझसे निशाने-वस्ले-पैहम हूं, इलाजे-दर्दे-फुर्कत हूं गुलिस्ताने-जहां है मेरे दम से खुल्दे-नज्जारा गुलों की ताजगी हूं मैं, हुजूमे रंगो-निहकत हूं सितारों की चमक हूं, रोशनी हूं चांद-सूरज की फिजां की वसहते-बेइंतहा गरदूं की रिफअत हूं मेरे नक्शे-कदम से कहकशां का नूर है पैदा
समाए जिसमें हैं कौनेन वो दामाने-वुसअत हूं फना कर दे अदावत को, मिटा डाले जो नफरत को
वो बर्के-इश्क हूं, वो शोलाए-सोजे-मोहब्बत हूं
नहीं कुछ इम्तियाजे-कुफ्रो-ईमां ताअतो-इसियां
खुला सबके लिए हो जिसका दामन वो सखावत हूं
जहां की पस्तियों में मौजे-रिफअत मुझसे उठती है
गुनाह की वादियों में आबशारे-अक्रूओ-रहमत हूं
आदमी क्या नहीं है? इस अंधेरे जगत में रोशनी जिससे उठती है--आदमी वही है। आदमी क्या नहीं है? इस रेगिस्तान में जो फूल खिलते हैं, जहां से खिलते हैं--आदमी वही है। यहां जो भी गीत उठते हैं, यहां जो भी आह्लाद जगता है, यहां जो भी उत्सव मनाया जाता है--कहां से उठता है? आदमी ही उसके मूलस्रोत में है। यहां मंदिर हैं और मस्जिद हैं और गुरुद्वारे हैं और पूजा है, प्रार्थना है, आयोजन है--वे सब भी आदमी के ही कारण हैं। आदमी की पात्रता बड़ी है।
यहूदी फकीर, एक यहूदी फकीर ने कहा है--हिलेल उसका नाम था--कि हे प्रभु, मुझे तेरी जरूरत है; लेकिन तुझे भी मेरी जरूरत है। तेरे बिना मैं न हो सकूंगा। कैसे हो सकूंगा? लेकिन मेरे बिना तू कैसे हो सकेगा? न होगा आदमी, न उठेगी कोई प्रार्थना, न बनेगा कोई पूजागृह। न होगा आदमी, न परमात्मा की कोई मूर्ति ढाली जाएगी। न वेद की ऋचाएं जन्मेंगी, न कुरान की आयतें। न होगा आदमी, न कोई इबादत होगी, न कोई नमाज होगी, न कोई उपासना। न होगा आदमी, न कोई साधना होगी, न कोई संगीत होगा।
आदमी की पात्रता अनंत है--उतनी ही जितनी परमात्मा की।
तुम सोए हुए परमात्मा हो। जागो!
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
तेरहवां प्रवचन

मीरा से पुकारना सीखो

सखी, मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत सिगरी, रैन विहानी हो।
सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिन देख्या कल नाहिं पड़त, जिय ऐसी ठानी हो।
अंगि-अंगि व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी हो।
अंतर वेदन विरह की, वह पीड़ न जानी हो।
ज्यूं चातक घन कूं रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीरा व्याकुल विरहिणी, सुध-बुध बिसरानी हो।

डारि गयो मनमोहन फांसी।
अम्बुआ की डाली कोयल इक बोलै, मेरो मरण अरू जग केरी हांसी।
विरह की मारी मैं बन-बन डोलूं, प्राण तजूं करवत लेऊं कासी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।

प्यारे दरसन दीजो आए, तुम बिन रह्यो न जाए।
जल बिन कमल चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्या बिन सजनी।
व्याकुल व्याकुल फिरूं रैण दिन, बिरह कलेजो खाए।
दिवस न भूख नींद नहिं रैना, मुखसूं कथत न आवै बैना।
कहा कहूं कछु कहत न आवै, मिल कर तपत बुझाए।
क्यूं तरसाओ अंतरजामी, आए मिलो किरपा कर स्वामी।
मीरा दासी जनम-जनम की, पड़ी तुम्हारे पांए।

तू ऐसे सरखुशो-सरमस्त मयकदे में आ,
कि मुस्कुरा के तुझे हर नजर सलाम करे।
फिर ऐसी पी कि हो सदनाज तुझ पे साकी को
हो फख्र मय को, तेरा एहतराम जाम करे।
खुशी से झूम उठे मयकदा जो पीरे मुगां,
नजर मिला के तेरे साथ फिर कलाम करे।
हयात रक्स करे, नगमे रूह से उठें,
जो रक्से-बादाकशी मयफरोश आम करे।
पिला के डाले जो रिंदों पे इक निगाहे-गलत,
तमाम इशरतो-ऐशे-जहां हराम करे।
एक ढंग है मधुशाला में आने का--और एक ढंग है परम मधुशाला में आने का भी। मीरा से पाठ सीखना प्रभु की मधुशाला में आने का। मीरा से राह सीखना उस परम रस को पीने की।
उस रस को पीना सबसे बड़ी कला है। और कला हृदय की है, मस्तिष्क की नहीं।
इसलिए तर्क से उसे न समझ पाओगे। उसे समझने का रास्ता प्रेम है, पीड़ा है। विरह की पीड़ा जितना जला दे कलेजे को, विरह जितना भस्मीभूत कर दे तुम्हें, उसी मात्रा में, ठीक उसी मात्रा में, प्रभु की वर्षा होगी।
मीरा के इन पदों में वे सारी बातें बिखरी पड़ी हैं--सूत्रबद्ध नहीं हैं, क्योंकि भक्त सूत्रबद्ध नहीं हो सकता। लेकिन जिनको खोज है, जिनको प्यास है, वे टटोल लेंगे सीढ़ियों को। वे रास्ता बना लेंगे। रास्ता है। ज्ञानी का रास्ता तो सीधा तर्कबद्ध, गणित की लकीर की तरह होता है। भक्त का रास्ता घुमावदार होता है, पगडंडी की तरह होता है। भक्त के रास्ते पर सूत्रबद्धता नहीं होती--रसबद्धता होती है।
इसलिए जिन्होंने ज्ञान के शास्त्र पढ़े हैं, अक्सर भक्तों को पढ़ते समय चूक जाते हैं। क्योंकि वहां वैसा गणित नहीं है, वहां वैसी सुस्पष्टता नहीं है। भक्ति तो रहस्य है; धुंधलका छाया है वहां। प्रेम की बदलियों में जैसे कोई भटक गया हो! ज्ञान तो भरी दोपहरी है। और भक्त? भक्त तो संध्याकाल

है। इसलिए तो हम प्रार्थना को संध्या कहते हैं। संध्या का अर्थ होता हैः न दिन, न रात; दोनों जहां मिलते हैं; जहां मिलन होता है--दिन का, रात का। जहां अंधेरा और रोशनी एक-दूसरे के साथ खेल खेलते हैं, छिया-छी खेलते हैं। जहां हृदय और मस्तिष्क की सीमा है। जहां शरीर और आत्मा का मिलन होता है। जहां परमात्मा और अस्तित्व साथ-साथ नृत्य करते हैं।
भक्त की भाषा रहस्य की भाषा है। उसकी भाषा बिल्कुल अलग है। इसलिए जो लोग ज्ञान के शास्त्रों से परिचित हैं, जिन्होंने पतंजलि का योगसूत्र पढ़ा, उन्हें मीरा के साथ अड़चन होगी। वे सोचेंगेः ये सिर्फ भक्ति के गीत हैं। तो तुम चूक गए। ये गीत ही नहीं हैं--इन गीतों में पूरा भक्ति का शास्त्र छिपा है। लेकिन भक्ति का शास्त्र अपने ढंग से प्रकट होता है। जैसे शराबी चलता है--लड़खड़ाता, ऐसा ही भक्त भी चलता है--लड़खड़ाता। उसके लड़खड़ानेपन को देख कर अगर तुम दूर हट गए, तो परम रहस्य से वंचित हो जाओगे। तुम्हें टटोल कर खोजना पड़ेगा।
तो मीरा के इन वचनों में टटोलना। सब है, लेकिन साफ-सुथरा नहीं। रेखाओं में बंटा हुआ नहीं। वर्गों में विभाजित नहीं। सब मिश्रित है। सब एक-दूसरे में घुला-मिला पड़ा है। इसलिए थोड़ी अड़चन भी होती है। और कभी किसी ने भी मीरा के वचनों को इस तरह समझने की कोशिश नहीं की है, जैसा मैं चाहता हूं कि तुम समझो। लोग समझते हैं कि गीत हैं; गाने के लिए हैं, जीने के लिए नहीं। लोग सोचते हैं कि ठीक है, गुनगुना लो, कभी मौज में, मस्ती में; लेकिन इससे जीवन-शैली थोड़े ही निर्मित होगी।
मैं तुमसे कहना चाहता हूंः जीवन-शैली इनमें छिपी पड़ी है। हां, थोड़ा श्रम करना होगा। थोड़े पर्दे उठाने पड़ेंगे। घूंघट में है राज। घूंघट देख कर ही मत लौट जाना। घूंघट के भीतर अपूर्व रहस्य छिपा हुआ है। लेकिन जो घूंघट उठाएगा, उसको ही रहस्य मिलेगा।
तो पहली तो बात ख्याल रखो--
तू ऐसे सरखुशो-सरमस्त मयकदे में आ,
भक्ति को समझना हो तो मस्ती शर्त है।
तू ऐसे सरखुशो-सरमस्त मयकदे में आ,
डूबे हुए आओ। रसविभोर आओ। नाचते हुए आओ। गीत तुम्हें घेरे रहे, तो ही तुम मीरा से संबंध जोड़ पाओगे। सोचते हुए मत आओ। सोचे कि मीरा से दूर छिटक जाओगे। मस्ती में संबंध बनेगा। डगमगाते हुए आओ।
तू ऐसे सरखुशो-सरमस्त मयकदे में आ,
यह मयकदा है। यह मीरा का जो मंदिर है, मधुशाला है। यह पंडित का मंदिर नहीं है--यह मस्तों का मंदिर है।
कि मुस्कुरा के तुझे हर नजर सलाम करे।
नाचते हुए आओ। अहोभाव से भरे हुए आओ। प्रफुल्लता से आओ। प्रसाद से आओ। तो मीरा से संबंध जुड़ने में जरा भी देर न लगेगी। इधर तुम्हारा हृदय नाचता हुआ, तो उधर तो मीरा नाच ही रही है। और तुम भी नाचो, तो ही मीरा से मिल सकोगे। नाचते क्षण में ही मिल सकोगे। तुम बुद्धिमान बने खड़े रहे, तो तुम्हारे बीच और मीरा के बीच जमीन-आसमान का अंतर होगा। उस अंतर को पाटना संभव नहीं है।
हयात रक्स करे, नगमे रूह से उठें,
तुम्हारे चारों तरफ अस्तित्व नाचता हुआ हो और तुम्हारे प्राणों से गीत उठते हों। ऐसी कला हो तो मीरा को समझ सकोगे।
बातें सरल हैं मीरा की। कठिन तो होंगी ही कैसे! भक्त कठिन बात बोलता
ही नहीं। भक्त तो सरलतम बोलता है। लेकिन तुम नाचो, पिघलो, सरल हो जाओ, तो ही सरल को समझ पाओगे। तुम कठिन रहे, कठोर रहे, तुम तर्कजाल में घिरे रहे, तुम बुद्धि में अकड़े रहे, तुम ज्ञानी की अकड़ से भरे रहे--तो भक्त से संबंध न जुड़ेगा। भक्त जैसे होओ, तो ही संबंध जुड़ेगा। नहीं तो तुम्हें लगेगा कि भजन हैं; ठीक है, सुंदर हैं; संगीत में बांधे जा सकते हैं।
मैं तुमसे कहना चाहता हूंः इतना ही कहा, तो तुमने मीरा को न समझा। मीरा कोई गायिका नहीं है, न कोई नर्तकी है। मीरा ठीक वैसी है, जैसे बुद्ध हैं, जैसे महावीर हैं, जैसे क्राइस्ट हैं। पर महावीर और बुद्ध के वचन ठीक-ठीक सीढ़ियों में विभक्त हैं। मीरा के वचन ऐसे विभक्त नहीं हैं--नहीं हो

सकते हैं। इसलिए मीरा के साथ अन्याय हुआ है। लोगों ने इतना ही समझा कि ठीक है, अच्छे गीत गाए हैं, भाव भरे गीत हैं। लेकिन इन भावनाओं में जीवन का पूरा शास्त्र है, जीवन की शैली है; जीवन को बदलने की कला और कीमिया है। ऐसा लोगों ने नहीं सोचा है। वही मैं तुमसे कहना चाहता हूं; उसी ढंग से तुम सोचो।
सखी, मेरी नींद नसानी हो।
बुद्ध कहते हैंः आदमी सोया हुआ है, मूर्च्छित है। महावीर कहते हैंः आदमी प्रमाद में है। उसे जगाना है। उससे भिन्न बात नहीं है यह। यह कहने की शैली और है, लेकिन बात वही मीरा कह रही है।
मीरा कह रही हैः सखी, मेरी नींद नसानी हो।
मेरी नींद टूट गई। मेरा प्रमाद टूट गया। मेरी मूर्च्छा टूट गई।
हालांकि मूर्च्छा का टूटने का ढंग मीरा का अलग है। महावीर की टूटी है--अथक ध्यान से! और मीरा की टूटी है--अहर्निश प्रेम से। मगर नींद तो टूटी है। महावीर ने संकल्प से तोड़ी है, श्रम से तोड़ी है; इसलिए महावीर की संस्कृति श्रमण संस्कृति कहलाती है। अथक श्रम किया है। अपने संकल्प को जगाया है, जूझे हैं। योद्धा हैं। इसलिए "वर्धमान" से "महावीर" उनका नाम हो गया। वह मार्ग योद्धा का है। जैसे कोई दूसरे से लड़ता है, ऐसे महावीर अपनी नींद से लड़े हैं। छिन्न-भिन्न कर डाला है नींद को।
मीरा ने भी नींद को तोड़ दिया है। लेकिन लड़ी जरा भी नहीं। संकल्प का कोई उपयोग नहीं किया है। समर्पण का उपयोग किया है। नींद टूट गई--प्रभु की याद में, प्यारे की याद में। याद इतनी सघन हो गई, तीर की तरह चुभ गई हृदय में--नींद आए तो आए कैसे!
और मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि मीरा का मार्ग महावीर के मार्ग से ज्यादा रसपूर्ण है। श्रम की कोई जरूरत नहीं है, जहां बिना श्रम के हो जाता हो। संकल्प की कोई जरूरत नहीं है, जहां समर्पण से हो जाता हो। जहां हार कर जीत मिलती हो, वहां लड़ने की जरूरत क्या है? जहां याद करने मात्र से सदा-सदा की नींद टूट जाती हो, वहां और किसी तरह के उपाय, विधि-विधान की कोई जरूरत नहीं। मीरा के पास कोई और विधि-विधान नहीं है। आवश्यक भी नहीं है।
जिसके पास प्रेम है, उसके लिए कोई विधि आवश्यक नहीं है। प्रेम काफी है--काफी से ज्यादा है। सारी विधियां जो करती हैं, वह अकेला प्रेम कर देता है। विधियों की विधि है प्रेम।
सखी, मेरी नींद नसानी हो।
मीरा कहती हैः मेरी नींद टूट गई। नींद आती ही नहीं। इससे तुम इतना ही
मत समझ लेना कि रात मीरा बिस्तर पर बैठी रहती है, सोती नहीं।
नींद क्या है? तुम जब आंखें खोले हुए होते हो, राह पर चलते, दुकान पर बैठे, तब भी तुम जागे हो? नहीं, कोई ज्ञानी इस बात से राजी नहीं कि तुम जागे हो। तुम सोए हो। तब भी तुम सोए हो। बिस्तर पर तो तुम सोते ही हो, दुकान में भी तुम सोते हो। मंदिर में भी तुम सोते हो। आंख खोलने से कुछ नींद के टूटने का संबंध नहीं है। जब तक भीतर का अंतरतम न खुल जाए, तब तक नींद नहीं टूटती। आंख खुलने से क्या नींद टूटेगी! नींद बड़ी सघन है; आंख खुली रहती हैं और तुम सोए रहते हो। राह पर चलते वक्त तुम जागे हुए थोड़े ही चल रहे हो। हजार विचार चल रहे हैं, हजार सपने और वासनाएं भीतर चल रही हैं और तुम उन्हीं में तल्लीन हो। बाहर भी चलते जा रहे हो और भीतर भी न मालूम कितने विचारों की पर्तें तुम्हें छाए हुए हैं, कितने बादलों में तुम ढंके हो! तुम्हारा सूरज बादलों के बाहर नहीं है। तुम्हारे अंतसचेतन में कोई रोशनी नहीं हो रही है। सब तरफ अंधेरा है। किसी तरह चल लेते हो अभ्यास-वश। इस चलने को तुम जागना मत समझ लेना।
जागने का अर्थ होता हैः जब तुम चल रहे हो तो सिर्फ चल रहे हो--और तुम्हारे भीतर एक भी विचार नहीं है। कोई बादल नहीं तुम्हारे चित्त के आकाश पर। तुम्हारे भीतर की ज्योति बिना धूम्र के, कोई धुआं नहीं आस-पास, धूम्ररहित ज्योति है। तो तुम जागे हुए हो।
पतंजलि ने चार अवस्थाएं कही हैंः सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत और तुरीय। तुरीय ही असली जाग्रत अवस्था है। जिसको हम जाग्रत कहते हैं, उसे तथाकथित जाग्रत कहा है पतंजलि ने--नाममात्र को जाग्रत, कहने मात्र को जाग्रत।

वस्तुतः जाग्रत नहीं। सिर्फ बुद्ध जागे हुए हैं। जब बुद्ध चलते हैं तो सिर्फ चलते हैं। जब बुद्ध भोजन करते हैं तो सिर्फ भोजन करते हैं। जब बुद्ध सुनते हैं तो सिर्फ सुनते हैं; जब बोलते हैं तो सिर्फ बोलते हैं। बुद्ध की मौजूदगी सदा वर्तमान क्षण में होती है। इसको बुद्ध ने जागरण कहा है। बुद्ध ने तो जागरण के ऊपर पूरा शास्त्र निर्मित किया। विपस्सना का ध्यान और सारी अनापानसतीयोग की प्रक्रियाएं जागने के लिए हैं।
मीरा भी जब कहती हैः सखी, मेरी नींद नसानी हो। तो वह उसी नींद की बात नहीं कर रही, जो रात तुम बिस्तर पर सोते हो, तब आती है। उतने की ही बात करे तो साधारण स्त्री है; फिर कुछ विशिष्ट नहीं हुआ है। विश्वविद्यालयों में मीरा के पद पढ़ाए जाते हैं और यही समझाया जाता है कि वह उसी नींद की बात कर रही है। रात सो नहीं सकती, क्योंकि उसे प्यारे की याद आ रही है। इतना ही नहीं, विश्वविद्यालयों में मनोवैज्ञानिक हैं जो कहते हैं कि यह तो किसी तरह की कामक्षुधा है, यह दमित वासना है। यह मनुष्य के प्रति जो प्रेम होना चाहिए, जैसे साधारण आदमियों का होता है, इसी को मीरा ने कृष्ण के ऊपर आरोपित कर लिया है। यह तो कामवासना का ही रूप है। ये जो कृष्ण हैं, ये मीरा के कल्पना के प्रेमी हैं; लेकिन यह है तो वासना ही। ऐसा मनोवैज्ञानिक कहते हैं। और जो मनोवैज्ञानिक से राजी न हों, वे भी इससे दूर नहीं जाते, कि मीरा रात सो नहीं पाती। जैसे प्रेमी नहीं सो पाते, करवट लेते हैं, ऐसे मीरा भी करवट लेती है। इतना ही समझा तो मीरा के साथ तुमने अन्याय किया।
मीरा कहती हैः नींद टूट गई मेरी। नष्ट हो गई। नसानी! अब लाख उपाय करूं
तो भी सो नहीं सकती। कृष्ण ने गीता में कहा हैः या निशा सर्व भूतायां तस्यां जागर्ति संयमी। जो सबके लिए रात्रि है, सब भूतों के लिए रात्रि है, वहां भी जो योगी है, वह जागता है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि कृष्ण कभी सोते नहीं हैं, कि जब सब सो जाते हैं, तब वे अपने कमरे के कोने में खड़े जागते रहते हैं। सोते हैं। शरीर सोता है, लेकिन कृष्ण जागते रहते हैं। शरीर थक गया, विश्राम में चला जाता है; लेकिन भीतर एक चेतना सजग रहती है।
तुम जागे-जागे भी सोए रहते हो; योगी सोया-सोया भी जागा रहता है। यही भोगी और योगी का भेद है। भोगी जागा लगे तो भी समझना कि सोया है; योगी सोया लगे तो भी जानना कि जागा है। भोगी ऊपर की आंखें खोलता है, भीतर सोया रहता है; योगी बाहर की आंखें बंद कर लेता है, भीतर जागा रहता है।
मीरा भी उसी योग की परम दशा में है; लेकिन उसका मार्ग भिन्न है--पतंजलि से, कृष्ण से, महावीर से, बुद्ध से। तुम यह जान कर हैरान होओगे कि वह कृष्ण की आशिक है, कृष्ण के पीछे दीवानी है; लेकिन उसका मार्ग कृष्ण के मार्ग से भिन्न है। गीता के कृष्ण से उसे कुछ लेना-देना नहीं है। गीता से उसे कुछ लेना-देना नहीं है। उसका मार्ग कृष्ण से बिल्कुल भिन्न है। वह प्रेम से जागी है। उसने विरह की जो क्षमता है मनुष्य के भीतर, उसका सहारा लेकर जागरण साध लिया है।
ऐसा समझोः तुम्हें किसी से प्रेम हो जाए तो रात नींद नहीं आती। करवट लेते हो, याद आती हैः प्रियजन पास होता, मित्र पास होता! मीरा ने इसी सामान्य क्षमता का परम उपयोग कर लिया है। जब साधारण प्रेम में रात नींद खो जाती है तो मीरा ने उस असाधारण प्रेम को पैदा कर लिया है कि सारी नींद खो जाए--रात की ही नहीं, दिन की भी; सोने की ही नहीं, जागने की भी। नींद ही नसा जाए। नींद ही नष्ट हो जाए। जिस मात्रा में प्रेम सघन होता है, उसी मात्रा में नींद कम होती जाती है। जब प्रेम का दीया पूरा-पूरा जलता है तो नींद का अंधेरा पूरी तरह समाप्त हो जाता है।
सखी, मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत सिगरी, रैन विहानी हो।
सारी रात... ! रात से अर्थ रात का ही नहीं है। रात से अर्थ हैः जीवन की
वह दशा, जो हमने सोए-सोए बिताई। तुम्हारे लिए अभी भी रात है। संसार रात्रि है, जहां लोग सोए हैं और सपने देख रहे हैं। हजार-हजार तरह के सपने--धन के, पद के, प्रतिष्ठा के। लोगों को पता नहीं कि लोग क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं, किसलिए कर रहे हैं। किए जा रहे हैं। एक मूर्च्छा है। अंधेरे में दौड़े चले जा रहे हैं, क्योंकि और लोग भी दौड़ रहे हैं। सब दौड़ रहे हैं।

धक्काधुक्की में तुम भी दौड़े जा रहे हो। तुमने कभी रुक कर सोचा भी नहीं कि कहां जा रहे हो, क्यों जा रहे हो, किसलिए जा रहे हो।
एक जगह लोग फुटबाल खेल रहे थे और एक आदमी भागा हुआ आया और भीड़ में उसने चिल्ला कर कहा कि क्या कर रहे हो रामकिशन, तुम्हारे घर में आग लगी है! और जो आदमी फुटबाल हाथ में लिए था, उसने वहीं पटकी और भागा, एकदम भागा। पसीना- पसीना। रास्ते पर आकर हांफता हुआ खड़ा हो गया और बोला--किसी और से नहीं, और तो वहां कोई था नहीं, अपने आप से बोला--कि अरे, मैं क्यों भाग रहा हूं? मेरा नाम तो रामकिशन है ही नहीं। घर में आग लगी है, इस बात ने ऐसी चोट की कि वह यही भूल गया कि मेरा नाम रामकिशन है या नहीं।
तुम अपनी जिंदगी में ऐसे बहुत मौके पाओगे। तुम्हारी पूरी जिंदगी ऐसी
ही बातों से भरी है। तुम क्यों भागे जा रहे हो? क्यों धन के पीछे भाग रहे हो? --और लोग भाग रहे हैं। क्यों पद के पीछे भाग रहे हो? --और लोग भाग रहे हैं। सभी ऐसा करते हैं, इसलिए तुम भी ऐसा कर रहे हो। तुमने अपने जीवन को कोई दिशा जाग कर नहीं दी है। होशपूर्वक तुमने निर्णय नहीं लिया हैः क्या करना है? यह जीवन इतना बहुमूल्य है, और इसे तुम कौड़ियों में लुटा रहे हो। और तुमने एक बार भी रुक कर नहीं सोचा है, क्षण भर बैठ कर नहीं सोचा है कि इस बहुमूल्य जीवन का कोई सदुपयोग हो जाए। यह ऐसे ही न चला जाए कूड़े-कर्कट में। कुछ निश्चित ही इससे उपलब्धि हो, निष्कर्ष निकले।
निश्चित ही, धन मिलने से निष्कर्ष नहीं निकलेगा। क्योंकि धन यहीं पड़ा
रह जाएगा और तुम चले जाओगे। और पद पाने से भी निष्कर्ष नहीं निकलेगा। क्योंकि मौत न पद वालों की फिकर करती है, न पदहीनों की। मौत सब छीन लेगी। जो-जो मौत छीन लेगी, अगर उसी को कमाने में तुम लगे हो तो तुम सोए हुए आदमी हो; तुम जागे हुए नहीं, तुम मूर्च्छित हो।
जागा हुआ कौन? जो मौत को देख कर जाग गया है; जो यह जान कर सजग हो गया है
कि मौत तो आती है, आती ही है, आ ही रही है, आ ही जाएगी--आज नहीं कल, कल नहीं परसों, देर-अबेर मौत द्वार पर दस्तक देगी। इसके पहले कि मौत आए, मुझे कुछ ऐसा कमा लेना है जिसे मौत न छीन पाए। तो तुम्हारे जीवन में दिशा है, जागरण है, थोड़ा ध्यान है, थोड़ा होश है।
सखी, मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत सिगरी, रैन विहानी हो।
सारी रात बीत गई, बिहान हो गया, सुबह हो गई, प्यारे को याद करते-करते रात टूट गई और सुबह हो गई।
पिय को पंथ निहारत सिगरी...
उस प्यारे की प्रतीक्षा करते-करते... प्रतीक्षा में कोई सोए तो कैसे सोए! प्यारा आता हो तो कोई सोए तो कैसे सोए! प्यारा कब आ जाएगा, पता नहीं। जीसस ने बहुत बार कहा है अपने शिष्यों कोः प्यारा कब आ जाएगा, कुछ पता नहीं। वह मालिक कब द्वार पर दस्तक देगा, कुछ पता नहीं। इसलिए जागे रहना। यह सोच कर मत सो जाना कि अभी तो आया नहीं; अब जब आएगा तब देखेंगे; अभी तो सो लें, अभी तो विश्राम कर लें; कौन अभी आया जाता है! ऐसा सोच कर सो मत जाना।
कहीं ऐसा न हो कि तुम सोए होओ और प्यारा आए और चूक हो जाए।
और ऐसा ही हो रहा है। ऐसा ही दुर्भाग्य घट रहा है। प्यारा आता है, मगर तुम मिलते ही नहीं; तुम सोए होते हो। तुम्हें सोया देख लौट जाता है।
और जब मैं ऐसा कह रहा हूं तो ये कोई काव्य की घोषणाएं नहीं हैं। ये तथ्य की सीधी-सीधी सूचनाएं हैं। प्रतिपल परमात्मा तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है। जैसे सागर प्रतिपल अपनी लहरों से टक्कर देता है तट पर, ऐसे ही परमात्मा प्रतिपल तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है। कभी सूरज की किरण में, कभी हवा के झोंके में, कभी चांद के साथ, कभी पक्षियों के गीत में, कभी बच्चों की मुस्कुराहट में, न मालूम कितने-कितने रूपों में, अनंत हैं उसके रूप--लेकिन हर रूप तुम्हारे द्वार पर आकर टकराता है! मगर तुम गहन निद्रा में सोए हो। तुम्हारी सुबह अभी हुई नहीं।
पिय को पंथ निहारत सिगरी...
मीरा कहती हैः मैंने कुछ और नहीं किया। मैं तो सिर्फ प्यारे की राह देख रही हूं कि आता होगा, जरूर आएगा। उसके वचन का मुझे भरोसा है। उसका भरोसा है, इसलिए सोऊं कैसे? इसलिए जागी हूं। रात सुबह होने लगी।

... रैन विहानी हो।
बिहान होने लगा, प्रभात होने लगा। अंधेरा प्रकाश में परिवर्तित होने लगा। निद्रा जागरण में ढलने लगी।
जिस दिन निद्रा जागरण में ढलती है, उसी दिन मृत्यु अमृत में ढल जाती है। जिस दिन अंधेरा रोशनी बनने लगता है, उसी दिन देह आत्मा में रूपांतरित होने लगती है। उसी दिन क्षुद्र खोने लगता है और विराट का अवतरण होने लगता है। उसी क्षण तुम पात्र बनते हो। जो वैसा पात्र न बन जाए, अभागा है।
पिय को पंथ निहारत सिगरी, रैन विहानी हो।
सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।
और तो सबने कहा, समझाया-बुझाया कि सो जाओ, कौन आता है, कब आता है, कभी आया कोई? किस प्यारे की राह देखते हो?
सब सखियन मिलि सीख दई...
इस संसार में तुम्हें जो भी सीख देने वाले लोग मिलेंगे, वे यही तो कह रहे हैं कि कहां की बातों में पड़े हो? मंदिर जा रहे हो? होश है? मंदिर में क्या रखा है? यह कुरान में सिर मार रहे हो, कुछ समझ नहीं? ये गई-बीती बातें! ये सड़े-गले शास्त्र! यह गीता, यह वेद, यह मीरा, यह कबीर, यह नानक, किनकी बातों में उलझे हो? दीवानों की बातों में पड़े हो? कुछ होशियारी का काम करो! चार दिन की जिंदगी है, भोग लो; फिर अंधेरी रात है। निचोड़ लो। जितना भोग बन सके, निचोड़ लो। जितना धन मिल सके, जितनी शक्ति मिल सके, पद मिल सके-- मुट्ठी बांध लो, फिर अंधेरी रात है। फिर कब्र में पड़े रहोगे। किसकी राह देख रहे हो?
तुम्हें याद होगा, अगर तुम भजन करो तो संकोच होता है, क्योंकि वे सखियां चारों तरफ मौजूद हैं, जो कहेंगीः पागल हो गए हो, भजन कर रहे हो! इस तरह करोगे तो लोग अजायबघर में रख देंगे। होश में आओ। होश में आने का उनका मतलब होता है, उन जैसे बेहोश हो जाओ। धन के लिए दौड़ो तो कोई संकोच नहीं होता। धन के लिए जीओ और मरो, तो स्वीकृत हो। लेकिन अगर कभी प्रार्थना करो, कभी ध्यान करो, कभी पूजा करो, तो संकोच लगता हैः किसी को पता न चल जाए! मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः ध्यान कैसे करें? मोहल्ले वाले लोग, वे कहते हैंः अरे, तुम भी पागल हो गए! और मोहल्ले की तो छोड़ें, पत्नी चिंतित हो जाती है। बच्चे पूछते हैं कि पापा, तुम्हें क्या हो गया? आप तो ऐसे कभी न थे। तो बहुत संकोच होता है।
यह दुनिया धन के लिए जी रही है। यहां अगर कोई ध्यान के लिए जीएगा तो बड़ा अकेला पड़ जाता है, बड़ा अजनबी हो जाता है। यहां पागलपन करो, सांसारिक, तो सबका साथ है तुम्हें। यहां परमात्मा को खोजो, एकदम अकेले हो गए। भरे बाजार में तुम अकेले हो गए। लोग हंसेंगे, तिरस्कार भी करेंगे, अपमान भी करेंगे, विरोध भी करेंगे।
तो मीरा कहती हैः सब सखियन मिलि सीख दई...
समझाती हैं सखियां कि कहीं कृष्ण हैं? कौन आएगा? कोई कभी नहीं आता। शांति से सो जाओ। प्रेम ही करना हो तो यहीं किन्हीं व्यक्तियों को प्रेम कर लो। ये परलोक की बातें सब कल्पना के जाल हैं।
रवींद्रनाथ की कविता हैः एक महामंदिर, उसके बड़े पुजारी ने स्वप्न देखा कि परमात्मा स्वप्न में खड़े होकर उससे कह रहे हैं--ज्योतिर्मय--कि कल मैं आता हूं। तुम्हारी पूजाएं, तुम्हारी प्रार्थनाएं स्वीकार हो गई हैं। कल मैं आता हूं।
उस अपूर्व दृश्य को देख कर, उस ज्योतिपिंड को देख कर और उस वाणी को सुन
कर मुख्य पुजारी की नींद टूट गई। यद्यपि पुजारी था, बड़ा पुजारी था, उस मंदिर में सौ पुजारी थे, वह बड़ा मंदिर था, पुजारी होकर भी उसे ऐसा लगा कि औरों को कहूं कि न कहूं? लोग हंसेंगे।
एक बात तुम जान कर हैरान होओगे कि औरों का चाहे धर्म पर थोड़ा-बहुत भरोसा हो, पुजारियों का बिल्कुल भरोसा नहीं है। जार्ज गुरजिएफ तो कहा करता थाः अगर धर्म से छुटकारा पाना हो, कुछ दिन किसी पुजारी के साथ रह लो। तो सब धोखाधड़ी जाहिर हो जाएगी। पुजारी का तो बिल्कुल भरोसा नहीं। पुजारी तो धंधा कर रहा है। भगवान उसकी दुकान है। वह तो धंधे में है। उसे क्या लेना-देना! और वह भलीभांति जानता है कि इस मूर्ति में कुछ भी नहीं, क्योंकि

कई बार उसने देखा कि मूर्ति पर चूहा चढ़ गया, उसी से तो अपनी रक्षा नहीं कर पाते, और किससे रक्षा करोगे! मूर्ति लुढ़क जाती है कभी हवा के झोंके में, तो अपने आप उठ कर नहीं बैठ पाती। अब और दूसरों का क्या सहारा करोगे? सब बकवास है कि अंधों को आंखें दीं और लंगड़ों को पहाड़ चढ़ा दिया। खुद ही तो चढ़ो! पुजारी देखता है कि मूर्ति में कुछ नहीं है। लेकिन पुजारी का एक व्यवसाय है।
बड़ा पुजारी था। फिर भी डरा कि और पुजारियों को कहूंगा तो वे हंसेंगे;
कम से कम नये पुजारी तो बहुत हंसेंगे; युवा पुजारी तो बहुत हंसेंगे कि अब बूढ़ा हो गया, सनक गया मालूम होता है। सठिया गए! कभी आया भगवान?
तो चुपचाप सो रहा। लेकिन फिर सपना आया। फिर वही ज्योतिर्मय पिंड! फिर वही घोषणा--कि देख भरोसा कर, कल आता हूं! फिर नींद टूट गई। फिर अपने को समझा-बुझा लिया कि अभी आधी रात किसको उठाऊं, सुबह देखेंगे। और सुबह तक समझ फिर आ जाएगी वापस, तो किसी से कहने की जरूरत नहीं। कौन आता है!
फिर तीसरी बार सपना आया, तो फिर मुश्किल हो गया। फिर तो उसे घबड़ाहट भी लगी कि कहीं ऐसा न हो कि आ ही जाए! तो उसने सब पुजारियों को जगा दिया। लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा कि आप भी किन बातों में पड़ गए, सपने कहीं सच होते हैं? सपने सपने हैं, कौन कब आता है! इस मंदिर को हजारों साल हो गए बने, कभी परमात्मा आया है? कभी उसने किसी की प्रार्थना सुनी है? सब प्रार्थनाएं कोरे आकाश में खो जाती हैं; न कोई सुनने वाला है, न कोई उत्तर देने वाला है। हमसे ज्यादा और कौन जानेगा? हम कितनी तो प्रार्थनाएं करते हैं, लेकिन एक प्रार्थना तो कभी सुनी नहीं जाती।
लेकिन बूढ़े पुजारी ने कहाः कुछ भी हो, तुम्हारी बात मेरी भी समझ में आती है। मैं भी यही मानता हूं कि कोई आने-जाने वाला है नहीं; लेकिन तीन बार सपना आया है, कहीं ऐसा न हो कि वह आ ही जाए और हम तैयार न हों। तो हर्ज क्या है, हम तैयारी तो कर ही लें। आया तो ठीक; नहीं आया तो कोई हर्जा नहीं होगा। यह बात जंची। मंदिर धोया गया, सजाया गया, भोजन बनाया गया। और लोग हंस रहे हैं, भोजन भी बना रहे हैं वे कि मेहमान आने वाला है और हंस भी रहे हैं। वे कह रहे हैंः कौन कब आता है! और जानते हैं कि यह भोग अपने को ही लगने वाला है, कोई और आने वाला नहीं।
फिर सांझ भी आ गई और आने वाला नहीं आया। फिर हंसी खूब उठने लगी। फिर खूब मजाक चलने लगा। फिर उन्होंने सबने मिल कर बड़े पुजारी को कहा कि अब बहुत हो गया, दिन भर हो गई प्रतीक्षा करते-करते। अब हम भूखे भी हैं, थक भी गए हैं, अब हम भोजन करें और विश्राम करें। अब सूरज भी ढल गया। आना होता तो आ गया होता। अब कोई रात में तो आएगा नहीं।
फिर उन्होंने भोजन किया। दिन भर के थके-मांदे थे, सो गए।
और रात, आधी रात उसका रथ आया। यह कविता बड़ी प्यारी है! इसे समझना। आधी रात उसका रथ आया। उसके रथों की आवाज, उसके रथ के चाकों की गड़गड़ाहट--और किसी पुजारी ने नींद में सुनी आवाज। वह नींद में कुनमुनाया। उसने कहाः भाइयो, मुझे लगता है, वह आया। रथ की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है। एक दूसरा पुजारी चिल्लाया कि बंद करो यह बकवास! दिन भर थका मारा और अब भी सोते भी नहीं शांति से। यह कोई रथ नहीं है। कहां का रथ? रथ होते हैं अब? यह बादलों की गड़गड़ाहट है। तुम चुपचाप सो जाओ।
फिर सन्नाटा हो गया। वह उतरा। रथ मंदिर के द्वार पर आकर रुका। वह सीढ़ियां चढ़ा। उसके चढ़ने की आवाज, वह मधुर रव, जो परमात्मा के चरणों में ही होता है, फिर सुनाई पड़ा। फिर किसी ने कहा कि भाई, मुझे लगता है कि कोई सीढ़ियों पर चढ़ रहा है और एक अजीब संगीत सीढ़ियों पर गूंज रहा है। फिर कोई चिल्लाया कि यह तो हद्द हो गई, दिखता है आज सोना संभव नहीं है! कुछ भी नहीं है। हवा वृक्षों से गुजरती होगी।
फिर उसने द्वार पर दस्तक दी। और फिर किसी ने कहाः भाई, मानो या न मानो, मगर कोई द्वार पर दस्तक दे रहा है। अब तो बड़ा पुजारी भी चिल्लाया कि बंद करो बकवास और चुपचाप सो जाओ! न कोई कभी आया है और न कोई कभी आएगा। ये सिर्फ हवा के थपेड़े हैं।
फिर वे सो गए। वे सुबह उठे। और जब उन्होंने द्वार खोला, तो सब ठगे रह गए--अवाक। रथ के पहियों का निशान मंदिर के द्वार तक बना था। रथ आया। रथ

वापस लौटा। चिह्न थे। कोई सीढ़ियों पर चढ़ा, उसके पदचिह्न थे। तब वे बहुत रोने लगे। लेकिन अब तो कुछ भी रोने से न हो सकता था। अवसर जा चुका था। जीवन ऐसा ही है। परमात्मा तो रोज आता है, प्रतिपल आता है। घोषणा करे न करे, आता तो है ही। मगर हम सोए हैं और हम अपने को समझा लेते हैं। पक्षी बोलते हैं तो हम कहते हैंः पक्षियों की आवाज है। उसकी आवाज हमें सुनाई नहीं पड़ती। वृक्षों से हवा गुजरती है तो हम कहते हैंः वृक्षों से हवा गुजरी। वही गुजरता है। सब चिह्न उसी के हैं। सब हस्ताक्षर उसी के हैं। लेकिन ये तो उसी को दिखाई पड़ते हैं जो परिपूर्ण रूप से जागा हो।
जागने के दो उपाय हैं। या तो महान संकल्प करो कि निद्रा टूट जाए; या ऐसा गहन प्रेम करो कि उसकी प्रतीक्षा में पलकें झप न पाएं।
सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।
मीरा कहती हैः सब सखियां समझाती हैं। सारा संसार समझा रहा है। घर के लोग समझा रहे थे। प्रियजन समझा रहे थे। परिवार के लोग थे--कि मीरा पागल न हो। यह सब पागलपन है। कहां का कृष्ण! कैसा कृष्ण! यह तू किसकी मूर्ति लिए फिरती है? यह किसका तू गुणगान गा रही है? यह सिर्फ तेरी कल्पना का जाल है। लेकिन मीरा कहती हैः मैं न मान सकी। मैं न राजी हो सकी।
सौभाग्यशाली थी। जिस दिन तुम सांसारिक लोगों की बातों से राजी हो जाते हो, तुम्हारे दुर्भाग्य का क्षण है। जिस क्षण तुम सोए हुए लोगों की बातों से राजी नहीं होते, अहोभाग्य है। किसी जागे हुए आदमी के साथ पागल हो जाने में भी अहोभाग्य है; और सोए हुए लोगों के साथ बड़े समझदार बने रहने में भी दुर्भाग्य है।
सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिन देख्या कल नाहिं पड़त, जिय ऐसी ठानी हो।
प्रेम ने ऐसी गहन गांठ बांध ली कि बिना देखे अब कल नहीं पड़ती, अब चैन नहीं है। नींद कहां! नींद कैसी! विश्राम कहां!
जब तक प्रभु-मिलन न हो जाए, तब तक कोई विश्राम नहीं। जैसे नदी भागी चली जाती है जब तक सागर से न मिल जाए, ऐसा प्रेमी रोता ही रहता है, पुकारता ही रहता है। अहर्निश उसके भीतर से एक ही पुकार उठती रहती हैः कब मिलोगे? कब दिखाई पड़ोगे? कब स्पर्श होगा? कब दरस-परस होगा?
बिन देख्या कल नाहिं पड़त, जिय ऐसी ठानी हो।
अंगि-अंगि व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी हो।
और मीरा कहती हैः यह कुछ ऐसा नहीं है कि हृदय में ही बाण चुभा हो। अंग-अंग, रोएं-रोएं में, शरीर के एक-एक हिस्से में पीड़ा सघन हो गई है। मन ने ही नहीं पुकारा है, तन ने भी पुकारा है। एक स्वर से पुकारा है।
अंगि-अंगि व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी हो।
और मुंह है कि जैसे पपीहा पुकारता रहता है--पी-कहां, पी-कहां, पी-कहां! चुप रहूं तो भी पुकार चल रही है, बोलूं तो भी पुकार चल रही है। बोलूं या न बोलूं, पुकार चल ही रही है। और अंग-अंग छिद गया है।
अंतर वेदन विरह की, वह पीड़ न जानी हो।
मीरा कहती हैः ऐसी पीड़ा तो कभी जानी नहीं थी। जन्मों-जन्मों में ऐसी पीड़ा कभी जानी न थी।
अंतर वेदन विरह की...
और तरह की बहुत पीड़ाएं जानी थीं--कभी सिर में दर्द हुआ था, कभी पैर में दर्द हुआ था, कभी पैर में कांटा चुभा था--मगर अंग-अंग कांटे ही कांटे चुभ गए। अंग-अंग आग ही आग लग गई। ऐसी विरह-अग्नि तो कभी जानी न थी। और यह पीड़ा बड़ी अनूठी भी है। पीड़ा भी है और मीठी भी। ऐसी पीड़ा कभी जानी न थी। विरह की पीड़ा में दंश भी है और रस भी; पुकार भी है और धन्यवाद भी। शिकायत भी है और प्रार्थना भी। भक्त लड़ता भी है भगवान से, झगड़ता भी है। और सब झगड़ों के बाद उसके चरणों में सिर झुका कर बैठ जाता है।
अंगि-अंगि व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी हो।
अंतर वेदन विरह की...
यह संस्कृत का शब्द वेदना बड़ा अपूर्व है। दुनिया की किसी भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं। इसके दो अर्थ होते हैंः ज्ञान और दुख। यह उसी मूल धातु से बना है, जिससे वेद। वेद का अर्थ होता हैः ज्ञान, परम ज्ञान। यह अनूठा

शब्द है। क्योंकि ज्ञान और दुख का क्या संबंध? कोई तालमेल नहीं मिलता। वेदना--दुख; और वेद--ज्ञान! और एक से ही दोनों का जन्म हुआ। इसमें बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। एक ऐसा भी दुख है, जिसमें वेद का जन्म होता है। एक ऐसी भी वेदना है, जिसमें वेद जन्मता है। एक ऐसी भी पीड़ा है, जिसमें से परमात्मा प्रकट होता है। इसलिए एक ही शब्द के दो अर्थ--दुख और ज्ञान। एक तरफ दुख है, महादुख है।
अंगि-अंगि व्याकुल भई...
अंतर वेदन विरह की...
और सारा अंतर वेदना से जल रहा है, विरह की अग्नि में जल रहा है। एक तरफ वेदना और जैसे-जैसे अग्नि प्रगाढ़ होती है, वैसे-वैसे दूसरी तरफ वेद का जन्म होता है। पीड़ा से आदमी निखरता है, स्वच्छ होता है। पीड़ा से ऐसी ही घटना घटती है, जैसे आग से जब सोना गुजरता है तब। कुंदन बन जाता है सोना। सब कचरा जल जाता है। आग से गुजर कर जैसे सोना शुद्ध होता है, ऐसे ही विरह की अग्नि से, वेदना से गुजर कर वेद का जन्म होता है, बोध का जन्म होता है, बुद्धत्व का जन्म होता है।
अंतर वेदन विरह की, वह पीड़ न जानी हो।
यह पीड़ा बड़ी अनजानी है, बड़ी नई है। यह दुख भी दे रही है और सुख भी दे रही है। यह इसका अपूर्व रूप है। यह बड़ी रहस्यपूर्ण है।
तुम यह मत सोचना कि भक्त अपनी पीड़ा छोड़ने को राजी हो जाएगा। तुम यह मत सोचना कि तुम कहो कि चलो लो, एस्प्रो ले लो; कि एनासिन है, काम करेगी, इसके चार गुण हैं। भक्त कोई दवा लेने को राजी नहीं होगा। पीड़ा बीमारी नहीं है भक्त की--भक्त का सौभाग्य है; उसका परम स्वास्थ्य है। वह धन्यभागी है। परमात्मा की विरह-अग्नि किस्मत वालों को ही मिलती है। उससे भक्त छूटना नहीं चाहेगा। पीड़ा है जरूर, लेकिन ऐसी नहीं कि छोड़ी जाए; ऐसी कि सम्हाल कर रखी जाए। संपदा है। तो वेदना भी है और वेद भी। पीड़ा भी है और मधुर भी। बड़ी मीठी पीड़ा है। यह अनूठी बात है विरह की।
संसार में हमने दुख जाना। संसार में हमने सुख भी जाना। लेकिन संसार
का सुख थोथा है, उथला है। और संसार का दुख भी थोथा है और उथला है। संसार में कोई चीज गहरी होती ही नहीं। परमात्मा के साथ दुख मिलता है तो भी गहरा मिलता है; और सुख मिलता है तो भी गहरा मिलता है। गहरे दुख का बड़ा आनंद है; क्योंकि गहरा दुख तुम्हें गहरा कर जाता है, तुम्हें गहराई में उतार जाता है। जितना गहरा दुख जाता है, उतने ही गहरे तुम अपने अंतर्तम में चले जाते हो। तो दुख कुएं की तरह हो जाता है और तुम अपने गहरे कुएं में उतरने लगते हो, तो अपने से पहचान होने लगती है। हालांकि कुएं में उतरते डर भी लगता है, अंधेरा काटता है। अनजान, अपरिचित, कभी गए नहीं ऐसी जगह! संग-साथ छूटने लगता है, अकेले रह जाते हो।
अब यह मीरा अपने विरह में बिल्कुल अकेली रह गई। एक तो कोई इसके विरह
को समझ नहीं सकता। लोग इसे पागल समझने लगे। लोग कहने लगे मीरा दीवानी हो गई। कोई इसके दुख को समझ नहीं सकता, क्योंकि जिसने यह दुख जाना हो वही समझे। तो कभी कोई साधु मिल जाता है, कभी साध-संगत हो जाती है, तो मीरा प्रसन्न हो जाती है।
साधु देख राजी भई...
कभी कोई मिल जाता है, जो इस दुख को पहचानता है, जो इस पीड़ा से गुजरा है
और इस पीड़ा के अहोभाग्य का जिसे अनुभव है--तब तो ठीक हो जाता है। लेकिन, अन्यथा जो लोग मिलते हैं, वे सभी कहते हैंः अपने को सम्हालो। यह क्या पागलपन है? वापस लौटो। सब भला-चंगा था, खराब कर लिया। यह किस व्यर्थ की झंझट में उलझ गई? क्यों दुख उठा रही हो? कोई नहीं आता। न कोई है आने को। आकाश खाली है। न कोई परमात्मा है, न कोई प्रार्थना का अर्थ है। क्षणभंगुर ही सब कुछ है, शाश्वत होता नहीं।
क्षणभंगुर में जीने वाले लोग शाश्वत की भाषा भी नहीं समझ पाते। यह पीड़ा बड़ी अदभुत है, मीरा कहती है। यह जगा गई है मुझे, निखार गई, स्वच्छ कर गई, शुद्ध कर गई।
ज्यूं चातक घन कूं रटै...

और जैसा चातक प्रतीक्षा करता--स्वाति की बूंद की, और लगा रहता है आकाश
की तरफ आंखें लगाए। जगत में जल की कोई कमी नहीं है। चातक, हो सकता है, नदी- तट पर हो। जगत में जल की कोई कमी नहीं है। लेकिन जिसे स्वाति की बूंद का स्मरण आ गया, जिसे स्वाति की बूंद का स्वाद लग गया, जिसे स्वाति की बूंद की सनक सवार हो गई--इस जगत के पानी का फिर कोई अर्थ नहीं है। इस पानी से तो प्यास बढ़ती है, घटती नहीं। ऐसा पानी चाहिए कि प्यास सदा के लिए तृप्त हो जाए।
स्वाति प्रतीक है। स्वाति एक नक्षत्र है; एक विशेष नक्षत्र की दशा है। ऐसे ही मनुष्य के भीतर भी स्वाति-नक्षत्र की दशा बनती है। दो तरह से बनती है--या तो ध्यान, या प्रेम। स्वाति-नक्षत्र का अर्थ होता हैः तुम्हारे भीतर सब परम शांति को उपलब्ध हो गया, कोई द्वंद्व न रहा, कोई कलह न रही; संगीत, लयबद्धता पैदा हुई। फिर ध्यान से हो या प्रेम से, कैसे हो-- इससे कोई सवाल नहीं। तुम्हारे भीतर समरसता आ गई, सामंजस्य आ गया, सम्यकत्व आ गया, समतुलता आ गई। तुम्हारे भीतर कोई द्वंद्व, कोई दुई, कोई कलह न रही। सब तरफ सन्नाटा और शांति हो गई। अहोभाव आ गया। वही है स्वाति-नक्षत्र भीतर। उसी घड़ी वह मेघ तुम पर बरसता है। बुद्ध ने तो उसको नाम ही दिया हैः धर्म-मेघ-समाधि! उस घड़ी में धर्म का मेघ बरसता है। और जो वर्षा होती है, वह सदा के लिए तृप्त कर जाती है। फिर कोई प्यास नहीं बचती।
संसार का अर्थ हैः कितना ही पीओ, प्यास बची ही रहती है। बची ही नहीं रहती, बढ़ती भी जाती है। कुछ ऐसी है संसार की स्थिति कि जैसे आग लगी हो और तुम घी फेंक-फेंक कर आग को बुझा रहे हो। आग और बढ़ती चली जाती है। और तुम देखते भी नहीं कि आग बढ़ती चली जाती है। अंधापन अदभुत है! बच्चे ज्यादा शांत दिखाई पड़ते हैं, बूढ़े ज्यादा अशांत। आग बढ़ती चली गई है। और जीवन हो गया इनका बुझाते, तो जरूर बुझाने में कहीं भूल हो गई है। नहीं तो बच्चे अशांत होने चाहिए, बूढ़े शांत होने चाहिए। बच्चे कपटी होने चाहिए, बूढ़े निर्दोष होने चाहिए। बच्चे बेईमान होने चाहिए, बूढ़े ईमानदार होने चाहिए। बच्चे नास्तिक हों, यह समझ में आता है; बूढ़े तो नास्तिक नहीं होने चाहिए। लेकिन अनुभव आदमी के जीवन में से सब छीन ले जाता है--देने की बजाय। कैसा अनुभव है यह? अनुभवी आदमी चालाक हो जाता है, पाखंडी हो जाता है, बेईमान हो जाता है। इसलिए तो दुनिया में बेईमानी बढ़ती चली गई है। क्योंकि जैसे-जैसे दुनिया का अनुभव बढ़ता चला गया, मनुष्यता प्रौढ़ होती चली गई, उतना आदमी चालाक होता चला गया। छोटे बच्चे भोले मालूम होते हैं। यह बात उलटी है।
अगर जीवन का अनुभव सच में ही अनुभव है, तो बात भिन्न होनी चाहिए, बिल्कुल भिन्न होनी चाहिए। जैसे-जैसे आदमी के जीवन में अनुभव बढ़े, वैसे- वैसे तृप्ति बढ़नी चाहिए। अनुभव का और क्या अर्थ? अनुभव की और कसौटी क्या? वैसे-वैसे सरलता बढ़नी चाहिए। निर्दोषता में और नये चार चांद लगने चाहिए। साधुता बढ़नी चाहिए। संतत्व बढ़ना चाहिए। मरते-मरते तक आदमी परम शांत अवस्था को, समाधि को उपलब्ध हो जाना चाहिए। तो जीवन के अर्थ... तो जीवन का अनुभव सार्थक।
लेकिन यहां तो उलटी बात है। यहां आग जितनी बुझाओ उतनी लपटें बढ़ती चली जाती हैं। तो जरूर तुम बुझाने में जो चीज फेंक रहे हो, वह ईंधन है। आग बुझा रहे हो, घी के पीपे उड़ेल रहे हो। सोचते हो इस तरह आग बुझ जाएगी। देखते नहीं, आग रोज बढ़ती चली जाती है!
संसार में प्यास किसी की बुझती ही नहीं। और जिसकी प्यास बुझ जाए, उसने
ही जीया, उसने ही जाना। प्यास बुझती परमात्मा से है।
ज्यूं चातक घन कूं रटै, मछरी जिमि पानी हो।
और जैसे किसी ने मछली को पानी से निकाल कर रेत पर फेंक दिया हो और तड़फती हो। मीरा कहती हैः ऐसी मैं तड़फती हूं।
अंतर वेदन विरह की, वह पीड़ न जानी हो।
... मछरी जिमि पानी हो।
जैसे पानी के लिए मछली तड़पे, ऐसी मैं तुम्हारे लिए तड़फती हूं।
और जब तक कोई ऐसा न तड़पे, जब तक तुम कुनकुने-कुनकुने तड़फते हो, तब तक तुम नहीं पा सकोगे। परमात्मा को पाने के लिए सब दांव पर लगाना पड़ता है।

निन्यानबे डिग्री से भी काम नहीं चलेगा। सौ डिग्री से कम में काम नहीं चलता। तुम्हें पूरा का पूरा विरह की अग्नि में समर्पित हो जाना पड़ेगा। मीरा हुई तो उसने पाया।
अगर तुम्हारी प्रार्थना पूरी नहीं होती तो यही समझना कि तुमने प्रार्थना की नहीं। अभी तुम्हें प्रार्थना करना नहीं आया। अभी तुम्हें मयकदे में कैसे आएं, इसका रिवाज पता नहीं। अभी मधुशाला में बैठने का ढंग तुम्हें मालूम नहीं।
तू ऐसे सरखुशो-सरमस्त मयकदे में आ,
कि मुस्कुरा के तुझे हर नजर सलाम करे।
हयात रक्स करे, नगमे रूह से उठें,
जो रक्से-बादाकशी मयफरोश आम करे।
मदिरा-पान की रस्म सीखनी पड़ती है, रिवाज सीखना पड़ता है। प्रार्थना तुमने बहुत बार की है; कभी पूरी नहीं हुई। तो उससे तुमने यह नतीजा लिया है कि परमात्मा नहीं है। नतीजा यह लेना था कि अभी प्रार्थी पैदा नहीं हुआ। लेकिन तुम नतीजा लेते होः परमात्मा नहीं है। नतीजा लेना था कि अभी मैंने प्रार्थना नहीं सीखी। प्रार्थना परिपूर्ण विरह का नाम है। रोआं-रोआं जलता हो, रोआं-रोआं कांटे से चुभा हो।
... मछरी जिमि पानी हो।
जब तक तुम ऐसी पीड़ा न जानोगे तब तक प्रार्थना से परिचय न हो पाएगा।
तुमने प्रार्थनाएं सीख ली हैं--तोतों की भांति दोहरा लेते हो। कुछ प्राण भी तो लगाओ! कुछ अपने को डालो भी तो! शब्द भी उधार, भाव भी उधार। कुछ अपना भी तो संयुक्त करो!
मीरा व्याकुल विरहिणी, सुध-बुध बिसरानी हो।
मीरा कहती हैः विरह ही विरह बचा है।
मीरा व्याकुल विरहिणी...
अब तो सुध-बुध भी खो गई। अब तो सब भस्मीभूत हो गया विरह में। अब तो होश-हवास भी नहीं रहा।
होश-हवास रह जाए तो भक्ति नहीं। इसलिए तो कहता हूंः भक्त का रास्ता पियक्कड़ का रास्ता है। होश-हवास रह जाए, होश-हवास से चलते रहे, तो कभी न पहुंचोगे। तुम अपनी होशियारी बचाए हुए चल रहे हो। होशियारी दांव पर लगानी होगी। और तब दुख ही स्वर्ग का द्वार बन जाता है। पीड़ा ही परमात्मा को तुम्हारे पास खींच लाती है।
जो राहते-जां है वो अलम मुझको मिला है।
जो ऐने मुसर्रत है वो गम मुझको मिला है।
जिस गम से जहांगीर मोहब्बत हुई है पैदा,
है हासिले-कौनेन जो गम मुझको मिला है।
जिस साज के तारों से हुई राग की तखलीक,
सद शुक्र कि वो साजे-अलम मुझको मिला है।
सर चश्माए-इल्ताको-इनायातो-नवाजिश,
जो जाने-करम है वो सितम मुझको मिला है।
जिस कुफ्र से ईमान की होती है इबारत,
जो अस्ले-यकीं है वो भरम मुझको मिला है।
पलते हैं जबीं में मेरे अब सैकड़ों सूरज,
जब से तेरा ये नक्शे-कदम मुझको मिला है।
एक ऐसा दुख है, एक ऐसी पीड़ा है, जो स्वर्ग से ज्यादा मूल्यवान है, क्योंकि उसी पीड़ा से परमात्मा से मिलन होता है।
जो राहते-जां है वो अलम मुझको मिला है।
जो ऐने मुसर्रत है वो गम मुझको मिला है।
एक ऐसा गम भी है, जो स्रोत है सारी खुशियों का। एक ऐसी पीड़ा निश्चित है, जिससे जीवन में सूरज का जन्म होता है। मीरा को ऐसी पीड़ा मिली। ऐसी पीड़ा तुम्हें भी मिल सकती है। क्योंकि ऐसी पीड़ा सभी का स्वरूप-सिद्ध अधिकार है। मगर तुम डरे-डरे, तुम उस पीड़ा को जगाते नहीं। तुम उकसाते नहीं। तुम अगर मंदिर भी जाते हो तो ऐसे ही औपचारिक।

मत जाना! उपचार से कहीं मत जाना! क्या सार? क्यों समय गंवाते हो? तुम जाते भी हो तो अपने को बचाते हुए जाते हो। जो अपने को डुबाने को राजी है, वही पाता है।
ज्यूं चातक घन कूं रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीरा व्याकुल विरहिणी, सुध-बुध बिसरानी हो।
है दिल को क्यों करार, मुझे कुछ पता नहीं।
आंखें हैं अश्कबार, मुझे कुछ पता नहीं।
रौशन हुए हैं मेहर सिफ्त दागहाए-दिल,
है कौन शोलाबार, मुझे कुछ पता नहीं।
धड़कन एक-एक दिल की है आवाजे-पाए-दोस्त, क्या है यही करार, मुझे कुछ पता नहीं।
एहसासे-कुर्बे-दोस्त है एहसासे-बेखुदी, क्या है विसाले-यार, मुझे कुछ पता नहीं।
साकी की चश्मे-मस्त है और मेरी तश्नगी,
हैं और मयगुसार, मुझे कुछ पता नहीं।
नकहत है, ताजगी है, मुसर्रत है दमबदम,
होगी यही बहार, मुझे कुछ पता नहीं।
क्या कर गई है एक नजर में निगाहे-मस्त
है कोई होशियार, मुझे कुछ पता नहीं।
एक ऐसी घड़ी आती है जब कुछ भी पता नहीं रह जाता। पता होने के पहले ऐसी घड़ी जरूर आती है जब कुछ पता नहीं रह जाता। इसके पहले कि परमात्मा का पता चले, तुम लापता हो जाते हो। इसके पहले कि परमात्मा का पता चले, तुम्हें जितने पते थे दुनिया के, वे सब भूल जाते हैं। संसार का ज्ञान न चूके, न भूले, तो परमात्मा का ज्ञान कभी पैदा नहीं होता। इन दोनों को तुम साथ-साथ न सम्हाल पाओगे। अगर परमात्मा को अपने जाल में फांस लेना हो, तो संसार पर जाल छोड़ देना होगा।
है दिल को क्यों करार, मुझे कुछ पता नहीं।
भक्त को यह भी पता नहीं चलता कि कब यह दिल में अपूर्व शांति हो जाती है। उसे कुछ पता नहीं चलता कि क्या, माजरा क्या? मामला क्या? यह शांति कहां से? यह क्यों? और कभी दिल मस्ती से भर जाता है और नगमे उठने लगते हैं और गीत फूटने लगते हैं। और उसे कुछ पता नहीं चलता कि मामला क्या है? और कभी आंखें आंसुओं से भर जाती हैं। और कभी रुदन ही रुदन रह जाता है। और उसे कुछ पता नहीं चलता कि यह क्या है! भक्त भगवान के हाथ में अपने को छोड़ देता है। पता रखने की जरूरत भी नहीं रह जाती।
है दिल को क्यों करार, मुझे कुछ पता नहीं।
आंखें हैं अश्कबार, मुझे कुछ पता नहीं।
कब आंखें रोती हैं? जब वह रुलाता है, तब रोती हैं। और कब ओंठ हंसने लगते हैं? जब वह मुस्कुराता है, तब हंसने लगते हैं। और कभी ऐसा भी हो जाता है कि आंखें रोती हैं और ओंठ मुस्कुराते हैं। और दोनों साथ-साथ भी चलता है। इसलिए पागल होने की हिम्मत चाहिए भक्त को।
रौशन हुए हैं मेहर सिफ्त दागहाए-दिल,
वह जो विरह ने घाव बना दिए थे हृदय में, वे रोशन हो गए हैं। एक-एक घाव एक-एक सूरज बन गया है।
रौशन हुए हैं मेहर सिफ्त दागहाए-दिल,
है कौन शोलाबार, मुझे कुछ पता नहीं।
यह रोशनी कहां से आ रही है? यह कौन मेरे घावों को रोशन सूरज बना दिया है? यह कौन जादू कर रहा है? मुझे कुछ पता नहीं है।
धड़कन एक-एक दिल की है आवाजे-पाए-दोस्त,
और अब तो दिल की एक-एक धड़कन में उसके पैरों की आवाज सुनाई पड़ रही है--उस परम प्यारे की, उस दोस्त की, उस मित्र की!
धड़कन एक-एक दिल की है आवाजे-पाए-दोस्त,
क्या है यही करार, मुझे कुछ पता नहीं।
क्या यही परम शांति है? क्या यही है आनंद? अब यह भी पता नहीं कि आनंद क्या है।

एहसासे-कुर्बे-दोस्त है एहसासे-बेखुदी,
दोस्त करीब आ रहा है और इधर होश खोया जा रहा है। जिसको खोजने निकले थे,
वह करीब आ रहा है; और जो खोजने निकला था, वह खोया जा रहा है। एहसासे-कुर्बे-दोस्त है एहसासे-बेखुदी,
मंजिल करीब आई जा रही है; और यात्री मिटा जा रहा है।
क्या है विसाले-यार, मुझे कुछ पता नहीं।
क्या यही है मित्र का मिलन? क्या यही है वह परम संभोग की घड़ी, जहां परमात्मा बचता है, भगवान बचता है और भक्त खो जाता है, या भक्त बचता है और भगवान खो जाता है? मगर अब कुछ पता नहीं। अब कोई हिसाब काम नहीं आता। अब पुराने मापदंड काम नहीं आते। अब पुराने शब्द सार्थक नहीं रहे।
साकी की चश्मे-मस्त है और मेरी तश्नगी,
और ये परमात्मा की आंखें, ये उस प्यारे की आंखें! और यह आंखों में झलकती हुई शराब! और यह मेरी प्यास!
साकी की चश्मे-मस्त है और मेरी तश्नगी,
हैं और मयगुसार, मुझे कुछ पता नहीं।
मेरे अलावा कोई और भी पियक्कड़ है दुनिया में, मुझे कुछ पता नहीं। यह मेरी प्यास है और ये तेरी आंखें हैं।
जब भक्त भगवान के सामने खड़ा होता है तो अकेला ही होता है। सारा जगत खो जाता है। भक्त को जब भगवान मिलता है तो अकेले को ही मिलता है; उसे बांटना नहीं पड़ता।
हैं और मयगुसार...
कोई और भी पियक्कड़ हैं दुनिया में, मुझे कुछ पता नहीं है। यह मेरी प्यास है और ये तेरी आंखें हैं। और अब मैं पीऊंगा। मेरी प्यास और तेरी आंखें! मेरी प्यास और तेरी मदिरा! बस दो काफी हैं। कोई और भी पीने वाले हैं, अब इसका कोई मुझे न होश है, न हिसाब है।
नकहत है, ताजगी है, मुसर्रत है दमबदम,
होगी यही बहार, मुझे कुछ पता नहीं।
सब तरफ फूल पर फूल खिले जाते हैं। ताजगी बरसती है। आनंद-उत्सव मनाया
जा रहा है।
नकहत है, ताजगी है, मुसर्रत है दमबदम,
और सब तरफ खुशियां फूट रही हैं, उत्सव की घड़ी आ गई है!
होगी यही बहार...
भक्त कहता हैः होना चाहिए, यही होगी बहार। हो न हो, यही है बहार।
होगी यही बहार, मुझे कुछ पता नहीं।
अब यह भी पता नहीं कि बहार क्या होती है, पतझड़ क्या होती है! सुख क्या, दुख क्या!
जिसने परमात्मा की पीड़ा जानी, उसके सब हिसाब टूट जाते हैं। परमात्मा
जब आता है तो बाढ़ की तरह आता है। परमात्मा कोई सरकारी नहर नहीं है। जब आता है तब बाढ़ की तरह आता है। सब सीमाएं तोड़ कर आता है। सब व्यवस्थाएं तोड़ देता है। जब आता है तो बड़ा अराजक होकर आता है। डुबा देता है।
क्या कर गई है एक नजर में निगाहे-मस्त,
है कोई होशियार, मुझे कुछ पता नहीं।
जब भक्त उस नजर को देख लेता है एक बार, तो उसे यह पहली दफे समझ में आता
है कि इस जगत में कोई भी होशियार नहीं है। ये जो बड़े-बड़े होशियार दिखाई पड़ते हैं चारों तरफ, ये बड़े से बड़े मूढ़ मालूम होते हैं। होशियारी मूढ़ता मालूम होती है, क्योंकि अब पागलपन में होशियारी मालूम होती है। होश नासमझी मालूम होती है, क्योंकि अब बेहोशी में रस के द्वार खुल जाते हैं-- अनंत द्वार खुल जाते हैं!
मीरा व्याकुल विरहिणी, सुध-बुध बिसरानी हो।
सुध-बुध बिसर जाने का ऐसा अर्थ है।
डारि गयो मनमोहन फांसी।
बड़ा प्यारा वचन है!
डारि गयो मनमोहन फांसी।
वह जो प्यारा है, वह गले में फांसी लगा गया।

प्रेम मृत्यु है। जो मर सकता है प्रेम में, वही पा सकता है। प्रेम का अर्थ ही होता हैः मैं अपने को मिटाने को तैयार। तू रहे, मैं न रहूं। संसार का अर्थ हैः मैं रहूं, चाहे तू मिट जाए। लेकिन मैं रहूं।
तुम जरा सोचना कभी बैठ कर किसी शांत क्षण में। अगर यह सवाल उठे कि परमात्मा सामने खड़ा है और तुम हो और दो में से एक ही बच सकते हैं, तुम किसको बचाना चाहोगे? परमात्मा को बचाना चाहोगे या अपने को? एक नाव में सवार हो-- परमात्मा और तुम, दोनों बैठे। और ऐसी घड़ी आ जाती है कि नाव डूबने के करीब है। एक बच सकता है। तो तुम अपने को बचाओगे या परमात्मा को? झूठे उत्तर मत देना, क्योंकि किसी और को तो उत्तर देना ही नहीं है; अपने भीतर ही सोचना है।
तुम अगर अपने को बचाओगे तो तुम्हारे जीवन में भक्ति की शुरुआत हुई ही नहीं। और सौ में से निन्यानबे लोग अपने को बचाएंगे। वे कहेंगेः देख लेंगे परमात्मा को फिर। और तरकीबें निकाल लेंगे, कहेंगे कि हम तो मरणधर्मा हैं, परमात्मा तो शाश्वत है। अरे, परमात्मा कहीं मरता है? परमात्मा मर ही नहीं सकता। और हम मर सकते हैं। तो अपने को बचा लो, परमात्मा तो बचा ही हुआ है। बहुत संभावना तो यह है कि तुम जयरामजी करके परमात्मा को धक्का दोगे कि फिर मिलेंगे।
लेकिन प्रेम... प्रेम मिटने की तैयारी है। प्रेम सदा मिटने को तत्पर है।
मीरा ठीक कहती हैः डारि गयो मनमोहन फांसी।
और भक्ति तो फांसी है। एक ही बचेगा। एक ही बच सकता है। दो का उपाय नहीं। कबीर कहते हैं नः प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाएं। दो नहीं समा सकते। या तो भक्त या भगवान।
तुम्हारी इच्छा होती है कि हम भी रहें, तुम भी रहो--सह-अस्तित्व, को- एग्झिस्टेंस! भई, क्यों झंझट-झगड़ा करना? चाहो तो दुकान बांट लें आधी-आधी, या घर बांट लें, या बीच में एक पर्दा डाल लें--तुम भी मजे से रहो, हम भी मजे से रहें। लेकिन अगर तुमने कहा कि तुम भी रहो और हम भी रहें, तो तुम ही रहोगे, परमात्मा नहीं रह सकता। क्योंकि परमात्मा इतना विराट है कि तुम पूरी जगह खाली करो तो ही रह सकता है। ये दोनों साथ नहीं हो सकते। एक म्यान में दो तलवार शायद बन भी जाएं, लेकिन एक जीवन में भक्त और भगवान साथ-साथ नहीं बनते।
डारि गयो मनमोहन फांसी।
पर बड़े प्रेम से कहा मीरा ने। कोई शिकायत नहीं है। बड़े आह्लाद से कहा
कि अच्छा किया कि फांसी डाल गए। अच्छा किया कि मुझे मारने का उपाय कर गए।
अच्छा किया कि मुझे चुना।
डारि गयो मनमोहन फांसी।
अम्बुआ की डाली कोयल इक बोलै, मेरो मरण अरू जग केरी हांसी।
जैसे आम की डाली पर कोयल बोलती है कुहू-कुहू! लगी रहती है रटन में! प्यारे को बुलाती रहती है। ऐसी ही--मीरा कहती है--मेरी दशा है। मैं तुम्हें बुला रही, बुला रही... बुला-बुला कर मरी जा रही। मेरी तो फांसी लगी है।
... मेरो मरण अरू जग केरी हांसी।
और लोग हंस रहे हैं। खूब फांसी दे गए!
डारि गयो मनमोहन फांसी।
क्या स्पर्श कर दिया, क्या जादू कर दिया कि तुम्हारे बिना कल नहीं पड़ती! और तुम्हारे लिए पुकारती हूं तो सारा जगत हंसता है। लोग कहते हैंः पागल है।
तुम्हें भी मीरा मिल जाए तो तुम भी पागल कहोगे। तुम भी इतना सदभाव न दिखा सकोगे कि मीरा को पागल कहने से रुको। तुम्हें भी मीरा मिल जाए तो तुम पागल कहोगे। मीरा को तो पागल कहने से वही बचेगा जिसमें खुद भी कुछ पागलपन लग गया हो, कुछ रंग लग गया हो। वही समझेगा। वह समझेगा कि क्या है दशा यह! यह बेसुध दशा, अपूर्व आनंद की दशा है।
अम्बुआ की डाली कोयल इक बोलै, मेरो मरण अरू जग केरी हांसी।
विरह की मारी मैं बन-बन डोलूं, प्राण तजूं करवत लेऊं कासी।

मीरा कहती है कि विरह की मारी मैं यहां से वहां खोजती फिरती हूं--इस जंगल से उस जंगल, इस पहाड़ से उस पहाड़, इस गांव से उस गांव, इस गली से उस गली-- तुझे तलाशती फिरती हूं। तेरी झलक तो मिल गई है। तेरी पहचान भी हाथ में आ गई है। जब से तेरा स्वाद लगा है, इस संसार में सब बेस्वाद हो गया। अगर तेरे लिए मरना भी पड़े तो इस संसार में जीने से बेहतर है।
मगर फांसी तो लगा दी है और प्राण अभी तक शेष हैं। गला तो कस दिया है, थोड़ा और कस दो--यह प्रार्थना है इसमें--थोड़ा और कसो। और कसो, ताकि मैं बिल्कुल मिट जाऊं।
विरह की मारी मैं बन-बन डोलूं, प्राण तजूं करवत लेऊं कासी।
मैं तैयार हूं। आरे से काट डालो या काशी जाकर अगर करवट लेनी हो तो मैं काशी जाकर मर जाऊं। तुम जहां कहो वहां मरने को तैयार हूं; लेकिन अब फांसी पूरी कसो। अब यह ढीला-ढीला फंदा, कुछ लगा, कुछ न लगा...
भक्त की बड़ी बेचैन दशा हो जाती है। रहता संसार में और रहता परमात्मा में, साथ ही साथ। एक पैर पृथ्वी पर और एक आकाश में। एक यहां और एक अज्ञात में। दो लोकों में साथ-साथ चलने लगता है। फांसी है, बड़ी फांसी है।
तुम एक अर्थ से निश्चिंत हो। संसार ही तुम्हारा एकमात्र स्थान है। झंझटें हैं, अड़चनें हैं; लेकिन सब संसार की ही हैं। तुम कम से कम एक नाव में हो। डूबने वाली नाव है। कागज की नाव है। मगर जब तक नहीं डूबी तब तक तो तुम निश्चिंत अपनी दुकान पर बैठे हो; तब तक तो सब ठीक चल रहा है।
भक्त की बड़ी अड़चन है। एक पैर इस नाव में और एक पैर उस नाव में। उसी नाव में पूरा होना चाहता है। लेकिन वह नाव छूट-छूट जाती है; पकड़ में आते-आते छूट जाती है। कभी-कभी झलक मिलती है, फिर झलक खो जाती है। कभी किसी प्रगाढ़ चैतन्य के क्षण में परमात्मा करीब मालूम होता है, फिर फिसल जाता है। यह मन बड़ो हरामी! फिर अंधेरा छा जाता है। फिर जो पास दिखाई पड़ता था तारा, बहुत दूर हो जाता है। भक्त भीतर कुछ, बाहर कुछ हो जाता है। बाहर से रहता है तुम्हारे साथ, भीतर से रहता है परमात्मा के साथ। बाहर बैठता है तुम्हारे साथ, भीतर बैठता है परमात्मा के साथ। बाहर बोलता तुमसे, भीतर बोलता परमात्मा से। भक्त के जीवन में बड़ी अड़चन हो जाती है। उस अड़चन के लिए "फांसी" से ज्यादा बेहतर शब्द दूसरा नहीं हो सकता।
डारि गयो मनमोहन फांसी।
मोअज्जन कुलजमे-पाकीजगी है दिल में मेरे,
मैं बजाहिर तो गुनहगार नजर आता हूं।
भीतर तो सागर है पवित्रता का और बाहर से गुनाहगार नजर आता हूं।
मोअज्जन कुलजमे-पाकीजगी है दिल में मेरे,
मैं बजाहिर तो गुनहगार नजर आता हूं।
निकहतो-रंगे-गुलिस्ता हैं रगो में मेरी,
एक सूखा हुआ गो खार नजर आता हूं।
भीतर तो गुलिस्तां है, भीतर तो फूल ही फूल खिले हैं--और बाहर एक सूखा हुआ कांटा नजर आता हूं।
एक सरमस्तिए-जावेद मुझे है हासिल,
देखने को तो मैं हुशियार नजर आता हूं।
और भीतर मस्ती है, शराब बह रही है, और बाहर होशियार दिखाई पड़ता हूं। जिंदगी में मेरी कौनेन की वुसअत शामिल,
बंदे-हस्ती में गिरफ्तार नजर आता हूं।
और भीतर तो विराट आकाश है मेरे! आकाश जैसी बुलंदगी। और आकाश जैसी विशालता। असीम आकाश है। और बाहर...
बंदे-हस्ती में गिरफ्तार नजर आता हूं।
और बाहर इस छोटी सी देह में बंद हूं।
डारि गयो मनमोहन फांसी।
रौनक अफरोज इक सुबहे-दरख्शां मुझमें,
गरचे महबूस शबे-तार नजर आता हूं।
भीतर तो प्रभात हो गया है और बाहर अंधेरी रात है।
मुझसे बाबस्ता है सब कुव्वते-तखलीके-हयात, लागरो-बेकसो-लाचार नजर आता हूं।

और भीतर तो परम शक्ति का स्रोत मिल गया है और बाहर कमजोर... लागरो-बेकसो-लाचार नजर आता हूं।
मेरी हस्ती में है तनवीरे-जहां पोशीदा,
पाबगिल सायाए-दीवार नजर आता हूं।
और भीतर तो प्रकाश की अनहद वर्षा हो रही है और बाहर मैं एक अंधकार हूं।
इम्बिसात और मुसर्रत का हूं मैं सरचश्मा,
गमे-हस्ती का लिए बार नजर आता हूं।
और भीतर तो हर्ष ही हर्ष है।
इम्बिसात और मुसर्रत का हूं मैं सरचश्मा,
और वहां तो झरना बह रहा है आनंद का, सच्चिदानंद का।
गमे-हस्ती का लिए बार नजर आता हूं।
और बाहर बड़ा उदास, दुखी, पीड़ा से भरा हुआ दिखाई पड़ता हूं। विरह की अग्नि जल रही है बाहर और भीतर मिलन हो रहा है।
डारि गयो मनमोहन फांसी।
मिट चुका है मेरा एहसासे-अना, लेकिन मैं
मये-पिंदार से सरशार नजर आता हूं।
भीतर तो अहंकार बिल्कुल समाप्त हो गया है और बाहर लोग समझते हैं कि यह आदमी अहंकारी है। मीरा को भी लोगों ने अहंकारी समझा, क्योंकि यह कहती है कि मेरा कृष्ण से मिलन हो गया है। कृष्ण को लोगों ने अहंकारी समझा, क्योंकि कृष्ण कहते हैंः सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। सब छोड़-छाड़ अर्जुन, मेरी शरण आ! क्राइस्ट को लोगों ने अहंकारी समझा, क्योंकि क्राइस्ट ने कहा कि मैं हूं मार्ग, मैं हूं सत्य! मैं और परमात्मा दो नहीं, एक हैं। और मंसूर को लोगों ने अहंकारी समझा, क्योंकि उसने कहाः अनलहक! अहं ब्रह्मास्मि! मैं स्वयं परमात्मा हूं!
मिट चुका है मेरा एहसासे-अना, लेकिन मैं
मये-पिंदार से सरशार नजर आता हूं।
हर तआल्लुक से है आजाद तबीयत मेरी,
दामे-दुनिया में गिरफ्तार नजर आता हूं।
मस्तो-सरशार हूं हर वक्त ख्याले-हक में,
काफिरो-आसीओ-मयख्वार नजर आता हूं।
भीतर परम मदिरा पीकर बैठा हूं, बाहर लोग समझते हैं कि शराबी है।
डारि गयो मनमोहन फांसी।
विरह की मारी मैं बन-बन डोलूं, प्राण तजूं करवत लेऊं कासी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।
समझ लेना, इसमें शिकायत नहीं है। मीरा धन्यवाद कर रही है--
डारि गयो मनमोहन फांसी।
सौभाग्य जता रही है कि ठीक किया। तुम्हारे लिए कष्ट भी सौभाग्य है।
और संसार में सुख भी दुर्भाग्य है।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।
तुम जो चाहो वैसा करो। तुम्हारी मर्जी पूरी हो। मैं तुम्हारी दासी हूं, तुम मेरे मालिक हो। मेरी मर्जी पूरी न हो, तुम्हारी मर्जी पूरी हो।
फांसी देनी है, फांसी सही। जिलाओ तो जिलाओ, मारो तो मारो। मगर मैं तुम्हारी दासी हूं। मैं तुम्हारी छाया हूं।
प्यारे दरसन दीजो आए, तुम बिन रह्यो न जाए।
जल बिन कमल चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्या बिन सजनी।
मीरा कहती हैः तुम्हें देखे बिना रहना असंभव है।
प्यारे दरसन दीजो आए, तुम बिन रह्यो न जाए।
परमात्मा के बिना लोग कैसे रह लेते हैं? एक बार जब तुम्हें परमात्मा
की छोटी सी भी किरण मिल जाएगी, तब तुम भी बड़े हैरान होओगे कि इतने-इतने जन्मों तक परमात्मा के बिना कैसे रह लिए? तब तुम्हें हैरानी होगी, भरोसा न आएगा, विश्वास न आएगा कि इतने-इतने जन्मों तक परमात्मा के बिना भी रह लिए! अभी तो ख्याल भी नहीं आ सकता। अभी तो दूसरा कोई अनुभव नहीं है। अभी तो जहर ही जाना है, तो जहर को ही पीते रहे हो। अमृत को जानोगे, तब ख्याल आएगा कि

आश्चर्य, इतने दिन तक जहर पीते रहे! जहर में ही स्वाद मानते रहे! अमृत के अनुभव से तुलना पैदा होती है।
प्यारे दरसन दीजो आए, तुम बिन रह्यो न जाए।
जल बिन कमल...
मीरा कहती हैः मेरी हालत ऐसे है, जैसे कमल जल के बिना। कुम्हलाती जाती हूं। तुम्हारे बिना सिर्फ कुम्हलाना है। तुम्हारे होने में ही खिलावट है। तुम मेरे प्राण! तुम मेरी ज्योति! तुम मेरी श्वास!
जल बिन कमल चंद बिन रजनी...
तुम्हारे बिना ऐसी हूं, जैसे चांद के बिना रात--अमावस की रात।
... ऐसे तुम देख्या बिन सजनी।
व्याकुल-व्याकुल फिरूं रैन-दिन, विरह कलेजो खाए।
दिवस न भूख नींद नहिं रैना, मुखसूं कथत न आवै बैना।
और मीरा कहती हैः शब्द ही नहीं बनते, लड़खड़ा जाते हैं। बोल भी नहीं सकती ठीक से। बोलना चाहती हूं तुमसे और तुम्हारा पता नहीं। जिनसे बोलना पड़ता है, उनसे बोलने की अब कोई मर्जी नहीं। साथ तुम्हारे होना चाहती हूं और तुम न मालूम कहां खो गए हो! और जिनके साथ रहना पड़ता है, उनके साथ रहने का कोई रस नहीं।
दिवस न भूख नींद नहिं रैना, मुखसूं कथत न आवै बैना।
कहा कहूं कछु कहत न आवै, मिल कर तपत बुझाए।
इतना ही कह देती हूं कि यह आग बहुत जल रही है। अब बरसो और इसे बुझाओ।
क्यूं तरसाओ अंतरजामी, आए मिलो किरपा कर स्वामी।
मीरा दासी जनम-जनम की, पड़ी तुम्हारे पांए।
मीरा कहती हैः क्यू तरसाओ अंतरजामी...
तुम क्यों तरसा रहे हो? क्या कारण होगा? इतने तरसाने की जरूरत क्या है? इतना तड़फाने की जरूरत क्या है?
... आए मिलो किरपा कर स्वामी।
और ध्यान रखनाः भक्ति के मार्ग में कृपा सूत्र है, बहुमूल्य सूत्र है। भक्त सिर्फ कह सकता है कि कृपा करो। ज्ञानी कहता हैः मेरे ये शुभ कर्म हैं, इनका प्रत्युत्तर चाहिए। ज्ञानी दावेदार होता है। ज्ञानी कहता हैः त्याग किया, तप किया, ध्यान किया, इतने-इतने जन्मों तक तपश्चर्या, साधना की, इसका उत्तर चाहिए। ज्ञानी दावेदार है। भक्त का कोई दावा नहीं। भक्त कहता हैः तुम पर और दावा!
तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।
तुम पर और मेरा दावा! इतना ही भक्त कह सकता है कि कृपा करो! तुम्हारी कृपा से मुक्ति होगी। मेरे कृत्य से नहीं, तुम्हारी कृपा से। मेरे कुछ करने से न होगा।
तो भक्त कहता हैः ज्यादा से ज्यादा जो मैं कर सकता हूं, वह है--रो सकता हूं। आंसू हैं मेरे पास; और तो मेरे पास कुछ है भी नहीं। ये तुम्हारे चरणों में चढ़ा सकता हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है। जो मेरे पास है, वह तुम्हारे चरणों में रख सकता हूं। मेरे आंसू हैं, मेरी प्रार्थनाएं हैं, मेरी प्यास है, मेरी पुकार है।
क्यूं तरसाओ अंतरजामी...
तो भक्त कहता हैः मैं इतना ही कह सकता हूं कि क्यों और सताया जाऊं? क्यों और पीड़ा? क्यों और विरह? कितने दिन और?
... आए मिलो किरपा कर स्वामी।
मीरा दासी जनम-जनम की, पड़ी तुम्हारे पांए।
अदभुत बात है! मीरा कहती हैः कितने जन्मों से तुम्हारे पैरों में पड़ी हूं! एक नजर इस तरफ भी हो जाए! एक दृष्टि इस तरफ भी हो जाए!
इस भेद को समझ लेना। भक्त दावेदार नहीं है। दावा और परमात्मा से! भक्त
को बात ही बेहूदगी की मालूम पड़ती है। हां, प्रार्थना हो सकती है, पुकार हो सकती है। भक्त लड़-झगड़ भी सकता है, लेकिन दावा नहीं कर सकता। भक्त और भगवान के बीच कानून का संबंध नहीं है, अदालत का संबंध नहीं है, लेन-देन का संबंध नहीं है। भक्त के पास देने को कुछ है ही नहीं। भक्त कहता हैः मैं तो खाली

पात्र हूं, भिक्षापात्र हूं। तुम भर दो इसे। मेरा भरोसा मुझ पर नहीं है-- तुम्हारी कृपा पर है; तुम्हारी करुणा पर है।
और यह सूत्र अनूठा है। अगर एक बार तुम्हें यह सूत्र ठीक से हृदय में बैठ जाए और तुम इतना ही कर पाओ कि उसके चरणों में झुकते रहो और पुकारते रहो, जल्दी ही रात कट जाएगी, जल्दी ही सुबह होगी। और जब सुबह होगी, रात कटेगी, तो अहंकार पैदा न होगा।
ज्ञानी आखिर-आखिर तक चूकता है, क्योंकि ज्ञान से अहंकार मजबूत होता है। इतना जानता हूं, इतना तप, इतना व्रत, इतनी साधना की है--तो कृत्य अहंकार को मजबूत करता है।
ज्ञानी का सबसे बड़ा खतरा हैः अहंकार। भक्त का सबसे बड़ा खतरा हैः आलस्य। ज्ञानी की अस्मिता बढ़ती चली जाती है। जितना करता है उतनी अस्मिता बढ़ जाती है; उतना ढेर लगा लिया उसने कृत्यों का। अब वह कहता हैः अब तो समाधि होनी ही चाहिए। अब और क्या कमी रह गई, बोलो!
भक्त कहता है कि मेरी कोई सामर्थ्य नहीं, असहाय हूं। अगर तुम मिलोगे
तो मेरे किसी प्रयास से नहीं, तुम्हारे प्रसाद से। अगर मिलोगे तो इसलिए कि तुम महाकरुणावान हो; इसलिए कि करुणा तुमसे बह रही है। तो भक्त की सारी कला इतनी है कि वह करुणा को पुकारने में समर्थ हो जाए; वह करुणा को उकसाने में समर्थ हो जाए। जैसे छोटा बच्चा झूले में पड़ा है, उठ भी नहीं सकता, चल भी नहीं सकता, बोल भी नहीं सकता, कुछ कह भी नहीं सकता--रो तो सकता है! उसके रोने से ही मां दौड़ी चली आती है। उसे भरोसा सिर्फ एक बात का है कि अगर मैं रोऊं, अगर मेरा रोना सच में वास्तविक हो, अगर मेरे रोने में मेरा हृदय हो-- तो कितनी ही दूर हो मां, कहीं भी हो, वह भागी चली आएगी। उसकी करुणा पर भरोसा है। उसके प्रेम पर भरोसा है।
भक्त की प्रक्रिया परमात्मा की अनुकंपा पर निर्भर है। और परमात्मा अनुकंपा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अनुकंपा, और अनुकंपा का ही नाम परमात्मा है।
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, इस अस्तित्व की सारी अनुकंपा का इकट्ठा नाम परमात्मा है।
और यह अस्तित्व करुणावान है, क्योंकि हम इससे पैदा हुए हैं। हम इसके हैं, यह हमारा है। यह अस्तित्व करुणावान है, क्योंकि अस्तित्व हमारा स्रोत है। स्रोत हमारे प्रति उदास नहीं हो सकता। जिस जमीन से ये वृक्ष पैदा हुए हैं, वह जमीन इनके प्रति उदास नहीं हो सकती, उपेक्षापूर्ण नहीं हो सकती। उस जमीन से रसधार आती ही रहेगी; रस आकर वृक्ष में फूल बनता ही रहेगा।
इस बात का अगर तुम्हें स्मरण आ जाए कि जिससे हम पैदा हुए हैं, वह मूल ऊर्जा-स्रोत हमारे प्रति उपेक्षा से भरा हुआ नहीं हो सकता, तो पुकारने की बात है। बस पुकारने की बात है! जिसने ठीक से पुकारा, जिसने हृदयपूर्वक पुकारा, उस पर उस परमात्मा की अनुकंपा निश्चित बरस जाती है।
मीरा से पुकारना सीखो।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
चौदहवां प्रवचन

समन्वय नहीं--साधना करो

पहला प्रश्नः आप कहते हैं कि मनुष्य अपने लिए पूरी तरह जिम्मेवार है,
और यह कि वह अपने स्वर्ग-नरक अपने साथ लिए चलता है। और आप यह भी कहते हैं कि "समस्त" सब कुछ करता है, अंश क्या कर सकता है?
इन दो वक्तव्यों के बीच समन्वय कैसे हो?

समन्वय करना ही क्यों चाहते हैं? समन्वय हो भी जाए तो क्या होगा? बुद्धि की थोड़ी सी खुजलाहट मिटेगी। कोई समन्वय से जीवन में क्रांति नहीं होगी। समन्वय की आकांक्षा ही व्यर्थ है।
साधना कैसे हो, यह पूछो। समन्वय कैसे हो, इससे क्या होगा? दार्शनिक बनना है? बड़े विचारक बनना है? बड़े सिद्धांतवादी बनना है?
हमारी जिज्ञासाएं भी मौलिक रूप से गलत होती हैं, इसलिए तो हम भटकते रहते हैं।
समन्वय से क्या प्रयोजन है? क्या करोगे समन्वय करके? आम और नीम में कैसे समन्वय हो? आम भी खराब हो जाएगा, नीम भी खराब हो जाएगी। दोनों गुण खो देंगे।
ये दोनों बातें अपने-अपने स्थान पर सही हैं। समन्वय में दोनों गलत हो जाएंगी। पहली बात ज्ञान-मार्ग की घोषणा है--कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन, अपनी नियति के लिए परिपूर्ण रूप से जिम्मेवार है। क्योंकि ज्ञान का मार्ग संकल्प पर आधारित है। तुम्हारे संकल्प की प्रगाढ़ता चाहिए। समर्पण की कोई जरूरत नहीं है ज्ञान के मार्ग पर। श्रम चाहिए, समर्पण नहीं। जहां श्रम की जरूरत है वहां अगर यह कहा जाए कि सब बातों के लिए परमात्मा जिम्मेवार है, तो श्रम असंभव हो जाएगा। तो यह वक्तव्य तो सिर्फ एक निमित्त है, एक उपाय है--तुम्हें संकल्प में नियोजित करने का। जिसे यह जंच जाए, उसे दूसरे की चिंता नहीं करनी चाहिए। समन्वय की चिंता तो करनी ही नहीं चाहिए। तुम्हें यह बात समझ में आ जाए कि मैं ही जिम्मेवार हूं--अपने सुख, अपने दुख, अपनी शांति, अपनी अशांति, अपने संसार, अपने निर्वाण के लिए--तो इस जिम्मेवारी के बोध के साथ ही तुम्हारे जीवन में रूपांतरण शुरू होगा। अगर नरक के लिए तुम्हीं जिम्मेवार हो तो फिर नरक बनाना क्यों? फिर हटाओ। जिन-जिन बातों से नरक निर्मित होता है उन्हें गलाओ, जलाओ। और जब स्वर्ग भी तुम्हारे हाथ में है, तो फिर क्यों न बना लो पूरा स्वर्ग? फिर क्यों न बनाओ एक बगिया जिसमें फूल खिलें स्वर्ग के? फिर सींचो उन पौधों को! तो सारी ऊर्जा स्वर्ग के निर्माण में लग जाए।
संकल्प के मार्ग पर--तुम ही निर्णायक हो, तुम ही नियति हो अपनी--यह बात जितनी प्रगाढ़ता से बैठ जाए उतना ही उचित है।
लेकिन, अगर तुमने समन्वय कर लिया तो तुम दुविधा में पड़ जाओगे। समन्वय
का मतलब होगाः परमात्मा जिम्मेवार है, मैं भी जिम्मेवार हूं। तब प्रश्न उठेंगेः कौन जिम्मेवार है? इस दुविधा में तुम खड़े ही रह जाओगे, चल न पाओगे। जिसे चलना है वह समन्वय में नहीं पड़ता। समन्वय चलने वालों की बात ही नहीं है। यह तो खाली, बैठे-ठाले लोगों की बात है। जिन्हें कुछ करना नहीं है, उन्हें समन्वय के आधार पर न करने के लिए सुविधा मिल जाएगी।
दूसरा वक्तव्य--कि परमात्मा जिम्मेवार है, पूर्ण जिम्मेवार है। अंश क्या करेगा? बूंद क्या करेगी सागर में? सागर ही जिम्मेवार है। सागर जहां जाएगा, बूंद वहां जाएगी। बूंद की अपनी क्या यात्रा? अपनी क्या गति? अपना क्या गंतव्य? यह भक्ति के मार्ग की घोषणा है। यह विपरीत घोषणा है। इस घोषणा का अर्थ हैः मेरे किए कुछ भी न होगा। मेरे किए कुछ भी नहीं होने वाला है, तो इस "मैं" के बोझ को मैं क्यों ढोऊं? जब इससे कुछ होता ही नहीं है, तो यह अकड़ लिए क्यों फिरूं? इस अकड़ को परमात्मा के चरणों में डाल दूं। झुका दूं सिर वहां। कह दूं कि अब जो तेरी मर्जी, जैसी तेरी मर्जी! दुख देगा तो दुख स्वीकार होगा। क्योंकि तेरी मर्जी स्वीकार है। सुख देगा तो सुख

स्वीकार होगा, क्योंकि तेरे अतिरिक्त और कोई मर्जी चलती ही नहीं, तो अब रोना क्या? शिकायत क्या?
वृक्ष रोते तो नहीं कि हरे हैं, क्यों हरे हैं? चांद-तारे रोते तो नहीं, नदी-पहाड़ रोते तो नहीं। जो जैसा है वैसा है। प्रभु-मर्जी!
भक्त ऐसा ही, जैसा है वैसा ही प्रभु को समर्पित हो जाता है। वह कहता हैः बुरा-भला जैसा हूं, तुम जानो। बुरे की जरूरत हो तो बुरा बना लो, भले की जरूरत हो तो भला बना लो। मैं तुम्हारा चित्र हूं, तुम चित्रकार हो; जैसे रंग भरने हों, भर दो। चित्र की क्या हैसियत? चित्र क्या चित्रकार को कहे? यह बिल्कुल दूसरी ही बात है। यह दूसरी ही घोषणा है। इस घोषणा में अहंकार को समर्पित करना है। पहली घोषणा में श्रम को प्रज्वलित करना है; दूसरी घोषणा में अहंकार को समर्पित करना है। ये इलाज अलग हैं। तुम्हें अगर पहली बात जम जाए तो दूसरी को भूल ही जाना कि किसी ने कही है। समन्वय की तो बात ही मत करना। यह भी स्मरण भूल जाना कि कोई ऐसा भी कहने वाला है जगत में, कि सब कुछ करने वाला परमात्मा है। क्योंकि वह बात तुम्हारे मन में अगर गूंजती रही, तो समर्पण को पंगु कर देगी, नपुंसक कर देगी। वह तो एंटी- डोट हो जाएगा। वह तो उलटी दवा पी ली। और अगर समर्पण की बात जम जाए, तुम्हारा रोआं पुलकित होता हो समर्पण की बात सुन कर, हृदय उमगता हो, रस बहता हो--कि हां, यही ठीक है कि उसके चरणों में सब रख दूं, जो वह करे वही हो! दूसरी बात जम जाए तो पहली बात को विस्मृत कर देना।
तुम पूछ रहे होः "दोनों का समन्वय कैसे करें?"
मैं कह रहा हूंः चलना हो तो एक पर ही चला जा सकता है, दो पर नहीं चला जा सकता। दो रास्तों पर कोई कैसे चलेगा? और यह भी सही है कि दोनों रास्ते वहीं पहुंचते हैं, तो भी तो दो रास्तों पर एक साथ नहीं चल सकते। पहाड़ पर अनेक रास्ते चोटी की तरफ जाते हैं। लेकिन चलोगे तो एक रास्ते पर! अनेक रास्तों पर इकट्ठे तो न चलोगे! सब रास्तों के समन्वय का क्या अर्थ होगा? पहाड़ पर चढ़ते वक्त तुम यह नहीं पूछते कि यह एक रास्ता बाईं तरफ जाता है, एक दाईं तरफ; दोनों का समन्वय कैसे करें? मुझे पहाड़ के ऊपर जाना है, मैं समन्वय का मार्ग बनाऊंगा। एक कदम इस रास्ते पर चलूंगा, एक कदम उस रास्ते पर चलूंगा। तुम कभी शिखर पर न पहुंचोगे। तुम बड़ी झंझट में पड़ जाओगे। तुम विक्षिप्त हो जाओगे। दौड़ कर एक कदम इस पर चलोगे, दौड़ कर एक कदम उस पर चलोगे। यह दौड़ने में ही जान उखड़ जाएगी। और पहुंचोगे कब? पहुंचोगे कैसे? आदमी पहुंचता है एक ही मार्ग पर सतत चल कर। कदम के बाद कदम एक ही मार्ग पर चलता है, तो पहुंचता है।
लेकिन दुनिया में महात्मा गांधी और उन जैसे लोगों ने समन्वय की बहुत बकवास फैला दी है। उस समन्वय की बकवास के पीछे राजनीतिक उद्देश्य हैं। साधना से उसका कोई संबंध नहीं है। "अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम"--ठीक है, बात तो ठीक है। लेकिन अगर दोनों नाम जपते रहे, तो कभी न पहुंच पाओगे। और कहते रहे महात्मा गांधी "अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम", लेकिन जब गोली लगी तो अल्लाह नहीं निकला, तब राम ही निकला। तब अल्लाह कहां गया? तब राम-अल्लाह या अल्लाह-राम, इतना तो कह देते जाते वक्त! थोड़ा तो हिसाब रखते, जिंदगी भर बोलते रहे अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम! यह मरते वक्त राम क्यों निकला? अल्लाह तो सिर्फ राजनीति थी। वह तो मुसलमान को राजी करने का उपाय भर था। उसमें कुछ प्राण नहीं थे। जब गोली लगी तो राजनीति भूल ही जाएगी। तब तो जो अंतरतम में था, वही निकला। अब उस क्षण में राजनीति कौन याद रखेगा? उस क्षण कौन सोचेगा कि जिन्ना क्या सोचेगा? कि मुसलमान क्या सोचेंगे? इसकी फुरसत कहां रही! गोली ने सब राजनीति मिटा दी। जो हार्दिक था, वही निकल आया।
अल्लाह भी प्यारा है, राम भी प्यारा है। अल्लाह जंचे तो अल्लाह जपो, राम जंचे तो राम जपो। मगर अल्लाह-ईश्वर दोनों मत जपो। दोनों का स्वर-विज्ञान अलग है। दोनों की चोट अलग है। दोनों का परिणाम अलग है। दोनों दो अलग तरह के साधकों के लिए निर्मित किए गए हैं।
सदा याद रखोः प्रत्येक साधना-पद्धति अपने आप में पूर्ण है। उसे किसी दूसरी साधना-पद्धति के सहारे की जरूरत नहीं है। लेकिन समन्वय का यही परिणाम होता है।

एलोपैथी एक शास्त्र है। जिन्होंने पूछा है, वे डाक्टर हैं, इसलिए उपयोगी होगा। एलोपैथी एक शास्त्र है। होमियोपैथी से मिलाना मत। समन्वय मत करना। होमियोपैथी दूसरे ढंग की बात है। होमियोपैथी में भी सार है। लेकिन उसकी प्रक्रिया, आयोजना अलग है। और आयुर्वेद में भी सार है। और और भी चिकित्सा-विधियां हैं--यूनानी है... । इन सब में सार है। लेकिन इन सबका संयोग किया तो मरीज मरेगा। इनका संयोग करना मत। मरीज पर ध्यान रखना। समन्वय पर ध्यान मत रखना।
समर्पण की एक विधि है कि अहंकार जाए। और अहंकार तभी जाएगा जब कृत्य जाए, कर्ता जाए। संकल्प की दूसरी विधि है कि तुम्हारा सोया हुआ चैतन्य सक्रिय हो उठे; तुम्हारी मूर्च्छा टूटे। मूर्च्छा तभी टूटेगी जब तुम प्रगाढ़ श्रम करोगे; नहीं तो नहीं टूटेगी। ये दोनों अलग द्वारों से परमात्मा की तरफ जा रहे हैं। तुम समन्वय की पूछो ही मत। तुम साधना की पूछो।
"आप कहते हैं कि मनुष्य अपने लिए पूरी तरह जिम्मेवार है, और यह भी कहते हैं कि समस्त कुछ प्रभु करता है, अंश क्या कर सकता है? इन दो वक्तव्यों के बीच समन्वय कैसे हो?"
समन्वय बौद्धिक खुजलाहट है। खुजलाने से कुछ लाभ नहीं होता। खुजलाहट
और बढ़ती है। अस्तित्वगत खोज करो। दोनों सच हैं। और दोनों मैं कहता हूं। क्योंकि मैं दोनों तरह के लोगों के लिए बोल रहा हूं। मैं सब तरह के लोगों के लिए बोल रहा हूं। महावीर ने एक बात कही, मीरा ने दूसरी बात कही। महावीर के पास जो लोग इकट्ठे हुए, वे वे ही थे जो संकल्प की तरफ जा सकते थे। मीरा के पास वे लोग इकट्ठे हुए जो समर्पण में गति कर सकते थे।
मेरे पास सब तरह के लोग हैं। मैं किसी एक पंथ की बात नहीं कर रहा हूं-- जान कर। क्योंकि एक पंथ की बात बड़ी खतरनाक सिद्ध हुई। उसका एक लाभ था कि लोग दुविधा में नहीं पड़े। महावीर एक ही बात कहते रहे--जिसको जमे, रहे; जिसको न जमे, जाए। महावीर को, अपनी बात सही है, यह कहने के लिए दूसरे की बात गलत है, यह भी कहने के लिए मजबूर होना पड़ा--जानते हुए कि दूसरा मार्ग भी ले जाता है। मीरा को यह जानते हुए कि दूसरा मार्ग भी ले जाता है, फिर भी उसे गलत कहना पड़ा। नहीं तो जो सुनने वाले हैं, वे दुविधा में पड़ते हैं। यह तो लाभ था।
अब तक मनुष्य-जाति के इतिहास में यही प्रक्रिया जारी रही। प्रत्येक
ने एक मार्ग की बात कही; और सब मार्ग गलत हैं। इसलिए नहीं कि और सब मार्ग गलत हैं। यह कैसे हो सकता है कि बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट को इतनी समझ न हो कि अनंत मार्ग हैं उस तक पहुंचने के! उन्हें पता है। उन्हें भलीभांति पता है कि दूसरे मार्गों से भी लोग पहुंचे हैं। लेकिन एक मजबूरी है। और मजबूरी यह है कि अगर वे कहें कि सभी मार्गों से लोग पहुंचते हैं, तो जैसे तुमने प्रश्न पूछा है ऐसे ही उनके अनुयायी भी पूछतेः तो फिर समन्वय कैसे करें? और समन्वय से कोई नहीं पहुंचता। तो उन्होंने निश्चित रूप से कहाः एक ही रास्ता है, बस एक ही रास्ता है। इससे सुनने वाले को सुविधा रही, स्पष्टता रही, उलझन न बढ़ी। समन्वय की झंझट न आई। समन्वय की झंझट से बचाने के लिए उन्हें कहना पड़ा कि कोई दूसरा रास्ता सही नहीं है, बस यही रास्ता सही है।
तो साधना के अतिरिक्त कोई मार्ग न बचा। समन्वय की कोई सुविधा ही नहीं है। कुछ करना हो तो साधना करो। फिर जिसको रुचा, वह रुका; जिसको नहीं रुचा, वह दूसरे मार्गों पर चला गया। यह तो लाभ था। लेकिन एक नुकसान हुआ। नुकसान हुआ कि वैमनस्य पैदा हुआ। सारे पंथों के लोग एक-दूसरे के दुश्मन हो गए। पृथ्वी बड़ी शत्रुता से भर गई। हिंदू मुसलमान से लड़ा, जैन बौद्ध से लड़ा, बौद्ध हिंदू से लड़ा। हिंदू ईसाई से लड़ा, ईसाई किसी और से। और इस तरह सारी पृथ्वी कलह से भर गई।
अब समझना। अगर तुमसे कहा जाए कि सब मार्ग पहुंचाते हैं, तो तुम समन्वय
की झंझट में पड़ते हो। अगर तुमसे कहा जाए कि एक ही मार्ग पहुंचाता है, तो तुम दूसरों से विवाद करने में लग जाते हो--कि तुम्हारा मार्ग गलत, मेरा मार्ग सही। चलते नहीं तुम। चलना जैसे है ही नहीं। या तो समन्वय करोगे या

विवाद करोगे। मार्ग चलने के लिए है। मार्ग उसी का है जो चलता है। वही समझा मार्ग को जो चला। चलने के अतिरिक्त मार्ग को कोई कैसे समझेगा?
लेकिन आदमी बड़ा उपद्रवी है। तो महावीर, बुद्ध और कृष्ण ने लोगों को बचा लिया समन्वय के उपद्रव से। मगर लोग दूसरे उपद्रव में उतर गए--लोग विवाद में उतर गए। या तो दूसरा गलत है, यह सिद्ध करेंगे; या दोनों सही हैं, यह सिद्ध करेंगे। और दोनों ही हालत में आदमी बुद्धि की ही बातों में उलझा रह जाता है।
तो यह हानि हुई। पृथ्वी हिंसा से भर गई। सारी मनुष्य-जाति का इतिहास धर्म के नाम पर हत्या का इतिहास है। ऐसा होना नहीं चाहिए था। धर्म के कारण जितना अधर्म हुआ है, उतना अधर्म किसी और बात के कारण नहीं हुआ। यह बड़ी हैरानी की बात है! धर्म तो प्रेम का संदेश है। धर्म तो प्रभु का संदेश है। लेकिन धर्म शैतान के हाथ में पड़ गया। मंदिर में प्रतिमाएं प्रभु की हैं, लेकिन पीछे जो बैठा है प्रतिमाओं के, वह शैतान है। बातें प्रेम की--और हाथों में तलवारें! शांति के कबूतर उड़ाए जा रहे हैं और पीछे जहर तैयार किया जा रहा है--हिंसा का, क्रोध का, शत्रुता का।
मनुष्य को दोनों झंझटों से बचाना है कि वह विवाद में भी न पड़े और समन्वय में भी न पड़े। इसलिए मैं सभी मार्गों की बात कर रहा हूं। कभी समर्पण की चर्चा करता हूं, कभी संकल्प की चर्चा करता हूं--ताकि तुम्हें यह बात समझ में आ जाए कि दूसरा भी सही है। यह और बात है कि तुम्हें वह मार्ग नहीं रुचता। यह तुम्हारी मर्जी की बात है। इससे मार्ग गलत नहीं होता। कोई आदमी पूरब की तरफ हाथ उठा कर प्रार्थना करता है, कोई पश्चिम की तरफ। तुम्हें पूरब की तरफ हाथ उठा कर प्रार्थना करनी जंचती है, ठीक। किसी को पश्चिम की तरफ हाथ उठा कर प्रार्थना करनी जंचती है। इससे कुछ दूसरा गलत नहीं हो जाता। दोनों प्रार्थना कर रहे हैं। दोनों सही हैं। हाथ किस तरफ जोड़ते हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? क्योंकि सब तरफ परमात्मा है। कहीं भी हाथ जोड़ो, हाथ उसी के लिए जुड़ते हैं। काशी जाओ कि काबा, कुछ भेद नहीं पड़ता। और कुरान पढ़ो कि वेद, कुछ भेद नहीं पड़ता। लेकिन ध्यान रखना, दूसरे खतरे में मत पड़ जाना कि अब वेद और कुरान में समन्वय करना है। न समन्वय करना है, न संघर्ष करना है। सारे मार्ग तुम्हें उपलब्ध किए दे रहा हूं। उसमें से जो रुच जाए, जो तुम्हारे मन में उमंग भर दे, जिसके साथ तुम डोल उठो--उस पर चलना है। और चलने से ही यात्रा तय होती है।
ये दोनों वक्तव्य--बुद्ध जिसे कहते हैं कुशल उपाय--ये दोनों वक्तव्य कुशल उपाय हैं।
मैं जानता हूं, तुम्हारे मन में फिर भी सवाल उठ रहा होगा कि चलो, न करेंगे समन्वय, मगर ये दोनों एक साथ सही कैसे हो सकते हैं? स्वभावतः, नहीं करते समन्वय, हमें कोई झंझट में नहीं पड़ना समन्वय की। मगर दोनों वक्तव्य विपरीत हैं, विरोधाभासी हैं। इन दोनों में एक ही सही हो सकता है, ऐसा तुम्हारी बुद्धि कहती है।
बुद्धि के तर्क सीमित हैं। बुद्धि कहती हैः या तो यह सही या वह सही, दोनों कैसे सही होंगे? या तो अभी रात है या अभी दिन है। मैं कहूं कि अभी रात है और फिर मैं कहूं कि अभी दिन है, तो तुम कहोगेः हमें समन्वय भी नहीं करना, हम किसी विवाद में भी नहीं पड़ना चाहते, मगर आप हमें उलझन में डाल रहे हैं। क्योंकि दोनों बातें कैसे हो सकती हैं कि अभी दिन भी और अभी रात भी? दोनों बातें हो सकती हैं, क्योंकि तुमने दिन और रात को अलग समझा है, वहीं भूल हो गई। इसे ऐसा समझोः जैसे मुर्गी और अंडा! सदियों से दार्शनिक पूछते रहे हैंः कौन पहले--मुर्गी पहले कि अंडा पहले? प्रश्न बिल्कुल सार्थक लगता है। लेकिन जब प्रश्न को विचारने जाओ तो झंझट आती है। अगर कहो मुर्गी पहले, तो प्रश्न उठता हैः मुर्गी आई कहां से होगी? और तब अंडा उभरने लगता है। अगर कहो अंडा पहले, तो झंझट खड़ी होती है कि अंडा आएगा कहां से, कोई मुर्गी रखेगी तभी न? तो तुम एक दुष्चक्र में पड़े। कभी तय न कर सकोगे कि कौन पहले?
मैं तुमसे क्या कहना चाहता हूं?
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि तुमने उनको दो माना, वहीं भूल हो गई। उसी भूल से भूल-भरा प्रश्न पैदा हुआ। मुर्गी-अंडा दो नहीं हैं। अंडा

मुर्गी हो रहा है, मुर्गी अंडा हो रही है। ये दो अवस्थाएं हैं एक ही घटना की। अंडा एक अवस्था है मुर्गी की, मुर्गी दूसरी अवस्था है अंडे की। ये दो नहीं हैं, जैसे जवानी और बुढ़ापा दो नहीं हैं। जैसे जवानी से ही बुढ़ापा आता है--ऐसे ही अंडे से मुर्गी, मुर्गी से अंडा आता है। ये वर्तुलाकार अवस्थाएं हैं। अंडा मुर्गी होने के मार्ग पर है। मुर्गी अंडा होने के मार्ग पर है।
जिसको तुम रात कहते हो, वह दिन होने के मार्ग पर है। जब तुम कहते हो रात है, तब दिन होने की तैयारी कर रहा है। तब दिन पैदा हो रहा है--रात के गर्भ में छिपा हुआ दिन तैयार हो रहा है। जब तुम कहते हो दिन है, तब रात करीब आ रही है। दिन के गर्भ में छिपी रात बैठी है। रात और दिन एक सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए अगर मैं कहूं अभी दिन है, तो भी ठीक कहता हूं; और कहूं अभी रात है, तो भी ठीक कहता हूं, क्योंकि रात और दिन दो नहीं हैं। ऐसे ही जीवन और मृत्यु भी दो नहीं हैं। संयुक्त हैं। एक ही हैं।
तो तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं। मन में सवाल उठता होगाः इतने विपरीत वक्तव्य--कि सब कुछ जिम्मेवारी मेरी है और कुछ भी जिम्मेवारी मेरी नहीं है--ये दोनों एक साथ कैसे ठीक होंगे?
बुद्ध ने इसको कुशल उपाय कहा है। वह भी समझ लेना जरूरी है। कुशल उपाय
का अर्थ होता हैः जो कहा जा रहा है वह सत्य है, ऐसा नहीं; लेकिन सत्य को जनाने में उपयोगी है, बस इतना। भेद समझ लेना। जो कहा जा रहा है वह सत्य है, ऐसा नहीं। आत्यंतिक सत्य है, ऐसा नहीं। लेकिन सत्य को जानने में सहयोगी है, उपाय है।
समझो। तुम घर के भीतर बैठे हो, और घर में आग लग गई है। बाहर से कोई चिल्लाया--घर में आग लगी है! तुम तो भाग कर निकल गए। लेकिन छोटे-छोटे बच्चे हैं घर में, उन्हें कुछ अनुभव ही नहीं कि आग लगने का क्या मतलब होता है। वे अपने खिलौनों में खेल रहे हैं। अब तुम चिल्लाते हो बाहर से कि बच्चो, बाहर आ जाओ, घर में आग लगी है! तुम भीतर भी नहीं जा सकते बच्चों को लेने। लपटें बढ़ती जा रही हैं। किसी की हिम्मत भीतर जाने की नहीं है। तुम सब चिल्लाते हो कि बच्चो, बाहर आ जाओ, घर में आग लगी है! लेकिन बच्चों को, आग लगी है, इससे कुछ परिणाम नहीं होता, क्योंकि उन्होंने कभी जाना ही नहीं कि आग लगी है। और आग लगना है तो लगी रहे। बल्कि शायद प्रसन्न ही हो रहे हैं कि अहा, कैसी लपटें उठ रही हैं! कैसा मजा आ रहा है! ज्यादा से ज्यादा उन्होंने फिल्म में लगी आग देखी है, टेलीविजन पर लगी आग देखी है। वे आह्लादित हो रहे हैं कि आज घर में भी लगी है।
तुम क्या करोगे? बुद्ध कहते हैंः कुशल उपाय करना होगा। जो बात बच्चे समझ सकें, वह कहनी होगी। बुद्ध ने कहा हैः तो समझदार बाप कहता है कि बच्चो, बाहर आ जाओ, मैं मेला गया था, तुम्हारे लिए खिलौने खरीद कर लाया हूं। खिलौने इत्यादि बिल्कुल नहीं हैं। यह सुन कर ही कि बाप खिलौने लाया है मेले से, बच्चे भागे बाहर आ जाते हैं। आग नहीं निकाल पाती बाहर। आग वास्तविक है। खिलौने हैं नहीं। बाप झूठ बोला है। लेकिन क्या तुम इसे झूठ कहोगे? क्या तुम यह कहोगे कि बाप पाप का भागीदार हुआ, असत्य बोला? नहीं; इसको बुद्ध कहते हैंः कुशल उपाय! यह झूठ भी नहीं है। क्योंकि इससे सत्य का बोध हो रहा है। यह सत्य की सेवा में संलग्न है, तो झूठ कैसे होगा?
लेकिन इस परिस्थिति में बाप का यह कहना कि बच्चो, बाहर आ जाओ, तुमने कहा था कि खिलौने खरीद लाना, बहुत खिलौने ले आया हूं, देखो कितने खिलौने ले आया हूं! तब बच्चे भूल जाते हैं आग, छोड़ आते हैं पुराने खिलौने, भाग कर बाहर निकल आते हैं। पूछते हैंः कहां हैं खिलौने? अब यह दूसरी बात है। अब बाप समझा लेगा कि आग लगी है, पागलो! मगर बाहर तो निकल आए!
ये कुशल उपाय हैं। ये दोनों कुशल उपाय हैं। यह कहना कि सब कुछ तुम्हारी जिम्मेवारी है, एक उपाय है। जो यह सुन कर बाहर आ जाए तो ठीक। यह कहना कि तुम्हारी कोई भी जिम्मेवारी नहीं, सब परमात्मा का खेल है--यह भी कुशल उपाय है। जो इसे सुन कर बाहर आ जाए, वह भी ठीक। बाहर आकर तुम पाओगे कि अंततः न ऐसा है, न वैसा है।
क्यों अंततः न ऐसा है न वैसा? क्योंकि यह बात ही सोचनी कि तुम परमात्मा से अलग हो, गलत है। और दोनों में यह बात मान ली गई कि तुम

परमात्मा से अलग हो। इस पर तुमने ख्याल नहीं किया कि जब यह कहा गया कि तुम ही जिम्मेवार हो, अस्तित्व जिम्मेवार नहीं--तब भी तुमको अलग मान लिया गया, भिन्न मान लिया गया। तुम अस्तित्व से अलग स्वीकार कर लिए गए। पृथक। तुम जिम्मेवार हो! और तुमने ख्याल किया? दूसरी घटना में जहां कहा गया--तुम जिम्मेवार नहीं हो, परमात्मा जिम्मेवार है--वहां भी परमात्मा को तुमसे अलग मान लिया गया। दोनों हालत में तुम परमात्मा से भिन्न हो, यह बात स्वीकार कर ली गई। दोनों विपरीत दिखाई पड़ते हैं, लेकिन यहां दोनों बिल्कुल एक हैं। दोनों का मौलिक अर्थ एक है कि तुम परमात्मा से भिन्न हो। एक में कहा गयाः अपनी भिन्नता को स्पष्ट कर लो। दूसरे में कहा गयाः समर्पित कर दो। मगर भिन्न हो, यह स्वीकार कर लिया गया।
और ये दोनों बातें गलत हैं। तुम भिन्न नहीं हो। न तो तुम्हारी जिम्मेवारी है, न परमात्मा की; क्योंकि तुम दो ही नहीं हो, एक ही है। मगर यह अनुभव तो तब होगा जब तुम घर के बाहर आ जाओ; यह आग लगे घर को छोड़ दो। कोई खिड़की से कूद कर निकल आए तो ठीक; कोई दरवाजे से निकल आए तो ठीक। और कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि द्वार-दरवाजे काम नहीं आते; दीवाल तोड़ कर भी निकलना पड़ता है। कैसे तुम बाहर आते हो, यह बात गौण है। बाहर आ जाते हो, यही बात सार्थक है।
लेकिन तुम उलटी बात पूछ रहे हो। घर में आग लगी है। खिड़की के पास खड़ा कोई चिल्ला रहा है कि छलांग मारो खिड़की से, निकल आओ खिड़की से! कोई दरवाजे पर खड़ा कह रहा है कि प्यारे, दरवाजे से भाग आओ! तुम पूछते होः दोनों में समन्वय कैसे हो? खिड़की सही कि दरवाजा सही? घर में आग लगी है। तुम कहते होः जब तक समन्वय न हो जाए, तब तक हम न निकलेंगे।
अब खिड़की और दरवाजे का समन्वय कैसे होगा? और समन्वय में बड़ी देर लग जाएगी। फिर शायद निकलने का कोई अर्थ भी न रह जाएगा। शायद घर जल कर और घर के साथ जल कर तुम भी राख हो जाओगे।
इसलिए मैं कहता हूंः समन्वय की फिकर छोड़ो, साधना की फिकर करो। खिड़की
के पास हो तो खिड़की से कूद आओ; दरवाजे के पास हो तो दरवाजे से कूद आओ। अब इसमें शिष्टाचार और संस्कार और संस्कृति का भी विचार मत करो कि खिड़की से कूदेंगे तो कैसा रहेगा! जब घर में आग लगती है तो आदमी यह नहीं सोचता कि खिड़की से कूदना शोभायुक्त है, कि लोग क्या कहेंगे, कि खिड़की से कूदा तो हवा में कपड़े उड़ जाएंगे और लोग देख लें कि नंगा हूं, कि आज तो अंडरवियर भी नहीं पहना हुआ है। यह भी नहीं सोचोगे। यह कौन फिकर करता है! जब घर में आग लगी हो तो आदमी बच जाना चाहता है।
ऐसी ही घर में आग लगी है। जितने शास्ता हुए, जितने सदगुरु हुए--उन सबने, जो निकटतम मार्ग दिखाई पड़ा, या जिस मार्ग से उन्होंने आग से अपने को बचाया, उसकी बात कह दी है। तुम्हें जो निकट पड़ रहा हो... । अब कई बार ऐसा हो जाता है कि खिड़की पास है, दरवाजा बहुत दूर है; लेकिन तुम कहते हो कि हम तो दरवाजे से निकलेंगे, क्योंकि हमारे पिताजी भी दरवाजे से निकले थे, उनके पिताजी भी दरवाजे से निकले थे। हम सदा दरवाजे से ही निकलते आए हैं। रघुकुल रीत सदा चली आई! हम तो दरवाजे से ही निकलेंगे। प्राण जाएं पर वचन न जाई! ... तो जाने दो प्राण, तुम समझो। जो निकट हो... तुम्हारे पिताजी निकले कि नहीं उससे, तुम्हें समझाया गया है उससे निकलने के लिए या नहीं, तुम्हें संस्कार दिए गए हैं या नहीं--यह सवाल नहीं है।
अब मेरे पास निरंतर ऐसे लोग आते हैं। कोई जैन घर में पैदा हुआ है और उसे संकल्प का मार्ग जमता ही नहीं; उसे भक्ति का भाव जमता है। लेकिन महावीर के साथ भक्ति बैठती नहीं। और भक्ति बिठाओ तो महावीर का मार्ग विकृत होता है। महावीर के मार्ग पर कहां भक्ति? महावीर के मार्ग पर भगवान भी नहीं तो भक्ति कहां? मूल ही नहीं है। महावीर कहते हैंः कोई भगवान नहीं है, तुम ही भगवान हो। आत्मा ही परमात्मा है। किसकी पूजा कर रहे हो? --अपनी पूजा! किसकी आरती उतार रहे हो? --अपनी आरती! समय मत गंवाओ--आरती इत्यादि में, पूजा-प्रार्थनाओं में! सुधारो अपने को, संवारो अपने को!
वहां गीत नहीं, गान नहीं। वह जो मीरा कहती है कि मृदंग बज उठी, वीणा छेड़ी गई है, पैरों में घूंघर बंध गए हैं, बड़ा अजीब संगीत उठ रहा है--ऐसा कोई संगीत महावीर के मार्ग पर नहीं है। वहां बिल्कुल सन्नाटा है। वहां सिर्फ

एक संगीत स्वीकार है--वह शून्य का संगीत है; वह शांति का संगीत है। स्वर-हीन! वहां स्वर नहीं उठते। वहां अदभुत मृदंग नहीं बजती। वहां डफ नहीं बजती। वहां बांसुरी की आवाज नहीं।
लेकिन जिसको रस है, जिसको भाव है, भक्ति है, वह क्या करे?
जैन घर में पैदा हुआ, तो अड़चन है। वह महावीर की पूजा करता रहेगा। वह महावीर की बातें भी सुनता रहेगा। लेकिन उसके हृदय में कोई बीज न पड़ेगा। उसे कृष्ण की बांसुरी चाहिए थी।
ऐसा दूसरे घर में भी हो रहा है। कोई भक्ति-मार्ग में पैदा हुआ है और उसे बात बिल्कुल नहीं जंचती। उसे यह रासलीला इत्यादि सब पाखंड मालूम होता है। ये कृष्ण कन्हैया, ये बांसुरी बजाते हुए कृष्ण उसे बिल्कुल नाटकीय मालूम पड़ते हैं। उसकी बुद्धि को यह बात जंचती नहीं, कि यह क्या माजरा है? परम अवस्था तो महावीर जैसी होनी चाहिए। यह क्या मोरमुकुट बांधे खड़े हैं? यह कोई नाटक हो रहा है? यह क्या मामला है? स्त्रियां नाच रही हैं, आप बीच में खड़े बांसुरी बजा रहे हैं! यह तो सांसारिक है। वीतरागता कहां है? वीतरागता महावीर में है।
मगर वह हिंदू घर में पैदा हुआ है, भक्त-घर में पैदा हुआ है। वह महावीर
के मंदिर में नहीं जा सकता। उसके बाप-दादे वहां नहीं गए। उसे तो जाना है कृष्ण के मंदिर में। तो जाता है। कृष्ण को झूला झुलाता है। और भीतर जानता है कि सब नासमझी है, मैं यह क्या कर रहा हूं? किसको झूला झुला रहा हूं? यहां कोई भी नहीं है। मगर झुलाना है, क्योंकि पिताजी झुलाते रहे; उसके पहले और भी पिताजी झुलाते रहे। यह सदा से झूला झूलता रहा है। इसको किसी तरह झुलाओ और बच्चों को भी सिखा जाओ कि बेटे, तुम भी झुलाना। मगर जीवन में कहीं कोई क्रांति पैदा नहीं होती।
मैं तुमसे कहता हूंः अपने भीतर झांको। परंपरा में मत झांको; अपने भीतर झांको। क्योंकि परंपरा मुक्त होने को नहीं है, तुम्हें मुक्त होना है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम्हारे पिता कैसे मुक्त हुए थे? हुए थे कि नहीं हुए थे, इससे भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। सवाल यह है कि तुम्हें मुक्त होना है। तुम कैसे मुक्त हो सकोगे? तुम्हें कौन सी बात रास आती है? तुम किस बात के साथ राजी हो पाते हो? किस बात के साथ सहज संबंध जुड़ जाता है? सहज। चेष्टा नहीं करनी पड़ती।
तुम देखते हो न? मीरा की बात चलती है, कोई सहज रोने लगता है। उसके ही पास कोई बैठा है बिल्कुल, उसे कुछ भी नहीं होता। जिसको कुछ नहीं होता, वह सोचता है कि यह औरत कुछ पागल मालूम होती है। इसका दिमाग खराब है, हिस्टीरिकल है। अब इसको मिर्गी-विर्गी तो नहीं आ जाएगी? अब क्या करना-- यहां से सरक जाएं या क्या करें? कि अपने ऊपर ही पड़ने वाली है? तुम फिकर में पड़ जाते हो। और जिसकी आंख से आंसू बह रहे हैं, उसे हैरानी होती है कि तुम अंधे हो? तुम बहरे हो? तुम्हें कुछ सुनाई नहीं पड़ता? तुम पत्थर हो, पाषाण हो? बात क्या है? तुम मूर्ति की तरह क्यों बैठे हुए हो? हिलते भी नहीं! तुम्हें सुनाई नहीं पड़ रहा है? तुम्हारे हृदय में कोई तार नहीं छिड़ रहे हैं?
और दोनों सही हैं। दोनों अपने-अपने में सही हैं। और दोनों में समन्वय करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं न चाहूंगा कि ये सज्जन जो बिल्कुल मूर्तिवत बैठे हैं, इस स्त्री का हाथ पकड़ कर और नाचें। नाच भी खराब हो जाएगा, इनकी शांति भी खराब हो जाएगी। दोनों ही खराब हो जाएंगे। नहीं! ये कृपा करके अलग-अलग ही रहें। स्त्री को नाचने दो, इनको ध्यान करने दो। उसे प्रार्थना करने दो, इनको संकल्प करने दो। उसे रस में जाने दो, इन्हें विरस में जाने दो। उसे राग से मिलेगा परमात्मा, इन्हें विराग से मिलेगा परमात्मा। दोनों परमात्मा में पहुंच जाएं--यह बात महत्वपूर्ण है।
मार्ग का क्या मूल्य है? तुम किस मार्ग से चल कर यहां तक आए हो, इसका
अब क्या मूल्य है? तुम बैलगाड़ी पर बैठ कर आए, कि घोड़ागाड़ी पर बैठ कर आए, कि ऊंटगाड़ी पर बैठ कर आए, कि पैदल ही चले आए हो, कि पूरब से, कि पश्चिम से, कि दौड़ते, कि हांफते--कैसे तुम चले आए, अब इसका क्या मूल्य है? यहां तुम बैठ गए आकर, तुम्हारे इस बैठने में तुम्हारे आने का, तुम्हारे मार्ग का क्या लेना-देना है? बात खत्म हो गई। परमात्मा में विराजमान हो जाओ।

ये दो मूल उपाय हैं। अगर संकल्प तुम्हारे भीतर चुनौती पैदा करता हो, संकल्प की बात सुन कर तुम्हारे पर फड़फड़ाते हों कि उड़ जाऊं आकाश में, तो ठीक, उसी मार्ग से चल पड़ो। अगर संकल्प की बात सुन कर तुम्हारे भीतर कोई ऊर्जा न उठती हो, कोई उमंग न जगती हो, कोई स्वर न गूंजता हो, कोई सिहरन न आती हो; और जब समर्पण की बात होती हो तब तुम ऐसे डोलने लगते हो जैसे बीन को सुन कर सांप डोलने लगता है--तो वही तुम्हारा मार्ग है।
साधना--समन्वय नहीं।
और अंततः तुम पाओगेः न ऐसा है, न वैसा है।
तुम पूछना चाहोगेः फिर अंततः कैसा है?
नहीं कहा जा सकता। कहने का कोई उपाय नहीं है। कोई नहीं कह पाया। कोई नहीं कह पाएगा। जो भी कहा जाएगा, वह या तो ऐसा होगा, या वैसा होगा। या तो संकल्प का होगा, या समर्पण का होगा। ये दो भाषाएं हैं। या तो भक्ति या ज्ञान। लेकिन जो वस्तुतः है, जैसा है, सब मार्ग जहां जाकर समाप्त हो जाते हैं, जो मार्गातीत--उसे कहने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि उसको कहने के लिए भाषा का उपयोग करना पड़ेगा। भाषाएं दो ही हैं--भक्ति की या ज्ञान की। या तो महावीर की भाषा है, या मीरा की। या तो पतंजलि की भाषा है या चैतन्य की। दो ही भाषाएं हैं। तो जैसे ही कही जाएगी बात, या तो पहली हो जाएगी या दूसरी। कहते ही विकृत हो जाएगी।
जैसा है, उसे तो जानना पड़ेगा। मगर ये दोनों मार्ग उस तक पहुंचा देते हैं।
चलो! बैठे-बैठे सोचो मत! सोचना बहुत हो चुका। कब तक और सोचना है?

दूसरा प्रश्नः संसार में एक आप ही हैं जिससे भय नहीं लगता था। पर इधर कुछ दिनों से आपसे भी भय लगने लगा है। इतने प्यारे आपसे भय लगे, ऐसा तो मैं नहीं चाहता। यह क्या स्थिति है प्रभु?

अच्छा है। यह भय वस्तुतः मेरा नहीं है। तुम्हारा ध्यान धीरे-धीरे गहन
हो रहा है; मृत्यु के करीब आ रहा है, इसलिए पैदा हो रहा है। जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा, भय आना शुरू होता है। क्योंकि ध्यान की अंतिम गहराई में मृत्यु है। वास्तविक मृत्यु वहीं घटती है। और मृत्युएं तो ऊपर-ऊपर हैं। देह मर जाती है, मन तो जारी रहता है। फिर मन नई देह धर लेता है। फिर नया गर्भ, फिर नई यात्रा शुरू हो जाती है। वस्त्र बदलते हैं साधारण मृत्यु में, तुम नहीं बदलते।
ध्यान में महामृत्यु घटती है। तुम्हारा मन ही मर जाता है। तुम्हारा मैं-भाव मर जाता है।
तो जब उस मृत्यु के करीब आने लगोगे तो गहन घबड़ाहट होगी, भय होगा। और स्वभावतः, चूंकि मेरे संग-साथ चल कर वह मृत्यु करीब आ रही है, इसलिए तुम मुझसे भी भयभीत होने लगोगे, क्योंकि यही आदमी तुम्हें उस तरफ लिए जा रहा है।
पुराने शास्त्र कहते हैंः आचार्यो मृत्युः! गुरु मृत्यु-रूपी है। गुरु मृत्यु है। वह आचार्य की परिभाषा है। जिसके पास मृत्यु घट जाए, वही आचार्य! वही गुरु!
कठोपनिषद की कथा तुम्हें याद है? वह कथा वस्तुतः मृत्यु के पास भेजने
की नहीं, गुरु के पास भेजने की कथा है। नचिकेता के बाप ने बड़ा यज्ञ किया है। और वह बांट रहा है यज्ञ के बाद ब्राह्मणों को। नचिकेता बैठा है--छोटा सा नचिकेता! जरा सा बच्चा है। जिज्ञासाएं उसे उठती हैं। छोटा बच्चा है। बाप तो पुराना घाघ है, अनुभवी आदमी है, चालाक, चतुर है। बेटा तो निष्कपट है, सरल-चित्त है। वह बाप की बेईमानियां देख रहा है वहीं बैठा-बैठा। बाप ऐसी गाएं ब्राह्मणों को दे रहा है, जिनका दूध कई दिन पहले ही समाप्त हो गया है। वह नचिकेता को पता है। वह कहता हैः पिताजी, ये गाएं किसलिए दे रहे हैं? इनमें दूध इत्यादि तो है ही नहीं। बाप को बड़ी नाराजगी होती है, क्योंकि वे ब्राह्मण भी सुन रहे हैं।
बेटे अक्सर पोल खोल देते हैं। वह वहीं बैठा है। और वह कहता है कि यह गाय तो बिल्कुल मरी-मराई है, इसमें कुछ नहीं है। यह ब्राह्मणों को उलटा

घास-पात इसको खिलाना पड़ेगा। पिताजी, आप यह क्या कर रहे हैं? यह कैसा दान? कुछ मतलब की चीज दो!
बाप गुस्से में आ जाता है। और वह पूछता ही चला जाता है। बाप कहता है कि मैं सब दान कर दूंगा। कुछ भी बचाऊंगा नहीं। महादानी होना चाहता हूं।
तो बेटा कहता हैः पिताजी, मैं भी तो आपका हूं, मुझे भी दान कर देंगे क्या?
यह बात बड़ी कीमत की पूछता है वह। क्योंकि हम तो व्यक्तियों पर भी परिग्रह कर लेते हैं। तुम कहते होः पत्नी--मेरी पत्नी! पति--मेरा पति। जैसे कि पति-पत्नी कोई संपत्ति हैं! मगर यही चलता रहा है। "स्त्री- संपत्ति" ऐसा शब्द है हमारे पास। नारी-संपत्ति! बेहूदे शब्द हैं, कुरूप शब्द हैं। भाषा से चले जाने चाहिए। अपमानजनक हैं। क्योंकि कोई स्त्री तुम्हारी संपत्ति कैसे हो सकती है?
बाप बेटी का विवाह करता है तो कहता हैः कन्या-दान! हद हो गई पागलपन की! दान कर रहे हो? जीवंत आत्माएं दान की जा सकती हैं? तुम हो कौन दान करने वाले? यह आत्मा तुम्हारी नहीं है, तुम से आई हो भला। तुम रास्ते बने थे इसके आने में। मगर यह आती तो परमात्मा से है, तुम्हारी नहीं है। तुम दान कर रहे हो? एक आत्मा पैदा करके तो बताओ, फिर दान करना। जो पैदा कर सको, उसके मालिक तुम हो सकते हो; लेकिन जो तुम पैदा ही नहीं कर सकते, उसके मालिक कैसे? और तब तो मालकियत किसी चीज की नहीं हो सकती। गाय तुम पैदा कर सकते हो? कि वृक्ष तुम पैदा कर सकते हो? कि जमीन तुम पैदा कर सकते हो? क्या तुम पैदा कर सकते हो? यहां जो भी मूल्यवान है, जीवंत है--कुछ भी पैदा नहीं किया जा सकता। तुम मुफ्त में दावेदार बन जाते हो।
तो नचिकेता ने पूछा कि पिताजी, आप सदा कहते हैं कि मैं आपका हूं। तब तो झंझट खड़ी हुई, आप मुझको भी दान कर देंगे क्या? आप कहते हैं, जो आपका है, सब दान कर देंगे।
बाप तब तक बड़े गुस्से में आ गया था। उसने कहाः हां, दान कर दूंगा। तुझे मृत्यु को दे दूंगा। और नचिकेता जिद्द करने लगा कि फिर कब देंगे मृत्यु को? तो बाप ने कहाः तू जा, मृत्यु का यह मार्ग रहा। खोज मृत्यु को। मैंने तुझे दे दिया।
और नचिकेता गया। मृत्यु के द्वार पर तीन दिन बैठा रहा, क्योंकि मृत्यु के देवता बाहर गए थे। गए होंगे लेने लोगों को--कहीं मलेरिया होगा, कहीं प्लेग होगी। गए होंगे डाक्टरों से जूझने। मृत्यु-देवता की पत्नी ने बहुत समझाया। छोटा सा बच्चा। भोजन कर ले, पानी पी ले। उसने कहाः कुछ भी नहीं। पहले मृत्यु-देवता से मिलूंगा।
और तीन दिन बाद मृत्यु के देवता आए। और बहुत खुश हुए इस बच्चे की निष्ठा से। इसकी सरलता से भी। यह अपने बाप से ज्यादा सरल साबित हुआ। और अदभुत साहस वाला है कि बाप ने तो क्रोध में कहा था मृत्यु को देता हूं, यह चला ही आया। इसने मान ही लिया। इसने ना-नुच भी न की। इसने न कहाः मैं नहीं मरूंगा, मैं नहीं मरना चाहता। ऐसा नहीं कहा। इसने कहाः ठीक है, जब पिता कहते हैं मृत्यु तो मृत्यु! जब दान कर दिया तो कर दिया। और मैं तीन दिन बाहर था तो इसने पानी भी न लिया और भोजन भी न लिया। तो बहुत मृत्यु के देवता उसकी सरलता, निष्कपटता, साहस, अदम्य साहस से प्रभावित हुए। उन्होंने कहाः तू तीन वरदान मांग ले। तू जो चाहे मांग ले।
लेकिन उसने कहा कि मुझे तो सिर्फ एक बात जाननी है, कि मरने के बाद क्या होता है? मृत्यु के बाद क्या होता है? कोई बचता है कि नहीं बचता है?
बहुत समझाया मृत्यु के देवता नेः तू यह ले ले, तू वह ले ले, धन ले ले, घोड़े ले ले, रथ ले ले, सारा साम्राज्य ले ले पृथ्वी का।
उसने कहाः क्या करूंगा? क्योंकि एक दिन मौत आएगी और आप सब छीन लेंगे।
आप किससे कह रहे हैं यह बात? आप ही कह रहे हैं! अभी दे देंगे, थोड़े दिन भुलावा रहेगा, फिर मौत आएगी, फिर छीन लेंगे। मैं तो असली बात जानना चाहता हूं कि मौत के बाद क्या होता है? मुझे तो जीवन का वह परम राज बता दें। सब मिट जाता है या कुछ बचता है? जो बचता है, वह क्या है? वह अमृत क्या है? बस मैं उसी को जानना चाहता हूं। वही संपत्ति, वही साम्राज्य। देना हो तो वही दे दें।

ऐसा कठोपनिषद चलता है। यह बड़ी गहन कथा है। इस कथा का रहस्य यही है कि नचिकेता गुरु के पास गया है। आचार्यो मृत्युः! यदि आचार्य मृत्यु है, तो फिर मृत्यु ही आचार्य है।
और तुम यह जानना कि दुनिया में सारे धर्मों का जन्म मृत्यु के कारण हुआ है। मृत्यु से हुआ है। वही सदगुरु है। अगर मृत्यु न हो तो धर्म विलीन हो जाएंगे। अगर तुम मरो न, कभी न मरो, तो तुम बुद्ध की सुनोगे, कि महावीर की, कि कृष्ण की, कि राम की, किसकी सुनोगे? तुम किसी की न सुनोगे। तुम कहोगेः हटाओ बातचीत! सदा यहां मजे से रहना है, कहां की बातें कर रहे हो? स्वर्ग यहीं बनाएंगे। अभी भी कहां सुनते हो। सत्तर साल रहना है तो भी स्वर्ग बनाने की कोशिश करते हो। और अगर सदा रहना होता, तब तो तुम कैसे सुनते! अभी तो मौत तुम्हें डरा देती है, मौत तुम्हें कंपा देती है। तो जैसे-जैसे बूढ़े होने लगते हो, थोड़ा-थोड़ा सुनने लगते हो कि शायद कुछ मतलब की बात हो, सुन लें, अब मौत करीब आ रही है।
इसलिए देखते हैं, मंदिर-मस्जिद में बूढ़े और बूढ़ियां दिखाई पड़ते हैं! जवान वहां नहीं जाते। जवान वहां जाएं क्यों? जवान अभी लड़खड़ाया नहीं है। अभी मौत ने धक्का नहीं दिया। अभी होने दो एकाध हार्ट-अटैक, बढ़ने दो ब्लड-प्रेशर। होने दो कोई खतरा। पैर कंपने दो, हाथ में कंपन आने दो, घबड़ाहट आने दो, मौत का पहला झोंका आने दो। तब यह जाएगा मंदिर। तब यह राम-राम जपेगा। तब यह माला फेरेगा।
मौत धर्म की जन्मदात्री है।
पूछते हैंः "संसार में एक आप ही हैं जिससे भय नहीं लगता था।"
तब तक संबंध गहरा नहीं था, अगर भय नहीं लगता था। अब संबंध निश्चित गहरा होना शुरू हुआ है, तो भय लगेगा। और एकदम से पहले-पहले मैं डराऊं, वह बात ठीक भी नहीं। पहले-पहले तो फुसलाना पड़ता है। पहले-पहले तो कहना पड़ता हैः आप बड़े सुंदर! सब ठीक! पहले तो धीरे-धीरे अंगुली पकड़नी पड़ती है, फिर पहुंचा! फिर गर्दन! आहिस्ता चलना होता है, नहीं तो तुम भाग ही जाओ। फिर मनमोहन की फांसी कैसे लगे? वह फांसी तो तभी लग सकती है, जब धीरे-धीरे तुम राजी हो जाओ; तुम कहो कि ठीक है, चलो हाथ ही पकड़े हैं, कोई हर्जा नहीं-- चलेगा। धीरे-धीरे तुम राजी होते जाते हो।
तो अंततः तो तुम्हारा मन मरे, यही सिखाना है। तुम्हारा अहंकार मरे, यही सिखाना है। अंततः तो तुम मिट जाओ, यही सिखाना है। जैसे बीज मिट जाता है तो अंकुर होता है, ऐसे तुम मिटोगे तो आत्मा होगी। तुम्हारे रहते आत्मा नहीं हो सकती। जैसे बूंद सागर में गिर जाती है और खो जाती है, ऐसे तुम जब खो जाओगे, गिर जाओगे शाश्वत के सागर में, जरा भी न बचोगे, तुम्हारी रेखा भी शेष न रहेगी, तभी तुम जानोगे कि सत्य क्या है!
तो भय लगना स्वाभाविक है। इससे यह सोचना मत कि तुम्हारा प्रेम मेरे प्रति कम हो गया या मेरा प्रेम तुम्हारे प्रति कम हो गया, इसलिए भय लग रहा है। नहीं! प्रेम बढ़ा है, बढ़ रहा है। तुम करीब आ रहे हो। पतंगा ज्योति के करीब आ रहा है।
दूर जब पतंगा होता है तब तो ज्योति उष्ण है, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। कैसे मालूम पड़े? ज्योति जला देगी, ऐसा नहीं मालूम पड़ता। पतंगा ज्योति से आह्लादित होकर नाचता हुआ चला आता है। जैसे-जैसे करीब आता है, वैसे-वैसे उष्णता बढ़ती है। मगर अब ज्योति का आकर्षण भी प्रबल होने लगता है। और करीब आता है कि पंख जलने लगते हैं। लेकिन अब लौटने का उपाय नहीं रह जाता। अब ज्योति का अदम्य आकर्षण खींचता है। और पतंगा गिर जाता ज्योति में और एक हो जाता ज्योति के साथ। ऐसे ही शिष्य को गुरु में गिर कर एक हो जाना है।
भय तो लगेगा। भय बिल्कुल स्वाभाविक है। और तुम चाहो या न चाहो--
"इतने प्यारे आपसे भय लगे, ऐसा तो मैं नहीं चाहता।"
तुम्हारे चाहने न चाहने से अब कुछ भी न होगा। अब तो यह भय तभी मिटेगा
जब तुम मिटोगे; उसके पहले नहीं मिटने वाला। यह तुम को मिटा कर ही मिटेगा। पीछे लौटने का उपाय भी नहीं है, अगेह! और आगे गए तो तुम न बचोगे। और जहां हो वहां अटके रहे, तो भय कंपाता रहेगा। आगे जाना ही होगा। ज्योतिर्मय की तरफ जो कदम लिए हैं, वे अब पीछे नहीं मुड़ सकते।

साधना के मार्ग पर पीछे जाने का उपाय नहीं है। और बहुत बार मन करेगाः लौट चलो। बहुत बार मन करेगाः पहले ही ठीक था। बहुत बार मन करेगाः यह किस उलझन में पड़े? यह किस झंझट में पड़े? यह कैसी दीवानगी आई चली जाती है?
मेरो मन बड़ो हरामी!
यह मन तो कहेगा। यह मन तो छिटकाएगा। यह मन तो कहेगाः यह तो भय होने लगा, अब यहां क्या सार है, हटो! हम तो प्रेम का स्वाद लेने आए थे।
प्रेम के स्वाद से ही यह भय आ रहा है, क्योंकि अब और बड़े प्रेम के पैदा होने की संभावना है। मनुष्य को बहुत-बहुत बार मरना होता है। बहुत-बहुत रूपों में मरना होता है। बहुत-बहुत तलों पर मरना होता है। जिस तल पर आदमी मरता है, उससे ऊपर के तल पर जन्म पाता है।
मैंने तुमसे पीछे कहा कि सात तल हैं। मूलाधार पर मरता है तो स्वाधिष्ठान में पैदा होता है। स्वाधिष्ठान में मरता है तो मणिपुर में पैदा होता है। मणिपुर में मरता है तो अनाहत में पैदा होता है। ऐसे मरता है और पैदा होता है। ऐसे भीतर की यात्रा होती है। जब आज्ञाचक्र पर मरता है... समझते हो... आज्ञाचक्र का अर्थ होता हैः वहां तक अहंकार जा सकता है। वहां तक तुम्हारा बस है, इसीलिए उसका नाम आज्ञा है। वहां तक तुम्हारी आज्ञा चल सकती है। उसके आगे नहीं। वहां तक संकल्प चल सकता है, उसके आगे नहीं। वहां तक तुम बचे रहते हो। शुद्ध होते जाते हो, स्वर्णमय होते जाते हो, मगर बचे रहते हो। अहंकार परिपूर्ण शुद्ध हो जाता है, सूक्ष्म हो जाता है, मगर बचा रहता है। आखिरी रेखा बची रहती है। इसलिए उसको "आज्ञा" कहा है। वहां तक तुम्हारा बस है; उसके पार तुम अवश हो जाते हो। आज्ञा में जो मरता है, वह सहस्रार में पैदा होता है। सहस्रार है हजार पंखुड़ियों वाला कमल! आज्ञा छोटा सा फूल है। छोटे से फूल में जो मरता है, वह विराट फूल हो जाता है।
ऐसे सात तलों पर मरना होता है। गुरु के पास आते-आते भी ये सात मृत्युएं घटती हैं। क्योंकि गुरु से जो वास्तविक मिलन है, वह सहस्रार पर ही होता है, उसके पहले नहीं। उस गगन-मंडल में, उस आकाश में ही गुरु से वास्तविक मिलन होता है।
गुरु की बात सुननी, एक बात। गुरु की देह के मोह और प्रेम में पड़ जाना,
एक बात। गुरु के व्यक्तित्व, गुरु की गरिमा से आंदोलित हो जाना, एक बात। गुरु-मिलन--बड़ी दूसरी बात! उस मिलन में फिर तुम नहीं बचते। वहां दुई नहीं रह जाती। गुरु के साथ पहली दफे अद्वैत का अनुभव होता है।
तो भय तो लगेगा। घबड़ाहट तो होगी। बहुत मन कंपेगा कि यह क्या कर लिया! क्योंकि एक अर्थ में यह आत्मघात है। अपने हाथ से अपनी मृत्यु को बुलाना है।
इसलिए तो लोग भागते हैं। बुद्ध से बचते हैं, कृष्ण से बचते हैं, क्राइस्ट से बचते हैं। कभी-कभी तो लोग इतने नाराज हो जाते हैं कि खुद मरने की बजाय क्राइस्ट को मार डालते हैं। क्योंकि इतना भय पैदा कर देता है यह आदमी कि दो ही विकल्प रह जाते हैं--या तो मरो इसके साथ, या इसको मारो। अगर यह मौजूद रहा तो हमको मिटा कर रहेगा। यह घबड़ाहट पैदा हो जाती है।
और तुम ध्यान रखना, जीसस को मारा हो किन्हीं ने, लेकिन बेचा था उनके निकटतम शिष्य ने, जुदास ने। तीस रुपये में बेच दिया था।
जुदास की कथा बहुत-बहुत अर्थों में समझने जैसी है। इस अर्थ में भी समझने जैसी है, क्योंकि जुदास निकटतम शिष्य था। सबसे समझदार शिष्य था जीसस का। सबसे बुद्धिमान, सबसे पढ़ा-लिखा, सबसे ज्यादा सुसंस्कारवान, सबसे ज्यादा तर्कयुक्त! इस बात की पूरी संभावना है कि वह घड़ी करीब आ गई, जब या तो जुदास मरे या जीसस को मरना पड़े। दोनों का साथ जीना संभव न रहा। जुदास ने यही तय किया कि जीसस मरें, मैं बचूं। लेकिन ज्यादा देर बच भी नहीं सका। चौबीस घंटे ही जीया। जीसस को जब सूली लग गई, तब पछताया। तब उसे अपना कृत्य दिखाई पड़ा कि यह मैंने क्या कर लिया! जिसमें मिट कर मैं परम हो सकता था, उसे मैंने मिटा डाला! उस चौबीस घंटे के पश्चात्ताप के बाद उसने आत्मघात कर लिया। मिटना तो पड़ा। गुरु के इतने पास आकर बचा नहीं जा सकता। गुरु को मिटा दो तो भी नहीं बचा जा सकता। पीछे लौटने का उपाय नहीं है।
तो घबड़ाओ मत! भय है, उसे देखो। साक्षीभाव रखो।
लज्जते-जीस्त को हम सोजे-जिगर कहते हैं

राहते-कल्ब को हम दीदाए-तर कहते हैं तेरी ही यादे-मुसलसल की हलावत है जिसे अहले-दिल मसलहतन दर्दे-जिगर कहते हैं दर्द बढ़ने से जो मिलती है हमें इक तस्कीन हम उसे अपनी दुआओं का असर कहते हैं
है ये तेरा ही मुअत्तर नफसो-रंगे-जमाल सहने-गुलशन में जिसे हम गुलेतर कहते हैं रात कहते हैं जिसे है तेरी फुर्कत का ख्याल वस्ल की आस को हम नूरे-सहर कहते हैं मस्ति-ओ-हाल जिसे कहते हैं दुनिया वाले तेरे दीवाने इसे तेरी नजर कहते हैं
एक ही बात है, जलवा कहीं कहते हैं इसे
कहीं दीदारे-खुदी हुस्ने-नजर कहते हैं
तेरी रफ्तार ही अपनी है सुकूने-कामिल
वही मंजिल है जिसे शौके-सफर कहते हैं
लज्जते-जीस्त को हम सोजे-जिगर कहते हैं
जीने का स्वाद प्यार के दर्द के बिना मिलता ही नहीं।
लज्जते-जीस्त को हम सोजे-जिगर कहते हैं
जीवन के आनंद को, जीवन के स्वाद को हम प्यार की पीड़ा का नाम देते हैं। प्यार की पीड़ा को ही हम जीवन का स्वाद कहते हैं।
लज्जते-जीस्त को हम सोजे-जिगर कहते हैं
राहते-कल्ब को हम दीदाए-तर कहते हैं
और दिल का आराम कहां है? जब आंखें आंसुओं से भरी हों, तब!
राहते-कल्ब को हम दीदाए-तर कहते हैं
भीगी आंख को ही हम हृदय का विश्राम कहते हैं।
रोना भी पड़ेगा, पीड़ा भी झेलनी पड़ेगी। ये सब इस रास्ते पर मिलने वाली भेंटें हैं। भेंट याद रखना। इनको पीड़ा मत समझना। ये कांटे तुम्हें प्रतिपल मंजिल के करीब ला रहे हैं।
तेरी ही यादे-मुसलसल की हलावत है जिसे
अहले-दिल मसलहतन दर्दे-जिगर कहते हैं
और जिसे उस परम प्यारे की याद बैठ गई है--उसके दिल में दर्द बैठ गया; उसके दिल में गहन पीड़ा बैठ गई, विरह बैठ गया। खूब कांटे चुभेंगे। इन्हीं कांटों के चुभने के माध्यम से फूलों के पैदा होने की संभावना करीब आती है। दर्द बढ़ने से जो मिलती है हमें इक तस्कीन
जो जानता है, जो पहचानता है, जिसने यह पीड़ा सही है, वह कहेगा--
दर्द बढ़ने से जो मिलती है हमें इक तस्कीन
एक शांति मिलती है, एक राहत मिलती है, तस्कीन मिलती है--दर्द के बढ़ने से! क्योंकि जितना दर्द बढ़ता है उतना प्यारे के करीब आना होने लगता है। उसके करीब आने के कारण ही दर्द बढ़ता है।
हम उसे अपनी दुआओं का असर कहते हैं
यह हमारी प्रार्थनाओं का परिणाम है, दुआओं का असर, कि दर्द बढ़ रहा है। प्रभु और दर्द दे, ताकि हम और करीब आएं! प्रभु मिटाए, ताकि प्रभु ही बचे और हम न बचें।
मस्ति-ओ-हाल जिसे कहते हैं दुनिया वाले
भीतर तो दर्द होता है भक्त के, बड़ी पीड़ा होती है, गहन पीड़ा होती है। आग
की लपटें जलती होती हैं। क्योंकि मौत रोज-रोज करीब आती है। लेकिन बाहर भक्त बड़ा मस्त होता है।
मस्ति-ओ-हाल जिसे कहते हैं दुनिया वाले
बाहर की दुनिया तो देखती है उसकी मस्ती को। मीरा की मस्ती को सबने देखा, मीरा की पीड़ा को किसने देखा? मगर उस पीड़ा के बिना मस्ती है ही नहीं। असल में जिसको तुम बाहर मस्ती कह रहे हो, वह उसी पीड़ा का छलकना है। वही पीड़ा लबालब हो गई है, भर गई है पात्र में, उछल रही है।
मस्ति-ओ-हाल जिसे कहते हैं दुनिया वाले
तेरे दीवाने इसे तेरी नजर कहते हैं

बस तेरी एक नजर हो जाती है तो सब दुख मिट जाते हैं, सब पीड़ा मिट जाती है। तेरी एक नजर हो जाती है तो सब कांटे भूल जाते हैं। लंबी-लंबी यात्राएं, यात्राओं के कष्ट, सब विस्मृत हो जाते हैं। दुनिया के लोग जिसे मस्ती कहते हैं, तेरे दीवाने इसे तेरी नजर कहते हैं।
एक ही बात है, जलवा कहीं कहते हैं इसे
कहीं दीदारे-खुदी हुस्ने-नजर कहते हैं
कोई तो कहता है कि देखो इस मस्ती के जलवे को!
मीरा के जलवे को लोगों ने देखा, उत्सव को देखा। यह जो चमत्कार मीरा के जीवन में घटा! यह जो मदिरा बही! यह जो फिर से ब्रज उतरा, और फिर से कृष्ण नाचे! नाचना ही पड़ा कृष्ण को। यह फिर से बांसुरी बजी। जिन्होंने भी मीरा के करीब बैठ कर सुना है, उन्होंने कृष्ण की बांसुरी फिर से सुनी। फिर मृदंग पर थाप पड़ी! फिर नृत्य। फिर जलवा हुआ! फिर उसकी ज्योति उतरी!
एक ही बात है, जलवा कहीं कहते हैं इसे
कहीं दीदारे-खुदी हुस्ने-नजर कहते हैं
बाहर के लोग इसको कहते हैं जलवा; भीतर जो जानता है वह कहता है, यह उस परम प्यारे की दृष्टि! उसके सौंदर्य की प्रतीति!
तेरी रफ्तार ही अपनी है सुकूने-कामिल
वही मंजिल है जिसे शौके-सफर कहते हैं
भक्त को मंजिल की भी चिंता नहीं है। वह कहता हैः यह यात्रा भी बड़ी प्यारी है, यही मेरी मंजिल है। कहीं पहुंचूं, इसका उसे आकर्षण नहीं है। जहां हूं, जैसा हूं--यह भी कम नहीं है सौभाग्य! इतना भी बहुत है।
तो घबड़ाना मत। पीड़ा हो तो समझना कि दुआओं का असर। भय हो, डर लगे, कंपन पैदा हो जाए, लौट जाने की आकांक्षा होने लगे--तो भी समझना कि दुआओं का असर।
सौभाग्य समझना। जो भी हो इस मार्ग पर, उसे सौभाग्य समझना। और तब तुम पाओगेः जो भी हुआ, सब सौभाग्य में परिणत हो गया है।
यहां के सब कांटे फूल बन सकते हैं। यहां के कंकड़-पत्थर हीरे बन सकते हैं। सिर्फ दृष्टि की बात है। गलत व्याख्या कर ली तो कठिनाई में पड़ जाओगे। तुमने अगर ऐसा सोच लिया कि भय तो बुरी बात है। भय तो नहीं होना चाहिए। यह क्यों हो रहा है? तो तुम एक गलत व्याख्या में उलझे। तुम्हारा मार्ग अस्तव्यस्त हो जाएगा। क्योंकि भय से बचने का एक ही उपाय होगा कि थोड़े और दूर जाकर खड़े हो जाओ, जैसे पहले खड़े थे। तो भय नहीं लगेगा। लेकिन दूर खड़े हो गए, पतंगा दूर चला गया दीये से, तो अपने सौभाग्य से ही दूर चला गया। वह दीये में जो पतंगे की मृत्यु है, वही शाश्वत जीवन का प्रारंभ है।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि गीता के कृष्ण से मीरा का कोई संबंध नहीं है। लेकिन मीरा तो कहती है कि मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई। तो यह गिरधर गोपाल कौन है? स्पष्ट करने की कृपा करें।

गिरधर गोपाल का गीता में कहीं भी उल्लेख है?
कृष्ण पूर्ण अवतार हैं। कृष्ण के बहुत रूप हैं। कृष्ण उतने रूपों में प्रकट हुए हैं जितने रूप हो सकते हैं। गीता का कृष्ण तो सिर्फ एक ही रूप है कृष्ण का। शंकराचार्य उस रूप के प्रेम में हैं, श्री अरविंद उस रूप के प्रेम में हैं, लोकमान्य तिलक उस रूप के प्रेम में हैं।
गीता पर हजारों टीकाएं लिखी गई हैं। कृष्ण उसमें समाप्त नहीं हैं। वह कृष्ण की एक तरंग है। वह एक दृश्य है कृष्ण के जीवन का। उस दृश्य को पूरा कृष्ण मत समझ लेना, अन्यथा भूल हो जाती है। कृष्ण उससे बहुत ज्यादा हैं। इसलिए तो मीरा कहती हैः मेरे तो गिरधर गोपाल!
यह गिरधर गोपाल कृष्ण का दूसरा रूप है, जिसने पर्वत को हाथ पर उठा लिया था। ये श्रीमद्भागवत के कृष्ण हैं। ये कृष्ण हैं, जिन्होंने मटकियों से माखन चुराया। ये कृष्ण हैं, जिन्होंने गोपियों की मटकियों पर कंकड़ मार कर मटकियां तोड़ीं। ये कृष्ण हैं, जिन्होंने रास रचाया यमुना के तट पर। ये कृष्ण हैं, जो नाचे; जिनके हाथ में बांसुरी है; जिनके सिर पर मोरमुकुट है; जो पीतांबर ओढ़े हुए हैं। ये कृष्ण की सौंदर्य-प्रतिमा, ये कृष्ण काशृंगार रूप! ये कृष्ण मनमोहन हैं!

तो तुम गलत मत समझ लेना। मैंने यह नहीं कहा कि मीरा किसी और कृष्ण के प्रेम में है। मैंने सिर्फ इतना कहा कि गीता के कृष्ण के प्रेम में मीरा नहीं है। नहीं तो गीता पर व्याख्या करती। कृष्ण को मीरा ने ऐसे देखा जैसे राधा ने देखा होगा, जैसे और सखियों ने देखा होगा। युद्ध के मैदान पर खड़े कृष्ण नहीं--ब्रज की कुंज गलिन में रास रचाते, बंसी वट में बांसुरी बजाते, गाएं चराते! कृष्ण का यह जो मनमोहक रूप है, कृष्ण का यह जो प्रीतम रूप है-- मीरा इस रूप के प्रेम में है।
और ध्यान रखनाः कृष्ण इतने विराट हैं कि तुम अपनी मनपसंद का कृष्ण चुन सकते हो। सूरदास ने कोई तीसरा ही कृष्ण चुना है। वह छोटा सा बालक कृष्ण, पैर में घुनघुनियां बांधे, नंग-धड़ंग, यशोदा को परेशान कर रहा है। सूरदास ने बालक कृष्ण को चुना है। सूरदास के लिए बालकृष्ण काफी हैं। वह छोटे से कृष्ण की लीला, बाललीला! वह सूरदास को भा गई है। सूरदास का प्रेम कृष्ण के प्रति वात्सल्य का प्रेम है। छोटे बच्चे के प्रति। छोटे बच्चे की लीलाएं, खेलों के प्रति। छोटे बच्चे के मचलने के प्रति। सूरदास वात्सल्य से कृष्ण को देखे।
मीरा का कृष्ण मीरा का पति है। मीरा का कृष्ण मीरा का प्यारा है, प्रीतम है। छोटे बच्चे की तरह मीरा ने कृष्ण को नहीं चुना है; संगी-साथी की तरह, मित्र की तरह। जैसे कोई स्त्री पति को चुने, ऐसा मीरा ने कृष्ण को चुना है।
प्यारी कहानी है। छोटी थी मीरा। और घर में एक साधु ठहरा। उस साधु के पास कृष्ण की बड़ी प्यारी प्रतिमा थी। छोटी सी प्रतिमा सांवले-सलोने कृष्ण की। मीरा छोटी थी, होगी तीन-चार साल की। सुबह साधु ने पूजा के लिए प्रतिमा निकाली, और मीरा मचल गई। वह प्रतिमा चाहती थी। साधु देने को राजी नहीं था। साधु ने साफ इनकार भी कर दिया। मीरा की मां ने भी समझाया, पैसा भी ले लो। उसने कहाः ये मेरे भगवान हैं, इन्हें मैं बेच सकता हूं? यह मैं नहीं दे सकता। यह मुझे बड़ी प्यारी मूर्ति है। इसके बिना मैं नहीं रह सकता।
साधु अपनी मूर्ति लेकर चला गया। दूसरे गांव में रात सोया और कथा है कि कृष्ण उसे प्रकट हुए निद्रा में और कहा कि तूने ठीक नहीं किया। जिसकी मूर्ति थी, उसे दे दे।
उसने कहाः मूर्ति मेरी है, उस लड़की की नहीं।
कृष्ण ने कहाः उसी की है। तेरा संबंध मुझसे औपचारिक है। तू और मूर्ति उठा लेना, उससे भी चलेगा। उसका संबंध मुझसे बहुत गहरा है। यह मूर्ति उसी की है, तू लौट कर उसको दे आ। इसी वक्त जा और दे आ। तूने ठीक नहीं किया।
और वहां मीरा थी कि दिन भर भूखी बैठी थी। उसने खाना नहीं लिया। उसने कहाः मूर्ति मिलेगी तो ही खाना लूंगी, नहीं तो अब मर जाऊंगी। मां परेशान है, घर के लोग परेशान हैं। अब यह भी कोई जिद्द है! क्योंकि दूसरे की चीज है, वह दे, न दे। फिर ऐसी-वैसी चीज नहीं है, उसके आराध्य देव की प्रतिमा है; वह नहीं दे तो कुछ नाराजगी की बात नहीं है, बिल्कुल स्वाभाविक है।
लेकिन दूसरे दिन सुबह होते-होते वह साधु भागा हुआ आया। उसने कहाः मुझे क्षमा करो! मीरा के पैरों में गिर पड़ा और कहाः सम्हालो अपने कृष्ण को, वे तुम्हारे हैं।
फिर तो मीरा चौबीस घंटे उस मूर्ति को अपनी छाती से लगाए घूमती रहती।
फिर पड़ोस में एक विवाह हुआ किसी लड़की का। मीरा वहां गई है अपने कृष्ण
को लिए हुए। पांच साल की होगी। और मां से पूछने लगीः इसका विवाह हो रहा है, मेरा विवाह कब होगा? और मां ने ऐसे ही मजाक में कहाः तेरा विवाह तो हो गया न! ये कृष्ण कन्हैया से! और उसने बात मान ली। उस क्षण के बाद उसने कृष्ण के अतिरिक्त किसी को पति-रूप में नहीं देखा। विवाह भी हुआ। लेकिन कृष्ण ही पति रहे। वह कृष्णमय हो गई।
मीरा का कृष्ण गीता का कृष्ण नहीं है, ऐसा मेरा कहने का मतलब सिर्फ इतना थाः मीरा को कृष्ण के फलसफे में, उनके दर्शनशास्त्र में कोई रस नहीं है। गीता दर्शनशास्त्र है। वह कृष्ण का दार्शनिक वक्तव्य है। मीरा को कृष्ण की आंखों में रस है, उनके शब्दों में नहीं। मीरा को कृष्ण के रूप में रस है, उनके सिद्धांतों में नहीं। मीरा को कृष्ण में रस है; क्या कहते हैं, इसमें नहीं।

अभी चार दिन पहले यह घटना घटी। एक यहूदी मित्र, मनोवैज्ञानिक हैं, सुशिक्षित हैं, संपन्न हैं; सत्य की खोज में अमरीका से यहां चले आए। संयोग की बात थी कि जब वे यहां पहुंचे तो मैं जीसस पर बोल रहा था। यहूदी हैं तो उनको बड़ा कष्ट हुआ। संन्यस्त होना चाहते थे, लेकिन एक बात ने अड़चन डाल दी। क्योंकि मैंने जीसस पर बोलते हुए कहा कि जीसस से बड़ा यहूदी दुनिया में दूसरा नहीं हुआ। जीसस यहूदी जाति के सबसे ऊंचे शिखर थे, गौरीशंकर थे। यह बात उनको चोट कर गई। यहूदी का मन यह मानने को नहीं होता कि जीसस और सबसे बड़े यहूदी! यहूदी तो मानता है कि जीसस भ्रष्ट व्यक्ति हैं, तभी तो सूली दी, निष्कासन किया। धोखेबाज हैं, पाखंडी हैं, असली मसीहा नहीं हैं। असली मसीहा तो अभी आने को है। और इस आदमी ने जबरदस्ती शोरगुल मचा दिया कि मैं मसीहा हूं।
वे संन्यास लेने आए थे, मगर यह एक वक्तव्य उन्हें अड़चन में डाल गया।
अब वे बड़ी दुविधा में पड़ गए कि क्या करूं, क्या न करूं। मुझसे पूछते थे कि और सब तो ठीक है, लेकिन आपके इस वक्तव्य से राजी नहीं हो पाता हूं। बहुत सुनता हूं, आपके सब टेप सुन रहा हूं, बार-बार पढ़ता हूं, बार-बार सुनता हूं, सब तरह की कोशिश करता हूं कि किसी तरह राजी हो जाऊं, लेकिन यह एक वक्तव्य मुझे अटकाए हुए है! जीसस--और सबसे बड़े यहूदी! यह मैं नहीं मान सकता हूं। तो मैंने उनसे कहाः मेरे वक्तव्यों को मानने की जरूरत ही क्या है? मुझे मान सकते हो सीधा-सीधा? मैंने क्या कहा, छोड़ो फिकर! मैं क्या हूं, इसकी फिकर लो।
और जैसे बादल छंट गए और मैं देख सका सामने--उनकी आंखों में जो उलझन थी,
वह विदा हो गई। जैसे सूरज निकल आया आकाश में!
मीरा को, कृष्ण ने क्या कहा है, इसमें उत्सुकता ही नहीं है। कृष्ण की दर्शन-प्रणाली, कृष्ण का सिद्धांत, शास्त्र, कृष्ण के वक्तव्य मीरा के लिए गौण हैं। विचार के विषय नहीं हैं। कृष्ण सीधे-सीधे हैं।
अगर कृष्ण ने गीता न कही होती तो शंकराचार्य को उनमें कोई रस न होता। अगर कृष्ण ने गीता न कही होती तो लोकमान्य तिलक ने उन पर कोई किताब न लिखी होती। मीरा फिर भी उनके गीत गाती। मीरा फिर भी गुनगुनाती। मीरा का रस कृष्ण के व्यक्तित्व में है। सीधा-सीधा है। कृष्ण क्या कहते हैं, कहने दो जो कहते हों। कृष्ण क्या हैं, इसमें मीरा का रस है। इसलिए मैंने कहा कि गीता के कृष्ण से कोई संबंध नहीं है मीरा का।
तुम पूछते होः "आपने कहा कि गीता के कृष्ण से मीरा का कोई संबंध नहीं।"
तुम मेरी बात समझे नहीं।
"लेकिन मीरा तो कहती है कि मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।"
मुझे भी मालूम है कि मीरा ऐसा कहती है। मगर ख्याल रखना, गिरधर गोपाल
की कोई चर्चा ही गीता में नहीं है। यह गिरधर गोपाल कृष्ण का बड़ा दूसरा आयाम है।
कृष्ण बहु-आयामी हैं। महावीर एक-आयामी हैं। उसमें चुनाव ज्यादा करने
की सुविधा नहीं है। महावीर में क्या चुनाव करोगे? बहुत चुनाव की सुविधा नहीं है। जैनों के दो संप्रदाय हैंः श्वेतांबर और दिगंबर। विपरीत हैं एक-दूसरे से, भिन्न हैं एक-दूसरे से; लेकिन फिर भी कितना फर्क करोगे महावीर में? ज्यादा फर्क नहीं कर पाते, थोड़ा ही सा फर्क कर पाते हैं। बड़ा क्षुद्र! दिगंबर की मूर्ति में आंख बंद होती है, श्वेतांबर की मूर्ति में आंख खुली होती है। बस! और फर्क ज्यादा करोगे भी क्या? और कुछ है भी नहीं वहां, नंग-धड़ंग खड़े हैं। आंख ही बची थी; उसको चाहे खोल लो, चाहे बंद कर लो। यह भी कोई फर्क है? मगर लड़ना हो तो यह भी काफी है। खोजा होगा उन्होंने बहुत, सब तरफ से निरीक्षण किया होगा। आगे-पीछे गए होंगे। देखा कि इस आदमी की आंख भर खुलती, बंद होती है। बस यही इसके दो ढंग हैं--कभी आंख खोल कर खड़ा होता है, कभी आंख बंद कर लेता है। इतना ही फर्क मिला दिगंबरों और श्वेतांबरों को। इतना सा झगड़ा है। झगड़े जैसा झगड़ा भी नहीं। क्षुद्र, दो कौड़ी का है। महावीर एक-आयामी हैं। ऐसे ही बुद्ध भी एक-आयामी हैं। कृष्ण बहु-आयामी हैं। खूब चुनाव की सुविधा है। इसलिए ऐसा भी हो सकता है कि सूरदास को सुनो तो तुम्हें समझ में न आए कि किस कृष्ण की बात कर रहे हैं। और मीरा को सुनो

तो वह कुछ दूसरे ही कृष्ण की बात कर रही है। और शंकराचार्य को सुनो तो वे किसी तीसरे ही कृष्ण की बात कर रहे हैं। मगर वे एक ही कृष्ण की बात कर रहे हैं। लेकिन सबने अपने अंग चुन लिए हैं, जो जिसको रुचिकर लगा है। कृष्ण तो एक सागर हैं। उनके बहुत घाट हैं। तुम जो घाट से चाहो, उतर जाओ। गीता एक घाट है। फिर कृष्ण का बालपन दूसरा घाट है। फिर कृष्ण की युवावस्था तीसरा घाट है। बहुत घाट हैं। कृष्ण के साथ बड़ी स्वतंत्रता है। तुम्हारा जैसा भाव हो, कृष्ण की तुम मूर्ति वैसी ही गढ़ ले सकते हो। कृष्ण को तुम अपने ढंग से प्यार कर सकते हो, तुम्हें स्वतंत्रता है।

चौथा प्रश्नः मैं बहुत दुखी हूं, मुझे मार्ग दिखाएं!

दुखी कौन नहीं है? सभी दुखी हैं। और मार्ग भी एक है।
दुखी हो इसीलिए कि जो है उससे राजी नहीं होते। क्या कारण है दुख का? इतना ही कारण है कि जो है उससे राजी नहीं होते; कुछ और होना चाहिए। जहां हो वहां राजी नहीं होते; कहीं और होना चाहिए। जैसे हो वैसे से राजी नहीं होते; कुछ और रूप होना चाहिए। सदा सपना देखते हो। सपने के कारण दुखी हो।
सपनों को जाने दो। जिस दिन सपने चले जाते हैं, उसी दिन सुख उतर आता है। सुख सपनों के अभाव में उतरता है। मांगो मत। कहो मत कि क्या होना चाहिए। जैसा है, जो है--इससे अन्यथा न हो सकता है, न होगा। इससे राजी हो जाओ। इसके साथ आनंदित हो जाओ--जैसा है। फिर कैसा दुख?
दुख तुम्हारी आकांक्षा के कारण है। दस हजार रुपये तुम्हारे पास हैं-- क्या दुख है दस हजार रुपये में? दस हजार रुपये में दुख कैसे हो सकता है? होगा तो कुछ सुख ही होगा, दुख कैसे हो सकता है? लेकिन पड़ोसी के पास बीस हजार हैं, यह दुख है। तुम्हारे पास भी बीस हजार होने चाहिए, यह दुख है। मैं एक घर में मेहमान होता था। बड़े धनपति थे। मुझे लेने एयरपोर्ट आए थे। उनकी पत्नी भी साथ थी। कुछ उदास से लगे। मुझे जब भी लेने आते थे तो कभी उदास उन्हें देखा नहीं था। कम से कम मैं जब तक रहता था उनके घर, तब तक वे प्रसन्न रहते थे। उस दिन उदास थे। मैंने पूछाः बात क्या है?
उनकी पत्नी बोली। उनकी पत्नी ने कहाः अब आप न ही पूछें तो अच्छा है। इनके हिसाब से पांच लाख का नुकसान लग गया है।
मैंने पूछाः इनके हिसाब से?
उसने कहाः हां, इनके हिसाब से। मेरे हिसाब से पांच लाख का लाभ हुआ है।
मैंने पूछाः मामला क्या है?
पति बोले कि यह अपनी ही जिद्द हांके चली जाती है। इधर मुझे पांच लाख
की हानि हो गई है, यह अपनी ही लगाए चली जाती है।
मैंने पूछा कि मुझे पूरी बात कहें।
उन्होंने कहा कि बात यह है कि कोई धंधा किया था। दस लाख मिलने की आशा थी, पांच ही लाख मिले। दस लाख मिलने का पक्का ही था, आशा ही नहीं थी। मिलने ही चाहिए थे, और नहीं मिले। पांच ही लाख मिले।
अब कौन ठीक कह रहा है? दोनों ही ठीक कह रहे हैं। पांच लाख नहीं मिले तो दुख हो रहा है। पांच लाख मिले, उनका सुख भी गंवाया जा रहा है। जो नहीं मिले, उनके कारण, जो मिले हैं, उनका सुख भी नहीं भोग पा रहे हो।
जीवन को देखने का ढंग बदलो। तुम्हारी व्याख्या में कहीं भूल है। कहीं तुम्हारी दृष्टि में भूल है। जो है वह बहुत है। अहोभाग्य! जितना है उसका रस लो। तो रूखी-सूखी रोटी भी परम भोग हो जाती है। और नहीं तो परम भोग भी पड़े रहते हैं सामने, तुम उदास बैठे देखते रहते हो; भूख ही नहीं लगती। भूख लगे तो कैसे लगे? तुम्हारी कल्पनाएं आकाश छूती रहती हैं। छूती हुई आकाश को जो कल्पनाएं हैं, उनके कारण तुम बिल्कुल कीड़े-मकोड़े की तरह मालूम पड़ते हो, जमीन पर रेंगते हुए--उनकी तुलना में। यह तुलना की भ्रांति है।
सभी दुखी हैं, क्योंकि सभी वासनातुर हैं। तुम जहां हो, जैसे हो, जरा उसे तो देखो! वर्तमान के इस क्षण में कहां दुख है? या तो दुख अतीत से आता है। कल किसी ने गाली दी थी, अब तुम अभी तक दुखी हो रहे हो। न गाली रही, न गाली देने वाला रहा। गंगा में कितना पानी बह गया! अब तुम बैठे गाली लिए--कल एक आदमी गाली दे गया। अब तुम उसी की उधेड़बुन कर रहे। गाली को फिर-फिर सोच

रहे। इधर से, उधर से सजा रहे, संवार रहे। घाव में और अंगुलियां चला रहे। घाव को भरने नहीं दे रहे। फिर-फिर बैठ जाते हो कि अरे! उसने गाली दी। लेटते, करवट लेते और गाली। ऐसा क्यों हुआ? क्यों उसने गाली दी? कैसे बदला लूं? क्या करूं? क्या न करूं?
या तो दुख अतीत से आता है, या भविष्य से। कल सुख मिलेगा या नहीं मिलेगा? कैसे आयोजन करूं? कल महल में कैसे मेरा प्रवेश हो? कल कैसे साम्राज्य मेरे हो जाएं? और डर लगता है कि हो नहीं पाएंगे। क्योंकि पहले भी तो तुम ऐसे ही सोचते रहे थे। कई कल आए और गए और राजमहल तुम्हारे न हुए। तो अब भी क्या है कि कल हो जाएंगे राजमहल तुम्हारे? इतने कल आकर धोखा दे गए, यह कल भी उसी पंक्ति में जाएगा। तो घबड़ाहट लगती है। भय होता है, दुख होता है।
लेकिन कभी सोचा, इस क्षण में, जो न तो अतीत से आक्रांत है और न भविष्य
से आंदोलित, कहीं दुख है? दुख पाया है कभी इस क्षण में?
तुम कहोगेः हां, कभी-कभी होता है। सिर में दर्द हो रहा हो, फिर। या पैर में कांटा गड़ा हो, फिर।
मैं तुमसे कहना चाहूंगाः जब सिर में दर्द हो रहा हो तब भी तुम शांति
से बैठ जाओ, सिर के दर्द को स्वीकार कर लो। राजी हो जाओ। दर्द को अलग मत रखो। ऐसे दूर खड़े मत रहो कि मैं अलग, और यह रहा दर्द। दर्द है तो दर्द है। तो तुम दर्द हो। तो एक हो जाओ। डूब जाओ सिरदर्द में। स्वीकार कर लो।
और तुम चकित हो जाओगे। तुम्हारे हाथ में एक कुंजी लगेगी उस दिन। तुम पाओगेः जितना तुम राजी हो जाते, उतना दर्द कम हो जाता। सिरदर्द नाराजगी है। सिरदर्द बेचैनी है, तनाव है। जैसे तुम राजी होने लगते... सिरदर्द से भी राजी हो गए, कि ठीक, चलो, दुआओं का असर है! परमात्मा ने भेजा, कुछ मतलब होगा। ऐसे अकारण तो भेज नहीं देगा। तुमको ही भेजा, इतना ख्याल रखा। इतने सिर हैं--और दर्द तुमको भेजा! मतलब होगा। तुम पर विशेष कृपा है। दुआओं का असर है। स्वीकार कर लो, झुक जाओ।
और तुम चकित होओगेः जैसे-जैसे तुमने स्वीकार किया वैसे-वैसे दर्द कम हुआ। और अगर स्वीकृति परिपूर्ण हो जाए, सौ प्रतिशत, उसी क्षण दर्द खो जाएगा। तुम करके देखो! और उस दिन तुम पाओगे कि दुख को मिटाने की कला तुम्हारे हाथ में है।
जिंदगी राहे-गम से निकल जाएगी।
तेरी दुनिया ही यकसर बदल जाएगी।
उनके कदमों में इक बार सर तो झुका,
उनकी चश्मे-करम फिर मचल जाएगी।
दिल को मिल जाएगा तेरे अमनो-सकूं, वक्त रुक जाएगा, जां सम्हल जाएगी।
तेरे सर पर है जो आज मुश्किल खड़ी,
तू यकीं रख कि कल तक वो टल जाएगी।
चांदनी में धुली रात भी आएगी,
धूप रंजो-अलम की भी ढल जाएगी।
तेरी रग-रग में दौड़ेगी सच्ची खुशी,
झूठी ख्वाहिश इक दिन दिल की जल जाएगी।
जिंदगी राहे-गम से निकल जाएगी।
तेरी दुनिया ही यकसर बदल जाएगी।
बदल सकती है जिंदगी। जहां दुख है वहां सुख हो सकता है। दुख तुम्हारे कारण है। तुम्हारी गलत दृष्टि दुख की जन्मदात्री है। दृष्टि सृष्टि है।
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।
उनके कदमों में इक बार सर तो झुका,
स्वीकार करो! समर्पण करो! कहीं चरण खोज लो, जहां झुक सको। असली सवाल झुकना है, ख्याल रखना। चरण कुशल उपाय है। कहां झुकते हो, कुछ मतलब नहीं है। झुको कहीं। बुद्धं शरणं गच्छामि! चलेगा; कि महावीर के शरण में झुक जाओ, चलेगा; कि कृष्ण के पैर पकड़ लो, चलेगा। ये सब बहाने हैं। जिस दिन पहुंचोगे, उस दिन पाओगेः चरण सब उसी के हैं। किसी के भी चरण में झुक जाओ। चरण तो

निमित्त हैं; झुकना असली बात है। इसलिए अगर वृक्ष के सामने भी झुक गए तो भी चलेगा।
वह जिसने पीपल को देवता मान लिया है और झुक जाता है, तो भी चल जाता है।
जो जाकर गंगा में परम श्रद्धा से झुक जाता है, तो भी चल जाता है। असली सवाल न गंगा है, न पीपल का वृक्ष है, न पत्थर की मूर्ति है, न काबा है--असली बात है झुक जाना। स्वीकार कर लिया! ठीक है, जैसी प्रभु ने जीवन-यात्रा दी है, वैसी ही शुभ है।
उनके कदमों में इक बार सर तो झुका,
उनकी चश्मे-करम फिर मचल जाएगी।
तुम इधर झुके कि वहां परमात्मा की अनुकंपा बिखरी तुम पर।
उनकी चश्मे-करम फिर मचल जाएगी।
तुम्हारे झुकते ही परमात्मा अपनी अनुकंपा को नहीं रोक कर रख सकता; वह मचल जाती है। इधर तुम झुके कि उधर परमात्मा तुम पर ढला। तुम अकड़े रहे तो परमात्मा कुछ भी नहीं कर सकता; उसकी अनुकंपा आती है और लौट-लौट जाती है।
तुम उसे अंगीकार नहीं करते।
दिल को मिल जाएगा तेरे अमनो-सकूं,
वक्त रुक जाएगा, जां सम्हल जाएगी।
एक बार झुको तो!
वक्त रुक जाएगा...
समय रुक जाएगा। न फिर कोई अतीत है, न फिर कोई भविष्य है। बस वर्तमान!
बस वर्तमान! वर्तमान ही वर्तमान है!
वक्त रुक जाएगा, जां सम्हल जाएगी।
चांदनी में धुली रात भी आएगी,
धूप रंजो-अलम की भी ढल जाएगी।
जिंदगी राहे-गम से निकल जाएगी।
तेरी दुनिया ही यकसर बदल जाएगी।

आखिरी प्रश्नः मैं आपका संदेश घर-घर पहुंचाना चाहता हूं, लेकिन कोई मेरी सुनता ही नहीं है। मैं क्या करूं? तड़फता हूं और चुप हूं।

परख के, देख-भाल के फरेबे-जीस्त खाए जा
समझ के, जान-बूझ के जहां से जी लगाए जा
यहां बनी है जो भी शै, बिगड़ने को ही बनी है
ये देख के भी खूबतर हर इक शै बनाए जा
नहीं बना कोई कभी किसी का इस जहान में
ये जानते हुए भी सबको अपना तू बनाए जा बुझे-बुझे हैं दिल यहां, दिमाग हैं धुआं-धुआं तू इन स्याहियों में दीप प्रेम के जलाए जा इक और हां इक और जाम की तलब है सबको यां
जो तश्नगी को दे मिटा वो जाम तू पिलाए जा
न सोच ये कि तेरी बात पा भी जाएगा कोई
है बात काम की अगर तू गलगला मचाए जा
यही सदा उठेगी नारा बन के कायनात में
कोई सुने नहीं सुने सदा-ए-हक लगाए जा
अगर तुम्हें लगता है कि जो तुम्हें मिला है, वह सत्य है, तो फिर फिकर
मत करो।
न सोच ये कि तेरी बात पा भी जाएगा कोई
है बात काम की अगर तू गलगला मचाए जा
फिर चढ़ जाओ मकानों की मुंडेरों पर और चिल्लाओ!
यही सदा उठेगी नारा बन के कायनात में
कोई सुने नहीं सुने सदा-ए-हक लगाए जा
सत्य को कहना होगा। चुप रहने की जरूरत नहीं है। जो तड़प भीतर है, उसे प्रकट करो। सौ से कहोगे, दस सुनेंगे। दस सुनेंगे, एक गुनेगा। मगर तो भी काफी है। सौ में से एक भी बदल जाए तो भी काफी है। तुम धन्यभागी हो कि तुम

निमित्त बने एक व्यक्ति को परमात्मा से जोड़ देने के, कि तुम सेतु बने! इसकी फिकर न करो कि लोग पागल समझेंगे। उन्होंने सदा समझा है। इसकी भी फिकर न करो कि वे नहीं सुनना चाहेंगे।
वे क्यों सुनना चाहें? तुम उनकी बनी-बनाई बिगाड़ते हो। वे अपना कागज का मकान, पत्तों का मकान बनाए बैठे हैं और आप आ गए--कि यह कागज का, पत्तों का मकान है, यह गिर जाएगा। वे बड़े सपने देख रहे थे, तुम कहां का अपशगुन वचन बोल रहे हो कि गिर जाएगा! वे नाव चला रहे थे, सोचते थे पार उतर जाएंगे। इधर आप आ गए, कहने लगेः कागज की नाव है, डूब जाओगे! इसमें उतरना मत!
उन्होंने बड़ी आशाएं बांधी थीं, तुमने सब पानी फेर दिया। वे तुम पर नाराज भी होंगे।
लोग सपनों में जी रहे हैं। तुम हांक लगाते हो--जग जाओ! और वे मधुर सपने देख रहे हैं। उनके सपने टूटते हैं। उनकी नाराजगी स्वाभाविक है। वे सुनना भी नहीं चाहते।
तुमने देखा, कभी-कभी तुम कह कर सो जाते हो कि सुबह मुझे पांच बजे उठा देना, ट्रेन पकड़नी है। तुम्हारे कहने की वजह से ही कोई तुम्हें उठाता है और तुम नाराज होते हो। और तुम दिल ही दिल में भुनभुनाते हो कि यह दुष्ट पीछे पड़ा है। और तुम्हीं ने कहा था! लेकिन सुबह-सुबह भोर में जब अच्छे सपने चलते हों... ब्रह्ममुहूर्त में जैसे सपने चलते हैं और कभी नहीं चलते... उस वक्त यह जगाने आ गया। अरे, मानो भूल से कह दिया था कि जगाना--इसका मतलब यह थोड़े ही था कि जगाना ही। कह गए, गलती हो गई, क्षमा करो; मगर इतना कुछ मान ही लेने की जरूरत थोड़े ही थी कि जगा ही दो।
कौन नींद से जागना चाहता है? कोई भी नहीं जागना चाहता है। मगर फिर भी तुम कहो। जगाओ। लोग नाराज हों, घबड़ाना मत। लोग न सुनें, बुरा न मानना।
न सोच ये कि तेरी बात पा भी जाएगा कोई
है बात काम की अगर तू गलगला मचाए जा
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
पंद्रहवां प्रवचन

हेरी! मैं तो दरद दिवानी

हे री! मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोई।
घायल की गति घायल जाणे, की जिन लाई होई।
जौहरि की गति जौहरि जाणे, की जिन जौहर होई।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विधि होई।
गगन मंडल पे सेज पिया की, किस विधि मिलना होई।
दरद की मारी बन-बन डोलूं, बैद मिल्या नहिं कोई।
मीरा के प्रभु पीर मिटेगी, जब बैद सांवलिया होई।

बंसीवारा आज्यो म्हारो देस, थारी सांवरी सूरत बाला भेस।
आऊं-आऊं कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक।
गिणता-गिणता घस गई जी, म्हारी आंगलिया की रेख।
मैं बैरागण आदि की जी, थारि म्हारि कद को सनेस।
बिन पाणी बिन सावण सांवरा, हो गई धोए सफेद।
जोगण होकर जंगल हेरूं, तेरो नाम न पायो भेस।
तेरी सूरत के कारण मैं तो, धारया छे भगवा भेस।
मोरमुकुट पीतांबर सोहे, घूंघरवाला केस।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मिल्यां मिटेगा क्लेस।

बाला मैं बैरागण हूंगी।
जिन भेषां म्हारो साहब रीझै, सो ही भेष धरूंगी।
शील संतोष धरूं घट भीतर, समता पकड़ रहूंगी।
जाको नाम निरंजन कहिए, ताको ध्यान धरूंगी।
गुरु के ज्ञान रंग तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूंगी।
प्रेम प्रीत सूं हरिगुण गाऊं, चरणन लिपट रहूंगी।
या तन की मैं करूं कींगरी, रसना नाम कहूंगी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, साधा संग रहूंगी।

हेरी! मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोई।
घायल की गति घायल जाणे, की जिन लाई होई।
जौहरि की गति जौहरि जाणे, की जिन जौहर होई।
हेरी! मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोई।
परमात्मा को पाना, उसकी अभीप्सा करनी, उसकी आकांक्षा में जलना, इस जगत में बड़े से बड़ा दर्द है--और मीठे से मीठा भी! गहन पीड़ा है, पर बड़ी सौभाग्यपूर्ण।
संसार के लिए भी लोग रोते हैं, तब आंसुओं में सिर्फ जहर होता है। परमात्मा के लिए भी लोग रोते हैं, तब आंसुओं में अमृत बहता है। आंसू तो दोनों हालत में होते हैं, पर उनका गुण-धर्म बदल जाता है।
धन के लिए भी आदमी दौड़ता है। धन को पाने के लिए भी हजार पीड़ाएं भोगनी पड़ती हैं। लेकिन बस पीड़ा ही हाथ लगती है; धन कभी हाथ नहीं लगता। धन लग जाए तो भी हाथ नहीं लगता, पीड़ा ही हाथ लगती है। कोरी पीड़ा है। खाली पीड़ा है। पीड़ा ही पीड़ा है।
परमात्मा को पाने में भी पीड़ा झेलनी पड़ती है, लेकिन हर पीड़ा के पीछे परमात्मा छिपा है। उसके नाम पर झेली गई प्रत्येक पीड़ा मंजिल को करीब लाती है। उसके नाम पर झेली गई प्रत्येक पीड़ा अमृत की वर्षा हो जाती है।
एक तरफ से देखने में भक्त रोता है, लेकिन उसके आंसुओं को गलत मत समझ लेना। भक्त के आंसू सांसारिक के आंसू नहीं हैं। सांसारिक की तो मुस्कुराहट भी भक्त के आंसुओं का मुकाबला नहीं कर सकती। सांसारिक की मुस्कुराहट भी कहां गहरी जाती है! ऊपर-ऊपर होती है, ओंठों पर होती है;

लिपी-पुती होती है; झूठी होती है। सांसारिक की खुशी भी भक्त की पीड़ा को नहीं छू पाती। भक्त की पीड़ा सारे संसार की खुशियों से श्रेष्ठ है। यह दर्द बड़ा अनूठा है!
मीरा कहती हैः हे री! मैं तो दरद दिवानी...
यह दरद दीवाना करने वाला है, मस्ती से भरने वाला है। इस दर्द में बड़ी शराब है। इसे जिसने पी लिया, उसे इस संसार में फिर कुछ और पीने जैसा नहीं लगता। परमात्मा के विरह की पीड़ा जिसने पी ली, अब सिवाय परमात्मा के और कुछ इसके ऊपर पीने को बच नहीं रह जाता। परमात्मा के लिए झेली गई पीड़ा बस परमात्मा से एक कदम नीचे है। फिर उसके ऊपर परमात्मा को ही पाने का सुख है; और कोई सुख नहीं। इसलिए भक्त को कुछ भी देकर तृप्त नहीं किया जा सकता। सब छोटा पड़ता है। सब ओछा पड़ता है।
तुम्हारा संसार जो भी दे सकता है, वह खिलौनों से ज्यादा नहीं है। और भक्त को जीवंत परमात्मा की झलक मिलनी शुरू हो गई; अब खिलौनों में नहीं उलझाया जा सकता। और दर्द पागल करने वाला है; क्योंकि जैसे-जैसे दर्द बढ़ता है वैसे-वैसे परमात्मा की उपस्थिति भी बढ़ती है। इधर हृदय में दर्द की बढ़ती गहराई परमात्मा के करीब आ जाने का लक्षण है। जब भक्त का हृदय लपटों से जलता है तो उसे पक्का भरोसा आ जाता है कि परमात्मा दूर नहीं--बहुत करीब है; यहीं कहीं है, पास-पड़ोस में है, मुझे घेरे खड़ा है।
दर्द से ही भक्त जानता है कि परमात्मा कितनी दूर है। दर्द कम, तो परमात्मा बहुत दूर; दर्द ज्यादा, तो बहुत पास। और दर्द की आत्यंतिक स्थिति भी आती है, जब भक्त सिर्फ पीड़ा ही पीड़ा रह जाता है। उस सौ डिग्री पर, जहां भक्त सिर्फ पीड़ा ही पीड़ा रह जाता है, उसी सौ डिग्री पर परमात्मा से मिलन है।
तो दर्द से ऐसा मत समझना कि मीरा रो रही है। रोती भी है और हंस भी रही है।
हे री! मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोई।
इसलिए कहती है कि मेरे दर्द को कोई पहचानता नहीं। लोग आते होंगे, समझाते होंगेः मत रोओ। खेल-खिलौने सुझाते होंगे। इस संसार के बड़े प्रलोभन हैं; उन प्रलोभनों को दिखाते होंगे। तो मीरा कहती हैः मेरे दर्द को कोई समझता नहीं।
नानक प्रभु के स्मरण को करते-करते बीमार पड़ गए। वह बीमारी शारीरिक नहीं थी। वैद्य बुलाए गए। तो वैद्य नानक की नाड़ी हाथ में लेकर जांच कर रहा है। और नानक हंसते हैं और वे कहते हैंः यह ऐसी बीमारी नहीं जो नब्ज को पकड़ने से पहचानी जा सके। और यह ऐसी भी बीमारी नहीं कि तुम्हारी दवा कुछ काम आ सके। यह परम बीमारी है। यह परमात्मा के मिलने से ही पूरी हो सकेगी। तुम व्यर्थ कष्ट न करो। तुम्हारे पास वैसी औषधि नहीं है, जिस औषधि से यह बीमारी मिट जाए।
स्वभावतः, मीरा को रोते देख कर प्रियजन, परिवार के लोग, शुभेच्छु समझाते होंगे, बुझाते होंगे, कि मीरा पागल न हो। अनेक-अनेक सांत्वना देते होंगे।
इसलिए मीरा कहती हैः मेरो दरद न जाणे कोई।
लोग गलत समझ रहे हैं, मीरा कहती है। लोग समझ ही नहीं पा रहे हैं। ये आंसू नहीं हैं। ये सिर्फ आंसू नहीं हैं। ये आंसू आनंद के आंसू हैं। मैं सौभाग्यशाली हूं, इसलिए रो रही हूं। परमात्मा करीब आ रहा है, इसलिए रो रही हूं। यह जो तीर मेरे प्राणों में चुभ रहा है, यह उसकी मौजूदगी का तीर है। मुझसे मेरा दर्द मत छीनो। मुझे सांत्वना मत दो। मैं सांत्वना की तलाश नहीं कर रही हूं। यह पीड़ा मेरी किसी औषधि की तलाश नहीं है। मैं तो परम औषधि से ही तृप्त हो सकूंगी। ये आंसू तो उससे मिलन हो जाए, तभी विदा होंगे। इन आंसुओं से उसकी प्रार्थना कर रही हूं। इन आंसुओं से उसकी मनुहार कर रही हूं। इन आंसुओं से उस रूठे को मना रही हूं। तुम मेरे दर्द को नहीं समझ पाते हो।
... मेरो दरद न जाणे कोई।
मीरा कहती हैः और ठीक भी है। तुम नहीं समझ पाते, मैं समझती हूं कि क्यों नहीं समझ पाते।

घायल की गति घायल जाणे...
ऐसी पीड़ा तुमने जानी नहीं। यह तुम्हारा अनुभव नहीं है। तो तुम कैसे समझ पाओगे? तुम मुझे नहीं समझ पाते, लेकिन मैं तुम्हारी नासमझी को समझ पाती हूं।
स्वभावतः, हम उतना ही समझ पाते हैं जितना हमारा अनुभव है। अनुभव से ज्यादा हमारी समझ न होती है, न हो सकती है। तुम गीता पढ़ो, कुरान पढ़ो, बाइबिल पढ़ो, तुम उतना ही समझ पाओगे जितना तुम समझ सकते हो। तुम सागर के पास भी चले जाओ तो उतना ही ला पाओगे जितना बड़ा तुम्हारा पात्र है। सागर कितना ही बड़ा हो, तुम्हारे पास पात्र ही बहुत छोटा है, तो उतना ही भर कर ले आओगे। तुम वही खोज लोगे जिसका तुम्हें अतीत में अनुभव हुआ है। तुम उसी को फिर-फिर सम्हालने लगोगे जिसकी तुम्हें स्मृति है। लेकिन जिसकी स्मृति नहीं, अनुभव नहीं, वह तुम्हारे पास भी पड़ा हो, तो भी तुम चूक जाओगे।
इसी तरह तो हम परमात्मा से चूक रहे हैं। परमात्मा दूर नहीं है। दूर कैसे हो सकता है? तुम्हारी श्वास-श्वास में वही है। तुम्हारी धड़कन-धड़कन में वही है। वही धड़कता है। और कौन धड़केगा? क्योंकि वही जीवन है। वही जीवन का आधार है। सब तरफ से उसने ही तुम्हें घेरा है। बाहर भी और भीतर भी! फिर भी तुम पूछते होः परमात्मा कहां है? तुम्हारा पूछना सिर्फ इतना ही बताता है कि तुम्हें कुछ भी बोध नहीं है। तुम्हें कुछ भी अनुभव नहीं हुआ है जीवन का। जीवन का अनुभव होता, तुम न पूछते कि परमात्मा कहां है? उसी अनुभव में परमात्मा भी पहचान में आ जाता है।
न तुमने प्रेम जाना, न तुमने जीवन जाना। तुमने कुछ जाना ही नहीं है। तुम्हारे भीतर कोई होश नहीं है। तुम्हारे अनुभव की संपदा बड़ी दरिद्र है। संपदा कहने जैसी नहीं।
तुमने जाना क्या है? कुछ धन कमाया होगा। कुछ पद कमाया होगा। कुछ प्रतिष्ठा बनाई होगी। यही जाना है। इन जानकारियों से परमात्मा को जानने का कोई भी संबंध नहीं है। यह तो ऐसे ही है जैसे लुहार के हाथ में सोना दे दो। जिसने लोहा ही लोहा जाना हो, वह सोने को नहीं पहचान सकेगा। जैसे छोटे बच्चे के हाथ में हीरा दे दो, वह अपने कंकड़-पत्थरों की ढेरी में उसे भी रख देगा।
हम उसे ही पहचान सकते हैं, जिससे हमारी थोड़ी-थोड़ी पहचान हो गई है। फिर पहचान बढ़ती जाती है। इसलिए इस जगत में सदगुरु समझ में नहीं पड़ते, समझ में नहीं आते। उनको समझने का प्राथमिक आधार भी हमारे भीतर नहीं है। बारहखड़ी भी हमें मालूम नहीं है। अ ब स का भी हमें पता नहीं है। हम सुन लेते हैं। समझो। जब मैं परमात्मा शब्द का उपयोग करता हूं तब तुम्हारे कान में आवाज तो पड़ती है निश्चित और शब्द भी सुनाई पड़ता है। और शब्द से तुम परिचित भी हो। भाषा में शब्द का क्या अर्थ है, वह भी तुम्हें मालूम है। लेकिन जीवंत कोई अनुभव तुम्हारे पास नहीं। तो परमात्मा शब्द गूंजता है और खाली का खाली निकल जाता है। तुम्हारे भीतर कोई तरंग नहीं होती। तुम्हारे भीतर कोई तार नहीं छिड़ता। कोई मस्ती नहीं छा जाती। तुम डोलने नहीं लगते। लेकिन कोई कहे धन, तो तुम्हें समझ में आता है।
एक रास्ते पर दो व्यक्ति चले जा रहे थे। भीड़ थी, बाजार था, बड़ा शोरगुल था, जैसा बाजार में होता है। दुकानें चल रही थीं, ग्राहकी हो रही थी, ग्राहक मोल-तोल कर रहे थे। मेला भरा था। और तभी दूर पहाड़ पर बने हुए मंदिर की घंटियां बजने लगीं। एक उनमें से ठिठक कर खड़ा हो गया सिर झुका कर। दूसरे ने पूछाः क्या कर रहे हो?
उसने कहाः तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता? मंदिर की घंटियां बज रही हैं! कितनी प्यारी घंटियां!
उस दूसरे आदमी ने कहाः हद्द हो गई! इस बाजार के शोरगुल में कहां मंदिर
की घंटियां तुम्हें सुनाई पड़ीं? कैसे तुम्हें सुनाई पड़ीं? यहां तो कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा है। मुझे तो कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा है। तुमने सुनीं मंदिर की घंटियां बजती हुई इस भरे बाजार में, यह असंभव मालूम होता है।
उस पहले व्यक्ति ने अपने खीसे से एक रुपया निकाला और जोर से रास्ते पर गिरा दिया। उसकी खननखन की आवाज, और कोई बीस आदमी एकदम दौड़ पड़े और उन्होंने कहाः किसी का रुपया गिर गया! उस पहले आदमी ने कहाः देखा! इस भरे बाजार में,

इस भीड़ में रुपये की आवाज बीस आदमियों को एकदम सुनाई पड़ गई! मंदिर की घंटियां सुनाई नहीं पड़ रही हैं।
तुम्हें वही सुनाई पड़ता है जो तुम्हें समझ में आता है। ये जो लोग इकट्ठे हुए हैं, रुपये की आवाज के अतिरिक्त इनके जीवन में दूसरा कोई संगीत नहीं है। तो भरी बाजार, आवाज, शोरगुल; लेकिन एक छोटे से रुपये के गिरने की आवाज इन्हें तत्क्षण सुनाई पड़ गई।
तुमने देखा, रात मां सोती है बच्चे को लेकर। तूफान उठे, आंधी आए, बादल गरजें, बिजली चमके, सोई रहती है, नींद नहीं टूटती। बच्चा कुनमुनाए और उसकी नींद टूट जाती है। बच्चा जरा कुनमुनाए और वह थपकी देने लगती है या लोरी गाने लगती है या बच्चे को हृदय से लगा लेती है। आकाश में चमकती हुई बिजलियां, बादलों की गड़गड़ाहट नहीं उसे उठा पाई, लेकिन बच्चे की कुनमुनाहट ने उठा दिया। क्या हुआ? मां के पास बच्चे की कुनमुनाहट को समझने का हृदय है; वह उसका अनुभव है। वह उसके लिए तत्पर है। वह उसके लिए आतुर है। तुम्हें वही समझ में आता है जिसके लिए तुम तत्पर हो, आतुर हो, जिसकी तुम्हारे भीतर अभीप्सा है। तुम पक्का मानो, तुम्हें रास्ते पर अगर परमात्मा मिल जाए, तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा। क्योंकि तुम्हें वही दिखाई पड़ सकता है, जिसे तुम खोजने चले हो। हम जो खोजते हैं, वही हमें मिलता है। जो हम खोजते ही नहीं, वह मिल भी जाए, तो मिल कर भी नहीं मिलता है।
तुम सभी एक ही दुनिया में रह रहे हो। लेकिन यह कहना ठीक नहीं है कि तुम
एक ही दुनिया में रह रहे हो। सभी अपनी-अपनी दुनिया में रह रहे हैं, क्योंकि सभी के अनुभव अलग हैं।
इसी संसार में, इसी बाजार में मीरा भी गुजरती है। लेकिन उसे कृष्ण की बांसुरी सुनाई पड़ती रहती है। वह बांसुरी बंद ही नहीं होती। तुम भी गुजरते हो। तुमसे मीरा कहे कि मुझे कृष्ण की बांसुरी सुनाई पड़ती है, तुम हंसोगे। कहोगेः पागल हो गई है, मस्तिष्क खराब हो गया है। यहां कहां कृष्ण! कहां की बांसुरी! कैसी बातें कर रही है!
मीरा की बात तुम्हें बेबूझ मालूम पड़ेगी। मीरा की बात बेबूझ लगी होगी लोगों को, इसलिए कहाः
मेरो दरद न जाणे कोई।
घायल की गति घायल जाणे...
जिसके हृदय में तीर लगा हो वही समझेगा। जिसने चोट खाई हो वही पहचानेगा। जिसे थोड़ा सा अनुभव हुआ हो, वह और बड़े अनुभव को समझने के लिए तैयार हो जाता है।
... की जिन लाई होई।
या तो कोई घायल हो गया हो, या जिसने अपने ही हाथ से घाव पैदा कर लिया हो। या तो कोई आकस्मिक रूप से घायल हो गया हो, या फिर किसी ने संकल्पपूर्वक अपने भीतर घाव कर लिया हो। वही जान पाएगा। परमात्मा की प्यास, परमात्मा की प्रार्थना--एक घाव है। इसलिए तो थोड़े से लोग हिम्मत कर पाते हैं। इस पीड़ा को झेलने की तैयारी किसकी है? तुम तो अगर कभी परमात्मा का नाम भी लेते हो तो इसलिए कि हे प्रभु, इस संसार की पीड़ा से छुटकारा दिलाओ।
तुमने कभी प्रार्थना की कि हे प्रभु, उस संसार की पीड़ा मेरे भीतर पैदा करो? तुमने कभी प्रार्थना की है कि मेरे हृदय को छेद दो, कि मैं तड़पूं कि जैसे मछली तड़फती है पानी के बाहर? ऐसा कुछ करो कि तुम्हारे लिए तड़पूं जैसे मछली तड़फती है पानी के बाहर?
नहीं, तुमने ऐसी प्रार्थना नहीं की है। की होती तो सुन ली गई होती। तुमने प्रार्थना भी अगर की है तो धन के लिए की है--कि दुकान ठीक नहीं चलती, हे प्रभु, ठीक से चलाओ; कि नौकरी नहीं लगती, नौकरी लगाओ; कि पत्नी बीमार है, इलाज करो; कुछ चमत्कार करो। तुमने प्रार्थना भी की है तो संसार के लिए की है। और संसार के लिए की गई प्रार्थना परमात्मा तक नहीं पहुंचती--नहीं पहुंच सकती है!
इसलिए तुम्हारी प्रार्थनाएं व्यर्थ चली जाती हैं। उन पर पता ही गलत होता है। पता संसार का होता है और भेजते परमात्मा को हो। वे नहीं पहुंचतीं। परमात्मा से तो प्रार्थना यही की जा सकती है कि संसार देखा बहुत! ये पीड़ाएं बहुत देख लीं। इन पीड़ाओं से न कोई निखार आया, न जीवन में

कोई क्रांति हुई, न कोई ज्योति पैदा हुई। अब तेरी पीड़ा को जानने का मन है। अब तेरी प्यास पकड़े। अब तू सब तरफ से घेर ले! झकझोर डाल! उखाड़ दे जड़ों को! मिटा दे मुझे! ऐसा घाव कर कि फिर कभी न भरे! और ऐसी पीड़ा दे कि जब तक तुझे न पा लूं तब तक चुके नहीं! ऐसी तुमने प्रार्थना की? ऐसी प्रार्थना तो पागलपन की लगेगी; कि संसार का दुख ही तो झेलना कुछ कम है, अब और परमात्मा का दुख झेलें!
तो फिर तुम मीरा को न समझ पाओगे। या तो तुम घायल हो गए हो, या तुमने घावों के लिए खुद आरजू-मिन्नत की है और तुमने अपने घाव निमंत्रित किए हैं और तुम अपने हृदय के घावों को ऐसे सम्हाल रहे हो जैसे फूल हों--तो तुम समझ पाओगे। तो तुम समझ पाओगे कि यह किस तरह की दीवानगी है; यह किस तरह का पागलपन है। यह मीरा को क्या हुआ है? और जो मीरा को हुआ है वह तुम्हें समझ में आ जाए, तो तुम्हारे जीवन की सबसे बड़ी घटना घटी।
इस जगत में जब तक परमात्मा न घटे तब तक कुछ भी नहीं घटा। तब तक सब घटता रहे और फिर भी याद रखना, कुछ भी नहीं घटा। तुम रेत के घर बनाते रहे और गिराते रहे। तुम कागज की नावें तैराते रहे और डुबाते रहे। तुम मन ही मन में मनसूबे बांधते रहे। वे मनसूबे कभी पूरे नहीं होते। स्वप्नवत हैं।
पानी पर खींची गई लकीरों जैसे हैं; खिंच भी नहीं पाती लकीरें और मिट जाती हैं।
हे री! मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोई।
घायल की गति घायल जाणे, की जिन लाई होई।
जौहरि की गति जौहरि जाणे, की जिन जौहर होई।
जौहरी पहचानता है हीरे को। हीरे की परख चाहिए; नहीं तो कई बार कोहिनूर
भी पड़ा हो तुम्हारे रास्ते में, तो तुम कंकड़-पत्थर समझोगे। कोई आंख चाहिए जो पहचान लेती हो; जो भीतर पत्थर के झांक लेती हो; भीतर छिपी हुई आभा को पकड़ लेती हो। तो या तो तुम जौहरी हो, तो समझ पाओगे; और या तुम स्वयं हीरे हो, तो पहचान पाओगे। या तो जौहरी या जौहर, दो में से कुछ होना चाहिए। हीरा भी हीरे को पहचान लेगा।
बुद्ध महावीर को पहचान लेंगे। महावीर कृष्ण को पहचान लेंगे। और जिसने महावीर को पहचाना है, वह भी कृष्ण को पहचान लेगा। इसको मैं कसौटी मानता हूं। अगर तुमने महावीर को पहचाना और कृष्ण को नहीं पहचान पाते, तो तुम्हारी महावीर की पहचान झूठी है; तुमने महावीर को नहीं पहचाना।
इसे ऐसा समझोः क्या तुम यह कहोगे कि मैं एक हीरा तो पहचानता हूं, मगर
और कोई हीरा नहीं पहचान में आता? तो यह पहचान कच्ची है। तुमने मान लिया है हीरे को हीरा, पहचाना नहीं है। अगर तुम एक हीरा पहचान गए, तो सारे संसार के हीरे पहचान गए। अब क्या अड़चन रही?
बुद्ध ने कहा हैः सागर का पानी जिसने एक बार पी लिया, वह सब सागरों के पानी को पहचान गया। वह जो खारा स्वाद है, उसे आ गया। तुमने हिंद महासागर का पानी पीया, कि प्रशांत महासागर का, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुमने सागर को चख लिया, कहीं से चखा, किसी घाट से चखा--तुम्हें सब सागर पहचान में आ गए। इसलिए तो मैं कहता हूं कि लोग झूठे हैं। कोई कहता हैः मैं महावीर को पहचानता हूं कि महावीर तीर्थंकर हैं, परम ज्ञानी हैं, सर्वज्ञ हैं। लेकिन यही आदमी कृष्ण को नहीं पहचानता। यह कहता हैः कृष्ण में क्या रखा है? यही आदमी बुद्ध को नहीं पहचानता। कहता हैः हां, अच्छे हैं, लेकिन वह बात नहीं। यही आदमी मोहम्मद को तो बिल्कुल नहीं पहचानता। तो इसकी महावीर की पहचान गलत है। यह महावीर को मानता है, पहचानता नहीं है। और मानना पहचान नहीं है। यह जैन घर में पैदा हुआ होगा, तो मानता है। हिंदू घर में जो पैदा हुआ है, वह कृष्ण को मानता है। मानने को पहचानना मत समझ लेना। मान्यता उधार है; दूसरे से मिलती है। पहचानना अपने भीतर जगता है। पहचान अपनी है। अपनी समझ, अपनी दृष्टि, अपनी आंख पैदा होती है, तब पहचान।
और मैं तुमसे यह कह दूं कि तुमने एक ज्ञानी को पहचान लिया, तो सब ज्ञानियों को पहचान लिया; उसी पहचान में सब पहचान पूरी हो गई। इसलिए जो सच में हिंदू है, वह हिंदू नहीं रह जाएगा। और जो सच में मुसलमान है, वह मुसलमान नहीं रह जाएगा। जो सच में हिंदू है या सच में मुसलमान है या सच में

जैन है, वह सिर्फ धार्मिक रह जाएगा। और सारे जगत के धर्मगुरु उसके अपने हो जाएंगे। और सारे धर्मशास्त्र उसके अपने हो जाएंगे।
ऐसे लोग तो कभी दिखाई पड़ते हैं, मुश्किल से दिखाई पड़ते हैं। धार्मिक लोग ही कम हैं दुनिया में। ये जिनको तुम धार्मिक समझे हो, ये सिर्फ अधार्मिक हैं जिनको धार्मिक शिक्षा मिल गई है। ऊपर-ऊपर से रंग-रोगन कर दिया गया है। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान, कोई जैन, कोई बौद्ध। सब झूठ है। इनकी पहचान सच्ची नहीं है।
घायल की गति घायल जाणे...
जौहरि की गति जौहरि जाणे, की जिन जौहर होई।
या तो फिर तुम हीरे होओ। दोनों में फर्क है। महावीर को पहचान सकते हो, अगर तुम सरल-चित्त हो, शांत-चित्त हो, समतावान हो--तो महावीर को पहचान लोगे, कृष्ण को पहचान लोगे, बुद्ध को पहचान लोगे। या फिर तुम स्वयं बुद्ध होओ, तब पहचान पाओगे। मान्यता से तो पहचान होती नहीं। वह झूठ है, पाखंड है। जानने से पहचान होती है। लेकिन जानने से भी पहचान दूर-दूर की होती है, जैसे हिमालय को देखा दूर से। सैकड़ों मील दूर से हिमालय के शिखर दिखाई पड़ते हैं। उत्तुंग शिखर! शाश्वत बर्फ से लदे! सुबह सूरज की किरणों में दूर से दिखाई पड़ते हैं--चमकते हुए सोने की तरह! मगर यह पहचान अभी दूर से है; अभी आश्वस्त नहीं हो सकते। अभी तुम शिखर पर नहीं पहुंचे हो। अभी तुम शिखर नहीं हो गए हो। इसलिए तुम्हारी पहचान का नाम होगा श्रद्धा।
अब इसको समझ लेना। जिसको तुम अभी तक पहचान मानते रहे हो, वह मान्यता है। उसका नाम है विश्वास। मैं जिसको पहचान कह रहा हूं, जिसको मीरा पहचान कहती है, उसका नाम है श्रद्धा। दूर से देखा है शिखर। श्रद्धा उमगी है। प्राण आंदोलित हुए हैं। ठगे रह गए हो सौंदर्य को देख कर। लेकिन अभी शिखर पर नहीं पहुंचे हो। जिस दिन शिखर पर पहुंच जाओगे या जिस दिन शिखर ही हो जाओगे, उस दिन ज्ञान। विश्वास, श्रद्धा, ज्ञान। जौहरी में श्रद्धा होती है। लेकिन उससे भी ऊपर एक अवस्था है--ज्ञान की, अनुभव की, साक्षात्कार की। तुम भी महावीर हो जाओ। तुम भी बुद्ध हो जाओ। तुम भी मीरा हो जाओ। तब जो जानना होगा, उस जानने में कोई संदेह की रेखा न रह जाएगी। उस जानने में धुंधलापन न बचेगा। उस जानने में जरा भी धुआं न होगा। वह प्रतीति होगी। उस प्रतीति को सारी दुनिया भी विरोध में चली जाए तो भी कोई तोड़ न सकेगा। कितना ही कोई खंडन करे और कितने ही कोई तर्क जुटाए, तुम्हारी प्रतीति पर कोई आंच न आएगी।
विश्वासी झूठी श्रद्धा में जीता है; इसलिए कहीं पहुंच नहीं पाता।
जहां का तहां रहता है। जैसा का तैसा रहता है। श्रद्धालु यात्रा पर चल पड़ता है। श्रद्धा की यात्रा ही एक दिन ज्ञान की मंजिल पर पहुंचा देती है।
ज्ञानी पहुंच गया। श्रद्धालु चल पड़ा। विश्वासी सिर्फ सोच रहा है कि चलेंगे, कि चल रहे हैं, कि पहुंच रहे हैं। न तो चल रहा है, न पहुंच रहा है।
विश्वासी निद्रा में पड़ा है।
विश्वासी मत रहो। या तो जौहरी बनो या जौहर बनो। दो से कम पर राजी मत होना। अगर जौहर बनो तो बड़ी बात। अगर अभी एकदम से जौहर बनने की संभावना न हो तो कम से कम जौहरी तो बनो! तो ही तुम समझ पाओगे कि मीरा क्या कह रही है।
जौहरि की गति जौहरि जाणे, की जिन जौहर होई।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विधि होई।
लोग समझाते हैंः मीरा, विश्राम कर। कि मीरा, सांत्वना रख। कि परमात्मा मिलेगा; यहां थोड़े ही मिलता है, मरने के बाद मिलता है। अच्छे काम करो, सत्कर्म करो--मिलेगा परमात्मा मृत्यु के बाद। स्वर्ग में मिलेगा।
ऐसी बहुत सी बातें लोग मीरा को समझा रहे हैं।
और मीरा कहती हैः सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विधि होई।
इधर सूली पर हम बैठे हैं और तुम कहते हो कि सो जाओ। सूली पर सेज लगी हो
तो कोई कैसे सोए? कल सुबह तुम्हारी मौत आने वाली हो, कल सुबह तुम्हें फांसी लगने वाली हो, तुम आज रात सोओगे? कैसे सोओगे? कोई उपाय नहीं सोने का।
मीरा कहती हैः सूली ऊपर सेज हमारी...
यह संसार तो सूली है। इसमें सोना कैसे हो सकता है?
इस बात को समझो।

यह संसार सूली है, क्योंकि इस संसार में सिवाय मौत के और कुछ नहीं घटता। जन्म के बाद बस एक ही बात निश्चित हैः मौत। जन्म के बाद मृत्यु के अतिरिक्त यहां कुछ भी नहीं घटता। बाकी तो सब व्यर्थ की बातचीत है, जिसे तुम घटना कहते हो--कि राष्ट्रपति हो गए, कि खूब धन कमा लिया, कि खूब प्रसिद्धि हो गई। इस सबका कोई भी मूल्य नहीं है। तुम मरे कि सब भूल जाएगा। सब धन खो जाएगा, सब पद खो जाएगा। चार दिन के बाद तुम्हें कोई याद करने वाला भी न बचेगा। कुछ वर्षों के बाद, तुम हुए थे या नहीं हुए थे, इसमें भी कुछ भेद करना मुश्किल हो जाएगा। कुछ सदियों के बाद, तुम न हुए होते तो, हुए तो-- जरा भी अंतर न बचेगा।
जरा ख्याल करो! तुमसे पहले अरबों-अरबों लोग इस पृथ्वी पर हो चुके हैं। तुम्हारे जैसे ही सपने देखने वाले लोग। तुम्हारे जैसा ही धन इकट्ठा करने वाले लोग। तुम्हारे जैसे ही पद-लोलुप, पदाकांक्षी, धन-लोलुप, धनाकांक्षी! वे सब अब कहां हैं? उनका नाम भी तो पता नहीं। वे कहां खो गए? हो सकता है, जिस धूल पर तुम चल कर आए हो उस धूल में पड़े हों। तुम जिस जगह बैठे हो, हो सकता है, वहीं उनकी लाश गड़ी हो, वहीं उनकी हड्डियां गल गई हों। कभी वे भी अकड़ कर चलते थे जैसा अकड़ कर तुम चलते हो। कभी किसी का जरा सा धक्का लग गया था तो नाराज हो गए थे, तलवारें खिंच गई थीं। आज धूल में पड़े हैं और कोई भी उनको पैरों से रौंदे चला जा रहा है। न नाराज हो सकते हैं, न तलवारें खींच सकते हैं।
च्वांगत्सु एक मरघट से निकलता था। सांझ का वक्त था, अंधेरा हो रहा था
और उसका एक खोपड़ी से पैर लग गया, तो वह वहीं बैठ गया। उसके शिष्य भी साथ थे। वे भी चौंक कर खड़े हो गए कि वह क्या कर रहा है। उसने उस खोपड़ी को सिर से लगाया और बहुत क्षमा मांगी, कि क्षमा करिए, माफ करिए, नाराज मत होइए।
थोड़ी देर तो शिष्य बरदाश्त करते रहे। फिर उन्होंने कहाः आप पागल हो
गए हैं या क्या बात है? इस खोपड़ी से क्षमा मांगते हैं?
च्वांगत्सु ने कहाः जरा सोचो, अगर यह आदमी जिंदा होता तो आज अपनी मुसीबत हो गई होती। और यह कोई छोटा-मोटा आदमी नहीं, मैं तुमसे कह दूं, क्योंकि यह बड़े लोगों का मरघट है। यहां सिर्फ राजा-महाराजा इस मरघट में दफनाए जाते हैं। आज अपनी गरदन कट गई होती। वह तो संयोग की बात कहो कि यह मर चुका है। मगर क्षमा मांग लेना उचित है। बड़े लोग, इनका क्या भरोसा! कहीं नाराज हो जाए, भूत-प्रेत हो, नाराज हो जाए, कुछ उपद्रव खड़ा करे!
और वह तो उस खोपड़ी को अपने घर ले आया और उसको सदा अपने पास रखने लगा। लोग जब भी आते तो चौंक कर पूछते कि यह खोपड़ी किसलिए? तो वह कहताः यह खोपड़ी इस बात की याद दिलाने के लिए कि एक दिन अपनी खोपड़ी भी इसी तरह पड़ी होगी कहीं मरघट में, लोगों की लातें लगेंगी, कोई क्षमा भी नहीं मांगेगा। जिस दिन से इस खोपड़ी को ले आया हूं, उस दिन से अब कोई मुझे मार भी जाता है, तो मैं इसकी तरफ देखता हूं और मुस्कुराता हूं। मैं कहता हूंः देखो, ये अभी से ही लोग मारने लगे। अभी हम मरे भी नहीं और लोग मारने लगे। मगर यह तो होना ही है, आज नहीं कल होना है। सत्तर साल की जिंदगी है और उसके बाद अनंतकाल तक यह खोपड़ी कहां पड़ी रहेगी!
तुमसे पहले बहुत लोग हुए हैं। कहां हैं अब? तुमसे कम अकड़ वाले न थे वे। तुम्हारी जैसी ही अकड़ थी। तुम्हारी अकड़ भी ऐसे ही खो जाएगी।
यह संसार सूली है। यहां हर आदमी अपनी फांसी की प्रतीक्षा कर रहा है। यहां हम क्यू में खड़े हैं; फांसी लगती जाती है, क्यू आगे बढ़ता जाता है। जो- जो आदमी मरता है, वह तुम्हारी मृत्यु को करीब ले आता है, क्योंकि तुम करीब पहुंचने लगे। क्यू आगे सरकने लगा। जल्दी ही तुम्हारा नाम भी पुकारा जाएगा। यहां मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ घटता ही नहीं। यहां रोज मौत घटती है। यहां मौत ही एक वास्तविक घटना है। बाकी सब घटनाओं का कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि मौत सारी घटनाओं को पोंछ जाती है। आखिर में मौत की ही लकीर बचती है, बाकी सब मिट जाता है।
मीरा कहती हैः यहां सोना भी चाहूं, कैसे सो जाऊं? यहां सूली पर सेज कैसे लगे?
तो एक तो इस अर्थ को समझना कि संसार सूली है। दूसरे, इस अर्थ में भी मीरा कहती है कि "डार गयो मनमोहन फांसी।" और जब से यह परमात्मा की धुन सवार

हुई है, दोहरी फांसी हो गई है। यहां तो मौत थी ही, यहां तो जीवन कष्टपूर्ण था ही, यहां तो हजार दुख थे ही; अब एक और बड़े दुख का जन्म हुआ है। अब एक और एक नई फांसी लग गई है कि जब तक परमात्मा से मिलन न हो जाए तब तक चैन नहीं हो सकता; तब तक शांति नहीं हो सकती।
यहां भक्त और ज्ञानी के मार्ग का भेद समझना। इन सूत्रों में दो-तीन जगह भेद ख्याल में आएगा।
ज्ञानी कहता हैः तुम शांत हो जाओ तो सत्य मिल जाए।
भक्त कहता हैः सत्य मिले तो ही मैं शांत हो सकूंगा, नहीं तो शांत कैसे
हो जाऊं?
ज्ञानी कहता हैः अंधेरे को हटा दो तो रोशनी हो जाएगी।
भक्त कहता हैः रोशनी हो तो ही अंधेरा हटेगा, अन्यथा अंधेरा हटेगा कैसे?
ज्ञानी कहता हैः तुम सरल हो जाओ। तुम सब तरह की चिंताओं से मुक्त हो जाओ। तुम शांति को उपलब्ध हो जाओ।
भक्त कहता हैः कैसे? अभी तो अशांति रहेगी ही, जब तक कि परमप्रिय से मिलन न हो जाए। उससे मिलने के पहले शांति हो कैसे सकती है? शांति तो छाया की तरह होगी। वह मिला कि शांति हो जाएगी।
भक्त के मार्ग पर विरह, परमात्मा की प्यास की पीड़ा सहयोगी है। भक्त तो दुखी रहेगा, रोता रहेगा, पुकारता रहेगा, शांत नहीं हो सकता। शांत हो जाने में तो खतरा है। शांत होने में तो पुकार खो जाएगी। शांत होने में तो खोज ही बंद हो जाएगी।
तो एक तो संसार की सूली लगी है। और दूसरे, मीरा कहती हैः जब से उस प्यारे की आंख में झलक पड़ गई, जब से उस प्यारे की छवि आंख में उतर गई, एक दूसरी फांसी भी लग गई है।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विधि होई।
तो एक तो संसार के दुख पर्याप्त हैं जगाने को। मगर फिर भी किसी तरह सो लेते--सांसारिक सो ही जाता है--लेकिन एक और एक नया दुख पकड़ गया। एक नया तीर प्राणों में चुभ गया है। और यह ऐसा तीर है कि इसका कोई इलाज नहीं, कोई औषधि इसको शांत नहीं कर सकती। परम प्यारा आए तो ही कुछ हो सकता है। इसलिए सोना कहां, चैन कहां, सांत्वना कहां?
गगन मंडल पे सेज पिया की, किस विधि मिलना होई।
यहां तो चिंता ही सोने की नहीं है। चिंता एक ही है कि उस प्यारे से मिलना कैसे हो? और अड़चन बड़ी हैः हम जमीन पर हैं, और गगन-मंडल पे सेज पिया की। हम क्षुद्र में बंधे हैं और वह विराट में है। हम सीमा में हैं, वह है असीम। हम पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण के भीतर और वह सारे गगन के विस्तार में। हम बड़े क्षुद्र। कैसे उससे मिलन होगा? यह हमारी छोटी सी बूंद उस सागर को कैसे मिलेगी? कैसे खोजेगी?
गगन मंडल पे सेज पिया की...
गगन-मंडल शब्द का प्रयोग कबीर ने, दादू ने, मीरा ने एक बहुत विशेष अर्थों में किया है। इसको तो गगन कहते ही हैं, जो आकाश हमें दिखाई पड़ता है। लेकिन भक्त कहते हैंः तुम्हारे भीतर भी ऐसा ही आकाश है, इतना ही बड़ा। उसे गगन-मंडल कहते हैं। जितना बड़ा आकाश भीतर है, उतना ही बड़ा आकाश बाहर है। दोनों समतुल हैं। तुमने भीतर झांका नहीं, नहीं तो इतना बड़ा विस्तार वहां भी है। सहस्रार में जब कोई पहुंचता है तो गगन-मंडल में पहुंचता है। जब अपने सातवें चक्र में कोई थिर हो जाता है, तो भीतर के आकाश में थिर हो जाता है।
तो मीरा कहती हैः उस सातवें चक्र पर, सहस्रार पर, उस प्राण प्यारे का वास है।
तुमने देखा न, विष्णु कमल पर विराजमान! बुद्ध भी कमल पर विराजमान। कृष्ण भी कमल पर विराजमान। हमने सारे अवतारों की धारणा कमल पर की है।
क्योंकि हमारे भीतर वह जो सातवां चक्र है, वह कमल जैसा है; इसलिए उसको सहस्रार कहा है। सहस्रदल कमल! उसकी हजार पंखुड़ियां हैं। और जब भीतर का हमारा अंतिम चक्र खुलता है तो हजार पंखुड़ियों वाला कमल खुलता है। उसी में परमात्मा विराजमान है।

मीरा कहती हैः हम कीचड़ में घसिट रहे हैं। और प्रभु विराजमान है गगन में। बड़ी दूरी है।
... किस विधि मिलना होई।
तड़फते हैं प्राण। हम इस पार, तुम उस पार। नाव का कुछ पता नहीं। कैसे हम
उस पार आएं? कैसे तुम इस पार आओ? कैसे मिलना हो? और जब तक मिलना न हो तब तक कैसी सांत्वना? कैसी शांति? कैसा विश्राम?
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विधि होई।
गगन मंडल पे सेज पिया की, किस विधि मिलना होई।
दरद की मारी बन-बन डोलूं, बैद मिल्या नहिं कोई।
वैद्य मिल भी नहीं सकता। यह बीमारी ऐसी नहीं कि जिसकी चिकित्सा हो जाए। यह तो परम वैद्य मिलेगा, तो ही बीमारी जाएगी।
दरद की मारी बन-बन डोलूं...
मीरा कहती हैः घूमती हूं इस कोने से उस कोने, इस नगर से उस नगर, इस वन
से उस वन। पुकारती फिरती हूं। सब तरफ आवाज देती हूं। सब द्वार खटखटाती हूं--इस मंदिर के, उस मंदिर के। लेकिन कहीं कोई वैद्य नहीं मिलता। कहीं कोई नहीं मिलता जो इस बाण को खींच ले, घाव को भर दे।
नहीं कोई वैद्य मिल सकता। और अच्छा ही है कि वैद्य नहीं मिल सकता। उस वैद्य का उपाय ही नहीं किया है परमात्मा ने। जिसको भक्ति का घाव लगा, वह फिर भरने वाला नहीं है; वह बढ़ता ही चला जाता है। भक्त एक दिन पूरा का पूरा घाव हो जाता है, पूरा प्यास हो जाता है। उस दिन मिलन है। उसके पहले मिलन नहीं। यह कीमत चुकानी पड़ती है।
मीरा के प्रभु पीर मिटेगी, जब बैद सांवलिया होई।
यह पीड़ा तो तभी मिटेगी जब सांवलिया खुद वैद्य होकर आएगा, खुद प्रियतम वैद्य होगा। खुद परमात्मा ही जब हाथ रखेगा इस घाव पर, तभी यह भरेगा। किसी और हाथ से भर नहीं सकता। किसी और हाथ से भरे जाने की इच्छा भी नहीं है, संभावना भी नहीं है।
सिसकता हुआ मन अभी चुप हुआ है
जरा ठहरो, अभी मत रुलाओ
लगी चोट जब से, तभी से रुदन है
बहुत ही कसक है, बहुत ही जलन है
न आंसू थमे हैं, नहीं दर्द कम है
भरेगा नहीं कि यह ऐसा जखम है
गए चोट करके, पुनः लौट आए
कि कितने निठुर हो तुम्हें क्या बताएं
अभी घाव गीला है, पीड़ा बहुत है
इसे फिर न छू लो, न फिर से दुखाओ
लेकिन परमात्मा दुखाए चला जाता है। तब तक दुखाए चला जाएगा, जब तक घाव पूरा न हो जाए। घाव पकना चाहिए। पके घाव में ही भराव हो सकता है।
लगी चोट जब से, तभी से रुदन है
बहुत ही कसक है, बहुत ही जलन है
न आंसू थमे हैं, नहीं दर्द कम है
भरेगा नहीं कि यह ऐसा जखम है
गए चोट करके, पुनः लौट आए
और परमात्मा चोट पर चोट किए जाता है। हर घड़ी चोट किए जाता है।
तुम्हें भक्त की दशा का पता नहीं। फूल खिलता है और उसको चोट लगती है। चांद निकलता है और उसे चोट लगती है। पक्षी आकाश में उड़ता है और उसे चोट लगती है। कोयल कुहू-कुहू करती है और उसे चोट लगती है। और पपीहा पुकारता है पी-कहां और उसे चोट लगती है। मंदिर की घंटियां बजीं और उसे चोट लगती है। मस्जिद में नमाज पढ़ी और उसे चोट लगती है। उसे चोट लगती ही चली जाती है। उसे सब तरफ से चोट लगती है। नाजुक हो जाता है भक्त।
कि कितने निठुर हो तुम्हें क्या बताएं
गए चोट करके, पुनः लौट आए
अभी घाव गीला है, पीड़ा बहुत है
इसे फिर न छू लो, न फिर से दुखाओ

बहुत नींद तैरी झुकी पर न पलकें गई भाल पर छा परेशान अलकें
कि बेचैन करवट शिकन हर चिढ़ाती
कि घायल की पीड़ा रही है बढ़ाती
कि पल भर हुआ है अभी पीर चुप है
सपन देखता प्राण का कीर चुप है
कि आंखें रुआंसी अभी ही लगी हैं
सपन यह न टूटे, अभी मत जगाओ
लेकिन भक्त को भगवान जगाए ही चला जाता है। सपना भी नहीं देखने देता।
हर सपने को तोड़ देता है। किसी तरह सपने की चादर ओढ़ कर तुम सो जाना चाहते हो और वह आ जाता है। वह पीछा छोड़ता ही नहीं। और उचित है कि वह पीछा नहीं छोड़ता। तो ही तुम पकोगे। तो ही फल गिरेगा।
शलभ की लगन है, जला दीप आया
मचल ज्वाल चूमी, अधर को जलाया
कि बलिदान पर भी मिटी है न दूरी
अभी अर्चना है हृदय की अधूरी
गड़ी फांस मन में कि सोने न देगी
अभी पंख झुलसे, सभी तन न झुलसा
निठुर दीप तुम यह अभी मत बुझाओ
सिसकता हुआ मन अभी चुप हुआ है
जरा ठहरो, अभी मत रुलाओ
लेकिन परमात्मा फिर नहीं ठहरता। एक बार तुमने उसे पुकारा कि आता ही चला जाता है। शायद इसीलिए तो लोग डरते हैं और पुकारते भी नहीं। शायद इसीलिए तो लोग बचते हैं, किनारा काट जाते हैं। जहां चोट लगती है वहां नहीं जाते। लोग मलहम-पट्टी खोजते हैं, चोट नहीं खोजते। और जो चोट नहीं खोजता, वह परमात्मा को नहीं खोज रहा है। तुम मलहम-पट्टी खोजते हो। तुम जाते हो पंडित-पुरोहित को सुनने; क्योंकि वह मलहम-पट्टी करता है। वह तुम्हें सस्ते नुस्खे बताता है। वह कहता हैः घबड़ाओ मत, धर्मशाला बनवा दो, सब ठीक हो जाएगा; कि एक मंदिर बना दो। मंदिर ऐसे ही बहुत हैं। कि सब ठीक हो जाएगा; कि गरीबों को भोजन करा दो, कि एक अस्पताल खोल दो, सब ठीक हो जाएगा। वह तुम्हें सस्ते नुस्खे बताता है। वह तुम्हें कुछ करने को बताता है। वह तुम्हें होने का नया ढंग नहीं बताता। वह यह नहीं कहता कि घाव बन जाओ, तब सब ठीक होगा।
इसीलिए तो लोग महावीर के पास कम जाते हैं, बुद्ध के पास कम जाते हैं, मीरा के पास कम जाते हैं। दो कौड़ी के पंडित-पुरोहितों के पास ज्यादा जाते हैं। वहां सुविधा है। वे तुम्हें किसी झंझट में नहीं डालते। वहां क्रांति नहीं सुलगती। वहां तुम जाते हो, वे तुम्हें थपकारते हैं, वे लोरी सुनाते हैं। तुम लोरी सुन कर झपकी खाने लगते हो। तुम बड़े प्रसन्न हो जाते हो। तुम घर लौट आते हो कि सब ठीक हो गया। वे तुम्हारे घाव भर देते हैं।
सदगुरु वही है, जो तुम्हारे घाव को इस तरह गहन कर दे कि फिर परमात्मा
के अतिरिक्त उसे कोई न भर सके। इसलिए सदगुरु के पास तो साहसी, दुस्साहसियों का काम है। वहां तो हिम्मतवर, पागलों का काम है। वहां तो वे ही जाते हैं जो जीवन को दांव पर लगाना जानते हैं--लगाना चाहते हैं--लगाने की हिम्मत रखते हैं। वहां जुआरियों का काम है। तुम दुकानदार हो। तुम पुरोहित के पास जाते हो।

जीवन की गलियों में
हम तो चुपचाप रहे।

मिलन बहुत प्यारा है,
विरह बहुत खारा है,
जीवन की प्याली में
दोनों ही साथ रहे।
जीवन की गलियों में

हम तो चुपचाप रहे।

आंसू में थिरकन है,
आहों में कंपन है,
जीवन की लहरों पर
आशा की नाव बहे।
जीवन की गलियों में
हम तो चुपचाप रहे।

लिखना मजबूरी है,
खुद से भी दूरी है,
अब तक तो गीतों ने
मन के ही दर्द कहे।
जीवन की गलियों में
हम तो चुपचाप रहे।

भक्त कहना भी नहीं चाहता। और कभी कह उठता है, तो सिर्फ भीतर की आह के कारण। दर्द ही बोलता है। इसलिए ये गीत मीरा ने गाए, ऐसा मत समझना, अन्यथा भूल हो जाएगी। वह जो मीरा का घाव है हरा, उसने गाए हैं। अन्यथा मीरा चुप रहती। कहने को क्या था? कहना किससे था? जिससे कहना था, उससे शब्दों में कहने की कोई जरूरत नहीं। और जिनकी समझ में शब्द आते हैं, उनसे कहने का कोई सार नहीं, क्योंकि वे समझ न सकेंगे।
घायल की गति घायल जाणे...
फिर भी मीरा रो रही है। ये कहे गए हैं शब्द। ये अनायास प्रकट हुए हैं।
ये गहन पीड़ा से निकले हैं। इनको मीरा रोक नहीं सकी। जैसे घाव से खून बह गया है, ऐसे ये शब्द बहे हैं।
मिलन बहुत प्यारा है,
विरह बहुत खारा है,
और जिसने विरह के खारेपन को न सहा, उसे मिलन की मिठास भी नहीं मिलेगी। मिलन तो सभी चाहते हैं। विरह कोई भी नहीं झेलना चाहता। इसलिए मिलन नहीं हो पाता। विरह झेलना होगा। विरह की कसौटी से गुजरना होगा। वह परीक्षा देनी ही पड़ेगी।
और परीक्षा कठिन है, बहुत कठिन है! क्योंकि तोड़ती ही चली जाती है। तोड़ती ही चली जाती है। जलाती ही चली जाती है। रोज-रोज पीड़ा सघन होती चली जाती है। जैसे-जैसे परमात्मा के करीब आते हो, पीड़ा बढ़ती है। पीड़ा मिटती है जरूर, जब मिलन हो जाता है। तब बड़ा स्वाद है, बड़ी मिठास है, बड़ा माधुर्य है, बड़ी मदिरा है! लेकिन उसके पहले बड़ा खारापन है। सागर के सागर पी लेने पड़ते हैं, तब कहीं स्वाति की एक बूंद हाथ लगती है।
बंसीवारा आज्यो म्हारो देस...
वह जो भीतर का लोक है, उसको मीरा कहती है मेरे देश में आओ कभी! मेरे भीतर आओ कभी! मेरे भीतर के शून्य में आओ, बजाओ अपनी बांसुरी। भरो मुझे! मैं रिक्त हूं, मैं खाली हूं। तुम्हारे स्वर ही मुझे भर सकते हैं। और किसी सस्ती चीज से भरने की मेरी आकांक्षा भी नहीं है।
बंसीवारा आज्यो म्हारो देस, थारी सांवरी सूरत बाला भेस।
कृष्ण की सूरत हमने सांवरी रंगी है। बहुत सोच कर रंगी है। सांवरेपन में एक गहराई है जो गोरेपन में नहीं होती। गोरेपन में एक तरह का छिछलापन होता है। जैसे नदी जहां उथली होती है वहां सफेद होती है और जहां गहरी होती है वहां नीली हो जाती है। ऐसा ही सौंदर्य जहां बहुत गहरा हो जाता है, वहां नीला हो जाता है। कृष्ण में अप्रतिम सौंदर्य को स्थापित करने के लिए हमने उनकी सूरत सांवली बनाई है। उनको नाम श्याम दिया है, घनश्याम दिया है। यह सिर्फ अपूर्व सौंदर्य की अवधारणा है।
... थारी सांवरी सूरत बाला भेस।
लेकिन वह जो चेहरा दिया है कृष्ण को, वह बालक जैसा दिया है। गहरा सौंदर्य है, लेकिन बच्चे जैसी सरलता और निर्दोष भाव है। सभी संत अंततः

बच्चों जैसे हो जाते हैं। हो जाएं, तभी संत हैं। वर्तुल पूरा हो गया। बच्चे से चले थे, फिर बच्चे हो गए। बच्चे तो सभी भोले होते हैं। इसमें कुछ गौरव नहीं, इसमें कुछ गरिमा नहीं। यह स्वाभाविक है। अभी संसार नहीं जाना, अभी संसार की धूल नहीं पड़ी, दर्पण ताजा-ताजा है। लेकिन संसार को जानने के बाद जो बच्चे जैसा रह जाए, तो फिर गौरव है, तो फिर गरिमा है। संसार की भीड़ से गुजरे और अछूते। संसार की काजल-कोठरी से गुजरे और काजल जरा भी न लगा। कुंवारे के कुंवारे वापस। कबीर ने कहा हैः ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया।
तो जो परम अवस्था है, जो परम सौंदर्य है, वह सिर्फ देह का ही सौंदर्य नहीं है। अगर देह का ही होता तो सांवली सूरत से बात पूरी हो गई थी। वह आत्मा का सौंदर्य भी है। इसलिए बाला भेस! छोटे बच्चे जैसा भाव--निर्दोष, निष्कपट, निर्मल, दर्पण--जिस पर जरा भी धूल नहीं।
बंसीवारा आज्यो म्हारो देस, थारी सांवरी सूरत बाला भेस।
आऊं-आऊं कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक।
भक्त और उसके भगवान के बीच बहुत वायदे चलते हैं, वायदा-खिलाफी भी चलती है।
मीरा कहती हैः आऊं-आऊं कर गया सांवरा...
और कितनी बार तुम वायदा कर गए! और कितनी बार कहा कि आता हूं, आता हूं! भगवान कह ही रहा है प्रतिक्षण। जब तुम सुनोगे प्यास से भरे, घाव से भरे, तो तुम पाओगेः हर क्षण कहता है--आता हूं, आता हूं। उसका यह कहना तुम्हारे घाव को और गहरा करता चला जाता है। हर तरफ से संकेत और इशारे आते हैं कि अब आया, तब आया; कि अब आता ही है; यह देखो पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी! यह देखो कौन बांसुरी बजा उठा! यह देखो, जो आ रहा है यह तो वही है, मोरमुकुटधारी! यह तो वही है, पीतांबर वेश वाला!
बहुत बार झलक मिलती है। पैरों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। बहुत बार उसकी आवाज आती है। बहुत बार सपनों में उतरता है। बहुत बार पास ही उसकी सुगंध छू जाती है। नासापुट भर जाते हैं उसकी सुगंध से। बहुत बार इतने करीब होता है कि भक्त को लगता है कि हाथ बढ़ाऊं तो पकड़ लूं, और फिर-फिर दूरी हो जाती है। यह जरूरी है। इसी तरह भक्त पीड़ा में पकता है। पीड़ा निखरती है, गहन होती है, गहरी होती है। अगर परमात्मा कोई वचन भी न दे, अगर भगवान कोई वायदे भी न करे, तो भक्त थक जाएगा, निराश हो जाएगा। तो बीच-बीच में आशा की किरण आती रहती है। भक्त को निराश नहीं होने देता है। आशा की किरण भक्त को तल्लीन रखती है। मगर मिलन तो तभी होगा जब भक्त पक जाएगा, उसके पहले मिलन नहीं हो सकता।
आऊं-आऊं कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक।
जब भी आशा-लहरों के हाथों नैया सौंपी
तूफानों से मिल तट ने सपने नीलाम किए
जानी-अनजानी भूलों का कर्ज चुकाने में
सोंधी माटी जैसी सुघर उमरिया बीत चली
संबंधों के चौराहे पर किरण अकेली है सुबह-सुबह पनघट पर नवल गगरिया रीत चली किसने चाहा नहीं अमा के द्वार दिवाली हो किंतु तिमिर की गलियों में दीपक बदनाम हुए अश्रु-धरा पर गीतों के बिरवों को प्राण मिले अनबोली अभिशप्त विवशता डाल-डाल फूली
ढलते वैरागी दिन जैसी प्रीत बावरी है
मेरी ही परछाई मुझको अनायास भूली
ठिठक गए विश्वासों के पग सर्पीले पथ पर अनब्याही अल्हड़ निष्ठा कब तक निष्काम जिए तन की अंजुरी में मन पारे जैसा बिखर गया चपला की चितवन सुरधनु को बांध नहीं पाई तरुछाया को मीत मान कर जीना मुश्किल है बिना प्यार की छांव जिंदगी कभी न मुस्काई

बिना उस परम प्यारे की प्रीति की वर्षा के तृप्ति नहीं, नृत्य नहीं, गीत नहीं, गायन नहीं। कब तक भक्त अपने को समझाए आशाओं में? तो कभी-कभी उसकी आशाएं बड़ी बलवती हो जाती हैं। लगता हैः अब आया, अब आया। यह द्वार पर दस्तक पड़ी। भक्त सजग हो जाता है। उमंग से भर जाता है। प्यास गहन हो जाती है।
द्वार खोलता है--और नहीं पाता है। सन्नाटा है। कोई न गुजरा है, न कोई गुजर रहा है। घाव और गहरा हो जाता है। यह घाव को गहरे करने की प्रक्रिया है। आऊं-आऊं कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक।
गिणता-गिणता घस गई जी, म्हारी आंगलिया की रेख।
ये तुझसे किसने कहा गम से दिल तबाह नहीं
ये और बात है कि मेरे लबों पे आह नहीं
वो एक मैं कि सरापा सवाल हूं कब से
वो एक तू कि तुझे फुरसते-निगाह नहीं
ये तुझसे किसने कहा गम से दिल तबाह नहीं
कभी-कभी भक्त नाराज भी हो जाता है कि बहुत हो गई बात।
ये तुझसे किसने कहा गम से दिल तबाह नहीं
इधर मैं मरा जा रहा हूं, तड़पा जा रहा हूं।
ये तुझसे किसने कहा गम से दिल तबाह नहीं
यहां मैं तबाह हुआ जा रहा हूं, यहां सब पतझड़ है।
ये और बात है कि मेरे लबों पे आह नहीं
शिकायत नहीं करता हूं, यह और बात; लेकिन तबाह हूं, यह पक्का है।
वो एक मैं कि सरापा सवाल हूं कब से
एक मैं हूं कि प्रश्न ही प्रश्न पूछे जा रहा हूं। एक मैं हूं कि प्रार्थना ही प्रार्थना किए जा रहा हूं। एक मैं हूं कि प्यास ही प्यास दोहराए जा रहा हूं।
वो एक मैं कि सरापा सवाल हूं कब से
वो एक तू कि तुझे फुरसते-निगाह नहीं
और एक तू है कि तू मेरी तरफ देखता भी नहीं। तेरी नजर ही इस तरफ नहीं होती।
गिणता-गिणता घस गई जी, म्हारी आंगलिया की रेख।
मैं बैरागण आदि की जी, थारि म्हारि कद को सनेस।
मीरा कहती है कि जरा याद तो करो! भूल गए क्या?
मैं बैरागण आदि की जी...
मैं शुरू से ही वैरागण हूं। यह कोई आज का प्रेम नहीं। यह कुछ नया प्रेम नहीं। यह प्रीति बड़ी पुरानी है। यह सनातन प्रीति है। मैं पहले से ही तुम्हीं को खोज रही हूं।
और जिस दिन तुम परमात्मा की प्यास से भरोगे, उस दिन तुम्हें भी यह पता चलेगा कि तुम भी सदा से उसी को खोज रहे हो। कभी-कभी गलत जगहों में खोजा था, यह और बात, मगर खोजा उसी को था। कभी किसी स्त्री में खोजा था, लेकिन खोजा उसी सांवले को था। वहीं अनंत सौंदर्य चाहा था स्त्री में, इसीलिए तो तृप्ति नहीं हुई। स्त्री के पास सौंदर्य था, लेकिन अनंत सौंदर्य नहीं था। इसलिए कोई स्त्री किसी को कभी तृप्त नहीं कर पाई। स्त्री का कोई कसूर नहीं है। तुम्हारी आकांक्षा विराट की है। और तुम विराट की मांग करते हो। स्त्री सब चेष्टा करती है--रंगती है, रोगन लगाती है, चेहरा बनाती है, कपड़े पहनती है, आभूषण! सब तरफ से कोशिश करती है कि किसी तरह तुम्हारी मांग पूरी हो जाए। मगर तुम्हारी मांग क्षुद्र से पूरी होने वाली नहीं है।
कभी किसी पुरुष में खोजा। सभी स्त्रियां पुरुषों में परमात्मा को खोज रही हैं। इसलिए तो स्त्री को बड़ी पीड़ा होती है जब पति में खोट देखती है। जरा सी खोट उसे खा जाती है। जरा सा दोष देखती है तो अड़चन में पड़ जाती है। क्योंकि वह चाहती है कि उसका पति निर्दोष हो। वह कृष्ण को खोज रही है। उसे पता नहीं है। मगर अब इस बेचारे साधारण पति का क्या कसूर? इसमें खोट है। यह सीमा है इसकी। और तुम असीम की मांग कर रहे हो। उस निर्दोष सौंदर्य की खोज चल रही है। मगर यह सौंदर्य तो निर्दोष नहीं है। यह सौंदर्य तो बड़ा कपट से भरा है। यह तो सौंदर्य मन का ही है, मन से ज्यादा गहरा नहीं हो सकता।

जिस दिन परमात्मा को तुम खोजने चलोगे, उस दिन तुम्हें पहली दफा ख्याल आएगा कि अरे, मैं सदा-सदा से इसी को खोजता था। अलग-अलग जगह खोजा, अलग-अलग दिशाओं में खोजा--मगर खोजा इसी को था! इसीलिए तो धन कितना ही मिल जाए, तृप्ति नहीं होती। क्योंकि तुम परम धन खोज रहे हो। करोड़ हों तो दस करोड़ चाहिए। दस करोड़ हों तो दस अरब चाहिए। बढ़ती ही जाती है मांग। संख्या गिनते- गिनते तुम्हारी अंगुलियों की रेखाएं भी तो सब मिट गईं--रुपया गिनते-गिनते! मगर तुम चाहते क्या हो, गौर से देखो। कभी मन में तुमने सोचा--क्या चाहते हो?
मैंने सुना है, एक गुरुकुल में एक युवक उत्तीर्ण हुआ। गुरु उससे बहुत प्रसन्न था। गुरु ने कहाः तू मांग ले, तुझे क्या चाहिए? मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूं।
उस युवक ने कहाः मुझे कुछ और मांगना नहीं। जब घर से आया था तो मेरे पिता बड़े कर्जदार थे, गरीब थे। मैं तो यहां वर्षों आश्रम में रहा, पता नहीं उनकी कैसी हालत है, चुका पाए कर्ज, नहीं चुका पाए। चुका भी दिया होगा तो भी गरीब ही होंगे, भूखे होंगे। बस एक ही आकांक्षा है कि जाकर किसी तरह उनकी सेवा कर सकूं।
तो उसके गुरु ने कहाः तू एक काम कर। इस देश का जो सम्राट है, तू वहां चला जा। वह रोज सुबह एक व्यक्ति को वरदान देता है, जो भी मांगो। तो तू जल्दी से जाकर खड़े हो जाना। चार बजे रात ही पहुंच जाना, ताकि तू पहला मिलने वाला व्यक्ति हो।
तो वह खड़ा हो गया चार बजे से। पांच बजे सम्राट अपने बगीचे में घूमने निकला, तो उस युवक को खड़े देखा। पूछाः क्या चाहते हो?
जब सम्राट ने यह पूछा कि क्या चाहते हो... गुरु ने कहा था कि जो मांगेगा, वह सम्राट दे देगा... तो तुम सोच सकते हो, उसकी हालत बहुत मुश्किल हो गई। सोचा था कि पांच सौ रुपये मांग लूं। उस पुराने जमाने की बात। पांच सौ रुपये तो जिंदगी भर के लिए बहुत हो जाते। मगर जब सम्राट ने कहा--मांग ले जो तुझे मांगना है! तो उसने सोचा कि मैं पागल हूं अगर पांच सौ मांगूं। पांच हजार क्यों न मांगूं? पांच लाख क्यों न मांगूं? पांच करोड़ क्यों न मांगूं? बात बढ़ती चली गई।
सम्राट ने कहाः मालूम होता है तू तय करके नहीं आया। तू विचार कर ले। मैं जब तक बगीचे का चक्कर लगा लूं।
जब तक सम्राट ने बगीचे का चक्कर लगाया तब तक तो वह युवक बिल्कुल पागल हालत में आ गया। संख्या बढ़ती ही चली जाती। जब देने को ही राजी है कोई, तो फिर कम क्यों मांगना? जितनी उसे संख्या आती थी, वहां पहुंच गया, आखिरी संख्या पर पहुंच गया। तब सिर पीट लिया उसने कि गुरु सदा कहते थे गणित पर ध्यान दे, मैंने ज्यादा ध्यान न दिया। आज काम आ जाता। यह संख्या इससे ज्यादा मुझे आती नहीं। अब अटक गया। तब तक सम्राट आया। उसने पूछाः तू बड़ा बेचैन, परेशान मालूम होता है। बात क्या है? तू मांग ही ले, तुझे जो मांगना है।
तो उसने कहा कि संकोच लगता है।
सम्राट ने कहाः संकोच का सवाल ही नहीं। तू बोल।
तो उसने कहाः ऐसा करें, मैंने बहुत सोचा, बहुत संख्या सोची, लेकिन गणित मेरा ठीक नहीं है और संख्या पर जाकर मैं अटक गया हूं। और अगर उतना मैं मांगूं तो जिंदगी भर पछताऊंगा कि और क्यों न मांग लिया। तो आप ऐसा करें कि आप, जिस दरवाजे से मैं आया हूं, बाहर निकल जाएं और जो आपके पास है, सब मुझे दे दें। तो मुझे जिंदगी में दुख नहीं होगा; कि जो था, सभी मिल गया, अब संख्या का कोई सवाल ही नहीं था। जितना है, सब दे दें।
युवक तो सोचता था कि सम्राट घबड़ा जाएगा यह सुन कर। लेकिन सम्राट ने तो आकाश की तरफ हाथ जोड़े और कहाः हे प्रभु, तो तूने भेज दिया वह आदमी जिसकी मुझे तलाश थी!
तब तो युवक थोड़ा घबड़ाया। उसने कहाः बात क्या है? आप क्या कह रहे हैं?
वह सम्राट बोलाः अब तू सोच-विचार में मत पड़ जाना। तू भीतर जा, सम्हाल! मैं थक गया हूं बहुत। और मैं वर्षों से प्रार्थना कर रहा हूं कि हे प्रभु, किसी को भेज दो जो सब मांग ले। आज सुन ली उसने!

उस युवक ने कहाः मुझे एक दफा और सोचने का मौका दें। आप एक चक्कर और बगीचे का लगा आएं।
सम्राट ने कहा कि नहीं, मुश्किल से तू आया है। वर्षों हो गए मुझे दान देते; मगर छोटे-छोटे दान लोग मांगते हैं, उससे क्या बनता-बिगड़ता है! तू हिम्मतवर आदमी है। सोचने की अब क्या जरूरत है? फिर सोचना मजे से। महल में जा, वहीं सोचना। जैसे हम सोचते रहे जिंदगी भर, तू भी सोचना। जल्दी क्या है? तू अभी जवान है।
उस युवक ने कहा कि नहीं, एक मौका तो मुझे देना ही पड़ेगा।
सम्राट चक्कर लगा कर आया और जो उसने सोचा था वही हुआ, युवक भाग गया था। द्वारपाल को कह गया थाः मेरी तरफ से क्षमा मांग लेना। क्योंकि जब सम्राट इतने सब होने से तृप्त नहीं हुआ, तो अब इस झंझट में मैं क्यों पडूं? इसकी जिंदगी खराब हुई, मेरी भी खराब करूं?
धन कितना ही हो, तुम निर्धन बने ही रहते हो। तो धन में परम धन की तलाश
चल रही है। परमात्मा की तलाश चल रही है। आदमी सभी दिशाओं में उसी को खोज रहा है।
इसलिए मीरा ठीक कहती हैः मैं बैरागण आदि की जी...
यह कोई नई प्रीति नहीं--पुरानी प्रीति है। मैं सदा से तुम्हीं को खोज रही हूं, सदा से तुम्हीं को पुकार रही हूं।
... थारि म्हारि कद को सनेस।
जरा सोचो तो कि कब का अपना पुराना प्रेम है। कद को! कितना पुराना!
बिन पाणी बिन सावण सांवरा, हो गई धोए सफेद।
इतने दिनों से पुकार रही हूं, इतनी सदियों से, इतने जन्मों से तुम्हारे लिए रो रही हूं कि आंसुओं ने ही धो-धो कर मुझे सफेद कर दिया।
बिन पाणी बिन सावण सांवरा...
न तो पानी की जरूरत पड़ी और न आकाश में मेघ घिरे, न उनकी वर्षा की जरूरत पड़ी। आंसुओं के ही कारण धुल-धुल कर सफेद हो गई हूं। जरा मेरी तरफ देखो!
... हो गई धोए सफेद।
जोगण होकर जंगल हेरूं, तेरो नाम न पायो भेस।
और भटकती हूं जंगल-जंगल, तुझे कुछ दया नहीं आती? तुझे मेरी तरफ कुछ करुणा नहीं आती?
... तेरो नाम न पायो भेस।
न तो तेरे नाम का पता चलता है, न तेरे रूप का पता चलता है। जगह-जगह ठोकर खाती हूं, पुकारती फिरती हूं। तू मिलता नहीं। हां, तेरी झलक दूर-दूर दिखाई पड़ती है। कभी उस तारे के पास, कभी उस चांद के पास। जब तक मैं वहां पहुंचती हूं, तू वहां से अंतर्ध्यान हो गया होता है।
तेरी सूरत के कारण मैं तो, धारया छे भगवा भेस।
और ये जो गैरिक वस्त्र मैंने पहन लिए हैं, ये मैंने किसी स्वर्ग या किसी मोक्ष को पाने के लिए नहीं।
यह भक्त का भेद समझ लेना। ज्ञानी चाहता है मोक्ष। ज्ञानी चाहता है स्वर्ग। ज्ञानी चाहता है सच्चिदानंद की परम अवस्था।
भक्त कहता हैः मुझे यह कुछ नहीं चाहिए। सिर्फ तू मिल जाए, तेरे चरण मिल जाएं।
तेरी सूरत के कारण मैं तो...
वह तेरी सांवली सूरत मन भा गई। वह तेरा बालक जैसा निर्दोष भाव मन भा गया।
बंसीवारा आज्यो म्हारो देस, थारी सांवली सूरत बाला भेस।
तेरी सूरत के कारण मैं तो, धारया छे भगवा भेस।
ये जो मैंने गैरिक वस्त्र पहने हैं, ये किसी मोक्ष की तलाश में नहीं-- तुझसे मिलने के लिए।
भक्त भगवान से मिलना चाहता है। उसकी और कोई आकांक्षा नहीं। इसलिए भक्त एक अर्थ में परम वासना-मुक्त होता है। मोक्ष की आकांक्षा भी अपने ही लिए की गई आकांक्षा है--मुझे मोक्ष मिले! भक्त अपने लिए कुछ भी नहीं मांगता। वह कहता हैः तुम्हारे पास तुम्हारी छाया में बैठने मिल जाए! तुम मिल जाओ! इतना पर्याप्त है।

मोरमुकुट पीतांबर सोहे, घूंघरवाला केस।
बस मेरे मन में तो एक ही बात गूंज रही है, मीरा कहती हैः तुम्हारे वे घूंघर वाले बाल! वह तुम्हारा पीतांबर वेश! वह तुम्हारी सांवली सूरत! वह तुम्हारा निर्दोष चेहरा! वे तुम्हारी निर्दोष आंखें! बस इतना पर्याप्त है। ये गैरिक वस्त्र मैंने इसीलिए पहने हैं।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मिल्यां मिटेगा क्लेस।
महावीर ने कहा हैः क्लेश मिट जाएं तो सत्य की उपलब्धि हो। मीरा कहती हैः तुम मिल जाओ तो क्लेश मिटें, दुख मिटें, चिंताएं मिटें।
दो तरह के गैरिक संन्यासी हैं दुनिया में। मेरे पास दोनों तरह के लोग हैं। एक तो वे लोग हैं, जिन्होंने गैरिक वस्त्र इसलिए पहने हैं कि संसार के प्रति उनके मन में विराग पैदा हो गया है। और एक वे लोग हैं, जिन्होंने गैरिक वस्त्र इसलिए पहने हैं कि उनके मन में परमात्मा के प्रति राग पैदा हो गया है। दोनों की फलश्रुति एक ही है अंततः। लेकिन दोनों के ढंग बड़े अलग होंगे। संसार के प्रति जो विरागी है, वह भी गैरिक वस्त्र पहनता है; लेकिन तुम उसे उदास पाओगे। तुम उसे गंभीर पाओगे। तुम उसे शांत पाओगे, किंतु गंभीर। और जिसे परमात्मा का राग पैदा हो गया है, तुम उसे नाचता हुआ पाओगे। तुम उसे गुनगुनाता हुआ पाओगे।
मीरा कहती हैः ये गैरिक वस्त्र संसार के किसी दुख से घबड़ा कर नहीं पहने हैं मैंने। तुम्हारे आनंद की झलक मिलने लगी है, इसलिए पहने हैं। ये मेरे गैरिक वस्त्र तुम्हारे प्रति राग के प्रमाण हैं--संसार के प्रति विराग के नहीं। यद्यपि जिसका परमात्मा के प्रति राग हो गया, उसका संसार के प्रति अपने आप विराग हो जाता है। मगर वह गौण बात है। वह उसका लक्ष्य नहीं है।
बाला मैं बैरागण हूंगी।
प्यारा वचन है! कृष्ण को कहती हैः बाला। मतलब होता हैः लाला।
लाला मैं बैरागण हूंगी।
लेकिन यह मेरा वैराग्य तुम्हारे राग से ज्योतिर्मय है। यह मेरा वैराग्य संसार के विपरीत नहीं, तुम्हारी अभीप्सा से भरा है।
जिन भेषां म्हारो साहब रीझै, सो ही भेष धरूंगी।
जिन भेषां म्हारो साहब रीझै...
वह परम प्यारा जिस बात से रीझे, वही भेष धरूंगी। अगर ये गैरिक वस्त्र तुम्हें प्रिय हैं तो ठीक, गैरिक वस्त्र। तुम्हें जो प्रिय है, वैसी ही हो जाऊंगी। तुम्हारे योग्य बनना है, पात्रता अर्जित करनी है, अधिकार पाना है।
जिन भेषां म्हारो साहब रीझै, सो ही भेष धरूंगी।
तुम जो कहोगे, वही करूंगी।
शील संतोष धरूं घट भीतर, समता पकड़ रहूंगी।
तुम अगर कहो कि शील चाहिए, तो शील। तुम कहो संतोष, तो संतोष। और तुम कहो समता, तो समता। भेद समझना। ज्ञानी इन सारी प्रक्रियाओं को साधता है-- शर्तबंदी की तरह। क्योंकि समता के बिना कैसे सत्य मिलेगा? और शील के बिना कैसे सत्य मिलेगा? और संतोष के बिना कैसे सत्य मिलेगा? सत्य पाना है उसे, इसलिए वह शील भी साधता, संतोष भी साधता, समता भी साधता। लेकिन साधना में पीछे बराबर देखता रहता है कि अभी तक मिला नहीं सत्य। मैंने इतना शील साधा, इतना त्याग किया, इतना व्रत किया, अभी तक मिला नहीं। उसकी साधना व्यावसायिक मालूम होती है--साधन की तरह; लेकिन नजर कहीं और लगी है।
मीरा की साधना में भेद होगा। भक्त की साधना में भेद है। भक्त कहता हैः सुना कि तुझे शील रुचता है, तो शील साधते हैं। सुना कि तुझे समता प्यारी लगती है, तो समता साधते हैं। जैसे कोई स्त्री, उसके पति को प्यारा लगता है, वैसा आभूषण पहन लेती है, वैसे कपड़े पहन लेती है, जैसा पति को प्यारा लगता है, जैसा उसके प्यारे को प्यारा लगता है।
जिन भेषां म्हारो साहब रीझै...
ऐसे ही भक्त कहता है कि जिस भेष में तुम रीझोगे मुझ पर, जिस भेष में तुम पाओगे मैं तुम्हारे योग्य हुआ, जिस भेष में तुम मुझसे मिलना चाहोगे, इशारा भर कर दो--साधने में देर नहीं लगेगी।

भक्त साधता भी है, लेकिन परम आनंद से साधता है। उसकी साधना में वही भाव होता है जो तुमने कभी स्त्री को अपने प्रिय के लिए सजते हुए देखा हो-- दर्पण के सामने अपने प्रिय के लिए सज रही है! प्यारा आता है बहुत दिन के बाद, तो वह सज रही है! परम आनंद भाव से। गंभीरता नहीं पाओगे वहां। कपड़े पहन रही, कि बिंदी लगा रही, कि बाल संवार रही। तुम गंभीरता नहीं पाओगे। गंभीरता यहां कैसी? प्यारे से मिलने को जा रही है। बड़ी आनंदित है, आह्लादित है। याद कर रही है कि प्यारे को क्या-क्या ठीक लगता है--काली बिंदी ठीक लगती है कि लाल बिंदी ठीक लगती है? प्रिय के योग्य बनना है। ऐसे ही भक्त जीता है। भक्त का चरित्र उसकाशृंगार है। ज्ञानी का चरित्रशृंगार नहीं है। इसलिए ज्ञानी को तुम उदास देखोगे। वह काम करता है--समता भी साधता है, शील भी साधता है, ध्यान भी करता है--लेकिन तुम उसको उदास देखोगे। उसके चेहरे पर तुम्हें प्रफुल्लता नहीं दिखाई पड़ेगी, क्योंकि प्रेम की वहां कोई संभावना नहीं है। और प्रेम के बिना कोई प्रफुल्लता नहीं है।
शील संतोष धरूं घट भीतर, समता पकड़ रहूंगी।
जाको नाम निरंजन कहिए, ताको ध्यान धरूंगी।
तुम अगर कहते हो कि ध्यान रखो, तो ध्यान धरूंगी। तुम अगर कहते हो कि निरंजन को याद करो, तो निरंजन को याद करूंगी।
गुरु के ज्ञान रंग तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूंगी।
अगर तुम कहते हो कि गुरु के चरण पकड़ो, तो--
गुरु के ज्ञान रंग तन कपड़ा...
तो गुरु जो ज्ञान देगा, उसी में तन को रंग लूंगी, कपड़े को रंग लूंगी।
तुम जो कहो, राजी हूं; जिधर भेजो, राजी हूं। तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा है।
... मन मुद्रा पैरूंगी।
मुद्रा पारिभाषिक शब्द है। मुद्रा का अर्थ होता हैः एक ऐसी चित्त की शून्य-दशा जहां कोई विचार नहीं रह जाता। उस शून्य दशा में ही परमात्मा की पूर्णता उतरती है। उसको महामुद्रा कहते हैं। ध्यान की परम दशा को महामुद्रा कहते हैं, जहां अहंकार बिल्कुल शून्य हो जाता है; सिर्फ एक शून्य वर्तुल रह जाता है। इसीलिए अंगूठी को भी मुद्रा कहते हैं, क्योंकि वह भी शून्य वर्तुल है।
प्रेम में अंगूठी दी जाती है--बहुत देशों में! जिससे तुम्हारा प्रेम होता है, प्रेम के प्रतीक की तरह तुम अंगूठी देते हो। वह मुद्रा है। वह प्रतीक मात्र है। अब परमात्मा को सोने की अंगूठी तो नहीं दी जा सकती, लेकिन चित्त की शून्य दशा दी जा सकती है। चित्त शून्य हो जाए--जैसे मुद्रा, जैसे अंगूठी एक वर्तुल होती है और बीच में शून्य होता है। ऐसे तुम्हारा व्यक्तित्व एक वर्तुल रह जाए और बीच में शून्य हो। उसी शून्य में परमात्मा का प्रवेश होता है। उसी मुद्रा के द्वारा तुम उसे बुला सकते हो। वही मुद्रा तुम्हारे और परमात्मा के बीच प्रणय का प्रतीक है।
तो मीरा कहती हैः
गुरु के ज्ञान रंग तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूंगी।
प्रेम प्रीत सूं हरिगुण गाऊं, चरणन लिपट रहूंगी।
एक बार तुम मिल भर जाओ, फिर छोड़ूंगी नहीं; चरणों में लिपट जाऊंगी, जैसे बेल लिपट जाती है वृक्ष पर।
प्रेम प्रीत सूं हरिगुण गाऊं, चरणन लिपट रहूंगी।
या तन की मैं करूं कींगरी...
मिल भर जाओ एक बार। बड़ी-बड़ी आशाएं हैं भक्त की, कि मिल जाओ तो ऐसा करूं, ऐसा करूं। जैसे तुम्हारे मन में उठती हैं। कभी प्यारा आता है तो तुम सोचते होः ऐसा करूं, वैसा करूं; घर को ऐसा सजाऊं; भोजन ऐसा बनाऊं। भक्त भी बड़ी आशाएं रखता है कि प्रभु मिलेगा तो क्या करेगा!
मीरा कहती हैः या तन की मैं करूं कींगरी...
इस तन की तो सारंगी बना लूंगी।
या तन की मैं करूं कींगरी, रसना नाम कहूंगी।
जीभ को हमने रसना कहा है--दो कारणों से। दूसरा कारण शायद तुम्हें पता
न हो। एक कारण तुम्हें पता है कि भोजन का रस जीभ से मिलता है, इसलिए रसना।

यह असली कारण नहीं। असली कारण दूसरा है, क्योंकि जीभ से ही परमात्मा का स्मरण होता है और उसका स्वाद मिलता है, इसलिए रसना। भोजन का भी स्वाद जीभ से मिलता है और परमात्मा का भी स्वाद जीभ से मिलता है। तो रसना।
मीरा कहती हैः या तन की मैं करूं कींगरी, रसना नाम कहूंगी।
शरीर को तो बना लूंगी सारंगी और फिर गाऊंगी गीत तेरे आनंद के, तेरे गुण गाऊंगी।
प्रेम प्रीत सूं हरिगुण गाऊं, चरणन लिपट रहूंगी।
या तन की मैं करूं कींगरी, रसना नाम कहूंगी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, साधा संग रहूंगी।
और फिर तुमसे मिलन हो जाए, तुम्हारे चरणों में मेरा गीत अर्पित हो जाए, जो संगीत मैं लिए फिर रही हूं जन्मों-जन्मों से वह प्रकट हो जाए--तो फिर क्या बचता है? फिर एक ही बात बचती है कि इसी गीत को गुनगुनाऊंगी, लोगों तक पहुंचाऊंगी।
... साधा संग रहूंगी।
जिनकी भी आकांक्षा तुम्हें पाने की है, जो भी साधु होने को तत्पर हैं
या साधु हो गए हैं, जो तुम्हें खोजने निकल पड़े हैं। बजाऊंगी सारंगी। एक बार तुम मिल जाओ, एक बार तुम्हारे चरणों में मेरा गीत और मेरा संगीत अर्पित हो जाए, तो फिर जाऊंगी दूर-दूर।
... साधा संग रहूंगी।
फिर जगाऊंगी सोयों को। फिर पुकारूंगी। एक बार मुझे भर दो अपने अमृत से, तो उसे लुटाऊंगी।
... साधा संग रहूंगी।
जहां-जहां सत्संग होता होगा, वहां-वहां नाचूंगी। जहां लोग प्रभु- प्रेम में इकट्ठे होते होंगे, वहां मस्त होकर गुनगुनाऊंगी। एक बार तुम्हें चख लूं, एक बार मेरी इस जीभ पर तुम्हारा स्वाद उतर आए, तो फिर इस जीभ में बड़ा बल होगा; तो फिर जिसको पुकारूंगी उसके जीवन में भी रस की धार बह जाएगी। फिर कुछ और बचता नहीं। फिर एक ही काम बचता है कि तुम्हारे गुण गाऊं, सोयों को जगाऊं।
और मीरा ने वही किया। जब उसके प्राण प्यारे उसे मिल गए, तो उसने वही किया। जगाती फिरी। सच उसने जैसा कहा, वैसा ही किया।
या तन की मैं करूं कींगरी...
किस दूसरे व्यक्ति ने अपने तन की ऐसी सारंगी बनाई, जैसी मीरा ने बनाई? किसी और ने नहीं। मनुष्य-जाति के इतिहास में अप्रतिम है मीरा। बुद्ध को ज्ञान हुआ तो चुप रहे, मौन रहे, शांत रहे। महावीर को ज्ञान हुआ तो निर्विकार, निर्दोष, मौन में रहे। महामुनि थे। बारह वर्ष तक चुप रहे। फिर बोले भी तो संक्षिप्त। कौन नाचा मीरा जैसा? किसने तन की कींगरी बनाई? मीरा अनूठी है उस अर्थों में! सत्य का संस्पर्श--इतने संगीत को किसी
और में कभी पैदा नहीं किया। मीरा में बाढ़ आ गई। बह चली। जो पास आया, उसको डुबाया। जिसको छुआ, उसको मस्ती से भर दिया। जो मीरा की हवा में आ गया, वह नशे में भर गया। जो उसने कहा, किया भी।
या तन की मैं करूं कींगरी, रसना नाम कहूंगी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, साधा संग रहूंगी।
एक बार तुम मिल जाओ तो मैं तुम्हें बांटने निकल जाऊं; तो गांव-गांव पुकारूं कि मीरा के तो गिरधर नागर; तो जहां-जहां साधु हों, जहां-जहां तुम्हारे प्यासे हों, वहां-वहां जाऊंगी; जिनकी अंजुरी तुम्हें पुकारती होगी, जिनकी प्रार्थना तुम्हें पुकारती होगी--उनमें तुम्हें उंडेल दूंगी।
और मीरा ने ऐसा किया। अब भी उसके वचनों में जैसा रस है, वैसा किसी और
के वचनों में नहीं। अब भी मीरा का नाम ही हृदय में रस घोल जाता है।
उसके पद सीधे-साधे हैं। वह कोई कवयित्री नहीं है। प्रेम में गाए हैं। योजना नहीं की है। बैठ-बैठ कर मात्रा, छंद नहीं बिठाए हैं। बैठ गए हैं! अपने से हो गया है। सहजस्फूर्त हैं ये वचन। फिर बहुतों ने मीरा जैसे पद लिखे हैं, हजारों पद लिखे हैं, मीरा का नाम भी जोड़ दिया उनमें। अब तो तय

करना लोगों को मुश्किल होता है कि कौन से पद मीरा के हैं, कौन से दूसरों ने लिख दिए हैं।
लेकिन पहचाने जा सकते हैं वे पद। क्योंकि दूसरों ने लिखे हैं, उनमें कविता है, उनमें व्यवस्था है। उन्हें पकड़ा जा सकता है। उनमें भाषा का सौंदर्य है, लेकिन भाव दरिद्र है। देह सुंदर है, आत्मा अनुपस्थित है। मगर जिसको आत्मा की पहचान हो, वही भेद कर पाएगा। घायल की गति घायल जाने। जौहरी की गति जौहरी जाने। नहीं तो मुश्किल है।
मीरा से बड़े कवि हुए हैं, मगर मीरा से बड़ा भक्त कहां? यह कविता बड़ी और है। अपौरुषेय है। जैसे वेद अपौरुषेय हैं। जैसे वेद उतरे हैं ऋषियों में, जैसे कुरान उतरी है मोहम्मद में--ऐसे ये वचन उतरे हैं मीरा में। और जितने प्यार से उसने गाया है, जितने प्यार से उसने गुंजाया है, अपने स्वाद को जिस रस से उसने बांटा है--किसी ने कभी भी नहीं बांटा है।
डुबकी लेना हो तो मीरा में लो! ऐसा प्यारा घाट और कहीं नहीं है।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
सोलहवां प्रवचन

संन्यास है--दृष्टि का उपचार

पहला प्रश्नः आप कहते हैं--संन्यासी को संसार छोड़ना आवश्यक नहीं। क्यों?

क्योंकि संसार परमात्मा का है। संसार को छोड़ना प्रकारांतर से परमात्मा को ही छोड़ना है। संसार का अपमान उसके स्रष्टा, उसके मालिक का अपमान है। संसार को छोड़ने की बात का एक ही अर्थ होता है कि तुम परमात्मा से भी ज्यादा समझदार हो रहे हो। उसने अभी तक संसार नहीं छोड़ा। उसने छोड़ दिया होता संसार तो संसार खो गया होता। वही तो डालता है श्वास प्राणों में। वही तो हरा है वृक्षों में। वही तो गीत गाता है पक्षियों में। संसार उसने छोड़ा नहीं है।
और ऐसा भी मत सोचना कि संसार को बना कर परमात्मा दूर हो गया है। उसके बिना संसार जी ही न सकेगा। परमात्मा प्रतिपल संसार बना रहा है। किसी इतिहास की घड़ी में संसार बनाया और फिर हट गया--ऐसा नहीं है। इस क्षण भी सृजन जारी है। नये बीजों में अंकुर आ रहे हैं। नये बच्चे पैदा हो रहे हैं। नये तारे निर्मित हो रहे हैं। प्रतिपल सृजन चल रहा है।
संसार को छोड़ोगे, परमात्मा का अपमान करोगे।
इसलिए कहता हूं संसार को मत छोड़ना, क्योंकि संसार में परमात्मा छिपा है। और परमात्मा को खोजोगे कहां? संसार के अतिरिक्त और कोई जगह कहां है? भागोगे कहां? जहां जाओगे वहां संसार है। बाजार में संसार है, हिमालय में संसार नहीं? मनुष्यों में संसार है, वृक्षों में संसार नहीं? अगर मनुष्यों में संसार है, तो वृक्षों में भी संसार है। सभी पर उसी एक मालिक के हस्ताक्षर हैं। जाओगे कहां? चांद-तारों पर जाओगे? जहां जाओगे तुम, वहीं संसार होगा। संसार में ही जा सकते हो।
और अगर ऐसी कोई जगह भी होती--कल्पना करके मान लें, तर्क के लिए मान लें--ऐसी कोई जगह भी है जहां संसार नहीं, वहां भी तुम पहुंच जाओगे, तो संसार पहुंच जाएगा, क्योंकि तुम संसार हो। तुम संसार के सारे सूत्र अपने हृदय में लिए हो। तुम जहां जाओगे वहां संसार बस जाएगा। तुम जहां जाओगे वहां प्रेम होगा, वहां घृणा होगी, वहां क्रोध होगा, वैमनस्य होगा, मित्रता होगी, शत्रुता होगी, कभी खिन्न मन, कभी प्रसन्न मन। संसार वहां बस जाएगा। तुम किसी वृक्ष के नीचे बैठे रहोगे दो-चार वर्ष तक ध्यान करते हुए और फिर कोई दूसरा संन्यासी आकर वृक्ष के नीचे बैठ जाएगा, तुम कहोगेः कहीं और खोजो! यह वृक्ष मेरा है! मैं चार वर्ष से यहां बैठा हुआ हूं। रास्ता नापो! कहीं और जाओ। यह गुफा मेरी है! और जहां मेरा आया वहां संसार आया।
और तुम वृक्ष के नीचे बड़े शांत बैठे हो और एक कौवा बीट कर जाएगा। अब कौवों को कोई फिकर तो होती नहीं कि तुम संन्यासी हो, कि संसारी हो, कि त्यागी हो, कि व्रती हो, कि मुनि हो, यति हो। कौवा बीट कर जाएगा, मन क्रोध की आग से भर जाएगा। तुम वैसे ही क्रुद्ध हो जाओगे जैसे किसी ने गाली दी। और सिंह दहाड़ मारेगा तो तुम्हारी छाती कंपेगी--वैसे ही भय से, जैसे कभी किसी दुश्मन ने छाती पर छुरी रख दी होती, तब कंपी होती। जाओगे कहां? अपने से कहां भागोगे?
परमात्मा बाहर भी मौजूद है, तुम में भी मौजूद है।
यदि तुम मुझसे पूछो तो मैं कहना चाहूंगा कि परमात्मा और संसार दो हैं,
यह भाषा ही गलत है। संसार परमात्मा है। जब तुम दो मान लेते हो तो अड़चन में पड़ जाते हो। फिर छोड़ने-पकड़ने का उपद्रव शुरू होता है। जब दो मान लिया तो द्वंद्व शुरू होता हैः क्या पकडूं? क्या छोडूं? विकल्प खड़े हो गएः संसार पकडूं कि सत्य पकडूं? एक छोड़ना पड़ेगा, क्योंकि तुमने अपने हाथ से द्वंद्व खड़ा कर लिया।

मैं तुमसे कहना चाहता हूंः एक ही है। यहां दो हैं ही नहीं। दो तुम्हारे मन की कल्पना है। और जब भी तुम दो बना लोगे, तभी द्वंद्व में पड़ोगे, तभी कलह में पड़ोगे, तभी कष्ट में, तभी नरक में उतर जाओगे।
एक में होना ही स्वर्ग में होना है। दो में हो जाना ही नरक में हो जाना है।
संसार और परमात्मा को दो तरह से मत सोचो। सृष्टि और स्रष्टा को दो में
मत बांटो। स्रष्टा और सृष्टि एक ही घटना के दो नाम हैं।
परमात्मा ने संसार बनाया, ऐसा मत कहो। परमात्मा संसार बना, ऐसा कहो।
बनाएगा भी कहां से? लाएगा कहां से? अपने में से ही निकालेगा।
इसलिए पुराने शास्त्र कहते हैंः जैसे मकड़ी जाला बुनती है, अपने ही भीतर से निकालती है, ऐसे परमात्मा ने यह संसार रचा। अपने ही भीतर से निकाला। यह उसका अंतरतम है जो बाहर फैला है।
तुम्हें भागने की जरूरत नहीं--जागने की जरूरत है। स्थान नहीं बदलना है--स्थिति बदलनी है। कहां रहो, यह सवाल नहीं है--कैसे रहो, यह सवाल है। अंधा आदमी अंधेरे में हो तो अंधेरा है और रोशनी में खड़ा हो जाए तो अंधेरा है। रोशनी में भी खड़े होकर अंधे आदमी को अंधेरा होगा। असली सवाल, अंधा आदमी अंधेरे में बैठे कि रोशनी में बैठे, यह नहीं है। असली सवाल यह है कि अंधा आदमी कैसे आंख खोले, कैसे उसकी आंख सुधरे, कैसे उसकी आंख का उपचार हो।
दृष्टि का उपचार संन्यास है। देखने की कला आनी चाहिए। दर्शन आना चाहिए। गहरे देखने की क्षमता आनी चाहिए। तो जब तुम पत्थर में गहरे देखोगे तो परमात्मा मिलेगा। ऊपर-ऊपर संसार है, भीतर-भीतर परमात्मा है।
इसलिए मैं तुमसे नहीं कहता कि छोड़ कर जाओ। छोड़ने की बात ही कायरता की, कमजोरी की, नपुंसकता की है। भगोड़ेपन की बात में कुछ बहुत सार नहीं है। जूझो! भागोगे कहां? जूझने से मिलेगा कुछ। चुनौती को स्वीकार करो।
मैं तुमसे रणछोड़दासजी बनने को नहीं कहता। यह जीवन का युद्ध है, इसको छोड़ कर कहां जाओगे? वही तो अर्जुन कर रहा था गीता में--जीवन के युद्ध से भाग रहा था। कृष्ण ने खींचा उसे।
जाओगे कहां?
जो दिया है परमात्मा ने, उसको कैसे ढंग से जीएं--सारी बात इसकी है। अक्सर ऐसा होता हैः नाच नहीं आता तो तुम आंगन को टेढ़ा कहते हो। नाच सीखो! जो नाचना जानता है, टेढ़े आंगन में भी नाच सकता है। और जो नाचना नहीं जानता, चौकोर आंगन भी होगा तो क्या करेगा?
मगर लोग सस्ती बात पकड़ लेते हैं। पत्नी छोड़ दो, बच्चे छोड़ दो--यह सस्ती बात है। तुम सोचते होः पत्नी के कारण मोह है, या कि मोह के कारण पत्नी है? जरा विचार करना, ध्यान करना। पत्नी पहले या मोह पहले? मोह न होता तो तुम पत्नी को ले ही कैसे आए होते? तुमने पत्नी बनाई क्यों होती? मोह पत्नी के पहले था। और अब तुम बेचारी पत्नी पर थोप रहे हो कि पत्नी के कारण मोह है। मोह के कारण पत्नी है। तुम पत्नी छोड़ कर भाग जाओगे, मोह कहीं और टिकेगा, कोई और निमित्त खोज लेगा।
पुरानी कथा है। एक खोजी ने विष्णु को खोजते-खोजते एक दिन पा लिया। चरण पकड़ लिए। बड़ा आह्लादित था, आनंदित था। जो चाहिए था, मिल गया था। खूब-खूब धन्यवाद दिए विष्णु को और कहा कि बस एक बात औरः मुझसे कुछ थोड़ा सा काम करा लें, कुछ सेवा करा लें। आपने इतना दिया, जीवन दिया, जीवन का परम उत्सव दिया और अब यह परम जीवन भी दिया। मुझसे कुछ थोड़ी सेवा करा लें! मुझे ऐसा न लगे कि मैं आपके लिए कुछ भी न कर पाया, आपने इतना किया! मुझे थोड़ा सा सौभाग्य दे दें! जानता हूं, आपको किसी की जरूरत नहीं, किसी बात की जरूरत नहीं। लेकिन मेरा मन रह जाएगा कि मैं भी प्रभु के लिए कुछ कर सका!
विष्णु ने कहाः कर सकोगे? करना बहुत कठिन होगा।
मगर भक्त जिद्द अड़ गया। तो कहाः ठीक है, मुझे प्यास लगी है।
क्षीरसागर में तैरते हैं विष्णु, वहां कैसी प्यास! पर इस भक्त के लिए कहा कि चल ठीक, मुझे प्यास लगी है। तू जाकर एक प्याली भर पानी ले आ।
भक्त भागा। तुम कहोगे कि क्षीरसागर था, वहीं से भर लेता। लेकिन जो पास है, वह तो किसी को दिखाई नहीं पड़ता। पास तो दिखाई ही नहीं पड़ता। पास के लिए

तो हम बिल्कुल अंधे हैं। हमें दूर की चीजें दिखाई पड़ती हैं। जितनी दूर हों, उतनी साफ दिखाई पड़ती हैं। चांद-तारे दिखाई पड़ते हैं। निकट पड़ोस नहीं दिखाई पड़ता। उसे भी नहीं दिखाई पड़ा होगा। तुम जैसा ही आदमी रहा होगा। भागा। उसने कहाः अभी लाता हूं।
चला। उतरा संसार में। एक द्वार पर जाकर दस्तक दी। एक सुंदर युवती ने द्वार खोला। उस भक्त ने कहा कि देवी, मुझे एक प्याली भर शीतल जल मिल जाए। उस युवती ने कहाः आप आए हैं, ब्राह्मण देवता! भीतर विराजें! मेरे घर को धन्य करें! ऐसे बाहर-बाहर से न चले जाएं। फिर मेरे पिता भी बाहर गए हैं। मैं घर में अकेली हूं। वे आएंगे तो बहुत नाराज होंगे कि ब्राह्मण देवता आए और तूने बाहर से भेज दिया! नहीं-नहीं, आप भीतर आएं!
एक क्षण को तो ब्राह्मण देवता डरे! युवती है, सुंदर है, अति सुंदर, ऐसी सुंदर स्त्री नहीं देखी। विष्णु भी एक क्षण को फीके मालूम पड़ने लगे। विष्णु के फीके हो जाने में देर कितनी लगती है! ऐसा दूर का सपना मालूम होने लगे। तो भक्त डरा, घबड़ाया। घबड़ाया इसीलिए कि विष्णु एक क्षण को भूलने ही लगे। आवाज दूर से दूर होने लगी। उसने कहा कि नहीं-नहीं। माथे पर पसीना आ गया।
लेकिन युवती तो मानी न। उसने हाथ ही पकड़ लिया ब्राह्मण देवता का--कि
आप आएं भीतर, ऐसे न जाने दूंगी। उसके हाथ का पकड़ना--ब्राह्मण देवता के विष्णु बिल्कुल विलीन हो गए। वह भीतर ले गई। उसने कहाः जल तो आप ले जाएंगे, लेकिन पहले स्वयं तो जलपान कर लें। तो नाश्ता करवाया, पानी पिलाया। एकांत! उस युवती का सौंदर्य! उस युवती का भाग-भाग कर ब्राह्मण देवता की सेवा करना! विष्णु धीरे-धीरे स्मृति से उतर गए। कभी-कभी बीच-बीच में याद आ जाती कि बेचारे प्यासे होंगे। फिर सोचता कि ठीक है, भगवान को क्या प्यास! वह तो मेरे लिए ही उन्होंने कह दिया है, अन्यथा उनको क्या प्यास! वे तो परम तृप्ति में हैं! तो ऐसी कोई जल्दी तो है नहीं। और दो क्षण रुक लूं।
और युवती ने जब निमंत्रण दिया कि जब आप आ ही गए हैं, मेरे पिता भी थोड़ी देर में आते ही होंगे, उनसे भी मिल कर जाएं, तो वह सहज ही राजी हो गया। और युवती सेवा करती रही। और युवती का सौंदर्य और रूप मन को मोहता रहा। सांझ हो गई, पिता तो लौटे नहीं। युवती ने कहाः आप भोजन तो कर ही लें। अब सांझ को कहां भोजन करेंगे।
भोजन बना, भोजन किया। रात हो गई। युवती ने कहाः इस रात में अब कहां जाएंगे!
सोच तो ब्राह्मण देवता भी यही रहे थे कि रात अब कहां जाएंगे! सुबह-सुबह भोर होते, ब्रह्ममुहूर्त में निकल जाना। राजी हो गए। फिर तो वर्षों बीत गए। फिर वे वहां से निकले नहीं। फिर एक पर एक काम आते गए। ब्राह्मण देवता करें भी तो क्या करें! सुबह युवती कहने लगी कि पिता तो आए नहीं हैं, गाय का दूध लगाना है, मुझसे लगता नहीं, आप लगा दें। तो गाय का दूध लगाया। फिर बैल बीमार था। तो युवती ने कहा कि ब्राह्मण देवता, इसकी भी कुछ सेवा करें, मैं कहां औषधि लेने जाऊं! और फिर ये सब भी परमात्मा के ही हैं। बात भी जंची।
ब्राह्मण देवता रुके सो रुके। फिर उनके बेटे हुए, बेटियां हुईं, बड़ा फैलाव हो गया। कोई पचास-साठ साल बीत गए। बेटों के बेटे हो गए। तब गांव में बाढ़ आई। भयंकर बाढ़ आई! ब्राह्मण देवता बूढ़े हो गए हैं। लेकर अपने बच्चों को, नाती-पोतों को किसी तरह बाढ़ से निकलने की कोशिश कर रहे हैं। सारा गांव डूबा जा रहा है। भयंकर बाढ़ है! ऐसी कभी न देखी, न सुनी। जैसे बाढ़ में से जा रहे हैं बचा कर, पत्नी बह गई। पत्नी को बचाने दौड़े तो जिस बच्चे का हाथ पकड़ा था, उसका हाथ छूट गया। उस किनारे पहुंचते-पहुंचते सारा परिवार विलीन हो गया बाढ़ में।
उस किनारे एक पत्थर की चट्टान पर ब्राह्मण देवता खड़े हैं और बाढ़ की एक बड़ी उत्तुंग लहर आती है। उत्तुंग लहर पर आते हैं विष्णु बैठे हुए और कहते हैंः मैं प्यासा ही हूं, तुम अभी तक पानी नहीं लाए? मैंने तुमसे पहले ही कहा था, तुम न कर सकोगे। क्योंकि तुम संसार छोड़ कर भागे थे। जो छोड़ कर भागता है, उसका आकर्षण शेष रहता है।

यह कथा बड़ी प्यारी है।... क्योंकि तुम संसार छोड़ कर भागे थे। संसार से जाग कर ऊपर नहीं उठे थे। संसार की तरफ आंख बंद करके भागे थे। तो छोटे से काम के लिए भी संसार में जाओगे तो उलझ जाओगे। लेने गए थे जल और सारा संसार बस गया। गए थे हरि-भजन को, ओटन लगे कपास! फिर जब कोई कपास ओटता है तो ओटता ही चला जाता है। कपास का ओटना ऐसा है, कभी पूरा नहीं होता।
मैं तुमसे भागने को नहीं कहता। मैं तुमसे जागने को कहता हूं। भागना सस्ता काम है। बच्चों को छोड़ कर भाग जाने में कोई बड़ी शूरवीरता की जरूरत नहीं है--सिर्फ थोड़ी सी अनुत्तरदायित्व की भावना चाहिए, बस। उत्तरदायित्व का बोध न हो, बस इतना काफी है बच्चों-पत्नी को छोड़ कर भाग जाने में। थोड़ी अकर्मण्यता हो, बुद्धिहीनता हो, जड़ता हो--बस इतना काफी है। कोई बहुत बड़ी बुद्धिमानी नहीं चाहिए बच्चे छोड़ कर भाग जाने में। सिर्फ थोड़ा सा कठोर हृदय चाहिए, थोड़ा पाषाण हृदय चाहिए।
बच्चे छोड़ कर भाग जाओगे, लेकिन यह पाषाण हृदय परमात्मा को पा सकेगा?
यह पाषाण हृदय तो परमात्मा को पाने में बिल्कुल असमर्थ हो जाएगा। क्योंकि परमात्मा को पाने के लिए संवेदनशीलता चाहिए, हार्दिकता चाहिए। और यह तो तुम उलटा ही कर चुके।
इसलिए नहीं कहता कि संसार से भाग जाओ। कहता हूंः यह अवसर है परमात्मा
का दिया हुआ। इसके पीछे राज है। तुम्हें जगाने के लिए यह एक व्यवस्था है। यह पाठशाला है। यहां से भागने से तुम ज्ञानी न हो जाओगे। इस पाठशाला में उत्तीर्ण होओगे तो ज्ञानी होओगे। कोई विद्यार्थी भाग जाता है विश्वविद्यालय से, इससे कुछ ज्ञानी नहीं हो जाएगा। विश्वविद्यालय में जूझना पड़ेगा, उत्तीर्ण होना होगा, संघर्ष करना होगा। विश्वविद्यालय के पार होना है; भागने से क्या होगा?
यह संसार विद्यापीठ है। इसकी परीक्षाओं से उतरो। इसकी हर परीक्षा बहुमूल्य है। और जिस-जिस परीक्षा से उतर जाओगे, उतने-उतने परमात्मा के करीब आ जाओगे। और आखिरी परीक्षा हैः पदार्थ में परमात्मा को देखने की क्षमता; रूप में अरूप को पहचानने की क्षमता; क्षुद्र में विराट का दर्शन। वह आखिरी परीक्षा है। वह जिस दिन हो जाएगी, उस दिन ही पाओगे।
इसलिए मेरे संन्यासी को मैं भागने को नहीं कहता। मेरे संन्यासी को मैं जागने को कहता हूं। जागना श्रमपूर्ण है। जागने की प्रक्रिया कठिन प्रक्रिया है--पहाड़ पर चढ़ने जैसी। भागने की प्रक्रिया सरल है--घाट उतरने जैसी है। यहीं है, जिसे तुम खोज रहे हो। तुम्हारी पत्नी में भी वही छिपा है, तुम्हारे बच्चों में भी वही छिपा है। तुम्हारे पड़ोसियों में भी वही विराजमान है। तुम में भी वही बैठा है। उसके अतिरिक्त दूसरा नहीं है, दूजा नहीं है।
मैं बनाऊं घर इसी मझधार में,
अगम जल की सोनमछरी मन बसी।
मैं बनाऊं घर इसी मझधार में,
किनारे मत तलाशो। इसी मझधार में जो घर बना ले, वही कुशल है।
मैं बनाऊं घर इसी मझधार में,
अगम जल की सोनमछरी मन बसी।

गढ़ा उसको किसी चतुर सुनार ने,
नये सांचे में ढली वह कामिनी।
रंग ऐसा भर दिया करतार ने,
दिपे सोना अंग जैसे दामिनी।
प्राण की हर पोर में उसकी चुभन, ज्यों अंगूठी अंगुली में हो कसी।

जब हटे जल का रुपहला आवरण,
दीख जाए वह सलोनी एक क्षण।
दृष्टि की आराधना साकार हो, ज्योति-पुलकित हो उठे वातावरण।
दिशाएं हैं मौन उसके ध्यान में,

चेतना के लोक की वह उर्वशी।

बनिज नौकाएं लुटाएं लाख धन, गीत मांझी के करें अनगिन गुहार।
व्यर्थ हैं ये सभी आकर्षण मुझे,
मैं न जाऊं छोड़ कर यह अगम धार।
प्रीत की बंसी इसी जल में लगे,
मूढ़ जग चाहे उड़ाए जो हंसी।

मैं बनाऊं घर इसी मझधार में,
अगम जल की सोनमछरी मन बसी।

कला भागने में नहीं; कला यहीं खोज लेने में है। कला इसी क्षण जीवन की गहराइयों में, अगम गहराइयों में उतर जाने में है।
लेकिन तुम्हारे प्रश्न का अर्थ मैं समझता हूं। सदियों से संन्यास का वही रूप रहा--भगोड़े का। उस रूप के कारण अनंत-अनंत लोग संन्यास की अपूर्व संपदा से वंचित रह गए। जो भागे, उनमें से बहुत कम ने पाया। जिन्होंने पाया, वे संसार में भी पा लेते। उन्होंने भागने से पाया, इस भ्रांति में पड़ना मत।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूंः महावीर अगर न गए होते जंगल, तो भी पा लिया होता। और मैं ऐसे ही नहीं कह रहा हूं। उसके पीछे गहरे प्रमाण हैं। महावीर युवा थे, तब उन्होंने अपनी मां को कहा कि मैं सब छोड़ कर जंगल चला जाना चाहता हूं।
मां ने कहाः मेरे रहते यह बात दुबारा उठाना मत। जब तक मैं जिंदा हूं, मैं न सह सकूंगी। और तुम गए भाग कर, तो अगर मैं मर गई, तो उसकी हत्या, हिंसा तुम्हीं को लगेगी।
महावीर ने बात न उठाई। बात ही न उठाई! फिर मां भी चल बसी। पिता को पूछा। पिता ने कहाः मेरे रहते यह न हो सकेगा। अगर मुझे कुछ हुआ, जिम्मेवारी तुम्हारी होगी।
फिर पिता भी चल बसे। महावीर चुप रहे। फिर पिता को दफना कर लौट रहे हैं। रास्ते में अपने बड़े भाई से कहा कि अब मुझे आज्ञा हो जाए। मां के लिए रुका, पिता के लिए रुका। दोनों चले गए। लेकिन बड़े भाई की आज्ञा तो लेनी ही होगी। अब मुझे आज्ञा हो जाए।
बड़े भाई तो एकदम आगबबूला हो गए। उन्होंने कहाः मां चली गई, पिता चले गए। मुझ पर ऐसा पहाड़ टूटा और तू भी छोड़ कर चला जाना चाहता है! यह नहीं होगा। यह बात ही मत उठाना।
अब यह जरा कठिन मामला था कि बड़ा भाई, कब जाएगा दुनिया से! आखिर माता- पिता की आशा रखी जा सकती थी; आज नहीं कल जाएंगे, वृद्ध थे। ये बड़े भाई तो शायद ज्यादा भी जी जाएं। और अगर जाएं भी तो महावीर भी वृद्ध हो चुके होंगे तब तक, तब तक जंगल जाने की क्षमता भी न रह जाएगी। लेकिन महावीर चुप हो गए। घर में ही ऐसे रहने लगे जैसे न हों। उपस्थित शरीर से, प्राणों से अनुपस्थित हो गए। किसी को पता ही न चले कि हैं या नहीं हैं। दो वर्ष तक यह अवस्था रही। घर के लोग भूल-भूल जाएं, क्योंकि किसी के बीच में न आएं, किसी के आड़े न आएं। महावीर की वाणी ही न सुनी गई दो साल तक। चुप्पी साधे रहें। जैसे होना न होना बराबर हो गया। आखिर घर के लोग इकट्ठे हुए। बड़े भाई ने भी कहा कि अब रोकना उचित नहीं। और रोकने से सार भी क्या है! जिसे जाना था, वह तो जा ही चुका। अब तो ऊपर की खोल पड़ी है। घर में हम कब तक रोके रखेंगे? इसका कोई मतलब भी नहीं। हम क्यों पाप के भागीदार हों? हम क्यों स्वतंत्रता में बाधा आएं?
घर के लोगों को ही चिंता हुई। उन्होंने सबने इकट्ठे होकर महावीर से प्रार्थना की कि आप तो चले ही गए हैं, अब हम रोक न सकेंगे। आपकी जैसी मर्जी।
उस दिन महावीर छोड़ कर चले गए।

मैं तुमसे कहता हूंः अगर भाई ने यह न कहा होता तो महावीर कभी छोड़ कर न
गए होते। फिर भी महावीर ज्ञान से वंचित रह जाने वाले नहीं थे। प्रक्रिया शुरू हो गई थी। घर में ही वन हो गया था।
बुद्ध जब बारह वर्ष के बाद वापस लौटे हैं--बुद्धत्व को प्राप्त करके-- रवींद्रनाथ ने एक कविता लिखी है, यशोधरा से पुछवाया है। बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न पुछवाया है! किसी शास्त्र में नहीं है। रवींद्रनाथ ने पुछवाया है ढाई हजार साल के बाद। लेकिन फिर भी मैं कहता हूं कि यह प्रश्न यशोधरा ने जरूर पूछा होगा। दो हजार साल में किसी ने किसी शास्त्र में उल्लेख नहीं किया, मैं उसकी फिकर नहीं करता। रवींद्रनाथ ने पूछा है, मैं कहता हूं, यह शास्त्रीय हो गया। यह प्रामाणिक है। और प्रश्न ऐसा है कि पूछा ही होगा यशोधरा ने। जब वापस लौटे बारह वर्ष के बाद घर, तो यशोधरा ने जो पहला प्रश्न पूछा, वह यही--कि मेरे प्रभु, एक ही प्रश्न मेरे मन में है, और वह यह कि जो जंगल जाकर मिला, वह यहां नहीं मिल सकता था?
बुद्ध, जो कभी किसी प्रश्न के उत्तर में चुप नहीं रहे, चुप खड़े रह गए, उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर देने को था भी नहीं। जिसने जाना है, वह यह भी जान लेगा कि यह जानना कहीं भी हो सकता था। इस पर किसी परिस्थिति का कोई बंधन नहीं था।
तो वे जो हजारों-लाखों लोग जंगल गए, उनमें से दो-चार ने जाना। और जिन दो-चार ने जाना, मेरा यह दावा है कि वे न भी जंगल गए होते तो जान लेते। जंगल से उस जानने का कोई संबंध नहीं है। और जो बाकी मूढ़ों की तरह जंगल चले गए, न उन्होंने वहां जाना, न वे यहां जान सकते थे। जो यहां नहीं जान सकता, वह कहीं नहीं जान सकता। और जो कहीं भी जान लेता है, वह यहां भी जान सकता है। जानने की बात है। क्या फर्क पड़ेगा कि तुम पहाड़ पर गुफा में बैठे हो, कि अपने घर में बैठे हो?
मैं जानता हूं तुम्हारे प्रश्न की आधारशिला क्या है। तुम कहते होः पहाड़ पर बैठेंगे तो अशांति नहीं होगी। यहां घर में बैठे हैं, बच्चा रोने लगा। पत्नी कहती हैः बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? कुछ काम-धाम में लगो! ऐसे बैठे-बैठे क्या होगा? बाधा पड़ती है। इसीलिए तुम सोचते हो कि वहां जाएंगे तो बाधा न पड़ेगी।
तुम गलती में हो। गुफा में बैठोगे, भूख लगेगी, पेट कहेगाः क्या कर रहे बैठे-बैठे? अब उठो! अब गांव की तरफ चलो, कुछ भीख मांग लाओ। पत्नी को तो छोड़ कर चले जाओगे, पेट को कैसे छोड़ोगे? महावीर को भी तो लौट आना पड़ता था गांव में भिक्षा मांगने। सर्दी लगेगी, शरीर कंपेगा, शरीर कहेगा कि चलो अब कहीं से कंबल जुटाओ। इसको कैसे रोकोगे? वर्षा आएगी और पानी गिरेगा और सिर छप्पर मांगेगा, तो कहीं सिर झुकाना पड़ेगा, छिपाना पड़ेगा। कभी बीमार हो जाओगे, तो दवा-दारू की भी जरूरत पड़ेगी। यह सब जारी रहेगा। इसके ढंग बदल जाएंगे, मगर बाधाएं जारी रहेंगी।
मेरी प्रक्रिया दूसरी है। मेरी प्रक्रिया यह है कि बाधाओं को बाधा मत मानो। बाधाओं को बाधा मानने में ही भूल हो जाती है। तुम बैठे हो शांति से और बच्चे आकर घर में ऊधम करने लगे, तो तुम्हें बाधा पड़ती है, क्योंकि तुम सोचते होः कोई ऊधम न करे। तुम शांत बैठे हो। तुम सोचते हो कि बड़ा भारी काम कर रहे हो शांत बैठ कर। बड़ा पवित्र काम कर रहे हो! धार्मिक कृत्य कर रहे हो! और बच्चे, ये नासमझ मूढ़ बच्चे, ये शोरगुल मचा रहे हैं। इनको पता नहीं कि मैं ध्यान कर रहा हूं।
तुम्हारी धारणा में भ्रांति है। चूंकि तुम मानते हो कि तुम ध्यान कर रहे हो, कुछ विशिष्ट काम कर रहे हो, सबको शांति रखनी चाहिए, इसी से अड़चन हो रही है। संसार अपने ढंग से चल रहा है। बच्चे ऊधम कर रहे हैं, करने दो। तुम स्वीकार कर लो इसे भी। विरोध मत करो। और तब तुम चकित हो जाओगेः स्वीकार करने में ही बच्चों का ऊधम भी जारी है, तुम्हारी शांति भी जारी है। कहीं कोई व्यवधान नहीं पड़ता। व्यवधान पड़ता है तुम्हारी धारणा से--कोई ऊधम न करे, कोई शोरगुल न मचाए।
यह विराट संसार, तुम्हारे ध्यान करने से सब चुप हो जाए! तो एक ध्यानी मार डाले सबको।

नहीं; तुम ध्यान करो। तुम्हारी ध्यान की प्रक्रिया में कहीं भूल है। तुम एकाग्रता को ध्यान समझते हो, इसलिए अड़चन हो जाती है। ध्यान का अर्थ हैः स्वीकार भाव, एकाग्रता नहीं। जो हो रहा है, स्वीकार है। सब स्वीकार है। तथाता--ध्यान का अर्थ है, जैसा है ऐसा ही स्वीकार है। मैं इससे राजी हूं।
जरा करके देखो। जब तुम इस तथाता में बैठोगे, एक बच्चा शोरगुल मचाने लगा, शोरगुल सुनाई पड़ेगा, लेकिन विघ्न बिल्कुल नहीं पड़ेगा। शोरगुल गूंजेगा, लेकिन विघ्न बिल्कुल नहीं पड़ेगा। विघ्न तो पड़ता ही तब है, जब तुम इसके विरोध में खड़े हो जाते हो। तुम कहते हो कि यह नहीं होना चाहिए और हो रहा है, तब उपद्रव शुरू होता है। तुम्हारे इस भाव से कि नहीं होना चाहिए। बच्चों के शोरगुल से नहीं।
जंगल में बैठोगे, लड़ैये हू-हुवा करने लगेंगे, फिर क्या करोगे? बच्चे
तो शायद तुम्हारी मान भी लें कि चलो, पिताजी हैं, ध्यान करते हैं, कभी-कभी क्षमा कर दो, इनको कर लेने दो ध्यान, एक आधा घंटा और कहीं खेल आओ। लेकिन जंगल के लड़ैये जब हू-हुवा करेंगे तो तुम्हारी बिल्कुल न सुनेंगे। उनको बिल्कुल मतलब नहीं कि आप कौन हो और क्या कर रहे हो। वहां क्या करोगे? जोर की हवा चलने लगेगी। वृक्षों में शोरगुल हो जाएगा। वहां क्या करोगे? आकाश में बादल गरजेंगे, बिजली चमकेगी। वह तुम्हारी तो न सुनेगी। वहां क्या करोगे?
तुम्हारी दृष्टि अगर गलत है और तुम्हारे भाव अगर गलत हैं, तो तुम जहां रहोगे वहीं उत्पात हो जाएगा। उत्पात को मिटाने का उपाय तथाता का भाव है। और मैं संन्यासी को चाहता हूं, तथाता में पक जाए। और संसार से अच्छी जगह और कहीं नहीं हो सकती, क्योंकि यहां बड़ी चुनौतियां हैं। यहां जरा तथाता चूकी कि उपद्रव हुआ। तो हर उपद्रव तुम्हें बताता रहेगा--कब तुम चूके, कब भूल हो गई, कब पैर छिटका।
मेरो मन बड़ो हरामी!
तुम्हें पता चल जाएगा कि कब मन ने धोखा दिया। संसार में सुविधा से पता
चल जाएगा। संसार में हजार परीक्षाएं हैं। तुम धोखा नहीं खा सकते यहां। हां, कभी-कभी जंगल में बैठ कर धोखा हो जाता है। पहाड़ की गुफा में बैठे- बैठे वर्षों तक तुम्हें यह लग सकता है कि मेरा अहंकार समाप्त हो गया, क्योंकि वहां कोई अहंकार को चुनौती नहीं है। न किसी ने गाली दी वर्षों में, न किसी ने पत्थर मारा, तो तुम्हें पता कैसे चलेगा? पता न चलने का नाम अहंकार का मिट जाना तो नहीं है। उतर कर आओगे बाजार में और क्षण भर में पता चल जाएगा।
मैंने सुना है, एक पहाड़ पर तीस वर्ष तक एक संन्यासी रहा। उसे यह ख्याल
हो गया कि अहंकार समाप्त हो गया। फिर कुंभ का मेला भरा और उसने सोचा कि अब तो जा सकता हूं, अब तो अहंकार भी नहीं रहा। और कभी-कभी गांव से लोग आ जाते थे पहाड़ पर चढ़ कर; वे कहते थेः महात्माजी, कुंभ का मेला भर रहा है, दर्शन दें! तो वह सोच कर चला आया कि अब दर्शन देने का समय आ गया।
जब वह कुंभ के मेले में आया, तो कुंभ का मेला तो कुंभ का मेला है! भीड़-भड़क्का भारी था। धूम-धक्का। एक आदमी का पैर उसके पैर पर पड़ गया। एक क्षण में वे तीस साल मिट गए। एकदम पकड़ ली गर्दन उस आदमी की और कहाः जानता नहीं, कौन हूं?
तब उसे याद आया कि यह मैं क्या कर रहा हूं! तीस साल से किसी की गर्दन नहीं पकड़ी थी। किसी ने मौका ही नहीं दिया था। अवसर ही नहीं मिला था। गर्दन ही नहीं थी। न किसी का पैर पैर पर पड़ा था। एक क्षण में होश आया। हाथ ढीला हो गया। उस आदमी से क्षमा मांगी और कहाः तू मेरा गुरु है। तीस साल हिमालय मुझे जो नहीं बता पाया, वह तूने एक क्षण में बता दिया।
संसार में साधक को बाधा है, अगर दृष्टि गलत हो; अन्यथा संसार में सीढ़ियां लगी हैं परमात्मा तक जाने की। संसार साधक हो जाता है, बाधक नहीं।
जरा समझ की जरूरत है।
और चूंकि भगोड़े संन्यास के कारण करोड़ों लोग वंचित रह गए संन्यास की अपूर्व अवस्था से, मैं नहीं चाहता कि भगोड़ा संन्यास जारी रहे दुनिया में।

संन्यास ऐसा हो कि जो जहां है वहीं संन्यस्त हो सके। संन्यास अंतर्भाव की दशा हो, भीतर की क्रांति हो; और संसार में ही घटे तो ही मूल्यवान है।

दूसरा प्रश्न भी इससे ही संबंधित है।
पूछा हैः आप अपने संन्यासियों को संसार से अलग नहीं होने की सलाह देते हैं। फिर आपके प्रवचनों में संन्यासियों और संसारियों के बीच लक्ष्मण-रेखा क्यों बनती है?

क्योंकि लक्ष्मण-रेखा है। बनती नहीं है। कोई बनाता नहीं है। रेखा है। संन्यासी मात्र संसारी ही नहीं है, उसमें कुछ और भी हुआ है; हो रहा है; कम से कम होने की आकांक्षा है। जब मैं कहता हूं कि संन्यासी संसार में रहे, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि संसारी और संन्यासी एक ही हो गए। भेद तो रहेगा। भेद क्या रहेगा?
संसारी वह है जो संसार में है--और संसार का है। संन्यासी वह है जो संसार में है--और संसार का नहीं है। भीतर-भीतर बाहर है। बाहर-बाहर भीतर है। बैठा बाजार में है, हृदय का पक्षी आकाश में उड़ रहा है। बैठा है भीड़-भाड़ में और फिर भी अकेला है।
संन्यास का अर्थ हैः जिसने अपने प्रत्येक क्षण को ध्यान के लिए समर्पित किया है। कुछ भी कर रहा है--दुकान चला रहा है, गड्ढा खोद रहा है, रोटी बना रहा है, बुहारी लगा रहा है--लेकिन भीतर सजगता को साध रहा है, अलिप्तता को साध रहा है। भीतर प्रभु का स्मरण चल रहा है। बाहर संसार का काम चल रहा है। देह संसार में है, क्योंकि संसार की है; और आत्मा परमात्मा में है, क्योंकि परमात्मा की है। ऐसा जो सरगम है, बाहर और भीतर के बीच ऐसा जो तालमेल है--ऐसा अपूर्व तालमेल--वही संन्यास है! संसार के होकर भी, संसार में होकर भी संसार से बाहर होने की जो कला है, वही संन्यास है।
तो संसारी और संन्यासी में भेद तो है ही। और स्वभावतः जिन्होंने यहां संन्यास लिया है, उन्होंने हिम्मत जाहिर की है। जिन्होंने नहीं लिया है, वे अभी हिम्मत नहीं जुटा पाए हैं। जिन्होंने संन्यास लिया है, निश्चित ही वे मेरी बात को समझने में ज्यादा कारगर होंगे। उन्होंने हृदय को खोला है। उन्होंने मेरे साथ चलने में जग-हंसाई मोल ली है। जिन्होंने इतनी हिम्मत नहीं की है, वे सिर्फ श्रोता हैं, साधक नहीं हैं। जो सुनने आया है, उसकी एक दशा है। जो अपने जीवन को बदलने में लग गया है, उसकी दूसरी दशा है।
मेरे पास लोग लिख कर भेजते हैं कि मैं संन्यासी नहीं हूं, लेकिन पहली पंक्ति में मैं क्यों नहीं बैठ सकता हूं?
क्योंकि तुम संन्यासी नहीं हो। पहली पंक्ति में बैठने का हक भी कमाओ।
पहली पंक्ति में बैठने का अर्थ हैः मेरे करीब होना। वह तो केवल प्रतीक है।
उस हक को कमाओ। और तुम जान कर हैरान होओगे कि अगर कभी ऐसा हो जाता है कि गैर-संन्यासी मेरे सामने बैठे होते हैं, तो मुझे बोलना कठिन हो जाता है।
क्योंकि उन्हें फिर मुझे उनके तल की बात कहनी पड़ती है, जो उनकी समझ में आए।
जब मैं गैरिक संन्यासी को अपने आस-पास देखता हूं, तो मैं वह कह सकता हूं जो मैं कहना चाहता हूं। उसकी पात्रता है। उसने अपने पात्र को खोला है। वह झेलने को राजी है। वह आतुर है। वह प्यासा है।
और तुम्हें इसमें भी अड़चन होती है कि लक्ष्मण-रेखा क्यों?
लक्ष्मण-रेखा मिटानी हो, संन्यासी हो जाओ। तो रेखा के भीतर आ जाओगे; नहीं तो रेखा के बाहर रहोगे। और जल्दी करो, क्योंकि धीरे-धीरे लाखों संन्यासी होंगे। फिर अगर तुम देर करके आए, तो भी पीछे ही रहोगे। अभी मौका है। अभी आगे आ जाना सुगम है।
मेरे पास होने को तुम्हें कमाना पड़ेगा। इसलिए मैंने जाना बंद कर दिया। अब मैं आम जनता में बोलने नहीं जा रहा हूं। क्योंकि आम जनता में बोलने का मतलब होता हैः आम जनता जो समझ सके वह बोलो। जरा तुम ऊंचाई की बात कहो कि आम जनता जम्हाई लेने लगती है। उनको मैं रेखा के बाहर रखता हूं। क्योंकि जो आदमी यहां बैठ कर जम्हाई लेने लगे, उसको आना ही नहीं था। यहां कोई मनोरंजन नहीं हो रहा है। यहां कोई नाटक नहीं है। यहां तो जो समझने आया है, जागने आया है, उसके लिए ही अवसर है।

इसलिए इससे दुख मत लेना कि तुम्हें पंक्ति में पीछे खड़े होना होता है। तुम्हीं जिम्मेवार हो। पंक्ति में तुम आगे हो सकते हो, लेकिन आगे होने की तत्परता दिखाओ।

और तीसरा प्रश्न भी इससे संबंधित हैः मैं पूना के लिए यह निश्चय करके चला था कि अब की बार संन्यास लेकर लौटूंगा। किंतु यहां आपके सान्निध्य में होकर संन्यास का भाव ही विलीन हो गया है।

बड़े गजब के आदमी हो! खुद को भी धोखा दे रहे हो, मुझको भी धोखा देना चाहते हो!
पहली बात तो जब घर से तुम दृढ़ निश्चय करके चले थे तभी बात कमजोर हो गई। दृढ़ निश्चय कमजोर आदमी ही करता है। नहीं तो निश्चय की बात क्या होती है, समझ की बात होती है। संन्यास समझ में आ गया, अब इसमें निश्चय क्या करना है? सांप रास्ते पर आ जाता है तो तुम निश्चय करते हो कि हट जाएं रास्ते से? दृढ़ निश्चय करते हो कि रास्ते से हट जाएं? छलांग लगा कर कूद जाते हो। बाद में सोचते हो कि सांप था, छलांग लग गई।
घर में आग लगती है तो तुम दृढ़ निश्चय करते हो कि निकल जाएं बाहर? तुम निकल जाते हो।
दृढ़ निश्चय करके चले थे, उसका मतलब कमजोर हो। जब भी कोई कहता है दृढ़ निश्चय, तब पक्का समझ लेना कि वह आदमी कमजोर है; नहीं तो दृढ़ निश्चय किसके खिलाफ कर रहा है?
कहते होः इस बार... । मतलब इसके पहले भी आ चुके हो। पहले भी आए होओगे, लेकिन पहले कमजोर निश्चय रहे होंगे। ऐसा सोच-सोच कर आए होओगे कि देखें, हो जाए तो ठीक है। इस बार दृढ़ निश्चय करके चले थे। दृढ़ निश्चय बहुत काम नहीं आया।
यहां संन्यास की बात चल रही है और तुम्हारा भाव विलीन हो गया! तुम विलीन हो जाते तो कुछ बात थी। संन्यास का भाव विलीन हो गया!
मन चालाक है। मन मेरो बड़ो हरामी! जरा मन की चालाकी देखो! अब मन ने एक नई तरकीब निकाली। उसने कहा कि हम तो समझ ही लिए बात कि भीतर की है, अब बाहर से क्या संन्यास लेना? यह वही मन है, जिसके खिलाफ तुम दृढ़ निश्चय करके चले थे। यह मन ने तुम्हारा दृढ़ निश्चय दो कौड़ी का कर दिया और इसने तुम्हें नई तरकीब बता दी कि अब तो कोई जरूरत ही नहीं है। यह तो भीतर की बात है।
मैं भी कहता हूंः भीतर की बात है। लेकिन भीतर तो तुम तभी पहुंचोगे जब बाहर से शुरू हो जाए; नहीं तो यह उपाय है बचने का। जब तुम्हें भूख लगती है तो भूख तो भीतर होती है, भोजन बाहर से करना पड़ता है। तब तुम यह नहीं कहते कि भूख तो भीतर है, बाहर के भोजन से क्या लेना-देना? भीतर ही भीतर भोजन करें। दो-चार दिन भीतर ही भीतर भोजन करो, पता चलेगा!
भूख जरूर भीतर है और भोजन बाहर से आता है। क्योंकि बाहर और भीतर भी दो कहां हैं? जुड़े हैं। बाहर भीतर हो रहा है प्रतिक्षण; और भीतर बाहर हो रहा है प्रतिक्षण। दोनों एक साथ जुड़े हैं; एक ही तरंग बाहर-भीतर हो रही है।
यह श्वास भीतर गई और यह श्वास बाहर गई। यह वही श्वास है जो भीतर जाती है, वही जो बाहर जाती है। यही तुम्हें जीवित किए है। बाहर और भीतर के बीच लेन-देन चल रहा है।
तुम कहते होः "मैं पूना के लिए यह निश्चय करके चला था कि अब की बार संन्यास लेकर लौटूंगा।"
कहां गया तुम्हारा दृढ़ निश्चय? खूब! दृढ़ निश्चय का मतलब क्या होता है? मगर मैं जानता हूं कि दृढ़ निश्चय में ही कमजोरी छिपी है।
जब कोई तुमसे बहुत कहे कि मैं तुम्हें बहुत प्रेम करता हूं, बहुत प्रेम करता हूं। और बार-बार दोहराए, तो जरा सावधान हो जाना। क्योंकि प्रेम काफी है; बहुत प्रेम का क्या मतलब होता है? निश्चय पर्याप्त है। निश्चय में अब और क्या जोड़ा जा सकता है? दृढ़ निश्चय का तो मतलब हुआ कि निश्चय भी निश्चय नहीं था; अब दृढ़ता जोड़नी पड़ी। निश्चय ही नपुंसक था। उसको दृढ़ता से कैसे तुम भरोगे?

समझ से निश्चय आने दो। नहीं तो तुम फिर-फिर नई-नई तरकीबें निकाल कर धोखा खा जाओगे।
यहां मुझसे लोग संन्यास ले जाते हैं। घर जाकर सोचते हैं कि क्या फर्क पड़ता है गैरिक वस्त्र पहनो कि सफेद पहनो, यह तो सब एक ही है! यहां से माला ले जाते हैं और जैसे ही वे आश्रम के दरवाजे के बाहर हुए कि माला को जल्दी अपनी कमीज के भीतर कर लेते हैं। वे कहते हैंः यह तो भीतर की बात है! माला को बाहर क्यों रखो?
जरा सोचना कि क्या कर रहे हो? डरते हो कि लोग देख लेंगे माला तुम्हारे गले में, तो लोग समझेंगे कि तुम भी पागल हुए? तो तुम भी सम्मोहित हो गए? तो तुम भी उलझ गए? तुम जैसा समझदार आदमी, और उलझ गया? नासमझों को उलझने दो। तुम तो बड़े बुद्धिमान थे! तुम तो बड़े कुशल थे! तुम कैसे उलझ गए?
लोकलाज से डरते हो, इसलिए तो चूक रहे हो। जिंदगी में कुछ न पाओगे। यह लोकलाज ही इकट्ठी कर लेना। ये लोग क्या कहते हैं, इसी की चिंता करते रहना। कभी यह भी सोचोगे कि परमात्मा क्या कहता है? ये लोगों के सर्टिफिकेट इकट्ठे करते हुए जिंदगी गंवानी है?
मगर मन बड़ा होशियार है। मन कहेगाः क्या फर्क पड़ता है, रंग तो सभी उसी
के हैं!
लेकिन मैं जानता हूं कि फर्क पड़ता है। पुलिसवाला अपनी वर्दी में खड़ा
हो तो तुम उससे डरते हो। और पुलिसवाला सफेद वर्दी में खड़ा हो, तुम एक झापड़ लगा दो उसे।
डाक्टर जब अपना बैग और स्टेथस्कोप गले में लटका कर आता है, तब तुम जल्दी प्रसन्न हो जाते हो। यही डाक्टर ऐसे ही चला आए, बिना बैग और बिना स्टेथस्कोप के, और ऐसे ही कपड़े पहने चला आए रद्दी-खद्दी, या लंगोटी ही लगाए चला आए--तो तुम उठ कर बैठ जाओगे। तुम कहोगेः इस आदमी को बाहर करो। तुम इसका भरोसा न करोगे।
ऐसा हुआ, मेरे गांव में एक डाक्टर आए। वे जरा ऊंचाई से बड़े छोटे थे। बहुत ठिगने थे। पत्नी भी उनकी बड़ी थी। उन्होंने दुकान खोली। उनका कंपाउंडर भी उनसे मजबूत और शानदार लगता था। मेरे परिचित थे। चार-छह दिन बाद मैं उन्हें मिला तो वे मुझसे बोले कि तुम्हारा गांव बड़ा अजीब है। लोग मुझसे आकर कहते हैंः कंपाउंडर साहब, डाक्टर साहब कहां हैं?
वह जो कंपाउंडर था, उसको लोग डाक्टर समझें, स्वभावतः। वह लगता था डाक्टर जैसा। अब जब डाक्टर से ही पूछोगे कि कंपाउंडर साहब, डाक्टर साहब कहां हैं? तो डाक्टर भी बेचारा कैसे कहे कि मैं ही डाक्टर हूं! उन्हें भी बड़ी अड़चन होती थी।
मैंने कहाः तुम ऐसा करो, और एक छोटा लड़का खोजो, तुमसे भी गया-बीता, उसको कंपाउंडर बनाओ। यह कंपाउंडर नहीं चलेगा। नहीं तो तुम्हारी दुकान चलने वाली नहीं है।
तुम कहते होः "कपड़े से क्या होगा?"
लेकिन कपड़े से बहुत कुछ हो रहा है। आदमी जीता तो बाहर से है। बाहर का
ही सारा परिणाम होता है। क्योंकि तुम अभी बाहर हो, अभी भीतर तुम गए ही नहीं हो। भीतर की बात ही अभी फिजूल है। भीतर जाना है, और बाहर की सीढ़ियां बनानी हैं। ये गैरिक वस्त्र भी फर्क लाएंगे।
एक शराबी ने मुझे आकर कहा। संन्यास ले लिया। उसने कहा कि मैं शराबी हूं, आपके सिवाय मुझे कोई स्वीकार भी नहीं करेगा।
मैंने कहाः तुम फिकर छोड़ो। तुम संन्यासी हो जाओ, फिर देखेंगे।
उसने कहाः लेकिन मैं शराबी हूं, मैं कहे दे रहा हूं। और शराब मुझसे छूटने वाली भी नहीं।
मैंने कहाः तुमसे कहता कौन कि तुम छोड़ो! मैं तो शराबियों की ही तलाश में हूं।
वह कहने लगाः आप भी खूब कह रहे हैं! वह खुद ही डरने लगा। उसने कहा कि आप समझे नहीं शायद मेरा मतलब। मैं असली शराब पीता हूं।
मैंने कहाः मैं भी असली शराब की ही बात कर रहा हूं।
वह सिर हिलाने लगा। वह कहने लगाः आप समझ नहीं पा रहे। गैरिक वस्त्रों में दिक्कत होगी।

मैंने कहाः कोई दिक्कत न होगी। मैं तुम्हें मना नहीं करता।
पंद्रह-बीस दिन बाद वह आया और बोलाः दिक्कत आपने करवा दी। कल मैं खड़ा
था शराबखाने के बाहर, दो-चार शराबियों से गपशप कर रहा था, एक आदमी मेरे पांव में आकर गिर पड़ा। बोलाः स्वामीजी! मैं भागा वहां से। मैंने कहा कि यह शराबघर में स्वामीजी होकर और खड़े होना ठीक नहीं। एक दिन जाकर खड़ा था सिनेमाघर में, टिकट के लिए भीड़ लगी थी लाइन में और एक आदमी बोलाः स्वामीजी, आप यहां? मैं वहां से भागा। ये कपड़े दिक्कत दे रहे हैं।
अब तुम घर से निश्चय करके चले थे कि अब की बार संन्यास लेकर लौटूंगा, "किंतु यहां आपके सान्निध्य में होकर संन्यास का भाव विलीन हो गया।"
तुम मुझको भी पाप लगवाओगे! नरक मुझे भी साथ ले चलोगे! जिम्मेवारी मेरी लगती है, जैसे मैंने तुम्हारा संन्यास का भाव छिनवा दिया। तो दूसरे जो संन्यासी हो रहे हैं, वे शायद यहां आए नहीं। तुम अकेले आए हो।
अपनी बेईमानियां पहचानो। अपनी होशियारियां पहचानो। अपनी चालाकियां पहचानो। दूसरों को धोखा देते-देते आदमी खुद को भी धोखा देने में कुशल हो जाता है।

वर्ष भर से सक्रिय ध्यान करता हूं। पांच-छह बार ध्यान की क्षणिक अनुभूतियां भी हुईं। एक बार तो आंखें आप ही आप ऊपर चढ़ गईं और आज्ञाचक्र एकदम से प्रकाशित हो गया। किंतु हर ध्यान के बाद यह भाव बना रहाः आखिर इससे क्या हुआ? अनुग्रह का भाव तो उठता नहीं। बताएं कि मैं क्या करूं?

मेरा बताया करोगे? जैसा विष्णु ने कहा था कि ले आओ एक कटोरा जल, वैसे
ही कहीं खो मत जाना ब्राह्मण देवता!
पहली तो बात है कि वह जो दृढ़ निश्चय करके आए थे, उसको चूको मत! डूबो संन्यास में! उस डुबकी से अहोभाव भी आना शुरू होगा।
और ये जो छोटे-छोटे अनुभव हो रहे हैं--आज्ञाचक्र प्रकाशित हो गया-- इनमें उलझ जाने की जरूरत नहीं है। लेकिन धन्यवाद तो करने की जरूरत है ही। क्योंकि धन्यवाद से आगे और अनुभव होंगे।
दो भूलें हो सकती हैं ऐसी घड़ियों में। शुभ हो रहा है कि ध्यान करते- करते क्षण भर को सारा अंतरतम ज्योतिर्मय हो जाता है। एक खतरा तो यह है कि तुम समझ लो कि पहुंच गए। तो चूक हो गई। यह कुछ पहुंचना नहीं हो गया। ये झलकें हैं। लेकिन इन झलकों से, पहुंच सकते हो, इसकी खबर मिलती है। ये मील के पत्थर हैं, जिन पर तीर लगा है कि और एक मील आगे बढ़ गए तुम, यात्रा और एक मील कम बची। पहुंच नहीं गए। मैं यह नहीं कहता कि मील के पत्थर को छाती से लगा कर बैठ जाना। तो कहीं नहीं पहुंचोगे। ये मील के पत्थर हैं। इसलिए यह ठीक है कि इससे क्या हुआ? लेकिन अगर हर मील के पत्थर पर तुम यह कहोगे कि एक मील चला, इससे क्या हुआ? तो आगे चलने की हिम्मत कम हो जाएगी, रस कम हो जाएगा। अगर इससे नहीं हुआ, तो एक मील चल कर फिर भी क्या होगा? तो फिर तुम पहुंचोगे कैसे?
तो एक तो भूल होती है कि सब हो गया। छोटा सा कुछ हुआ, किसी को जरा सी रीढ़ में खुजली आ गई कि वह समझे कि कुंडलिनी जाग्रत हो गई, कि सब हो गया। पहुंच गए। और एक दूसरे आप हैं कि कुछ होता है थोड़ा सा, तो धन्यवाद करने का भाव नहीं उठता।
यही क्या कम है? इस अंधेरे से भरी जिंदगी में अगर क्षण भर को भीतर रोशनी हो जाती है, कोई कम चमत्कार है? क्योंकि वहां न तो बिजली का कोई कनेक्शन है, न वहां कोई ईंधन है, न वहां कोई तेल है। बिन बाती बिन तेल! यह रोशनी चमत्कार है। जहां सदा से अंधकार रहा है, वहां अचानक ज्योति उठ आती है--यह चमत्कार है। प्रभु की तुम पर अनुकंपा हो रही है। धन्यवाद करो! धन्यवाद से और अनुकंपा बढ़ेगी।
इस बात को सदा ख्याल में रखोः जितना तुम्हारा धन्यवाद गहरा होगा, उतनी ही तुम्हारी उपलब्धि बढ़ती चली जाएगी। क्योंकि जो छोटी भेंटें आती हैं, अगर उनको इनकार कर दिया तो बड़ी भेंटें फिर नहीं आएंगी। क्योंकि तुम पात्र ही सिद्ध न हुए। तुम समझे ही नहीं। ये छोटी भेंटें हैं। परमात्मा ने तुम्हारी तरफ डोरे फेंकने शुरू किए हैं। आनंदित होओ! नाच उठो! मगन हो जाओ

कि मुझ अपात्र को इतना भी हुआ, यही क्या कम है! होना तो यह भी नहीं चाहिए था। मगर फिर भी यह हुआ, तो उसकी अनुकंपा से हुआ होगा, मेरी पात्रता से नहीं।
झुको! उसके चरणों में सिर रख दो। और तब तुम पाओगे कि कुछ और होने लगा। धीरे-धीरे पहले सूक्ष्म ऐंद्रिक अनुभव होते हैं, अतींद्रिय अनुभव होने के पूर्व। तीन तरह के अनुभव हैं जगत में। स्थूल ऐंद्रिक अनुभव... । तुमने एक सुंदर फूल को खिला देखा। उसकी सुवास तुम्हारे नासापुटों में भर गई। क्षण भर को सुख मालूम हुआ। तुमने चांद को आकाश में देखा। शीतल चांदनी तुम्हें नहा गई। तुम चांदनी में नहा कर प्रफुल्लित हो उठे, ताजे हो उठे, ठगे रह गए। चांद का सौंदर्य तुम्हें घेर लिया, स्पर्श किया। एक तरह का सुख मिला। ये ऐंद्रिक सुख हैं।
फिर दूसरे सुख होते हैंः सूक्ष्म ऐंद्रिक। यह जो तुम्हें हुआ है, आज्ञाचक्र में रोशनी हो गई--यह सूक्ष्म ऐंद्रिक अनुभव है। इनका बाहर से कोई संबंध नहीं है। इनका भीतर से भी अभी कोई संबंध नहीं है। ये दोनों के मध्य के अनुभव हैं। लेकिन सूचक हैं कि भीतर चलने लगे। चलो, स्थूल इंद्रियों का अनुभव बंद हुआ, सूक्ष्म इंद्रियों के अनुभव शुरू हुए!
जैसे पांच इंद्रियां स्थूल अनुभव लाती हैं, वैसे ही पांच तरह के सूक्ष्म अनुभव होते हैं। कभी तुम अचानक पाओगे कि अकारण भीतर एकदम सुवास हो गई, जैसे हजारों फूल खिल गए हों! तुम भरोसा ही न कर पाओगे। चौंक कर देखोगेः कहीं कोई बाहर गंध नहीं है। और भीतर एकदम गंध ही गंध है! ऐसी गंध जैसी तुमने कभी नहीं जानी! तुम्हारे भीतर का कस्तूरी का नाफा जैसे टूट गया! कभी भीतर संगीत उठेगा, नाद उठेगा। अपूर्व संगीत तुम्हें भर लेगा! लयबद्ध हो जाओगे! और बाहर कुछ भी नहीं है। बाहर का संगीत सब फीका हो जाएगा, जब भीतर का नाद उठेगा। बाहर की रोशनी अंधेरे जैसी मालूम पड़ेगी, जब भीतर की रोशनी का अनुभव होने लगेगा। मगर अभी यह मध्य की है। यह अभी भीतर की लगेगी, क्योंकि और भीतर का तो तुम्हें पता नहीं है। यह देहली पर खड़े हो गए तुम--न बाहर, न भीतर। देहली पर खड़े हो गए। मगर देहली पर खड़े हो गए, यह सूचक हैः अब घर में जा सकते हो।
जब पांचों इंद्रियों के अनुभव, सूक्ष्म अनुभव, तुम्हारे जीवन में प्रकट हो जाएंगे, एक दिन अचानक पाओगे कि स्वाद आ रहा है--ऐसा स्वाद जैसा तुमने कभी नहीं जाना! उस दिन रसना का नया अर्थ प्रकट होगा। जब ये अनुभव गहन हो जाएंगे, तब एक दिन तुम अतींद्रिय अनुभव में उतरोगे। स्थूल इंद्रिय से सूक्ष्म इंद्रिय, सूक्ष्म इंद्रिय से अतींद्रिय। जब अतींद्रिय अनुभव होगा, तभी तुम्हारे हृदय में होगाः हां, अब हुआ! तब परम तृप्ति हो जाती है। मगर उसको पाने के लिए, ये जो सूक्ष्म इंद्रिय के अनुभव हो रहे हैं, इनका स्वागत करो, इनका अभिनंदन करो। इनको बढ़ने दो। ऐसा मत कहो कि क्या हुआ? इतने दरिद्र मत बनो। कम से कम धन्यवाद देने की संपदा तो रखो! कम से कम धन्यवाद दे सको, इतने अमीर तो रहो।
दुनिया में सबसे दरिद्र आदमी वही है जो धन्यवाद भी नहीं दे सकता।
पूछते होः "अब मैं क्या करूं?"
संन्यास से शुरू करो। और मैं तुमसे कहना चाहूंगा कि दृढ़ निश्चय वाला संन्यास नहीं चाहिए। क्योंकि दृढ़ निश्चय वाला संन्यास कभी भी ढीला हो सकता है। घर पहुंचने के पहले ही ढीला हो जाएगा। रास्ते में ट्रेन में जाओगे न, चौबीस घंटे ट्रेन में लग जाएंगे। वह दृढ़ निश्चय उसी में ढीला हो जाएगा। दृढ़ निश्चय का भरोसा मत करो।
संन्यास लेना हो--समझ से लो, निश्चय से नहीं। निश्चय अलग बात है। निश्चय का मतलबः संकल्प। और समझ का अर्थ हैः समर्पण। जिद्द से मत लो।
कई बार आदमी जिद्द से काम करता है। हो सकता है तुम्हारी पत्नी संन्यास के खिलाफ हो। अब तुम पत्नी को बताना चाहते हो कि देख, कौन मालिक है! कौन मुझे चला सकता है? मैं संन्यास लेकर दिखा दूंगा। कि हो सकता है तुम्हारे पड़ोसी कहते हों कि अरे छोड़ो जी, तुम क्या संन्यास लोगे! देख लिया, तुमसे नहीं होगा यह। और तुम्हें उनको दिखाना है, तो तुम दृढ़ निश्चय करके संन्यास ले बैठे। यह गलत संन्यास होगा।

किसी को दिखाने के लिए संन्यास लेना गलत है; कोई देख लेगा, इस डर से न लेना गलत है। दूसरे का ध्यान करना गलत है।
हो सकता है, पत्नी जिद्दी है और कहती है कि मैं तुम्हें मजा चखा दूंगी अगर संन्यास लेकर आए। क्योंकि अक्सर ऐसा होता हैः जब घर से लोग आते हैं, पत्नी उनकी कह देती है कि और सब करना, संन्यास लेकर भर मत आना।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मस्जिद में बैठा है। धर्मगुरु बोल रहा है।
बोलते-बोलते बीच में उसने कहा कि जो लोग स्वर्ग जाना चाहते हैं, हाथ ऊपर उठाएं। सबने उठा दिए, मुल्ला ऐसे ही नीचे हाथ किए बैठा रहा। धर्मगुरु को जरा हैरानी हुई। उसने कहाः अब जो लोग नरक जाना चाहते हैं, वे हाथ उठाएं।
क्योंकि एक ही बचा था--मुल्ला। उसने नरक जाने के लिए भी हाथ नहीं उठाया। धर्मगुरु ने पूछाः क्या इरादा है? तुम्हें कहीं नहीं जाना है?
तो उसने कहाः कहीं जा ही नहीं सकते।
धर्मगुरु ने कहाः मतलब?
उसने कहा कि क्या टांग तुड़वानी है मेरी?
धर्मगुरु ने कहाः टांग तुड़वाने का इसमें सवाल ही कहां! तुम्हें स्वर्ग जाना है कि नरक जाना है?
उसने कहाः पत्नी, जब घर से चलने लगा, तो बोली--मस्जिद से सीधे घर आना, नहीं तो टांग तोड़ दूंगी। अब तुम झंझटें बता रहे हो--स्वर्ग जाओ, नरक जाओ। कहीं नहीं जाना है! अपनी टांग नहीं तुड़वानी।
पत्नियां आती हैं। उनके पति उन्हें समझा देते हैं कि और सब करना, संन्यास लेकर भर मत आ जाना।
तो हो सकता है, अहंकार को चोट लगती है कि दिखला दूं इस पत्नी को, कि ले,
आ गया संन्यास लेकर, अब क्या करती है? एक दफा तो दिखला दूं जिंदगी में कि मालिक कौन है, मैं हूं कि तू है! किस पति को नहीं उठती यह आकांक्षा कि एक दफा दिखला दूं!
मुल्ला की पत्नी मुल्ला के पीछे दौड़ रही है बुहारी लेकर मारने। मुल्ला एकदम घबड़ा कर बिस्तर के नीचे घुस गया। पलंग के नीचे चला गया। पत्नी है मोटी। वह जा नहीं सकती पलंग के नीचे, इसलिए वही एक उपाय है। पलंग के नीचे चला जाता है तो निश्चिंत हो जाता है। फिर उसका कोई बाल बांका नहीं बिगाड़ सकता। पत्नी चारों तरफ घूमने लगी। कहने लगीः निकलो बाहर!
इतने में ही द्वार पर पड़ोसियों ने दस्तक दी। तो पत्नी ने धीरे से कहा
कि देखो, पड़ोसी आ गए, निकल आओ बाहर। अब मैं तुम्हें नहीं मारूंगी।
उसने कहाः आज नहीं निकलूंगा और आज पड़ोसियों को भी दिखला दूंगा कि इस
घर में किसकी चलती है!
बिस्तर के नीचे बैठे हैं, लेकिन पड़ोसियों को दिखला दूंगा कि किसकी चलती है! देखें कौन मुझे निकालता है बिस्तर के नीचे से! मेरा घर है, जहां बैठना है वहां बैठूंगा! जिसको जो करना हो कर लो। आज तय ही हो जाए कि कौन मालिक है! पड़ोसियों को भी पता चल जाए।
तो कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि तुम किसी को दिखलाने के लिए संन्यास लेना चाहते हो--संसार को, कि पत्नी को, कि बच्चों को, कि मित्रों को, कि बाप को। तो गलत संन्यास होगा।
संन्यास आना चाहिए प्रभु-प्रेम से, किसी और कारण से नहीं। तुम्हारा अगर प्रभु में लगाव है, अगर तुम खोजने चले हो, तो। निश्चय से नहीं। क्योंकि निश्चय तो अहंकार का अंग है। निश्चय तो अहंकारी बना देगा तुम्हें। और अहंकारी तो कैसे संन्यासी बनेगा! निर-अहंकारी ही संन्यासी बनता है।
तो सोचना, विचारना, समझना। संन्यास के सार पर ध्यान करना। और अगर स्फुरणा उठती हो तो फिर न मन की सुनना, न संसार की सुनना। लेकिन स्फुरणा से लेना संन्यास। किसी जिद्द, किसी हठ से नहीं। हठी मूढ़ होता है।
संन्यासी संसार में है और संसार का नहीं है।
शादाबिए-जमाले-बुतां मेरे दिल में है
बेताबिए-जुनूं जदगां मेरे दिल में है
दरियाए-इम्बसात रवां मेरे दिल में है
तूफाने-सोजो-आहो-फुगां मेरे दिल में है
नाचे कोई तो नाचता हूं मैं भी उसके साथ

कूहे-निशाते-हर दो जहां मेरे दिल में है तड़पे कोई तो मैं भी तड़फता हूं उसके साथ जिन्नो-बशर का दर्दे-निहां मेरे दिल में है होता हुआ भी सबका किसी का नहीं हूं मैं
इक बंद सोज बर्के-तपां मेरे दिल में है हैं वुसअतों से वुसअतें मुझमें--यही नहीं इक वुसअते-मकानो-जमां मेरे दिल में है
लब पे मेरे सुकूते-मुसलसल है मोअज्जन
इक शोरे-मावराए-बयां मेरे दिल में है
जो परदाए-नमूद में छिप कर है जौफिशां
इक रंग इसका अयां मेरे दिल में है
एहले-नजर को जिसने गजलख्वां किया वो खुद
सरशारो-मस्त नगमा कुनां मेरे दिल में है।
वह गीतों का गीत तुम्हारे हृदय में छिपा है। वह गीतों का परम गीत तुम्हारे हृदय में छिपा है। जिससे सारे जगत के गीत पैदा हुए हैं, वह गीत का स्रोत तुम्हारे भीतर छिपा है। जिससे सारी खुशियां उतरी हैं और जिससे सारे आनंद पैदा हुए हैं, वह मालिक तुम्हारे भीतर बैठा है।
उसे खोज लेने की तरकीब एक ही हैः
होता हुआ भी सबका किसी का नहीं हूं मैं
इक बंद सोज बर्के-तपां मेरे दिल में है
सबके रहो और फिर भी किसी के नहीं। पति--और पति नहीं। पत्नी--और पत्नी नहीं। मित्र--और मित्र नहीं। शत्रु--और शत्रु नहीं। नाटक है बड़ा। उसे कुशलता से पूरा करो।
संन्यासी का अर्थ हैः कुशल अभिनेता। संसार अभिनय है, नाटक का बड़ा मंच है। सब पूरा करो। तुम्हें जो पात्र दिया गया है पूरा करने को, तुम्हें जो कथा का अंश दिया गया है पूरा करने को--उसे पूरा करो। उसे पूरे अहोभाव से निपटा देना है। और फिर भी उसके साथ एक नहीं हो जाना है, तादात्म्य नहीं कर लेना है।
नाचे कोई तो नाचता हूं मैं भी उसके साथ
कूहे-निशाते-हर दो जहां मेरे दिल में है
तड़पे कोई तो मैं भी तड़फता हूं उसके साथ
जिन्नो-बशर का दर्दे-निहां मेरे दिल में है
होता हुआ भी सबका किसी का नहीं हूं मैं
इक बंद सोज बर्के-तपां मेरे दिल में है
संन्यास है ऐसी कला कि चलो पानी में तो भी पैर पानी को न छुएं। जल में कमलवत हो जाने की कला का नाम संन्यास है।

चौथा प्रश्नः समाधि क्या है?

कहने से समझ न आएगी। जौहरी की गति जौहरी जाने। समाधि तो अनुभव की बात है। घायल की गति घायल जाने। कही जा सके, ऐसी बात नहीं समाधि। कुछ इशारे जरूर किए जा सकते हैं। जैसे कोई अंगुली से चांद को बताए। अंगुली चांद नहीं है, ख्याल रखना। अंगुली से चांद का क्या लेना-देना? चांद चांद है, अंगुली अंगुली है। अंगुली में मत उलझ जाना, नहीं तो चांद से चूक जाओगे। चांद देखना हो तो अंगुली को तो विस्मरण ही कर देना। अंगुली की तरफ देखना ही मत। अंगुली से इशारा ले लेना, उस इशारे पर यात्रा कर जाना। उस यात्रा पर तुम्हारी दृष्टि दौड़ जाए, तो चांद दिखाई पड़ जाएगा।
तो जो भी समाधि के संबंध में कहा गया, चांद को दिखाई गई अंगुली है।
समाधि शब्द बना है समाधान से। शब्द का अर्थ हैः जहां सब समाधान हो गया; जहां कोई समस्या न रही; जहां कोई प्रश्न न बचा; जहां कोई खोज बाकी न रही; न कोई तृष्णा, न कोई आकांक्षा, न कोई दौड़; जहां कोई भविष्य न बचा। जहां समय ही न रहा, उस अवस्था का नाम समाधि है। जहां सब थिर हो गया, निष्कंप हो गया! जैसे दीये की ज्योति जलती हो, ऐसे घर में, जहां हवा का झोंका न आ सके, निष्कंप जलती हो, जरा भी कंपती न हो--ऐसी जब तुम्हारी चेतना की ज्योति जलती

है, निष्कंप, जहां विचार के झोंके नहीं आते, जहां विचार की तरंगें नहीं आतीं, उस दशा का नाम समाधि है।
समाधि परम रस है। समाधि में हो जाना संगीतपूर्ण हो जाना है।
समाधि का अर्थ हैः द्वंद्व न रहा, द्वैत न रहा, तनाव न रहा, चिंता न रही।
समाधि का अर्थ हैः जान लिया, पहचान लिया, अनुभव कर लिया--उसका, जो शाश्वत है; उसका, जो अमृत है।
मगर जानोगे तो ही जानोगे। इसलिए बजाय समाधि के संबंध में समझने के, ध्यान के संबंध में समझना चाहिए, क्योंकि ध्यान प्रक्रिया है जो समाधि पर ले जाती है। ध्यान औषधि है, जो बीमारी को काट देती है। और जब बीमारी कट जाती है, तो जो शेष रह जाता है वही स्वास्थ्य है।
स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं है। इतने शास्त्र लिखे गए हैं स्वास्थ्य पर; स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं है। हमारा शब्द बड़ा प्यारा है। अंग्रेजी का शब्द हेल्थ भी बड़ा महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य लेकिन उससे ज्यादा महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य का अर्थ होता हैः स्वयं में स्थित हो जाना। वह समाधि की ही बात हो गई। जिसके भीतर कुछ तनाव है, वह स्वयं में स्थित नहीं हो पाता।
तुमने ख्याल किया? पैर में कांटा गड़ा हो तो सारा ध्यान वहीं-वहीं जाता है, कांटे की तरफ जाता है। तुम अपने में ठहर नहीं पाते। सिर में दर्द हो तो ध्यान सिर की तरफ जाता है। जब कहीं कोई पीड़ा न हो तो ध्यान कहीं नहीं जाता, अपने में ठहर जाता है। तो पक्षी अपने नीड़ में बैठ जाता है।
स्वास्थ्य का अर्थ हुआः जब ध्यान को जाने की कहीं कोई जरूरत न हो। ध्यान जाता ही दुख के कारण है, पीड़ा के कारण है। जब कहीं कोई पीड़ा नहीं है, तो ध्यान अब कहां जाए? अब इस पक्षी को जाने के लिए कोई उपाय न रहा। यह अपने पंखों में दुबक कर भीतर बैठ जाता है, शांत हो जाता है। स्वास्थ्य है ऐसी स्थिति। समाधि स्वास्थ्य की ही अंतिम अवस्था है। शरीर के संबंध में ऐसी स्थिति आ जाए तो स्वास्थ्य। आत्मा के संबंध में ऐसी स्थिति आ जाए तो समाधि।
अंग्रेजी का शब्द हेल्थ भी सुंदर है। वह आता है होल से, पूर्ण से। जो पूर्ण हो गया, वह स्वस्थ हो गया। जब तक अपूर्णता है, तब तक अस्वास्थ्य है। जब कोई पूर्णता को उपलब्ध हो जाता है तो स्वस्थ हो जाता है। जब शरीर पूर्ण होता है तो स्वस्थ। और जब आत्मा भी पूर्ण होती है तो समाधि।
इन वचनों पर ध्यान करोः
न हैं चांद-सूरज, न कोई सितारे
कहीं रोशनी का निशां तक नहीं है
खलाए-फजा की है बस बेकरानी
जहां नक्शे-मौहूम आलम का साया
है अम्बवाजे-हस्ती के दामन में रक्सां खला मन की है मौज दर मौज पैदा
खुदी की जबरदस्त रौ चल रही है
इसी रौ में दुनिया बहे जा रही है
कभी डूबती है, कभी तैरती है
ये सारा हजूमे-नक्शे-ख्याली
है मौहूम सायों का रक्से-तमाशा हुआ वतने-तखलीक में फिर से गायब रहा सिर्फ एहसास बाकी खुदी का
रही मोअज्जन सिर्फ इक रौ अना की
वो देखो अना की भी रौ रुक गई है
खला से खला अब गले मिल रही है
बयां ऐसी हालत का मुमकिन नहीं है
ये आलम तो अदराक से मावरा है
ये दिल जिस दिल पे गुजरे वही जानता है इन्हें समझो।
न हैं चांद-सूरज, न कोई सितारे

समाधि ऐसी दशा है, जहां कुछ भी शेष नहीं रह जाता--जहां कोई विषय शेष नहीं रह जाता; जहां देखने को कुछ शेष नहीं रह जाता। दृष्टि शुद्ध हो जाती है। दर्शन दर्पण की भांति होता है। और कोई प्रतिफलन नहीं होता।
न हैं चांद-सूरज, न कोई सितारे
उस परम शांति में चांद-तारे भी नहीं हैं, सूरज भी नहीं है। रोशनी भी नहीं है, तो अंधेरे की तो बात ही क्या! इसे समझना।
कहीं रोशनी का निशां तक नहीं है
तुम कहोगेः यह तो बड़ी अजीब बात हुई! हम तो सोचते थे, जब समाधि होगी तो रोशनी ही रोशनी हो जाएगी।
लेकिन रोशनी तो वहीं हो सकती है जहां अंधेरा हो। जहां अंधेरा ही नहीं है, वहां रोशनी भी नहीं हो सकती। रोशनी और अंधेरा तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, वे साथ ही साथ हैं।
समाधि ऐसी दशा है, जहां अंधेरे की तो क्या कहो, रोशनी भी खो जाती है। अंधेरा तो खो ही जाता है, रोशनी भी खो जाती है। मौत की तो क्या कहो, जीवन भी खो जाता है। दुख की तो क्या कहो, सुख भी खो जाता है। क्योंकि ये सब साथ जुड़े हैं--दुख-सुख, अंधेरा-रोशनी, जीवन-मृत्यु। ये सब जुड़े हैं। ये अलग-अलग नहीं हैं। इनमें से एक बचेगा तो दूसरा किनारे पर खड़ा रहेगा। अगर रोशनी होगी तो अंधेरा उसकी सीमा बनाएगा। अगर सुख होगा तो दुख किनारे पर मौजूद है, प्रतीक्षा कर रहा है कि कब मुझे अवसर मिले। वह तैयार है तुम्हारी छाती पर सवार हो जाने को। द्वंद्व ही खो जाता है, तब समाधि है।
न हैं चांद-सूरज, न कोई सितारे
कहीं रोशनी का निशां तक नहीं है
खलाए-फजा की है बस बेकरानी
एक शून्य है--असीम शून्य!
खलाए-फजा की है बस बेकरानी
एक रिक्तता है। सब शून्य हो गया है। असीम शून्य है, जिसकी कोई सीमा नहीं है।
जहां नक्शे-मौहूम आलम का साया
है अम्बवाजे-हस्ती के दामन में रक्सां
और जहां माया की सब तरंगें सो गई हैं--अस्तित्व में सो गई हैं। साधारणतः इससे उलटी दशा है। वही तुम्हारी दशा है। उसे पहले समझो, तो समाधि समझ में आए।
खला मन की है मौज दर मौज पैदा
मन में तरंगें उठ रही हैं। यह साधारण अवस्था है। तरंगों पर तरंगें! चुकतीं ही नहीं। कभी मन खाली नहीं होता। आती ही चली जाती हैं। एक बाढ़ है-- अंतहीन बाढ़ है! एक क्षण को भी मन खाली नहीं होता। असीम रिक्तता को तो क्या समझोगे, जब एक क्षण भी रिक्तता नहीं आती! उठते-बैठते, सोते-जागते चल रहे विचार, चल रहे विचार। रास्ता कभी खाली ही नहीं होता। ट्रैफिक चलता ही रहता है। कभी दुख, कभी सुख। कभी सफलता, कभी असफलता। कभी क्रोध, कभी प्रेम। मगर चलता ही रहता है। भीड़ चलती ही रहती है, गुजरती ही रहती है।
खला मन की है मौज दर मौज पैदा
खुदी की जबरदस्त रौ चल रही है
और जब तक यह रास्ता चलता रहता है, यह भीड़ चलती रहती है विचारों की, तब
तक अहंकार बना रहता है। अहंकार तुम्हारे विचारों के जोड़ का ही नाम है। अहंकार तुम्हारी सारी बीमारियों का जोड़ है।
समाधि में न विचार होंगे, न अहंकार होगा। इतना कहा जा सकता है कि समाधि में क्या नहीं होगा। क्या होगा, शायद नहीं कहा जा सकता; लेकिन क्या नहीं होगा, यह निश्चित कहा जा सकता है। विचार नहीं होंगे। यह भीड़-भाड़ नहीं होगी, जो तुम्हारे मन में मची है। यह कीचड़ जो तुम्हारे मन में मची है, नहीं होगी। और अहंकार नहीं होगा, क्योंकि इसी कीचड़ के जोड़ का नाम अहंकार है। तुम्हारी सारी बीमारियां, इन सबका इकट्ठा नाम अहंकार है।
खला मन की है मौज दर मौज पैदा
खुदी की जबरदस्त रौ चल रही है
और बड़ी हवा चल रही है अहंकार की! अंधड़ चल रहा है अहंकार का।

इसी रौ में दुनिया बहे जा रही है
कभी डूबती है, कभी तैरती है
ये सारा हजूमे-नक्शे-ख्याली
यह जो दुनिया में डूबना-उतरना चल रहा है, यह सब मन के ही ख्यालों का है। सफलता भी मन का ख्याल है, असफलता भी मन का ख्याल है। सब ख्याल की बात है।
मैंने सुना है, एक आदमी एक अजनबी देश में गया, जहां की वह भाषा नहीं समझता है। उसने एक बड़ी होटल देखी--ताजमहल समझो। वहां लोग आ-जा रहे हैं। वह भी भीतर गया। उसने समझा कि यह राजा का महल है। वह जाकर एक टेबल पर बैठ गया। एक बैरा आया--शुभ्र कपड़ों को पहने हुए। उसने सोचा कि अदभुत राजा है, सबका स्वागत चल रहा है। मेरे लिए भी एक विशेष आदमी भेजा स्वागत के लिए! उस बैरे ने झुक कर नमस्कार किया। वह बैरा थाली ले आया। सुस्वादु भोजन। वह अजनबी तो बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहाः हद्द हो गई! अजनबी हूं, कोई जानता भी नहीं, कोई पहचानता भी नहीं; फिर राजा हो तो ऐसा हो!
उसने खूब दिल भर कर भोजन किया। फिर झुक-झुक कर धन्यवाद करने लगा बैरा का। लेकिन बैरा बिल लिए खड़ा है। वह बिल पकड़ाना चाहता है और वह धन्यवाद कर रहा है। उसने बिल भी ले लिया। उसने सोचा कि शायद राजा ने चिट्ठी लिख कर भेजी है कि आप आए, बड़ी कृपा की! हमारे धन्यभाग हैं! और भी आते रहना! वह और-और झुक कर... । चिट्ठी तो उसने खीसे में रख ली कि अपने देश में जाकर दिखाने के काम आएगी।
बैरा ने देखा कि यह आदमी कुछ अजीब है! वह पैसे मांग रहा है और वह झुक-झुक कर नमस्कार कर रहा है और धन्यवाद दे रहा है। और कुछ-कुछ कह रहा है, जो बैरा की समझ में नहीं आता, वह कौन सी भाषा बोल रहा है। तो वह उसे ले गया मैनेजर के पास।
तो उस आदमी ने सोचा कि शायद यह जो अतिथि का स्वागत करने वाला राजा का प्रतिनिधि है, इतना प्रसन्न हो गया है कि राजा के पास ले जा रहा है; या कम से कम वजीर के पास तो जरूर। जब मैनेजर के कमरे में गया, तो उसने समझा कि यह वजीर का कमरा है! बड़ा शानदार था!
मैनेजर ने उसे बिठाया। उससे कहा कि भाई पैसे चुकाओ। मगर वह तो कुछ समझे ही नहीं, क्योंकि उसको भाषा ही समझ में नहीं आती। तो मैनेजर ने उसे अदालत में भेजा।
अब वह सोचा कि अब राजा के पास ले जाया जा रहा है। और जब उसने अदालत देखी, विशाल भवन! और जब उसने मजिस्ट्रेट को देखा, उसने समझा कि यह महाराजा है। वह खूब झुक-झुक कर नमस्कार करने लगा। किसी को किसी की बात समझ में न आए।
आखिर मजिस्ट्रेट ने कहा कि या तो यह आदमी पागल है या पक्का चालबाज है।
हम कहते हैं, वह सुनता ही नहीं है। वह अपनी ही लगाए जा रहा है। इसको दंड दिया जाए। इसका मुंह काला कर दिया जाए और गले में जूतों की माला पहना दी जाए और एक गधे पर उलटा मुंह बिठा कर इसको पूरे गांव में घुमाया जाए। पुराने जमाने की कहानी है। जब उसके गले में जूतों की माला पहनाई गई,
तो उसने कहाः अजीब रिवाज हैं इस देश के मगर। शायद यहां फूल न होते हों। या रिवाज-रिवाज की बात है। मगर लोग बड़े अदभुत मालूम होते हैं! और जब उसका मुंह काला रंगा गया, तब तो वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि रंग-रोगन भी कर रहे हैं। अब देखें आगे क्या होता है! और वह तो बड़ा प्रसन्न! रंगने वाले भी थोड़े हैरान। उन्होंने औरों के भी रंगे थे; लेकिन जिसका मुंह काला रंगो, वह दुखी ही होता है। और वह बड़ा ही आनंदित हो रहा है। उसकी आंखों में बड़ी चमक है। और जब उसको गधे पर बिठाया गया, तब तो कहना ही क्या! उसने कहाः हद्द हो गई, सवारी निकलती है! और जब जुलूस चला, क्योंकि बच्चे साथ हो लिए, भीड़-भाड़ हो ली, तो वह बड़ी प्रसन्नता से अकड़ कर बैठा है और चारों तरफ देखता जाता है। और बड़ा खुश हो रहा है। और सोच रहा हैः एक ही कमी रह गई। मैं जब लौट कर अपने देश जाऊंगा और कहूंगा कि ऐसा-ऐसा स्वागत हुआ तो कोई मेरी मानेगा नहीं। काश, एकाध और कोई होता गवाह! मेरे देश का कोई निवासी इस समय मिल जाए तो बड़ा अच्छा हो!

तभी उसे दिखाई पड़ा एक आदमी भीड़ में खड़ा है, जो उसके देश का है। अरे-- उसने कहा--देखते हो, कैसा स्वागत हो रहा है!
और वह आदमी तो बहुत दिन से इस देश में है, इस देश की भाषा समझने लगा है।
वह जल्दी से सिर झुका कर भीड़ में खिसक गया। उसने सोचा कि यह तो मूढ़, गधे पर इसका जुलूस निकल रहा है और यह अकड़ कर बैठा है! और अगर लोगों को पता चल जाए कि मैं भी इसके देश का वासी हूं तो मेरा भी अपमान होगा। तो वह जल्दी से सिर झुका कर भीड़ में खिसक गया।
इस आदमी ने क्या सोचा? इसने सोचाः हद्द हो गई! ईर्ष्या की भी हद्द होती है। जला जा रहा है। इसका स्वागत नहीं हुआ इस तरह जिस तरह हमारा हो रहा है। इसकी जलन तो देखो!
मन का खेल है। तुम्हारी सफलता, तुम्हारी असफलता--तुम्हारी व्याख्याएं हैं। तुम्हारी मान्यताएं हैं।
खला मन की है मौज दर मौज पैदा
खुदी की जबरदस्त रौ चल रही है
इसी रौ में दुनिया बहे जा रही है
कभी डूबती है, कभी तैरती है
ये सारा हजूमे-नक्शे-ख्याली
यह सब काल्पनिक है, सब सपने जैसा है।
है मौहूम सायों का रक्से-तमाशा
हुआ वतने-तखलीक में फिर से गायब
और जब समाधि आती है तो यह सारा तमाशा गायब हो जाता है।
हुआ वतने-तखलीक में फिर से गायब
यह सारा सपना शांत हो जाता है--वहीं खो जाता है, जहां से उठा था।
रहा सिर्फ एहसास बाकी खुदी का
जब सारे विचार चले जाते हैं और सारी तरंगें खो जाती हैं, तब भी थोड़ी देर को अहंकार टिका रहता है। ऐसे ही जैसे तुम साइकिल चलाते हो तो पैडल मारना पड़ता है। फिर दो-चार मील पैडल मारने के बाद, अगर तुमने पैडल चलाना बंद भी कर दिया, तो भी साइकिल थोड़ी दूर चल जाएगी--पुरानी गति के आधार पर। एकदम नहीं रुक जाएगी; दस-पांच कदम चल जाएगी। और अगर उतार हो तो थोड़ी ज्यादा भी चल सकती है। पैडल तो रुक जाएंगे पहले, फिर थोड़ी देर बाद साइकिल रुकेगी। ऐसा ही अहंकार है। विचार तो पहले रुक जाएंगे, लेकिन सूक्ष्म खुदी, सूक्ष्म अहंकार थोड़े दिन तक तरंगें मारता रहेगा--पुरानी आदत के वश।
हुआ वतने-तखलीक में फिर से गायब
रहा सिर्फ एहसास बाकी खुदी का
रही मोअज्जन सिर्फ इक रौ अना की
सब खो गया; सिर्फ एक तरंग बची--अहंकार की।
रही मोअज्जन सिर्फ इक रौ अना की
वो देखो अना की भी रौ रुक गई है
और जब समाधि करीब आती है, तो जो घटना घटती है वह यह कि अचानक अहंकार की लहर भी रुक जाती है। अचानक तुम पाते हो कि तुम हो और मैं का कोई भाव नहीं। मैं गया। होना तो है, लेकिन मैं का भाव नहीं रहा। अस्तित्व शुद्ध हो गया। वो देखो अना की भी रौ रुक गई है
खला से खला अब गले मिल रही है
शून्य से शून्य गले मिल रहा है। यह समाधि की परिभाषा है।
वो देखो अना की भी रौ रुक गई है
खला से खला अब गले मिल रही है
बयां ऐसी हालत का मुमकिन नहीं है
अब इस बात को कहने का उपाय नहीं है। दो शून्य गले मिल रहे हैं। तुम शून्य हो गए और परमात्मा तो सदा से शून्य है। और तुम जब शून्य हो जाओगे, तभी परमात्मा के शून्य से मिल सकोगे। क्योंकि उस जैसे हो जाओ तो ही उससे मिल सकोगे। जब तुम मिट जाओगे तो उससे मिल सकोगे। जब तक तुम हो, तब तक बाधा है। जब तक तुम हो, तब तक मिलन नहीं। जब तुम बिल्कुल न रह जाओगे, तभी मिलन होगा; क्योंकि न होना परमात्मा के होने का ढंग है। इसलिए तो परमात्मा

दिखाई नहीं पड़ता। अनुपस्थिति उसकी उपस्थिति का ढंग है। जब तुम भी अनुपस्थित हो जाओगे, जब तुम भी परिपूर्ण शून्य हो जाओगे, तभी--तभी समाधि। खला से खला अब गले मिल रही है
वो देखो अना की भी रौ रुक गई है
बयां ऐसी हालत का मुमकिन नहीं है
ये आलम तो अदराक से मावरा है
यह घटना बुद्धि के परे है।
ये आलम तो अदराक से मावरा है
यह बुद्धि के अतीत है। इसलिए इसे बुद्धि से कहने का उपाय नहीं। बुद्धि तो बचती नहीं जब समाधि घटती है। जब समाधि घटती है तो बुद्धि साक्षी नहीं होती। होती ही नहीं। इसलिए बुद्धि को कोई अनुभव नहीं है। समाधि बुद्धि के पार है।
ये आलम तो अदराक से मावरा है
ये दिल जिस दिल पे गुजरे वही जानता है
तुम पूछते होः "समाधि क्या है?"
ये दिल जिस दिल पे गुजरे वही जानता है
घायल की गति घायल जाने।
जौहरि की गति जौहरि जाने।
पर जौहरी तुम बन सकते हो। बनने को पैदा हुए हो। न बनो तो तुम्हारा कसूर है। घायल होने की तुम्हारी क्षमता है। प्रभु तो तीर लिए खड़ा है। उसने तो तीर धनुषबाण पर कब से चढ़ा रखा है। तुम जरा ठहर जाओ! क्योंकि तुम डांवाडोल रहो तो वह कितना ही बड़ा धनुर्विद हो तो भी तुम्हारे हृदय को बेध न पाएगा। तुम जरा ठहर जाओ तो यह तीर लगे। तुम्हारा हृदय बिंध जाए, तुम घायल हो जाओ, तो तुम जानोगे।
समाधि अनुभव है, अनुभूति है।
लेकिन समाधि में क्या-क्या नहीं है, वह कहा जा सकता है। द्वंद्व नहीं है, द्वैत नहीं है, विचार नहीं हैं, भाव नहीं हैं, अहंकार नहीं है। ये सब जहां नहीं हैं, फिर वहां पूर्ण अवतरित होता है। जब तुम शून्य हो जाते हो, तो तुम पात्र बनते हो। जब तुम खाली होते हो, तब परमात्मा प्रवेश करता है। समाधि--तुम्हारा परमात्मा में लीन हो जाना और परमात्मा का तुम में लीन हो जाना है। समाधि अपने मूलस्रोत को पा लेना है। गंगा गंगोत्री पहुंच जाए, ऐसी है समाधि। वृक्ष फिर बीज हो जाए, ऐसी है समाधि। तुम फिर परमात्मा हो जाओ। जो तुम थे मूलतः, जो तुम्हारा मौलिक स्वभाव है--फिर से तुम उसे पा लो। उस पा लेने, उस उपलब्धि का नाम समाधि है।
समाधि यानी समाधान। सब समस्याएं समाप्त हो गईं।

आखिरी प्रश्नः मैं परमात्मा को खोजता फिर रहा हूं और परमात्मा मिलता नहीं। ओशो, कितनी यात्रा और करनी होगी? संन्यास भी लिया है, परमात्मा तो नहीं मिला; उलटा लोग मुझे पागल समझने लगे।

परमात्मा खोजने से नहीं मिलता। खोज में तो फिर भी अहंकार शेष रह जाता है। परमात्मा खोने से मिलता है--खोजने से नहीं। तुम खो जाओ तो मिलेगा। तुम अगर मजबूती से खोज रहे हो तो तुम मजबूत बने हो।
तुम कहते होः मैं खोज कर रहूंगा!
तो तुम्हारी खोज भी तुम्हारे मैं को परिपुष्ट कर रही है।
तुम कहते होः मैं रुक नहीं सकता, चाहे कुछ भी हो जाए--पहाड़ लांघने हों
तो लांघ जाऊं; सात समुंदर पार करने हों तो कर जाऊं; तू चांद-तारों पर हो तो कोई फिकर नहीं, वहां आ जाऊंगा--लेकिन मैं तुझे पाकर रहूंगा।
यह मैं-भाव ही तो बाधा है। अन्यथा, कहीं नहीं जाना। न तो पहाड़ लांघने हैं, न समुंदर लांघने हैं, न चांद-तारों पर जाना है। इस अहंकार को समझो। मैं समझा। तुम कहते हो कि तुम खोज रहे हो। तो शायद तुम काशी गए होओ या काबा गए होओ। वेद पढ़े, कुरान पढ़े, बाइबिल पढ़ी। इसको तुम खोज कह रहे हो। उपवास किए, सिर के बल खड़े हुए, आसन लगाए--इसको तुम खोज कह रहे हो! माला जपी, शरीर को तपाया, गलाया--इसको तुम खोज कह रहे हो! लेकिन ये सब तुम्हारे

अहंकार को मजबूत कर देंगे। कुरान समझ गए, तो अहंकार और भर गया कि मैं कुरान जानता हूं। वेद पढ़ लिया, वेद कंठस्थ हो गया, तो और अकड़ गए कि वेद जानता हूं।
आसन-व्यायाम कर लिया, थोड़ी कसरत सीख ली, तो अहंकार और मजबूत हो गया--योगी हो गए। व्रत-उपवास कर लिए--त्यागी हो गए। मौन रख लिया कुछ दिन, तो मुनि हो गए।
यह अकड़ तो बढ़ती चली जाएगी। और यही अकड़ रुकावट है।
कौन रोक रहा है तुम्हें परमात्मा से मिलने से? सिवाय तुम्हारे और कोई
भी नहीं।
न तो उपवास करने की जरूरत है, न व्रत, न त्याग। समझ चाहिए। बोध चाहिए
कि अहंकार बाधा है। अहंकार को विसर्जन करना है। जिस दिन तुम खोजी भी न रह जाओगे, जिस दिन तुम कहोगे--मेरा क्या वश! मैं असहाय! मैं कहां तुझे खोजूं? तुझे देखा नहीं पहले, मिल भी जाए तो कैसे पहचानूंगा? तेरी कुछ पहचान भी तो नहीं। तेरा कुछ नाम-पता भी तो नहीं! मैं कैसे खोजूंगा? जिस दिन तुम्हें यह बात दिखाई पड़ जाएगी अपनी असहाय अवस्था की, उसी असहाय अवस्था में सब खोज गई, खोजी गया। उस क्षण शांति आ जाती है, एकदम शांति आ जाती है।
समझना मेरी बात। शांति लाई नहीं जाती। ऐसा बैठ-बैठ कर पालथी मार-मार
कर शांति नहीं आती। जिस दिन तुम समझोगे अपनी परम असहाय अवस्था कि मेरे किए कुछ भी तो नहीं हुआ, कभी तो नहीं हुआ; सदियों-सदियों से, जन्मों-जन्मों से कर रहा हूं, कुछ भी नहीं हुआ; मेरे किए कुछ होता नहीं है--यह बात जिस दिन तुम्हें दिखाई पड़ जाएगी कि मेरे किए कुछ होता ही नहीं, होता ही नहीं, हो ही नहीं सकता--उस क्षण क्या होगा? एक अपूर्व शांति सघन हो जाएगी। सब कृत्य रुक जाएगा। सब खोज खो जाएगी। खोजी भी खो जाएगा। एक गहन शांति तुम्हें घेर लेगी। उसी शांति में परमात्मा तुम्हें खोजता आएगा। तुम परमात्मा को नहीं खोज सकते, परमात्मा ही तुम्हें खोज सकता है।
तुम पूछते होः "मैं परमात्मा को खोजता फिर रहा हूं।"
अब काफी खोज लिए, अब रुको। अब फिरो मत। काफी फिर लिए। फिरकनी बनने से नहीं परमात्मा मिलेगा। अब रुको, ठहरो, शांत हो जाओ। समझो बात को। यह परमात्मा कोई जद्दोजहद नहीं है कि चले जा रहे हैं भागे कि खोज कर रहेंगे! कहां जाओगे? बैठो। समझो--क्या हो रहा है? समझो स्थिति को कि क्यों परमात्मा से मिलन नहीं हो रहा है? कौन सी बाधा है? कौन सी अड़चन है? निदान करो अपने रोग का। और उसी निदान में शांति आएगी। उसी शांति में परमात्मा कब तुम्हारे पास आ जाएगा, तुम्हें पता भी न चलेगा। एक क्षण पाओगे कि नहीं था, एक क्षण पाओगे कि अचानक उसने तुम्हें घेर लिया। एक क्षण पाओगे कि वही-वही है, सब तरफ वही-वही है। हंसोगे कि मैं भी खोजता फिरता था और तू सब तरफ था! तू ही तू था!
तुम पूछते होः "प्रभु, कितनी और यात्रा करनी होगी?"
तुम्हारी जितनी मर्जी हो, कर सकते हो। यात्रा से परमात्मा नहीं मिलेगा। परमात्मा दूर होता तो यात्रा से मिल जाता। परमात्मा पास है, यात्रा करोगे कैसे? यात्रा दूर के लिए करनी पड़ती है। पास ही हो, उसके लिए कैसे यात्रा करोगे? और जो तुम्हारे हृदयों के हृदयों में विराजमान हो, उसके लिए कहां यात्रा करोगे? कैसी यात्रा?
यात्रा शब्द ही भूल जाओ। यात्रा शब्द गलत है। कहीं जाना नहीं है, क्योंकि परमात्मा यहां है। जाना है ही नहीं--आना है। तुम काफी दूर वैसे ही निकल गए हो, अब घर लौट आओ।
तो मैं कहता हूंः प्यारे, घर लौट आओ! कहां जा रहे हो? कहीं जाना नहीं। भीतर शांत होकर बैठ जाओ। रुको! दौड़ने से नहीं मिलेगा परमात्मा, रुकने से मिलेगा। यह रुकने का गणित समझो।
यात्रा सदा दूर के लिए होती है। चांद पर जाना हो तो यात्रा करनी पड़ेगी। कैलाश जाना हो तो यात्रा करनी पड़ेगी। खुद पर आना हो तो क्या यात्रा करनी पड़ेगी? विक्षिप्त हो जाओगे। खुद पर आने के लिए कोई यात्रा नहीं करनी होती। सब यात्राएं जब छूट जाती हैं, तब तुम अपने पर आ जाते हो। सब यात्राओं का छूट जाना, स्वयं पर आ जाना है।
तो परमात्मा यात्रा से नहीं मिलता--यात्राओं के छूटने से मिलता है।
कर लिए खूब मेले, खूब यात्राएं, अब रुको!

और तुम कहते हो कि "संन्यास तो लिया, परमात्मा तो मिला नहीं; लोग उलटे पागल समझने लगे।"
स्वाभाविक है कि लोग पागल समझें। क्योंकि लोग जिस बात को सार्थक समझते हैं--धन को, पद को, प्रतिष्ठा को--उसको तुमने लात मार दी। तुम्हें पागल न समझें तो क्या समझें? जो उन्हें मूल्यवान लगता है, तुम्हें निर्मूल्य लगने लगा--तो पागल न समझें तो क्या समझें? वे तो तुम्हें नहीं समझ सकते, लेकिन तुम तो उन्हें समझ सकते हो--कि बेचारे ठीक ही तो कह रहे हैं! उन पर दोष मत दो।
तुम कहते होः हम परमात्मा खोज रहे हैं।
वे कहते हैंः भाई, धन खोजो, पद खोजो। अगर कहीं जाना है तो दिल्ली जाओ। चुनाव आ रहे हैं, चुनाव लड़ लो। लाटरी की टिकट खरीद लो। कुछ करो। यह परमात्मा से क्या होगा? कहां की बातें कर रहे हो? सपने देख रहे हो? कवि हो गए कि दिमाग खराब हो गया?
दोनों का मतलब एक ही होता है--कवि हो गए कि पागल हो गए।
मोहम्मद को जब पहली दफा कुरान उतरी तो घर लौट कर उन्होंने अपनी पत्नी
से कहा कि मुझे लगता है कि या तो मैं पागल हो गया या कवि हो गया। कुछ उतर रहा है मेरी खोपड़ी में, जो मेरे बस के बाहर है। कुछ घोषणाएं हो रही हैं मेरे भीतर, जो मेरी नहीं हैं। मैं किसी और ही शक्ति के हाथ में पड़ गया हूं। किसी विराट भंवर में उलझ गया हूं। मैं छोटा तिनका हूं, जो किसी अंधड़ में पड़ गया हूं।
जो शब्द उन्होंने अपनी पत्नी से आकर कहे कि मुझे जल्दी से रजाई ओढ़ा दे, मुझे बहुत कंपकंपी लग रही है; या तो मैं कवि हो गया या मैं पागल हो गया हूं।
तो लोग यही तो समझेंगे। जो भले आदमी हैं, वे कहेंगेः आप कवि हो गए क्या? मतलब तुम समझ जाना। जो जरा इतने सुसंस्कृत नहीं हैं, वे सीधी बात सीधी ही कह देते हैं। वे कहेंगेः पागल हो गए क्या? मगर बात एक ही है।
तुम तो समझो। लोग क्या करेंगे? लोग देखते। उनके अनुभव को सही मानते। तुम उनके अनुभव के विपरीत जाते हो। तुम उनको कहना कि मैं तो पागल हो ही गया और पागल होकर जो मुझे मिल रहा है, वह समझदार होकर कभी न मिला था। तुम भी पागल हो जाओ। तुम उनको आशीर्वाद देना कि आप भी पागल हो जाएं।
कहां-कहां तू फिरेगा भटकता आवारा
न इस जहां से न उससे मिलेगा कोई पता
नहीं है दोनों जहानों में कोई तेरे सिवा
तू अपने आप में खोकर खुद अपने आप को पा
खुदी में देख खुदा, ओम ओम तत्स्त ओम
तुझे जहान में संन्यासी कम ही समझेंगे
यहां के लोग हिकारत से तुझको देखेंगे
हर एक बात पे तेरी हंसी उड़ाएंगे
तुझे सताएंगे, पागल तुझे पुकारेंगे
दुआएं सबको दिए जा तू ओम तत्स्त ओम
और दुआ यही देना कि प्रभु करे, तुम भी पागल हो जाओ!
खोजने की व्यर्थता समझो। जिसे तुम खोज रहे हो, वह तुममें छिपा बैठा है।
जिससे हर दो जहां मुनव्वर हैं
तेरे इस हुस्न की जमा हूं मैं
नाज है अपनी जिस अदा पे तुझे
इसका इक अक्से-हश्र जा हूं मैं
मैं तेरी आरजू की हूं तशकील
शौक तेरा, तेरी दुआ हूं मैं तेरा ही नगमाए-निशात हूं मैं तेरे ही दिल की इक सदा हूं मैं इन्तहाए-कमाले-हुस्न है तू इश्क कामिल की इन्तहा हूं मैं तू है आजाद हर तआल्लुक से

हर तआल्लुक में मुब्तला हूं मैं
फिर भी मैं कोई दूसरा तो नहीं
तेरा ईमां, तेरी रजा हूं मैं
जिंदगी मेरी--आरजू तेरी
जीते जी तालिबे-फना हूं मैं
तुम सब कुछ हो। परमात्मा भी तुम्हारे भीतर विराजमान है। घर लौट आओ। जिससे हर दो जहां मुनव्वर हैं
तेरे इस हुस्न की जमा हूं मैं
जिससे यह सारी दुनिया का सौंदर्य भरा है, सारी दुनिया--यह दुनिया, वह दुनिया--दोनों दुनियाओं का सौंदर्य, उसकी जमा मेरी भीतर है।
नाज है अपनी जिस अदा पे तुझे
इसका इक अक्से-हश्र जा हूं मैं
और परमात्मा से कहा जा रहा है कि तुझे जो नाज है अपने ऊपर, मैं भी उसी नाज की एक लहर हूं।
मैं तेरी आरजू की हूं तशकील
शौक तेरा, तेरी दुआ हूं मैं
मैं तेरी अनुकंपा, तेरी करुणा हूं। तुझसे भिन्न नहीं।
तेरा ही नगमाए-निशात हूं मैं
तेरा ही गीत हूं।
तेरे ही दिल की इक सदा हूं मैं
इन्तहाए-कमाले-हुस्न है तू
तू पूर्ण सौंदर्य है।
इश्क कामिल की इन्तहा हूं मैं
तो मैं भी पूर्ण प्रेम हूं!
प्रेम तुम बन जाओ। परमात्मा सौंदर्य है। दोनों का मिलन हो जाएगा।
लेकिन खोज से नहीं--खो जाने से। मिटो! मिटना ही उसे पाने का उपाय है।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
सत्रहवां प्रवचन

भक्ति का प्राणः प्रार्थना

झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की।
सावन में उमग्यो मेरा मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़-घुमड़ चहुं दिस से आए, दामण दमक झर लावन की।
नन्हीं-नन्हीं बुंदिया मेहा बरसे, सीतल पवन सुहावन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आनंद मंगल गावन की।

राणाजी, मैं सांवरे रंग राची।
सज सिंगार पद बांध घुंघरू, लोकलाज तजि नाची।
गई कुमति लहि साधु संगति, भक्ति रूप भई सांची।
गाय-गाय हरि के गुण निसदिन, काल-ब्याल ते बांची।
उन बिन सब जग खारो लागत, और बात सब कांची।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भक्ति रसीली जांची।

मीरा को प्रभु सांची दासी बनाओ। झूठे धंधों से मेरा फंदा छुड़ाओ।
लूटे ही लेत विवेक का डेरा। बुधिबल यदपि करूं बहुतेरा।
हाय राम नहिं कछु बस मोरा। मरती बिबस प्रभु धाओ-धाओ।
धर्म उपदेस नित ही सुनती हूं। मन कुचाल से बहु डरती हूं।
सदा साधु सेवा करती हूं। सुमिरण ध्यान में चित्त धरती हूं।
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ। मीरा को प्रभु सांची दासी बनाओ।

अभी तक स्पर्श-संवेदित सुनहली धूप की बालें
प्रतीक्षा से सतत चित्रित घने हेमंत की छाया
अभी तक सुन रहा आकाश अपने छोर फैला कर
अरुण आलोक के मन में दिवा का गीत गदराया
अभी तक है सहेजे पंछियों की पांत बादल तक
बिछुड़ती, बेसंवारी, फैलती रेखा सगेपन की
अभी तक है बसाए डूबता दिन वक्र किरणों में
अचिह्नित तलतृणों की राह देखी लय विसर्जन की
प्रभु के सान्निध्य के क्षण भूले नहीं भूलते। उसकी पगध्वनि एक बार सुनाई पड़ जाए, तो अमिट रेखा छूट जाती हृदय पर। उसकी सुवास एक बार घेर ले, तो फिर उसे भुलाने का, विस्मरण करने का कोई उपाय नहीं। प्रभु-सान्निध्य की जो रेखाएं बनती हैं, वे मन पर नहीं बनतीं, आत्मा पर बनती हैं। परमात्मा का संस्पर्श आत्मा से होता है। मन पर बनी स्मृति तो मिट जाती है, धूमिल हो जाती है। आज नहीं कल, समय की धूल जम जाती है। लेकिन आत्मा पर जो संस्पर्श होते हैं, वे सदा ताजे हैं, सदा ताजे बने रहते हैं। वे कभी बासे नहीं पड़ते। मन पर तो बात घटी नहीं कि अतीत हो जाती है, व्यतीत हो जाती है। आत्मा पर जो घटता है, वह शाश्वत है, सदा वर्तमान है। अतीत नहीं होता, व्यतीत नहीं होता। क्योंकि परमात्मा का जो संस्पर्श है, वह समय के भीतर नहीं होता--वह शाश्वत घटना है, कालातीत है। यद्यपि काल की धारा में उतरती हैं वे किरणें, लेकिन वे काल की नहीं हैं।
जैसे अंधेरे में उतरे कोई किरण; अंधेरे में उतरती है, लेकिन अंधेरे की नहीं है। ऐसे ही समय की धारा में भी भक्त कभी-कभी कालातीत को बुला लेता है। उसके रुदन से, उसके प्राणों की पुकार से, जो नहीं होना चाहिए वह भी घट जाता है। अघट घट जाता है। असंभव भी संभव हो जाता है।
भक्त के जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार यह नहीं है कि वह पानी पर चल ले। पानी चलने को बना भी नहीं है। भक्त के जीवन का बड़ा चमत्कार यह नहीं है कि वह आकाश में उड़ ले। परमात्मा को आदमी को आकाश में उड़ाना होता तो पंख दिए होते। भक्त के जीवन का बड़ा चमत्कार यही है--एकमात्र चमत्कार यही है कि समय की धारा में समयातीत को खींच लाता है; क्षुद्र के मध्य विराट को बुला लेता

है। यहां जहां वासना ने सभी को मरुस्थल बना दिया है, वहां प्रभु के प्रसाद की वर्षा हो जाती है। यह चमत्कार है भक्त का। भक्त सावन की बदरिया को बुला लेता है। जन्मों-जन्मों से पड़ी थी जो भूमि हृदय की--सूखी, तपती हुई, दरारें पड़ गई थीं जिस हृदय में, सिवाय पीड़ा के जिस हृदय ने कभी कुछ नहीं जाना था-- वहां महोत्सव घट जाता है। भक्त का यही चमत्कार है। भक्त से और तरह के चमत्कार चाहने मूलतः गलत हैं। वह आकांक्षा ही भूल भरी है। इससे बड़ा और क्या चमत्कार हो सकता है कि परमात्मा, जो अदृश्य है, भक्त के सामने दृश्य हो जाता है?
उन्हीं अपूर्व क्षणों का स्मरण है मीरा के इन शब्दों में।
झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की।
जैसे बादल झुक आते हैं सावन में। स्मरण करो। पृथ्वी उमंग से भर जाती है, अहोभाव से भर जाती है। मंगलगान छिड़ जाता है। वृक्ष नाचने लगते हैं। पक्षी गीत गाने लगते हैं। सब तरफ हरियाली हो जाती है। सब तरफ हरा-भरा हो जाता है। पृथ्वी दुल्हन बनती है।
अभी कुछ दिन पहले आए होते तो सब रूखा पड़ा था, सब सूखा पड़ा था, सब विदग्ध था, मरुस्थल था। संसार वैसा ही मरुस्थल है--जहां सब दग्ध पड़ा है, सब जल गया है, ठूंठ खड़े हैं। लोग ठूंठ हो गए हैं। न उनमें पत्ते लगते हैं, फूलों की तो बात ही क्या करनी! वसंत आता ही नहीं; पतझड़ नियति हो गई है। जो है, वह खोता जाता है। जो मिलना चाहिए, वह तो मिलता नहीं। जो पास का है, वह भी रीतता चला जाता है। बूंद-बूंद कर लोग धीरे-धीरे बिल्कुल सूख जाते हैं, जड़ हो जाते हैं। कठोर हो जाते हैं, पथरीले हो जाते हैं। फूल खिलें तो खिलें कहां? ठीक मीरा ने प्रतीक चुना है, जैसे सावन की बदरिया घिर आई हो। और जैसे पृथ्वी मंगलगान से नाच उठती है, ऐसे ही एक दिन मनमोहन की बदरिया भी भक्त पर घिर आती है। हृदय उमंग बन जाता है। रोआं-रोआं नृत्य-मग्न हो जाता है। जीवन में पहली दफे अर्थ का उदय होता है। पहली बार अनुभव में आना शुरू होता हैः सब व्यर्थ नहीं है। कुछ सार्थक भी है। और सार्थक जो है वह इतना बड़ा है कि उसके लिए सारी व्यर्थता झेली जा सकती है। जन्मों-जन्मों तक जो पीड़ा झेली, वह ना-कुछ हो जाती है--उस घड़ी में, जब पहली बार मनभावन की बदरिया भक्त को घेर लेती है।
बादल का प्रतीक समझने जैसा है। बादल लाता है जल। और सावन के बादल तो बहुत जल-भरे होते हैं! जैसे आकाश में सागर लहराता हो! बादल सागर से ही आते हैं, सागर से ही उठते हैं, सागर का ही रूप हैं।
तो पहले तो बादल के प्रतीक में यह भी बात ख्याल रखनाः अनंत सागर से आते हैं! ऐसे ही परमात्मा के अनंत सागर से, उसकी महाकृपा की बदली भक्त को घेर लेती है।
जैसे सावन के बादल खूब भरे होते हैं, तैयार ही होते हैं बरस जाने को, जरा सा बहाना मिल जाए और बरसने को आतुर! और बहाना न मिले तो भी बरसने को आतुर। और बेशर्त बरसते हैं। ऐसा नहीं कि सूखी पृथ्वी पर ही बरसते हैं, भरी झीलों में भी बरसते हैं। फिर देखते नहीं कि कहां बरस रहे हैं। बरसना ही है! जब बादल इतना भरा हो तो बरसना ही पड़ेगा।
भक्त को जब पहली बार परमात्मा की सन्निधि मिलती है, तब उसे पता चलता
है कि मेरे कारण नहीं, मेरे किसी कृत्य के कारण नहीं, न मेरी प्रार्थनाओं के कारण, न मेरे भजन के कारण, न मेरे व्रत-नियम-उपवास के कारण--बल्कि इसलिए कि परमात्मा की अनुकंपा है, प्रसाद है, इसलिए वर्षा हो रही है। इसलिए नहीं कि मैंने पुकारा था। इसलिए नहीं कि मैंने बड़ी प्रार्थना और पूजा की थी। बल्कि इसलिए कि परमात्मा इतना भरा है कि न बरसेगा तो करेगा क्या! मेरे प्रयास से नहीं, उसके प्रसाद से वर्षा हो रही है।
सावन के बादल के घिरते ही सारा माहौल बदल जाता है, सारा वातावरण बदल जाता है। वातावरण जीवंत हो जाता है। वर्षा के बादल जल ही नहीं लाते, जीवन लाते हैं। जल के बिना जीवन हो भी नहीं सकता। तुम्हें पता है, तुम्हारी देह में अस्सी प्रतिशत जल है! तुम्हारी देह जल को खो दे कि तुम जी न सकोगे।
अस्सी प्रतिशत, तुम्हारा बड़ा हिस्सा जल है। अस्सी प्रतिशत तुम जल हो।
और यही अनुपात आत्मा का है तुम्हारे भीतर। बीस प्रतिशत ही संसार है।
अस्सी प्रतिशत तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है। लेकिन तुम बीस में इस

बुरी तरह उलझे हो कि अस्सी का पता नहीं चलता। तुम जितने हो, उससे बहुत ज्यादा गुना परमात्मा तुम्हारे भीतर है। लेकिन तुम अपनी क्षुद्रता में ऐसे तल्लीन हो गए हो, ऐसे व्यस्त हो गए हो कि तुम्हारी आंख ही विराट की तरफ नहीं उठती। तुमने देह को ही पकड़ कर समझा है कि सब मिल गया। और देह तो केवल दीवाल है। मालिक तो भीतर बैठा है। देह तो मंदिर है। परमात्मा तो भीतर विराजा है। जैसे कोई मंदिर की दीवालों की ही पूजा करके लौट आए और भीतर के देवता तक न पहुंचे--ऐसा अधिक लोगों का जीवन है।
आकाश में जब बादल घिर जाते हैं सावन के, तो सब तरफ जीवन की वर्षा हो जाती है। जमीन अंकुरित होने लगती है। हरियाली छा जाती है। घास ही घास फैल जाती है। फूल ही फूल खिलने लगते हैं। ठीक ऐसा ही हरापन, ऐसा ही जीवंत रूप भक्त के भीतर प्रकट होता है।
तो मीरा ठीक कहती हैः झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की।
वह जो मन के लिए सदा से प्यारा है, जो मनचीता है, जिसको सदा से चाहा है, अनेक-अनेक रूपों में जिसकी मांग की है, जिसे न मालूम कितने-कितने ढंग से खोजा है--वह आ गया! वह शुभ घड़ी आ गई, जिसकी जन्मों तक प्रतीक्षा की थी। प्रतीक्षा करते-करते न मालूम कितनी बार आशा की डोर भी हाथ से छूट गई थी। बहुत बार लगा था कि शायद परमात्मा नहीं है; होता तो मिलता। बहुत बार लगा था कि शायद मैं व्यर्थ ही खोज रहा हूं, लौट चलूं। बहुत बार लगा था कि मैं भी किस उलझन में पड़ गया हूं! यह मुझे कौन सा पागलपन सवार हो गया है! सारी दुनिया एक अर्थ में प्रसन्न मालूम होती है। धन को खोजती है, पद को खोजती है--पा लेती है। मैं किस पागलपन में पड़ गया--परमात्मा को खोजने निकला! शायद परमात्मा है ही नहीं। शायद यह मनुष्य की कल्पना ही है।
स्वभावतः लंबी यात्रा में बहुत बार इस तरह का संदेह पकड़े, बहुत बार इस तरह की दुविधा उठे, बहुत बार पैर लौटने-लौटने को हो पड़ें। बहुत बार लौट भी जाता है भक्त। फिर लौट आता है। फिर लौट आता है। बहुत बार पीछे चला जाता है। बहुत बार रास्ता छोड़ देता है। बहुत बार थक कर पटक देता है अपनी माला को। बहुत बार सोच लेता है कि नहीं, कोई नहीं है, आकाश खाली है, मैं किससे प्रार्थना कर रहा हूं? ये सब प्रार्थनाएं व्यर्थ का अरण्य-रोदन हैं। मैं जंगल में रो रहा हूं, जहां कोई सुनने वाला नहीं है। और मेरी ये प्रार्थनाएं मेरी विक्षिप्तताएं हैं। मैं किससे कह रहा हूं? यहां कोई भी तो नहीं है।
यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि भक्त को हो। ऐसा तुम्हें कभी-कभी हो तो बहुत घबड़ा मत जाना। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यात्रा लंबी है। आदमी असहाय है। आदमी की क्षमता सीमित है और असीम को खोजने निकला है। सफलता मिलती है, यह चमत्कार है। विफलता मिलती है, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। परमात्मा न मिले तो कुछ बहुत ऐसा मत सोच लेना कि महापापी हो, इसलिए नहीं मिलता। यह स्वाभाविक है। परमात्मा मिल जाए तो ऐसा मत सोचना कि महा पुण्यात्मा हो, इसलिए मिलता है। उसकी करुणा है, इसलिए मिलता है।
आदमी अपने ही प्रयास से खोजता रहे तो खोजता ही रहेगा--और खोज न पाएगा।
इस बात को भी ख्याल में लेना। खोजते-खोजते-खोजते एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि खोज तो मिट जाती है, क्योंकि अपनी असहाय अवस्था का पूर्ण बोध होता है, कि मेरे किए कुछ भी न होगा। जिस दिन यह बात इतनी सघन हो जाती है कि सौ प्रतिशत तुम्हारे भीतर बैठ जाती है कि मेरे किए कुछ भी न होगा, उसी दिन तुम्हारी प्रार्थना सच्ची होती है। उसके पहले प्रार्थना में संकल्प होता है। तुम कहते होः प्रार्थना के जरिए तुझे पा लूंगा। तुम्हें अपने पर भरोसा होता है। तुम कहते होः उपवास करूंगा, व्रत करूंगा, नियम पालूंगा--तुझे पा लूंगा। लेकिन भरोसा तुम्हें अपने पर है--अपने व्रत, अपने नियम, अपनी प्रार्थना, अपनी पूजा पर। जब तक यह भरोसा है तब तक तुम भटकोगे। यह अहंकार है। यह अहंकार का बड़ा सूक्ष्म रूप है। इसमें बहुत सार मिलने वाला नहीं है। कुछ भी मिलने वाला नहीं है।
लेकिन यह जाते ही जाते जाएगा। इसे तुम आज छोड़ भी दो तो नहीं छोड़ सकते--
जब तक तुम्हारा अनुभव ही तुम्हें न बता दे; और एक बार नहीं, हजार बार बता दे कि तुम्हारे किए कुछ भी नहीं होने वाला है। जिस दिन तुम्हें अपने पर पूरा

भरोसा खो जाएगा--उस दिन जो प्रार्थना उठेगी वही सच हो जाएगी। उसी दिन सावन की बदरिया घिर आएगी।
खूब बारीकी से इस बात को ख्याल में ले लेना, ध्यान में समाहित हो जाने देना। तुम्हारी प्रार्थनाएं चूकती हैं--इसलिए नहीं कि परमात्मा बहरा है।
तुम्हारी प्रार्थनाएं चूकती हैं, क्योंकि तुम्हारे अहंकार से उठती हैं।
अहंकार कैसे प्रार्थना करेगा? अहंकार प्रार्थना का धोखा दे सकता है।
प्रार्थना अहंकार पूर्ण हृदय में उठ ही नहीं सकती। अहंकार तो प्रार्थना से बिल्कुल ही विपरीत है।
तो अहंकार धोखा पैदा कर लेता है प्रार्थना का। जाते हो तुम मंदिर में, हाथ जोड़ते हो, झुकते भी हो--जरा भीतर देखना, तुम्हारे भीतर कोई नहीं झुका, सिर्फ देह झुकी। यह देह की कवायद हो गई।
एक मुसलमान मित्र ने एक किताब लिखी है। उसमें सिद्ध करने की कोशिश की
है कि इस्लाम में जो नमाज का ढंग है, वह एक तरह का योग है। क्योंकि मुसलमान झुकता है, बार-बार झुकता है। तो उस किताब में सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि यह झुकने से शरीर का व्यायाम होता है; यह एक तरह का योग-आसन है। यह इस्लामिक योग है। वे मित्र किताब लेकर मेरे पास आए थे। मैंने उनसे कहाः तुमने बिल्कुल ठीक ही किया। यह कवायद ही है।
वे बोलेः आपका मतलब?
मैंने कहाः तुमने सच्ची बात कह दी, हालांकि तुम्हारा प्रयोजन यह नहीं था। तुम तो सिद्ध कर रहे थे कि बहुत बड़ी बात है, यह योग है; लेकिन बात सच्ची निकल गई। यह कवायद ही है। क्योंकि आदमी तो झुकता ही नहीं; देह ही झुकती है। आदमी तो भीतर अकड़ा खड़ा है।
तुम जब मंदिर में जाकर झुकते हो, तुम झुके हो? तुम नहीं झुके, देह झुक
गई है। तुम जरा गौर से देखना। तुम अपने को अकड़ा हुआ खड़ा पाओगे। हो सकता है, मंदिर में प्रार्थना के समय, झुकते समय भी तुम चारों तरफ ध्यान रखे हो कि लोग देख रहे हैं कि नहीं, कि मैं कितना बड़ा धर्मात्मा, कितना बड़ा प्रार्थना करने वाला, जरा मेरी तरफ देखो। जब मंदिर में भीड़-भाड़ होती है तो तुम्हारी प्रार्थना लंबी हो जाती है; तुम जरा ज्यादा देर तक झुके रहते हो। तुम पड़ ही जाते हो बिल्कुल परमात्मा के चरणों में--जरा लोग ठीक से देख ही लें। और अगर फोटोग्राफर भी मौजूद हो, फिर तो कहना क्या है! अगर अखबार वाले भी उस दिन मंदिर आए हों, तब तो फिर बात ही--फिर तो तुम उठोगे ही नहीं। उस दिन तुम छोड़ोगे--जाने दो दफ्तर आज, आज प्रार्थना में ही लग जाओ।
मगर यह प्रार्थना तुम किसकी कर रहे हो? तुम परमात्मा की कर रहे हो, या लोगों की जो तुम्हें देख रहे हैं? या फोटोग्राफर की? या पत्रकारों की? तुम किसके चरणों में झुके हो? तुम किसको धोखा दे रहे हो? यह तो तुम अहंकार ही अर्जित कर रहे हो--कि मैं कितना बड़ा प्रार्थना करने वाला! कैसा पुण्यात्मा! कैसा विनम्र!
जिस दिन भक्त प्रार्थना कर-कर के हारता है, हारता चला जाता है; पराजय
के सिवाय और कोई स्वाद नहीं मिलता; विफलता, विफलता, विफलता--विफलता बिल्कुल छाती पर पत्थर की तरह बैठ जाती है--तब एक दिन बोध होता हैः परमात्मा बहरा नहीं है। जरूर मेरी प्रार्थना में कहीं भूल हो जा रही है। मैं जो भाषा बोल रहा हूं, वह परमात्मा तक नहीं पहुंच सकती। अहंकार मेरी प्रार्थना का गला घोंट देता है। उस दिन अहंकार चारों खाने चित्त जमीन पर गिर जाता है। फिर उठती है एक प्रार्थना। तुम उस प्रार्थना को कर नहीं सकते--वह प्रार्थना उठती है। तुम्हारे किए की प्रार्थना नहीं है वह। अचानक तुम पाते हो कि तुम्हारे भीतर से एक आह उठी! एक तुमुलनाद उठा! तुम देखते हो कि उठ रहा है। तुम उठाने वाले नहीं हो। तुम करने वाले नहीं हो। तुम कर्ता नहीं हो अब। अब तो यह अवश हुआ जा रहा है।
जिस दिन तुम्हारे बिना किए प्रार्थना हो जाती है, उसी दिन पहुंच जाती है। तुम्हारे द्वारा की गई प्रार्थना नहीं पहुंचेगी। तुमने की कि खराब कर दी। तुम जो भी करोगे, उससे तुम्हारा अहंकार भरेगा। कृत्य से अहंकार भरता है। जिस दिन प्रार्थना सहज उठेगी। जिसको कबीर ने कहा हैः साधो, सहज समाधि भली। जिस दिन सहज उठेगी। सहज का मतलब? तुम्हारे किए न उठेगी, तुम्हारे आयोजन से न उठेगी, तुम्हारी व्यवस्था से न उठेगी। जिस दिन तुम पाओगे कि

तुम तो कुछ भी नहीं कर रहे हो और प्रार्थना उठी जा रही है; तुम तो नहीं झुक रहे हो और झुके जा रहे हो; तुम हो ही नहीं मौजूद, तुम बिल्कुल रिक्त खड़े हो; तुम तो हार गए; तुम तो अपनी हार में मर गए--अब तुम्हारे चले जाने के बाद जो बचा है तुम्हारे भीतर, वह प्रार्थना में तल्लीन है। उसी दिन प्रार्थना पहुंच जाती है। उसी दिन परमात्मा की बदली तुम्हें घेर लेती है।
झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की।
वह बदली तो तुम्हारी राह देख रही है कि कब तुम झुको कि वह भी झुक आए। क्योंकि वह, झुक गया है जो, उसी पर झुक सकती है। जो मिट गया है, उसी पर बरस सकती है। जो अभी अकड़ा खड़ा है, उस पर नहीं। जो खाली है, उसी को भर सकेगा परमात्मा। जो अभी भरा है, उसको कैसे भरेगा?
झेन कथा है। एक विश्वविद्यालय का प्रोफेसर सदगुरु नानइन के पास गया। पहाड़ पर नानइन का झोपड़ा था। हांफ गया प्रोफेसर चढ़ते-चढ़ते। पहुंचा, जाकर बैठा। जाते ही उसने कहा कि दर्शनशास्त्र पर कुछ बात करने आया हूं। ईश्वर है?
नानइन बूढ़े फकीर ने कहाः थके-मांदे हैं आप, थोड़ा विश्राम कर लें। चेहरे पर पसीना है, थोड़ा सूख जाने दें। और तब तक मैं चाय बना लाता हूं। जहां तक तो चाय पीते-पीते ही उत्तर मिल जाएगा। अगर न मिला तो पीछे उत्तर दे दूंगा। नानइन यह कह कर भीतर चाय बनाने चला गया। वह प्रोफेसर सोचने लगाः चाय पीते-पीते उत्तर मिल जाएगा! यह आदमी पागल तो नहीं है? मैं पूछता हूं, ईश्वर है? यह कहता है कि चाय पीते-पीते उत्तर मिल जाएगा। ईश्वर के होने का उत्तर चाय पीते-पीते कैसे मिल सकता है? शक होने लगा कि मैं नाहक इतना पहाड़ चढ़ा। यह आदमी कुछ विक्षिप्त मालूम होता है। खैर, लेकिन अब आ ही गया हूं, तो दो घड़ी और सही।
नानइन चाय बना लाया। उसने प्रोफेसर के हाथ में प्याली दे दी। चाय ढालने लगा केतली से। प्याली भर गई, कप भर गया। फिर भी ढालता गया। बसी भी भर गई। फिर भी ढालता जा रहा था, तो प्रोफेसर चिल्लाया कि रुकिए! मुझे पहले ही शक हो गया कि आपका दिमाग कुछ खराब है। एक बूंद रखने की जगह नहीं है प्याली में, अब क्या फर्श पर भी चाय उंडेल देनी है?
नानइन हंसने लगा। उसने कहाः तो उत्तर यही है। तुम्हें दिखाई पड़ रहा
है कि प्याली में एक बूंद चाय रखने की जगह नहीं है। तुम्हारे भीतर परमात्मा को रखने की एक बूंद भी जगह है? पूछने चले आए हो--ईश्वर है या नहीं? पहले यह तो पूछो कि तुम्हारे भीतर उसे रखने की जगह है? तुम खाली हो? जो खाली है, वही प्रश्न पूछने का हकदार है, क्योंकि खाली में ही प्रवेश हो सकता है।
परमात्मा तो चारों तरफ से कोशिश कर रहा है तुम में प्रवेश कर जाने की, मगर तुम्हारी प्याली इतनी भरी है कि कहीं कोई जगह ही नहीं। उसकी बदलियां तो तुम्हें अभी भी घेरे खड़ी हैं। उसके लोक में तो सदा सावन है। उसके लोक में तो कभी सावन के अतिरिक्त और कोई ऋतु होती ही नहीं; वहां तो सदा एक ही ऋतु है--सदा हरापन, सदा जीवन, सदा यौवन! वहां पतझड़ कभी नहीं आता।
परमात्मा तो केवल वसंत को ही जानता है। जैसे तुम केवल पतझड़ को ही जानते हो, ऐसे परमात्मा केवल वसंत को ही जानता है। जैसे तुम केवल मृत्यु को ही जानते हो, परमात्मा केवल अमृत को ही जानता है। परमात्मा तुमसे ठीक विपरीत छोर पर खड़ा है, और चारों तरफ से घेरे हुए है कि कभी मौका मिल जाए, कभी तुम से भूल-चूक हो जाए, द्वार-दरवाजे खुले छूट जाएं, तो वह प्रवेश कर जाए। वह चोर की तरह रात भी तुम्हारे चारों तरफ खड़ा रहता है।
इसलिए तो हिंदुओं ने उसको एक नाम दिया है--हरि! हरि का अर्थ होता हैः चोर। जो हर ले, वह हरि! जो झपट ले, जो मौका पा जाए तो तुम्हें ले उड़े--वह हरि! तुम्हें घेरे खड़ा है। कभी मौका मिल जाए शायद, तुम्हारे बावजूद, कभी तुम द्वार पर सांकल लगाना भूल जाओ, कि खिड़की रात खुली छूट जाए, कि कहीं से दरवाजे में संध मिल जाए--तो वह घुस आए। मगर कहीं से तुम्हारे भीतर जगह नहीं, तुम बिल्कुल भरे हो। बूंद भर भी रखने को जगह नहीं। नहीं तो उसकी बदली तुम्हें सदा घेरे है।
देखते हो, वर्षा जब होती है, पहाड़ पर भी होती है, लेकिन पहाड़ खाली रह जाते हैं! क्योंकि पहले से ही भरे हैं, अब और भरें कैसे? गड्ढों में जल भर

जाता है, पहाड़ खाली रह जाते हैं। तुम गड्ढों से राज सीखो भक्ति का। गड्ढे की कला क्या है? क्योंकि गड्ढा खाली है, इसलिए भर जाता है, झील बन जाती है।
जो खाली है, वह भर जाता है; और जो भरा खड़ा है, वह खाली का खाली रह जाता है।
वर्षा उस पर भी होती है। हिमालय के शिखर पर भी वर्षा होती है, लेकिन सब बह कर गड्ढों में चला जाता है। पहाड़ पर कुछ भी रुकता नहीं।
तुम पर भी परमात्मा बरस रहा है, मीरा पर भी बरस रहा है। मीरा में भर जाता है, तुम पर नहीं भर पाता। तुम्हारे अहंकार के पहाड़ बड़े ऊंचे हैं। तुम्हारा अहंकार बिल्कुल गौरीशंकर जैसा है। मीरा झील बन जाती है। खूब प्यारी झील बन जाती है! खूब गहरी झील बन जाती है। उतना ही गहरा परमात्मा तुममें उतरेगा जितना गहरा तुम खाली हो गए। उसी अनुपात में उतरेगा। उससे ज्यादा उतर नहीं सकता।
कैसे तुम खाली होओ? तुम्हारा कृत्य पर भरोसा छूट जाए, तो तुम खाली हो जाओ।
सावन में उमग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
मीरा कहती हैः हरि के आने की भनक सुनाई पड़ी, इतना ही काफी हो गया। अभी दिखाई भी नहीं पड़ा हरि। अभी तो उसकी पदचाप सुनाई पड़ी, दूर! लेकिन बादल उमड़-घुमड़ कर आ रहा है। उसकी आवाज आने लगी है। इतना भी काफी है।
सावन में उमग्यो मेरो मनवा...
और मेरा मन उमंग से भर गया है। और मेरा मन नाच रहा है। और मैंने पग घुंघरू बांध लिए हैं।
... भनक सुनी हरि आवन की।
और अभी हरि आ नहीं गया है; सिर्फ भनक पड़ी है कान में कि आता है; कि आता हूं, ऐसी आवाज आ गई है। इतना भी काफी है। परमात्मा को मिलने पर तो आनंद होता ही है। मिलने की भनक भी पड़ जाए तो भी अपार आनंद होता है। सम्हाले न सम्हले, ऐसा आनंद होता है।
उमड़-घुमड़ चहुं दिस से आए, दामण दमक झर लावन की।
और जैसे बादल चारों दिशाओं से उमड़-घुमड़ कर आते हैं, ऐसा ही परमात्मा आता है। उसकी कोई दिशा नहीं है कि पूरब से कि पश्चिम से। हिंदू पूरब की तरफ सिर झुकाते, मुसलमान पश्चिम की तरफ सिर झुकाते। परमात्मा की कोई दिशा नहीं है। तुम जहां भी सिर झुकाओ, उसी को झुकता है, क्योंकि सब दिशाओं में वही है। सब दिशाएं उसकी हैं।
नानक के जीवन की कहानी पढ़ी न? वे गए काबा और सो गए रात पैर करके काबा
की तरफ। पुजारी नाराज हो गए। लाख लोग कहें कि हम मूर्ति नहीं पूजते, मगर मूर्ति वापस लौट-लौट आती है। तो काबा ही की मूर्ति बन गई। काबा का पत्थर, वह मूर्ति बन गया। उसकी तरफ पैर नहीं कर सकते।
अब इस्लाम का मौलिक सिद्धांत यही है कि परमात्मा की कोई मूर्ति मत बनाना। क्यों? क्योंकि मूर्ति बनाने से दिशा हो जाती है। मूर्ति को कहीं रखोगे, तो उससे यह भ्रांति पैदा होती है कि परमात्मा बस यहीं है। और परमात्मा सब जगह है, तो यह तो बड़ी भ्रांति हो गई कि परमात्मा बस यहीं है। पूजा होगी तो मंदिर में होगी, प्रार्थना होगी तो मंदिर में होगी। और कहीं प्रार्थना नहीं हो सकती? इन वृक्षों के नीचे बैठ कर प्रार्थना नहीं हो सकती? जब तुम परमात्मा को कहीं आरोपित कर लेते हो तो संकुचित कर देते हो, सीमित कर देते हो। तुम तो विराट होने से रहे, उसको भी सीमा में बांध देते हो! होना तो यह था कि तुम भी सीमा तोड़ कर विराट होते, तुम भी सीमा के बाहर असीम में उड़ते। तुमने उलटा किया। तुमने, परमात्मा असीम था, उसको भी सीमा में बांध दिया। तुम परमात्मा जैसे होते, तब तो क्रांति घटती; तुमने उलटा किया, परमात्मा को अपने जैसा बना लिया।
बाइबिल कहती है कि परमात्मा ने आदमी को अपनी शक्ल में बनाया। वह बात गलत है। आदमी ने परमात्मा को अपनी शक्ल में बना लिया है। इसलिए मूर्तियां खड़ी हो गईं।
इस्लाम का मौलिक सिद्धांत है कि मूर्ति मत बनाना। मगर बात रुकती नहीं। बन ही जाती है मूर्ति। आदमी ऐसा मूढ़ है कि मूर्ति बिना बनाए रह नहीं सकता। सिर्फ परम भक्ति को जिसने जाना है, वही मूर्ति बनाने से बचे तो बचे।

तो काबा के पुजारी नाराज हो गए। उन्होंने नानक को कहा कि बदतमीज हो! देखने में साधु मालूम पड़ते हो। लेकिन तुम्हें इतना भी शऊर नहीं, इतना भी संस्कार नहीं है कि पवित्र पत्थर की तरफ पैर करके सो रहे हो? परमात्मा के मंदिर की तरफ पैर करके सो रहे हो?
नानक ने ठीक कहा। नानक ने कहाः तो मेरे पैर तुम वहां कर दो, जहां परमात्मा न हो।
मुश्किल में पड़ गए होंगे पुजारी। लेकिन पुजारियों जैसे मूढ़ तो खोजने कठिन हैं। कहानी यह कहती है कि उन्होंने करने की कोशिश की। नानक के पैर उन्होंने दूसरी दिशा में करने चाहे। लेकिन जहां-जहां उन्होंने नानक के पैर किए, काबा उसी तरफ सरक गया।
यह बात शायद हुई हो, न हुई हो। जहां तक तो नहीं हुई होगी। लेकिन इसके पीछे अर्थ गहरा है। ये इस तरह की कहानियां इतिहास नहीं हैं। इस तरह की कहानियां पुराण हैं। और पुराण इतिहास से बहुत मूल्यवान है। इतिहास तो कूड़ा-कर्कट का हिसाब है। पुराण शाश्वत की दृष्टि है।
अब तुम यह जिद्द मत करना--जैसा कि सिक्ख करते हैं--कि सच में ही काबा चारों तरफ हटा। लेकिन बात बड़ी मूल्य की है। नानक के पैर जिस तरफ गए होंगे, उसी तरफ पुजारियों को ख्याल आया होगा--परमात्मा तो यहां भी है! ऐसी कौन सी जगह है जहां परमात्मा नहीं है? यही काबा के हटने का अर्थ है। तो फिर उन्होंने पहले पूरब कर दिए होंगे, फिर दक्षिण कर दिए होंगे, फिर उत्तर कर दिए होंगे--और सब दिशाओं में करके उन्होंने बार-बार सोचा होगा कि नानक ने शर्त यह रखी है कि मेरे पैर उस तरफ कर दो जहां परमात्मा नहीं है। हर तरफ पैर करके उनको संदेह पैदा हुआ होगा कि परमात्मा तो यहां भी है; यह बात भी ठीक नहीं है। नानक के पैर उस तरफ करने संभव नहीं हैं, जहां परमात्मा न हो। क्योंकि ऐसी कौन सी जगह है जहां परमात्मा नहीं?
परमात्मा सब दिशाओं में है। सब दिशाएं उसकी हैं। सारा अस्तित्व उसका है। वह अस्तित्व में सब तरफ डूबा है, हर तरफ डूबा है। वही पत्थर है, वही नदी है, वही वृक्ष है, वही पशु-पक्षी है, वही चांद-तारा है। सब तरफ काबा है। कहां करोगे पैर?
नानक ने कहाः अब तुम्हीं सोचो। आखिर मुझ गरीब को सोना भी पड़ेगा कि नहीं? कहीं तो पैर करूंगा? तो काबा की तरफ करूं कि काबा की तरफ न करूं, क्या फर्क होता है? पैर तो परमात्मा की तरफ ही होंगे। फिर पैर भी तो उसी के हैं। फिर पैर के भीतर भी तो वही विराजमान है। तो अड़चन क्या है? नाराजगी क्या है? मीरा कहती हैः उमड़-घुमड़ चहुं दिस से आए!
वह चारों दिशाओं से आता है। वह सब तरफ से आता है। तुम भर खाली हो जाओ। तुम भर शून्य हो जाओ। तुम भर रिक्त हो जाओ। इसी तरह तो सावन के बादल भी आते हैं।
तुम वैज्ञानिक से पूछोः बादल क्यों उमड़-घुमड़ कर आते हैं? तो वैज्ञानिक कहता है कि गर्मी में जब धूप पड़ती है सघन, सूरज तपता है अग्नि की तरह, तो जहां-जहां सूरज बहुत गहन अग्नि की तरह बरसता है, वहां-वहां वायु विरल हो जाती है। ताप के कारण वायु विरल हो जाती है, फैल जाती है। ताप को सह नहीं पाती और भाग खड़ी होती है। तो वह जहां-जहां से वायु भाग खड़ी होती है, वहां-वहां गड्ढे हो जाते हैं। वायु में गड्ढे हो जाते हैं। जैसे पृथ्वी में गड्ढे होकर झील बनती है, ऐसे वायु में गड्ढे हो जाते हैं। और उन गड्ढों को भरने के लिए बादल चारों तरफ से भागने लगते हैं। बादल भी भागते हैं गड्ढों की तरफ।
और परमात्मा के बादल भी तभी भागते हैं जब तुम्हारे भीतर ध्यान का गड्ढा हो, प्रार्थना का गड्ढा हो। जब तुम इतने विरल हो जाओ कि यह पत्थर जैसा सख्त तुम्हारा अहंकार छितर-बितर हो जाए।
उमड़-घुमड़ चहुं दिस से आए, दामण दमक झर लावन की।
खूब बिजली चमकती है।
... दामण दमक झर लावन की।
और पानी से भरी हुई बदली करीब आती है। और खूब बिजली चमकती है।
ठीक ऐसी ही घटना भीतर भी घटती है। इसलिए यह प्रतीक मीरा ने खूब प्यारा चुना है। परमात्मा के बादल जब तुम्हारे भीतर आते हैं तो खूब बिजली चमकती

है। खूब रोशनी होती है! उसी रोशनी की चर्चा तो संतों ने की है। कबीर ने कहा हैः जैसे हजार-हजार सूरज एक साथ आ गए हों, ऐसी रोशनी हो जाती है। भीतर आलोक ही आलोक फैल जाता है। आलोक के झरने बह जाते हैं। आलोक के फव्वारे फूट उठते हैं। रोआं-रोआं भीतर आलोक से भर जाता है, कोना-कोना आलोक से भर जाता है। सब अंधकार भीतर मिट जाता है। इस बिजली के चमकने की अलग-अलग तरह से कथाएं हैं। अलग-अलग परंपराएं अलग-अलग ढंग से इस बात को कहती हैं। लेकिन सभी इस बात को कहती हैं, कि भीतर परमात्मा के आने के पूर्व खूब रोशनी हो जाती है। जैसे रोशनी परमात्मा के रास्ते को साफ करती है! जैसे उसे आने के लिए रास्ता बनाती है! जैसे रोशनी के पीछे-पीछे परमात्मा चला आता है!
बादल भी बिना बिजली के नहीं बरसते। अगर तुम वैज्ञानिक से पूछोगे तो वैज्ञानिक कहता हैः बिजली के बिना पानी बन नहीं सकता। पानी बनता ही बिजली की मौजूदगी में है। बिजली की मौजूदगी कैटेलिटिक एजेंट है। बनता तो है पानी हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने से। लेकिन दोनों का मिलन तभी होता है जब बिजली मौजूद हो। अगर बिजली मौजूद न हो तो मिलन नहीं होता। उतना उत्ताप चाहिए बिजली का। उसी उत्ताप में, उसी उत्ताप की मौजूदगी में आक्सीजन और हाइड्रोजन मिल जाते हैं और पानी बन जाता है।
शायद वैसी ही कुछ घटना भीतर रस के पैदा होने में भी होती है। उसका विज्ञान अभी खोजा नहीं गया। उसका रसायनशास्त्र किसी ने लिखा नहीं है। लेकिन सारे संत कहते हैं कि उसके आने के पूर्व खूब बिजली चमकती है, खूब रोशनी होती है। फिर ही वह आता है।
तो जरूर परमात्म-अनुभव भी, वह परमात्मा की जो रसधार बहेगी, वह भी, शायद रोशनी के बिना नहीं बह सकती। शायद रोशनी रास्ता बनाती है। रोशनी कैटेलिटिक एजेंट का काम करती है। रोशनी की उपस्थिति में तुम्हारे भीतर जो बिखरे हुए तत्व पड़े हैं, वे संगृहीत हो जाते हैं, एक हो जाते हैं। तुम्हारे भीतर एकता का जन्म हो जाता है। शायद उसी एकता में परमात्मा बरस सकता है। उस एकता के बिना परमात्मा नहीं बरस सकता।
तो दो तत्व मिले। एक कि तुम शून्य हो जाओ, दूसरा कि शून्य में तुम एक
हो जाओ। ये दो तत्व पूरे हो जाएं तो भक्त और भगवान में फिर कोई दूरी नहीं रह जाती। भक्त भगवान हो जाता है।
इन दोनों तत्वों को स्मरण रखो। पहला कि शून्य हो जाओ। और जब तुम शून्य
हो जाओगे तो एक होना बहुत कठिन न रहेगा। शून्य में अपने आप एक का आविर्भाव हो जाता है, क्योंकि शून्य में खंड नहीं हो सकते, शून्य के टुकड़े नहीं हो सकते। तुम अगर दो शून्यों को पास रखो तो एक शून्य बनेगा, जल्दी ही एक शून्य बन जाएगा। दो शून्यों को दूर रखने वाली कोई सीमा नहीं है। तुम पचास शून्य रखो, वे भी एक हो जाएंगे। इसलिए तो गणित में तुम एक शून्य, दो शून्य, तीन शून्य, कितने ही शून्य जोड़ो, एक ही शून्य बनता है। दस शून्य जोड़ने से दस शून्य नहीं बनते, एक शून्य बनता है। शून्य का एकता स्वभाव है।
तो पहले शून्य हो जाओ--निर-अहंकार! और फिर तुम अचानक पाओगे--तुम्हारे भीतर एक तत्व का उदय हुआ। तुम्हारे भीतर एकता सधी। इस एकता का ही पूरा शास्त्र योग है। योग यानी जुड़ जाओ, एक हो जाओ। भक्ति का सारा जोड़ हैः शून्य हो जाओ। योग का सारा जोड़ हैः एक हो जाओ। अगर तुम शून्य हो जाओ तो एक हो जाओगे। अगर तुम एक हो जाओ तो शून्य हो जाओगे। ये एक ही घटना को दो तरफ से पकड़ने के उपाय हैं।
भक्त कहता हैः शून्य हो जाओ, पूर्ण उतरेगा। योग कहता हैः तुम एक हो जाओ, तो तुम पूर्ण हो जाओगे। मगर ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कसक बढ़-बढ़ के दर्दे-दिल का दरमां होती जाती है
खिजां आखिर मेरी रश्के-बहारां होती जाती है
जहां में जब से अपने आप को मैंने मिटाया है
यहां हर शै खुशी का मेरी सामां होती जाती है
तेरी चश्मे-करम की बिजलियों की मेहरबानी से
जरा सी खाक इश्के-मेहरे-ताबां होती जाती है जहां का जर्रा-जर्रा नूरे-जल्वा से चमक उट्ठा जमीं खुर्शीद से बढ़ कर दरख्शां होती जाती है कसक बढ़-बढ़ के दर्दे-दिल का दरमां होती जाती है

खिजां आखिर मेरी रश्के-बहारां होती जाती है
दर्द बढ़ते-बढ़ते ही दवा हो जाता है। पीड़ा बढ़ते ही बढ़ते एक ऐसी घड़ी आ जाती है कि उसी पीड़ा में तुम डूब जाते और मिट जाते। वही इलाज है। तुम्हारा मिट जाना तुम्हारा इलाज है। और फिर--
खिजां आखिर मेरी रश्के-बहारां होती जाती है
फिर तुम्हारा पतझड़ वसंत में रूपांतरित होने लगता है। फिर गए उमस और धूप के दिन।
झुक आई बदरिया सावन की!
जहां में जब से अपने आप को मैंने मिटाया है
ख्याल रखना, तुम्हारे मिटने में ही सारा राज है। तुम मिटो तो परमात्मा हो जाए। तुम रहो तो परमात्मा मिटा रहेगा। दो में से एक ही हो सकता है। तुम भी और परमात्मा भी, ऐसा नहीं हो सकता। या तुम या परमात्मा। जहां में जब से अपने आप को मैंने मिटाया है
यहां हर शै खुशी का मेरी सामां होती जाती है
तो फिर हर घटना, हर घड़ी आनंद का आधार बनती जाती है। मिटो भर, फिर आनंद
ही आनंद है।
तेरी चश्मे-करम की बिजलियों की मेहरबानी से
और तेरी अनुकंपा की जो बिजलियां मुझ पर कौंध रही हैं, तेरी कृपा की जो बिजलियां मुझ पर कौंध रही हैं!
तेरी चश्मे-करम की बिजलियों की मेहरबानी से
जरा सी खाक इश्के-मेहरे-ताबां होती जाती है
यह प्रेम की जो छोटी सी धूल मैं तेरे चरणों में चढ़ाने को ले आया था, इस धूल का कण-कण ऐसी रोशनी से भर गया है कि जैसे सूरज बन गया हो। यह तेरी कृपा की बिजलियों का ही परिणाम है।
जहां का जर्रा-जर्रा नूरे-जल्वा से चमक उट्ठा
और जब तक तुम न चमक उठोगे नूरे-जल्वा से, जब तक तुम्हारे भीतर परमात्मा का नूर पूरा प्रकट न होगा, तब तक तुम्हें उसका नूर बाहर भी दिखाई न पड़ेगा। तुम वही देख सकते हो, जो तुम हो। तुम अपने से ज्यादा को नहीं देख सकते हो। तुम अपने से पार को नहीं देख सकते हो।
दृष्टि उतना ही देख सकती है, जितनी दृष्टि की क्षमता है। जो तुमने भीतर देखा है, वही तुम बाहर देख सकते हो। जो तुमने भीतर नहीं देखा है, उसे तुम बाहर भी न देख सकोगे। इसलिए तो चोर चारों तरफ चोर को देखता है। बेईमान बेईमानों को देखता है। ईमानदार को बेईमानी नहीं दिखाई पड़ती। और अगर ईमानदार को बेईमानी दिखाई पड़ती हो तो समझ लेना कि अभी ईमानदारी ऊपर-ऊपर है, भीतर नहीं गई। भक्त को तो सब तरफ भगवान दिखाई पड़ता है। चोर कैसे दिखाई पड़ेगा? बेईमान कैसे दिखाई पड़ेगा? जिस दिन तुम्हें भीतर अनुभव हो जाएगा... वही तो तुम्हारे बाहर फैलने लगता है।
जहां का जर्रा-जर्रा नूरे-जल्वा से चमक उट्ठा
एक बार भीतर रोशनी हो जाए, फिर सब तरफ रोशनी पड़ने लगती है।
जमीं खुर्शीद से बढ़ कर दरख्शां होती जाती है
और फिर तो यह साधारण सी पत्थर-मिट्टी से बनी जमीन चांद से भी ज्यादा सुंदर होने लगती है।
सब तरफ सौंदर्य है, अगम सौंदर्य है, अपार सौंदर्य है। लेकिन तुम्हारे पास सौंदर्य को देखने की आंख नहीं है, रोशनी नहीं है।
उमड़-घुमड़ चहुं दिस से आए, दामण दमक झर लावन की।
नन्हीं-नन्हीं बुंदिया मेहा बरसे...
और परमात्मा जब बरसता है तो नन्हीं-नन्हीं बूंदों में, कि तुम्हें जरा भी चोट न हो। फुहार की तरह बरसता है।
नन्हीं-नन्हीं बुंदिया मेहा बरसे...
मेह की तरह बरसता है। ऐसी भयंकर जलधार नहीं लग जाती। तुम जितना पचा सको उतना बरसता है।
तुमने देखा? जीवन की यही व्यवस्था है। छोटा बच्चा सिर्फ दूध पचा सकता है, तो परमात्मा उसके लिए दूध बन कर आता है मां के स्तन से। जैसे-जैसे बच्चा ज्यादा पचाने लगेगा वैसे-वैसे मां के स्तन का दूध विदा होने लगेगा।

जिस दिन बच्चा भोजन को पचाने में समर्थ हो जाएगा, दूध विलीन हो जाएगा। अब बच्चा दूध से बंधा रहे, इसकी आवश्यकता नहीं है।
तो पहले तो परमात्मा बूंदों की तरह बरसता है। जब तुम उतनी बूंदें पचा लेते हो, तब और बड़ी धार आती है। जब तुम और बड़ी धार पचा लेते हो, तब सागर की तरह तुम पर बरसता है। परमात्मा की अनुकंपा प्रतिपल मौजूद है। तुम जितना पचा सकते हो उतना ही तुम्हें मिलता है। इसलिए परमात्मा को खोजने की बजाय अपनी पाचन-शक्ति को बढ़ाना जरूरी है।
लोग कहते हैंः परमात्मा कहां है? यह ऐसे ही है कि जैसे तुम कहो कि सूरज कहां है? और सूरज को आंख खोल कर खड़े हो जाओ तो आंखें अंधी हो जाएं। पचाने की क्षमता! कितनी है तुम्हारी पचाने की क्षमता? जितने तुम खाली हो, उतनी पचाने की क्षमता है। अगर तुम परम शून्य हो गए तो पूरे परमात्मा को पचा लेने की क्षमता है।
नन्हीं-नन्हीं बुंदिया मेहा बरसे, सीतल पवन सुहावन की।
बादल भी बरस रहा है--छोटी-छोटी बूंदों में फुहार की तरह। और ठंडी हवा बहने लगी है।
जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर हरियाली आएगी वैसे-वैसे शीतल हवा भी आएगी। असल में तुम जब हरे हो जाते हो, तो जो भी तुम्हें छूता है, वह शीतल हो जाता है। यह शीतलता बाहर से नहीं आती--तुम्हारी हरियाली का परिणाम है। चूंकि तुम तप्त हो और जल रहे हो और नरक लिए चल रहे हो और सब तरह की आग तुम्हारे भीतर है, इसलिए जो भी तुम्हें छूता है, वह भी तप्त मालूम होता है, उष्ण मालूम होता है।
तुमने कहानी सुनी है कि नरक में भयंकर आग जल रही है। और लोग उस आग में फेंके जा रहे हैं। तुमने अगर इसे ठीक से समझा तो तुम पाओगे, यह तुम्हारी दशा अभी है।
लोग सोचते हैंः मरने के बाद अगर पाप किए तो नरक जाएंगे। लेकिन प्रत्येक पाप तुम्हारे भीतर नरक पैदा कर देता है। बुद्ध ने कहा है कि आदमी का मकान प्रतिपल जल रहा है। तुम लपटों से घिरे हो, बुद्ध लोगों से कहते थे। जो उनके पास आता, वे कहतेः पागल! तेरा मकान लपटों से घिरा है!
और बुद्ध ने कहाः तीन तरह की लपटें हैं। एक तो तृष्णा की लपट है--कि जो मेरे पास नहीं है, वह मेरे पास हो। जो मेरे पास अभी नहीं है, वह कल मेरे पास हो। दूसरी लपट क्रोध की लपट है। जब तुम्हारी तृष्णा को कोई पूरी नहीं होने देता और बाधा डालता है तो क्रोध पैदा होता है।
तुम धन कमाने जा रहे हो, किसी ने बाधा डाल दी, किसी ने अड़ंगा लगा दिया, क्योंकि दूसरे लोग भी धन कमाने निकले हैं, तुम अकेले ही नहीं निकले हो। तो प्रतियोगी जितने कम हो जाएं, उतना ही अच्छा। क्योंकि धन सीमित है और आकांक्षी बहुत हैं। तो तुम जब जाओगे धन कमाने तो तुम्हें जगह-जगह बाधाएं मिलेंगी। जगह-जगह लोगों ने रास्ता रोक रखा है। जगह-जगह लोग बंदूकें लिए खड़े हैं। वे कहते हैंः लौट जाओ अपना भला चाहते हो तो, अब आगे मत बढ़ो। बस यहीं तक बहुत है।
तो जिस व्यक्ति के जीवन में तृष्णा है, उसके जीवन में आज नहीं कल क्रोध की लपट भी जलेगी। जब कोई रुकावट डालेगा तो क्रोध पैदा होगा। और अगर रुकावट के पार निकल गए तुम, अगर रुकावटें तुम्हें न रोक पाईं और तुम सफल हो गए धन पाने में, पद पाने में, तो फिर लोभ पैदा होगा। लोभ का मतलब होता हैः जो मुझे मिल गया, अब वह मेरे पास रहे। तृष्णा का अर्थ होता हैः जो मेरे पास नहीं, मेरे पास हो। लोभ का अर्थ हैः जो मेरे पास है, अब किसी और के पास न जाए। और दोनों के बीच में क्रोध है।
बुद्ध ने कहाः ये तीन अग्नियां हैं, जिनमें हर आदमी जल रहा है। हर आदमी इन तीन लपटों में घिरा है। और इन तीन लपटों से तुम्हारे भीतर अहंकार पैदा होता है।
क्रोध अहंकार का भोजन है। तृष्णा अहंकार का फैलाव है। लोभ अहंकार का पैर जमा कर खड़ा हो जाना है। जो मेरा है वह मेरा है! और जो तेरा है वह भी तेरा नहीं रहने दूंगा, उसे भी मेरा करके रहूंगा! फैलूंगा, घेर लूंगा सारी पृथ्वी को! इन तीन लपटों में तुम जलते हो, तो तीनों लपटों का जो परिणाम है वह है अहंकार! और अहंकार नरक है।

बुद्ध ने कहाः अगर ये तीन लपटें बुझ जाएं तो अहंकार भी बुझ जाता है। क्योंकि ये तीन लपटें अहंकार के लिए ईंधन का काम करती हैं।
जो तुम्हारे पास नहीं है, उसे चाहो मत। और जो तुम्हारे पास है, उस पर मालकियत मत रखो। प्रभु की कृपा कि तुम्हारे पास है और जब लेना चाहे ले ले! जिसने दिया है वह वापस ले ले, तो तुम अड़चन मत डालो। और लोग अगर दौड़ रहे हैं धन पाने और तुम्हारे मार्ग में बाधा डाल देते हैं, तो क्रोध मत करो। क्योंकि तुम भी उनके मार्ग में बाधा डाल रहे हो। तुम्हें मार्ग में पाकर ही तो वे हटा रहे हैं। तो उन जगहों से हट जाओ जहां क्रोध पैदा होता हो। लोभ, क्रोध और वासना, ये तीनों अगर न हों तो तुम्हारा अहंकार बुझ जाएगा। और जहां अहंकार बुझा कि शून्य पैदा हुआ। उसी शून्य में परमात्मा अवतरित होता है। उसी खाली जगह में। अहंकार जिस सिंहासन पर विराजा है, उसी सिंहासन पर परमात्मा भी बैठेगा। अहंकार को हटा दो। सिंहासन खाली करो। नन्हीं-नन्हीं बुंदिया मेहा बरसे, सीतल पवन सुहावन की।
और जब सब शांत हो जाता है भीतर--अहंकार, वासना, तृष्णा, मोह, लोभ, क्रोध--स्वभावतः शीतल हवाएं बहने लगती हैं। सुगंधित हवाएं बहने लगती हैं। मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आनंद मंगल गावन की।
मीरा कहती हैः आ गई घड़ी--आनंद मंगल गावन की! आ गई घड़ी नाचने की! आ गई घड़ी पैर में घुंघरू बांध लेने की! आ गई घड़ी, जिसकी प्रतीक्षा थी जन्मों- जन्मों से!
जो इन आंखों ने देखा, क्या बताएं
जो गुजरी दिल पे अपने, क्या सुनाएं
फलक ने ढाए हम पर जुल्म क्या-क्या
जमीं ने हम पे कीं क्या-क्या जफाएं
न पूछ ऐ दोस्त रूदादे-गमे-दिल
तुझे भी साथ अपने क्यों रुलाएं तमन्नाओं, उम्मीदों, हसरतों के फिर अब ख्वाबीदा फितने क्यों जगाएं इसी में मसलहत है चुप रहें हम जहां में हश्र आखिर क्यों उठाएं इनायत जिसने दर्दे-दिल किया है उसी को देते जाएंगे दुआएं
चमक उठी हैं तेरे नक्शे-पा से जहाने-शौक की तारीक राहें तेरी चश्मे-करम की एक झलक से मिटी हैं आसमां की सब जफाएं तेरे एक हर्फे-जेरे-लब से उठें खुलूसे-इश्क की सारी वफाएं दमे-जां बख्श से तेरे हुई हैं
मुअत्तर दोनों आलम की फिजाएं
रुखे-रोशन अम्बवाजे तबस्सुम
मेरी बख्शी गई हैं सब खताएं
भुला सकते हैं दुनिया की हर इक शै
मोहब्बत को तेरी कैसे भुलाएं
जब भक्त भगवान के सान्निध्य में आना शुरू होता है तब उसे पता चलता है
कि इतने दुख झेले, इतनी पीड़ाएं झेलीं, रास्ते में इतने कांटे चुभे, राह में इतने नरक भोगे--लेकिन सब अब भूले जा सकते हैं। उसकी अनुकंपा की एक बूंद भी उन सबको भुला देने के लिए काफी है।
जो इन आंखों ने देखा, क्या बताएं
जो गुजरी दिल पे अपने, क्या सुनाएं
फलक ने ढाए हम पर जुल्म क्या-क्या
जमीं ने हम पे कीं क्या-क्या जफाएं
न पूछ ऐ दोस्त रूदादे-गमे-दिल
तुझे भी साथ अपने क्यों रुलाएं

सब मिट जाता है, जैसे एक दुख-स्वप्न देखा था। उसकी बात भी छेड़ने का मन नहीं रह जाता। भक्त बहुत बार सोचता है कि जब भगवान को मिलेगा तो करेगा सब शिकायतें। खोल कर रख देगा अपनी पीड़ाओं का चिट्ठा। कहेगाः ये तुमने क्यों इतने कष्ट दिए? क्यों इतनी तकलीफें दीं? क्यों ऐसा संसार बनाया? क्यों हमारे मन को ऐसा उपद्रवी रूप दिया? क्यों इतनी वासनाएं भरीं? क्यों? पूछूंगा!
स्वभावतः सभी भक्तों के मन में यह भाव होता है कि जिस दिन भगवान मिलेगा, कुछ सवाल तो पूछ ही लेने हैं। ऐसा क्यों किया तूने? क्यों इतना दुख भरा संसार बनाया? तू तो करुणावान है, फिर तूने इतना दुख भरा संसार क्यों बनाया? तू तो परम रोशनी है, इतना अंधेरा रास्ते पर क्यों घना किया? क्या है हमारा कसूर? क्या था हमारा कसूर? हमें क्यों दिए ऐसे पाप से भरी हुई वृत्तियों के तूफान? हमारे मन में क्यों ऐसी वृत्तियां पैदा कीं? हमें क्यों इस ढंग से रचा?
लेकिन जब परमात्मा से मिलन होता है तब समझ में आता है--
तमन्नाओं, उम्मीदों, हसरतों के
फिर अब ख्वाबीदा फितने क्यों जगाएं
अब उन खोई हुई बातों को क्यों उठाना? अब व्यर्थ की बातों का क्यों राग छेड़ना?
इसी में मसलहत है चुप रहें हम
जहां में हश्र आखिर क्यों उठाएं
अब बात गई सो गई।
इनायत जिसने दर्दे-दिल किया है
उस क्षण तो परमात्मा से मिलन के क्षण में सब शिकायत खो जाती हैं। उस क्षण तो धन्यवाद उठता है।
इनायत जिसने दर्दे-दिल किया है
उसी को देते जाएंगे दुआएं
तब शिकायत नहीं उठती, दुआ उठती है। प्रार्थना उठती है। धन्यवाद उठता है।
चमक उठी हैं तेरे नक्शे-पा से
जहाने-शौक की तारीक राहें
और तेरे पैरों के चिह्न से सब अंधेरे मिट गए हैं। रास्ते रोशन हो गए हैं।
तेरी चश्मे-करम की एक झलक से
तेरी अनुकंपा की एक बिजली कौंधी।
मिटी हैं आसमां की सब जफाएं
सब दुख-दर्द मिट गए, सब पीड़ाएं मिट गईं, सब नरक समाप्त हो गए। वह जो देखा था, एक दुख-स्वप्न था, असलियत न थी।
भुला सकते हैं दुनिया की हर इक शै
मोहब्बत को तेरी कैसे भुलाएं
वह सब भूल गया। वह सब समाप्त हो गया।
ऐसा कभी-कभी तुम्हारे सामान्य जीवन में भी घटता है। अगर कोई स्त्री अपने प्रेमी की राह देख रही है, तो हजार शिकायतें करती है मन में, कि इस बार आओ तो यह कहूं, यह कहूं, यह कहूं। कितना रुलाया है! कितना सताया है! कितना गम दिया! इस बार आओ तो मुंह से बोलूंगी भी नहीं। और जब प्रेमी आता है तो नाचने लगती है। तो भूल जाती है। वह जो सब हुआ था, गया। उसकी बात भी छेड़ने जैसी नहीं लगती। इस शुभ घड़ी में, इस मंगल घड़ी में, इस गीत गाने की घड़ी में उन कांटों की बात बेहूदी लगती है, उठाने जैसी नहीं लगती। यह एक झलक प्रेमी की--और सब दुख समाप्त हो गए!
यह तो साधारण प्रेम में हो जाता है। तो तुम उस परम प्रेम की कल्पना कर सकते हो! याद ही नहीं पड़ता कि कभी दुख उठाए थे। याद ही नहीं आता कि कभी अंधेरा था। याद ही नहीं आता कि कभी चिंताओं ने घेरा था। याद ही नहीं आता कि कभी रास्ते पर नरक भी मिले थे। याद ही नहीं आता। भरोसा भी नहीं होता कि ऐसा कभी हुआ था। वह जरा सी रोशनी उसकी, उसकी छोटी से छोटी पड़ी हुई बूंद तृप्त कर जाती है। आनंद मंगल गावन की घड़ी आ गई!

राणाजी, मैं सांवरे रंग राची।
उस घड़ी के लिए ही मीरा कहती हैः राणाजी, मैं सांवरे रंग राची।
मैं तो उस सांवरे के रंग में रंग गई, मैं तो सांवरी हो गई। मैं तो उसी जैसी हो गई। मैं तो वही हो गई।
यह परिवार को संबोधन है। यह उसके देवर को संबोधन है--मीरा के। मीरा के देवर को अड़चन थी। पूरे परिवार को अड़चन थी। देवर तो चूंकि गद्दी पर बैठा था, इसलिए सबसे ज्यादा अड़चन उसे थी। मीरा का गांव-गांव भटकना, जंगल-जंगल भटकना, सब लोकलाज खोकर रास्तों पर नाचना, साधु-संगति में बैठना! राजघर की महिला ऐसे रास्तों पर घूमे... तो परिवार परेशान था। परिवार चाहता था कि घर में आ जाए, घर में रहे। यहां जो करना हो करे। लेकिन जो एक बार पिंजड़े से उड़ गया वह पिंजड़े में नहीं लौटना चाहता। जिसे खुला आकाश मिल गया, अब वह क्या फिकर करे? हालांकि पिंजड़ा सोने का था। मगर पिंजड़ा पिंजड़ा है, सोने का हो कि लोहे का हो। पिंजड़े पर हीरे-जवाहरात जड़े थे, यह सब सच है। मीरा कभी राजमहलों से नीचे न उतरी थी। और फिर नंगे पैरों, धूल भरे रास्तों पर भटकने लगी और जगह-जगह अपनी वीणा लेकर गीत गाने लगी। तो राणा बार-बार खबर भेजता हैः अब भी लौट आओ, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। हम क्षमा कर देंगे।
मीरा कहती हैः राणाजी, मैं सांवरे रंग राची।
अब लौटना नहीं हो सकता। लौटने वाला बचा नहीं अब। जो लौट सकता था, वह खो गया अब। अब तो सांवरिया बचा है। अब तो सांवरिया ही है, मैं नहीं हूं। अब तुम्हें मैं दिखाई पड़ती हूं, वह तुम्हारी भ्रांति है। मैंने तो अपने भीतर सब तरफ खोज कर देख लिया कि मैं नहीं हूं। अब वही है। अब वही विराजमान है। अब वही मुझमें जी रहा है। वही श्वास लेता है। अब वही देखता है। वही चलता और नाचता है। मैं करूं भी तो क्या करूं, राणाजी?
राणाजी, मैं सांवरे रंग राची।
मैं तो रच गई, पच गई। अब उस जगह आ गई जहां से लौटना हो ही नहीं सकता।
कुछ जगहें होती हैं जहां से लौटना नहीं हो सकता। जैसे कोई मर गया। अब
यह जगह आ गई, अब यहां से लौटना नहीं हो सकता। अब लाख पुकारो, अब लाख कहो कि लौट आओ भाई, थोड़ी देर सही, घड़ी भर को बोल लो, चाल लो और। मगर अब जो मर गया सो मर गया।
लेकिन कभी-कभी, कहते हैं, मुर्दा लौट आते हैं। शायद ठीक से मरे नहीं होंगे। अधूरे मरे होंगे और तुमने जल्दी मान लिया। लोग तो बड़ी जल्दी में हैं। फुर्सत किसको है ज्यादा फिकर करने की? इधर सांस अटकी ही होगी कि तुमने मान लिया कि मर गए। तुम छाती पीटने को तैयार ही थे, पीटने लगे। कभी- कभी मुर्दे लौट आते हैं। मगर, सांवरिया के रंग में जो रच गया, वह कभी नहीं लौटा है। तो वे मुर्दे शायद लौट भी आएं कभी, शायद चिकित्सा-शास्त्र थोड़ा उपाय करे, पंप वगैरह चलाए और हृदय में धड़कन मारे और किसी तरह धक्काधुक्की करे, थोड़ी देर को आदमी घबड़ाहट में आंख खोल दे कि भई इतना परेशान कर रहे हो... ! शायद कुछ देर और जिंदा रह जाए।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी। तो जब उसके ताबूत को निकालने लगे तो रास्ता आंगन में थोड़ा कम था, संकरा था। एक वृक्ष आंगन में था बीच में, उससे ताबूत टकरा गया। ताबूत टकरा गया तो पत्नी ने अंदर से आवाज दी कि मैं तो अभी जिंदा हूं। ताबूत खोला गया, पत्नी को वापस लाया गया। तीन साल पत्नी जिंदा रही। फिर तीन साल बाद मरी। जब फिर ताबूत उठाने लगे तो मुल्ला ने कहाः भाइयो, जरा सम्हाल कर, जरा झाड़ से बचाना। तुम्हारी जरा सी भूल, फिर भुगतना तो तीन साल हमको पड़ा। जरा बचा कर, जरा सावधानी से!
कभी-कभी मुर्दा लौट आते हैं। ताबूत टकरा गया। मरी न होगी पत्नी। मुल्ला ने जल्दी कर ली। मुल्ला सोच रहा होगा कि कब मरे, कब मरे... । भरोसा कर लिया कि मर गई। जिंदा ही रही होगी, सुस्त पड़ी होगी, कि जरा बेहोश हो गई होगी।
तो मरे हुए तो कभी-कभी लौट आते हैं। लेकिन जो सांवरे के रंग में रच गया
वह कभी नहीं लौटता। वह महामृत्यु है। साधारण मृत्यु में तो देह ही मरती है, भीतर तो आत्मा रहती है। लौटना हो सकता है। अगर देह फिर से व्यवस्थित कर दी जाए तो फिर आत्मा इस देह में रहने के लिए थोड़े दिन के लिए राजी हो सकती है। देह से संबंध टूट गया है आत्मा का, संबंध जोड़ दिया जाए तो शायद आत्मा

फिर टिक जाए। अक्सर हृदय गति से जो मरते हैं, अगर छह सेकेंड के भीतर सहायता पहुंचाई जा सके तो वे पुनरुज्जीवित हो सकते हैं। रूस में कोई आठ-दस आदमी इस तरह पुनरुज्जीवित हुए हैं। वे अभी जिंदा हैं। छह सेकेंड के भीतर। छह सेकेंड के बाद मुश्किल हो जाता है। छह सेकेंड गुजर जाने के बाद मस्तिष्क के तंतु टूटने शुरू हो जाते हैं। फिर आदमी लौट भी आए तो पागल होगा। क्योंकि सूक्ष्म तंतु टूट जाते हैं। इससे ज्यादा देर नहीं जी सकते हैं। मस्तिष्क के तंतुओं को प्रतिपल आक्सीजन मिलनी चाहिए। छह सेकेंड तक आक्सीजन न मिले तो वे शून्य हो जाते हैं। फिर उनको पुनरुज्जीवित नहीं किया जा सकता। शरीर लौट भी आए तो आदमी का मस्तिष्क खराब लौटेगा। लेकिन छह सेकेंड के भीतर अगर हृदय की धड़कन फिर से पैदा की जा सके, जो कि की जा सकती है, तो शायद आदमी कुछ दिन और जी जाए, कुछ वर्ष जी जाए।
मगर भक्ति महामृत्यु है। भक्त तो परमात्मा को पाता ही तब है जब अहंकार मर जाता है। और अहंकार की मृत्यु असली मृत्यु है। क्योंकि फिर दुबारा जन्म नहीं होता।
यह शरीर तो मरेगा, फिर जन्मेगा। अगर चिकित्सक न पैदा कर पाए, इसी शरीर
को फिर से ठीक न कर पाए, तो नया शरीर लेगा। अभी वासना जिंदा है। अभी शरीर को पकड़ने का आग्रह जिंदा है। किसी नये गर्भ में प्रवेश करेगा। फिर कष्ट झेलेगा नौ महीने गर्भ के। फिर नौ महीने गर्भ की गंदगी झेलेगा। फिर यही यात्रा शुरू हो जाएगी। फिर यही पागलपन। फिर यही दौड़। यही संसार!
लेकिन जिसका अहंकार समाप्त हो गया, वह दुबारा किसी गर्भ में प्रविष्ट नहीं होगा। वह बात खत्म हो गई। उसका तो महामरण हो गया। वह आत्यंतिक रूप से समाप्त हो गया।
वही मीरा कहती हैः राणाजी! तुम व्यर्थ की खबरें मुझे मत भेजो। मेरे आने का उपाय नहीं, क्योंकि मैं बची नहीं। बची होती तो जरूर आ गई होती।
मैं सांवरे रंग राची।
उसका रंग मुझे पूरी तरह रंग गया है।
सज सिंगार पद बांध घुंघरू, लोकलाज तजि नाची।
इसीलिए तो नाच सकी--लोकलाज तज कर। क्योंकि जिसे लोकलाज की चिंता होती थी, वह अहंकार बचा नहीं। जब तुम लोकलाज की फिकर करते हो, तो क्या फिकर करते हो? अहंकार की ही फिकर है--कि लोग क्या कहेंगे? अगर मैं ऐसा नाचा तो लोग क्या कहेंगे? बदनामी होगी। लोग कहेंगेः विक्षिप्त हो कि पागल हो? होश गंवा दिया! भले-चंगे थे, यह तुम्हें क्या हो गया?
लोग क्या कहेंगे, यह विचार ही अहंकार का है। लोकलाज, अहंकार को पोषण देना है।
मीरा कहती हैः अब बड़ी मुश्किल है, राणाजी!
सज सिंगार पद बांध घुंघरू...
अब तो मैंनेशृंगार उसके लिए सजा लिया। अब तो मैं उसकी हो गई और अब किसी और की नहीं हो सकती। अब न परिवार की हो सकती हूं, न प्रियजनों की हो सकती हूं, अब उसकी हो गई। अब एकांततः उसकी हो गई। यहशृंगार अब उसके लिए है; अब किसी और के लिए नहीं हो सकता।
सज सिंगार पद बांध घुंघरू...
और ये जो घुंघरू मैंने पैरों में बांध लिए, ऐसे ही नहीं बांध लिए हैं। आनंद मंगल गावन की घड़ी आ गई। मैं क्या करूं? यह मेरे बस के बाहर है। ये मैंने चेष्टा करके घुंघरू पैरों में नहीं बांध लिए हैं। मैं कोई नर्तकी नहीं हूं। ये घुंघरू वही बांध गया है। ये घुंघरू उसी ने ही बांध दिए हैं। इतना आनंद बरसा है, अब न नाचूं तो करूं क्या? अब सम्हालूं कैसे? जैसे शराब पीकर शराबी डांवाडोल होने लगता है; राह पर चलता है, कहीं पैर रखता है, कहीं पैर पड़ते हैं--ऐसी मेरी हालत है। उसको पी लेने के बाद अब पैर इस ढंग से पड़ते हैं कि नृत्य बन जाता है। यह मैं कुछ नृत्य कर नहीं रही हूं। तुम नाराज न होओ। तुम यह मत सोचो कि यह मीरा क्यों नाचने लगी रास्तों पर? वह नचा रहा है। वही नाच रहा है। वही मेरे भीतर प्रविष्ट हो गया है।
सज सिंगार पद बांध घुंघरू, लोकलाज तजि नाची।
इसलिए लोकलाज छोड़ सकी, क्योंकि जिसको लोकलाज थी, राणाजी, वह रहा नहीं।
वह मर चुका। तुम किसे खबरें भेज रहे हो?

यही तो बुद्ध ने अपने पिता को कहा था। जब बारह वर्ष बाद लौटे, पिता नाराज थे। और पिता ने कहाः तू मुझे बुढ़ापे में छोड़ कर भाग गया, तुझे शर्म भी न आई? क्षत्रिय होकर? और मैं बूढ़ा और तू मेरा अकेला बेटा और यह सारा राज्य तेरे लिए! और अब मैं थक गया हूं, चल भी नहीं सकता, उठ भी नहीं सकता, आंख से ठीक देख भी नहीं सकता--और यह सारा बोझ मुझे ढोना पड़ रहा है। यह समय मुझे सहायता देने का था, मेरे हाथ की लकड़ी बनने का था। मैं तुझे अभी भी क्षमा कर सकता हूं, मेरे भीतर हृदय है पिता का। तू घर वापस लौट आ।
बुद्ध चुपचाप सुनते रहे पिता की नाराजगी। तब बुद्ध ने कहाः आप जरा गौर से तो देखें! जो आपका घर छोड़ कर गया था, वही नहीं लौटा है। यह दूसरा ही व्यक्ति है।
बुद्ध के पिता नहीं समझ पाए। वे तो और नाराज हो गए। उन्होंने कहाः तू मुझे समझाने चला है? तू मुझे धोखा दे रहा है? मैं अपने बेटे को, और नहीं पहचानूंगा? मेरा खून तेरे खून में, मेरी हड्डी तेरी हड्डी में। मैंने तुझे पाला-पोसा, बड़ा किया। मैं तुझे नहीं पहचानूंगा कि तू मेरा बेटा है?
बुद्ध ने कहाः आप मेरी बात समझ नहीं रहे। जो गया था, वही नहीं लौटा है। देह वही है, भीतर सब बदल गया है। आप जरा गौर से देखें! आप जरा फिर से, गौर से देखें! पक्षपात छोड़ दें। यह ख्याल छोड़ दें कि मैं आपका बेटा हूं। जरा गौर से देखें! यह वही चेहरा है? हां, रंग-रूप वही है। आभा वही है? ये मेरी आंखों में झांकें। ये आंखें वही हैं, लेकिन आंखों में जो आज झलक रहा है, यह वही है? मुझे फिर से देखें। मैं शपथ खाकर कहता हूं कि जो गया था, वह मर चुका है। मैं दूसरा ही व्यक्ति हूं।
बुद्ध ठीक कह रहे हैं। बुद्ध के पिता भी ठीक कह रहे हैं। दो अलग दुनियाओं की बात--जहां भाषाएं रूपांतरित नहीं हो पातीं, जहां भाषाएं एक-दूसरे के विपरीत खड़ी हो जाती हैं। बुद्ध के पिता देह की भाषा बोल रहे हैं।
बुद्ध आत्मा की भाषा बोल रहे हैं।
वही मीरा कह रही हैः लोकलाज छोड़ कर नाच सकी, राणाजी! क्योंकि जो तुम्हारे घर से गई थी, मैं वही नहीं हूं।
मैं सांवरे रंग राची।
गई कुमति लहि साधु संगति...
वह जो तुम्हारे घर को छोड़ कर गई थी वह कुमति से भरी थी। अब मैं सुमति
हो गई हूं। यह सुमति साधु की संगति में घटी। यह दीवानों के पास बैठ-बैठ कर घटी। इन प्रभु के प्यारों के पास बैठ-बैठ कर घटी।
गई कुमति लहि साधु संगति, भक्ति रूप भई सांची।
और भक्तों के पास बैठ-बैठ कर भक्ति का रूप सच्चा हो गया।
सांसारिकों के पास बैठे रहोगे, वही चर्चा, वही मशविरा सुनोगे, तो संसार का ही रूप सघन होता जाएगा। कहीं भक्त मिलते हों, चूकना मत। कहीं चार भक्त मिल कर बात करते हों, बैठ जाना। सुनना, उनके साथ डोलना। उनके साथ थोड़ा मस्त होना। उन पर बरस रही है प्रभु की बदरी, शायद उनके पास बैठने से कुछ छींटा-छांटी तुम पर भी हो जाए। उनको प्रभु ने घेरा है, शायद उनके पास बैठ कर प्रभु की थोड़ी सी झलक तुम्हें भी लग जाए, थोड़ी भनक तुम्हें भी पड़ जाए। और थोड़ी भनक काफी है। उसकी एक किरण काफी है, क्योंकि फिर उस एक किरण के सहारे तुम चढ़ते चले जाओ, तो तुम सूरज तक पहुंच जाओगे।
गई कुमति लहि साधु संगति, भक्ति रूप भई सांची।
पहले तो सुना ही सुना था कि भक्ति ऐसी, भक्ति वैसी। साधु की संगति में रूप सघन हुआ।
ख्याल रखना, तुम्हारी संगति तुम्हें निर्माण करती है। तुम जैसों के पास बैठोगे, वैसे हो जाओगे। असल में तुम उन्हीं के पास बैठते हो जैसे तुम होना चाहते हो। तुम खोजते उन्हीं को हो जैसे तुम होना चाहते हो। अगर तुमको पद पर पहुंचना है, तो तुम राजनेता की संगति करोगे। अगर तुम्हें धन खोजना है, तो तुम धनी की संगति करोगे कि इसके हाथ से शायद नुस्खा कभी लग जाए। मैंने सुना है, एक भिखमंगा रास्ते पर खड़ा था। बड़ी अकड़ से खड़ा था। भिखमंगों की भी अपनी अकड़ होती है! एक सेठ पास से गुजरते थे। भिखमंगे ने कहाः सुनो सेठ जी! कुछ मिल जाए!
सेठ ने कहाः भले-चंगे हो, मस्त-मुस्तैद! कुछ कमाते क्यों नहीं?

और उस भिखारी ने कहाः आपको पता नहीं कि मैं कौन हूं? मैंने एक किताब लिखी है। मैं एक लेखक हूं।
सेठ भी थोड़ा उत्सुक हुआ कि कौन सी किताब लिखी है?
उस भिखमंगे ने कहाः मैंने किताब लिखी है--धन कमाने के सौ तरीके।
सेठ ने कहाः हद्द हो गई! तुमने किताब लिखी और भीख मांग रहे हो?
उसने कहाः यह भी उसमें एक तरीका है। कुछ मिल जाए!
भिखमंगे भी किताबें लिखते हैं--धन कमाने के सौ तरीके! असल में भिखमंगे
ही ऐसी किताबें लिखते हैं। जो धन कमा रहे हैं, उनको फुरसत कहां कि धन कमाने के सौ तरीके, यह किताब लिखें।
मैंने एक और घटना सुनी है। अमरीका का एक बहुत बड़ा अरबपति, एण्ड्रू कारनेगी, एक किताब की दुकान पर गया। सामने ही उसने एक किताब देखी। उठा कर पन्ने पलटे, नई-नई छपी थी--हाउ टु ग्रो रिच! धनी कैसे हों! उसने किताब को ऐसा पलटा-उलटा, रख दिया।
दुकानदार ने कहाः किताब पढ़ने जैसी है। और अगर आप चाहें तो मैं किताब
के लेखक से भी मिला दूं। संयोग की बात, लेखक अभी मौजूद हैं, दुकान के भीतर बैठे हैं।
एण्ड्रू कारनेगी ने कहा कि मैं लेखक को मिलूं, फिर यह किताब खरीद सकता हूं।
लेखक को बुलाया। फटे-पुराने कपड़े पहने लेखक हाजिर हुए। एण्ड्रू कारनेगी हंसने लगा। उसने पूछाः यहां कैसे आए? लेखक से पूछाः यहां कैसे आए? बस में आए, ट्रेन में आए, कार में आए, टैक्सी में आए?
उसने कहाः पैदल आया।
तो एण्ड्रू कारनेगी ने कहाः धन कमाना हो तो मेरे पास सीखने आना। धन कमाने के लिए किताब लिखी है, और अभी बस में चलने तक की हैसियत नहीं है! तुम्हारी किताब काम किसके आएगी?
एण्ड्रू कारनेगी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैंने जितनी किताबें पढ़ी हैं धन कमाने के बाबत, वे उन्होंने लिखी हैं, जिनके पास धन था ही नहीं। असल में धन कमाने के बाबत किताबें ही वे लोग लिखते हैं। असल में यह किताब भी धन कमाने का ही एक ढंग है, और कुछ खास मतलब नहीं है। क्योंकि लोग धन कमाना चाहते हैं, तो किताब बिक जाती है।
भिखमंगा भी धन कमाने की योजनाएं बनाता रहता है। तो भिखमंगा भी कोशिश करता है कि कहीं से राज मिल जाए।
अगर तुम धन के पीछे दीवाने हो, तो तुम धनी की सेवा में रत रहोगे। अगर
पद के पीछे दीवाने हो, तो राजनेता के हाथ-पैर दबाओगे। तुम वहीं जाओगे जो तुम पाना चाहते हो। जिस दिन तुम साधु के पास जाने लगे, उस दिन समझना कि शुभ घड़ी आई, तुम में प्रभु की प्यास उठी!
गई कुमति लहि साधु संगति, भक्ति रूप भई सांची।
और वहीं भक्ति का असली रूप प्रकट होगा। शास्त्रों में नहीं, किताबों में नहीं--भक्तों के पास; जो भक्त हैं। क्योंकि भक्ति कोई सिद्धांत नहीं है--जीवनचर्या है। एक जीने की शैली है। एक और ही ढंग है जीने का। परमात्मा में जीने की एक प्रक्रिया है। तैरना सीखना हो तो किताब पढ़ने की जरूरत नहीं--कोई तैरना जानता हो, उसके पास जाना। किताबों से कोई तैरना नहीं सीखता; और सीखो तो नदी में मत उतरना। नहीं तो डूबोगे, बुरी तरह डूबोगे! किताबों से तैरना सीखो तो अपनी गद्दी पर ही तैरना। वहीं हाथ-पैर मार लिए, विश्राम कर लिए। नदी में मत जाना भूल कर।
कुछ लोग भगवान को भी किताबों से समझते हैं। चूक हो जाती है। उनका भगवान भी किताबी और कागजी होता है। असली भगवान को सीखना हो तो वहां सीखना जहां असली भगवान की भनक पड़ गई हो; जहां कोई भक्त मस्त हो।
गाय-गाय हरि के गुण निसदिन, काल-ब्याल ते बांची।
और मीरा कहती हैः अब क्या तो करूं फिकर लोकलाज की? काल-ब्याल से भी बच गई! वह जो मौत आने वाली थी, वह भी गई। अब मरने वाली नहीं हूं। वह मरण तो हो गया। जो मरने वाला था, मर गया। जो अमृत है, वह मेरे भीतर प्रकट हुआ है। अब किसकी चिंता करनी है! शाश्वत से मेरा संबंध जुड़ गया। शाश्वत से सगाई हो गई।

गाय-गाय हरि के गुण निसदिन...
और कैसे यह हुआ? यह हुआ प्रभु की प्रशंसा करते-करते, उसकी स्तुति करते-करते। उसका गीत गाते, गाते, गाते--उसका गीत बैठ गया!
गाय-गाय हरि के गुण निसदिन, काल-ब्याल ते बांची।
उन बिन सब जग खारो लागत...
राणाजी! अब सारा जगत खारा है। अब तो और कोई स्वाद जंचता नहीं। प्रभु
का स्वाद लग गया, प्रभु का रस लग गया।
उन बिन सब जग खारो लागत, और बात सब कांची।
असली हीरा हाथ लग गया, अब और सब कांच है। कच्ची बातें हैं और सब। अब तुम्हारे कांच मुझे सोहते नहीं। मैं क्या करूं, मेरी मजबूरी है। मुझे क्षमा करना।
राणाजी, मैं सांवरे रंग राची।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भक्ति रसीली जांची।
दो मार्ग हैं प्रभु तक जाने के। एक तो ध्यान का--सूखा-साखा, मरुस्थल जैसा मार्ग; और एक भक्ति का--रसपूर्ण, रसीला मार्ग, जहां खूब फूल खिलते और पक्षी गीत गाते और वृक्षों की छाया है।
मीरा कहती हैः मुझे ध्यान का मार्ग नहीं जंचा। रूखा-सूखा था। हृदय का नहीं था। मुझे तो जंची बात भक्ति की।
... भक्ति रसीली जांची।
और जिसको भक्ति का मार्ग जंच जाएगा, उसको लोकलाज खोनी पड़ेगी। ध्यानी लोकलाज बचा कर चल सकता है। किसी को पता भी न चले, इस तरह ध्यान कर सकता है। लेकिन भक्त कैसे बचेगा? पता चल ही जाएगा। नाचोगे तो पता चल ही जाएगा। नाचोगे कैसे छिपा कर? हां, यह हो सकता है कि ध्यानी रात अपने बिस्तर में बैठ कर अपनी आंख बंद करके ध्यान कर ले। चुप बैठा रहे पत्थर की मूर्ति की तरह। पत्नी को भी पता न चले, जो पास ही सोई हो। बच्चों को भी पता न चले, घर के लोगों को भी पता न चले। ध्यान तो गुप्त रखा जा सकता है, लेकिन भक्ति गुप्त नहीं रखी जा सकती। भक्ति तो अभिव्यक्त होती है। भक्ति तो नाचती है, गाती है। भक्ति को कैसे रुकाओगे?
तो मीरा कहती हैः मुझे तो भक्ति जंची। और जंची ही नहीं, उससे मैं पहुंच भी गई। बात भी हो गई। अब लौटने का तो कोई उपाय नहीं है। और ध्यान का मार्ग मुझे कभी पसंद नहीं आया था।
यह बड़ी हैरानी की बात है कि राजस्थान ने बहुत भक्तों को जन्म दिया। शायद इसलिए कि राजस्थान रूखा-सूखा है। वैसे ही रूखे-सूखे में परेशान हो रहे हैं, अब और ध्यान का और रूखा-सूखापन भीतर क्या ले जाएं! बाहर तो जल बरसता ही नहीं, चलो भीतर ही बरस जाए!
झुक आई बदरिया सावन की।
राजस्थान ने बड़े भक्त पैदा किए। मीरा और सहजो... ये सारे भक्त राजस्थान में पैदा हुए। और बड़ी अनूठी प्यार की धारा बही!
और ऐसा ही अरब के रेगिस्तान में हुआ, सूफी भक्त पैदा हुए। वे भी रेगिस्तान में थे।
और चिन्मय ने एक प्रश्न पूछा है--कि अब आप क्यों कच्छ जा रहे हैं?
जाना पड़े!
मीरा को प्रभु सांची दासी बनाओ। झूठे धंधों से मेरा फंदा छुड़ाओ।
सब मिल जाता है भक्त को, फिर भी और-और की प्यास जलती रहती है। भक्ति ऐसा मार्ग है कि सब मिल कर भी प्यास बुझती नहीं, बढ़ती ही चली जाती है। परमात्मा इतना प्यारा है कि कितना भी पा लो तो संतोष कहां? कितना ही मिल जाए, तो भी और मिले।
तो मीरा कहती हैः
राणाजी, मैं सांवरे रंग राची।
सज सिंगार पद बांध घुंघरू, लोकलाज तजि नाची।
लेकिन इधर प्रभु से यह प्रार्थना करती है, राणाजी को यह कहती है।
प्रभु को प्रार्थना करती हैः मीरा को प्रभु सांची दासी बनाओ। राणा को तो कह देती है कि प्रभु के प्रेम में रंग गई, पग गई, सब हो गया। लेकिन प्रभु को

यह नहीं कहती कि सब हो गया। प्रभु को कहती हैः सांची दासी बनाओ। और, और करीब लो, और पास लो। सब दूरी मिटाओ।
जरा सी दूरी भक्त को अखरती है। जरा सी दूरी अखरती है! इंच भर की दूरी अखरती है। भक्त जब तक भगवान में ही एक न हो जाए, जब तक मिलन परिपूर्ण न हो जाए, और ऐसा मिलन न हो जाए कि क्षण भर को भी विरह पैदा होने की संभावना न मिट जाए, तब तक... । और ऐसा कभी नहीं होता। कितना ही करीब आते चले जाओ, भगवान विराट है, महासागर है। तुम सागर में उतर गए; फिर भी तुम पूरे सागर को थोड़े ही अपनी बांहों में बांध लोगे। सागर में डूब जाओ, फिर भी सागर विराट है, तुम्हारी बांहें छोटी हैं। तो भक्त मिल भी जाता है, आलिंगन में भी लग जाता है परमात्मा के, लेकिन फिर भी परमात्मा इतना विराट है, उसका ओर-छोर पता नहीं, इसलिए प्यास बनी रहती है।
और यह प्यास भी बड़ी प्यारी है। इसलिए प्रार्थना बनी रहती है।
ध्यानी जब परम ध्यान को उपलब्ध हो जाता है तो ध्यान छूट जाता है, ध्यान की जरूरत नहीं रह जाती। लेकिन भक्त परम भक्ति को उपलब्ध होकर भी प्रार्थना से मुक्त नहीं होता, प्रार्थना जारी रहती है।
इस भेद को ख्याल में रख लेना। ध्यान की परम पूर्णता यही है, जब ध्यान छूट जाए। ध्यान औषधि है। कट गया संसार, कट गया चित्त का विकार, कट गए विचार, हो गए निर्विचार। अब ध्यान की क्या जरूरत? तलवार का काम था, काट डाला। अब तलवार को म्यान में रख दिया, अब निकालने की जरूरत दुबारा न आएगी। तलवार को फेंका भी जा सकता है। सम्हाल कर रखने की भी कोई जरूरत नहीं।
ध्यान एक विधि है। भक्ति विधि नहीं। भक्ति तो सार-तत्व है। ध्यान विधि है। तो जिस दिन विधि का काम पूरा हो गया, उस दिन विधि समाप्त हो गई, तुम पार हो गए। तो बुद्ध ने कहा है कि धर्म तो ऐसा है, जैसे नाव। वह ध्यानी का वचन है। नदी उतर गए, नाव बेकार हो गई। अब थोड़े ही नाव को सिर पर लिए चलना पड़ेगा। जो सिर पर लेकर चले वह पागल है। लेकिन यह ज्ञानी का वचन है।
भक्त तो नाचता ही रहेगा। तब भी नाचता था जब परमात्मा नहीं मिले थे। तब नाचता था कि मिल जाओ। फिर मिलन हुआ, फिर नाचने लगा कि अब मिल गए, इसलिए नाचता है। पहले कहता थाः मिले नहीं--नाचूंगा, रिझाऊंगा, मनाऊंगा। और अब कहता हैः मिल गए, अब रुकूं कैसे? अब मिलने के कारण नाचता है। आनंद मंगल गावन की घड़ी आ गई। पहले भगवान नहीं मिले थे, इसलिए प्रार्थना करता था कि मिलो, कब मिलोगे! पुकारता था। अब मिल गए, अब इसलिए प्रार्थना करता है। पहले प्रार्थना में मांग थी, अब प्रार्थना में केवल धन्यवाद है। लेकिन प्रार्थना जारी रहती है।
प्रार्थना विधि नहीं है, उपचार नहीं है--प्रार्थना भक्ति का प्राण है।
ध्यान एक दिन छूट जाएगा। प्रार्थना सदा साथ रहेगी।
इसलिए परमात्मा से कहती हैः मीरा को प्रभु सांची दासी बनाओ।
कई खोटें अभी हैं, इनको मिटाओ। बड़ी दूरियां हैं अभी भी। भनक तो पड़ गई।
पास भी तुम्हें देख लिया। तुमने मेघ की तरह घेर भी लिया। तुमने बूंदाबांदी भी की। मगर अभी और, मगर अभी और----
... झूठे धंधों से मेरा फंदा छुड़ाओ।
अभी और बहुत धंधे हैं झूठे। अभी यह देह लगी है साथ, यह भी बाधा बनती है।
तुमने कभी किसी को प्रेम से आलिंगन किया हो अगर, तो तुम्हें पता चला होगा कि देह बाधा बनती है। और अगर तुमने केवल वासना से आलिंगन किया होगा, तो तुम्हें कभी पता नहीं चलेगा कि देह बाधा बनती है। वासना में देह साधक है। असल में वासना बिना देह के हो ही न सकेगी। वासना देह पर ही चढ़ कर चलती है। लेकिन प्रेम जब तुमने किसी को किया हो और किसी को गले लगाया हो, तब तुम को पता लगेगा कि दूरी रह गई, क्योंकि यह छाती की हड्डियां रुकावट डाल रही हैं। हृदय तुम्हारा यहां धड़क रहा है, प्रेमी का हृदय वहां धड़क रहा है, ये हड्डियां बीच में खड़ी हैं दीवाल बन कर।
प्रेम में देह बाधा है। वासना में देह साधक है। वासना के लिए देह उपकरण है, प्रेम में बाधा है। तो फिर प्रार्थना का तो क्या कहना! वहां तो जरा सा भी अस्तित्व अपना--बाधा है।

अभी मीरा है--देह में है। अभी कभी-कभी मन भी लौट आता है। अभी कभी मन खींच लेता है, गिरा देता है, कभी-कभी फिर अंधकार छा जाता है। कभी-कभी बदली बरसती है और कभी-कभी फिर रूखा-सूखा हो जाता है। मन अभी बिल्कुल ही समाप्त नहीं हो गया है।
... झूठे धंधों से मेरा फंदा छुड़ाओ।
लूटे ही लेत विवेक का डेरा, बुधिबल यदपि करूं बहुतेरा।
और कुछ ऐसा मन है यह कि सब तरह के उपाय करती हूं, फिर भी लुट जाती हूं।
कभी-कभी इसके हाथ लुट जाती हूं। इस ढंग से धोखे देता है।
... बुधिबल यदपि करूं बहुतेरा।
बहुत उपाय करती हूं। लेकिन जब तक तुम्हीं इसे न सम्हाल लोगे, तब तक मेरे सम्हाले न सम्हलेगा।
लूटे ही लेत विवेक का डेरा...
कभी-कभी विवेक खो जाता है, होश खो जाता है।
हाय राम नहिं कछु बस मोरा...
यह भक्त की भाव-दशा हैः हाय राम नहिं कछु बस मोरा...
मेरा कुछ भी वश नहीं है, बिल्कुल अवश हूं!
... मरती बिबस प्रभु धाओ-धाओ।
और मैं मर रही हूं। जैसे कोई रेगिस्तान में मरता हो और पानी को चिल्लाता होः धाओ-धाओ! अब देर न करो, जल्दी ही मुझे अपने में लीन कर लो। लाख सदमे उठा रहा हूं मैं
जख्म पर जख्म खा रहा हूं मैं
इस तरह से दिलो-जिगर ऐ दोस्त
तेरे काबिल बना रहा हूं मैं
गिन रहा हूं मौत की घड़ियां
जीस्त के दिन बिता रहा हूं मैं
आखिर इक दिन आओगे ऐ दोस्त
आज आओ--बुला रहा हूं मैं
भक्त कहता हैः एक दिन तो आओगे। एक दिन तो जरूर आओगे! एक दिन आना ही होगा। तुम्हारा ही हूं तो आना ही होगा। मगर अभी बुला रहा हूं, अभी आ जाओ! धाओ-धाओ में वही पुकार हैः इसी क्षण आ जाओ, अभी आ जाओ! देर न करो, अब और प्रतीक्षा न कराओ।
हाय राम नहिं कछु बस मोरा। मरती बिबस प्रभु धाओ-धाओ।
धर्म उपदेस नित ही सुनती हूं। मन कुचाल से बहु डरती हूं।
सदा साधु सेवा करती हूं। सुमिरण ध्यान में चित्त धरती हूं।
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ...
और मीरा कहती हैः सब करती हूं, जो करने जैसा है। कुछ छोड़ती नहीं हूं।
फिर भी कुछ चूकता है। मेरे किए पूरा न होगा, तेरे किए ही पूरा होगा। मेरे किए में अधूरा रहेगा ही, क्योंकि मैं अधूरी हूं।
धर्म उपदेस नित ही सुनती हूं...
जाती हूं, साधु-संग करती हूं। जहां भक्त मिलते हैं, मस्त होते हैं, वहां नाचती हूं। स्तुति करती हूं। धर्म के वचन सुनती हूं।
... मन कुचाल से बहु डरती हूं।
और मन से बड़ा सावधान रहती हूं कि कोई भूल-चूक न हो, दुबारा यह कोई फंदा
न फेंक दे! यह फंदा फेंकता ही चला जाता है।
आखिर-आखिर तक मन चेष्टा करता है, अंत-अंत तक चेष्टा करता है। अंत-अंत में तो बहुत चेष्टा करता है कि खींच ले। तुमने जो सारी कहानियां सुनी हैं कि अंत-अंत में प्रत्येक महर्षि को शैतान सताता है। वह शैतान नहीं है। शैतान कहां है? वह मन ही है। मन अनेक रूप रख लेता है। मन अप्सराएं बन जाता है--नाचता है चारों तरफ नग्न होकर। आखिरी जाल फेंकता है कि निकल न जाओ मेरे फंदे से, आखिरी प्रलोभन देता है।
जीसस के जीवन में उल्लेख है। जब वे परम दशा के करीब पहुंचने को हैं, ध्यान उनका करीब-करीब आ रहा है, तब शैतान प्रकट होता है। और शैतान कहता हैः तुमने तो पा लिया!

अब यह बड़े मजे की बात है, शैतान कहता हैः तुमने तो पा लिया! शैतान यह चाह रहा है कि जीसस को यह ख्याल आ जाए कि हां, मैंने पा लिया, कि गिरे। क्योंकि मैंने पा लिया, तो अहंकार आ जाएगा। ऐसी चालबाजियां हैं। मन कहता हैः अरे! तुमने तो पा लिया। अब कौन इनकार करेगा?
लेकिन जीसस ने कहाः शैतान, पीछे हट! तेरी बकवास बहुत हो चुकी, तू मुझे उत्तेजित न कर पाएगा। लेकिन शैतान आता है। और शैतान कहता हैः अब तो तुम उस अवस्था में पहुंच गए कि अगर पहाड़ से कूद जाओ तो भी चोट न खाओगे। आग में चले जाओ तो आग जलाएगी नहीं। चाहो तो पानी पर चल सकते हो। अब शैतान यह कह रहा है कि अब तुम्हारे पास शक्ति आ गई है, अब तुम इसका उपयोग करो। अब अहंकार को दूसरा उपाय सुझा रहा है--कि अब तुम चमत्कारी हो जाओ। पहाड़ से कूदो, देख लो। और शैतान कहता हैः मेरी बात मानो, देख लो तुम कूद कर, चोट न लगेगी। आग में चले जाओ, जलोगे नहीं। तुमने तो पा लिया।
और जीसस चिल्लाते हैं कि तू हट पीछे! तू मुझे धोखा न दे सकेगा।
शैतान शास्त्रों का उल्लेख करता है। शैतान कहता हैः तुम यह कर क्या रहे हो? शास्त्रों में उल्लेख है कि भक्त पानी पर चले गए हैं। शास्त्रों में उल्लेख है कि भक्त आग में चले गए हैं और जले नहीं। और पहाड़ों से कूद गए हैं और परमात्मा ने उनको अपने हाथों में झेला। तुम उस दशा में पहुंच गए हो। तुम्हें पता नहीं है। शास्त्र कहते हैं।
तो जीसस ने कहाः मुझे पता है। मुझे पता है कि शैतान भी शास्त्रों के उल्लेख कर सकता है।
यह मन ही है, जो आखिरी दांव लगा रहा है। इसके पहले कि मन बिल्कुल चला जाए, आखिरी चेष्टा करेगा। जैसे तुमने देखा, दीया जब बुझता है तो बुझने के पहले भभकता है! ऐसे ही मन भी बुझने के पहले भभक लेता है। जब कोई आदमी मरता है तो तुमने देखा? मरने के दो-चार मिनट पहले बिल्कुल स्वस्थ हो जाता है, जीवन-धारा एकदम से चोट करती है। आखिरी चेष्टा करता है जीवन बचने की। मरने के पहले लोग अक्सर स्वस्थ हो जाते हैं, बिल्कुल ठीक हो जाते हैं। सारी तकलीफ चली जाती है। जीवन आखिरी कोशिश कर रहा है। ज्योति आखिरी लपट ले रही है। और ऐसा ही मन भी आखिरी लपट लेता है।
लूटे ही लेत विवेक का डेरा। बुधिबल यदपि करूं बहुतेरा।
हाय राम नहिं कछु बस मोरा। मरती बिबस प्रभु धाओ-धाओ।
धर्म उपदेस नित ही सुनती हूं। मन कुचाल से बहु डरती हूं।
सदा साधु सेवा करती हूं। सुमिरण ध्यान में चित्त धरती हूं।
लेकिन यह सब मेरा किया है। मेरे किए से क्या होगा?
हाय राम नहिं कछु बस मोरा...
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ...
अब तो तुम्हीं मेरे गुरु बनो। अब मैं उस जगह आ गई, जहां तक साधु ला सकते थे। मैं उस जगह आ गई, जहां तक शास्त्र ला सकते थे। अब तुम हाथ पकड़ो। भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ। मीरा को प्रभु सांची दासी बनाओ।
सांची दासी का अर्थ होता है कि जिसके मन में जरा भी भेद न रह जाए, जरा
भी अंतर न रह जाए, जरा भी सीमा-रेखा न रह जाए। सब सीमाएं टूट जाएं। बूंद जैसे सागर में गिर कर एक हो जाती है, ऐसे ही मीरा कहती हैः अब मुझे भी अपने में बिल्कुल एक कर लो।
मीरा को प्रभु सांची दासी बनाओ।
ग्रहण करती निज सत्य स्वरूप तुम्हारे स्पर्श मात्र से धूल,
कभी बन जाती घट साकार, कभी रंजित सुवासमय फूल।
और यह शिलाखंड निर्जीव शाप से पाता सा उद्धार,
शिल्पी, हो जाता पाकर स्पर्श एक पल में प्रतिमा साकार।
तुम्हारी सांसों का यह खेल जलद में बनते अगणित चित्र। मृत्ति, प्रस्तर मेघों का पुंज लिए मैं देख रहा हूं राह, कि शिल्पी आएगा इस ओर पूर्ण करने को मेरी चाह।
खिलेंगे किस दिन मेरे फूल, प्रकट होगी कब मूर्ति पवित्र, और मेरे नभ में किस रोज जलद बिहरेंगे बन कर चित्र, शिल्पी, जो मुझमें व्याप्त-विलीन किरण वह कब होगी साकार?

जैसे शिल्पी पत्थर को छूकर एक जीवंत मूर्ति बना देता है, जैसे चित्रकार एक तूलिका से जीवन दे देता है, जैसे संगीतज्ञ छेड़ देता तार को, सोए संगीत को जन्म दे देता है--ऐसे ही भक्त अंतिम क्षण में पुकारता है कि अब तुम ही सम्हाल लो! अब इस वीणा पर तुम ही अपनी अंगुलियां रखो। इस पत्थर को अब तुम ही मूर्ति में रूपांतरित करो। मेरे किए जो हो सकता है, मैंने किया। जो मेरे किए नहीं हो सकता, अब तुम करो।
और एक बात ख्याल रखना, जब भक्त जो कर सकता था स्वयं पूरा कर चुकता है,
जब भक्त के पास करने को कुछ भी नहीं बचता--उसी क्षण परमात्मा के हाथ में सारी बात चली जाती है। उसी क्षण परमात्मा का हाथ तुम्हें सम्हाल लेता है। जब तुम बिल्कुल ही अवश हो जाते हो, जब तुम बिल्कुल असहाय हो जाते हो, जब तुम्हारा किया अब और कुछ हो नहीं सकता, तुम सब कर चुके जो किया जा सकता था, उसी क्षण अचानक पाते होः आ गई वे अंगुलियां, बज गए तुम्हारे तार! आ गया शिल्पी, बनने लगी तुम्हारी प्रतिमा, होने लगी साकार। जो तुममें छिपा था, उस दिन परमात्मा के हाथों प्रकट होता है।
तुम्हारा जो अंतरतम है वह परमात्मा के स्पर्श से ही खिलेगा। तुम्हारा अंतरतम का कमल उसके स्पर्श के बिना नहीं खिल सकता है।
इसलिए मीरा कहती हैः मीरा को प्रभु सांची दासी बनाओ। राणा को कहती हैः राणाजी, मैं सांवरे रंग राची। जहां तक संसार का संबंध है, संसार से कह सकती हैः मैंने प्रभु को पा लिया। लेकिन जहां तक प्रभु का संबंध है, कभी ऐसा नहीं होता कि भक्त कह पाए कि मैंने पूरा पा लिया। क्योंकि प्रभु अगर पूरा पाया जा सके तो सीमित हो जाएगा। प्रभु असीम है। इसलिए पूरा कभी पाया नहीं जा सकता। और यह सौभाग्य है, क्योंकि पाने को सदा शेष रह जाता है। यह सौभाग्य है, क्योंकि पूरा अगर प्रभु को पा लिया जाए तो प्रभु से भी ऊब पैदा हो जाएगी। उससे ही जल्दी ही ऊब पैदा हो जाएगी। चूंकि उसे कभी पूरा नहीं पाया जा सकता, रस बहता रहता है, जीवन-धारा बहती रहती है, अनंत यात्रा चलती रहती है।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
अठारहवां प्रवचन

जीवन का रहस्य--मृत्यु में

पहला प्रश्नः मैं असहाय हूं, मैं बेबस हूं। मैं क्या करूं?

असहाय हो, बेबस हो, फिर भी कुछ करना चाहते हो? असहाय हो, बेबस हो, अब तो करना छोड़ो। कृत्य पर भरोसा कब छोड़ोगे? कृत्य पर भरोसा छूट जाए, तो जो होना है, अभी हो जाए।
मीरा की सुनो।
करने से ही परमात्मा मिलता होता तो मिल ही नहीं सकता था। आदमी की करने
की बड़ी सीमा है। जो कर सकते हैं, उनका करना भी क्षुद्र है। आदमी कर ही क्या सकेगा? हाथ छोटे हैं। चांद-तारों की तरफ बढ़ा सकते हो, लेकिन पा थोड़े ही पाओगे। और चांद-तारों की तरफ बढ़े हुए हाथ सिर्फ तुम्हारी भूख की खबर देते हैं, तुम्हारी प्यास की खबर देते हैं। और जितने तुम हाथ बढ़ाओगे उतने तुम विषाद से भर जाओगे, क्योंकि हाथ बढ़े रह जाते हैं, पहुंचते नहीं। हाथ छोटे हैं।
जिस दिन तुम्हें यह ठीक-ठीक समझ में आ जाए कि मैं असहाय हूं, उस क्षण तुम्हारी आंखों में आंसू आएंगे। और कुछ भी करने को नहीं है। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम आंसू लाना। लाए गए आंसू दो कौड़ी के हैं। लाए गए आंसू तो अभिनय हैं। मैं कह रहा हूं कि आंसू आएंगे जब तुम परिपूर्ण असहाय अवस्था को समझोगे। मझधार में डूबते हुए, न यह किनारा दिखाई पड़ता, न वह किनारा दिखाई पड़ता। सहारों की कौन कहे, तिनकों का सहारा भी नहीं है। कोई आशा नहीं। सब तरफ अंधकार है और निराशा है। उस परम हताशा की दशा में आंसू आएंगे, अपने से आएंगे। सारा प्राण आंसू बन जाएगा। वैसे ही आंसू प्रार्थना बनते हैं।
प्रार्थना की नहीं जाती--होती है। आह उठेगी। तुम उठाओगे, ऐसा नहीं। तुम्हारी उठाई गई आह का क्या मूल्य हो सकता है? तुम्हारे बावजूद उठेगी। तुम न भी उठाना चाहो तो उठेगी। वही आह प्रार्थना बन जाती है।
तुम कहते तो हो कि मैं असहाय हूं, मैं बेबस हूं; लेकिन सुनी-सुनाई कहते हो। तुमने बात गुनी नहीं। तुमने बात पर बहुत ध्यान नहीं दिया। यह बात तुम्हारे अनुभव से नहीं आती। नहीं तो फिर तुम यह न पूछते कि मैं क्या करूं। करने में तो बल है। करने में तो अभी भरोसा कायम है। करने में तो अहंकार है। करने वाला सोचता हैः शायद अभी जिस ढंग से कर रहा था वह ढंग गलत था, तो नये ढंग से करूंगा; जिस राह से चलता था वह राह गलत थी, तो नई राह खोज लूंगा। यह असहाय अवस्था नहीं है।
असहाय अवस्था का अर्थ ही यही है कि मैं किसी भी राह से चलूं तो मैं ही चलूंगा न! मेरे पैर छोटे, मेरी क्षमता छोटी। यह राह की गलती नहीं है। मैं पहुंच ही नहीं सकता। मेरी तरह मैं पहुंच ही नहीं सकता। यह विधि की गलती नहीं है, विधान की गलती नहीं है, मार्ग की गलती नहीं है, शास्त्र की गलती नहीं है। मुझे ठीक शास्त्र मिल जाए, तो भी नहीं पहुंच सकता। मुझे ठीक मार्ग मिल जाए, तो भी नहीं पहुंच सकता। मैं ही कमजोर हूं।
जब ऐसी प्रतीति होती है कि मैं ही कमजोर हूं, तुम गिर जाते एक ढेर की तरह। उसी ढेर से उठती है प्रार्थना--की नहीं जाती। उसी ढेर में भक्ति का आविर्भाव होता है। उसी ढेर में... तुम गिर पड़े ढेर की तरह, परमात्मा तुम्हें तलाशता आता है। जब तक तुम्हें यह अस्मिता है कि मैं कुछ कर लूंगा, तब तक परमात्मा सोचता हैः अभी तुम कर ही रहे हो, अभी बीच में बाधा देने की जरूरत भी क्या है?
मुझे बड़ी प्यारी एक कथा है, जिसको मैं निरंतर कहता हूं। कृष्ण भोजन को बैठे हैं। एक कौर मुंह में लिया है, दूसरा लेने को हैं कि छोड़ कर उठ खड़े हुए। रुक्मणी पंखा झलती है। उसने पूछाः कहां जाते हैं? लेकिन उत्तर भी न दिया, भागे द्वार की तरफ। लेकिन फिर देहरी पर ठिठक कर खड़े हो गए। लौट आए उदास। फिर थाली पर बैठ भोजन करने लगे।

रुक्मणी ने कहाः आप अचानक भागे, उससे तो मन में बड़ा प्रश्न उठा था कि क्या हुआ? किसलिए जा रहे हैं? जैसे कहीं आग लग गई हो! उत्तर देने का भी आपके पास समय नहीं था। मैंने पूछा, कहां जाते हैं थाली अधूरी छोड़ कर? उत्तर भी नहीं दिया। उससे तो प्रश्न उठा ही था, अब और प्रश्न उठता है दूसरा कि द्वार पर ठिठक क्यों गए? मैं तो अंधी हूं, मुझे दिखाई नहीं पड़ता, मुझे कुछ कहें। मेरी जिज्ञासा शांत करें। फिर लौट क्यों आए? गए इतनी तेजी से, फिर इतनी उदासी से लौट क्यों आए?
कृष्ण ने कहाः मेरा एक प्यारा एक राजधानी से गुजर रहा है। फकीर है-- नंगा फकीर है। अपना एकतारा बजा रहा है। एकतारे के सिवाय उसके पास और कुछ भी नहीं है। उस एकतारे में भी मेरे नाम की धुन के सिवाय और कोई धुन नहीं है। उसके तन-प्राण में मैं ही बसा हूं। लोग पत्थर मार रहे हैं। लोग खिल्ली उड़ा रहे हैं। लोग उसे पागल समझ रहे हैं। उसके माथे से खून की धार बह रही है और वह एकतारे पर मेरा ही गुणगान किए जाता है। इसलिए आधा कौर गिरा कर दौड़ना पड़ा। दौड़ना ही पड़ेगा, इतना असहाय है!
रुक्मणी ने पूछाः फिर लौट क्यों आए?
तो कृष्ण ने कहाः जब तक मैं द्वार पर पहुंचूं, तब तक उसने एकतारा नीचे पटक दिया और पत्थर हाथ में उठा लिए। अब मेरी कोई जरूरत न रही। अब वह खुद ही उत्तर देने में तत्पर हो गया है। अब मेरा जाना व्यर्थ है। जरा और रुक जाता तो मैं पहुंच गया होता। मगर अब एकतारा गिर गया है। एकतारे में मेरे उठते नाम की धुन गिर गई है। उसके भीतर से मैं विलीन हो गया हूं जैसे। वह मुझे भूल गया क्षण भर को।
मेरो मन बड़ो हरामी!
शायद वर्षों से हरि-गीत गाता हो और इन पत्थरों की चोट ने सब भुला दिया। मन खिसक आया नीचे। उत्तर देने को तैयार हो गया। पत्थर हाथ में उठा लिए। प्रतिशोध की अग्नि जल उठी। प्रार्थना खो गई। प्रार्थना राख हो गई। कृष्ण को जाने की जरूरत न रही।
यह कथा मधुर है। सूचक है। गहन संकेत है इसमें।
तुम जब ढेर की तरह पड़ जाते हो, जब तुम जानते हो कि मेरे किए कुछ भी न होगा, पूछते भी नहीं कि मैं क्या करूं, जानते ही हो कि मेरे किए कुछ भी न होगा! और कब जानोगे यह? कितने जन्मों से कर रहे हो, कुछ भी तो नहीं हुआ। सब तो उपाय कर लिए। सब तो योग, जप-तप कर लिए। सब तो विधि-विधान कर लिए। यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ! कितने मंदिरों में नहीं गए! कितनी मूर्तियों के सामने सिर नहीं पटका! मस्जिद में, मंदिर में, गुरुद्वारे में, चर्च में--कहां नहीं गए! सब जगह हो आए हो। चारों धाम कर लिए। अब तो समझो कि मेरे किए कुछ भी न होगा। क्योंकि मैं ही कुछ नहीं हूं तो मेरे किए क्या हो सकता है? मैं ही नहीं हूं तो मेरे किए क्या हो सकता है? इस नहीं से कैसे कोई कृत्य निकलेगा? मैं एक शून्यमात्र हूं। मेरी तरह मैं शून्य हूं, परमात्मा की तरह मैं पूर्ण हूं। लेकिन परमात्मा की तरह, मेरी तरह नहीं। मेरी तरह तो मैं नपुंसक हूं। परमात्मा की तरह सर्व शक्तिमान हूं। लेकिन परमात्मा की तरह। और जब परमात्मा है तो मैं नहीं हूं। और जब तक मैं हूं तो परमात्मा नहीं है।
तो मत पूछो कि क्या करूं। भक्ति उठती तभी है जब सब करना छूट जाता है।
और इसका यह अर्थ नहीं है कि भक्त कुछ नहीं करता। भक्त का करना छूट जाता है, फिर परमात्मा उससे करता है। भक्त का करना जब छूट जाता है, तभी असली करना शुरू होता है। फिर भगवान करता है। फिर भक्त निमित्त मात्र है। बहुत होता है भक्त से, लेकिन भक्त कर्ता नहीं होता; माध्यम हो जाता है।
जैसे बांसुरीवादक बांसुरी को ओंठ पर रख कर गीत गाता है, ऐसे ही भक्त
को ओंठ पर रख कर भगवान गीत गाता है। भक्त बांसुरी हो जाता है। बांसुरी में क्या है? पोला बांस का टुकड़ा है। ऐसे ही भक्त पोले बांस का टुकड़ा हो जाता है। कुछ भी नहीं, खाली है। खाली है, इसलिए आवाज गीत बन कर बह सकती है। भरा हो तो फिर नहीं बह सकती। बांस की बांसुरी बनती है। और किसी लकड़ी की नहीं बनती। क्यों? क्या बांस कोई आखिरी बात है लकड़ियों में? सुंदर लकड़ियां हैं, बहुमूल्य लकड़ियां हैं। बांस भी कोई बात है? बांस की कोई कीमत है? लेकिन बांसुरी बनती बांस से है। देवदारु से नहीं, चीड़ से नहीं, टीक से नहीं,

लेबनान के सीदारों से नहीं; आकाश छूते बड़े-बड़े वृक्ष हैं, उनसे नहीं बनती। बनती है बांस की पोंगरी से। क्या खूबी है बांस की? क्या राज है बांस का? जो राज बांस का है, वही राज भक्त का है। भक्त बांसुरी बनता है। तपस्वी- त्यागी नहीं बनते। तपस्वी-त्यागी आकाश में उठे लेबनान के दरख्त हैं, लेबनान के सीदार हैं। बड़ी उनकी अकड़ है। बड़ा उनका बल है। दूर जमीन में फैली उनकी जड़ें हैं--तप की, तपश्चर्या की। उनका इतिहास है। भक्त का क्या इतिहास! दीन-हीन! बांस की पोंगरी! मगर भक्त बनता है परमात्मा के गीत का वाहन। देखो न मीरा को! जैसा मीरा गाई, कौन तपस्वी गाया है? जैसा मीरा गाई, कौन योगी गाया है? जैसी मीरा नाची, कौन कब नाचा है? मीरा बेजोड़ है। कला क्या है मीरा की? बांस की पोंगरी है। एक बात जान ली कि मेरे किए कुछ भी न होगा, क्योंकि मैं ही नहीं हूं। कृत्य तो तब उठे जब मेरा होना सिद्ध हो। मेरा होना ही सिद्ध नहीं होता, तो कृत्य कैसे उठेगा? कृत्य जाता है, मैं जाता है, तब कोई बहने लगता है--अज्ञात लोक से कोई उतरने लगता है! कोई किरण आती दूर से! कोई गीत आता दूर से! कोई नृत्य आता दूर से! भर जाता है तुम्हें। आपूर कर जाता है तुम्हें। इतना भर देता है कि तुम्हारे ऊपर से बहने लगता है। दूसरों को भी मिलने लगता है। बाढ़ आ जाती है।
तुम यह पूछो ही मत कि मैं क्या करूं! असहाय हो, बस असहाय ही रह जाओ। अब करने को मत जोड़ो। करने को जोड़ने का मतलब है कि फिर तुम असहाय न रहे, फिर कुछ करने लगे। बेबस हो, अब बेबस ही हो जाओ। अब इसमें जोड़ो मत कुछ करना। अब पत्थर मत उठाओ, अन्यथा आते कृष्ण रुक जाएंगे, देहली पर रुक जाएंगे।
अब जो प्रभु कराए, उसे होने दो। उससे अन्यथा की चाह भी मत करो, मांग भी
मत करो। तब तुम्हें कला आ गई भक्ति की। असहाय अवस्था में पूरी तरह डूब जाना भक्ति का जन्म है।
नारद के सूत्रों को पढ़ कर तुम भक्ति न समझ पाओगे। भक्ति का शास्त्र समझना हो--असहाय हो जाओ।
वो राग छेड़ तरन्नुम की जो करे तशकील,
सुना वो नगमा जो तखलीक सोजो-साज करे।
तेरा वजूद हकीकत को दे लबासे-मजाज,
कि जिसपे फख्र बहार, कायनात नाज करे।
तेरा गुजर हो चमन को नबीद रंगो-बू,
गुलों को फस्ले-बहारां से बेनियाज करे।
तू ऐसे जी कि जमाना बइख्तियारे-तमाम, तेरी गरीबी तेरी बेबसी पे नाज करे।
जिसे शिकायतें हों हुस्न से वो इश्क नहीं,
हवस है लालाओ-गुल में जो इम्तियाज करे।
कभी जो कहना पड़े कुछ तो ऐसी बात कहो,
जो सबको अपने अहले नजर आशनाए राज करे।
तू ऐसे जी कि जमाना बइख्तियारे-तमाम,
तेरी गरीबी तेरी बेबसी पे नाज करे।
भक्त ऐसे हो जीता है कि उसकी गरीबी, उसकी बेबसी, उसकी असहाय अवस्था ही उसका साम्राज्य बन जाती है, उसकी समृद्धि बन जाती है। खोकर ही भक्त पा लेता है। मिट कर ही हो जाता है। अपने को ना-कुछ जान कर परमात्मा को झेलने का हकदार हो जाता है। अपने को पोंछ कर, मिटा कर परमात्मा को पाने की पात्रता बन जाता है।
तू ऐसे जी कि जमाना बइख्तियारे-तमाम,
तेरी गरीबी तेरी बेबसी पे नाज करे।
अब तक जमाना नाज करता है मीरा पर! राज क्या है मीरा का? मीरा हुई, इससे पृथ्वी सुंदर हुई। मीरा हुई, इससे मनुष्य के इतिहास में रंग पड़ा। मीरा हुई, इससे मनुष्य के सौभाग्य में चार चांद जुड़े!
और मीरा का राज क्या है? मीरा ने किया क्या है? महावीर ने बारह वर्ष तपश्चर्या की, मीरा ने क्या किया? बुद्ध ने छह वर्ष अथक श्रम किया, मीरा ने क्या किया? कुछ भी नहीं किया।
इसलिए तो जैन से अगर पूछोगे तो जैन कहेगाः तपश्चर्या क्या की? उपवास कितने किए? व्रत कितने साधे?

योगी से पूछोगे तो वह पूछेगा कि पतंजलि के कितने नियमों का पालन किया? आष्टांगिक योग में क्या-क्या साधा--आसन, प्राणायाम, व्यायाम, प्रत्याहार? क्या किया?
बौद्ध से पूछोगे तो वह कहेगा कि भगवान ने चार आर्य सत्य बताए हैं, उन चार आर्य सत्यों को पाने के आठ मार्ग बताए हैं, उनमें से क्या मीरा ने साधा? सम्यक दृष्टि? सम्यक आहार? सम्यक आजीविका? सम्यक स्मृति? सम्यक समाधि? क्या साधा?
और मीरा को प्रेम करने वाला कोई भी उत्तर न दे सकेगा। शायद तुम अपने भीतर-भीतर सोचोगेः जब कुछ भी नहीं साधा तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि मीरा सिर्फ गीत गाना जानती है और भीतर कुछ भी न हो?
मीरा की सारी कला उसकी असहाय अवस्था में है। भक्त का सारा राज वहां है, कुंजी वहां है। वही तो भक्ति और ज्ञान का भेद है। ज्ञानी कह सकता हैः यह साधा, यह साधा, यह साधा! ज्ञानी के पास हिसाब है। ज्ञानी का इतिहास है। भक्त का कोई इतिहास नहीं, कोई हिसाब नहीं, कोई खाता-बही नहीं। भक्त कहता हैः साधा क्या? जनम-जनम साधा, कुछ भी न पाया। पाया तब, जब सब साधना गया। भक्ति की कोई साधना नहीं होती। असहाय अवस्था में अपने को पूरी तरह छोड़ देना। करोगे भी क्या? जब किए कुछ होता ही नहीं है, तब इसके सिवाय उपाय भी क्या है कि समर्पण कर दो?
तुम अभी भी पूछते हो कि मैं क्या करूं?
तो दो में से कुछ एक बात तय कर लो। या तो तय कर लो कि मैं असहाय हूं, मैं बेबस हूं। तब करने को कुछ नहीं बचता। तब तुम्हारी असहाय अवस्था और तुम्हारी बेबसी ही काम कर देगी; जो तुम नहीं कर पाए वह हो जाएगा। और अगर तुम पूछते हो कि मैं क्या करूं, यही तुम्हें करना है, तो फिर मत कहो कि मैं असहाय हूं, मत कहो कि बेबस हूं। फिर करो तप! फिर करो योग! फिर चेष्टा करो, संकल्प करो। फिर महावीर को पकड़ो, फिर पतंजलि को पकड़ो। फिर मीरा तुम्हारे काम की नहीं।
लेकिन इसके पहले कि तुम निर्णय करो, मैं तुमसे कहना चाहता हूंः दुनिया में जितने लोगों ने पाया है उनमें संकल्प के मार्ग से जाने वाले बहुत थोड़े लोगों ने पाया है। समर्पण के मार्ग से जाने वाले बहुत लोगों ने पाया है। और सच तो यह है कि जब बिना किए मिल जाता हो, तो करना नासमझी है। फिर जिन्होंने करके भी पाया है, उसमें भी बड़ी सोचने की बात है कि उनको करने से मिला है या करने से इतना ही मिला कि करने से कुछ नहीं होता!
बुद्ध के साथ ऐसा ही हुआ। छह वर्ष तक अथक श्रम किया; सब किया, जो किया
जा सकता है--जो मानवीय है, जो संभव है मनुष्य के लिए। और छह वर्षों के बाद पाया कि कुछ मिलता नहीं। पहले धन छोड़ दिया, पद छोड़ दिया, राज्य छोड़ दिया, आकांक्षा छोड़ दी, वासना छोड़ दी--साधना पकड़ी। छह वर्ष तक साधना की और रत्ती भर बचाव नहीं किया। ऐसे नहीं की कि कुनकुनी, कुनकुनी--सौ डिग्री पर उबले। जिन गुरुओं के पास गए, उन गुरुओं ने ही कहा कि भई, जितना हम जानते थे, बता दिया, और तुमने कर भी लिया और नहीं हुआ, तो हम मजबूर हैं, अब तुम कहीं और जाओ। कोई गुरु यह नहीं कह सका कि तुमने किया ही नहीं जो मैंने कहा, इसलिए नहीं हुआ। छह वर्ष में बहुत गुरु, लेकिन हर गुरु ने एक दिन हाथ जोड़ कर बुद्ध को कहा कि आप कहीं और खोजें; जो मेरे पास था वह मैंने बता दिया; और तुमने वह पूरा कर भी लिया; फिर तुम्हें नहीं हुआ तो मैं क्या करूं!
सारे गुरु छूट गए। और एक दिन वैसी घड़ी भी आई, वैसे बोध का परम क्षण भी आया, बोधिवृक्ष के नीचे, उस पूर्णिमा की रात बैठे-बैठे बुद्ध को समझ आई कि मेरे किए कुछ नहीं होता है। सब मैंने कर लिया। करने को कुछ बचा नहीं। अब करने को भी जाने दूं।
और यह बोध भी एक छोटी सी घटना से आया। स्नान करने उतरे हैं निरंजना नदी में। इतने कमजोर हो गए हैं, क्योंकि बहुत दिन से उपवास कर रहे हैं। किसी मूढ़ ने बता दिया कि बस एक चावल का दाना रोज लेना है। तो एक चावल का दाना रोज ले रहे हैं--तीन महीने से। शरीर बिल्कुल हड्डी-हड्डी हो गया है। उस समय की एक प्रतिमा किसी ने बनाई है, तो सिर्फ हड्डियां दिखाई पड़ती हैं उस प्रतिमा में। चमड़ी रह गई है हड्डियों पर चढ़ी, मांस सब खो गया है। पेट पीठ से लग गया है। बिल्कुल अस्थिपंजर रह गए हैं। निरंजना में स्नान करने

उतरे हैं, लेकिन इतने कमजोर हैं कि स्नान करने से थक गए हैं और निरंजना के बाहर निकलने की सामर्थ्य नहीं मालूम होती, शक्ति नहीं मालूम होती। तो एक वृक्ष की जड़ को पकड़ कर लटके रह गए हैं। उसी वृक्ष की जड़ को पकड़ कर लटके हुए यह ख्याल आयाः इस छोटी सी दीन-हीन नदी को पार नहीं कर पाता हूं! निरंजना कोई बहुत बड़ी नदी नहीं है। और गर्मी के दिन थे; बिल्कुल सूखी-साखी हालत होगी। इस क्षीण देह नदी को पार नहीं कर पाता हूं, इतना कमजोर हो गया--और भवसागर पार करने चला हूं! यह कैसे होगा? किसी तरह निकल पाए नदी से, लेकिन वह क्रांति बन गई बात। उस रात सब तपश्चर्या छोड़ दी, उस रात सब साधना छोड़ दी, सब योग भी त्याग दिया। भोग तो त्याग ही चुके थे, उस रात योग भी त्याग दिया। अब यह बात समझना कि भोगी भी अहंकार से जीता है और योगी भी अहंकार से जीता है। भोगी का अहंकार बाहर की तरफ दौड़ता है, योगी का अहंकार भीतर की तरफ दौड़ता है--मगर अहंकार तो रहता ही है। और जब तक अहंकार है, तब तक मिलन कैसा! उस रात क्रांति हो गई। भोगी का अहंकार तो जा ही चुका था; धन पाना है, पद पाना है--यह तो जा चुका था। आज वह वासना भी चली गई कि परमात्मा पाना है, मोक्ष पाना है। वह वासना भी चली गई। कुछ पाना ही है, यह बात ही व्यर्थ हो गई। पाया कुछ जा नहीं सकता। सब कर लिया, कुछ मिलता नहीं। उस दिन असहाय अवस्था पूर्ण हो गई। बुद्ध निढाल होकर पड़ रहे वृक्ष के तले। उस रात गहरी नींद आई, जैसी जन्मों में न आई होगी। क्योंकि जब कोई चिंता ही नहीं रही और पाने को कुछ न रहा, तो नींद की गहराई तुम समझ सकते हो। उस रात सुषुप्ति घटी। और सुबह जब आंख खुली, रात का आखिरी तारा डूबता था, उस तारे के डूबने के साथ ही बुद्ध का सारा अहंकार डूब गया। क्योंकि आज पहली दफे चित्त शांत था, प्रफुल्लित था, प्रसादपूर्ण था। धीमे-धीमे स्वर उठ रहे थे। ऐसा कभी न हुआ था। भीतर रोशनी फैल रही थी। ऐसा कभी न हुआ था। और यह बिना किए हुआ। यह करने से नहीं हुआ। उस क्षण सारा अहंकार विसर्जित हो गया। बुद्ध ने पाया।
अब सवाल उठ सकता है कि बुद्ध ने श्रम करके पाया? छह वर्ष मेहनत तो की थी, यह पक्का है; लेकिन क्या छह वर्ष की मेहनत से पाया? यह बात पक्की नहीं है। पाया तो उस दिन जिस दिन सब श्रम छूट गया।
इस जगत में जो भी घटनाएं घटी हैं, अंततः चाहे ज्ञानी को घटती हों, चाहे भक्त को... । महावीर के संबंध में ऐसा कुछ उल्लेख नहीं है कि उन्होंने कैसे पाया। लेकिन मेरे देखे, इसके अतिरिक्त कोई उपाय पाने का नहीं है। महावीर ने बारह वर्ष श्रम किया होगा और अंतिम दिन उस श्रम से भी छूट गए होंगे। क्योंकि श्रम तो अहंकार का ही है, अंतिम दिन उस श्रम से भी छुटकारा हो गया होगा। अंतिम दिन शांत रह गए होंगे। कुछ करना न बचा होगा, कुछ करने वाला न बचा होगा। तभी घटना घटी होगी। इसे मैं अपनी भीतरी साक्ष्य के आधार पर कहता हूं, यद्यपि जैन शास्त्रों में इसका कोई उल्लेख नहीं। जब भी यह घटना घटती है, तभी इसी भावदशा में घटती है। भक्त शुरू से ही इस पर चल पड़ता है, ज्ञानी अंत में चल पाता है। मीरा पहले से ही इस पर चल पड़ी, बुद्ध छह वर्ष बाद चले। तुम्हारी जैसी मर्जी हो। मगर तय कर लो। इस प्रश्न में तुम्हारे दो मन हैं। एक कहता हैः असहाय। एक कहता हैः क्या करूं? तुम किसके साथ जाना चाहते हो, तय कर लो। और अपने को धोखा मत देना। इसलिए मत तय कर लेना कि चलो असहाय ही हो जाएं, अगर इस तरह मिलता हो। तो यह तो बड़ी सुगम बात हुई, चलो आज असहाय होकर ही बैठ जाएं, ढूंढ़ लें कोई बोधिवृक्ष और बिल्कुल निढाल हो जाएं और कह दें साफ जोर से कि भाई, करने से तो मिलता नहीं; और फिर राह देखें रात भर कि अब मिला, अब मिला, तब मिला; फिर सुबह आंख खोलें और देखें, आखिरी तारा डूब रहा है और अभी तक नहीं मिला! ... तो नहीं मिलेगा। और सुबह उठ कर तुम अपने घर आ जाओगे और फिर अपनी दुकान खोल लोगे कि यह सब बेकार है। बुद्ध को भी मिला हो, संदिग्ध हो गया।
पाने की आकांक्षा से ऐसा मत कर लेना, नहीं तो वह झूठी बात होगी। तुम बीच-बीच में आंख खोल-खोल कर देखते ही रहोगेः अभी तक आया कि नहीं आया। तनाव तो बना ही रहेगा। सुषुप्ति लगेगी ही नहीं। विश्राम होगा ही नहीं। अगर अभी करने की खुजलाहट बची हो, थोड़ा कर ही लो। मतलबः थोड़ा पाप और बचा है। इसलिए तो पाप को कर्म कहते हैं। थोड़ा कर्म और बचा है। कर ही लो! थोड़ा और करने का उपद्रव है, इसको झेल ही लो।

फिर तुम क्या करते हो, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। हिंदू के ढंग से करते हो कि मुसलमान के ढंग से कि ईसाई के ढंग से, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम्हें कुछ करना है तो कर ही लो अभी। इससे तुम तभी छूट पाओगे, जब तुम्हारा अनुभव ही तुम्हारे लिए अंतिम रूप से कह जाएगा कि करने से कुछ नहीं होता है। कर-कर के ही तुम, हार-हार कर ही, विफल हो-हो कर ही जानोगे कि करने से कुछ नहीं होता है। जिस दिन यह बात सौ प्रतिशत तुम्हारे प्राणों में समा जाएगी और तुम गिर जाओगे निढाल होकर, जहां गिरोगे वहीं बोधिवृक्ष बन जाएगा। और तुम अपने ढंग से गिरोगे। और तुम्हारा वृक्ष अपना होगा। बुद्ध का वृक्ष अपना है, बुद्ध के गिरने का ढंग अपना है। मगर गिरना तो तुम्हें पड़ेगा। तुम जिस दिन गिरोगे उसी दिन परमात्मा उठता है। परमात्मा प्रतीक्षा कर रहा है कि कब तुम अपने पर भरोसा छोड़ दो।
जिसे अपने पर भरोसा है उसे परमात्मा पर भरोसा नहीं। जिसे परमात्मा पर भरोसा है, वह क्या खाक फिकर करेगा इस बात की कि मैं क्या करूं! वह कहता हैः तू कर। तू करने वाला है।
और ध्यान रखना, फिर तुम्हें सचेत कर दूं कि यह बात आलस्य से नहीं उठनी चाहिए--कि तू कर, मैं कौन करने वाला हूं! यह बात आलस्य से नहीं उठनी चाहिए। यह बात अनुभव से उठनी चाहिए कि मेरे किए कुछ भी नहीं होता। यह असहाय अवस्था से उठनी चाहिए।
आलस्य और असहाय अवस्था में फर्क है। आलसी तो होशियार है। वह तो दूसरे
से काम लेना चाहता है। ऐसा नहीं कि वह सोचता है कि मेरे किए कुछ न होगा। वह कहता है कि जब तक दूसरे के कंधे पर बंदूक रख कर चलती हो, तब तक काहे को अपने कष्ट उठाना! तो दूसरे ही के कंधे पर रख कर चला लें बंदूक।
मैं जब विद्यार्थी था विश्वविद्यालय में, तो मेरे एक अध्यापक थे। परम आलसी! मेरे जो विभाग-अध्यक्ष थे, उनका मुझसे भी बहुत लगाव था और उन अध्यापक से भी बहुत लगाव था। वे अध्यापक भी पहले उनके विद्यार्थी थे। उन्होंने मुझसे कहा कि देखो, यह बड़ा आलसी है और बड़ी तकलीफ में रहता है। अच्छा यह होगा कि तुम दोनों ही साथ रहो।
मैंने कहाः जैसी मर्जी।
वे आलसी तो पक्के थे। दोनों हम साथ रहे। उन्होंने पहले ही दिन मुझसे कहा कि सुबह दूध लेने कौन जाएगा? मैंने कहाः जो पहले उठे। वे बोलेः तब ठीक। आठ बज गए, कोई उठे न। मैं भी उनको आंख खोल कर देख लूं, वे भी मुझे आंख खोल कर देख लें। नौ बज गए। वे जरा बेचैन होने लगे, क्योंकि साढ़े दस बजे उन्हें कक्षा लेने जाना है। मैं तो विद्यार्थी था, गया न गया, चलेगा। उनकी तो नौकरी का सवाल था। साढ़े नौ बजने लगे, अब वे काफी तेजी से करवट बदलने लगे। मैंने उनसे कहाः कितनी ही करवट बदलो, दूध लेने जाना ही पड़ेगा। आज चाहे जिंदगी भर इसी बिस्तर पर रहना पड़े, मैं उठने वाला नहीं हूं। तब वे घबड़ा कर उठे। तब भागे, दूध लेने गए। प्रधान को उन्होंने जाकर कहा कि यह साथ नहीं चलेगा। यह तो मामला बहुत कठिन है। इससे तो मैं अकेला ही बेहतर। जब मर्जी हुई तब अपना दूध ले आता था; या नहीं भी लाना हुआ तो नहीं लाता था। मैंने अपने प्रधान को कहा कि अब हमें अलग न करें। मैं इन्हें रास्ते
पर ले आऊंगा। ये दो-चार दिन में रास्ते पर आ जाएंगे। इनको दूसरे के कंधे पर बंदूक रख कर चलाने की आदत हो गई है।
आलस्य को तुम मत समझ लेना कि असहाय अवस्था है। आलस्य तो चालाकी है, धोखा है, बेईमानी है। तो यह मत सोचना कि चलो ठीक है, करने से बचे, झंझट मिटी; अब यही कह दें साफ कि हे प्रभु, आओ। धाओ-धाओ! देखो, इधर भक्त मरा जा रहा है। हालांकि तुम जानते हो कि कौन मर रहा है! कहां की बातों में पड़े हो! भीतर तुम यही कह रहे हो कि कौन मर रहा है! और भीतर तुम यह भी जान रहे हो कि कौन आने वाला है!
विवेकानंद अमरीका में एक गांव में बोले, तो उन्होंने जीसस का प्रसिद्ध वचन उदधृत कियाः फेथ कैन मूव माउंटेंस। श्रद्धा से पहाड़ भी हटाए जा सकते हैं।
एक बूढ़ी औरत, बुढ़िया सामने ही बैठी थी। बूढ़ों के सिवाय तो कोई धर्म-प्रवचन सुनने जाता भी नहीं। वह सामने ही बैठी थी। वह बड़ी प्रसन्न होने लगी। क्योंकि उसके मकान के पीछे एक छोटी पहाड़ी थी। और उस पहाड़ी की वजह से न

हवा आ पाती थी, न सूरज की रोशनी आ पाती थी। वह बड़ी परेशान थी कि कैसे यह पहाड़ी से छुटकारा मिले। उसने कहाः यह तो बड़ा अच्छा है, श्रद्धा से ही हट सकता है! कह दिया परमात्मा से श्रद्धा-भाव से, हट जाएगा।
वह भागी घर गई। उसने एक बार, आखिरी बार खिड़की में से झांक कर पहाड़ी को देखा कि एक बार तो और देख लो, फिर तो हट ही जाएगी। फिर खिड़की बंद करके वह वहीं बैठी और उसने कहाः हे प्रभु, श्रद्धापूर्वक कहती हूं--हटा ले इस पहाड़ को! फिर दो-तीन मिनट बैठी रही, फिर उसने खिड़की खोल कर देखाः हटा कि नहीं? पहाड़ वहीं के वहीं था। और उसने कहाः धत तेरे की! मुझे पहले से ही पता था, कहीं कोई पहाड़-वहाड़ हटना है!
मगर अगर पहले से ही पता था कि कहीं पहाड़ हटना है, तो श्रद्धा कहां? श्रद्धा से पहाड़ हटते हैं, लेकिन श्रद्धा में संदेह होता ही नहीं। अगर पहाड़ न हटे तो यही समझना कि श्रद्धा नहीं है। और सच तो यह है, अगर श्रद्धा पूरी हो तो तुम पहाड़ हटाना भी न चाहोगे। क्योंकि श्रद्धा की परीक्षा लेने का मतलब ही यह होता है कि संदेह है। पहाड़ हटाना क्यों चाहोगे? जहां परमात्मा ने बनाया, ठीक ही जगह बनाया होगा। तुम हटाना क्यों चाहोगे पहाड़? पहाड़ की तो बात अलग, तुम एक तिनका न हटाना चाहोगे। जहां उसने बनाया, जैसा उसने बनाया, वैसा ही ठीक। मैं उससे ज्यादा बुद्धिमान थोड़े ही हूं। तो श्रद्धा पहाड़ हटा सकती है, लेकिन श्रद्धा तो तिनका भी नहीं हटाना चाहेगी। और अश्रद्धा से तो तिनका भी नहीं हट सकता और अश्रद्धा पहाड़ भी हटाना चाहती है। अश्रद्धा श्रद्धा का बाना पहन लेती है।
तो ख्याल रखना, आलस्य कहीं असहाय अवस्था का बाना न पहन ले, नहीं तो धोखा हो जाएगा। तो बहुत-बहुत सम्हल कर चलने की बात है। करने पर भरोसा हो तो करो। खूब करने के लिए उपाय पड़े हैं। प्राणायाम करो, आसन करो, सिर के बल खड़े होओ, माला जपो, मंदिरों में जाओ, उपवास, व्रत--हजार ढंग हैं करने के। ढंग ही ढंग हैं करने के। कर लो।
मगर, अगर असहाय अवस्था समझ में आने लगी हो, अब तो मत पूछो कि क्या करूं। अब असहाय हो जाओ। करने को कुछ बचा नहीं, करने वाला नहीं बचा। क्रांति घटती है उस दशा में। अपूर्व है दशा वह। आलस्य की नहीं है। अकर्मण्यता की भी नहीं है। अहंकार-शून्यता की है। और तब ऐसी घड़ी आ सकती हैः
तू ऐसे जी कि जमाना बइख्तियारे-तमाम,
तेरी गरीबी तेरी बेबसी पे नाज करे।
उसी गरीबी, उसी बेबसी से परमात्मा मिल सकता है। तुम्हारा जीवन अपूर्व रूप से प्रसाद से भर सकता है। तुम्हारे जीवन में उत्सव, फूल खिल सकते हैं, गीत झर सकते हैं। तुम भी एक दिन "पद घुंघरू बांध" मीरा की भांति नाच सकते हो। लेकिन ध्यान रहेः परमात्मा ही नाचेगा तुम्हारे भीतर; पैर तुम्हारे होंगे, नाच परमात्मा का ही होगा।

दूसरा प्रश्नः कोई प्रश्न नहीं है, यह बस एक प्रार्थना है।
मंसूर और सरमद के अफसाने पुराने हो गए।
मेरे लिए किस्सा नया तजवीज कर।
क्या मेरी प्रार्थना सुनी जाएगी?

दिनेश! इस जगत में नया कुछ भी नहीं है। सूरज के तले नया कुछ भी नहीं है। जो तुम्हें नया जैसा मालूम पड़ता है, उसका इतना ही अर्थ है कि इतिहास का तुम्हें पता नहीं। जो तुम्हें नया जैसा मालूम पड़ता है, नया इसलिए मालूम पड़ता है, क्योंकि अतीत में वह जो बार-बार हुआ है उसकी तुम्हें स्मृति नहीं है, उसका तुम्हें बोध नहीं है। इस जगत में नया कुछ भी नहीं है।
इससे तुम जल्दी से यह नतीजा मत निकाल लेना कि इस जगत में सब पुराना है। क्योंकि जब नया ही कुछ नहीं है तो पुराना कैसे हो सकता है? नया हो तो ही पुराना हो सकता है। जो आज नया है वह कल पुराना हो जाएगा। लेकिन अगर नया कभी होता ही नहीं तो पुराना भी नहीं हो सकता। नया और पुराना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

तो पहले तो मैं तुमसे कहना चाहता हूंः इस जगत में नया कुछ भी नहीं है।
जो हो रहा है, सदा होता रहा है। जो हो रहा है, हजार बार होता रहा है। जो हो रहा है, वह अनंत बार हो चुका है और अनंत बार होगा।
और दूसरी बात तुमसे कहना चाहता हूंः तुम यह नतीजा मत लेना कि मैं कह रहा हूं कि जगत में सब पुराना है। पुराना तो हो ही कैसे सकता है? जब नया ही नहीं होता तो पुराना कैसे होगा? बूढ़ा होना हो तो जवान होना जरूरी है पहले। जवानी के बिना बुढ़ापा नहीं होता। जिस दिन जवानी नहीं होगी, उस दिन बुढ़ापा नहीं होगा।
तुम एक कार खरीद लिए थे पिछले वर्ष, वह पुरानी पड़ गई अब, क्योंकि पिछले वर्ष नई थी। नई न होती तो पुरानी नहीं पड़ सकती थी।
नया और पुराना साथ-साथ जुड़े हैं। विपरीत नहीं हैं, शत्रु नहीं हैं-- संगी-साथी हैं; प्रणय-सूत्र में बंधे हैं। सात चक्कर उनमें पड़े हैं; उनकी भांवर पड़ गई है। नया और पुराना पति-पत्नी हैं। अलग होते ही नहीं, तलाक का उपाय भी नहीं है।
तो न तो इस जगत में कुछ नया है, न इस जगत में कुछ पुराना है। फिर क्या है? सब शाश्वत है, सनातन है। पुरातन नहीं--सनातन। ऐसा ही है। जब तुम देखोगे, तुम्हें नया लगेगा।
ऐसा ही समझो, जब कोई जवान आदमी पहली बार प्रेम में पड़ता है तो वह सोचता हैः अहा! ऐसा प्रेम दुनिया में कभी घटा ही नहीं। सभी जवानों को ऐसा होता है कि ऐसा प्रेम कभी हुआ ही नहीं। सब प्रेम फीके पड़ गए। सब प्रेम दो कौड़ी के हो गए। करोड़ों-अरबों लोग इस जमीन पर रहे हैं और सभी को यह भ्रम हुआ है। सभी जवान थे और सभी ने प्रेम किया है। और सभी ने जब प्रेम किया है तो ऐसा ही सोचा है कि जो मुझे हो रहा है, ऐसा कभी नहीं हुआ।
मेरे पास रोज लोग आते हैं। वे कहते हैंः यह प्रेम ही और है। ऐसा तो कभी हुआ ही नहीं था। ऐसा किसी को हुआ ही नहीं।
लोग मुझसे कहते हैंः कैसे अपना हृदय आपको हम बताएं? यह बिल्कुल ऐसी नई बात हो रही है, अपूर्व हो रही है।
और मैं समझता हूं उनकी तकलीफ। उन्हें और दूसरों के प्रेमों का तो पता
भी नहीं, क्योंकि दूसरे के हृदय में प्रवेश का उपाय नहीं है।
ऐसा ही समझो कि तुम्हारी बगिया में गुलाब की झाड़ी में आज फूल खिला। यह खिला हुआ फूल अगर सोचे कि ऐसा कभी नहीं हुआ, तो ठीक ही सोच रहा है, क्योंकि अतीत के फूलों से तो इसका कोई मिलना नहीं हुआ। जब वे थे, तब यह नहीं था। अब वे चले गए हैं, तब इसका आगमन हुआ है। और भविष्य के फूलों से भी इसका कोई मिलना नहीं हुआ।
लेकिन झाड़ी से तो पूछो, जिस पर न मालूम कितने फूल खिले और न मालूम कितने फूल गिरे! उस झाड़ी से तो पूछो! यह नया फूल जो अभी उठा है सुबह-सुबह, रात की ओस की बूंदों से ताजा, सुबह की सूरज की किरणों में सिर उठाए, पक्षियों का गीत सुनता--अगर इसे यह वहम होता हो कि मेरे जैसी घटना कभी नहीं घटी! ऐसा सौंदर्य कब घटा! ऐसी लाली, ऐसी ताजगी कब घटी! कभी नहीं घटी! तो यह भी गलत नहीं कह रहा है, क्योंकि इसे पहले फूल घटे, उनका कुछ पता कैसे हो? और आगे भी फूल घटते रहेंगे, उसका पता कैसे हो? इसके पास जो बौड़ियां हैं वे भी फूल बनेंगी, इसका पता कैसे हो? और नीचे जो कल के खिले फूलों की पंखुड़ियां गिर गई हैं, वे भी कभी फूल थीं, इसका इसे पता कैसे हो?
ऐसी ही दशा तुम्हारी है, दिनेश।
जीवन वर्तुलाकार है। वर्षा आती है। गर्मी आती है। सर्दी आती है। घूमता रहता है चाक। फिर वर्षा आती है। फिर वही होता है। फिर वही होता है। सुबह होती है, सूरज निकलता है। सांझ होती है, सूरज ढल जाता है। फिर सुबह होती है। दिन आता, रात आती, फिर दिन आता है। ऐसा ही होता रहता है। यह शाश्वत चक्र है। इसीलिए इसको हमने संसार कहा है।
संसार शब्द का अर्थ होता हैः चाक, जो घूम रहा है; व्हील, जो घूमता चला जाता है।
लेकिन हमारी जिंदगी छोटी है। सत्तर साल की जिंदगी में हम कुछ जान पाते हैं थोड़ा-बहुत। हमारा बोध संकीर्ण। हमसे पहले भी लोग हुए हैं।

उन्होंने भी ऐसा ही चाहा है, उन्होंने भी ऐसा ही जीया है--इसका हमें पता नहीं होता।
तुम जब पद की आकांक्षा में दौड़ते हो तो तुम सोचते हो कि तुम नये दौड़ने वाले हो, तुम नये धावक! तो फिर नेपोलियन और सिकंदर और तैमूर और चंगीज और नादिर तुम्हें याद नहीं।
जब तुम्हें पहली दफा समाधि घटित होगी, तब भी तुम्हें ऐसा लगेगा कि यह
तो कभी किसी को नहीं हुआ। फिर बुद्ध और महावीर और मीरा और चैतन्य और कबीर... ? जब तुम्हारा परमात्मा से पहली दफा मिलन होगा तब भी ऐसा लगेगा कि ऐसा तो कभी नहीं हुआ। तुम्हें तो कभी नहीं हुआ था पहले, यह सच है। तुम्हें नया हो रहा है। लेकिन यह घटना जगत में नई नहीं है। यह शाश्वत है।
मनुष्य का मन नये के लिए बड़ा आतुर है। मनुष्य का मन उत्तेजना खोजता है। नये में उत्तेजना होती है। मनुष्य का मन सदा नये की तलाश करता है। तुमने आज जो भोजन किया, कल भी करना पड़े तो मन राजी नहीं होता। हालांकि आज जब किया था, तुमने बड़ी प्रशंसा की थी।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मुझसे कह रही थी कि मेरे पति को क्या हो गया? उनका दिमाग कुछ ठिकाने पर नहीं है। आपके पास आते हैं, उन्हें कुछ समझाएं।
मैंने पूछाः मामला क्या है? कारण क्या है तेरा ऐसा सोचने का?
उसने कहा कि सोमवार को भिंडी बनाई थी, बोले कि खूब अच्छी है। बड़ी प्रशंसा की। तो मंगल को भी बनाई। मंगल को कुछ नहीं बोले। बुध को भी बनाई, तो बड़े बेरुखे मन से भोजन किया। बृहस्पति को भी बनाई, तो बड़े भन्नाए हुए थे। शुक्र को भी बनाई, तो थाली उठा कर फेंक दी। दिमाग इनका ठीक है कि नहीं? इन्हीं ने कहा था कि खूब सुंदर, खूब स्वादिष्ट।
अब भिंडी कितने दिन खा सकते हो? मन नये की तलाश करता है। मन कहता हैः कुछ नया तो चाहिए। इसलिए तो पति को पत्नी में सौंदर्य नहीं दिखाई पड़ता, पत्नी को पति में कुछ रस नहीं दिखाई पड़ता। मन कहता हैः कुछ नया चाहिए। पुराना मकान है, तो नया चाहिए। पुरानी कार है, तो नई चाहिए। पुराने कपड़े हैं, तो नये कपड़े चाहिए।
मन कहता हैः कुछ नया चाहिए। नये की तलाश में मन तुम्हें भटकाता है। नये की तलाश में तुम संसार में यात्रा करते रहते हो। जो इस बात को समझ लेता है कि यहां नया कुछ भी नहीं है और पुराना भी कुछ नहीं है, उसकी संसार की यात्रा समाप्त हो जाती है। इस सत्य को गहराई से समझना जरूरी है।
तुम पूछते होः "मंसूर और सरमद के अफसाने पुराने हो गए।"
नहीं हो सकते पुराने, क्योंकि नये ही कभी नहीं थे। पुराने कैसे हो जाएंगे? मंसूर कुछ पहला तो आदमी नहीं था जिसने अनलहक की घोषणा की। फिर उपनिषद के ऋषियों का क्या हुआ, जिन्होंने कहा अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं? मंसूर ने वही कहा थाः अनलहक! मैं सत्य हूं! मैं ब्रह्म हूं! मैं परमात्मा हूं! मंसूर को ही थोड़े पहली दफा सूली लगी, फिर जीसस का क्या हुआ? फिर सुकरात का क्या हुआ? सरमद का ही थोड़े सिर कटा, और भी बहुत सिर कटे हैं।
सरमद और मंसूर के अफसाने कभी नये ही नहीं थे, तो पुराने कैसे हो सकते हैं? अफसाना तो एक ही है, पात्र बदल जाते हैं। खेल तो वही है। कभी बुद्ध खेलते उस खेल को, कभी महावीर खेलते, कभी पतंजलि, कभी मोहम्मद, कभी जरथुस्त्र। खेल वही है। हालांकि भाषा भी बदल जाती है। पात्र के बदलने के साथ-साथ रंग-ढंग भी बदल जाता है। लेकिन रंग-ढंग तो ऊपर-ऊपर की बातें हैं, भीतर राज की बात वही है, एक ही है। जीसस सूली पर लटके, कि मंसूर सूली पर लटके, कि सरमद का सर काटा जाए, कि सुकरात को जहर पिलाया जाए--कहानी तो वही है।
पिछले वर्ष जो फूल आए थे, वे फिर-फिर आएंगे--हालांकि हर बार देह अलग होगी, पर आत्मा वही होगी।
नये की आकांक्षा विषाद में ले जाएगी, क्योंकि नया मिला नहीं कि पुराना होना शुरू हो जाता है।
बायरन, अंग्रेजी का बड़ा कवि हुआ। कहते हैं, उसने सैकड़ों स्त्रियों को प्रेम किया। वह जल्दी चुक जाता था, दो-चार दिन में ही एक स्त्री से चुक

जाता था। सुंदर था, प्रतिष्ठित था, महाकवि था। व्यक्तित्व में उसके चुंबक था, तो स्त्रियां खिंच जाती थीं--जानते हुए कि दो-चार दिन बाद दूध में से निकाल कर फेंकी गई मक्खियों की हालत हो जाएगी। मगर दो-चार दिन भी बायरन के साथ रहने का सौभाग्य कोई छोड़ना नहीं चाहता था। कहते हैं कि लोग इतने डर गए थे बायरन से कि बायरन जिस रेस्त्रां में जाता, पति अपनी पत्नियों के हाथ पकड़ कर दूसरे दरवाजे से बाहर निकल जाते। सभा-सोसायटियों में बायरन आता तो लोग अपनी पत्नियों को न लाते। थी कुछ बात उस आदमी में। कुछ गुरुत्वाकर्षण था। मगर एक स्त्री उससे झुकी नहीं। जितनी नहीं झुकी, उतना बायरन ने उसे झुकाना चाहा। लेकिन उस स्त्री ने एक शर्त रखी कि जब तक विवाह न हो जाए, तब तक मेरा हाथ भी न छू सकोगे। विवाह पहले, फिर बात।
स्त्री सुंदर थी। और ऐसी चुनौती कभी किसी ने बायरन को दी भी नहीं थी। स्त्रियां पागल थीं उसके लिए। उसका इशारा काफी था। और यह स्त्री जिद पकड़े थी और स्त्री सुंदर थी। सुंदर चाहे बहुत न भी रही हो, लेकिन उसकी चुनौती ने उसे और सुंदर बना दिया। क्योंकि जो हमें पाने में जितना दुर्गम हो, उतना ही आकर्षित हो जाते हैं हम। एवरेस्ट पर चढ़ने का कोई खास मजा नहीं, पूना की पहाड़ी पर चढ़ो तो भी चलेगा; मगर एवरेस्ट दुर्गम है, कठिन है। कठिन है, यही चुनौती है।
एडमंड हिलेरी जब पहली दफा एवरेस्ट फर चढ़ा और लौट कर आया तो उससे पूछा गया कि आखिर क्या बात थी? किसलिए तुम एवरेस्ट फर चढ़ना चाहते थे? तो उसने कहाः किसलिए! क्योंकि एवरेस्ट अन-चढ़ा था, यह काफी चुनौती थी। यह आदमी के अहंकार को बड़ी चोट थी। एवरेस्ट पर चढ़ना ही था। चढ़ना ही पड़ता। हालांकि वहां पाने को कुछ भी नहीं था।
वह महिला एवरेस्ट बन गई बायरन के लिए। बायरन दीवाना हो गया। महिलाएं उसके लिए दीवानी थीं, बायरन इस महिला के लिए दीवाना हो गया। और अंततः उसे झुक जाना पड़ा, विवाह के लिए राजी होना पड़ा। जिस दिन चर्च से विवाह करके वे उतरते थे सीढ़ियों पर, अभी उनके सम्मान में, स्वागत में जलाई गई मोमबत्तियां बुझी भी न थीं। अभी मेहमान जा ही रहे थे। अभी चर्च की घंटियां बज रही थीं। वह उस स्त्री का हाथ पकड़ कर सीढ़ियां उतर रहा है और तभी एक क्षण ठिठक कर खड़ा हो गया। एक स्त्री को उसने सामने से रास्ते पर गुजरते देखा। बायरन, ऐसे आदमी ईमानदार था। उसने अपनी पत्नी को कहाः सुनो! तुम्हें दुख तो होगा, लेकिन सच बात मुझे कहनी चाहिए। कल तक मैं दीवाना था, लेकिन जैसे ही तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में आ गया और हम विवाहित हो गए हैं, मेरा सारा रस चला गया। तुम पुरानी पड़ गईं। अभी कोई संबंध भी नहीं बना है, लेकिन तुम पुरानी पड़ गईं। और वह जो स्त्री सामने से गई है गुजरती हुई, एक क्षण को मैं उसके प्रति मंत्रमुग्ध हो गया। मैं तुम्हें भूल ही गया कि तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में है। मुझे तुम्हारी याद भी नहीं रही। यह मैं तुमसे कह देना चाहता हूं। मेरा रस खत्म हो गया, चूंकि तुम मेरे हाथ में हो। मेरा रस समाप्त हो गया।
तुम शायद इतने ईमानदार न भी होओ। लेकिन तुमने ख्याल किया है? जिस चीज
को पाने के लिए तुम परेशान थे... एक सुंदर कार खरीदना चाहते थे, वर्षों धन कमाया, मेहनत की, फिर जिस दिन आकर पोर्च में गाड़ी खड़ी हो गई, तुमने उसके चारों तरफ चक्कर लगा कर देखा, और छाती बैठ गई, कि बस हो गया! अब? अब क्या करने को है? शायद एकाध दिन उमंग रही, राह पर निकले कार लेकर। लेकिन कार उसी दिन से पुरानी पड़नी शुरू हो गई, जिस दिन से तुम पोर्च में ले आए। अब रोज पुरानी ही होगी। और रोज-रोज तुम्हारे और उसके बीच का जो रस था वह कम होता चला जाएगा। इसी कार के लिए तुम कई दिन सोए नहीं, रात सपने देखे, दिन सोचा- विचारा--और यही अब तुम्हारे पोर्च में आकर खड़ी है और इसकी याद भी नहीं आती। यही तुम्हारे पूरे जीवन की कथा है।
मन नये की मांग करता है, लेकिन नया तो मिलते ही पुराना हो जाता है और फिर मन विषाद से भरता है। जो नये को मांगेगा, वह बार-बार दुख में पड़ेगा, क्योंकि नया पुराना होता है। शाश्वत को खोजो, जो नया भी नहीं है, पुराना कभी होता नहीं। जो सदा एक सा है, एकरस है। उस एकरसता का नाम ही परमात्मा है।

परमात्मा नया है, ऐसा कहोगे? कि परमात्मा पुराना है, ऐसा कहोगे? दोनों
ही बातें गलत होंगी। परमात्मा दोनों के अतीत है।
तुम पूछते होः "मंसूर और सरमद के अफसाने पुराने हो गए।"
नहीं हुए, क्योंकि वे नये ही कभी न थे। वे शाश्वत कहानियां हैं। वे पुराण हैं। यही फर्क है कहानियों में और पुराणों में। जो कहानी अखबार में छपती है, साप्ताहिक अखबार में छपती है, वह छपी नहीं कि पुरानी हो जाती है। राम-कथा पुरानी नहीं होती। कृष्ण की लीला पुरानी नहीं होती। क्यों? शाश्वत की भनक है। कितनी बार रामलीला देखी! तुम जरा सोचो, इतनी बार तुम एक फिल्म देख सकते हो? पागल हो जाओगे। कितनी ही अच्छी फिल्म हो, दुबारा देखोगे तो कुछ रस न मालूम पड़ेगा। लेकिन रामलीला कितनी बार देखी है! हर वर्ष होती है! कुछ बात है! कुछ अनूठी बात है! कुछ विस्मय-विमुग्ध कर देने वाली बात है!
तुम्हें पूरी कथा मालूम है। तुम्हें सब डायलाग मालूम हैं कि अब रामचंद्रजी क्या कहने वाले हैं, कि अब सीताजी चुराई जाएंगी। सब तुम्हें मालूम है। नया तो कभी-कभी होता है। नया कभी-कभी हो जाता है रामलीला में। ऐसा एक गांव में हो गया था। जो आदमी रावण बना था और जो स्त्री सीता बनी थी, वह सच में ही उस स्त्री के प्रेम में पड़ा था। तो बड़ी गड़बड़ हो गई। जब धनुषबाण तोड़ने का समय आया और जोर से खबर आई कि हे रावण, लंका में आग लगी है! उसने कहाः लगी रहने दो। आज तो सीता को लेकर ही जाऊंगा।
अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। सब चौंक कर बैठ गए होंगे। लोग जो सो रहे होंगे, वे भी जग गए, कि ऐसा तो रामलीला में कभी हुआ नहीं; यह तो कुछ नई ही बात हो रही है! रावण चला जाता है। लंका में आग लगी है, बेचारा भागता है लंका बचाने। इसी बीच रामचंद्रजी सीता को ले जाते हैं। फिर सारी कहानी शुरू हो जाती है। यह तो कहानी ही तोड़े दे रहा है। यह कह रहा हैः सीता को लेकर जाएंगे। और वह सबसे मजबूत आदमी था गांव का। तो ही तो रावण बनाया था उसको। और रामचंद्रजी बेचारे जरा से छोकरे थे। वह एक रपट लगा देगा उनको, तो वे दुबारा कभी मंच पर न आएंगे फिर। लक्ष्मणजी भी घबड़ा गए। जनक महाराज भी घबड़ाए, क्योंकि यह आदमी खतरनाक है। और सीता भी घबड़ाई कि अगर यह ले जाना चाहे तो ले ही जाएगा। यह बात ही खत्म हो गई। रामलीला तो खत्म ही हो गई, यह दूसरा ही काम शुरू हो गया वहां। और उसने फिर आव देखी न ताव, क्योंकि उसको फुरसत कहां! उसने तो, उठा और धनुषबाण रखा था, वह तोड़ कर उसके चार टुकड़े करके जनता में फेंक दिए। बात भी हो गई पूरी। धनुषबाण ही तोड़ना था, उसने तोड़ दिया। वह तो सीता को ले जाने की तैयारी करने लगा। अब रामचंद्रजी मुंह बाए बैठे हैं।
वह तो जनक बूढ़ा आदमी था और कई बार जनक का काम कर चुका था, उसे थोड़ी सदबुद्धि आई। उसने कहा कि कुछ करना पड़ेगा, नहीं तो यह तो मामला ही खत्म हो गया। और दुनिया हंसेगी। और फिर यह रामलीला अभी चलना है दस-बारह दिन, वह कैसे चलेगी? तो वह जल्दी से चिल्लाया कि भृत्यो, यह तुम मेरे बच्चों के खेलने का धनुषबाण उठा लाए, शंकरजी का धनुषबाण लाओ! परदा गिरवाया। किसी तरह समझा-बुझा कर रावण को बाहर निकाला। दूसरे आदमी को जल्दी से रंग पोत कर रावण बनाया, क्योंकि यह आदमी फिर गड़बड़ कर दे। तब रामलीला चली।
कभी-कभी ऐसा होता है, लेकिन अक्सर तो रामलीला वही की वही है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है। ऐसा एक और गांव में हो गया। जब रावण को हरा कर राम लौटने लगे और पुष्पक विमान में बैठने को ही जा रहे हैं कि रस्सी किसी ने जल्दी खींच दी। वह रस्सी में बंधा पुष्पक विमान। वे बैठ ही न पाए और किसी ने ऊपर से रस्सी खींच दी, वह पुष्पक विमान उठ गया। तो लक्ष्मणजी ने पूछा कि बड़े भैया, आपके पास टाइम टेबल हो तो देखें कि फिर हवाई जहाज कब आएगा?
लड़के ही थे। तो उस लड़के ने सोचा कि अब यह तो गया ही। तो अब टाइम टेबल देखें तो। लोग बड़े चौंके कि टाइम टेबल और हवाई जहाज फिर कब आएगा!
कभी-कभी ऐसा होता है।
ऐसा एक बार और हुआ। हनुमानजी पहाड़ लेकर आए, और वे भी रस्सी पर चले आ रहे हैं। रस्सी उलझ गई। अब वे लटके हैं। उतर भी नहीं सकते। वह जो आदमी रस्सी चलाने के चार्ज में था, उसको कुछ नहीं सूझा कि अब करना क्या! और जनता भी हंसने लगी और लोग भी हैरान, और रामचंद्रजी देख रहे हैं और लक्ष्मणजी

मरे जा रहे हैं और हनुमानजी लटके। न वे उतरें, न जड़ी-बूटी आए। और यह सब सामने ही हो रहा है। रस्सी वाले को कुछ नहीं सूझा तो उसने रस्सी काट दी। अब तुम सोच सकते हो, जो होना था हुआ। हनुमानजी धड़ाम से गिरे। पहाड़ भी उनके ऊपर गिरा। रामचंद्रजी, जो सीखे बैठे थे, उन्होंने पूछा कि हनुमानजी, जड़ी-बूटी ले आए?
हनुमानजी ने कहाः ऐसी की तैसी जड़ी-बूटी की! पहले यह बताओ, रस्सी किसने काटी?
मगर यह कभी-कभी होता है, अन्यथा तो रामलीला वही है। फिर भी लोग प्रतिवर्ष देखते हैं। रामलीला कोई अफसाना नहीं है--पुराण है। उसमें कुछ शाश्वत है। कथा का ऊपरी जो आवरण है वही सब कुछ नहीं--भीतर आत्मा भी है। वह कोई फिल्म नहीं है। फिल्म में कोई आत्मा नहीं होती, सिर्फ देह होती है। एक बार देख ली, बात खत्म हो गई। रामलीला में तो उतना अर्थ है जितना तुम खोजो। कृष्ण की लीला में तो उतना अर्थ है जितनी तुम्हारी समझ हो। जितनी तुम्हारी समझ बढ़ती जाएगी, नये-नये अर्थ प्रकट होंगे, नये-नये फूल, नई-नई सुगंध खिलेगी।
पुराण का अर्थ होता है--ऐसी कथा, जो शब्दों में सीमित नहीं है, शब्दों में है, लेकिन वस्तुतः शब्दों के पार है।
तुम कहते होः "मंसूर और सरमद के अफसाने पुराने हो गए।"
नहीं हुए, कभी नहीं होंगे। नये ही नहीं थे, पुराने कैसे होंगे? शाश्वत हैं।
"मेरे लिए किस्सा नया तजवीज कर।"
यह नये की आकांक्षा नरक में भटकाती है। नये की आकांक्षा दुख में ले जाती है। नये की आकांक्षा का नाम ही संसार है। नया मिल भी जाएगा तो कितनी देर नया रहेगा, यह तो बताओ! मिला कि पुराना होना शुरू हो गया। हाथ में आया कि पुराना पड़ने लगा। आधी घड़ी बीती तो आधी घड़ी पुराना हो गया। और समय तो बीता जा रहा है।
तो नये के साथ कैसे सुख मिल सकता है? जब तक नया मिलता नहीं तब तक दुख रहता है कि अभी मिला नहीं; और जब मिलता है तो पुराना होने लगता है, फिर दुख मिलता है। न मिले तो दुख है; मिल जाए तो दुख है। नये के साथ दुख का जोड़ है। शाश्वत को खोजो! शाश्वत में न दुख है, न सुख। शाश्वत में आनंद है।
और यह नये का जो कुतूहल बना रहता है, उसको समझो। इससे होगा क्या? यह ऐसे ही है, जैसे कोई खुजली उठ आती है। खुजलाना अच्छा लगता है, मगर उससे कुछ लाभ नहीं होता, नुकसान ही होता है। लहूलुहान हो जाओगे, फिर पछताओगे।
नये की खोज खुजलाहट जैसी है। यह तुम्हें दिखाई पड़ने लगे तो तुम न नये
को खोजोगे और न फिर कभी कुछ पुराना पड़ेगा। तब तुमने जीवन में एक नया आयाम खोज लिया।
नये आयाम से मेरा अर्थ? तुम समय के बाहर हो गए। कालातीत से संबंध जुड़ा। वही पुराण है।
ये सब पुराण-पुरुष हैं--मंसूर, सरमद, जीसस, सुकरात। ये सब पुराण-पुरुष हैं। इन्होंने जो शाश्वत है उसको ही समय की धारा में प्रकट किया है। क्या है इनकी सारी कथाओं का सार? इतना ही है कि सत्य जब भी आएगा, लोग इतने झूठ हो गए हैं कि सत्य को सूली दी जाएगी। सत्य जब भी प्रकट होगा, लोग नाराज होंगे, लोग दुश्मन हो जाएंगे। क्योंकि लोग झूठ में जीए हैं, झूठ में पगे हैं। झूठ लोगों की जिंदगी है।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा हैः आदमी बिना झूठ के नहीं रह सकता। फ्रेड्रिक नीत्शे ने यह भी कहा है कि कोई आदमी के झूठ न छीने। आदमी झूठ के बिना जी ही नहीं सकता। उसे प्यारे झूठ दो और वह मस्त रहेगा और तुम्हारी पूजा करेगा। और तुमने उसके झूठ तोड़े और तुमने उसे कड़वा सत्य दिया, वह तुम्हारी गरदन काटेगा। जीसस को ऐसे ही थोड़े काटा। सरमद को ऐसे ही थोड़े मारा। इन्होंने सत्य कहा; जैसा था वैसा कह दिया। जैसा था वैसा कहोगे, तो हजारों लोग नाराज हो जाएंगे, क्योंकि उनके झूठ दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे। इस दुनिया में कोई अपने झूठ को नहीं देखना चाहता।
कल एक मित्र ने पूछा था कि दृढ़ निश्चय करके आया हूं संन्यास का, मगर यहां आकर आपके सत्संग में बैठ कर तो संन्यास का भाव ही चला गया। तो जब

मैंने कल यह कहा कि अपने को धोखा मत दो, मन बहुत बेईमान है--तो उन्होंने आज लिख कर भेजा है कि सुनते वक्त तो ऐसा लगा कि आप ठीक कह रहे हैं, कि यह मन बेईमान है, यह मन शैतान है, इसकी सुनना ठीक नहीं; फिर जब यहां से बाहर चला गया और धीरे-धीरे आपका प्रभाव कम हो गया, तो मुझे लगा कि कहीं यह आदमी धोखेबाज तो नहीं? फ्राड, जालसाज तो नहीं? कि ऐसी बातों में फंसा कर और मुझे संन्यास दिलवा दे!
अब वे पूछते हैं कि आप कहिए, मैं क्या करूं?
अब मैं तुमसे जो भी कहूंगा, तुम्हारा मन फिर उसमें कुछ सोचेगा। असल में तुम यह चाहते हो कि मैं तुमसे कह दूंः क्या रखा है संन्यास में? तुम तो संन्यासी हो ही। तुम तो परम संन्यासी हो। तुम तो भीतर से संन्यासी हो ही गए, बाहर के कपड़ों में क्या रखा है? फिर तुम प्रसन्न हो जाओगे। तुम कहोगेः हां, यह आदमी है! सच्चा भगवान मिल गया! फिर तुम मस्त अपने घर जाओगे, क्योंकि तुम्हारे मन की कह दी गई। तुम्हारे मन की कह दी जाए तो तुम राजी हो जाते हो।
लोग मेरे पास पूछने आते हैं और वे राह देखते हैं कि उनकी मन की मैं कहूं। अगर उनकी मन की कहूं तो बिल्कुल ठीक है, एकदम मेरे चरणों में गिर जाते हैं कि आपने बिल्कुल सत्य कह दिया। और मैं जानता हूं कि उनके मन का पड़ रहा है, इसलिए सत्य है। अगर उनके मन के अनुकूल न पड़े तो वे बड़े उदास हो जाते हैं, बड़े नाराज हो जाते हैं।
तुम अपने झूठ के लिए सहारे खोज रहे हो। तुम झूठ से छूटना नहीं चाहते। झूठ सत्य है--ऐसा कोई तुम्हें समझाए, कोई तुम्हें बताए। तुम उससे राजी होते हो। इसलिए तो तुम पंडित-पुरोहित के पास जाते हो, क्योंकि उसे कोई मतलब नहीं है सत्य से। तुम्हारा जो झूठ है वह उसी को सत्य प्रमाणित करता है। सरमद को तुम क्षमा नहीं कर पाते। मंसूर को तुम कैसे क्षमा करोगे? वे तुम्हारे झूठों को कोई सहारा नहीं देते। वे बड़ी रोशनी प्रकट करते हैं कि तुम सबको अपने झूठ दिखाई पड़ जाएं। वे तुम्हारे चेहरे को झटक लेते हैं, ताकि तुम्हारा मुखौटा उखड़ जाए और तुम्हें दिखाई पड़ जाए कि यह तुम्हारा चेहरा नहीं। लेकिन तुम्हारे मुखौटे को कोई बाजार में झपट ले, बीच बाजार में लोगों के सामने झपट ले, तुम्हारे झूठ को झूठ कह दे और सिद्ध कर दे कि झूठ है--तुम कैसे उसे क्षमा करोगे?
यह शाश्वत कथा है। सत्य क्षमा नहीं किया जा सकता। सत्य को सूली दी जाती है। अलग-अलग ढंग से, लेकिन सत्य को सूली दी जाती है। लोग झूठे हैं, भीड़ उनकी है। वे नाराज होते हैं। यह अफसाना नहीं है। यह कहानी नहीं है। यह जीवन की प्रक्रिया है। और जब भी सत्य आएगा, लोग नाराज होंगे। अनेक-अनेक तलों से नाराजगियां जाहिर करेंगे। मूढ़ हैं। झूठ से भरे हैं। लेकिन, यह बात स्वीकार नहीं कर सकते हैं। स्वीकार ही कर लें तो झूठ के बाहर आने लगें। स्वीकार कर लें तो मूढ़ता के बाहर आने लगें। यह स्वीकार नहीं कर सकते। और जो भी जगाएगा, उस पर नाराज हो जाते हैं। ऐसा पहले भी हुआ, आज भी हो रहा है, कल भी होता रहेगा। ऐसा सौभाग्य का दिन कभी न आएगा, लगता है, जब सत्य को सूली न लगे, जब सत्य का तिरस्कार न हो, जब सत्य को जहर न पिलाया जाए। ऐसी आशा नहीं लगती कि कभी ऐसा होगा। इसलिए नहीं होगा कि यह जो भीड़ है, यह सत्य के साथ जी ही नहीं सकती।
तुम अपने झूठ पहचानना शुरू करो। कितने तरह के झूठ तुमने बोल रखे हैं! कितने तरह के झूठ तुमने सम्हाल रखे हैं! उन झूठों में तुमने सुरक्षा बना ली है। तुम कहते होः यह मेरी पत्नी है, यह मेरा पति है। तुम बिल्कुल अकेले हो; न कोई पत्नी है, न कोई पति है। लेकिन अकेलेपन से डरते हो, तो तुमने संबंध बना लिए हैं। फिर संबंधों को ठीक से बिठा लेने के लिए बड़े रीति- रिवाज बना लिए हैं। सात फेरे लगाते हो, मंत्र पढ़े जाते हैं। पंडित-पुरोहित शास्त्रों से वचन उदधृत करते हैं। बैंड-बाजे बजाए जाते हैं, भीड़-भाड़ इकट्ठी की जाती है। यह सब सिर्फ एक बात को तुम्हारे मन पर ठीक से खींच देने के लिए कि यह संबंध बिल्कुल पक्का हो गया। सिर्फ इस बात के लिए कि यह संबंध बिल्कुल पक्का हो गया, अब तुम अकेले नहीं हो; कोई तुम्हारा संगी-साथी है, जीवन-मरण का साथी है।

कौन किसके जीवन-मरण का साथी है? न तो जीवन का कोई साथी है, न मरण का कोई साथी है। धोखेधड़ी में साथ है। पत्नी अकेली है; वह भी चाहती है, अकेले होने में डर लगता है, अकेले में घबड़ाहट होती है, कोई साथ चाहिए, तो हाथ पकड़े है। तुम भी अकेले हो। तुम लाख कहो कि तुम मर्द बच्चे हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। अकेले हो। और तुम भी डर रहे हो। पत्नी मौजूद रहती है तो तुम भी अकड़े रहते हो।
किसी पति से झगड़ा मत लेना, अगर उसकी पत्नी मौजूद हो; क्योंकि पत्नी की मौजूदगी में वह एकदम बहादुर हो जाता है। पत्नी को दिखाना पड़ता है न उसको कि बहादुर! अगर पत्नी न हो तो वह अपनी पूंछ दबा कर निकल जाए। लेकिन पत्नी के सामने अगर तुमने छेड़ दिया तो वह बिल्कुल पागल हो जाएगा। सिद्ध करना है पत्नी के सामने! क्योंकि यह पत्नी यही तो भरोसा माने बैठी है कि एक बलशाली व्यक्ति का सहारा मिल गया; एक बड़े वृक्ष के साथ मेरी लता का जोड़ हो गया है! पत्नी के सामने दब्बू से दब्बू पति भी एकदम बहादुर हो जाता है।
पत्नी धोखा खा रही है। पति धोखा खा रहा है। दोनों धोखा खाना चाहते हैं, इसलिए खा रहे हैं। दोनों अकेले हैं। और जब दो अकेलेपन मिलते हैं तो अकेलापन दोहरा हो जाता है, कम नहीं होता, ख्याल रखना। कैसे कम हो जाएगा? कुछ गणित तो सोचो! दो बीमार आदमी एक कमरे में हैं तो बीमारियां दुगनी हो जाती हैं; कम नहीं होतीं। दो उदास आदमी एक साथ जोड़ दो तो उदासी दोहरी हो जाती है। दो चिंतातुर आदमी जोड़ दो, दोहरी चिंता हो जाती है। दो पागलों को साथ बिठा दो, पागलपन हजार गुना हो जाता है, दुगना ही नहीं। गुणनफल होता है। लेकिन हम अपने को मनाए रखते हैं कि सब ठीक है। कुछ भी ठीक नहीं! तुम किसी से पूछते होः कहो भाई, सब कैसा चल रहा है? वह कह रहा हैः सब ठीक है। जरा पूछो भी फिर से कि सच कह रहे, सब ठीक है? लेकिन हम ऐसा कहते नहीं, क्योंकि वह अशिष्ट होगा। क्यों बेचारे का राग छेड़ना! क्यों किसी का दुख, क्यों किसी की रग छेड़नी! क्यों किसी का घाव छेड़ना! तुम भी कहते हो कि हम भी मजे में हैं, तुम भी मजे में हो।
कोई भी मजे में नहीं है। चेहरे बना कर घूम रहे हैं। इन्हीं चेहरों को झपट लेता है कोई मंसूर। और कह देता है कि तुम झूठ हो; और जरा भी ठीक नहीं हो! और तुम्हारी जिंदगी बिल्कुल नरक है। सुख तुमने जाना नहीं है, सिर्फ वहम में हो। दुख ही दुख जाना है।
कोई मंसूर एकदम खोल कर रख देता है तुम्हारे हृदय के नासूर। कहता हैः जरा यहां तो देखो, यह हो तुम! तुम नाराज न होओ तो क्या करो? तुम कैसे बरदाश्त करो अपनी यह पीड़ा? तुम किसी तरह भुलाए बैठे थे, अपने घाव को छिपा लिया था, मलहम-पट्टी कर ली थी, ऊपर से फूल का गजरा रख दिया था। सब ठीक मालूम हो रहा था। फूल की गंध आ रही थी। यह आदमी आया, इसने फूल का गजरा हटा दिया, मलहम-पट्टी उखेड़ दी, भीतर की मवाद बहने लगी। दुर्गंध आने लगी। तुम नाराज होओ, यह भी स्वाभाविक है।
धन्यभागी हैं वे, जो उनके मुखौटे छीने जाने पर नाराज नहीं होते, बल्कि अनुग्रह मानते हैं। बुद्धिमान हैं वे जो नाराज नहीं होते, अनुग्रह मानते हैं। क्योंकि एक दफा मुखौटा छिन जाए, तो असली चेहरे की खोज शुरू हो सकती है। और एक बार झूठ से नाता टूट जाए, तो सत्य से नाता जुड़ सकता है। सत्य से नाता जुड़ ही नहीं सकता जब तक झूठ से नाता जुड़ा हुआ है। सांत्वनाओं से नहीं होगा कुछ--सत्य चाहिए। झूठी आशाओं से नहीं होगा कुछ, सत्य का सीधा अनुभव चाहिए।
ऐसा पहले हुआ, ऐसा आगे भी होता रहेगा। नया इस पृथ्वी पर कुछ भी नहीं होता। पुराना भी इस पृथ्वी पर कुछ नहीं है। सब शाश्वत है। वही खेल चल रहा है। ज्ञानी-अज्ञानी के बीच वही संघर्ष। कुछ बदलाहट नहीं मालूम पड़ती। पुराने से पुराने शास्त्र जो कहते हैं, वैसा का वैसा आज है, कोई फर्क नहीं पड़ा है।
छह हजार वर्ष पुरानी मनुष्य की खाल पर लिखी गई एक सूचना चीन में मिली है। जो लिखा है, वह ऐसा है, जो आज भी सच है। लिखा है कि बेटे बाप का आदर नहीं करते हैं। धर्म विनष्ट हो गया है। नीति नष्ट हो गई है। महाअंधकार का युग आ गया है। छह हजार साल पहले! और यही तो तुम अब भी कहते हो। यही तुम सदा कहते

रहे हो। कुछ फर्क नहीं हुआ है। जो पहले था, वैसा ही आज है। जैसा आज है, वैसा ही आगे भी होगा।
लेकिन एक शाश्वत खेल चल रहा है। ज्ञानी आते हैं, चमत्कार है। इतने महाअज्ञान में भी कभी-कभी कोई ज्ञानी पैदा हो जाता है। इतने मरुस्थल में कभी-कभी कोई मरूद्यान, कहीं कोई जल का झरना प्रकट हो जाता है। थोड़ी हरियाली हो जाती है, थोड़े फूल खिलते हैं, वृक्ष होते हैं, थोड़ी शीतल बयार बहती है, थोड़ा वसंत आता है। लेकिन पूरा मरुस्थल नाराज हो जाता है। क्योंकि जब तक मरूद्यान नहीं होता, मरुस्थल को यह पता नहीं होता कि मैं मरुस्थल हूं। मरूद्यान को देख कर तुलना पैदा होती है।
जीसस तुम्हारे पास में खड़े हो जाते हैं, तब तुम्हें पता चलता है तुम महाअंधकार हो। वह जो ज्योतिर्मय पुरुष पास में खड़ा है, उसकी ज्योति तुम्हारे अंधकार को दिखाती है। जो बुद्धिहीन हैं, वे उस ज्योति को बुझाने में लग जाते हैं ताकि उनको अपना अंधकार न दिखाई पड़े। जो बुद्धिमान हैं, वे अपने अंधकार को मिटाने में लग जाते हैं। वे उस ज्योति से ज्योति लेने लगते हैं। अंधकार मिट जाए तो फिर दिखाई नहीं पड़ेगा। दोनों का लक्ष्य एक ही है। समझना!
वह जो आदमी जीसस का दीया बुझाना चाहता है, उसका भी लक्ष्य यही है कि मुझे मेरा अंधकार न दिखाई पड़े। मगर वह गलत काम कर रहा है। जीसस का दीया बुझ जाएगा, इससे उसका अंधकार नहीं मिटेगा, बल्कि अंधकार और सघन हो जाएगा। शायद जीसस की कुछ किरणें उसके अंधकार को कम भी करती थीं। शायद जीसस की लपट से वह लपट उधार भी ले सकता था। अपने दीये को पास ले जाता। जीसस का सत्संग करता। साध-संगत में बैठता। तो शायद घटना घट जाती। अंधकार सच में ही मिट जाता। मगर आकांक्षा उसकी समझो। आकांक्षा उसकी है कि वह नहीं चाहता कि मैं अंधकारपूर्ण। मगर काम गलत कर रहा है।
जो आदमी जीसस को प्रेम करने लगता है, वह भी यही चाहता है कि मैं अंधकारपूर्ण न रहूं, लेकिन वह ठीक मार्ग पर चल रहा है। वह जीसस को नहीं मिटाता; वह अपने को मिटाता है, ताकि जीसस के लिए जगह खाली हो जाए। देखना, दोनों की आकांक्षा एक जैसी है।
तुमने प्रसिद्ध कहानी सुनी है न कि अकबर एक दिन दरबार में आया और उसने
एक लकीर खींच दी दीवाल पर और अपने दरबारियों से कहाः इस लकीर को बिना छुए छोटा कर दो। अब बिना छुए कैसे लकीर छोटी हो? वे दरबारी चिंतित हुए। उन्होंने कहाः यह तो बेबूझ पहेली है। छूना तो पड़ेगा ही। छोटा करेंगे तो छूना पड़ेगा। मिटानी पड़ेगी लकीर, थोड़ी कम करनी पड़ेगी, काटनी पड़ेगी, तो छोटी होगी। फिर बीरबल उठा और उसने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। उसने उस लकीर को छुआ नहीं, सिर्फ उसके नीचे एक बड़ी लकीर खींच दी। वह लकीर छोटी हो गई। तुम जानते हो, यही नाराजगी है। मंसूर तुम्हारे पास खड़ा होता है--बड़ी लकीर! तुम एकदम छोटे हो जाते हो। तुम छोटे नहीं होना चाहते। तुम्हें अपमान लगता हैः इस आदमी ने छोटा कर दिया! तुम इस लकीर को मिटा देते हो। इस लकीर के मिटने से तुम्हारा दंश मिट जाता है। तुम फिर वैसे के वैसे हो गए, जैसे थे, कुछ बदलाहट न हुई। अवसर चूक गए। एक महा अवसर चूक गए--क्रांति का, रूपांतरण का। जो समझदार है, वह इस बड़ी लकीर से बड़ी लकीर होने की कला सीख लेता है। वह कहता हैः ठीक, मैं छोटी लकीर हूं, लकीर तो हूं न! तुम बड़ी लकीर हो--लकीर ही हो न! हम दोनों लकीर हैं--मैं छोटी, तुम बड़ी। तो छोटी लकीर बड़ी हो सकती है। नाराज क्या होना! तुम अच्छे आए! तुमने मुझे याद दिलाई कि मेरी लकीर बड़ी हो सकती है। तुम्हारा मैं अनुग्रह मानता हूं। जो ऐसे बुद्धिमान हैं, वे शिष्य हो जाते हैं। जो बुद्धू हैं, वे दुश्मन हो जाते हैं। बुद्धू बहुत हैं। बुद्धिमान बहुत कम हैं। इसलिए यह कहानी पहले भी हुई, अब भी हो रही है, आगे भी होगी।

तीसरा प्रश्नः सुना है कि जिंदगी चार दिनों की होती है और मिलन पांचवें दिन होता है। तो क्या करूं?

पांचवां दिन चार दिनों के पहले है। पांचवां दिन चार दिनों में किसी
भी दिन आ सकता है। दूसरे दिन आ सकता है, तीसरे दिन आ सकता है, चौथे दिन आ सकता है, पहले दिन आ सकता है।
पांचवें दिन का अर्थ होता हैः परमात्मा से मिलन मृत्यु में होता है, जिंदगी चार दिन की है। चार दिनों में नहीं होता परमात्मा से मिलन, क्योंकि जिंदगी तुम्हारी है--अहंकार की है। मिलन होता है मृत्यु में। जो मिटता है, उसका मिलन होता है। वह पांचवां दिन है। वह जिंदगी के बाहर।
मरना सीखो। मरने की कला ही धर्म है। ऐसे मरने की कला कि फिर दुबारा पैदा भी नहीं होना पड़े। ऐसे मरने की कला कि मरे सो बिल्कुल मरे--सदा के लिए मरे।
है बका का ख्वाहां, तो तालिबे-फना हो जा।
असली जिंदगी चाहते हो तो फना हो जाओ। अस्तित्व चाहते हो--वास्तविक अस्तित्व--तो मिट जाओ।
है बका का ख्वाहां, तो तालिबे-फना हो जा।
जिंदगी के मुतलाशी, मर्गे-आशना हो जा।
जीस्त के समझ मानी, राज मौत का पा ले,
मर के बेनिशां हो जा, जी के लापता हो जा।
अगर जिंदगी का राज समझना हो तो मौत का राज समझ लो। मौत में कुंजी रखी
है जिंदगी की। तुम जिंदगी में तलाशते रहते हो, इसलिए राज नहीं मिलता। राज उन्हें मिलता है जो मृत्यु में तलाश लेते हैं।
तुमने कहानियां सुनी हैं न पुरानी! बच्चों की कहानियों में अब भी ऐसा आता है कि कोई राजा है, उसने अपने को बचाने के लिए अपनी जिंदगी एक तोते में रख दी है, अपनी आत्मा एक तोते में रख दी है। अब तुम राजा को कितना ही मारो, मार न पाओगे, क्योंकि उसकी जिंदगी तोते में है। तोते को मरोड़ दो, तोते की गरदन मरोड़ दो, राजा मर जाएगा।
ये कहानियां बड़ी अर्थपूर्ण हैं। ये बच्चों की कहानियां हैं, बूढ़े भी इनको समझते नहीं। इसका मतलब यह हुआ कि जहां तुम्हें जिंदगी दिखाई पड़ती है, वहां जिंदगी नहीं है--जिंदगी का राज कहीं और छिपा है। तुम सोच भी नहीं सकते, वहां छिपा है। छिपती ही चीजें ऐसी जगह हैं, जहां तुम सोच न सको। इसलिए जो होशियार हैं, वे चीजें ऐसी जगह छिपाते हैं जहां सोची न जा सकें। जैसे समझो, तुम्हारे पास हीरा है और तुम्हारे घर में जो कूड़ा-कर्कट हैं, उसमें तुम छिपा दो, कोई चोर उसे न चुरा सकेगा। कूड़ा-कर्कट में कोई हीरा छिपाता है? खोजेगा तिजोड़ी में, खोजेगा जहां बड़े ताले लटके होंगे। खोदेगा जमीन, वहां खोजेगा। कोई सोच भी नहीं सकता कि हीरा जो है, वह बाहर जो बाल्टी रखी है, जिसमें घर का कूड़ा-कर्कट फेंका जाता है, उसमें छिपा होगा। जिंदगी का राज मौत में छिपा है, कोई सोच भी नहीं सकता। मौत तो जिंदगी
से उलटी है! जिंदगी का राज वहां क्यों होगा?
जीस्त के समझ मानी, राज मौत का पा ले,
मर के बेनिशां हो जा, जी के लापता हो जा।
इस ढंग से जीओ कि तुम्हारा पता खो जाए। इस ढंग से मरो कि तुम्हारा निशान भी न रह जाए।
है बका का ख्वाहां, तो तालिबे-फना हो जा।
जिंदगी के मुतलाशी, मर्गे-आशना हो जा।
जीस्त के समझ मानी, राज मौत का पा ले,
मर के बेनिशां हो जा, जी के लापता हो जा।
वस्ले-दोस्त के तालब, वस्ले-दोस्त की खातिर, आरजू हो सरतापा, सरबसर दुआ हो जा।
ख्वाहिशों से दुनिया की, दिल को अपने कर खाली, होके उसका ही रह जा, उसकी ही रजा हो जा।
दिल में हो ख्याल उसका, आंख में हो जमाल उसका, गैर के तसव्वुर से, गैर-आशना हो जा।
शम्मे-हुस्न से इसकी, नूरे-सिद्क कर हासिल, शीशाए-मोहब्बत में, जल्वाए-सफा हो जा।
गैर और अपने का, खुद ब खुद मिटेगा फर्क,

या मिटा दे अपना आप, या खुद आशना हो जा।
हर किसी से उल्फत कर, हर किसी की खिदमत कर,
खादिमे-बशर बन कर, बंदाए-खुदा हो जा।
एक ही उपाय हैः पांचवां दिन। चार दिन जिंदगी के। ये जिंदगी के चार दिन ऐसे ही बीत जाते हैं--दो आरजू में, दो इंतजार में। दो मांगने में, दो प्रतीक्षा करने में। कुछ हाथ कभी लगता नहीं। पांचवां दिन असली दिन है। जब भी तुम्हें समझ आ गई इस बात की, कि मेरा होना ही मेरे होने में अड़चन है, क्योंकि मेरे होने का मतलब है कि मैं परमात्मा से अलग हूं। मेरे होने का मतलब है कि मैं इस विराट से अलग हूं। मेरे होने का मतलब है कि मैं एक नहीं, संयुक्त नहीं, इस परिपूर्ण के साथ एकरस नहीं। यही तो अड़चन है। यही दुख है। यही नरक है। दीवाल हट जाए। यह मेरे होने का भाव खो जाए। मृत्यु।
मृत्यु का अर्थ यह नहीं है कि तुम जाकर गरदन काट लो अपनी। मृत्यु का
यह अर्थ नहीं है कि जाकर जहर पी लो। मृत्यु का अर्थ हैः अहंकार काट दो अपना। मैं हूं तुझसे अलग, यह बात भूल जाए। मैं हूं तुझमें। मैं हूं ऐसे ही तुझमें जैसे लहर सागर में। लहर सागर से अलग नहीं हो सकती। कितनी ही छलांग ले और कितनी ही ऊंची उठे, जहाजों को डुबाने वाली हो जाए, पहाड़ों को डुबा दे--लेकिन लहर सागर से अलग नहीं हो सकती। लहर सागर में है, सागर की है।
ऐसे ही तुम हो--विराट चैतन्य के सागर की एक छोटी सी लहर। एक ऊर्मि! एक किरण! अपने को अलग मानते हो, वहीं अड़चन शुरू हो जाती है। वहीं से परमात्मा और तुम्हारे बीच संघर्षण शुरू हो जाता है। और उससे लड़ कर क्या तुम जीतोगे? कैसे जीतोगे? क्षुद्र विराट से कैसे जीतेगा? अंश अंशी से कैसे जीतेगा? लहर सागर से लड़ कर कैसे जीतेगी? कितनी ही बड़ी हो, सागर के समक्ष तो बड़ी छोटी है।
यह भाव तुम्हारा चला जाए, उसका नाम मृत्यु। मैं सागर की लहर हूं। सागर मुझमें, मैं सागर में। मेरा अलग-थलग होना नहीं है। और उसी क्षण तुम पाओगे कि पांचवां दिन घट गया। फिर भी तुम जी सकते हो।
बुद्ध का पांचवां दिन घटा, फिर चालीस साल और जीए। मगर वह जिंदगी फिर
और थी। कुछ गुणधर्म और था उस जिंदगी का। उस जिंदगी का रस और था, उत्सव और था। फिर सच में जीए। उसके पहले जिंदगी क्या जिंदगी थी? बुद्ध अपने शिष्यों को कहते थेः तुम अपनी जिंदगी उसी दिन से गिनना, जिस दिन से संन्यास लो; उसके पहले की जिंदगी गिनती मत करना।
तो कभी-कभी बड़ी अनूठी घटना घटती थी। उस समय का एक बड़ा सम्राट प्रसेनजित बुद्ध के दर्शन को आया। वह पास ही बैठा था। तभी एक भिक्षु आया, जिसकी उम्र होगी कोई पचहत्तर वर्ष। बूढ़ा आदमी। उसने झुक कर बुद्ध को नमस्कार किया। बुद्ध ने पूछाः भिक्षु... ! वे अक्सर पूछते थे--अक्सर क्या, निरंतर ही, जो आता उसी से पूछते थेः भिक्षु, तेरी उम्र कितनी है?
उस बूढ़े भिक्षु ने कहाः चार वर्ष, प्रभु!
प्रसेनजित तो बड़ा हैरान हुआ। उसने कहाः हद हो गई! चार वर्ष! दो-चार वर्ष कम-ज्यादा कहे तो समझ में आ जाए, पचहत्तर का दिखता है, सत्तर का होगा, पैंसठ का होगा कि अस्सी का होगा; मगर पचहत्तर साल का दिखने वाला आदमी चार साल का! सोचा कि शायद ठीक से सुन नहीं पाया। तो प्रसेनजित ने कहा कि महानुभाव, मैं ठीक से सुन नहीं पाया आपने क्या उत्तर दिया। जरा जोर से कहें। कितनी उम्र आपकी?
उस बूढ़े ने कहाः महाराज, चार वर्ष।
प्रसेनजित ने बुद्ध की तरफ देखा। बुद्ध हंसने लगे। उन्होंने कहाः तुम्हें शायद पता नहीं, हम किस तरह उम्र गिनते हैं। यह आदमी चार साल पहले संन्यस्त हुआ, तो यही इसकी उम्र है, बाकी इकहत्तर साल तो नींद में गए। सोया-सोया था! ध्यान की भनक ही न पड़ी थी। उस नींद को क्या गिनना! रात को क्या गिनना! अंधेरे को क्या गिनना! वह गिनती फिजूल है। इसलिए हम उस दिन से गिनते हैं जिस दिन से व्यक्ति ध्यान में उतरा। जिस दिन से व्यक्ति श्रोतापन्न हुआ, जिस दिन से उसने सत्य को खोजने की तलाश में पहला कदम उठाया--उस दिन से उम्र गिनते हैं।
बुद्ध का पांचवां दिन, चालीस साल के थे, तब आया। फिर चालीस साल और जीए; मगर ये जो चालीस साल थे, किसी और ही महिमा के! इनकी गरिमा और! यह परमात्ममय,

यह भगवत्तापूर्ण! इनमें क्षुद्रता न रही फिर, सीमा न रही फिर। चालीस साल तक लहर की तरह जीए, फिर पांचवां दिन आ गया। और फिर शेष चालीस साल सागर की तरह जीए।
पांचवां दिन आने दो! पांचवां दिन बड़े से बड़ा सौभाग्य है!

अंतिम प्रश्नः परमात्मा कहां है और मैं उसे कहां खोजूं?

परमात्मा कहां नहीं है? तुम कहां हो, जो उसे खोजोगे? ठीक प्रश्न यह होगा। तुमने एक बात तो मान ही ली कि मैं हूं। वहीं भूल हो रही है। उसी भूल के कारण दूसरी भूल हो रही है कि परमात्मा कहां है? जब तुम हो तो परमात्मा नहीं हो सकता।
तुमने कभी बच्चों की किताब में एक चित्र देखा?
एक जवान स्त्री का चित्र होता है। गौर से देखते रहो तो थोड़ी देर में
वह बूढ़ी का चित्र हो जाता है। फिर गौर से देखते रहो तो फिर जवान स्त्री का चित्र हो जाता है।
तुमने कभी विचार किया उस चित्र पर? वे ही रेखाएं, जो जवान स्त्री का चेहरा बनाती हैं, वे ही रेखाएं थोड़ा घूम-फिर कर बूढ़ी स्त्री का चेहरा बनाती हैं। दोनों एक-दूसरे में छिपे हैं। जब तुमने पहली दफा देखा, हो सकता है बूढ़ी दिखाई पड़ी। जब तक तुम्हें बूढ़ी दिखाई पड़ती रहेगी, तब तक जवान नहीं दिखाई पड़ेगी, ख्याल रखना। अगर तुम देखते रहे, देखते रहे, तो आंखें ज्यादा देर किसी एक चीज पर थिर नहीं रह सकतीं। आंखों का स्वभाव चंचल है। तो जब तक तुम बूढ़ी को देखते रहे, देखते रहे, देखते रहे, थोड़ी देर में आंखें ऊब जाती हैं, अब बूढ़ी को नहीं देखना चाहतीं, अब नये की तलाश शुरू होती है। आंखें चंचल हैं। उस नई तलाश में अचानक तुम पाते होः अरे, ये रेखाएं तो एक जवान चेहरा बना रही हैं! फिर जवान स्त्री दिखाई पड़ने लगी। जब तुम्हें जवान स्त्री दिखाई पड़ने लगेगी तब तुम यह मत सोचना कि तुम्हें बूढ़ी दिखाई पड़ती रहेगी। दो में से कोई एक ही दिखाई पड़ सकता है। हालांकि तुमने बूढ़ी भी देखी है। ऐसा भी नहीं कि तुमने न देखी हो।
पहली दफा जब देखा था, तब तक तुम्हें पता नहीं था कि दो छिपे हैं। अब तो तुम्हें पता है। तुमने बूढ़ी भी देख ली। तुमने जवान भी देख ली। अब तुम दोनों को एक साथ देखने की कोशिश करना और तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। उस छोटे से चित्र में तुम दोनों को एक साथ कभी न देख पाओगे। एक ही देखा जा सकता है। क्योंकि वे ही रेखाएं जो जवान को बनाती हैं, वे ही रेखाएं बूढ़ी को बनाती हैं। अगर उन रेखाओं की एक व्याख्या दिखाई पड़ रही है--जवान--तो दूसरी व्याख्या कैसे दिखाई पड़ेगी? दूसरी व्याख्या दिखाई पड़ी कि पहली व्याख्या खो जाएगी।
और ऐसी ही दशा है इस अस्तित्व की। जब तक तुम हो, परमात्मा नहीं। जब परमात्मा है, तुम नहीं। दोनों एक साथ न कभी दिखाई पड़े हैं, न दिखाई पड़ सकते हैं।
तुम पूछते होः "परमात्मा कहां है?"
यह प्रश्न इसलिए उठ रहा है कि तुमने मान लिया है कि मैं हूं। तुमने एक गेस्टाल्ट, एक व्याख्या स्वीकार कर ली है कि मैं हूं। बस परमात्मा नहीं दिखाई पड़ेगा।
परमात्मा भी यहीं छिपा है--इन्हीं वृक्षों की रेखाओं में; इन्हीं मनुष्यों की रेखाओं में; इन्हीं स्त्री-पुरुषों में; इन्हीं पहाड़-नदियों में; इन्हीं आकाश, चांद-तारों में! परमात्मा भी यहीं छिपा है, लेकिन तुमने अहंकार को खोज लिया है। यह अहंकार अभी यहां है। बस, परमात्मा दिखाई पड़ना बंद हो गया। अब तुम इस अहंकार को लेकर खोजते रहो, खोजते रहो, परमात्मा को कभी न पा सकोगे। उसे पाओगे तभी जब यह अहंकार तुम्हारे हाथ से छिटक जाएगा। एक क्षण को भी भूल जाओगे इसे, उसी क्षण तुम पाओगे कि परमात्मा है। तब दूसरा प्रश्न उठेगा कि परमात्मा तो है, मैं कहां?
कबीर ने कहा हैःहेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।
खोजते-खोजते परमात्मा को एक दिन ऐसी घड़ी आई कि कबीर खो गया। और जहां कबीर खो जाता है, वहीं परमात्मा प्रकट होता है।

बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।
इसी अनुभव के बाद कबीर ने कहा हैः प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाएं।
एक ही समाता है।
अब तुम पूछते होः "परमात्मा कहां है?"
मैं तुमसे पूछता हूंः परमात्मा कहां नहीं है? मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूंः तुम कहां हो? उसी खोज में लगो।
रमण महर्षि कहते थेः एक ही पूछो प्रश्न--मैं कौन हूं? बस इसी को खोजते चले जाओ।
अनेक लोग जो रमण को मानते हैं, वे सोचते हैं कि यह प्रश्न पूछने से कि मैं कौन हूं, एक दिन पता चल जाएगा कि मैं कौन हूं। उन्हें पता ही नहीं कि रमण का मतलब क्या है। "मैं कौन हूं?" पूछते-पूछते-पूछते, खोदते-खोदते एक दिन तुम्हें पता चलेगाः मैं हूं ही नहीं। और जिस क्षण तुम्हें पता चलेगा कि मैं हूं ही नहीं, उसी क्षण पता चल जाएगा कि परमात्मा कहां है, परमात्मा क्या है।
छीलते जाओ अपने अहंकार की प्याज को। एक पर्त, नई पर्त आ जाती है; दूसरी पर्त निकाली, फिर एक तीसरी पर्त आ गई। छीलते जाओ अहंकार की प्याज को। एक दिन शून्य हाथ में रह जाएगा। ऐसे ही पूछते जाओ--मैं कौन हूं? शरीर?
शरीर तो मैं नहीं हो सकता। क्योंकि शरीर में पीड़ा होती है, मुझे पता चलती है। शरीर कभी जवान होता है, कभी बूढ़ा होता है; मैं न तो कभी जवान होता, न बूढ़ा होता। मैं शरीर में भीतर छिपा हूं, शरीर नहीं हूं। एक प्याज की पर्त छिल गई।
पूछोः मैं मन हूं? विचार हूं?
कैसे हो सकता हूं मैं विचार? क्योंकि विचार मेरे सामने घूमते हैं।
तुम फिल्म देखते हो जाकर, तुम फिल्म तो नहीं हो सकते, क्योंकि फिल्म तुम्हारी आंख के सामने चलती है पर्दे पर। तुम दर्शक हो, द्रष्टा हो। और मन के पर्दे पर फिल्म चलती है विचार की, अनंत-अनंत विचार चलते हैं। मैं विचार नहीं हो सकता। दूसरी पर्त निकल गई।
मैं भाव हूं? हृदय हूं? भावना हूं?
नहीं हो सकता। जब क्रोध उठता है, तब तुम जानते, क्रोध उठ रहा है। जब प्रेम उठता है, तब तुम जानते, प्रेम उठता है। तुम देखने वाले हो। तुम ज्ञाता हो, साक्षी हो। यह भी मैं नहीं हूं।
ऐसे पर्त-दर-पर्त प्याज के छिलके निकलते चले जाते हैं। एक दिन अचानक तुम पाते हो--सारी पर्तें निकल गईं, हाथ में शून्य रह गया--मैं हूं ही नहीं। जिस दिन यह घटता है कि मैं हूं ही नहीं, मैं शून्य हूं। इसको बुद्ध ने कहाः अनत्ता, अनात्मा, मैं हूं ही नहीं। जिस क्षण यह घटा, उसी क्षण चित्र बदल जाता है, गेस्टाल्ट बदल जाता है। अचानक दिखाई पड़ता हैः सब तरफ परमात्मा है! कण-कण में परमात्मा है! क्षण-क्षण में परमात्मा है!
लेकिन तुम्हारा प्रश्न भी मैं टालना नहीं चाहता। तुम्हारा प्रश्न भी सार्थक है--तुम्हारी दृष्टि से। मैं चाहूंगा कि तुम यह पूछो कि परमात्मा कहां नहीं है? लेकिन तुम कैसे पूछ सकते हो? वह मेरा प्रश्न है। मैं चाहूंगा कि तुम पूछो कि मैं कहां हूं? मैं कौन हूं? लेकिन वह तुम अभी नहीं पूछ सकते। अभी हिम्मत नहीं इतनी पूछने की कि मैं कौन हूं। क्योंकि डर लगता है, कहीं ऐसा न हो कि मैं हूं ही न! ऐसा न हो कि मैं होऊं ही न! ऐसा डर लगता है, तो ऐसा खतरनाक प्रश्न पूछना ठीक नहीं।
तुमने कभी देखा प्रयोग करके?
यहां हम प्रयोग करते हैं बहुत तरह के। उनमें एक प्रयोग यही है। अठारह घंटे का एक प्रयोग है--सतत यही पूछने का कि मैं कौन हूं? अठारह घंटे तक और कुछ नहीं पूछना, एक ही बात पूछनी है कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? थोड़ी ही देर में मस्तिष्क पगलाने लगता है, घबड़ाने लगता है, बेचैन होने लगता है, पसीना-पसीना होने लगता है। अठारह घंटे तक सतत--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? तीन-चार घंटे के बाद तुम पाते हो कि खोपड़ी घूमी जा रही है। छह-सात घंटों के बाद तुम पाते हो कि सारा जगत घूम रहा है--मैं कौन हूं? मैं कौन

हूं? एक नशा, एक खुमारी चढ़ने लगती है। अठारह घंटे पूरे होते-होते कुछ क्षणों के लिए फिंक जाते हो तुम एकदम, सन्नाटा छा जाता है, कोई नहीं रह जाता। पूछने वाला नहीं रह जाता। एक शून्य पकड़ लेता है। उसी पकड़ने में पहली दफा झलक मिलती हैः परमात्मा है!
वह तो जब होगा होगा, जब उतनी हिम्मत जुटाओगे, तब। अभी इतना तो कर ही सकते हो कि जरा गौर से देखने लगो। जब वृक्षों को देखो तो जरा गौर से देखो, वे भी जीवंत हैं! जीवन परमात्मा का रूप है। हरियाली, उन पर खिले फूल--वह भी परमात्मा के जीवन का ढंग है। नदी को बहते देखो, तो बहाव परमात्मा का है। गति परमात्मा की है। गत्यात्मकता परमात्मा है। किसी बच्चे को खिलखिलाते देखो--हंसी परमात्मा है! खिलखिलाहट परमात्मा है! उत्सव परमात्मा है! किसी की आंख में आंसू देखो--करुणा परमात्मा है! अनुकंपा परमात्मा है!
इस स्मरण को जगाए चलो। खोजो जरा गौर से! धीरे-धीरे तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ेगी और तुम्हें कभी-कभी किसी वृक्ष में, कभी किसी तारे में, कभी किसी चेहरे में परमात्मा की झलक मिल जाएगी। अभी उसी झलक से भरोसा रखो। एक झलक मिले, एक चुस्की ले ली। ऐसे धीरे-धीरे पोषण मिलेगा।
तू आज तोड़ दे सब बुत उस एक बुत के सिवा
फसादो-जंगो-जदल तर्क कर, मोहब्बत कर
कि आशतीओ-मोहब्बत में खुदा की रजा
समझ ले सच्ची इबादत के आज मानी तू
तवहहुमायात के असनाम की न कर पूजा
खुदा को देख मुजस्सम खुदा के बंदों में
खुलूसे-खिदमते-खल्के-खुदा की मांग दुआ
यही है जिंदा खुदा, जीता जागता माबूद
वो खाली हाथ रहेगा जो इसको पा न सका
इसी के आगे झुका दे सरे-नमाज अपना
तू आज तोड़ दे सब बुत इस एक बुत के सिवा
यह जो चारों तरफ फैला हुआ निसर्ग है, इस एक प्रतिमा के सिवाय और सारी प्रतिमाएं भूल जाओ। तुम्हारे मंदिरों में रखी प्रतिमाएं भगवान नहीं हैं, वे तुम्हारे हाथ के बनाए गए खिलौने हैं। तुम्हारा कृत्य है। सुंदर होंगे, मगर खिलौने हैं। परमात्मा की बनाई हुई प्रकृति में उसे खोजो, अगर खोजना है। आदमी के बनाए खिलौनों में मत खोजो। हिंदू, मुसलमान, ईसाई के खिलौनों में मत खोजो। मंदिरों में नहीं पाओगे उसे, जब तक तुम उसे वृक्षों में, पहाड़ों में, पर्वतों में नहीं पा लेते। पहले यहां पाओ। इतने विराट फैलाव में तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता! इतना जीवंत! इतना हरा-भरा! तुम जाते मंदिर की तरफ! एक मुर्दा आदमी के द्वारा बनाई गई मूर्ति की पूजा करने!
तू आज तोड़ दे सब बुत इस एक बुत के सिवा
यह एक प्रतिमा ही परमात्मा के लिए काफी है--ये आकाश, ये चांद-तारे, ये लोग, यह अस्तित्व।
फसादो-जंगो-जदल तर्क कर, मोहब्बत कर
छोड़ो बकवास कि कौन सही--हिंदू कि मुसलमान। यह विवाद छोड़ो कि कुरान कि वेद सही। छोड़ो तर्क। एक काम करो--
फसादो-जंगो-जदल तर्क कर...
छोड़ दो यह सब फसाद, यह विवाद।
... मोहब्बत कर
कि आशतीओ-मोहब्बत में खुदा की रजा
प्रेम में ही खुदा राजी होता है। प्रेम में ही परमात्मा तुमसे राजी होता है। प्रेम उसकी एकमात्र प्रार्थना है।
समझ ले सच्ची इबादत के आज मानी तू
तू आज तोड़ दे सब बुत इस एक बुत के सिवा
प्रकृति में खोजो--यही इबादत है, यही प्रार्थना है।
तवहहुमायात के असनाम की न कर पूजा
आदमी के द्वारा बनाई गई मूर्तियों की पूजा से कुछ भी न होगा। बहुत हो चुकी पूजा। आदमी के द्वारा रची गई प्रार्थनाएं बहुत हो चुकीं। कहीं नहीं

पहुंचे हो। अब तो परमात्मा के कृत्य में ही उसे खोजो। स्रष्टा को खोजना हो--उसकी सृष्टि में खोजो।
खुदा को देख मुजस्सम खुदा के बंदों में
ये जो खुदा ने बनाए हैं लोग, ये जो खुदा ने बनाई हैं वस्तुएं--इनमें उसे देखो।
खुदा को देख मुजस्सम खुदा के बंदों में
खुलूसे-खिदमते-खल्के-खुदा की मांग दुआ
और यह जो चारों तरफ मौजूद है, इसकी प्रार्थना करो। इसके सामने झुको! झुकने के लिए कहीं और जाने की जरूरत नहीं--जहां हो, वहीं जो सौंदर्य ने तुम्हें घेरा है, इसके सामने झुको!
यही है जिंदा खुदा, जीता जागता माबूद
यह जो जीता-जागता अस्तित्व है, यह जो प्रकृति है--यही है परमात्मा।
पूछते होः "परमात्मा कहां है?"
यहां है!
यही है जिंदा खुदा, जीता जागता माबूद
वो खाली हाथ रहेगा जो इसको पा न सका
इसी के आगे झुका दे सरे-नमाज अपना
तू आज तोड़ दे सब बुत इस एक बुत के सिवा आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
उन्नीसवां प्रवचन

भक्तिः चाकर बनने की कला

म्हाने चाकर राखोजी, म्हाने चाकर राखोजी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।।
चाकरी में दरसन पाऊं, सुमिरण पाऊं खरची।
भाव-भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी।।
मोरमुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजंती माला।
बिन्द्राबन में धेनु चरावें, मोहन मुरली वाला।।
ऊंचे-ऊंचे महल चिनाऊं, बिच-बिच राखूं बारी।
सांवरिया के दरसन पाऊं, पहर कुसुंबी सारी।।
जोगी आया जोग करण कूं, तप करने संन्यासी।
हरि भजन कूं साधु आया, बिन्द्राबन के बासी।।
मीरा के प्रभु गहर गंभीरा, सदा रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दे हैं, प्रेम नदी के तीरा।

रमैया मैं तो थारे रंग राती।
औरों के पिया परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजें पाती।
मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं, रोल करूं दिन-राती।
चूवा चोला पहिर सखी री, मैं झुरमुट रमवा जाती।
झुरमुट में मोहे मोहन मिलिया, घाल मिली गलबांथी।
और सखी मद पी-पी माती, मैं बिन पिया ही माती।
प्रेम-भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन-राती।
सुरत निरत को दिवलो जोयो, मनसा पूरन बाती।
अगम घाणि को तेल सिंचायो, बाल रही दिन-राती।
जाऊंनी पीहरिए आऊंनी सासरिए, हरि सूं सैन लगाती।

ये जहाने-रंगो-बू, जल्वागाहे-आरजू नाजनीनो-दिलनशीं, महवशो-जोहराजबीं गुलरुखो-लालाअजार, अतरबेज व मुश्कबार दिलफिरोजो-दिलनवाज, फितनारेजो-फितनासाज
इक मुजस्सम अरतआश, शोलारेजो-बर्कपाश नूरो-निकहत की परी, जानो-रुहे-दिलबरी हर कोई समझा यही, बस अभी मेरी हुई
इसके सब नाजो-अदा, लुत्फ और मेहरो-वफा वक्फ में मेरे लिए, इब्तदाए-वक्त से चार दिन की जिंदगी, बस इसी में कट गई
ये अरूसे-फितनाकार, पास आई बार-बार खेलती सबसे रही, पर किसी की कब हुई मेहरबां जिस पर हुई, जिसकी किस्मत खोल दी दर हकीकत वो मिटा, काम से अपने गया
जो समझते हैं इसे, इसको ठुकराते रहे
इक घड़ी इसकी बहार, लम्हा भर का बस निखार
रंग लाई है उधार, रूप भी है मुस्तआर
रौशनी खुर्शीद की, बन गई है चांदनी
जिनको शौके-दीद है, उनकी हद खुर्शीद है।
यह संसार लुभाता बहुत, पर तृप्ति इसमें जरा भी नहीं। यह संसार की दुल्हन नाचती पास-पास, मिलती कभी किसी को नहीं। सुंदर है बहुत, पर सौंदर्य इसका उधार है। रूपवान है बहुत, पर रूप इसका अपना नहीं। संसार में जो रूप है, वह भी परमात्मा की ही झलक है। जैसे चांद होता है रात में और सारी पृथ्वी चांदनी में नहा गई होती है; वृक्ष सुंदर हो उठते हैं; दिन में जो

कुरूप थे, वे भी रात की चांदनी में अपूर्व सौंदर्य से भर उठते हैं। इसी में मत खो जाना, चांद को खोजना। चांदनी में मत उलझ जाना। यह संसार चांदनी जैसा है।
जिनको शौके-दीद है, उनकी हद खुर्शीद है।
जो सच में ही खोज में निकले हैं, वे चांदनी में नहीं भटकेंगे, वे चांद
को पाकर रहेंगे।
संसार और परमात्मा का संबंध ऐसे ही है जैसे चांदनी और चांद का संबंध।
चांद है परमात्मा, चांदनी है संसार। परमात्मा से ही आता है यह संसार, जैसे चांदनी आती है चांद से। फिर भी चांदनी चांद नहीं है। परमात्मा से उधार लिया हुआ है सारा रूप, सारा रंग, सारा संगीत, सारा सौंदर्य।
ये जहाने-रंगो-बू, जल्वागाहे-आरजू
नाजनीनो-दिलनशीं, महवशो-जोहराजबीं
सच में बहुत सुंदर है संसार--जैसे वीनस का चेहरा, जैसे जोहरा का चेहरा!
यह स्थल संसार का, यह छांव और तृष्णाओं के रूप-प्रदर्शन का स्थल है। चांद जैसे मुख यहां हैं। जोहरा, वीनस जैसी सुंदर प्रतिमाएं यहां हैं। सुगंधित इत्र और इश्क की सुगंध बरसाने वाली प्रतिमाएं यहां हैं। गुलरुखो-लालाअजार, अतरबेज व मुश्कबार
दिलफिरोजो-दिलनवाज, फितनारेजो-फितनासाज
इक मुजस्सम अरतआश, शोलारेजो-बर्कपाश
नूरो-निकहत की परी, जानो-रुहे-दिलबरी
यह जीवन-तरंग बड़ी प्यारी है, बड़ी लुभाने वाली है, बड़ी आकर्षक है!
हर कोई समझा यही, बस अभी मेरी हुई
इस जीवन-तरंग को जब तुम पास आते देखते हो तो यही समझते होः बस अभी मेरी हुई।
इसके सब नाजो-अदा, लुत्फ और मेहरो-वफा
इसका सारा सौंदर्य मेरी मुट्ठी में अब आया, अब आया! पर तरंग कब किसकी हुई? तरंग आती और चली जाती है।
वक्फ में मेरे लिए, इब्तदाए-वक्त से
चार दिन की जिंदगी, बस इसी में कट गई
यही सोचते-सोचते चार दिन कट जाते हैं। थोड़े से दिन हैं जिंदगी के। अंगुलियों पर गिने जा सकें, इतने दिन हैं जिंदगी के। यही सोचते कि अब मिला, अब मिला, अब मिला... संसार कब किसको मिला!
ये अरूसे-फितनाकार, पास आई बार-बार
यह दुल्हन नाचती पास भी आ जाती है बहुत बार, बहुत पास आ जाती है! ऐसी कि हाथ के भीतर मालूम पड़ती है, कि जरा हाथ बढ़ा दिया कि मिल ही जाएगी, कि जरा मुट्ठी बांध ली तो मेरी हो जाएगी!
ये अरूसे-फितनाकार, पास आई बार-बार
खेलती सबसे रही, पर किसी की कब हुई
संसार कभी किसी का नहीं हुआ। संसार कभी किसी का हो नहीं सकता। चांदनी
पर मुट्ठी बांधोगे, मुट्ठी खाली रह जाएगी। चांदनी को कौन बांध पाया? कैसे बांध पाओगे? चांदनी के पैरों में जंजीरें कैसे डाल पाओगे? चांदनी तो एक स्वप्न है; मुट्ठियों में नहीं बांधा जा सकता; मिल नहीं सकता।
जिनको शौके-दीद है, उनकी हद खुर्शीद है।
जो सच में ही कुछ पाना चाहते हैं, वे चांद को पाने निकलें, चांदनी के खेल में न रंगे रहें।
मेहरबां जिस पर हुई, जिसकी किस्मत खोल दी
दर हकीकत वो मिटा, काम से अपने गया
और संसार जिस पर मेहरबां हो जाता है, जिस पर दया कर देता है, ऊपर से तो लगता है मेहरबानी हो गई, लेकिन भीतर बात उलटी घट जाती है।
मेहरबां जिस पर हुई, जिसकी किस्मत खोल दी
दर हकीकत वो मिटा, काम से अपने गया
दर हकीकत वो मिटा, राम से अपने गया

वह मिट ही जाएगा! यह संसार मिटाता है, बनाता नहीं। इस संसार में मौत के अतिरिक्त और कभी कुछ घटता नहीं। यह संसार लूटता है। इस संसार के पास देने को कुछ भी नहीं। यह संसार खुद उधार है। यह चांद की चांदनी है।
जो समझते हैं इसे, इसको ठुकराते रहे
इक घड़ी इसकी बहार, लम्हा भर का बस निखार
वे जानते हैं, यह घड़ी भर की बहार है। ये फूल अभी खिले, अभी कुम्हला गए।
यह लहर अभी आई, अभी विसर्जित हो गई। यह गंध का एक झोंका है, जो आया और गया; आया भी नहीं और गया हो गया।
जो समझते हैं इसे, इसको ठुकराते रहे
इक घड़ी इसकी बहार, लम्हा भर का बस निखार
रंग लाई है उधार, रूप भी है मुस्तआर
सब उधार है संसार में, क्योंकि संसार प्रतिध्वनि है। जैसे कोई पहाड़ में गया और जोर से चिल्लाया और पहाड़ियों में गूंज हुई--ऐसा ही संसार है-- गूंज है। अब पहाड़ियों में जब गूंज हो, तब तुम पहाड़ों में खोजने मत निकल जाना कि किसकी गूंज है। कोई भी न मिलेगा। गूंज उधार थी।
प्रतिफलन है संसार; जैसे दर्पण में चित्र बन जाए। अब तुम दर्पण में खोजने मत निकल जाना, अन्यथा दीवालों से टकराओगे, लहूलुहान हो जाओगे। जैसे चांद का प्रतिबिंब बना झील में, अब तुम झील में लाख डुबकी लगाओ, तुम चांद को न पा सकोगे। चांद वहां है ही नहीं।
रंग लाई है उधार, रूप भी है मुस्तआर
रौशनी खुर्शीद की, बन गई है चांदनी
जिनको शौके-दीद है, उनकी हद खुर्शीद है।
चांद पर नजर रखो, चांदनी से मुक्त हो जाओ--तो कुछ पा सकोगे; तो जिंदगी खाली न जाएगी; तो काम से न जाओगे, राम से न जाओगे; तो भर जाओगे। और भर जाओ तो तृप्ति है।
जिसने संसार का यह व्यर्थ क्षणभंगुर का प्रलोभन देख लिया, वही व्यक्ति परमात्मा की तलाश में निकलता है। जो संसार से जागने लगा, जिसे यह दिखाई पड़ने लगा कि स्वप्नवत है सब यहां, वही सत्य की खोज में निकलता है। वही कह सकता है प्रभु से--
म्हाने चाकर राखोजी।
इस संसार में मालिक होकर भी कोई मालिक नहीं हो पाता। और परमात्मा के चरणों में दास होकर भी मालिक हो जाता है। इस संसार में सिकंदर भी कहां मालिक हो पाते हैं! और उस संसार में मीरा भी मालिक हो जाती है। और मीरा मांगती नहीं मालकियत--और मालिक हो जाती है। मीरा मांगती तो इतना ही है-- म्हाने चाकर राखोजी। मुझे नौकरी पर रख लो। मुझे छोटा-मोटा काम दे दो। ऐसे ही बुहारी लगाती रहूंगी या पैर दाब दूंगी।
म्हाने चाकर राखोजी...
चाकर रहसूं बाग लगासूं...
तुम्हारे बगीचे में काम कर दूंगी। तुम्हारे पौधों को पानी सींच दूंगी।
... नित उठ दरसन पासूं।
बस इतना बहुत है। तुम्हारे बगीचे में झाडू-बुहारी देती रहूंगी, सूखे पत्तों को बीनती रहूंगी, तुम्हारे पौधों को पानी देती रहूंगी, तुम्हारे लिए फूल चुनती रहूंगी, तुम्हारे लिए गजरा बनाती रहूंगी--और मेरे लिए इतना ही सौभाग्य काफी होगा कि--
... नित उठ दरसन पासूं।
बगीचे से तुम्हारी झलक मिलती रहेगी, तुम्हें देखती रहूंगी।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।
इतना पर्याप्त है मुझे कि भर आंख तुम्हें देखती रहूं। बस इतना बहुत है। सब मिल गया!
इससे ज्यादा नहीं चाहिए भक्त को। भक्त की मांग बड़ी छोटी है, लेकिन भक्त विराट को पा लेता है।
समझना इस राज को! जितनी बड़ी मांग, उतनी छोटी उपलब्धि। जितनी छोटी मांग, उतनी बड़ी उपलब्धि। समझना इस राज को! मांग, कि उपलब्धि नहीं; और मांग

बिल्कुल न हो तो सब मिल जाता है। परमात्मा उन्हें मिलता है जिनकी कोई मांग नहीं।
अब यह भी कोई मांग हैः म्हाने चाकर राखोजी!
मुझे नौकर रख लो! कुछ भी काम दे देना, चलो बगीचा सही।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।
तुम्हारा दर्शन होता रहेगा, बस काफी है। मेरे गीत जग जाएंगे।
तुम्हारा दर्शन होता रहेगा, मेरे पैरों में घूंघर बंध जाएंगे। तुम्हारा दर्शन होता रहेगा, मेरे प्राण रस में डूब जाएंगे। फिर कुछ और करने को नहीं है। गाऊंगी तुम्हारी लीला।
... तेरी लीला गासूं।
फिर कुछ और बचा नहीं पाने को। फिर आनंदमग्न हो नाचूंगी। जिन्हें तेरी खबर नहीं है, उनको तेरी खबर पहुंचा दूंगी। जो सोए हैं, उन्हें जगा दूंगी।
जिनके कान में तेरी भनक भी नहीं पड़ी है, उनके कानों में तेरी भनक पहुंचा दूंगी। बांटूंगी तुझे।
ख्याल करनाः मांगती कुछ भी नहीं है। मांगती इतना ही है कि चाकरी पर रख लो।
चाकरी में दरसन पाऊं...
और फिर कहती है कि ऐसा भी मत सोचना कि चाकरी में कोई बड़ी बात तुमसे मांगूंगी--कि नौकरी क्या होगी? वेतन कितना मिलेगा?
चाकरी में दरसन पाऊं...
वेतन इतना ही बहुत है कि तुम्हारा दर्शन मिलेगा।
... सुमिरण पाऊं खरची।
और इतना खर्च मिल जाए कि तुम्हारी याद बनी रहे। तुम्हारा दर्शन मेरा वेतन हो गया। तुम्हारी याद बनी रहेगी, तुम बार-बार दिखाई पड़ते रहोगे, तो वह मेरा जो मन हरामी है, मुझे भटका न पाएगा। तुम फिर-फिर दिखाई पड़ जाओगे, फिर-फिर तुम्हारी याद सघन हो जाएगी, फिर-फिर तुम मुझे खींच लोगे।
चाकरी में दरसन पाऊं, सुमिरण पाऊं खरची।
तुम्हारा स्मरण बना रहा तो और क्या चाहिए खर्च के लिए? इतना बहुत है। इतना जीवन के लिए पर्याप्त है। बस मुझे पास बुला लो। मुझे चाकरी दे दो।
भाव-भगति जागीरी पाऊं...
और कोई जागीरी नहीं मांगती हूं; इतना ही--भक्ति की जागीरी मिल जाए, भाव
की जागीरी मिल जाए। मस्तिष्क से तो तुम्हें पुकारती हूं, हृदय से तुम्हें पुकार सकूं। तुम मेरे भाव में उतर जाओ। तुम मेरी श्वास-श्वास में समा जाओ। तुम्हें भूलूं ही न। जागूं कि सोऊं, उठूं कि बैठूं, तुम्हारी याद सतत ही बनी रहे। अक्षुण्ण! धारा खंडित न हो। अखंड!
भाव-भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी।
इन तीन बातों से काम चल जाएगा, ज्यादा तुमसे मांगती नहीं।
कुछ भी मीरा मांग नहीं रही। सोचना, मांग कुछ भी नहीं रही। क्योंकि दर्शन में भी प्रभु का क्या जाता है? मीरा की आंखें भर जाएंगी, प्रभु का क्या जाता है?
जब तुम फूल को देखते हो और प्रसन्न हो जाते हो, फूल का क्या जाता है? तुम्हारी आंखें भर जाती हैं। तुम्हारा हृदय आंदोलित हो जाता है।
... सुमिरण पाऊं खरची।
सुमिरन में भी प्रभु को तो कुछ करना नहीं है; मीरा को ही कुछ करना है। याद करनी है। स्मरण करना है।
भाव-भगति जागीरी पाऊं...
भाव-भगति में भी परमात्मा को क्या करना है?
तो परमात्मा से कुछ भी नहीं मांग रही है। यह न मांगना ही कला है। और जो मांग रही है, वह अपने हृदय का रूपांतरण मांग रही है। जो मांग रही है, वह मन से मुक्ति मांग रही है। जो मांग रही है, वह नीचे गिरने के लिए जो सीढ़ी लगी है, वह कट जाए, फिर नीचे गिरना न हो।
मोरमुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजंती माला।

पहली पंक्तियों में और दूसरी पंक्तियों में फर्क ख्याल रखना। मांग पूरी हो गई जैसे! पहली पंक्तियों में मांग है।
मोरमुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजंती माला।
मांग पूरी हो गई जैसे! जिसने भी चाकर होना चाहा, उसकी मांग सदा पूरी हो गई। तुम भी जरा करके देखो! मगर भीतर-भीतर यह वासना न रहे कि यह इरादा... चाकरी तो मांग रहे हैं, लेकिन इरादा तो मालकियत का है। भगवान से चूकते रहोगे, जब तक तुम उसके मालिक होना चाहोगे। यह बात ही महापाप है।
लोग भगवान के भी मालिक होना चाहते हैं। लोग प्रेम में भी मालकियत कायम करते हैं। और प्रेम का मालकियत से क्या संबंध? प्रेम और मालकियत में दुश्मनी है। जब तुमने किसी स्त्री से कहा कि अब मैं तेरा मालिक, क्योंकि मैं तुझे प्रेम करता हूं; और किसी स्त्री ने किसी पुरुष को कहा कि अब मैं तेरी मालिक, क्योंकि मैं तुझे प्रेम करती हूं--उसी क्षण प्रेम मर जाता है। प्रेम की मौत उसी क्षण घट जाती है जिस क्षण मालकियत आती है।
लेकिन हमारे सब प्रेम के नाते मालकियत के नाते हैं। कब्जा है। उस कब्जे के कारण ही प्रेम पृथ्वी से विलीन हो गया है। प्रेम के फूल अब खिलते नहीं। प्रेम सिर्फ बातचीत रह गया है। कविताओं में मिलता है, जीवन में नहीं मिलता। लोगों में झांको तो वहां प्रेम का कोई पता नहीं है। प्रेम के नाम पर और कुछ चीजें हैं। ईर्ष्या है, जलन है, वैमनस्य है, प्रतिस्पर्धा है, महत्वाकांक्षा है, हिंसा है। और सब है--प्रेम भर नहीं है। चाहे प्रेम ऊपर से लिखा भी हो, लेकिन भीतर कुछ और है।
तुमने जिससे प्रेम किया, उस पर मालकियत की है, तो तुमने प्रेम की हत्या कर दी। तुमने महापाप किया है। इससे बड़ा कोई पाप नहीं है। प्रेम की हत्या से बड़ी कोई हत्या नहीं है। क्योंकि प्रेम की हत्या अंततः परमात्मा की हत्या है। प्रेम से ही तो सूत्र मिलते हैं परमात्मा के। प्रेम से ही तो सीढ़ी लगती है परमात्मा की। प्रेम से ही तो आदमी धीरे-धीरे रसविमुग्ध होता है; राज सीखता है।
प्रेम पाठशाला है परमात्मा की।
जैसे कोई तैरना सीखने जाता है तो पहले उथले पानी में सीखता है। स्वभावतः, गहरे पानी में सीखने जाओगे तो डूबोगे। गले-गले पानी में सीखता है। जब कुशल हो जाता है तो फिर गहरे में जाता है। फिर जितना कुशल हो जाता है उतना गहरे में जाता है।
प्रेम परमात्मा का उथला रूप है। वहां सीखनी है प्रार्थना। वहां जिसने सीख ली, वह फिर गहरे में जाएगा। वह फिर मीरा के अगम गंभीर में, जिसकी फिर कोई सीमा नहीं, अनहद में, गहरे में उतर जाएगा। जिसकी कोई फिर सीमा ही नहीं है, उसमें जाया जा सकता है; लेकिन सीमा में पाठ सीखना पड़ता है। असीम में जाने के लिए भी पाठ सीमा में सीखना पड़ता है।
मैं तुम्हें याद दिला दूं। बार-बार कहता हूंः प्रेम पाठ है परमात्मा का। अगर तुम प्रेम में कुशल हो गए तो परमात्मा दूर नहीं। जितनी तुम्हारी कुशलता प्रेम में है उतना परमात्मा करीब आता है।
लेकिन प्रेम के नाम पर तुमने कुछ और जहर पाल रखे हैं; कुछ और सांप-बिच्छू पाल रखे हैं। प्रेम के नाम पर तुमने बड़ा धोखा दे रखा है अपने को। तुम अपने बच्चे को प्रेम करते हो? कहोगेः निश्चित! लेकिन अगर बच्चे पर तुम अपने सिद्धांत थोप रहे हो तो तुम प्रेम नहीं करते। अगर तुम हिंदू हो और अपने बेटे को हिंदू बना रहे हो, तो तुम प्रेम नहीं करते। क्यों? क्योंकि तुम उसे परतंत्र कर रहे हो। तुम उसके पैरों में जंजीरें डाल रहे हो। प्रेम--और जंजीरें डालेगा? और तुम्हें कुछ खुद भी पता नहीं है, फिर भी तुम जंजीरें डाल रहे हो। जैसे तुम्हारे पिता ने तुम्हारे पैरों में जंजीरें डाली थीं--हिंदू धर्म की, मुसलमान धर्म की, ईसाई धर्म की, जैन धर्म की--तुम अपने बेटे के पैरों में डाल रहे हो। न तुम्हें कुछ मिला है, तुम इस बेटे को भी खराब किए जा रहे हो। तुम्हारा अगर प्रेम होता तो इतना तो तुम बेटे से कहते कि मैं चालीस साल, पचास साल से हिंदू हूं, कुछ मुझे मिला नहीं, शायद यह हिंदू धर्म मुझे उधार मिला, यह मैंने खोजा नहीं था। उधारी के कारण मैं चूक गया हूं। मंदिर गया हूं, औपचारिक रह गया। प्रार्थना की, शब्द रह गए। हृदय मेरा नहीं खुला। तो मैं तुझे कहता हूं बेटा, कि तू उधार धर्म मत लेना। तू

अभी खोजना। जब तुझे अपने मन का धर्म मिल जाए, जब तुझे अपने मन से मेल खाता मंदिर मिल जाए...
और मंदिर वही जो मन से मेल खाए। इसलिए तो उसे मंदिर कहते हैं। वह उधार
तो हो ही नहीं सकता। वह तो अन्वेषण करना होता है, खोजना होता है, तलाशना होता है, टटोलना होता है।
जब तुम्हें अपने मन का मीत मिल जाए, वहीं झुक जाना। फिर वह मस्जिद हो, मंदिर हो, गुरुद्वारा हो, क्या हो, इसकी फिकर मत करना, क्योंकि सब परमात्मा का है। मैं तो औपचारिक में खो गया। मैं तो जड़ सिद्धांतों में खो गया। मुझे तो जो किताबें हाथ में थमा दी गई थीं, उन्हीं को पूजते-पूजते नष्ट हो गया। मैं तेरे हाथ में कोई किताब न थमाऊंगा। मैं तुझे सिर्फ एक बात देना चाहूंगा--जिज्ञासा, मुमुक्षा, खोज की प्रबल आकांक्षा। तू मेरे आंसू सीख, मेरी किताब नहीं। तो तुमने प्रेम किया।
प्रेम कैसे किसी को परतंत्र बनाएगा? प्रेम सोच भी कैसे सकता है परतंत्र बनाने की बात? प्रेम तो परम स्वतंत्रता का द्वार है। लेकिन जिसको हम प्रेम कहते हैं, वह परतंत्र बनाता है। तुम अपने बेटे को प्रेम करते हो और तुम उसे वह सब जहर सिखा रहे हो जिससे तुम मरे, तुम सड़े, तुम गले। तुम उसे वही धन की दौड़ सिखा रहे हो, जो तुम्हें ले डूबी। यह कैसा प्रेम? अगर तुम किसी गड्ढे में गिरे और हाथ-पैर टूट गए, तो क्या तुम अपने बेटे को भी उसी गड्ढे में जाने को कहोगे? अगर कहो तो क्या इसे हम प्रेम कहेंगे? जिंदगी भर रुपये के पीछे तुम दौड़े, भिखारी रहे, हाथ-पैर टूट गए, जीवन नष्ट हो गया, मौत करीब आ रही है--और अपने बेटे को भी कह रहे हो कि धन कमा लेना! धन में ही सार है! तुम कैसा प्रेम करते हो? तुम अगर जरा भी ईमानदार हो तो तुम कहोगे कि मेरी जिंदगी धन के पीछे खराब हुई, अब तू धन की दौड़ में मत दौड़ना। तू कुछ और तलाशना। शायद जो मुझे नहीं मिल सका, तुझे मिल जाए। मेरी जिंदगी पद में ही खराब हुई, पद की आकांक्षा ही मेरी नाव को डुबा दी। अब तू पद मत खोजना। लेकिन बड़े मजे की बात है! तुमने जिसमें अपनी जिंदगी खराब की है, वही तुम अपने बेटों को सिखा रहे हो। और ज्यादा जोर से सिखा रहे हो। शायद तुम सोचते हो कि तुम नहीं पा सके, क्योंकि पाने के लिए जितनी चेष्टा करनी थी, वह तुमने नहीं की। अब तुम चाहते हो कि बेटा उतनी चेष्टा करे जितनी तुम नहीं कर पाए। जहां-जहां तुम चूक गए हो, तुम बेटे को और कुशल कर रहे हो, और निष्णात कर रहे हो। तुम इसका जीवन भी खराब कर दोगे।
तुम अपने प्रेम को जांचोगे तो एक बात निश्चित पाओगे कि तुम्हारा प्रेम प्रेम नहीं है। और इसलिए तो परमात्मा से संबंध नहीं जुड़ता। तुम अगर परमात्मा से भी संबंध जोड़ना चाहो तो भीतर कहीं मालकियत होगी।
मैंने एक कहानी सुनी है। कहां तक सच है, पता नहीं। सच होनी चाहिए। कहते हैं कि तुलसीदास को कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया। नाभादास ने कहानी लिखी है। वे गए, लेकिन कृष्ण के सामने झुके नहीं। जो उन्हें मंदिर में ले गया था, उसने कहा कि आप प्रणाम नहीं कर रहे हैं? तुलसीदास ने कहा कि मैं तो सिर्फ धनुर्धारी राम के सामने झुकता हूं। और कहानी कहती है कि तुलसीदास ने कहा कि अगर चाहते हो कि मैं तुम्हारे सामने झुकूं, तो हाथ में धनुषबाण लो।
कहानी किन्हीं नासमझों ने लिखी होगी। और अगर हुई है तो तुलसीदास भी बड़े नासमझ थे। यह भी कोई राम से दोस्ती हुई कि कृष्ण में राम को न देख सके? यह कोई धार्मिकता हुई? राम भी हिंदू, कृष्ण भी हिंदू--और तुलसीदास कृष्ण में भी राम को न देख सके! तो मस्जिद में क्या खाक देखेंगे? गुरुद्वारा में क्या करते? प्रवेश ही न करते भीतर। गिरजे में क्या करते? दूर से ही निकल जाते कि भाई, छाया न पड़ जाए, नहीं तो मुझे स्नान करना पड़ेगा। और कृष्ण से कहते हैं कि तब झुकूंगा मैं, जब तुम हाथ में धनुषबाण लो। यह तो परमात्मा को भी आज्ञा देना हो गया। इसमें और मीरा में फर्क देखते हो?
म्हाने चाकर राखोजी।
यह तो बड़ा भेद हो गया। तुलसीदास तो बड़े अकड़े मालूम पड़ते हैं। जैसे परमात्मा को गरज हो इनके झुकने की, कि ये न झुके तो परमात्मा को कुछ अड़चन रह जाएगी! जैसे इनके झुकने में बड़ा राज है! जैसे इनके झुकने के लिए परमात्मा जन्मों-जन्मों से प्रतीक्षा कर रहा है! इनकी शर्त पूरी होनी

चाहिए--कि धनुषबाण हाथ लो! मैं जैसा चाहूं वैसे तुम होने चाहिए, तो झुकूंगा!
यह झुकना परमात्मा की तरफ नहीं, यह तो अपने "मैं" की ही तरफ है। इसका अर्थ समझना। यह तो अहंकार है। यह तो यह कहना हुआ कि मैं झुकूंगा तो अपनी धारणा के प्रति झुकूंगा। मेरी धारणा है कि भगवान होते तो धनुषबाण लिए होते।
मैं एक यात्रा में था और एक जैन महिला मेरे साथ थी। उसका नियम था कि जब
तक वह जाकर जैन मंदिर में प्रणाम न कर ले, भोजन न करे। एक गांव में जैन मंदिर नहीं था तो उसने दिन भर भोजन न किया। मैं भी बड़ा बेचैन हुआ कि यह तो बड़ी मुश्किल की बात हो गई। संयोग की बात, दूसरे गांव में पहुंचे तो मैंने पूछा कि यहां जैन मंदिर है? पहली बात ही यह पूछी। तो उन्होंने कहाः हां, जैन मंदिर है। तो मैं बहुत खुश हुआ। मैंने उस महिला को कहा कि चलो अच्छा हुआ, एक दिन का उपवास हुआ, ठीक; मगर यहां मंदिर है, तू जाकर नमस्कार कर आ और जल्दी से भोजन कर। वह गई, वापस आकर बोली कि नहीं, भोजन नहीं होगा, वह तो श्वेतांबर जैन मंदिर है। वह दिगंबर थी।
इस मूढ़ता को धर्म कहते हो? वही महावीर! चलो कृष्ण और राम में थोड़ा फर्क भी होगा; मगर वही महावीर श्वेतांबर मंदिर में बैठे हैं, वही महावीर दिगंबर मंदिर में बैठे हैं। लेकिन नहीं, दिगंबर तो दिगंबर मंदिर में झुकेगा। यह अपने ही अहंकार की पूजा है प्रकारांतर से। इसमें परमात्मा का कुछ लेना-देना नहीं है।
तुलसीदास कहते हैंः धनुषबाण हाथ लो, तो मेरा माथा झुकेगा। और जिसने कहानी लिखी है, वह भी मूढ़ ही रहा होगा। कहानी यहां तक बढ़ी कि फिर कृष्ण को धनुषबाण हाथ लेना पड़ा। धनुषबाण हाथ में लिया कृष्ण ने, तब तुलसीदास झुके। जैसे परमात्मा आतुर है तुम्हारे झुकने के लिए!
यह कुछ धारणा मौलिक रूप से भ्रांत है। मगर यही धारणा प्रचलित रही है। लोग परमात्मा के भी मालिक हो जाना चाहते हैं। शायद परमात्मा तुमसे इसीलिए बचता फिरता है। नहीं तो तुम उसकी गर्दन दबा दोगे। वह अदृश्य इसीलिए है, और किसी कारण से नहीं।
यहूदियों के शास्त्रों में एक कथा है--तालमुद में कथा है--कि शुरू- शुरू में जब भगवान ने दुनिया बनाई, तो वह यहीं रहता था, जमीन पर ही रहता था, बीच बाजार में रहता था। उसकी ही दुनिया थी। बनाई ही इसलिए थी कि इसमें रहे। मगर लोग उसे बहुत परेशान करने लगे। न दिन देखें न रात, घुसे चले आ रहे हैं--कि ऐसा होना चाहिए। और मांगें उनकी ऐसी कि पूरी न हो सकें। क्योंकि किसी ने खेत में बोआई कर दी है, वह कहता हैः पानी कल गिरना ही चाहिए। और कोई कहता हैः कल पानी गिरे न, ख्याल रखना, मैंने अभी बोआई की नहीं है। किसी ने मिट्टी के बर्तन बनाए हैं--किसी कुम्हार ने--वह कहता हैः पानी अभी महीने भर नहीं गिरना चाहिए; मेरे सब बर्तन खराब हो जाएंगे। और किसी के बीज मरे जा रहे हैं। कोई कहता हैः पानी अभी चाहिए। कोई कहता हैः कल धूप रहे; मैं यात्रा पर जा रहा हूं, जरा ख्याल रखना। कोई कहता हैः कल धूप तो होनी ही नहीं चाहिए, क्योंकि मेरे घर बड़े मेहमान इकट्ठे हो रहे हैं; छोटा घर है, घर के बाहर ही उन्हें बिठाना पड़ेगा भोजन के लिए; कल तो धूप हो ही न।
दिन-रात तांता लगा रहे लोगों का। और जब उनकी मांगें पूरी न हों तो वे फिर झंझटें करने लगे होंगे--घिराव, हड़ताल। तालमुद में यह बात कही गई है कि लोग पत्थर फेंकने लगे उसकी खिड़कियों पर। लोग दंगा-फसाद करने लगे। लोग गुंडागिरी पर उतर आए। फिर परमात्मा को सलाहकारों ने कहा उसके, कि यहां से हट जाना उचित है, यहां जीना संभव नहीं होगा। तब से परमात्मा अदृश्य हो गया।
यह कथा मुझे प्रीतिकर लगती है, अर्थपूर्ण लगती है। तुम जरा सोचो, अगर तुम्हें परमात्मा मिल जाए तो तुम उसके साथ सदव्यवहार कर पाओगे? सदव्यवहार--असंभव! तुम एकदम झपट कर गर्दन पकड़ लोगे कि कहां रहे इतने दिन? और मेरे लड़के की एक टांग बड़ी और एक छोटी! और बेईमान मजा कर रहे हैं और मैं ईमानदार दुख पा रहा हूं! तुम थे कहां? चलो अदालत!
और जो सुनेगा वही पकड़ लेगा, क्योंकि सभी की मांगें अधूरी रह गई हैं।
और सभी के जीवन में कष्ट हैं। और सभी को चिंताएं हैं। सभी को संताप हैं।

सभी की अड़चनें हैं, कठिनाइयां हैं। और वही जिम्मेवार है। तुम जरा सोचो, तुम सदव्यवहार कर पाओगे? भला है कि अदृश्य है। तो तुम कभी-कभी मंदिर में जाकर पूजा कर आते हो। जीवंत तुम्हें मिल जाए, तो तुम दूसरे अर्थों में पूजा कर दोगे।
मीरा कहती हैः म्हाने चाकर राखोजी।
जब तक तुम्हारे हृदय में सेवा का, उसके चाकर होने का, उसके चरणों के दास होने का भाव परिपूर्ण न हो जाए, तब तक तुम्हारा उससे मिलन न हो सकेगा।
तुलसीदास का मिलन नहीं हो सकता, मीरा का होता है। और यह मिलन इन पंक्तियों में छिपा हैः
म्हाने चाकर राखोजी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।
चाकरी में दरसन पाऊं, सुमिरण पाऊं खरची।
भाव-भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी।
जब मीरा यह कहती है कि बस इन तीन बातों से काम चल जाएगा, और कुछ जरूरत नहीं है, और कभी कुछ न मांगूंगी, बस इतना पर्याप्त है, बहुत है, जरूरत से ज्यादा है--और इसके बाद जो वचन हैंः
मोरमुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजंती माला।
जैसे कि दर्शन हो गए! ये मोरमुकुट पहने हुए, ये पीतांबर पहने हुए, गले में वैजंतीमाला डाले हुए कृष्ण सामने खड़े हो गए! जिसके हृदय में चाकरी का भाव हुआ, उसके सामने कृष्ण खड़े हो ही जाएंगे। अब और कमी क्या रही! बिन्द्राबन में धेनु चरावें, मोहन मुरली वाला।
अब मीरा को दिखाई पड़ने लगा। मीरा की आंख खुली। अब मीरा अंधी नहीं है।
यह जो...
मोरमुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजंती माला।
बिन्द्राबन में धेनु चरावें, मोहन मुरली वाला।
... यह दृश्य हो गया। रूप बदला। यह जगत मिटा, दूसरा जगत शुरू हुआ।
ऊंचे-ऊंचे महल चिनाऊं, बिच-बिच राखूं बारी।
अब सोचती है मीराः अब क्या करूं?
ऊंचे-ऊंचे महल चिनाऊं...
अब परमात्मा मिल गया। यह परमात्मा की झलक आने लगी। अब परमात्मा के लिए--
ऊंचे-ऊंचे महल चिनाऊं, बिच-बिच राखूं बारी।
बीच-बीच में बारी भी रख लूंगी, क्योंकि मैं तो वहां रहूंगी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।
ऊंचे-ऊंचे महल चिनाऊं, बिच-बिच राखूं बारी।
बीच-बीच में झरोखे रख लूंगी कि तुम मुझे दिखाई पड़ते रहो और कभी-कभी मैं तुम्हें दिखाई पड़ जाऊं।
सांवरिया के दरसन पाऊं, पहर कुसुंबी सारी।
जोगी आया जोग करण कूं, तप करने संन्यासी।
हरि भजन कूं साधु आया, बिन्द्राबन के वासी।
मीरा कहती हैः मैं तो सिर्फ हरि-भजन को आई हूं। जोगी जोगी की जाने।
संन्यासी संन्यासी की जाने।
जोगी आया जोग करण कूं...
उसको योग करना है। उसको कुछ करके दिखाना है। मेरी करके दिखाने की कोई आकांक्षा नहीं है। मैं--और क्या करके दिखा सकूंगी? तुम मालिक, मैं तुम्हारी चाकर! तुम्हीं मेरी सांस हो, तुम्हीं मेरे प्राण हो। मैं क्या करके दिखा सकूंगी? करने को कहां कुछ है? करने को उपाय कहां है? करोगे तो तुम! होगा तो तुमसे! मेरे किए न कुछ कभी हुआ है, न हो सकता है।
जोगी जोगी की जाने, मीरा कहती है।
जोगी आया जोग करण कूं, तप करने संन्यासी।
और तपस्वी है, वह तप करने आया है। उसको व्रत-उपवास इत्यादि करने हैं।
उनकी वे समझें।

मीरा कहती हैः उनसे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मुझे भूल कर भी जोगी
या तपस्वी मत समझ लेना। मेरा तो कुल इतना ही आग्रह हैः
हरि भजन कूं साधु आया, बिन्द्राबन के वासी।
हे वृंदावन के रहने वाले! मैं तो भजन करने आई हूं। साध-संगत में उसने भजन सीखा है। मैं तो तुम्हारे गुण गाना चाहती हूं। मैं तो तुम्हारी प्रशंसा के गीत गाना चाहती हूं। मैं तो तुम्हारे पास एक गीत बनना चाहती हूं। इस शरीर की सारंगी बना लूंगी और नाचूंगी।
फर्क क्या है?
भक्त परमात्मा के पास सिर्फ नाचना चाहता है, उत्सव करना चाहता है, उसकी और कोई मांग नहीं। अहोभाव प्रकट करना चाहता है। क्योंकि जो चाहिए, वह तो मिला ही हुआ है। जो चाहिए, उसने दिया ही है; मांगने का कोई सवाल नहीं, सिर्फ धन्यवाद देना चाहता है।
भजन का अर्थ होता हैः धन्यवाद।
फर्क ख्याल रखना। जब योगी योग करता है, तो वह कहता हैः मैं यह-यह कर रहा हूं, मुझे यह-यह मिलना चाहिए। हम करते ही कुछ हैं, जब हम कुछ पाना चाहते हैं। योग है कृत्य--फल की आकांक्षा है। जब तपस्वी तप करता है, तब वह भी आकांक्षा से भरा है--उपवास करता, व्रत करता, नियम साधता। वह देख रहा है पीछे सेः इतना-इतना कर रहा हूं, इतना-इतना मुझे मिलना चाहिए। कहीं अन्याय न हो जाए! कहीं मुझे कम न मिले! कहीं दूसरे को ज्यादा न मिल जाए! वहां सारी महत्वाकांक्षाएं हैं, सारी ईर्ष्याएं हैं।
भक्ति सिर्फ आनंद-विभोर हो, अहोभाव प्रकट करना चाहती हैः तुमने दिया
ही है! योगी और तपस्वी, तुम दो, इसकी आकांक्षा से भरे हैं। भक्त, तुमने जो दिया है, उसका धन्यवाद करना चाहता है।
और मैं तुमसे कहूंगाः योगी और तपस्वी मांगते हैं, और नहीं पाएंगे। और भक्त मांगता नहीं, और पा लेता है। यह न मांगने और पाने की कला सीखो। मांगने में तुम भिखारी हो जाते हो। भिखारी को कौन देता है? भक्त सम्राट की तरह जाता है।
मजा है! बड़ा विरोधाभास है। कहता हैः म्हाने चाकर राखोजी। भक्त कहता हैः मुझे नौकरी पर लगा लो। मुझे पैर दबाने का काम दे दो। मगर जाता है सम्राट की तरह, क्योंकि उसकी कोई मांग नहीं। यह भी कोई मांग है?
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।
चाकरी में दरसन पाऊं, सुमिरण पाऊं खरची।
भाव-भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी।
यह कोई मांग है? कुछ भी नहीं मांगा है।
जीसस का एक बहुत प्रसिद्ध वचन हैः जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा। और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी ले लिया जाएगा जो उनके पास है।
यह बड़ा अपूर्व वचन है! इसमें भक्ति का सारा सार छिपा है। जिनके पास है, उन्हें और भी दिया जाएगा। क्योंकि "है" खींचता और को। जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है। क्योंकि "नहीं" का जो भाव है, दरिद्रता का, भिखमंगेपन का, उस भाव में और नया नहीं जोड़ा जा सकता।
भक्त कहता हैः जो तुमने मुझे दिया है, इतना ज्यादा है, कि मेरी पात्रता नहीं थी। नाचता है। ले लेता है मृदंग हाथ में। ले लेता है एकतारा हाथ में। नाचता है। कहता हैः जो तुमने मुझे दिया, उसकी मेरी पात्रता नहीं थी। तुम्हारी बड़ी अनुकंपा है! भक्त उसकी बात करता है, जो उसे मिला है। और निश्चित ही, जो मिलने की बात करता है कि और मुझे मिलना चाहिए, वह दीनता प्रकट करता है।
भक्त सम्राट की तरह नाचता है। भक्त के चेहरे पर परम शांति और संतोष होता है। जो मिला है, वह बहुत है। इससे कम मिलता तो भी बहुत होता। मेरी पात्रता ही कुछ नहीं है। मेरी योग्यता कुछ नहीं है। तुम्हारा एक गीत भी मुझ पर बरस गया है, तो भी मैं धन्यभागी हूं! तुमने मुझे आंखें दीं, मैं देख पाता सौंदर्य को--तुम्हारे सौंदर्य को! चांद को, चांदनी को! तुमने मुझे कान दिए, मैं सुन पाता तुम्हारे गीत को, रागिनी को! तुमने मुझे सब दिया! इतना दिया! नाचूं, गाऊं, धन्यवाद न करूं तो और क्या करूं?

यह दशा है सम्राट की।
और जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा, क्योंकि इस घोषणा में ही, इस अहोभाव में ही वे और भी पात्र हो गए। उनका पात्र और बड़ा हो गया। इस विधायक भाव-दशा में उनका पात्र विराट होने लगा। परमात्मा इसे और भरेगा।
जब तुम मांगते हो, संकुचित हो जाते हो। तुमने ख्याल किया? जब भी तुमने किसी से कुछ मांगा है, तुम कैसे सिकुड़ जाते हो! किसी से मांग कर देखो, मांगने में कैसा मन सिकुड़ जाता है! किसी को कुछ देकर देखो, देने में कैसा फैल जाता है! जो मांगता ही रहता है, मांगता ही रहता है, वह सिकुड़ता जाता है, संकुचित होता जाता है। उसका पात्र छोटा होता जाता है। इसलिए उसके पास जो है, वह भी छिन जाता है। एक दिन उसके पास कुछ भी नहीं रह जाता--सिर्फ आंसू ही आंसू रह जाते हैं। और भक्त के पास एक दिन भगवान होता है और गीत ही गीत होते हैं--आह्लाद के, उत्सव के।
ऊंचे-ऊंचे महल चिनाऊं, बिच-बिच राखूं बारी।
सांवरिया के दरसन पाऊं, पहर कुसुंबी सारी।
जोगी आया जोग करण कूं, तप करने संन्यासी।
हरि भजन कूं साधु आया, बिन्द्राबन के बासी।
मीरा कहती है कि मैं तो साधु-संगत में बिगड़ी हूं। उन्हीं की संगत में लोकलाज खोई। मैं तो भक्तों के पास उठी-बैठी। मैं तो भक्तों के रंग में रंगी हूं। मैं तुम्हारे पास सिर्फ भजन के लिए आई हूं। मेरा एक गीत सुन लो।
मेरा एक नृत्य देख लो। बस पर्याप्त है। तुमने देख लिया, काफी है। तुमने सुन लिया, बहुत है।
मीरा के प्रभु गहर गंभीरा, सदा रहो जी धीरा।
मीरा कहती हैः मैं तुमसे कहती हूं कि मेरे प्रभु बहुत गहन गंभीर हैं।
गंभीर का मतलबः गहरे हैं, बहुत गहरे हैं! अपार उनकी गहराई है।
मीरा के प्रभु गहर गंभीरा, सदा रहो जी धीरा।
इसलिए मांग मत करो, धीरज रखो। मांगो मत। मांग से तुम छोटे हो जाओगे।
मांग से तुम संकुचित हो जाओगे। धैर्य रखो। मिलेगा। मिला है, मिला है, और मिलेगा। मिला है, मिलता रहा है, मिलता रहेगा। उस तरफ से भेंट आनी कभी बंद ही नहीं होती। लेकिन तुम जरा धीरज तो रखो, धैर्य तो रखो।
पुरानी कथा है, मुझे प्रीतिकर है। निरंतर कहता हूं। एक बूढ़ा संन्यासी
एक वृक्ष के नीचे बैठा है और नारद जाते हैं स्वर्ग को। वह बूढ़ा संन्यासी उनसे कहता हैः आप जाते हैं स्वर्ग, जरा मेरे संबंध में पूछ लेना। तीन जन्म से तपश्चर्या कर रहा हूं। सब करना चाहिए, किया है, कुछ भूल-चूक नहीं है। अभी तक मेरा मोक्ष क्यों नहीं हुआ? अब मुझे शक होने लगा है कि परमात्मा न्यायपूर्ण है या नहीं।
जिसने किया है, उसको सदा शक होगा। जिसने अपने कृत्य पर भरोसा किया है,
वह भगवान पर भरोसा नहीं कर सकता। जिसका अपने पर भरोसा है, उसका भगवान पर भरोसा नहीं है।
तीन जन्म, बहुत हो गया। माला फेरते-फेरते हाथ की रेखाएं पुंछ गई होंगी। जप-तप करते-करते देह क्षीण हो गई है। वह बूढ़ा संन्यासी नारद से कहता हैः जरा पूछ लेना कि कितनी देर और है?
इसमें बड़ी शिकायत है। जहां आकांक्षा है वहां शिकायत होगी ही। जहां मांग है वहां संदेह होगा ही। नारद कहते हैंः जरूर पूछ लूंगा।
दूसरे वृक्ष के नीचे एक युवा संन्यासी नाच रहा है। उसने एकतारा हाथ में लिया है। इतना युवा है कि जैसे कल ही संन्यासी हुआ हो। नारद उससे मजाक में ही कहते हैं कि आपको भी तो नहीं पुछवाना कुछ? प्रभु के पास जा रहा हूं, बूढ़े संन्यासी की पूछूंगा, तुम्हारी भी पूछ लूंगा।
लेकिन वह तो कुछ उत्तर नहीं देता। वह तो अपने नाच में मगन है। वह तो नारद हैं या नहीं वहां, इसकी भी उसे पता नहीं चलती।
जो परमात्मा में मगन है, उसे कहां फिकर--कौन क्या है, कहां क्या है, कौन स्वर्ग जा रहा है, कौन नरक जा रहा है! उसे क्या पूछना है! उसे कुछ पूछना नहीं है, उसका कोई प्रश्न नहीं है, उसकी कोई आकांक्षा नहीं है। वह अहोभाव में नाच रहा है। वह हरि-भजन में है।

यह जो माला जपता हुआ संन्यासी है बूढ़ा, जप-तप करता हुआ, इसका हरि से कुछ तालमेल नहीं है; इसे हरि पर अभी श्रद्धा भी नहीं है। तीन जन्म यूं ही गए जैसे। श्रद्धा भी नहीं जन्मी है, मोक्ष की आकांक्षा कर रहा है। अभी धीरज भी पैदा नहीं हुआ और मोक्ष की आकांक्षा कर रहा है। मोक्ष तो उन्हें मिलता है जिनका धैर्य अनंत है। इसका तो मोक्ष संसार का ही एक रूप है-- इच्छा, वासना, मिल जाए। पहले धन खोजता होगा, अब मोक्ष खोज रहा है। मगर वही अहंकार। वही खोजने वाले का जोर। वही "पाकर रहूंगा"! वही अकड़।
वह युवा संन्यासी तो नाचता रहा। नारद थोड़ी देर खड़े रहे, फिर हंस कर आगे बढ़ गए। उसने कुछ ध्यान न दिया।
लौटे कुछ दिनों बाद। उस बूढ़े संन्यासी को कहाः पूछा था प्रभु को। उन्होंने कहा कि तीन जन्म और लग जाएंगे।
बूढ़ा तो बहुत नाराज हो गया। उसने तो माला फेंक दी। उसने कहाः भाड़ में जाए मोक्ष! एक सीमा होती है। धीरज की एक सीमा होती है। मुझे नहीं चाहिए यह मोक्ष अब। अन्याय हो रहा है। यह मेरी बरदाश्त के बाहर है। मैं बगावत करता हूं।
क्रोधी! तुमने अक्सर सुना होगा, दुर्वासा और इस तरह के लोग। जिसने जप-
तप किया, वह क्रोधी हो जाता है। क्योंकि उसकी अकड़ होती है--मैंने इतना किया और अभी तक नहीं मिला! माला फेंक दी। क्रोध के उस क्षण में भूल ही गया कि क्या कर रहा है। आगबबूला हो गया, भभक उठा। यह भभक मौजूद रही होगी तीन जन्मों से। आज मौका मिल गया, प्रकट हो गई।
नारद आगे बढ़ गए। युवा संन्यासी के पास ठिठके। थोड़ा सोचा कि इससे कुछ कहना चाहिए कि नहीं! क्योंकि जिसको तीन जन्म की बात की, उसने माला फेंक दी। और इसकी बात तो बड़ी लंबी है। क्योंकि प्रभु से पूछा तो उन्होंने कहाः वह संन्यासी जिस वृक्ष के नीचे नाचता है, उसमें जितने पत्ते हैं, उतने ही जन्म लगेंगे। कहीं यह एकदम से एकतारा खोपड़ी पर न मार दे! वह जब तीन जन्म लगने वाले आदमी ने माला फेंक दी और कहा कि भाड़ में जाए मोक्ष, तो यह न मालूम क्या करे! थोड़े झिझके भी होंगे। लेकिन यह इस मस्ती में नाच रहा है कि लगा कि कह ही देना चाहिए। और फिर मन में जिज्ञासा भी थी कि देखें, यह क्या प्रतिक्रिया करता है! रोका उसे कि भाई सुन! तूने यद्यपि पूछा नहीं था, फिर भी मैंने कहा कि लगे हाथ पूछ ही लूं। बूढ़े का पूछ रहा हूं, तेरा भी पूछ लूं। तो मैंने पूछ लिया अपनी तरफ से, नाराज इत्यादि मत हो जाना। मुझे माफ करना। मैंने पूछा प्रभु को कि तेरे मोक्ष में कितनी देर है? तो उन्होंने कहा कि जितने वृक्ष में पत्ते हैं, उतने जन्म लगेंगे।
वह युवक तो एकदम छलांग लगा कर नाचने लगा। उसने कहाः अहा! तो फिर पा ही लिया! पृथ्वी पर कितने पत्ते हैं! इतने ही पत्ते? इतने ही जन्म? तो ज्यादा देर नहीं है। हो ही गया समझो। और वह नाचने लगा। फिर हरि-भजन में लीन हो गया। और कथा कहती है, उसी क्षण मोक्ष को उपलब्ध हो गया। उतने जन्म नहीं लगे जितने वृक्ष में पत्ते थे। उसी क्षण मुक्त हो गया।
इतना जहां धैर्य हो वहां मोक्ष ज्यादा देर रुक भी कैसे सकता है? धैर्य
और मोक्ष एक ही बात के दो नाम हैं। और जिसको तीन जन्म की बात कही है और जिसने माला फेंक दी है, वह अभी भी सज्जन कहीं भटकते होंगे। हो सकता है, यहां मौजूद हों। उनका मुक्त होना बड़ा कठिन है। तीन जन्म की बात तो तब थी जब उन्होंने माला नहीं फेंकी थी। तीन जन्म की बात तो तब थी जब उन्होंने ये अदभुत वचन न कहे थे कि भाड़ में जाए मोक्ष! उसके बाद उनकी क्या गति या दुर्गति हुई होगी... । नरक न चले गए हों तो बहुत। पृथ्वी पर हों तो प्रभु की अनुकंपा।
तुम्हारा धैर्य तुम्हारी संपदा है।
मीरा कहती हैः मीरा के प्रभु गहर गंभीरा, सदा रहो जी धीरा।
सदा धैर्य रखो! गाओ भजन!
... तेरी लीला गासूं।
मांगो मत कुछ। बिना मांगे गाओ भजन। मांगा तो भजन खराब हो गया। भरोसा रखो। जो तुम्हें चाहिए, जो तुम्हारी वस्तुतः जरूरत है, मिलता रहा है, मिलता रहेगा।
आधी रात प्रभु दरसन दे हैं, प्रेम नदी के तीरा।

घबड़ाओ मत, आधी रात भी अगर जरूरत पड़ेगी तो प्रभु दर्शन देंगे। लेकिन दर्शन सदा प्रेम नदी के तीर पर होते हैं। तुम प्रेम की नदी को बहने दो। मांग नहीं। प्रेम में कहां मांग! कुछ पाने की आकांक्षा नहीं। प्रेम तो देने की आकांक्षा है, पाने की नहीं। प्रेम तो दान है। बहने दो प्रेम की नदी को! इस प्रेम-नदी के तीर पर जब भी जरूरत होगी, जब भी तुम पक जाओगे, जब भी तुम्हारी पात्रता परिपूर्ण होगी, उतरेगा प्रभु। सदा उतरा है।
आधी रात प्रभु दरसन दे हैं...
आधी रात भी जरूरत होगी तो भी उनका उतरना हो जाएगा। तुम्हारी जब जरूरत होगी तब हो जाएगा। जरूरत के पहले नहीं हो सकता। और तुम्हारी मांगें सब जरूरत के पहले हैं। जिस बात की तुममें पात्रता नहीं, उसकी तुम मांग करते हो। फिर नहीं पाते तो दुखी होते हो। दुखी होते हो तो और अपात्र हो जाते हो। अपात्र हो जाते हो तो जो तुम्हारे पास है वह भी खो जाता है।
जीसस ठीक कहते हैंः जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है।
मेरे जीवन का, मरन का साथी
कब कोई मुझसे जुदा होता है
हर नफस साथ मेरे चलता है
हर कदम राहनुमा होता है
बख्श देता है खताएं मेरी
जामने-लगजशे-पा होता है
वही मंजिल है, वही शौके-सफर वही खुद बांगे-दिरा होता है मैं जिसे कहता हूं मेरा-मेरा सब उसी का तो दिया होता है है वही शम्मे-सियाहखानाए-दिल वही आंखों की जिया होता है वही हर मौजे-नफस में है रवां दिल में जो जोशे-वफा होता है दर्दे-दिल बन के कभी उठता है बढ़ के फिर खुद ही दवा होता है वही पैदा है सुकूते-लब में वही नगमों में छुपा होता है कभी बनता है सुकूने-साहिल
कभी तूफाने-बला होता है
ला इला है वही इल्ला अल्ला है वही हर बुत में बसा होता है क्या कहूं हमदमे-दैरीना मेरा
मुझसे मिलता है तो क्या होता है
शुक्र सद शुक्र कि मेरे लब पर
न शिकायत न गिला होता है
बेतलब उसकी नजर से मुझको
सागरे-कैफ अता होता है
परमात्मा तुम्हारे साथ है। तुम्हीं उसके साथ नहीं हो। परमात्मा तुम्हारे साथ न हो तब तो तुम जी भी नहीं सकते क्षण भर। जीवन है तो परमात्मा के साथ होने का सबूत है। श्वास चलती है तो परमात्मा तुम पर बरस रहा है, इसका प्रमाण है। तुम चैतन्य हो--और क्या प्रमाण चाहिए कि परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है?
मेरे जीवन का, मरन का साथी
कब कोई मुझसे जुदा होता है
परमात्मा जुदा हो ही नहीं सकता। तुम भला उसको देखो न देखो, तुम उसकी तरफ आंख रखो न रखो, परमात्मा जुदा नहीं हो सकता। जो जुदा हो जाए वह परमात्मा नहीं। इसलिए तो हमने कहाः परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है। वस्त्रों जैसा नहीं है कि बदल लिए। चमड़ी जैसा भी नहीं है कि बदल जाएगी आज नहीं कल--जवान की बूढ़ी हो जाएगी, बच्चे की जवान हो जाएगी। हड्डी-मांस-मज्जा

जैसा भी नहीं है, क्योंकि वे भी बदल रहे हैं। सात वर्ष में मनुष्य के शरीर में सब बदल जाता है। सत्तर साल जीओगे तो दस बार शरीर पूरा बदल जाता है। मन भी नहीं है, क्योंकि मन तो प्रतिपल बदल रहा है।
मन मेरो बड़ो हरामी।
वह तो प्रतिपल बदल रहा है। वह तो प्रतिपल कुछ का कुछ हो रहा है।
परमात्मा तुम्हारे भीतर साक्षी की तरह छिपा बैठा है। तुम्हारा आत्यंतिक होना ही परमात्मा है। मगर तुम नजर दो न दो, तुम देखो न देखो--सदा तुम्हारे पीछे लगा है, छाया की तरह लगा है।
मेरे जीवन का, मरन का साथी
कब कोई मुझसे जुदा होता है
हर नफस साथ मेरे चलता है
हर कदम राहनुमा होता है
श्वास-श्वास में तुम्हारे साथ है। और हर घड़ी तुम्हें राह दिखा रहा है। तुम सुनो कि न सुनो, मानो कि न मानो, हर घड़ी तुम्हारे अंतरतम में पुकार रहा है। तुम चोरी को चलो तो कहता हैः नहीं, मत करो। तुम सुनो या न सुनो। तुम हत्या को जाओ तो कहता हैः नहीं, रुको। तुम प्रार्थना में डूबो तो कहता हैः डूबो, पूरे डूब जाओ! तुम सुनो या न सुनो। तुम किसी को कुछ देने जाते, तो कहता हैः दे ही दो, पूरा दे डालो! देने से मुक्ति है। देने में आदमी निर्भार हो जाता है। तुम सुनो न सुनो, यह अंतरतम में बोल ही रहा है। हर घड़ी! हर नफस साथ मेरे चलता है
हर कदम राहनुमा होता है
बख्श देता है खताएं मेरी
जामने-लगजशे-पा होता है
और तुम्हारी कितनी भूलें हैं, अनंत भूलें हैं--और क्षमा किए जा रहा है!
और कितनी बार तुम लड़खड़ाते हो, लेकिन तुम्हारे पैरों को सम्हाल लेता है। कितनी बार तुम गिरते हो, और फिर-फिर तुम्हें उठा लेता है। किसने तुम्हें उठाया जब तुम गिरे? और किसने तुम्हें सम्हाला जब तुम लड़खड़ाए? किसने तुम्हारी खताएं माफ कीं? कौन है जो प्रतिपल तुम्हें स्वच्छ कर लेता है, नहा देता है, फिर ताजा कर लेता है?
वही मंजिल है, वही शौके-सफर
वही मंजिल है--वही यात्रा भी।
वही खुद बांगे-दिरा होता है
और वही यात्रा पर बुलाने वाला है कि आओ, आओ!
मैं जिसे कहता हूं मेरा-मेरा
सब उसी का तो दिया होता है
है वही शम्मे-सियाहखानाए-दिल
वही आंखों की जिया होता है
अंधेरी रात में, गहरी से गहरी अंधेरी रात में--जब हृदय अंधेरे में डूबा होता है, तब अंधेरा भी वही है। और सुबह तुम्हारी आंखों में जो रोशनी होती है, वह रोशनी भी वही है। उसे पहचानना सीखो। वह हर विरोधाभास में मौजूद है।
वही हर मौजे-नफस में है रवां
दिल में जो जोशे-वफा होता है
दर्दे-दिल बन के कभी उठता है
बढ़ के फिर खुद ही दवा होता है
वही है दर्द। वही है पीड़ा। वही है प्यास और वही बरसेगा। घिर आई बदरिया सावन की! वही तुम्हारे भीतर प्यास है। वही सावन की बदरिया है। वही तृप्ति है। उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।
वही पैदा है सुकूते-लब में
वही नगमों में छुपा होता है
जब ओंठ चुप होते हैं, तब वही चुप है; और जब ओंठ गीत गाते हैं, वही गीत गाता है।
कभी बनता है सुकूने-साहिल
कभी तूफाने-बला होता है

कभी किनारे पर शांति, सन्नाटा और कभी मझधार का तूफान--सब कुछ वही है। उसे पहचानो, सब रूपों में पहचानो! ये तुलसीदास उसे कृष्ण के रूप में न पहचान पाए। ये कहे कि राम के ही रूप में पहचानूंगा। रोशनी में भी वही है, अंधेरे में भी वही है--राम और कृष्ण की तो बात ही छोड़ो। जिंदगी भी वही है, मौत भी वही है। तुम्हारे दिल में जो दर्द बन कर उठता है वह भी वही है, और जो दवा बन कर आता है वह भी वही है। उसे सब रूपों में पहचानो। उसे अनंत रूपों में पहचानो!
ला इला है वही इल्ला अल्ला है
वही हर बुत में बसा होता है
मस्जिद में अमूर्त की तरह प्रकट हो रहा है। मंदिर में मूर्ति की तरह प्रकट हो रहा है। मगर वही है! उसके अतिरिक्त कुछ और हो नहीं सकता।
क्या कहूं हमदमे-दैरीना मेरा
मुझसे मिलता है तो क्या होता है
यह पुराना दोस्त जब मिलता है तो कहना मुश्किल है कि क्या होता है! चूंकि कहा नहीं जा सकता, इसलिए मीरा कहती हैः तेरी लीला गासूं।
चाकर रहसूं बाग लगासूं...
... तेरी लीला गासूं।
और तो कुछ कर न सकूंगी। तेरे मिलन के आनंद में नाचूंगी! गीत गाऊंगी। जिनके जीवन में कभी भनक भी नहीं पड़ी है तेरी, उनके जीवन में तेरी भनक पहुंचाऊंगी।
क्या कहूं हमदमे-दैरीना मेरा
मुझसे मिलता है तो क्या होता है
उसके मिलते ही नृत्य होता है। उसके मिलते ही तुम एक रक्स में आ जाते हो। उसके मिलते ही नशा हो जाता है। और ऐसा नशा, जिसमें बेहोशी नहीं है, होश है! उसके मिलते ही पैर लड़खड़ाने लगते हैं। मगर ऐसी लड़खड़ाहट कि हर लड़खड़ाहट मंजिल के करीब लाने लगती है।
शुक्र सद शुक्र कि मेरे लब पर
न शिकायत न गिला होता है
और जब उससे मिलन होता है, तब कैसी शिकायत, कैसा गिला! यह भी कहते नहीं बनता कि इतने दिन क्यों तरसाया! उस मिलन की घड़ी में वह उतने जन्मों-जन्मों का तरसाना भी उसकी अनुकंपा मालूम होती है। उस मिलन की घड़ी में ही राज खुलता है। उस मिलन की घड़ी में यह पता चलता हैः इतने दिन न तरसाया होता तो यह मिलन का जो आज रस है, यह नहीं हो सकता था। इतना प्यासा रखा, इसीलिए ऐसी परम तृप्ति है! उस दिन प्यास का भी राज खुल जाता है।
किसी मित्र ने पूछा है प्रश्न, कि आप कहते हैं, परमात्मा अनुकंपा है।
तो फिर इतना दर्द क्यों? इतना दुख क्यों? इतनी पीड़ा क्यों? लोग अनंत-अनंत पीड़ाओं में दबे हैं--शरीर की, मन की, आत्मा की। त्रिविध ताप! अगर परमात्मा अनुकंपा है तो इतना दुख, इतना दर्द क्यों?
यह प्रश्न तब तक उठेगा जब तक मिलन नहीं हुआ। तब तक तुम्हारा प्रश्न सार्थक है। स्वभावतः यह लगता हैः इतना दर्द क्यों?
मगर यह दर्द ही गहन होकर दवा बनता है। इतना दुख इसीलिए है कि आनंद हो सके। इतने कांटे इसीलिए हैं ताकि फूल खिल सकें। इतना अंधेरा इसीलिए है कि जब रोशनी आए तो नृत्य आए, तो उत्सव आए। जिसने अंधेरा जाना है, वही रोशनी को पहचान सकेगा। और जिसने संसार का दुख जाना है, वही परमात्मा के आनंद के अनुभव में जा सकेगा।
मछली सागर में ही रहे तो उसे सागर का पता नहीं चलता; फेंक दो उसे तट पर, तड़फने दो थोड़ी देर तट पर, जलने दो धूप में--तब उसे याद आती है सागर की। फिर उसे वापस डालो सागर में, तब वह जानती है कि सागर का कैसा अमृत आनंद है! संसार सिर्फ एक परीक्षा है; सिर्फ एक तैयारी; सिर्फ एक पाठशाला। संसार ऐसे ही है जैसे तट पर फेंक दिए गए तुम रेत में तड़फने को, ताकि जब वापस तुम लौटोगे सागर में तो महातृप्ति का क्षण आएगा। उस तृप्ति को तुम जान ही नहीं सकते बिना तट पर तड़पे हुए। मगर यह राज तभी खुलेगा, जब उससे मिलना हो जाएगा।
शुक्र सद शुक्र कि मेरे लब पर

तब सिवाय धन्यवाद के कुछ भी नहीं होता, शब्द भी नहीं बनते। ओंठों पर धन्यवाद होता है, शब्द नहीं बनते।
न शिकायत न गिला होता है
एक शुक्रगुजार दशा होती है। एक धन्यवाद का भाव होता है। एक अपूर्व अहोभाव होता है। लेकिन शब्द नहीं बनते। शब्द छोटे लगते हैं।
बेतलब उसकी नजर से मुझको
सागरे-कैफ अता होता है
और मैंने मांगा भी नहीं था--बेतलब--मैंने मांग न की थी, मैंने तलब न की थी।
बेतलब उसकी नजर से मुझको
मैं चुप खड़ा हूं, बिना मांगे--
बेतलब उसकी नजर से मुझको
सागरे-कैफ अता होता है
मस्ती का ऐसा प्याला उपलब्ध होता है, जो सागरों को मात कर दे! लबालब मस्ती का प्याला उपलब्ध होता है--बिना मांगे, बेतलब! मांगे कि चूके। मांगना मत। मांग को सदा ध्यान रखना। तुम्हारी प्रार्थना में किसी द्वार-दरवाजे से मांग न घुस जाए, नहीं तो प्रार्थना मर जाती है, मांग ही रह जाती है। और मांगने वाला, भिखमंगा कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचता। मालिक, सम्राट पहुंचते हैं। सम्राट से मिलना हो तो सम्राट की तरह जाना होता है।
और सम्राट की तरह जाने का राज हैः
म्हाने चाकर राखोजी, म्हाने चाकर राखोजी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।
चाकरी में दरसन पाऊं, सुमिरण पाऊं खरची।
भाव-भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी।
रमैया मैं तो थारे रंग राती।
मीरा कहती हैः तेरे रंग में बिल्कुल रंग गई। मैं बची नहीं, तू ही बचा।
ऐसी रंगी कि मैं तो मिट गई।
रमैया मैं तो थारे रंग राती।
तेरे प्रेम में पक गई। तेरा प्रेम ही बचा। मैं का कोई भाव नहीं उठता अब। मैं हूं, यह बात भी नहीं उठती। तू ही है!
औरों के पिया परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजें पाती।
औरों के प्रेमी हैं, वे परदेस बसते हैं, दूर देश बसते हैं। वे उन्हें चिट्ठियां लिखती हैं। मैं तुझे कैसे चिट्ठी लिखूं?
मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं, रोल करूं दिन-राती।
नाचती हूं, गाती हूं, लेकिन चिट्ठी नहीं लिख पाती, क्योंकि पिया हृदय में बसता है।
मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं, रोल करूं दिन-राती।
गूंज उठाती हूं, गुनगुनाती हूं; लेकिन संवाद तक करना मुश्किल है, क्योंकि अब मैं और तू दो न रहे, एक हो गए। यह एकता ही भक्ति की परिपूर्णता है।
जलालुद्दीन रूमी का प्रसिद्ध गीत है। प्रेमी ने दस्तक दी प्रेयसी के द्वार पर। भीतर से आवाज आईः कौन है? और प्रेमी ने कहाः मैं हूं, तेरा प्रेमी। तूने पहचाना नहीं? मेरी पगध्वनि नहीं पहचानी? मेरे हाथ की दस्तक नहीं पहचानी? फिर आवाज आईः तू आखिर है कौन? और प्रेमी ने कहाः यह हद्द हो गई, मेरी आवाज भी तुझे पहचान नहीं आती! और फिर सन्नाटा हो गया। और प्रेमी ने बहुत द्वार खटखटाया, फिर भीतर से कोई उत्तर भी न आया। बहुत सिर मारा, तब इतनी ही भीतर से आवाज आई कि यह घर बहुत छोटा है, इसमें दो न समा सकेंगे। प्रेमी लौट गया। जंगलों में, पहाड़ों में भटकता रहा। ध्यान में, प्रार्थना में अपने को निखारता रहा। चांद उगे, चांद ढले; सूरज आए, सूरज गए; दिन बीते, माह बीते, वर्ष बीते--अनेक वर्षों के बाद वापस लौटा। द्वार पर फिर दस्तक दी। फिर वही आवाज, फिर वही प्रश्नः कौन है? और इस बार उसने कहाः अब तो तू ही है! और द्वार खुले! क्योंकि प्रेम के घर में दो नहीं समा सकते।

यह जलालुद्दीन रूमी की कविता भक्ति की पराकाष्ठा की तरफ इशारा है।
रूमी भी एक प्रेमी था, जैसे मीरा। एक भक्त--अपूर्व भक्त!
औरों के पिया परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजें पाती।
मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं, रोल करूं दिन-राती।
चूवा चोला पहिर सखी री...
सुंदर सुगंधित वस्त्र पहनती हूं; प्यारे रंगों वाले वस्त्र पहनती हूं; जो उसे भाते, ऐसे वस्त्र पहनती हूं!
चूवा चोला पहिर सखी री, मैं झुरमुट रमवा जाती।
चली जाती हूं झुरमुटों में, एकांत में--उसके साथ खेलने! वह तो साथ ही है। एकांत में!
प्रेम सदा एकांत मांगता है, क्योंकि प्रेम पागल है। और भीड़ की नजर पागल होने की सुविधा नहीं देती। जरूर मीरा जाती रही होगी, चली जाती होगी दूर झुरमुटों में। नाचती होगी वहां। अपने पिया संग! पिया भी नाचता होगा मीरा के संग, क्योंकि पिया भीतर बसा है। मीरा के नाच में उसका भी नाच है। ... रोल करूं दिन-राती।
चूवा चोला पहिर सखी री, मैं झुरमुट रमवा जाती।
झुरमुट चली जाती हूं--उसके साथ रमने, खेलने, रास रचाने!
झुरमुट में मोहे मोहन मिलिया, घाल मिली गलबांथी।
और वहां उससे मेरा मिलना हो जाता है। मेरा मोहन मुझे मिल जाता है वहां। हम गले मिल जाते हैं, आलिंगन कर लेते हैं। हम एक-दूसरे में डूब जाते हैं। खुल कर हम एक-दूसरे में प्रवेश कर जाते हैं।
झुरमुट में मोहे मोहन मिलिया, घाल मिली गलबांथी।
और सखी मद पी-पी माती...
और सखियां हैं, जो शराब पीती हैं, तब उन्हें नशा चढ़ता है।
... मैं बिन पिया ही माती।
और मैं बिना पीए नशे में डोलती हूं। उस प्यारे का भीतर बस जाना बड़े से बड़ा नशा है। फिर आंखें सदा ही मदमाती रहती हैं। फिर पैर कहीं के कहीं पड़ते हैं।
और सखी मद पी-पी माती, मैं बिन पिया ही माती।
उस प्यारे को अपने में बसा लेना--मधुशाला बन गए तुम! अब कहीं और से शराब पीनी जरूरी नहीं।
शराब आदमी पीता है अपने को विस्मरण करने को। जिसे प्यारा मिल गया भीतर, वह तो मिट ही गया, विस्मरण करने को भी न बचा अब। एक गहन नशा छा जाता है।
लेकिन नशे की खूबी है! भक्त का नशा ऐसा है--नशा भी होता है, होश भी होता है। होश को बढ़ाता है भक्त का नशा।
संसार में जो लोग हैं, वे तो होश में भी होते हैं तो नशे में होते हैं।
एक तरह की मूर्च्छा, एक तरह की निद्रा, तंद्रा घेरे रहती है। भक्त नशे में भी होता है--परमात्मा को पीकर--फिर भी उसके जीवन में एक होश होता है। भूल उससे नहीं होती। पैर डगमगाते हैं, लेकिन गलत रास्तों पर नहीं जाते। नाचता है, लेकिन सदा सही की दिशा में घटना घटती है।
किस खाक से हुई है न जाने मेरी सरिश्त
दानिस्ता कुछ गुनाह किए जा रहा हूं मैं
चाहूं तो अपने हाथ से अमृत पिलाए तू
दुख है कि फिर भी जहर पीए जा रहा हूं मैं
ये है कशिश हयात की या खौफ मौत का
जी बुझ चुका है फिर भी जीए जा रहा हूं मैं
मस्ती हुई नसीब बड़ी मुश्किलों के बाद
दामन का चाक फिर भी सीए जा रहा हूं मैं
आया था ले के हसरते-दीदे-जमाले-दोस्त
दिल में उम्मीदे-वस्ल लिए जा रहा हूं मैं
हकदार तो हो तुम अमृत पीने के--और उस प्यारे के हाथ से अमृत पीने के! चाहूं तो अपने हाथ से अमृत पिलाए तू
दुख है कि फिर भी जहर पीए जा रहा हूं मैं

लेकिन पी तुम जहर रहे हो।
अहंकार से जहर ही झरता है। अहंकार से अमृत की कोई पहचान नहीं होती।
अहंकार मरणधर्मा है, इसलिए जहर ही जहर है। अमृत तो तभी मिलेगा जब अहंकार से छुटकारा हो। जैसे ही अहंकार गया, मृत्यु गई; क्योंकि तुम्हारे भीतर जो मर सकता था, उससे छुटकारा हो गया। तुम्हारे भीतर अमृत ही बचा।
चाहूं तो अपने हाथ से अमृत पिलाए तू
दुख है कि फिर भी जहर पीए जा रहा हूं मैं
यह तुम्हारा चुनाव है। मीरा उस जगह पहुंच गई है, जहां प्यारा खुद अपने हाथ से अमृत पिला रहा है।
और सखी मद पी-पी माती, मैं बिन पिया ही माती।
प्रेम-भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन-राती।
मीरा कहती हैः प्रेम की भट्ठी में जो शराब ढाली गई, बनाई गई, वह मैंने पी।
प्रेम-भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन-राती।
अब यह ऐसा नशा चढ़ा है, जो उतरना नहीं जानता। जो नशा उतर जाए, वह भी कोई नशा है? जो उतर-उतर जाए, जिसे जबरदस्ती-जबरदस्ती चढ़ाना पड़े, वह कितनी देर काम आएगा? वह कितनी दूर काम आएगा? नशा ही करना हो तो कुछ ऐसा करो कि जो चढ़े एक बार तो सदा के लिए चढ़ जाए। रंगना ही हो तो कुछ ऐसे रंग में रंगो जो पक्का हो।
रमैया मैं तो थारे रंग राती।
यह रंग पक्का है--यह प्रेम का रंग है।
और प्रेम के अतिरिक्त सभी रंग कच्चे हैं। प्रेम के अतिरिक्त सभी रंग उतर जाते हैं। धन का रंग उतर जाता है, पद का रंग उतर जाता है। प्रेम के अतिरिक्त सब रंग उतर जाते हैं। और अगर तुम्हारे प्रेम का रंग भी उतर जाता हो तो समझना कि प्रेम नहीं है। जो उतर जाए, वह प्रेम नहीं। प्रेम शाश्वत में यात्रा है। हुआ तो हुआ। जो उतर-उतर जाए, उसमें कुछ और होगा, प्रेम नहीं हो सकता।
प्रेम-भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन-राती।
मीरा कहती हैः छकी फिरूं दिन-राती!
ऐसे ही तुम भी छक सकते हो। तुम भी छके फिर सकते हो। और तुम्हारे हाथ में ही बाजी है। कोई दूसरा तुम्हें भटका नहीं रहा है--तुम्हीं अपने को भटका रहे हो। तुमने गलत से दोस्ती बना ली है, इसलिए ठीक से दोस्ती बनाने के हकदार नहीं रह गए हो। गलत से धीरे-धीरे दोस्ती छोड़ो। धन से, पद से दोस्ती छोड़ो, तो प्रेम से दोस्ती बने। प्रेम से दोस्ती बने तो सीढ़ी हाथ लग गई। नाव हाथ लग गई। फिर प्यारा बहुत दूर नहीं है।
मेरी अक्लो-खिरद सो गई है
वर्ना ऐसी न कुछ बेहुशी है
बंद है आंख पर देखती है
सो गया जिस्म, जां जागती है
रुक गई है मेरी सांस ऐसे
बेखुदी में हवैदा खुदी है कैसी हालत है मैं क्या कहूं अब मिट गए गम, खुशी ही खुशी है दूर जुल्मत हुई, नूर फैला चार सूं इक नई रोशनी है
बरकतो-रहमते-हक की बारिश
हर तरफ हर कहीं हो रही है
बोझ हलका हुआ जिंदगी का
नाचती खेलती जा रही है
रूह खुशियों से लबरेज होकर सारी दुनिया का मुंह चूमती है आज हर शै पे छाई है मस्ती
इक मुसर्रत में फितरत बसी है कोहो-दरियाओ-शाखो-शजर में

देखता हूं कि जां पड़ गई है जर्रे-जर्रे में खुर्शीद लरजां कतरे-कतरे में दरिया रवी है जिंदगी इम्बिसाते-खुदी के
आज एहसास से कांपती है
असले-तौहीद है ये नज्जारा
और यही जाने-रंगे-दुई है
मेरी अक्लो-खिरद सो गई है
वर्ना ऐसी न कुछ बेहुशी है
होता क्या है? उस प्यारे के रंग में रंगते ही तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारा विचार सो जाता है।
मेरो मन बड़ो हरामी।
वह जो हरामी मन है, वह सो जाता है। और जब मन सो जाता है तो हृदय जागता है।
मेरी अक्लो-खिरद सो गई है
वह जो हिसाब-किताब करने वाली बुद्धि थी, वह सो गई है। बस यही नशा है वहां।
वर्ना ऐसी न कुछ बेहुशी है
और क्या नशा है? बुद्धि खो गई। बुद्धि सो गई। तर्क गया, श्रद्धा उपजी। हिसाब-किताब गया, प्रेम उमगा।
बंद है आंख पर देखती है
इसलिए मैंने कहाः यह ऐसा नशा है कि होश बढ़ता है, घटता नहीं।
बंद है आंख पर देखती है
सो गया जिस्म, जां जागती है
देह सो जाती है, आत्मा जागती है। तुम्हारी अभी आत्मा सोई है, देह जाग रही है। अभी तुम्हारी आंख खुली है, मगर देखते कहां तुम? अंधे हो! आंख खुली है--और अंधे हो! कान खुले हैं, लेकिन तुमने सुना क्या? जब तक परमात्मा का नाद न सुना, तब तक कुछ भी न सुना। और जब तक परमात्मा को न देखा, तब तक कुछ भी न देखा।
बंद है आंख पर देखती है
फिर एक ऐसी घड़ी आती है कि बाहर से तो आंख बंद हो जाती है और भीतर देखती है--और भीतर प्यारे को देखती है!
सो गया जिस्म, जां जागती है
रुक गई है मेरी सांस ऐसे
बेखुदी में हवैदा खुदी है
और एक अर्थ में तो बेखुद हो गया हूं, बेहोश हो गया हूं। और एक अर्थ में पहली दफा होश आया है। इस बेखुदी में भी खुदी छुपी है। पहली दफा ज्योति जगी है।
कैसी हालत है मैं क्या कहूं अब
मिट गए गम, खुशी ही खुशी है
आज हर शै पे छाई है मस्ती
इक मुसर्रत में फितरत बसी है
चारों तरफ आनंद का साज बज रहा है। चारों तरफ फूल ही फूल खिले हैं। चारों तरफ सुगंध ही सुगंध है। भीतर मिलन हो जाए उससे, तो बाहर भी सब रूपांतरित हो जाता है।
कोहो-दरियाओ-शाखो-शजर में
देखता हूं कि जां पड़ गई है
औरों की तो बात छोड़ दो, पत्थरों में भी फिर जान दिखाई पड़ने लगती है, प्राण दिखाई पड़ने लगते हैं। वह जो महावीर ने कहा है कि पत्थर में भी प्राण हैं, वह भीतर चैतन्य के परम अनुभव के कारण कहा है। पत्थर में प्राण दिखाई पड़ते नहीं, लेकिन पत्थर में भी प्राण हैं। इस जगत में कोई जगह नहीं जहां प्राण न हों। यह जगत प्राण का सागर है, जीवन का सागर है। यहां सभी चीजें जाग रही हैं, जी रही हैं। सभी चीजें गतिमान हैं। सभी चीजें परमात्मा की तरफ सरक रही हैं। अपने-अपने ढंग, अपनी-अपनी क्षमता के अनुकूल।

आज हर शै पे छाई है मस्ती
इक मुसर्रत में फितरत बसी है
कोहो-दरियाओ-शाखो-शजर में
देखता हूं कि जां पड़ गई है
और सखी मद पी-पी माती, मैं बिन पिया ही माती।
प्रेम-भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन-राती।
सुरत निरत को दिवलो जोयो, मनसा पूरन बाती।
मीरा कहती हैः स्मृति--सुरत; और निरत--लीनता। विरोधाभासी लगेगा।
सुरत निरत को दिवलो जोयो...
एक तरफ परमात्मा की स्मृति सघन हो गई है और अपनी याद खो गई है। तो मैं
तो लीन हो गई हूं और प्रभु जागने लगा है। मैं तो मिट गई हूं, प्रभु होने लगा है।
सुरत निरत को दिवलो जोयो...
इस तरह अदभुत सामंजस्य हो रहा है। एक तरफ लीन हो गई हूं, और एक तरफ पहली बार जागी हूं। ऐसा दीया जल रहा है भीतर।
सुरत निरत को दिवलो जोयो, मनसा पूरन बाती।
और अब तो मन की ही बाती बन गई है। वह जो मेरे भीतर विचार की क्षमता थी,
जो अकेली-अकेली भटकाती थी, अब प्रभु के चरणों में लग कर वही ज्योति की बाती बन गई है।
ध्यान रखना, तुम्हारे भीतर कुछ भी ऐसा नहीं जो व्यर्थ हो। उसका ठीक उपयोग, सभी कुछ सार्थक है। ठीक संयोग चाहिए। वही आग घर को जला सकती है, वही आग भोजन पकाती है। वही विचार तुम्हें भटकाता है संसारों में, वही विचार तुम्हारे भीतर बाती बन सकता है।
सुरत निरत को दिवलो जोयो, मनसा पूरन बाती।
अगम घाणि को तेल सिंचायो, बाल रही दिन-राती।
और अगम का, उस असीम का, जिसको समझने का कोई उपाय नहीं, उसके तेल से ही दीये को भरा है। क्योंकि और सब तेल तो चुक जाएंगे आज नहीं कल, वही एक तेल है जो कभी न चुकेगा।
अगम घाणि को तेल सिंचायो, बाल रही दिन-राती।
और अब यह ज्योति दिन-रात जल रही है। यह शाश्वत ज्योति है। इस ज्योति
को जिसने नहीं पाया, वह अंधेरे में जी रहा है। इस ज्योति को जिसने नहीं पाया, वह भटक रहा है। इस ज्योति को पाते ही भटकन मिट जाती है। परमात्मा का तेल बनाओ, मन की बाती बनाओ। अगम-निगम, सुरत-निरत का दीया बनाओ।
जाऊंनी पीहरिए आऊंनी सासरिए, हरि सूं सैन लगाती।
अब मीरा कहती है कि कहीं आऊं, कही जाऊं--नैहर जाऊं कि ससुराल आऊं--अब कुछ फर्क नहीं पड़ता।
... हरि सूं सैन लगाती।
अब तो उसी का ध्यान बना रहता है। घर कि बाहर, ससुराल कि नैहर, पहाड़ों में कि बाजारों में, एकांत में कि भीड़ में, अपनों में कि परायों में--अब कुछ फर्क नहीं पड़ता। आंखें उसमें ही अटकी हैं।
... हरि सूं सैन लगाती।
इशारे उसके साथ चल रहे हैं। बोलती-बतियाती औरों से, लेकिन बात भीतर उसी से चल रही है। चलती बाहर, लेकिन असली चलना भीतर हो रहा है।
जाऊंनी पीहरिए आऊंनी सासरिए, हरि सूं सैन लगाती।
मगर एक गुफ्तगू चल रही है। चुपचाप एक संवाद चल रहा है। इशारे उससे ही
हो रहे हैं।
"सैन" शब्द बड़ा प्यारा है। सैन का मतलबः आंख ही आंख से इशारा। किसी को पता भी न चले, आंख ही आंख में बात हो जाए। शब्द भी न उठाने पड़ें।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चित लाती।
मीरा कहती हैः मेरे तो प्रभु गिरधर नागर हैं। उनके ही चरणों में सारे चित्त को डाल दिया है। इस चित्त के डालने की कला--
म्हाने चाकर राखोजी, म्हाने चाकर राखोजी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, तेरी लीला गासूं।

प्रभु के चाकर बनो--और तुम सदा के लिए मालिक हो जाओगे! मालिक बनने की कोशिश करो--और तुम संसार के गुलाम रहोगे! यहां बड़े से बड़ा धनी व्यक्ति भी गुलाम है। यहां के सम्राट भी गुलाम हैं। उसके जगत के चाकर भी मालिक हैं। इस जगत के मालिक भी चाकर हैं।
अहंकार समर्पित करना होगा, तभी चाकर बन सकोगे। उसके चरणों में चित्त
को तभी रख सकोगे, जब यह मैं की अकड़ मिटे। अगर ठीक से समझो तो मैं के अतिरिक्त और कोई पाप नहीं। मैं के अतिरिक्त और कोई संसार भी नहीं। मैं के अतिरिक्त और कोई नरक भी नहीं। मैं गया, नरक गया, पाप गया, संसार गया। और जहां मैं गया, वहां फिर जो शेष रह जाता है, फिर मैं के चले जाने पर जिसकी अनुभूति होनी शुरू होती है--वही है प्यारा, वही है प्रभु! उसे नाम कुछ भी दो--राम कहो, कृष्ण कहो, अल्लाह कहो, जो मर्जी हो कहो। वे सब भेद नाम के हैं। न तो राम जपने से कुछ होगा, न कृष्ण जपने से कुछ होगा, न अल्लाह जपने से कुछ होगा। मैं को छोड़ दो--और राम भी मिल गए, कृष्ण भी मिल गए, अल्लाह भी मिल गए; क्योंकि वे एक के ही नाम हैं। अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग ढंग से उसे पुकारा है। लेकिन पुकारने में वही सफल हो पाता है, पुकार उसी की पहुंचती है, जो मिट कर पुकारता है।
चाकर होने की कला सीख लो, तो भक्ति की कुंजी तुम्हारे हाथ में आ गई। और भक्ति से मिलता हो तो किसी और ढंग से पाने की जरूरत नहीं। और ढंग नंबर दो हैं। जब इतनी मस्ती से मिलता हो तो रो-रो कर क्या पाना? जब नाच-नाच कर मिल जाता हो तो तप, योग की व्यर्थ झंझटों में क्यों पड़ना? उस गोरख-धंधे में क्यों पड़ना? जब सिर्फ गुण गाने से मिलता हो, जब इतनी सरलता से मिलता हो, सहजता से मिलता हो--तो फिर अड़चनें क्यों मोल लेनी?
लेकिन ख्याल रखना, तुम्हारा अहंकार अड़चनें मोल लेने में सदा उत्सुक होता है, सरलता से नहीं जाना चाहता है, क्योंकि अहंकार हमेशा चुनौती पसंद करता है। योग पसंद आता है अहंकार को, तप पसंद आता है, तपश्चर्या पसंद आती है; क्योंकि वहां अहंकार को कुछ करने को मिलता है। और जब भी कुछ करने को मिलता है, अहंकार मजबूत होता चला जाता है।
भक्ति पसंद नहीं आती अहंकार को। अहंकार को बात ही नहीं जंचती, क्योंकि भक्ति में करने को कुछ है ही नहीं। समर्पित हो जाना है। भक्ति में करने की बात ही नहीं है--अकर्ता हो जाना है। भक्ति में तो परमात्मा करता है--भक्त सिर्फ झेलता है। जहां ले जाता है, चला जाता है। भक्त तो सिर्फ हाथ परमात्मा के हाथ में दे देता है। कहता हैः फिर जैसी तेरी मर्जी!
इसलिए अहंकार को भक्ति में रस नहीं होता। और तुम्हारे भीतर जो अहंकार है, वह भी तुमसे कहेगाः भक्ति नहीं, योग करो, तप करो, जप करो, व्रत-उपवास करो--तो कुछ हुआ। भक्ति में क्या है? नाचे, गाए--इसमें क्या होगा?
यहां मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैंः नाचने-गाने से क्या होगा? उन्हें कुछ पता नहीं है। नाचने-गाने में हो ही जाता है। नाचने-गाने में हो ही गया। क्योंकि जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा। और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है।
आज इतना ही।

पद घुंघरू बांध
बीसवां प्रवचन

प्रेम श्वास है आत्मा की

पहला प्रश्नः मैं रोऊं, गाऊं या मुस्कुराऊं? नौ साल दूर कैसे रह गई, समझ नहीं पाती हूं। अब पास आकर ऐसी दशा है कि हमेशा रोआं-रोआं कांपता रहता है, चाहे सोई रहूं या जागी हुई। इस अवस्था पर आनंद भी अनुभव होता है और झुंझलाहट भी। कोई रास्ता दिखाने की कृपा करें।

वीणा! रोना, गाना और हंसना, तीनों साथ चल सकते हैं, चुनाव की कोई जरूरत नहीं है। त्रिवेणी सुंदर होगी। एक--गरीब होगा। तीनों--बहुत समृद्ध होंगे। लेकिन तर्क से भरा हुआ मन हमेशा चुनाव करता हैः रोऊं, गाऊं या मुस्कुराऊं? तीनों साथ चलने दो। रोने और हंसने में कोई विरोध नहीं है। कभी-कभी तो हंसने की गहराई ही आंसुओं में रूपांतरित हो जाती है। रोना जरूरी रूप से दुख के कारण ही नहीं होता--रोना आनंद से भी होता है। और वीणा का रोना निश्चित ही आनंद से हो रहा होगा।
रोने का अर्थ क्या है? रोने का अर्थ हैः कोई भाव इतना प्रबल हो गया है
कि अब आंसुओं के अतिरिक्त उसे प्रकट करने का कोई और उपाय नहीं है। फिर वह भाव चाहे दुख का हो, चाहे आनंद का हो। आंसू अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। गहन भावनाओं को, जो हृदय के गहरे से उठती हैं, वे आंसुओं में ही प्रकट हो सकती हैं। शब्द छोटे पड़ते हैं। गीत छोटे पड़ते हैं। जहां गीत चुक जाते हैं, वहां आंसू शुरू होते हैं। जो किसी और तरह से प्रकट नहीं होता वह आंसुओं से प्रकट होता है। आंसू तुम्हारे भीतर कोई ऐसी भाव-दशा से उठते हैं जिसे सम्हालना और संभव नहीं है, जिसे तुम न सम्हाल सकोगे, जिसकी बाढ़ तुम्हें बहा ले जाती है।
फिर, ये आंसू चूंकि आनंद के हैं, इनमें मुस्कुराहट भी मिली होगी, इनमें हंसी का स्वर भी होगा। और चूंकि ये आंसू अहोभाव के हैं, इनमें गीत की ध्वनि भी होगी। तो गाओ भी, रोओ भी, हंसो भी--तीनों साथ चलने दो। कंजूसी क्या? एक क्यों? तीनों क्यों नहीं?
लेकिन मन हिसाबी-किताबी है। वह सोचता हैः एक करना ठीक मालूम पड़ता है--
या तो गा लो या रो लो। मैं तुमसे कहता हूं कि इस हिसाब को तोड़ने की ही तो सारी चेष्टा चल रही है। यही तो दीवाने होने का अर्थ है।
तुमने अगर कभी किसी को रोते, हंसते, गाते एक साथ देखा हो, तो सोचा होगा
कि पागल है। पागल ही कर सकता है इतनी हिम्मत। होशियार तो कमजोर होता है, होशियारी के कारण कमजोर होता है। होशियार तो सोच-सोच कर कदम रखता है, सम्हाल-सम्हाल कर कदम रखता है। उसी सम्हालने में तो चूकता चला जाता है। होशियारों को कब परमात्मा मिला! होशियार चाहे संसार में साम्राज्य
को स्थापित कर लें, परमात्मा के जगत में बिल्कुल ही वंचित रह जाते हैं। वह राज्य उनका नहीं है। वह राज्य तो दीवानों का है। वह राज्य तो उनका है जिन्होंने तर्क-जाल तोड़ा, जो भावनाओं के रहस्यपूर्ण लोक में प्रविष्ट हुए।
इन तीनों द्वारों को एक साथ ही खुलने दो। परमात्मा ने हृदय पर दस्तक
दी है, तब ऐसा होता है। इसे सौभाग्य समझो।
"मैं रोऊं, गाऊं या मुस्कुराऊं? नौ साल दूर कैसे रह गई, समझ नहीं पाती हूं।"
वीणा मुझे नौ साल पहले मिली थी। करीब आते-आते दूर हो गई। करीब आना आसान भी नहीं है। हजार चीजें रोकती हैं। फिर मेरे करीब आना तो और भी कठिन है। जिनमें प्रेम का पागलपन है, वे ही करीब आ सकेंगे। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं, वह तुम्हारी सांत्वना के लिए नहीं कहा गया है। तो कभी-कभी ऐसा होता हैः मेरी कोई बात तुम्हें सांत्वना की लगती है, तो तुम करीब आ जाते हो; और मेरी कोई बात तुम्हें चोट कर देती है तो तुम दूर हट जाते हो। तुम्हें जिस बात से सुख मिलता है तो करीब आ जाते हो; और जिस बात से तुम्हें दुख मिलता है तो दूर हट जाते हो। तुम मुझसे थोड़े ही लगे हो--तुम अपनी ही

धारणाओं से चिपटे हो। तुम्हारी धारणाओं को जिस बात से समर्थन मिलता है, तुम कहते होः ठीक कह रहे हैं आप। तुम्हारी धारणाओं को जिन बातों से चोट लग जाती है, तुम कहते होः अब बात गलत हो गई।
एक चर्च में एक पादरी बोल रहा था। उसने पहले शराब का विरोध किया। एक बूढ़ी स्त्री उठ-उठ कर कहने लगीः बिल्कुल ठीक! बिल्कुल ठीक! जुए का विरोध किया, वह बूढ़ी स्त्री फिर भी बोलीः बिल्कुल ठीक! बिल्कुल ठीक! वह सर्वाधिक आनंदित थी श्रोताओं में। फिर चोरी का विरोध आया और उसने फिर कहाः बिल्कुल ठीक है! बिल्कुल ठीक है! और तब उस पादरी ने कहाः तंबाकू खाना भी ठीक नहीं है, तंबाकू बंद करो! बुढ़िया बोलीः अब जरा बात गलत हो गई! अब धर्म की बात न रही, अब तो ये क्षुद्र बातों में पड़ने लगे।
यह बुढ़िया तंबाकू खाती है। जुआ, उसे कोई अड़चन नहीं। चोरी से उसे कोई अड़चन नहीं। शराब से उसे कुछ अड़चन नहीं। तंबाकू की जब बात आती है तो अड़चन शुरू हो जाती है।
लेकिन.वीणा किन्हीं सैद्धांतिक कारणों से दूर नहीं रह गई थी। उसके कारण भावनागत थे। डर पैदा हुआ, कि अगर मेरे करीब और आई तो पति हैं, बच्चे हैं, परिवार है--इनका क्या होगा?
यह मेरे अनुभव में आया है कि पुरुष दूर रह जाते हैं--सैद्धांतिक मतभेदों के कारण। स्त्रियां दूर रह जाती हैं--उनकी आसक्तियों के कारण। भय समाता है कि कहीं बात ऐसी न हो जाए, कहीं इतनी आगे न चली जाए कि फिर लौटना संभव न हो!
तो नौ वर्ष से वीणा बचने की कोशिश करती रही। इस बचने की कोशिश में भी करीब आती गई। नौ वर्ष मेरे पास नहीं आई, नौ वर्ष मुझे सुना नहीं; लेकिन इस बचने की कोशिश में भी करीब आती चली गई। भीतर-भीतर रस गहन होता रहा; बीज फूटता रहा। और जब इस बार करीब आई तो फिर न रोक सकी। जो नौ वर्ष पहले होना था, वह अब जाकर हुआ। अब संन्यस्त हुई। यह नौ वर्ष पहले हो सकता था। लेकिन नौ वर्ष पहले सांसारिक आसक्तियां, जिम्मेवारियां... ।
और मजा यह है कि मैं तुम्हारी जिम्मेवारियों को तोड़ता नहीं, न तुम्हें तुम्हारे परिवार से अलग करता हूं, न तुम्हें तुम्हारे बच्चों से अलग करता हूं। सच तो यह है कि अगर तुम पति हो तो और बेहतर पति हो जाओगे; और पत्नी हो तो और बेहतर पत्नी; और मां हो तो पहली दफा मां बनोगी। संन्यास तुम्हारे जीवन में सुगंध को जोड़ेगा।
लेकिन संन्यास की बहुत दिनों से चली आती जो जीवन-विरोधी धारा है, उससे घबड़ाहट होती है। संन्यासी सदा ही जीवन-विरोधी रहा है। तो संन्यास शब्द ही विकृत हो गया। संन्यास शब्द में ही जहर लग गया। संन्यास शब्द का सौंदर्य खो गया, उसका आकर्षण खो गया, उसका अहोभाव खो गया। वह कुछ उदास और रुग्ण और भगोड़ों की बात हो गई। ठीक है, कोई भाग जाए तो तुम कहते हो कि पैर छू लेंगे; मगर तुम पीछे नहीं जाते हो। तुम कभी बात भी सुन लेते हो भगोड़ों की। एक कान से सुनते, दूसरे कान से निकाल देते। संन्यास शब्द से घबड़ाहट हो गई है। क्योंकि संन्यास की पुरानी धारा विकृत हो गई थी, रुग्ण हो गई थी।
ऐसा सदा नहीं था। उपनिषद और वेदों में भी संन्यास था, लेकिन वह संन्यास जीवन-विरोधी नहीं था। उपनिषद के ऋषि भी परम संन्यासी थे, लेकिन जीवन-विरोधी नहीं थे; जीवन के मध्य थे। उनकी पत्नियां थीं, उनके बच्चे थे, उनके परिवार थे। जैनों और बौद्धों के प्रभाव में संन्यास ने एक अलग ही ढंग ले लिया। फिर जब जैनों और बौद्धों ने वैराग्य, जीवन-विरोध, जीवन का त्याग-- ऐसे संन्यास की परिभाषा की, तो हिंदुओं को थोड़ी अड़चन लगने लगी। अड़चन यह थी कि जैनों का संन्यास ज्यादा महिमाशाली दिखाई पड़ने लगा। स्वभावतः, जो पत्नी छोड़ कर चला गया, बच्चे छोड़ कर चला गया, घर-द्वार छोड़ दिया, नग्न खड़ा हो गया--उसके सामने उपनिषद के ऋषि फीके मालूम पड़ने लगे। हिंदू धर्म की जड़ें डगमगाने लगीं। प्रतिक्रिया में शंकराचार्य ने हिंदू धर्म में भी वही जहर प्रविष्ट करवा दिया, हिंदू संन्यास भी जीवन-विरोधी हो गया।
मैं तुमसे कहना चाहता हूंः जीवन का विरोध अंततः परमात्मा का विरोध है; क्योंकि जीवन जिसका है, जीवन में जो छिपा है, जीवन के विरोध में तुम उसे भी चूक जाओगे। और जीवन-विरोधी संन्यास पूरी पृथ्वी को गैरिक नहीं कर सकता--कुछ छोटी-मोटी संख्या को शायद रसपूर्ण लगे, लेकिन अधिक लोग, बहुमत,

विशाल जन-समुदाय उससे अछूता रह जाएगा। और इस बड़ी पृथ्वी पर अगर एकाध व्यक्ति संन्यस्त हो जाए, दो-चार संन्यस्त हो जाएं, तो कुछ परिणाम नहीं होता। सागर में बूंद की तरह खो जाते हैं। यह तो पूरा सागर ही रंगे, तो ही किसी दिन सौभाग्य होगा।
वीणा डर गई थी। डर उसका स्वाभाविक था, क्योंकि नौ वर्ष के बाद आई पहले दिन और पहले दिन ही खो गई और पहले दिन ही डूब गई। तो नौ वर्ष बीज भीतर अंकुरित होता रहा होगा। आज जरूर पीड़ा लगेगी मन को--
"नौ साल दूर कैसे रह गई, समझ नहीं पाती हूं!"
जिस दिन तुम करीब आने शुरू होओगे सत्य के, उस दिन तुम्हें सभी को हैरानी होगी कि इतने-इतने दिन कैसे दूर रह गए! इतने-इतने जन्म कैसे दूर रह गए! और सत्य इतने करीब था, इतना सुगम था, इतना सरल था--हाथ बढ़ाते तो मिल जाता! परमात्मा पास ही खड़ा था और तुम चूकते गए, चूकते गए।
"अब पास आकर ऐसी दशा है कि हमेशा रोआं-रोआं कांपता रहता है, चाहे सोई रहूं या जागी हुई।"
कांपेगा। शुभ हो रहा है। शुभ संकेत है। रोआं-रोआं संन्यस्त होगा। संन्यास तो शुरुआत है, फिर रोआं-रोआं डूबेगा, फिर कण-कण डूबेगा। फिर जो आनंद की लहर हृदय में उठी है, वह शरीर में भी व्याप्त होगी। तुम्हारा पूरा अस्तित्व जब तक आच्छादित न हो जाएगा, तब तक यह कंपन जारी रहेगा। यह कंपन सृजनात्मक है। इसे आनंद-भाव से स्वीकार करना।
"इस अवस्था पर आनंद भी अनुभव होता है और झुंझलाहट भी।"
स्वभावतः आनंद अनुभव होगा, क्योंकि कुछ घट रहा है जिसकी प्रतीक्षा थी।
झुक आई बदरिया सावन की।
जिसके लिए प्यास थी, वे बादल आ गए। लेकिन झुंझलाहट भी होगी, क्योंकि इतना नया है कि तुम्हारे पास न भाषा है, न व्याख्या है। इतना नया है कि समझने का कोई उपाय नहीं। इसलिए अहंकार को झुंझलाहट होती है। हृदय आनंदित होगा, बुद्धि झुंझलाएगी। हृदय रस से मग्न होगा, हृदय नाचना चाहेगा, हृदय पंख खोल आकाश में उड़ना चाहेगा। और बुद्धि बड़ी बेचैनी अनुभव करेगीः यह क्या हो रहा है तर्कातीत!
बुद्धि की जो समझ में नहीं आता, बुद्धि उससे झुंझलाती है। बुद्धि कहती हैः ऐसे काम में मत पड़ो जो मेरी समझ में नहीं आता! नासमझी के काम में मत पड़ो!
लेकिन, बुद्धि के ऊपर भी एक समझ है--हृदय की। और जब हृदय की समझ खुलनी शुरू होती है, कौन सुनता है बुद्धि की! जो सुने, वह अभागा है। इसलिए दोनों बातें होंगी--आनंद भी होगा, झुंझलाहट भी होगी। झुंझलाहट होगी सिर में; आनंद होगा हृदय में, धड़कन में। श्वास-श्वास में आनंद भर जाएगा और विचार-विचार में झुंझलाहट हो जाएगी।
विचार की मत सुनना। विचार व्यर्थ के साथ जुड़ा है। विचार सीमित के साथ जुड़ा है। विचार क्षुद्र के साथ बंधा है। उसकी क्षुद्र से सगाई हुई। वह धन-पैसा, पद-प्रतिष्ठा, इनकी दुनिया में कुशल है; प्रेम और परमात्मा और समाधि, इस दुनिया में उसकी कोई गति नहीं है। वह जमीन पर सरकने के लिए ठीक है, आकाश में उड़ने की उसकी क्षमता नहीं है। आकाश में उड़ना हो तो हृदय के पंखों पर सवार होना होगा। आनंद की सुनना! तुम्हारे भीतर जो विधायक है, उसमें ही डूबो; और जो नकारात्मक है, उसकी उपेक्षा करो, ताकि धीरे-धीरे विधेय ही तुम्हारा जीवन हो जाए। नकार अपने आप गिर जाएगा; सूखेगा, कुम्हलाएगा। पानी मत दो अब नकार को। अब झुंझलाहट को पानी मत देना। होती हो, होने देना; तुम तो पानी देते जाना आनंद के भाव को।
"इस अवस्था में आनंद भी अनुभव होता है और झुंझलाहट भी। कोई रास्ता दिखाने की कृपा करें।"
"रास्ता दिखाने की कृपा करें"--इस प्रश्न में आकांक्षा है कि किसी तरह झुंझलाहट न हो। क्योंकि आनंद से तो कोई मुक्त होना नहीं चाहता। झुंझलाहट न हो! झुंझलाहट न हो, इसके दो उपाय हैं।
एक उपाय तो यह है कि फिर वापस बुद्धि की सुनने लगो, तो झुंझलाहट भी बंद
हो जाएगी और आनंद भी बंद हो जाएगा। यही अधिक लोग करते हैं। बुद्धि इतनी

झुंझलाहट पैदा कर देती है, इतनी झंझट खड़ी कर देती है, इस तरह प्रतिपल कोंचने लगती है कि तुम कहते होः यह आनंद तो महंगा हुआ। छोड़ो! जाने दो आनंद को भी और जाने दो झुंझलाहट को भी!
मगर तब महंगा सौदा हो जाएगा। वह रास्ता न हुआ, भटकना हो गया।
दूसरी बात--जो कि वस्तुतः रास्ते की बात है--वह है कि आनंद में और गहरे उतरो। इतने गहरे उतरो कि तुम्हारे पास झुंझलाने के लिए कोई शक्ति ही न बचे। सारी शक्ति आनंद में डुबा दो। झुंझलाहट के लिए भी शक्ति चाहिए।
तो अभी वीणा दो हिस्सों में बंटी होगी। कुछ हिस्सा झुंझलाहट में जा रहा है, कुछ हिस्सा आनंद में जा रहा है। पूरे-पूरे आनंद में चल पड़ो! पागल ही होना हो तो पूरे होना उचित है। छोड़ो लोकलाज! नाचो, गाओ, हंसो, रोओ! दूसरों की आंखों में मत देखो--अपने भीतर झांको। दूसरे क्या कहते हैं, इसकी फिकर छोड़ो। दूसरों के मंतव्य पर बहुत ध्यान दिया तो यह आनंद चूक जाएगा। क्योंकि दूसरे लोग दुखी हैं, उनके मंतव्य दुख से उठ रहे हैं। दूसरे लोग अंधे हैं, उनके मंतव्य उनके अंधेपन से उठ रहे हैं। अंधों की मत सुनना।
मीरा कहती हैः साध देख राजी भई, जगत देख रोई।
मीरा कहती हैः साधु को देखा तो राजी हो गई। हृदय आनंदित हुआ। क्योंकि साधु समझा, पहचाना। उसने जो कहा, वह पते की बात थी। सांसारिक समझा ही नहीं। उसने जो कहा, उससे चोट पहुंची। उसने जो कहा, उससे घाव बने।
रास्ता क्या है? रास्ता है कि अब झुंझलाहट की उपेक्षा करो। छोटी सी भी शक्ति न बचे आनंद के बाहर, सारा हृदय आनंद में डूब जाए। झुंझलाहट करने योग्य कुछ बचे ही न भीतर, तभी झुंझलाहट से वस्तुतः मुक्ति होगी। आनंद ही आनंद एक दिन शेष रह जाएगा।
आनंद का सहयोग करो, झुंझलाहट से असहयोग करो। यही रास्ता है। लौटने का उपाय भी नहीं है। जहां तक वीणा का संबंध है, मैं कह सकता हूंः लौटने का कोई उपाय भी नहीं है। लेकिन अगर झुंझलाहट को साथ दिया तो देर लग जाएगी परम घटना के घटने में, समय लंबा हो जाएगा। दो-दो नाव पर सवार मत होओ। अब पूरे ही एक नाव पर सवार हो जाओ।
आनंद की पूरी सुनने का मतलब यही होता है कि अब अपनी मस्ती में जीओ। अब दूसरे और कोई कारण इस मस्ती में बाधा न बनें। तुम डोल रहे मस्ती में, कोई खड़ा देख रहा है, उसकी वजह से रुको मत। पागल ही कहेगा न! क्या बनता-बिगड़ता है? क्या हर्जा है? लोग पागल ही समझ लें तो क्या हर्जा है? मीरा को उन्होंने दीवाना समझा, इससे मीरा की कोई हानि नहीं हुई। यह सोच कर कि लोग पागल समझते हैं, मीरा अगर समझदार हो गई होती तो चूक गई होती--सदा के लिए चूक गई होती।
तुम्हारे भीतर जो संसार की आवाज है, वही झुंझला रही है। और तुम्हारे भीतर जो परमात्मा की आवाज है, वह गीत गाना चाहती है, रोना चाहती है, हंसना चाहती है, नाचना चाहती है।
इस तन की वीणा बना लो। छेड़ो तारों को! गाओ! इधर तुम गाने लगे और तुम पाओगेः उधर परमात्मा करीब आने लगा। परमात्मा उन्हीं के साथ है जिनके हृदय गीत गाते हुए हैं।

दूसरा प्रश्नः जीवन के बंधनों से मुक्ति कैसे हो? आवागमन कैसे मिटे?

यह प्रश्न इसीलिए उठ आता है कि तुम सुनते हो संतों की वाणी। वे सभी कहते हैंः आवागमन से छूटो, मुक्त हो जाओ बंधनों से। उनकी बात सुन कर तुम भी सोचने लगते हो कि मुक्त हो जाएं बंधनों से, आवागमन से छूट जाएं। परम आनंद होगा। प्रभु का मिलन होगा। मोक्ष होगा। तुम्हारे भीतर वासना पैदा हो जाती है। संतों की बात सुन कर तुम्हारे भीतर मोक्ष के आनंद की वासना पैदा हो जाती है। यह एक नया बंधन हुआ। वासना बंधन है। यह एक नई तृष्णा हुई। तुम चूक गए बात। तुम संतों की बात नहीं समझे।
संतों की बात अगर ठीक से समझो तो यही समझ में आएगा कि जब तृष्णा न रह जाएगी, वासना न रह जाएगी, तब जो शेष रहेगा वह मोक्ष है। मोक्ष की कोई वासना नहीं हो सकती।
अब तुम पूछते होः "जीवन के बंधनों से मुक्ति कैसे हो?"

क्यों? क्या जरूरत पड़ी है? तुम कहोगेः मोक्ष का सुख पाना है। लेकिन सुख पाने की आकांक्षा ही तो बंधन है।
तुम कहते होः "आवागमन कैसे मिटे?"
क्यों? अमृत की उपलब्धि करनी है! लेकिन क्यों? तुम्हारे भीतर एक नई वासना का सूत्रपात हुआ। यह तो संसार का फैलाव है। चूक गए, ठीक-ठीक पकड़ नहीं पाए बात। और जिस ढंग से पकड़ी, उस ढंग से पकड़ने में ही सब गलत हो गया।
संत कुछ कहते हैं, तुम कुछ समझते हो। तुम्हारी व्याख्या विकृत कर देती है। बुद्ध ने कहाः वासनाओं से छूट जाओ। तो लोग उनसे जाकर पूछते हैं कि ठीक, चलो वासना ही से छूट जाएं। कैसे छूटें? अब यह नई वासना पैदा हो गई कि वासना से कैसे छूटें? अब यह सताएगी। अब यह प्राण में कांटे की तरह चुभेगी। अब यह घाव बनाएगी कि वासना से कैसे छूटें? यह एक नई वासना पैदा हो गई। और यह बड़ी खतरनाक वासना है। पहली वासनाएं तो ऐसी थीं कि शायद पूरी भी हो जातीं, लगे ही रहते धुन में तो हो ही जाती हैं। कोई धन के पीछे लगा ही रहे, लगा ही रहे, एक न एक दिन धन पा ही लेता है। फिर सिर पीटता है कि पा लिया, अब? वह दूसरी बात है। कोई पद के पीछे लगा ही रहे, लगा ही रहे, तो एक दिन पा ही लेता है।
इस संसार में सभी कुछ पाया जा सकता है। लेकिन यह निर्वासना कैसे पाई जाएगी? यह तो बिल्कुल नहीं पाई जा सकती। पाने की भाषा ही वहां गलत है। वहां तो समझ ही काम आती है, पाना काम नहीं आता। तुम वासनाओं को समझ लो कि उनमें कष्ट है। मेरे कहने से नहीं। मेरे कहने से समझे तो समझे नहीं। अपनी वासनाओं को ही अनुभव करो। तुम धन के पीछे दौड़-दौड़ कर कितना कष्ट पा रहे हो! फिर धन तुम्हें मिल भी गया, क्या मिला? देखो! निरीक्षण करो! जाग कर अपने जीवन की प्रक्रिया को समझो! अपने मन के ढांचे को पहचानो! जैसे-जैसे तुम्हें कष्ट साफ होने लगेगा, वैसे-वैसे ही तुम पाओगे कि तुम्हारी मुट्ठी संसार पर खुलने लगी। त्याग नहीं करना पड़ेगा--त्याग हो जाएगा। और यह बड़ी अलग बात है। इसलिए मैं कहता हूंः त्याग तो करना ही मत, क्योंकि त्याग करने का मतलब है कच्चा। त्याग हो जाए।
तुम हाथ में एक पत्थर लिए चल रहे थे, सोचते थे कि हीरा है, तो खूब मुट्ठी कस कर बांधी थी। फिर तुम्हें समझ में आना शुरू हुआ, जौहरियों के पास बैठे--जौहरि की गति जौहरि जाने--जौहरियों के पास बैठे, साधु-संग किया, पहचान आनी शुरू हुई, अपनी मुट्ठी का पत्थर गौर से देखने लगे, समझ में आया कि यह तो हीरा नहीं है। क्या तुम सोचते हो फिर मुट्ठी खोलने के लिए कोई आयोजन करना होगा? फिर मुट्ठी कैसे न बांधूं, यह तुम पूछने जाओगे? तुम किसी से कहोगे कि हे गुरुदेव, अब मुझे कुछ रास्ता बताएं कि इस पत्थर को कैसे छोडूं? यह तो बात ही अब व्यर्थ होगी। जिस दिन तुम्हें समझ में आ गया कि यह पत्थर है, कि कांच का टुकड़ा है, हीरा नहीं है--उसी क्षण मुट्ठी खुल जाएगी, खोलनी नहीं पड़ेगी। खोलने के लिए श्रम नहीं करना पड़ेगा। मुट्ठी खुल जाएगी, पत्थर हाथ से छूट जाएगा। छोड़ना पड़े, तो गलत। छूट जाए, ठीक।
फर्क समझ लेना, बारीक फर्क है। बाहर से जो देखेगा उसको तो कुछ फर्क नहीं दिखाई पड़ेगा। तुम छोड़ रहे हो कि छूट गया, बाहर से तो कुछ पता नहीं चलेगा। बाहर से तो दोनों एक से मालूम होंगेः मुट्ठी खुली, यह पत्थर गिरा। मगर तुम भीतर तो जान सकते हो, भेद बड़ा है। छोड़ा कि छूटा? जो छूटा तो मुक्ति हो गई। जो छोड़ा, फिर लौट आओगे। क्योंकि छोड़ने का मतलब ही यह होता हैः अभी दिखा न था कि पत्थर है। मन में तो अभी यही लगा था कि है तो हीरा। मगर अब ये साधु लोग कह रहे हैं कि पत्थर है। ये जौहरी कहते हैं कि पत्थर है, है तो हीरा। मैं तो पचास साल से जानता हूं कि हीरा है। लेकिन ये कहते हैं कि पत्थर है। शायद ठीक कहते हों। शायद मैं गलत होऊं।
लेकिन शायद! पक्का नहीं है। साफ नहीं हुआ है। तुम अभी जौहरी नहीं हो
गए हो। अभी तुम्हारी आंख में पहचान नहीं आई है। तो छोड़ना पड़ेगा। तो तुम उपाय करोगे, आसन लगाओगे, सिर के बल खड़े होओगे, माला जपोगे, दौड़ोगे, उछलोगे, कूदोगे--लाख उपाय करोगे कि कैसे इसको छोड़ दूं! और पकड़े हो और भीतर मन कह रहा है कि पता नहीं, कहीं धोखाधड़ी न हो जाए; हीरा हाथ लगा था, कहीं छूट न जाए! कभी-कभी छोड़ भी दोगे, फिर उठा लोगे। छोड़ कर दो कदम जाओगे, फिर लौट आओगे कि छोड़ो भी, किनकी बातों में पड़े हो! पता इनको भी न हो, कौन जाने! या कौन

जाने कि मैं इधर छोड़ कर जाऊं और साधु महाराज खुद उठा लें! कोई धोखाधड़ी हो! सिर्फ मुझे समझा रहे हों कि यह पत्थर है, सिर्फ इसलिए कि मैं छोड़ दूं! कौन जाने!
फिर उठा लेते हो। फिर-फिर उठा लेते हो।
कच्चा फल जैसे वृक्ष से अटका रहता है, ऐसे तुम अटके हो। जब फल पक जाता है, छूट जाता है, अपने से छूट जाता है। पका फल गिर जाता है, चुपचाप गिर जाता है।
तुमने पके पत्तों को गिरते देखा? कहीं कोई चोट नहीं लगती। वृक्ष पर कोई घाव नहीं छूटता। वृक्ष को पता ही नहीं चलता। वृक्ष हो सकता है अपनी शांति में डूबा हो; कब सूखा पत्ता गिर गया, वृक्ष को शायद महीनों बाद पता चले जब गौर से देखे कि कहां गया एक पत्ता, यहां हुआ करता था! वह तो अब तक मिट्टी में मिल चुका होगा। लेकिन कच्चा पत्ता जब तुम तोड़ते हो तो वृक्ष को चोट लगती है, घाव लगता है, रेखा छूट जाती है। जो पक जाता है, अपने से छूट जाता है।
तो मैं तुमसे कहूंगाः जीवन को छोड़ने की आकांक्षा मत करो। जीवन को समझो! मैं तुमसे यह नहीं कहताः हीरा छोड़ दो। मैं तुमसे यह कहता हूंः हीरा पहचानो! छोड़ने की जल्दी क्या है? जिस दिन पहचान तुम्हारी पूरी हो जाएगी, जिस दिन तुम जौहरी हो जाओगे, उस दिन तुम पूछने न जाओगे कि कैसे छोड़ दूं, छूट जाएगा। छोड़ने के लिए कोई आयोजन न करना पड़ेगा। इसी को मैं परम संन्यास कहता हूं--जो समझ से फलित हो। फिर तुम्हें घर से भागने की जरूरत नहीं है। घर में रहते घर छूट जाता है। पत्नी के पास बैठे-बैठे पत्नी विलीन हो जाती है। बेटे के पास बैठे-बैठे बेटा तुम्हारा नहीं रह जाता। मेरे का भाव विलीन हो जाता है। जहां मेरे का भाव गया, वहीं संसार गया।
तुम दूर-दूर से देख रहे हो। तुम्हें कुछ दिखाई पड़ रहा है। साधु पुरुष कुछ कह रहे हैं। साधु पुरुष पास खड़े हैं। उन्होंने अनुभव से देखा है। तुम्हारे और उनके अनुभव में मेल नहीं, इसलिए प्रश्न उठता हैः कैसे?
मैं नहीं चाहता कि तुम्हें कैसे बताऊं। कैसे बता-बता कर तुम्हें बहुत तकलीफ दे दी गई है। मैं चाहता हूं कि तुम्हें करीब लाऊं। इसलिए कहता हूंः जीवन से भागो मत। नहीं तो हिमालय की गुफा में बैठ कर तुम दुकान की ही बात सोचोगे। और बहुत-बहुत बार यह मन में विचार उठेगाः कहीं भूल तो नहीं कर दी? पता नहीं सुख वहीं हो! और हजार तर्क सिर उठाएंगे। हजार तर्क कहेंगे कि मैं यहां अकेला बैठा हिमालय पर, वहां अरबों लोग जी रहे हैं, अरबों लोग गलत हैं और मैं सही हूं? यह प्रश्न नहीं उठेगा? इतने लोग गलत हैं और केवल मैं सही हूं? यह कैसे हो सकता है?
फिर गुफा में बैठे-बैठे, सिर्फ गुफा में बैठने से कोई आनंद तो मिल नहीं जाता। गुफाएं सब गंदी हैं, हवा तक आने की सुविधा नहीं है। आनंद-वानंद की तो बात छोड़ो, शुद्ध हवा भी नहीं आती। वहां बैठे-बैठे कहां का आनंद? कहां का परमात्मा? थोड़े दिन में यह मन में उठने लगेगा कि अपने घर में थे, कम से कम शुद्ध हवा तो मिलती थी। अपने घर में थे, कभी-कभी उत्सव के क्षण भी आते थे। बेटे की कभी शादी हुई थी, तब मन प्रफुल्लित हुआ था। लाटरी जीत गए थे। क्षण भर ही टिका था, मगर आया था क्षण भर को! क्षण भर को उल्लसित हुए थे। यहां न लाटरी खुलती, न बेटे की शादी होती, न बैंड-बाजे बजते। यहां बैठे हैं खाली। कितनी देर खाली बैठे रहोगे? खाली तो बैठ नहीं सकते एक क्षण।
तो मन में सारा संसार चलेगा। बाहर से संसार छोड़ कर आ गए, मन में सारा संसार चलेगा। खूब जोर से चलेगा। अंधड़ उठेंगे! सब वासनाएं, दबी हुई पड़ी, टक्कर मारेंगी। और मन में बार-बार संदेह उठेगा कि मृत्यु के बाद जो मोक्ष है, पता नहीं हो या न हो! बुद्धिमानों ने कहा हैः हाथ की आधी रोटी मत छोड़ना, कल्पना की पूरी रोटी के लिए। और मैं यह आधी रोटी भी छोड़ कर आ गया, कल्पना की पूरी रोटी के लिए! अब यहां बीमार हो जाता हूं तो कोई देखभाल करने वाला नहीं। गांव रोज जाना पड़ता है भीख मांगने। अपने घर में था तो कम से कम भीख तो नहीं मांगनी पड़ती थी। जहां जाओ, वहीं लोग कह देते हैंः आगे बढ़ो! ऐसा अपमान सहना पड़ता है। दो-दो कौड़ी के लिए मोहताज हो गया हूं।
तुम जरा अपने साधु-संन्यासियों की मोहताजी तो देखो! और जो मोहताज है
वह गुलाम हो जाता है। तुम अपने साधु-संन्यासियों की गुलामी तो देखो! रोज

ऐसे अनुभव मुझे होते हैं। जैन साधु-साध्वियां मुझे मिलने आना चाहते हैं, लेकिन खबर भेजते हैं कि हम आ नहीं सकते, क्योंकि श्रावक आज्ञा नहीं देते। श्रावक आज्ञा नहीं देते! ये श्रावक कौन हैं? साधारणतः तो माना जाता है कि साधु महाराज नेता हैं और श्रावक अनुयायी हैं। श्रावक पैर छूते साधु महाराज के, सेवा को जाते हैं।... कहां जा रहे? साधु की सेवा को जा रहे हैं! चरण दबाते हैं। सिर रखते हैं चरणों पर। और यही श्रावक उनको आने नहीं देते! यह तो बड़ा मजा हुआ! कौन मालिक है, कौन गुलाम है--तय कैसे हो? ये श्रावक कहते हैंः जाना हो तो चले जाना, लेकिन फिर याद रखना! ... क्योंकि रोटी-रोजी, छप्पर तो श्रावक देता है।... फिर याद रखना, शोभायात्रा न निकालेंगे दुबारा। फिर आना गांव में, कोई स्वागत करने गांव के बाहर न आएगा।
ऐसा हुआ, मैं हैदराबाद में था। एक जैन मुनि को मेरी बात जंच गई। युवा
थे, अभी हिम्मत थी। तो उन्होंने छोड़ दिया मुनि-वेश। उन्होंने कहाः आप ठीक कहते हैं। मेरे मन में सारी वासनाएं तो चल ही रही हैं। कुछ भी गया नहीं है। तो क्या सार है! शायद आप ठीक कहते हैं कि मैं कच्चा छोड़ कर आ गया। अभी उम्र भी ज्यादा नहीं थी, कोई तीस साल उम्र थी। और दस साल हो गए थे उनको मुनि हुए। हिम्मतवर थे, अभी जवान थे। हिम्मत की कि ठीक है, मेरा मन तो अभी यहां लगता नहीं, यहां मुझे कुछ मिलता भी नहीं। दस साल देख लिया। और जो संसार है वह मुझे अभी खींच रहा है, तो शायद आप ठीक कहते हैं, मैं कच्चा टूट गया। मैं पकूंगा। फिर जब सौभाग्य का क्षण आएगा, सहज संन्यास फलित होगा, तो ठीक है। यह आदमी ईमानदार था, प्रामाणिक था। लेकिन जैन समाज तो बहुत नाराज हो गया। इस आदमी के पैर छूते थे, वे इस आदमी को मारने को तैयार हो गए! कहते हैं अहिंसक हैं, मगर कहां कौन अहिंसक है! पानी छान कर पीते हैं, खून बिना छाने पी जाते हैं। वे तो मारने को... क्योंकि उनको तो यह भारी सदमा हो गया, उनका मुनि और छोड़ कर चला गया!
मैं एक सभा में बोलने गया था। जैनों की ही सभा थी। वे मुनि भी मेरे साथ
आ गए। अब तो वे मुनि नहीं थे। तो एक आदमी ने उनको नमस्कार नहीं किया। यह तो बात चलो ठीक है, लेकिन वे मंच पर मेरे साथ बैठ गए, तो मेरे पास चिट्ठियां आने लगीं कि इनको मंच से नीचे उतारिए। मैंने उनसे कहाः भई, मैं मुनि तुम्हारा नहीं हूं, मैं मंच पर बैठा। तो ये तो बेचारे कभी तो मुनि थे, भूतपूर्व सही! भूतपूर्व मंत्री भी आता है तो भी आदमी इज्जत करता है। ये भूतपूर्व मुनि हैं, तुम्हारे ही मुनि हैं।
मगर उन्होंने कहा कि जब तक ये नीचे न उतरेंगे, सभा आगे न बढ़ेगी। बड़ा शोरगुल मचाने लगे। लोग उठ कर खड़े हो गए। मुझे यह लगा कि वे उनको खींच कर ही उतार लेंगे। मंच घेर लिया। मैंने उन मुनि महाराज से कहा कि अब तुमने मुनि- व्रत भी छोड़ दिया, अब तुम यह मंच का भी थोड़ा मोह छोड़ो। यह झंझट फिजूल की हो रही है। अब मुनि ही जब न रहे, तो अब मंच भी जाने दो।
मगर वे भी जिद्दी! जिद्दी न होते तो वे मुनि ही कैसे हुए होते! वे भी छोड़ने को राजी नहीं, क्योंकि वह भी प्रतिष्ठा का सवाल कि मंच कैसे छोड़ दें! और वह जनता भी अहिंसकों की! ... मगर वह इस तरह खूनी आंख कि उनको मार डालें! आखिर सिवाय इसके कोई रास्ता नहीं था कि मैं मंच से उतर कर चला गया। जब मैं उतर गया तो मुनि महाराज मेरे पीछे उतर गए। वह सभा नहीं हो सकी। और उनको हैदराबाद छुड़वा कर रहे लोग। वही लोग जो पैर छूते थे, मंच पर न बैठने देंगे। तो कौन किसका मालिक है? तुम जिनको मुनि कहते हो, जिनको त्यागी कहते हो, साधु कहते हो--वे तुम्हारे गुलाम हैं। वे तुम पर निर्भर हैं। तुम जैसा चलाते हो, वैसे चलते हैं। तुम जहां बिठाते हो, वैसे बैठते हैं। तुम जो करवाते हो, वैसा करते हैं। कठपुतलियां हैं। जब तुम साधु हो जाओगे-- जबरदस्ती के साधु--तब तुमको पता चलेगा कि तुमने एक और बड़ी गुलामी ले ली। पहले कम से कम गुलामी थी--पत्नी थी, बच्चे थे, थोड़ा सा परिवार था--अब यह पूरी भीड़ के तुम गुलाम हो गए। स्वतंत्रता खो गई। और जिसकी स्वतंत्रता खो जाए, वह मोक्ष कैसे पाएगा? स्वतंत्रता तक न रही, तो परम स्वतंत्रता तो कैसे मिलेगी? परम स्वतंत्रता की तरफ जाना हो तो स्वतंत्रता को बढ़ना चाहिए, तो ही पहुंच पाओगे।
तो मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम छोड़ कर भाग जाओ। मैं नहीं तुम्हें कोई विधि बताता कि कैसे आवागमन से मुक्ति हो। मैं इतना ही बताना चाहता हूं कि

कैसे तुम समझो कि आवागमन हो रहा है। कैसे हो रहा है, संसार कैसे बन रहा है, तुम्हारा चित्त कैसे संसार को निर्मित करता है--इसे पूरी तरह देख लो, पहचान लो भर आंख। उसी भरी आंख में छुटकारा है!
यहां से शहर को देखो तो हल्का-दर-हल्का
खिंची है जेल की सूरत हर एक सिम्त फसील
हर एक रहगुजर गर्दिशे-असीरां है
न संगे-मील, न मंजिल, न मुख्लिसी की सबील
जो कोई तेज चले राह तो पूछता है ख्याल
कि टोकने कोई ललकार क्यों नहीं आई?
जो कोई हाथ हिलाए तो वहम को है सवाल कोई छनक, कोई झंकार क्यों नहीं आई? यहां से शहर को देखो तो सारी खल्कत में न कोई साहिबे-तमकीं, न कोई वाली-ए-होश
हर एक मर्दे-जवां मुजरिम-रसन-ब-गुलू
हर एक हसीना-ए-रोना कनीज हल्का-ब-गोश
जो साये दूर चिरागों के गिर्द लर्जा हैं
न जाने महफिले-गम है कि बज्मे-जाम-ओ-सुबू
जो रंग हर दरो-दीवार पर परीशां है
यहां से कुछ नहीं खुलता, ये फूल हैं कि लहू
दूर से देख रहे हो--बड़ी दूर से देख रहे हो! पक्का नहीं होता कि वह जो दीवार पर दिखाई पड़ते लाल धब्बे हैं, वे फूल हैं कि लहू! और यह संसार एक कारागृह जैसा है।
यहां से शहर को देखो तो हल्का-दर-हल्का,
पेंच-दर-पेंच!
खिंची है जेल की सूरत हर एक सिम्त फसील
सब ओर दीवालें बनी हैं। हर तरफ दीवालें खड़ी हैं। हर तरफ कारागृह हैं। जिसको तुम सांसारिक कहते हो, वह कारागृह में है; और जिसको तुम संन्यासी कहते रहे हो, वह भी कारागृह में है। सबके कारागृह हैं--अपने-अपने कारागृह हैं।
खिंची है जेल की सूरत हर एक सिम्त फसील
हर एक रहगुजर गर्दिशे-असीरां है
जेलखाने कभी गए? तो वहां जेल में एक बीच में चक्कर होता है, जिनमें कैदियों को चलने की सुविधा होती है। जैसे कोल्हू का बैल चलता है, ऐसे वे गोल चक्कर में थोड़ी देर घूम सकते हैं।
हर एक रहगुजर गर्दिशे-असीरां है
और यहां सब रास्ते संसार के, बस जेल में जो चक्कर रास्ता होता है, जिस
पर कैदी थोड़ी देर घूम सकते हैं, इस तरह की राहें हैं यहां।
न संगे-मील, न मंजिल, न मुख्लिसी की सबील
न तो मुक्ति की कोई संभावना दिखती है, न कोई मंजिल का आसार। मंजिल तो दूर, राह के किनारे पत्थर भी नहीं लगे हैं कि कितनी दूर आ गए, मंजिल कितनी और दूर है!
जो कोई तेज चले राह तो पूछता है ख्याल
कि टोकने कोई ललकार क्यों नहीं आई?
कैदी जब चलता है तो अगर जरा तेज चलने लगे तो मन में ख्याल उठने लगता है
कि कोई टोकने ललकार क्यों नहीं आई? क्योंकि पीछे ललकार सदा खड़ी है-- सुप्रिंटेंडेंट खड़े हैं, पुलिसवाले खड़े हैं। तेज नहीं चल सकते।
जो कोई तेज चले राह तो पूछता है ख्याल
कि टोकने कोई ललकार क्यों नहीं आई?
जो कोई हाथ हिलाए तो वहम को है सवाल
कोई छनक, कोई झंकार क्यों नहीं आई?
अगर कोई हाथ हिलाए तो जेलखाने में तो एक ही आभूषण होता है--जंजीरें।
जब कोई हाथ हिलाए तो जंजीरों में खनक होती है।
जो कोई हाथ हिलाए तो वहम को है सवाल
कोई छनक, कोई झंकार क्यों नहीं आई?

यहां से शहर को देखो तो सारी खल्कत में
न कोई साहिबे-तमकीं, न कोई वाली-ए-होश
यहां से अगर दुनिया को खड़े होकर देखो, जरा ऊंचाई से, तो न तो कोई दिखता
है सहनशील, न कोई संतुष्ट, न कोई आनंदित, न कोई होश वाला।
न कोई साहिबे-तमकीं न कोई वाली-ए-होश
हर एक मर्दे-जवां मुजरिम रसन-ब-गुलू
सभी रस्सी में पिरोए हुए फूल की तरह हैं। एक तो फूल होता है वृक्ष पर
और एक फूल होता है गजरे में पिरोया हुआ। धागा दिखाई भी नहीं पड़ता; छुपा होता है। लेकिन फूल गुलाम हो गया।
तुम्हारे धागे भी दिखाई नहीं पड़ते। तुम्हारे हाथ की जंजीरें अदृश्य हैं, लेकिन हैं। और यह मत सोचना कि तुम्हारे ऊपर जंजीरें हैं, तुम्हारे मुनि पर नहीं हैं। कारागृह में बसे हुए लोगों का जो मुनि होगा, कैदियों का जो गुरु होगा, वह भी कैदी ही होने वाला है। बहुत कठिनाई है; वह भी बच नहीं सकता। जैन मुनि जैन कारागृह में बंद, हिंदू संन्यासी हिंदू कारागृह में बंद, मुसलमान फकीर मुसलमान कारागृह में बंद। अलग-अलग कारागृह हैं। इस जमीन पर जितने धर्म हैं, उतने कारागृह हैं।
हर एक हसीना-ए-रोना कनीज हल्का-ब-गोश
और हर सुंदरतम स्त्री भी यहां गुलाम है, दासी है। जवान से जवान, शक्तिशाली से शक्तिशाली पुरुष भी धागे में पिरोया हुआ फूल है। और सुंदर से सुंदर स्त्री भी यहां दासी है।
जो साये दूर चिरागों के गिर्द लर्जा हैं
और दूर चिराग हैं और उनके पास जो दिखाई पड़ रहा है।
न जाने महफिले-गम है कि बज्मे-जाम-ओ-सुबू
पता नहीं, वहां बैठ कर लोग रो रहे हैं, दुखी हो रहे हैं; कोई मर गया, मातम मना रहे हैं; या शराब ढाली जा रही है, लोग मस्त हो रहे हैं। दूर से कुछ राज नहीं खुलता। दूर से दीया जलता है; पास बैठी हुई तस्वीरें मालूम पड़ती हैं, छायाएं मालूम पड़ती हैं।
जो साये दूर चिरागों के गिर्द लर्जा हैं
न जाने महफिले-गम है कि बज्मे-जाम-ओ-सुबू
जो रंग हर दरो-दीवार पर परीशां है
यहां से कुछ नहीं खुलता, ये फूल हैं कि लहू
दूर से कुछ राज नहीं खुलता। मैं तुमसे कहूंगाः पास आओ।
इसलिए कहता हूंः संसार से भागो मत। संसार के पास आओ। संसार को आंख गड़ा
कर देखो। संसार को पहचानो। उसी पहचान में छुटकारा है। उसी पहचान में मुक्ति है।
ज्ञान मुक्ति है। ज्ञान के अतिरिक्त और कोई मुक्ति नहीं है।
कौन सी चीज तुम्हें बांधे है? क्यों बांधे है? उसे पास से देखो, गौर से देखो। छूटने की जल्दी न करो। छूटने की जल्दी में देख ही न पाओगे। भागने की उत्सुकता मत रखो। क्योंकि भगोड़ा कैसे समझ पाएगा? और शत्रुता पहले से ही तय मत कर लो। नहीं तो पक्षपात पहले से ही तय कर लिया, तो दुश्मन को कोई भर आंख थोड़े ही देखता है!
इसलिए चाहता हूं कि तुम शास्त्रों से मुक्त हो जाओ, शब्दों से मुक्त
हो जाओ, सिद्धांतों से मुक्त हो जाओ। समझो कि तुम पहले आदमी हो जमीन पर; तुम्हें कुछ पता नहीं कि पहले लोगों ने क्या कहा है।
चीन में एक सम्राट हुआ--अदभुत सम्राट था! सी-हुआंग उसका नाम था। उसी ने चीन की बड़ी दीवाल बनाई। और उसी ने एक और बड़ा काम किया--इससे भी बड़ा काम किया। उसने बड़ा काम यह किया कि सारे पुराने शास्त्र और पुरानी किताबों को जलवा दिया, घर-घर खोज करवा कर। और जिन लोगों ने बचाने की कोशिश की, उन्हीं को दीवाल पर काम पर लगा दिया, उन्हीं ने दीवाल बनाई। जिन्होंने बचाने की कोशिश की किताबें, उनको कहा कि फिर दीवाल! और चूंकि लोगों का मोह बहुत है अतीत से, तो लाखों लोग मिल गए, फंस गए उस जाल में। दोनों काम एक साथ करवा लिए। यह दीवाल बनवा ली, क्योंकि जो भी इसमें फंस गया, एक सीमा बना रखी थी उसने कि इतने दिन के भीतर सारी किताबें समाप्त हो जानी चाहिए।

क्यों हुआंग को यह ख्याल आया कि सारी किताबें समाप्त हो जानी चाहिए? क्योंकि हुआंग ने देखा कि इन्हीं किताबों के कारण लोगों की आंखें देखने में समर्थ नहीं हैं। बड़ी हिम्मत का कदम था। उसने चाहा कि आदमी अतीत से मुक्त हो जाए; उसके पास कोई पक्षपात न रहें; आदमी के मन में कोई सिद्धांत, धारणाएं न रहें--ताकि वह जिंदगी को जैसा है वैसा ही देख सके।
लेकिन फिर भी लोगों ने किताबें बचा लीं। लोगों ने छिपा लीं। कोई अपनी किताब आसानी से नहीं छोड़ता। किताब में तुम्हारे प्राण हैं। वहीं तुम्हारा ज्ञान है। तुममें खुद तो ज्ञान है नहीं, किताब में तुम्हारा ज्ञान है। किताब को छोड़ कर लगता है कि अज्ञानी हो गए। अज्ञानी तुम हो ही, किताब कैसे तुम्हें ज्ञान दे देगी? किताबों से कहीं ज्ञान मिला है? पाकशास्त्र से पेट तो नहीं भरता। और जल कैसे बनता है, इसका सूत्रः एच टू ओ, इसको तुम कागज में लिख कर और गटक जाओ, तो प्यास नहीं बुझती। "आग" शब्द में कहां आग है? "परमात्मा" शब्द में भी परमात्मा नहीं। अनुभव में--जीवंत अनुभव में!
तो हुआंग ने सारी किताबें हटवा दीं और चाहा कि लोग फिर सरल हो जाएं, निर्दोष हो जाएं, आदिम हो जाएं।
मैं तुमसे नहीं कहता कि किताबें जला दो। क्योंकि जलाने से क्या होगा, अगर मन में आग्रह बना रहा? हुआंग सफल नहीं हुआ। लोगों ने एक तो किताबें बचा लीं। और जिन्होंने नहीं बचाईं, उन्होंने भी जलाने के पहले कंठस्थ कर लीं। किताब छीन लोगे, कंठस्थ कैसे छीनोगे? याद कर लीं, रटवा दीं। फिर बच गईं। हुआंग तो मर गया, फिर किताबें वापस लिख दी गईं। फिर किताबें अपने- अपने तलघरों से निकल आईं, फिर प्रकट हो गईं। आदमी का अतीत के प्रति बड़ा मोह है। और अतीत के मोह के कारण ही आदमी वर्तमान से वंचित होता है।
तुमसे किसने कहा कि संसार बुरा है? मैं नहीं कहता कि भला है। मैं नहीं कहता कि बुरा है। मैं कहता हूंः तुम जानो। तुम पहचानो। संसार परमात्मा ने दिया है, होश सम्हालो, कुछ प्रयोजन होगा इस देने में, ठीक भर आंख देख लो-- क्या है संसार? क्या है इसका राज?
उसी राज के जानने में तुम पाओगे कि हाथ से जंजीरें गिर गईं, तुम मुक्त
हो गए।
ज्ञान मुक्ति है। और सत्य मुक्तिदाता है, शास्त्र नहीं।

तीसरा प्रश्नः आप जब गांधी, विनोबा, अरविंद और विवेकानंद के विरोध में बोलते हैं तो मुझे रंज होता है। वैसे ही जब कोई आपके विरोध में बोलता है तो भी मुझे रंज होता है। विनती है कि जैसे आप बुद्ध और महावीर को समझाने में सहायक होते हैं, वैसे ही श्री अरविंद को समझाने में सहायक हों!

पहली बातः तुम्हें जिस बात में रंज न हो, वह मैं कहूं, तो मुझे निरंतर झूठ ही झूठ बोलना पड़े। फिर सच बोला नहीं जा सकता। सच तो चोट करता है। सच तो कड़वा है। झूठ बड़े मीठे हैं। झूठ को मीठा होना ही पड़ता है, नहीं तो कौन गले उतारेगा? झूठ के चारों तरफ शक्कर लगानी पड़ती है।
जहर भरी गोली तुम्हें खिलाते हैं तो उसके ऊपर शक्कर लगा देते हैं। उस बीच, शक्कर घुले-घुले, तब तक गले से उतर जाती है।
अगर मैं यह ध्यान रखूं कि तुम्हें रंज न हो, तब तो कठिन हो जाएगा; तब तो मैं तुम्हें कोई सहारा न दे पाऊंगा। तुम्हें बदल भी न पाऊंगा। तब तो मेरा बोलना व्यर्थ है, समझाना व्यर्थ है।
यह तो ऐसे ही हुआ कि तुम डाक्टर के पास जाकर कहो कि जब आप मेरे घाव को धोते हैं तो मुझे बड़ी तकलीफ होती है; और जब आप मेरे घाव से मवाद निकालते हैं तो मुझे बड़ी पीड़ा होती है; इसलिए तो मैं आया नहीं था आपके पास कि आप मुझे पीड़ा दें; मुझे सुख दें! डाक्टर वही कर रहा है--मवाद निकल जाए, घाव साफ हो जाए, तो भर जाए। भर जाए तो सुख हो। तुम अभी सुख चाहते हो! तो फिर किसी धोखेबाज डाक्टर के पास जाना पड़ेगा। वह मवाद भी नहीं निकालेगा, वह घाव धोएगा भी नहीं, ऊपर सुंदर पट्टी बांध देगा और राम-राम लिख देगा। राम-नाम की चदरिया ओढ़ा दी, मजा करो, आनंद से रहो। आशीर्वाद दे देगा। और तुम बड़े प्रसन्न घर लौट आओगे।

लेकिन वह जो मवाद भीतर पड़ी रह गई, वह बढ़ेगी। इस जगत में कोई चीज रुकती नहीं, हर चीज बढ़ती है। बढ़ाव इस जगत का नियम है। गलत को काट कर न फेंक दिया तो बढ़ता रहेगा। धीरे-धीरे नासूर बनेगा। और अगर तुम ऐसी ही तलाश में रहे, कि ऐसे ही आदमियों के पास गए जो मलहम-पट्टी बढ़ाते जाएं ऊपर-ऊपर, जो घाव को ढांकते जाएं--तो नासूर एक दिन कैंसर बनेगा। ऐसे ही तो लोग सड़ गए हैं। लोग लाशें हैं।
तुम जो पूछ रहे हो, इसी कारण से। लोग मुर्दा हैं। लोगों ने जीवन नहीं जाना। जीवन जानने के लिए थोड़ी तो चोट खाने की हिम्मत करनी होती है। जीवन सीखने के लिए भी चोट खानी पड़ती है। छोटा बच्चा चलना शुरू करता है तो कितनी बार गिरता है! घुटने तोड़ लेता है। खून निकल आता है। चमड़ी छिल जाती है। सोच ले बच्चा कि इसमें तो चोट लगती है चलने में, इससे तो अपना घुटने के बल ही सरकना बेहतर, उसमें कभी चोट नहीं लगती--तो फिर कोई बच्चा कभी चले नहीं। फिर यहां जमीनों पर सरकते हुए लंगड़े-लूले लोग हों।
धर्म की दुनिया में तुम ऐसे ही लंगड़े-लूले हो, क्योंकि वहां तुम चलने
की हिम्मत नहीं कर पाते।
अब तुम जरा सोचते नहीं कि तुमने क्या पूछा है। तुम्हारा अरविंद से मोह है। यहां इतने लोग बैठे हैं--पांच सौ लोग यहां हैं। इन पांच सौ के अलग-अलग मोह हैं। तुम चाहते हो मैं इन सबको प्रसन्न करता रहूं? इनमें से कोई कम्युनिस्ट है, उसका मार्क्स से मोह है; वह कहता हैः मार्क्स के खिलाफ मत बोलना। इनमें से कोई नास्तिक है, उसको चार्वाक से लगाव है; वह कहता हैः चार्वाक के खिलाफ मत बोलना। इनमें से कोई बौद्ध है, कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई यहूदी है। इनमें से कोई फ्रायड को मानता है। इनमें से कोई नीत्शे को मानता है। यहां इतने तरह के लोग हैं। अगर मैं इस बात की फिकर करूं कि यहां किसी को रंज न हो, तो तुम सोचते हो, एक भी शब्द बोल पाऊंगा? मौन ही रहना पड़ेगा। लेकिन कई ऐसे होंगे, जिनको मौन से दुख होगा। फिर क्या करना? जो कहेंगेः हमें मौन से रंज होता है, आप चुप क्यों हो गए? बोलिए!
फिर मेरा क्या कसूर? तुम्हारे लगाव तुम्हारे लगाव हैं। तुम्हें अरविंद पसंद हैं, यहां मत आओ। तुम्हें मैं पसंद हूं तो कीमत चुकाओ। मैंने तुमसे कहा नहीं कि तुम यहां आओ। तुम्हें जहां सत्य के दर्शन होते हों वहां जाओ। लेकिन तुम हो बेईमान। तुम सब नावों पर इकट्ठे सवार रहना चाहते हो। मुल्ला नसरुद्दीन जब मरने के करीब हुआ तो उसने पहले अल्लाह की बड़ी स्तुति की कि हे परमपिता! हे अल्लाह! हे करुणावान! हे रहमान-रहीम! जब प्रार्थना पूरी कर दी, तब दूसरी तरफ करवट बदली और कहा कि हे प्रभु, हे शैतान। तू महान है! तू करुणावान है!
उसकी पत्नी ने कहाः आपका दिमाग तो खराब नहीं हो गया?
उसने कहा कि सभी को राजी रखना ठीक है। मरने के बाद किससे मिलना हो, क्या पता! भगवान को भी कह दिए खुशी की दो बातें, शैतान को भी कहे देते हैं। कहां जाना होगा, कौन मिलना होगा, कौन के चक्कर में पड़ेंगे--अभी से कुछ पक्का तो है नहीं। दोनों नाव पर सवार रहना ठीक है।
यह कुशल, होशियार आदमी का लक्षण है।
अगर तुम मुझे समझे तो उसी समझने में अरविंद गलत हो जाएंगे। अगर तुम मुझे समझे तो उसी समझने में गांधी, विनोबा और विवेकानंद गलत हो जाएंगे।
मैं कहूं या न कहूं, मेरे कहने न कहने की बात नहीं है।
और तुम चाहते हो कि मैं जैसे बुद्ध और महावीर को समझाता हूं, ऐसे ही गांधी, विनोबा को समझाऊं।
गांधी, विनोबा राजनीतिज्ञ हैं। महावीर और बुद्ध से इनका क्या लेना- देना? कुशल राजनीतिज्ञ हैं!
तुम चाहते हो कि अरविंद और विवेकानंद को भी इसी तरह समझाऊं।
अरविंद गांधी से थोड़े बेहतर हैं--आधे राजनीतिज्ञ हैं। विवेकानंद और थोड़े बेहतर हैं--एक चौथाई राजनीतिज्ञ। विवेकानंद की राजनीति तुम्हें समझ में न आएगी, क्योंकि वह राजनीति धर्म की आड़ में है। वह हिंदुत्व का प्रचार है। वह हिंदू-अहंकार की प्रतिष्ठा है। इसलिए हिंदुओं को प्रीतिकर लगते

हैं विवेकानंद, क्योंकि हिंदू-अहंकार की प्रतिष्ठा है। लेकिन विवेकानंद समाधिस्थ नहीं हैं, न अरविंद हैं, न गांधी-विनोबा हैं।
अगर बुद्ध और महावीर को मैं समझाता हूं, तो बुद्ध और महावीर के कारण नहीं, समाधि के कारण। तो पतंजलि को भी समझाता हूं। कबीर को भी समझाता हूं। मीरा को भी समझाता हूं। जीसस को भी समझाता हूं। लाओत्से को भी समझाता हूं। जिन-जिन ने समाधि को उपलब्ध किया है, किसी ढंग से किया हो, उनकी समाधि के प्रति मेरे मन में बड़ा समादर है। लेकिन जिन्होंने समाधि को उपलब्ध नहीं किया है, उनको मैं नहीं समझा सकता। तुम्हें उनकी बात अच्छी लगती हो तो मैं तुम्हें रोकता नहीं, क्योंकि मैं किसी को रोकना नहीं चाहता यहां। तुम्हें उनकी बात अच्छी लगती हो, तुम उनके मार्ग पर जाओ। और तुम्हें मेरी बात ठीक लगती हो तो फिर ठीक-ठीक चुनाव कर लो।
तुम कहते होः "आप जब गांधी, विनोबा, अरविंद और विवेकानंद के विरोध में बोलते हैं तो मुझे रंज होता है।"
तो कुछ ऐसा करो कि रंज न हो। तुम मुझे बदलना चाहते हो? रंज तुम्हें होता है, मुझे बिल्कुल रंज नहीं होता। मुझे रंज होता तो मैं ऐसी बात बोलता ही नहीं। रंज तुम्हें होता है। तो अपने भीतर तलाशो कि रंज का क्या कारण होगा। तुम्हारे अहंकार ने संबंध बना लिए होंगे। तुम्हारे अहंकार ने नाते- रिश्ते बना लिए होंगे।
गांधी से तुम्हें क्या लेना-देना है? गोडसे ने गांधी को गोली मार दी, तुमने आत्महत्या नहीं कर ली! तुम एकदम छलांग लगा कर कुएं में नहीं गिर गए कि अब क्या जीना! तुम्हें गांधी से क्या लेना-देना? हां, लेकिन तुमने कुछ लगाव बना लिए हैं। तुम्हारे लगाव से तुम्हें लगाव है। तुम कहते हो कि गांधी के कुछ खिलाफ कहा गया तो तुम्हारे खिलाफ हो गया। हो सकता है तुम खादी पहनते होओ, कि चरखा चलाते होओ, या और तरह की कोई नासमझी करते होओ। या हो सकता है एकाध बार जेल गए होओ; स्वतंत्रता के आंदोलन में सम्मिलित हुए होओ। तुम्हारा अहंकार गांधी के नाम के साथ जुड़ा है। तुम्हें डर लगता है कि अगर गांधी गलत हैं तो तुमने जो गांधी के साथ किया होगा या सोचा होगा कि कर रहे हो, वह गलत हो गया। तुम्हारी हिम्मत इतनी नहीं कि तुम उस बात को देख पाओ।
और तुम कहते होः "आपके खिलाफ भी जब कोई बोलता है तो मुझे रंज होता है।"
वह रंज भी वही है। उसमें कुछ भेद नहीं है। हो सकता है कि तुम मानते होओ
कि तुम मेरे अनुयायी हो या मेरे शिष्य हो या मेरे साथ हो। और फिर कोई मेरे खिलाफ बोलता है तो तुम्हें चोट लगती है। चोट यह नहीं लगती कि मेरे खिलाफ बोलता है। मुझसे तुम्हें क्या लेना-देना? चोट यह लगती है कि तुम जिसके पीछे चल रहे हो, तुम जैसा समझदार आदमी जिसके पीछे चल रहा है, वह गलत कैसे हो सकता है? वह गलत तो तुम गलत हो जाते हो, इसलिए चोट लगती है।
इस बात को ठीक से पहचान लो। ये सब अहंकार को लगी चोटें हैं। और अहंकार
को जाने दो, अन्यथा अहंकार पर तो चोटें लगती ही रहेंगी। अहंकार तो घाव है।
उसमें तो जरा सी चीज लग जाती है तो पीड़ा होती है। यह सब अहंकार है।
कोई कह देता है--गीता में क्या रखा है? तुम एकदम गुस्से में आ जाते हो।
इसलिए नहीं कि तुम्हें कृष्ण से कुछ लेना-देना है, कि गीता में कुछ रखा है।
तुम्हें भी कुछ नहीं रखा है। लेकिन--गीता में क्या रखा है? --तुम्हें चोट लग जाती है। तुम हिंदू, गीता तुम्हारी किताब! अगर गीता में कुछ नहीं रखा तो तुममें क्या रखा है--यह घबड़ाहट पैदा होती है। तो गीता को बचाना पड़ेगा। गीता के पीछे तुम भी बच जाते हो।
तो इसी तरह तो लोग प्रकारांतर से अहंकार भरते हैं। भारत पुण्यभूमि! क्योंकि आप यहां पैदा हुए हैं! बड़ी आपकी कृपा! हिंदू धर्म दुनिया का श्रेष्ठतम धर्म! क्योंकि आप हिंदू हैं! आप मुसलमान होते तो? तो इस्लाम होता दुनिया का श्रेष्ठतम धर्म। वेद दुनिया की सबसे पुरानी किताब! क्योंकि आप हिंदू हैं! अगर जैन होते तो वेद दो कौड़ी का; तो जैन धर्म दुनिया का सबसे पुराना धर्म है, सबसे महान धर्म है।
जरा गौर से देखो! तुम किस बात की घोषणा कर रहे हो? हिंदू धर्म बड़ा! भारतवर्ष बड़ा! किस बात की घोषणा कर रहे हो? ये बचकानी बातें हैं। जैसे छोटा बच्चा कहता है कि मेरे पिताजी तुम्हारे पिताजी को दो मिनट में चारों

खाने चित्त कर दें। मेरे पिताजी! झगड़ा हो जाता है इस पर, मार-पीट हो जाती है इस पर बच्चों में कि कौन के पिताजी किसको चित्त कर सकते हैं।
एक बच्चा किसी से कह रहा था कि मेरी मां, कोई भी विषय दे दो, घंटों बोल सकती है।
दूसरा बोलाः यह कुछ भी नहीं, मेरी मां बिना विषय के घंटों बोल सकती है।
अकड़ें हैं! आदमी सब तरफ से अपनी अकड़ को सहारा दे रहा है।
कोई मेरे खिलाफ बोल देता है, तुम्हें चोट लगती है। चोट इसलिए नहीं लगती कि तुम्हें मुझसे कुछ लेना-देना है। चोट इसलिए लगती है कि तुम मुझे सुनने आते हो। अगर यह आदमी सही कह रहा है, तो फिर अब तुम कैसे सुनने आओगे? और सुनने आओगे तो तुम नासमझ हो, गलत आदमी को सुनने जा रहे हो! तुम जैसा सही आदमी गलत आदमी को सुनने जा रहा है! तो तुम्हें खुद सही रहने के लिए, जिसको तुम सुनने जाते हो, उसको भी सही रहना पड़ेगा, इसलिए तुम विवाद करते हो। समझो, क्यों चोट लगती है? और उस चोट के मूल कारण से अपने को मुक्त कर लो--अहंकार से। फिर कोई चोट न लगेगी। फिर मेरे खिलाफ कोई बोले, तो भी तुम शांति से सुनोगे। हो सकता है, यह आदमी ठीक कह रहा हो, इसको शांति से सुनना चाहिए, समझना चाहिए। अगर तुम्हारे मन में मेरा कोई भी मूल्य है, तो जो मेरे खिलाफ बोलता है उसका भी तुम्हारे मन में मूल्य होगा। चोट नहीं लगेगी। तुम उससे और भी खोद-खोद कर समझना चाहोगे कि बात पूरी समझ लेनी चाहिए, क्योंकि जीवन का निर्णय इन बातों पर निर्भर है। तुम उस आदमी के पीछे लग जाओगे। तुम कहोगेः और समझाओ। सब बातें बताओ जो-जो खिलाफत की हैं, ताकि मैं भी पुनः विचार कर सकूं। हो सकता है तुम सही होओ। क्योंकि मैंने सही होने का कोई ठेका नहीं ले लिया है। मैं ही सही होऊं, यह क्या जरूरी है? तुम भी सही हो सकते हो। तो मुझे सारी बातें कहो, खोल कर कहो, ब्योरे से कहो। एक-एक बात का तर्क स्पष्ट करो। मैं तुम्हारी बात हृदयपूर्वक सुनूंगा, ताकि मैं पुनः निर्णय ले सकूं।
और अगर तुमने मेरी बात समझी है तो विरोधी की बात को सुन कर मेरी बात के संबंध में तुम्हारी समझ और गहरी होगी, कम नहीं होगी। क्यों कम होगी? या तो विरोधी सही कह रहा है, तो तुम मुझे छोड़ दोगे, तब भी अच्छा हुआ। तुम्हें जो सही लगा, उसके साथ गए। या तो विरोधी गलत ही कह रहा है, तो उसकी सारी बातें सुन कर मेरी बातें तुम्हें और सही लगने लगेंगी, जितनी सही कभी भी न लगी थीं।
लेकिन इसकी तुम्हें फिकर नहीं है।
तुम कहते हो कि "मुझे रंज होता है, इसलिए विनती है कि जैसे आप बुद्ध और महावीर को समझाने में सहायक होते हैं, वैसे ही श्री अरविंद को समझाने में सहायक हों!"
एक बात। मैं बुद्ध और महावीर को समझाने में सहायक नहीं हो रहा हूं। मैं अपने को समझा रहा हूं; बुद्ध और महावीर उसमें सहायक होते हैं। तुम ठीक से समझ लेना। मैं कोई मीरा को समझाने में सहायक नहीं हो रहा हूं। मेरा क्या लेना-देना? मैं अपने को समझा रहा हूं। उसमें मीरा सहायक होती है, इसलिए मीरा का उपयोग कर लेता हूं। अरविंद उसमें सहायक नहीं हो सकते, इसलिए उनका उपयोग नहीं कर सकता हूं।
तुमने बात ही गलत समझ ली। तुम समझे कि मैं इन लोगों को समझा रहा हूं। इन्होंने मुझे नहीं समझाया, मैं इनको क्यों समझाऊं? बुद्ध मेरे संबंध में चुप रहे, मैं क्यों बोलूं?
नहीं, इससे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं जो तुमसे कहना चाहता हूं, वही
कह रहा हूं। अगर बुद्ध की वाणी उस पर थोड़ी रोशनी डाल देती है तो मैं बुद्ध की वाणी का उपयोग कर लेता हूं; महावीर की वाणी उस पर थोड़ी रोशनी डाल देती है, उनका उपयोग कर लेता हूं। लेकिन जो मुझे कहना है, मैं वही कह रहा हूं। जिस-जिस से मेरी बात के लिए गवाही मिलती है, उनका मैं उपयोग कर लेता हूं। लेकिन वे गवाह हैं। ऐसा नहीं कि मैं उन्हें समझा रहा हूं।
यही तो फर्क है। पंडित बुद्ध को समझाता है। पुरोहित महावीर को समझाता है। मुनि, त्यागी, तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु तुम्हारे महापुरुषों को समझाते हैं। मैं नहीं समझा रहा हूं किसी को। मैं तो सीधा मुझे जो दिखाई

पड़ा है, मैंने जो जाना है, उसी को समझा रहा हूं। अब उस समझाने में जहां-जहां से सहायता मिल सकती है--ताकि तुम्हारे मन में बात पूरी तरह अनेक-अनेक द्वारों से बैठ जाए--उन सबका उपयोग किए ले रहा हूं। लेकिन जो मैं कह रहा हूं वह मेरा है। इसलिए यह तो भूल कर भी मत...
मेरे पास लोग आ जाते हैं, कई लोग आ जाते हैं। कोई लेकर आ जाता है स्वामी नारायण संप्रदाय की किताबें, कि आप हमारे महाराज को समझाएं। मैंने कहा, तुम पागल हो गए हो! मेरा तुम्हारे महाराज से लेना-देना क्या? तुम मत झंझट में डलवाओ अपने स्वामी नारायण को! तुम ले जाओ किताबें। कोई किसी और को लेकर आ जाता है कि ये हमारे स्वामी, इनको समझाइए!
मैं उनसे कहता हूं कि तुम खतरा मत लो, क्योंकि कौन जाने, अगर मुझसे मेल
न बैठा तो फिर मुझसे मत कहना!
ऐसे ही तो गांधीवादियों ने गांधी को झंझट में डलवाया। ऐसे ही अरविंद
को अरविंद के मानने वालों ने झंझट में डलवाया। मैं बोला ही नहीं था, न बोलने जाने वाला था उन पर। बस आ गए कि अरविंद को समझाइए। मैंने उनको कई दफा समझाया भी कि तुम अरविंद को क्षमा करो। मगर वे पीछे ही पड़े रहे। पीछे ही पड़े रहे तो फिर मुझे कुछ कहना पड़ा। फिर मैं वही कहूंगा जो मुझे दिखाई पड़ता है। उससे अन्यथा मैं एक शब्द नहीं कह सकता। उससे इंच भर भिन्न नहीं कह सकता। उससे तुम्हें चोट लगे तो ठीक। उससे तुम्हें आनंद हो तो ठीक। वह तुम्हारा निर्णय है। लेकिन मैं तुम्हारे रंज, सुख-दुख को देख कर नहीं बोल सकता। अन्यथा फिर मुझे झूठ बोलना पड़ेगा। तुम झूठ हो--और झूठों में तुम्हारा सुख है।

चौथा प्रश्नः आप कहते हैं--प्रेम है द्वार प्रभु का। मैंने भी कभी किसी को प्रेम किया था, लेकिन उसे पाने में असफल रहा। अब तो तीस वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन फिर किसी और को प्रेम न कर पाया। क्या कभी मेरा उससे मिलन होगा?

पहली तो बात, जिसे मैं प्रेम कहता हूं और जिसे तुम प्रेम कहते हो, वे दोनों एक ही चीजें नहीं हैं। तुम गलत चीज को प्रेम कह रहे हो।
तुम कह रहे होः "तीस साल पहले मैंने किसी से कभी प्रेम किया था, उसे पाने में असफल रहा।"
अब प्रेम का पाने से क्या संबंध? मोह का पाने से संबंध है। मोह न पाए
तो तड़फता है। प्रेम तो कर लिया और भर गया; पाने की क्या बात है?
समझो, एक फूल खिला गुलाब का। तुम पास से निकले, तुम्हारी नजर पड़ी। तुम आह्लादित हुए। तुम्हारा प्रेम गुलाब के फूल पर बरसा। तुम अपनी राह चले गए। बात आई-गई, समाप्त हो गई। गुलाब जो तुम्हें दे सकता था, उसने तुम्हें दे दिया; तुम जो गुलाब को दे सकते थे, तुमने दे दिया।
नहीं, लेकिन तुम कहते होः हमें झपट्टा मार कर गुलाब का फूल तोड़ना है।
जब तक हम उसको अपने बटन के काज में न लगाएं, तब तक हम तड़फेंगे। तीस साल हो गए तड़फते, कि उस गुलाब के फूल को हम अपने बटन के काज में न लगा पाए।
गुलाब का फूल, जैसे ही तुमने कब्जा किया, वैसे ही मर गया। प्रेम कब्जा नहीं मांगता। और शायद कब्जा मांगने के कारण ही तुम चूके। तुमने शायद कब्जा करना चाहा होगा। अभी भी, तीस साल हो गए, मगर तुम्हारे इरादे अच्छे नहीं हैं।
अभी भी तुम कह रहे होः "क्या कभी मेरा उससे मिलन होगा?"
अगर मेरा बस चले तो कभी नहीं होने दूंगा। तुम खतरनाक हो। तुम किसी की गर्दन पर सवार होना चाहते हो। तुम मालिक होना चाहते हो।
प्रेम तो दान है। प्रेम में कोई किसी को रोक ही नहीं सकता। जिससे तुम प्रेम करते हो, वह भी नहीं रोक सकता तुम्हें प्रेम में। कैसे रोक सकता है? प्रेम तो तुम्हारा दान है।
और प्रेम कभी असफल नहीं होता--हो ही नहीं सकता। इसका मतलब यह नहीं है
कि प्रेम तुम करोगे तो वह तुम्हें मिल ही जाएगा। उसको मैं सफलता नहीं कहता। प्रेम के तो करने में ही सफलता है। बात ही खत्म हो गई; और कोई लक्ष्य नहीं है प्रेम में।

लेकिन तुम चाहते होओगे कि यह स्त्री मेरी पत्नी बने। तुम सोचते हो यह प्रेम है? तुम कब्जा करना चाहते थे। तुम स्त्री के हाथ में जंजीरें डालना चाहते थे। तुम इस स्त्री को अपने आंगन में कैद करना चाहते थे। तुम इस स्त्री को, मेरी ही हो, और किसी की न हो, इस तरह की सील-मोहर लगाना चाहते थे। तुम स्वामी बनना चाहते थे। तुम इस स्त्री को संपत्ति बनाना चाहते थे। तुम चाहते थे कि फिर तुम इस स्त्री को लेकर गांव-बस्ती में घूमो और लोगों को दिखाओ कि देखो, यह सुंदर स्त्री मेरी है! और कोई इसकी तरफ आंख उठा कर न देखे! अन्यथा मुझसे बुरा कोई भी नहीं!
हिंसा का भाव था तुम्हारा, प्रेम का नहीं। प्रेम का क्या लेना-देना है? प्रेम तो तुम्हारे भीतर उठी आनंद की ऊर्मि है। किसी के चेहरे को देख कर उठी, बात पूरी हो गई। किसी की आंखों को देख कर उठी, बात पूरी हो गई। किसी फूल को खिला देख कर उठी, बात पूरी हो गई। तुम मालिक क्यों होना चाहो? तुम प्रेम और लोभ में भेद नहीं समझ पा रहे हो। तुम प्रेम और मोह में भेद नहीं समझ पा रहे हो। तुमने लोभ और मोह को प्रेम समझा है। और ऐसा प्रेम तो असफल होगा ही। तुम्हें स्त्री नहीं मिली, इसलिए नहीं; मिल जाती तो भी असफल होता। नहीं मिली, इसलिए तीस साल तक सरकता भी रहा; मिल गई होती तो तीन दिन न चलता।
अक्सर ऐसा हो जाता है कि जिसको तुम पाना चाहते थे और नहीं पा सके, तो तुम्हारा अहंकार तड़फता रहता है। क्योंकि तुम्हें चोट लगी, तुम नहीं पा सके। तुम हार गए। तुम अपनी विजय करके दिखाना चाहते थे और विजय नहीं हो पाई। वह घाव तुम में तड़फता है। यह अहंकार ही है, यह प्रेम नहीं है।
पूछते होः "आप कहते हैं--प्रेम है द्वार प्रभु का।"
मैं कहता नहीं; ऐसा है। प्रेम है द्वार परमात्मा का। और प्रेम के अतिरिक्त उसका कोई और द्वार नहीं है। लेकिन मेरे प्रेम की परिभाषा समझो। प्रेम है दान। प्रेम है विसर्जन। प्रेम है समर्पण।
लेकिन तुम तो परमात्मा को भी अगर प्रेम करोगे तो उसको भी कब्जा कर लेना चाहोगे; मौका मिल जाए तो उसके गले में रस्सी डाल कर तुम अपने अस्तबल में बांध दोगे कि चलो अब, मेरे अस्तबल में रहो; मैंने तुम्हें पा लिया। तुम तो परमात्मा को भी पा लोगे तो उसको भी कैदी बना लोगे। तुम्हारे मन में बड़ी गहन हिंसा है। तुम उस पर भी मुट्ठी बांध लोगे। अगर तुम्हें परमात्मा मिल जाए तो तुम फिर परमात्मा को किसी और को न मिलने दोगे; फिर तुम पूरी चेष्टा करोगे कि अब देखना, किसी और पर कृपा मत कर देना! अब तुम्हारी सारी अनुकंपा मेरी तरफ हो। मैं तुम्हारा भक्त, तुम मेरे भगवान! अब इधर-उधर मत जाना! अब और दूसरे चिल्लाते हैं, चिल्लाने दो। न मैं तुम्हें धोखा दूंगा, न तुम मुझे धोखा देना। न मैं किसी और को भगवान बनाऊंगा, न तुम किसी और को भक्त बनाना।
तुम्हारा यह जो रुग्ण चित्त है, यह सभी चीजों को रुग्ण कर देता है।
जापान में एक कहानी है। एक बौद्ध साध्वी थी। उसके पास बड़े प्यारे बुद्ध की प्रतिमा थी। स्फटिक की बनी थी। और वह रोज बुद्ध की प्रार्थना करती सुबह-सांझ, आरती उतारती, दीया जलाती, ऊदबत्ती लगाती। साध्वी थी तो अक्सर मंदिरों में ठहरती। यात्रा पर जाती। एक बार मंदिर में ठहरी। हजार बुद्धों का मंदिर, जहां हजार प्रतिमाएं हैं बुद्ध की। उसने सुबह अपने छोटे से बुद्ध को निकाला। ये हजार इतनी बड़ी प्रतिमाएं पूजा के लिए काफी नहीं हैं! उसे अपनी थैली में जो बुद्ध हैं, उनकी ही प्रार्थना करनी है। ये उसी बुद्ध की प्रतिमाएं हैं सारी, बड़ी विराट प्रतिमाएं हैं, जिन्हें देखने हजारों मील से लोग आते हैं। लेकिन जब वह सुबह पूजा करने बैठी तो उसने अपनी झोली में से अपने बुद्ध निकाले। अपने-अपने बुद्ध सब सम्हाल कर रखते हैं। ऐसे उधार बुद्ध और हर किसी के बुद्ध और ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे जिनकी प्रार्थना करते हैं। लोग अपने-अपने विशिष्ट बुद्ध रखते हैं, अपनी थैली में रखते हैं, सम्हाल कर रखते हैं। अपने बुद्ध को निकाला, बिठाया आसन पर। छोटा सा आसन भी रखती थी। तब उसे एक सवाल उठा कि आज अगर मैंने ऊदबत्ती लगाई तो ऊदबत्ती के धुएं पर किसका क्या बस! धुआं तो धुआं है। धुआं कोई आदमी तो नहीं है। आदमी जैसी बुद्धि भी धुएं के पास नहीं है। धुआं तो उड़ेगा और ये जो हजार बुद्धों की प्रतिमाएं हैं, न मालूम किसके नासापुटों में समा जाए!

धुआं तो धुआं है, धुएं का क्या भरोसा! तो उसने एक छोटी सी पोंगरी बनाई-- बांस की पोंगरी। ऊदबत्ती लगाई और बांस की पोंगरी में से धुएं को अपने बुद्ध तक पहुंचाया। उसने जो किया सो ठीक, मगर हुआ यह कि बुद्ध का चेहरा काला हो गया। वह बड़ी दुखी हुई। यह प्यारी-प्यारी प्रतिमा खराब हो गई। मंदिर का बड़ा पुजारी यह सब खड़ा देखता था। वह एक पहुंचा हुआ फकीर था। उसने कहा कि तेरी बात मैं समझ पाया। यह तेरा देख रहा हूं खेल। मगर देख, तेरे साथ बुद्ध की क्या गति हो गई! तू तो मुक्त न हुई बुद्ध को पाकर, बुद्ध तेरे कैदी हो गए। तू तो बुद्ध को पाकर सुंदर न हुई, बुद्ध कुरूप हो गए। जरा देख, बुद्ध को क्या हुआ! तूने चेहरा काला कर दिया। ऐसी भी क्या बात? ऐसा भी क्या लोभ, मोह? ऐसा भी क्या बंधन?
मगर यही है हालत। अपने-अपने भगवान हैं। अपने-अपने मंदिर हैं। तुमने प्रेम को समझा ही नहीं। प्रेम विस्तीर्ण है। प्रेम कोई सीमा नहीं मानता और न कोई सीमा जानता है। प्रेम कुछ मांगता नहीं उत्तर में। प्रेम कोई प्रत्युत्तर नहीं चाहता। प्रेम तो इसी से धन्यभागी अनुभव करता है कि मैं प्रेम को कर पाया।
अब तुम चांद को प्रेम करते हो, तो तुम चांद को कोई अपने घर बांध नहीं रखना चाहते। छोटे बच्चे अक्सर हाथ बढ़ाते हैं चांद को पकड़ने के लिए। छोटे बच्चे अक्सर परेशानी खड़ी कर देते हैं। तुमने कृष्ण और यशोदा की कहानी भी पढ़ी होगी कि कृष्ण मचल गए कि चांद चाहिए। अब यशोदा परेशान है कि क्या करे, क्या न करे। एक साधु गुजरता है और वह साधु यह सब देखता है। वह कहता हैः एक काम कर। कांसे की थाली में पानी भर कर रख। चांद उसमें दिखाई पड़ेगा। वही चांद कृष्ण को दे दे।
उसने कांसे की थाली में पानी भरा, चांद का प्रतिबिंब पड़ा। यह छोटा सा बालकृष्ण खूब आह्लादित हो गया। थाली लेकर घूमने लगा। जहां ले जाए, चांद तो वहीं, चांद की छाया पड़ रही है। बहुत खुश है, प्रसन्न हो गया, तृप्त हो गया। ध्यान रखना, अगर तुमने प्रेमपात्र पर मालकियत करना चाही, तो प्रतिबिंब पर ही मालकियत होगी। यह इस कहानी का राज है। असली पर नहीं हो सकती। असली चूक जाएगा। नकली पर हो जाएगी मालकियत। नकली पर ही मालकियत हो सकती है। नकली ही मुट्ठी में आता है, असली मुट्ठी में नहीं आता। अगर असली चाहिए हो तो मुट्ठी खुली रखना, बांधना मत। नकली चाहिए हो तो मुट्ठी बांध लेना। असली के लिए खुला हाथ चाहिए, खुला हृदय चाहिए। नकली के लिए बांध सकते हो। प्रतिबिंब पकड़ में आ सकते हैं, मूल पकड़ में नहीं आता।
और हम सारे जीवन यही उपद्रव में लगे हैं कि किसी तरह प्रेम पकड़ में आ जाए; बांध लें, रेखा खींच दें उसके चारों तरफ; कब्जे में कर लें। यह कब्जे की आकांक्षा रुग्ण है।
पूछते होः "आप कहते हैं--प्रेम है द्वार प्रभु का। मैंने भी कभी किसी
से प्रेम किया था। लेकिन उसे पाने में असफल रहा।"
पाने की आकांक्षा थी, इसी में असफलता है। अगर सिर्फ प्रेम किया होता
तो सफलता ही सफलता थी। पाना क्यों चाहो? मालकियत क्यों? मालिक तो सिर्फ एक परमात्मा है, तुम क्यों मालिक बनना चाहो? सुंदर फूल उसके, सुंदर पहाड़ उसके, सुंदर चेहरे उसके, सुंदर देहें उसकी, सुंदर नदियां उसकी, सुंदर चांद-तारे उसके--सारा सौंदर्य उसका है। तुम कब्जा क्यों करना चाहो? और तीस साल बीत गए, अभी भी तुम्हारी कब्जे की आकांक्षा है?
"लेकिन मैं फिर किसी और को प्रेम न कर पाया।"
तुम सोचते हो तुमने बड़ा भारी काम किया, कोई शहीद हो गए! सोच रहे होओगेः शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले! क्या विचार कर रहे हो? यह भी कोई प्रेम हुआ जो एक पर चुक गया? बूंद-बूंद रहा होगा, एकाध ही बूंद रहा होगा कि टपका कि खत्म। फिर झरना ही सूख गया? इतना विराट संसार! प्रभु इतने रूपों में प्रकट! और तुम एक रूप में ही ऐसे भटक गए कि फिर तुम किसी और को प्रेम न कर पाए! तुम सोचते होओगे कि यह बड़ा मैंने प्रेम किया, कि देखो, वह तो नहीं मिली, लेकिन मैं अब भी उसी का हूं! फिर किसी को प्रेम नहीं किया!
तुम अपने को नाहक सता रहे हो। तुम अपने को नाहक कष्ट दे रहे हो। यह भी अहंकार है। उस प्रेम में भी अहंकार था कि पाकर रहूंगा! फिर पा नहीं सके तो

विषाद ने घेर लिया। अब तुम यह कहते होः तो दिखा कर रहूंगा कि मैं वफादार हूं!
किसको दिखा रहे हो? तुम्हारा जीवन चुकता हुआ जा रहा है। अगर परमात्मा
एक द्वार से नहीं मिला, दूसरे द्वार से खोजते।
एक मेरे मित्र हैं। उनकी पत्नी मर गई। जब पत्नी जिंदा थी, तब भी मैं उन्हें जानता था, कभी उनमें बनी नहीं। किसमें बनती है! पति-पत्नी में बन जाए, यह चमत्कार। ऐसा होता नहीं। कभी हो जाए तो अपवाद। और अपवाद से सिर्फ नियम सिद्ध होता है, और कुछ सिद्ध नहीं होता। उन्हें जानता था। जब भी मेरे पास आते थे, उनकी पत्नी आती थी, तो सदा रोना और झंझट यही थी, दोनों की बनती नहीं थी। फिर पत्नी मर गई। पत्नी मर गई तो मुझे खबर मिली कि वे तो एकदम विरागी हो गए! पत्नी क्या मर गई, उनका प्रेम एकदम से पत्नी के प्रति हो गया! उन्होंने सब तरफ दीवालों में फोटुएं लगा लीं पत्नी की। दुकान इत्यादि जाना ही बंद कर दिया। पैसे वाले हैं, सुविधा है, चाहें तो इस तरह की शहीदगी का मजा ले सकते हैं, कोई अड़चन नहीं है। वे तो बैठ ही गए, वे जाएं ही नहीं वहां से, अपने कमरे में ही बैठे हैं धूनी रमाए। उनकी बहन ने मुझे आकर कहा कि मेरे भाई को क्या हो गया? अब आप कुछ फिकर करें! मरे उनकी पत्नी को तीन महीने हो गए, वे वहीं बैठे हैं धूनी रमाए। गजब का प्रेम है, उनकी बहन ने कहा। ऐसा प्रेम सतयुग में होता था, कलियुग में कहां!
मैंने उनसे कहा कि प्रेम-व्रेम कुछ नहीं, मैं आता हूं। मैं उनके घर गया। मैंने कहाः यह क्या कर रहे हैं? किसकी तस्वीरें लटकाए हुए हो? और मैं भलीभांति जानता हूं तुम्हारी कभी बनी नहीं। अब अपराध-भाव से पीड़ित हो या क्या मामला है--कि इसको कभी सुख नहीं दिया, इसको सदा सताया! तो अब कुछ क्षति-पूर्ति कर रहे हो? जिंदा थी तो तुमने जरूर कई बार सोचा होगा कि यह मर जाए।
कौन पति नहीं सोचता? सरका देता है विचार को कि नहीं-नहीं, यह बात ठीक नहीं। और उस दिन जिस दिन यह विचार आता है, कुल्फी खरीद लाता है बाजार से, साड़ी ले आता है--कि यह ठीक नहीं है, यह विचार आ गया, अब इसकी क्षति-पूर्ति करनी पड़ती है न! स्त्रियां जानती हैं, जिस दिन पति साड़ी ले आए बिना कहे, उसका मतलब है कि कुछ गड़बड़ है; मिठाई ले आए, उसका मतलब है कि कुछ गड़बड़ है। न दिवाली, न होली--और ये मिठाई लिए चले आ रहे हैं! तो जरूर कोई अपराध किया है। फिर स्त्री खोज-बीन में लग जाती है, फिर जेब वगैरह तलाशती है, डायरी वगैरह देखती है कि कहीं फोन नंबर मिल जाए, कोई नाम का पता चल जाए। कुछ न कुछ है मामला!
तो मैंने कहा कि तुमने जरूर कई दफे सोचा होगा कि यह मर जाए।
वे थोड़े चौंके। उन्होंने कहा कि यह आपको कैसे पता चला?
मैंने कहाः पता की बात ही क्या! ये फोटो क्यों लगाई हैं? यह यहां बैठ
कर क्या धूनी रमाए हुए हो? यह किसको दिखा रहे हो? इससे सार क्या है?
मैंने कहाः मुझसे तो कहो सच, अभी यहां कोई भी नहीं है।
उनकी आंख में आंसू आ गए। उन्होंने कहाः आपने मुझे पकड़ लिया। मामला यही है। मैंने कई बार सोचा कि यह मर जाए। इतना ही नहीं, कई दफा मैंने सोचा कि मार डालूं, क्योंकि दुख ही दुख है। और फिर वह मर गई तो मुझे ऐसा लगता है कि मेरी ही भावनाओं ने उसे मार डाला। मगर आप किसी और को मत कह देना। लोग तो यही समझ रहे हैं कि मैं उसके प्रेम में दीवाना हूं, अब कभी विवाह न करूंगा। मैंने उनसे कहा कि अगर इस स्त्री को तुमने प्रेम किया था और इस स्त्री
के प्रेम से तुमने आनंद पाया था, तो तुम निश्चित विवाह करोगे। क्योंकि प्रेम ने तुम्हें आनंद दिया, आनंद तुम क्यों न चाहोगे? अक्सर जो लोग एक विवाह के बाद विवाह नहीं करते, वे वे लोग हैं जिनको इतना स्त्री कष्ट दे गई कि सब स्त्रियों से मुक्त कर गई, सदा के लिए मुक्त कर गई। अब झंझट में वे नहीं पड़ सकते। एक को क्या जाना, सब को जान लिया। हालांकि ऐसा वे कहेंगे नहीं। मगर मनोवैज्ञानिक सत्य बड़े उलटे हैं। आदमी जो ऊपर करता है, वह एक बात; भीतर जो होती है, बिल्कुल दूसरी बात।
अब तुम कहते होः तीस साल बीत चुके, मैं किसी को प्रेम न कर पाया।
तुम्हारे अहंकार को जो चोट लगी है, उस चोट के कारण तुम अब एक नया अहंकार खड़ा कर रहे हो कि मैं कोई ऐसा-वैसा प्रेमी नहीं हूं! मैं दिखा कर

रहूंगा कि किया तो एक को किया, फिर कभी नहीं किया! बस एक पर कुर्बान हो गया। अपनी जिंदगी आहुति चढ़ा दूंगा।
यह रुग्ण चित्त-दशा है। यह दुखवादी दशा है। जिसको मनोवैज्ञानिक मैसोचिज्म कहते हैं, यह अपने को सताने की वृत्ति है। तुम पुराने ढंग के संन्यासी हो सकते हो बड़ी आसानी से। तुम चाहो तो कांटों वगैरह की सेज बना कर लेट सकते हो, धूप में खड़े हो सकते हो, उपवास कर सकते हो--बड़ी आसानी से। तुम्हें बिल्कुल जम जाएंगी ये बातें।
प्रेम तो जीवन की भाव-भंगिमा है। प्रेम जीवन है। प्रेम कोई ऐसी चीज नहीं कि एक पर चुक गया। प्रेम तो श्वास है आत्मा की। तुम रोक कैसे सकोगे? जैसे शरीर के लिए श्वास की जरूरत है, ऐसे ही आत्मा के जीवन के लिए प्रेम की जरूरत है। प्रेम तो सतत हो रहा है--कभी वृक्ष से, कभी चांद से, कभी तारों से, कभी लोगों से, कभी कविताओं से, कभी संगीत से, कभी चित्रों से, कभी मूर्तियों से--प्रेम तो प्रतिपल हो रहा है। प्रेम कोई ऐसी चीज थोड़े ही है कि तुम एक तरफ कर लिए कि बस खत्म हुआ।
अब तुम मेरे पास हो तो मुझसे तुम्हारा प्रेम हो रहा है। नहीं तो यहां किसलिए हो? यह भी प्रेम है। अगर मेरी वाणी तुम्हें प्रीतिकर लग रही है तो यह भी प्रेम है। प्रेम के अनंत रूप हैं। कोई एक स्त्री पर थोड़े ही चुक जाता है। कोई किसी एक पुरुष पर थोड़े ही चुक जाता है। तुम्हारा कोई मित्र भी होगा; वह भी प्रेम है। प्रेम के बहुत-बहुत भाव, बहुत भंगिमाएं हैं। और सभी भंगिमाओं में प्रेम को प्रकट होना चाहिए। और प्रेम की अंतिम भंगिमा परमात्मा है। जब तुम्हारा प्रेम सब तरफ बहने लगता है, निर्बाध बहने लगता है, बेशर्त बहने लगता है; जब तुम्हारे प्रेम में कोई मांग नहीं रह जाती, सिर्फ दान रह जाता है--तो प्रेम प्रार्थना हो जाता है। इसलिए मैं कहता हूंः प्रेम परमात्मा का द्वार है।
मगर तुम पूछते होः "क्या कभी मेरा उससे मिलन होगा?"
महाराज, बख्शो! किसी तरह बेचारी बच गई। तुम कुछ और काम करो। तुम क्या अगले जन्म की प्रतीक्षा कर रहे हो? कल मैं एक कविता पढ़ रहा था, तुम्हारे काम की होगी।
उनकी तस्वीर निगाहों में चमक उठी है
आंसुओ! आज तो दम भर के लिए थम जाओ
जाने ये कौन बरस, कौन सदी है कि यहां
मेरी नाकाम सदाओं के भटकते आसेब
अपनी ही खोज में आवारा-ओ-दरमांदा हैं
मुझको जाना था किधर और मैं आया हूं कहां? अपने जख्मों को लिए कितने नगर घूमा हूं ले के सामाने-सफर दुखते हुए शानों पर हाथ पकड़े हुए वहशत-जदा अरमानों का अजनबी वादियों, दरियाओं में आ पहुंचा हूं हसरतो-गम की तपिश-रेज गुजरराहों पर मेरे रिसते हुए छालों के निशां मिलते हैं जीस्त दम भर को जहां बैठ के सुस्ताती थी अब वो पीपल के घने साये कहां मिलते हैं वक्त दम साधे हुए कांप रहा है कि अभी जिंदगी अपनी कमींगह से निकल आएगी
और ठोकर उसे मारेगी कि--"चल, आगे बढ़!" इसके पहले कि मिले वक्त को हुक्मे-रफतार मेरा खोया हुआ चेहरा मुझे वापस दे दो अपने लब रख के मैं उन ओंठों पे सो जाऊंगा जिनको चूमे हुए कितने ही बरस बीत गए रूह में सुर्खिए-लब घुल के उतर जाएगी सुबह अनफास की निकहत में बस जाएगी
पांव उठेंगे उसी शहर की जानिब, कि जहां कल्ब ने मेरे, धड़क उठने का फन सीखा था दम बखुद वक्त मुझे देख के पूछेगा--

"क्या तेरे शौक की वारफ्तःमिजाजी है वही?" अपने उलझे हुए बालों की लटें बिखराए
कौन ये गोद में बच्चे को लिए बैठी है? अपने घर-बार, दरोबाम से उकताई हुई
किसलिए आए हैं? क्यों घर में घुसे आते हैं? जाइए-जाइए, आफिस से वो आते होंगे
अजनबी शख्स को देखेंगे तो घबड़ाएंगे
जाने क्या सोचेंगे, कुछ सोच के झुंझलाएंगे
कौन वो? कौन ये बच्चा? ये थका सा चेहरा?
कौन मैं, अपने ही पैकर का झिझकता साया
वक्त एहसासे-खिजालत से झुकाए हुए सर
अपनी खामोश निगाहों से ये करता है सवाल
"क्या तेरे शौक की वारफ्तःमिजाजी है वही?"
यह कवि कह रहा है कि वर्षों बीत गए हैं, जिसको प्रेम किया था और जिसके प्रेम के कारण जीवन में उत्साह उठा था, वह उत्साह खो गया। अब वर्षों से तो मैं एक भूत की तरह उसी को खोजते भटक रहा हूं। और इसके पहले कि समय मुझसे कहे कि उठ, आगे बढ़, मैं एक ही प्रार्थना करता हूं कि मुझे मेरा पुराना वह प्यारा चेहरा वापस दे दो। मैं उन्हीं ओंठों पर ओंठ रख कर सो जाऊंगा।
मेरा खोया हुआ चेहरा मुझे वापस दे दो
अपने लब रख के मैं उन ओंठों पे सो जाऊंगा
जिनको चूमे हुए कितने ही बरस बीत गए
रूह में सुर्खिए-लब घुल के उतर जाएगी
सुबह अनफास की निकहत में बस जाएगी
मेरी श्वासें सुगंधित हो जाएंगी। ओंठों की सुर्खी मेरे प्राणों को फिर से जगा देगी।
पांव उठेंगे उसी शहर की जानिब, कि जहां
कल्ब ने मेरे, धड़क उठने का फन सीखा था
वह क्षण, वह प्रेम का क्षण, जहां मेरे हृदय ने धड़क उठने का राज सीखा था, उसी तरफ भागने लगूंगा।
दम बखुद वक्त मुझे देख के पूछेगा--
और समय मुझसे जरूर पूछेगा--
"क्या तेरे शौक की वारफ्तःमिजाजी है वही?"
क्या तेरे प्रेम की, तेरे लगाव की, तेरी वासना की, अभी भी वही मनमौजीपन
है जो पहले था? अभी भी तू जागा नहीं? अभी भी तू समझा नहीं?
अपने उलझे हुए बालों की लटें बिखराए
और अगर मैं पहुंच जाऊं फिर से, तो यह होगी हालत... तुम्हारी भी यह हालत होगी। अब तीस साल बाद अगर तुम्हें मिल जाए वह स्त्री जिसको तुम सोचते हो तुमने प्रेम किया था और तुम उसके पास उसके घर में पहुंच जाओ...
अपने उलझे हुए बालों की लटें बिखराए
वह भी पचास की होती होगी। तुम अभी भी सोचते हो वह बीस की है!
कौन ये गोद में बच्चे को लिए बैठी है?
मिल जाएगी तो पहचान भी न सकोगे।
कौन ये गोद में बच्चे को लिए बैठी है?
अपने घर-बार, दरोबाम से उकताई हुई
सब तरह से ऊबी, परेशान, बालों को बिखराए, यह कौन बच्चे को लिए बैठी है?
यह चेहरा तुम्हें पहचानने में भी नहीं आएगा। यह चेहरा वही नहीं है जो तीस साल पहले था। नहीं हो सकता। अपना चेहरा तो आईने में देखो! तुम भी कितने बदल गए! तुम भी वही नहीं हो। वह भी वही नहीं हो सकती। तुम्हें देखेगी तो घबड़ाएगी। तुम यह मत सोचना कि पहचानेगी। पूछेगी--
किसलिए आए हैं? क्यों घर में घुसे आते हैं?
जाइए-जाइए, आफिस से वो आते होंगे
अजनबी शख्स को देखेंगे तो घबड़ाएंगे
जाने क्या सोचेंगे, कुछ सोच के झुंझलाएंगे

आप कहां घुसे चले आ रहे हैं? तुम्हें पहचान भी न सकेगी। तुम भी न पहचान सकोगे।
कौन वो? कौन ये बच्चा? ये थका सा चेहरा?
किसकी बातें कर रही है यह स्त्री?
कौन वो?
कौन हैं जो दफ्तर से आते होंगे?
कौन ये बच्चा? यह थका सा चेहरा?
और तब तुम्हें ख्याल उठेगा--
कौन मैं, अपने ही पैकर का झिझकता साया
सिर्फ एक छाया मात्र हूं अतीत की!
वक्त एहसासे-खिजालत से झुकाए हुए सर
और समय लज्जा से सिर झुका कर पूछेगा--
अपनी खामोश निगाहों से ये करता है सवाल
"क्या तेरे शौक की वारफ्तःमिजाजी है वही?"
क्या अब भी तेरे प्रेम का पागलपन वही है? अब भी तू समझा नहीं? प्रौढ़ नहीं हुआ?
तीस साल लंबा समय है। इन तीस सालों में तुम उसी सपने को संजोए बैठे हो,
तो तुमने तीस साल गंवा दिए, तो तुमने जिंदगी से कुछ सीखा नहीं। और अभी तीस साल के बाद भी वही बचकानी बात तुम्हारे मन में घूम रही है कि क्या कभी मेरा उससे मिलन होगा? तुम अब भी सपने और ख्वाब में जी रहे हो। ख्वाब से जागो! काफी समय बीत गया। आगे जो आ रहा है, संभावना बहुत कम है कि उससे तुम्हारा मिलना हो; क्योंकि जिससे तुम मिलना चाहते हो वह अब है कहां? गंगा का कितना पानी बह गया! जो तुम अपनी आंखों में सजाए बैठे हो तस्वीर, वह तस्वीर अब कभी नहीं मिलेगी। वह तो पानी पर खिंची लकीर थी, कब की मिट गई है! और जो मिलेगी, उससे तुम्हारा कोई तालमेल न बैठेगा। तुम सोच भी न पाओगे कि यह स्त्री इस तरह हो गई। तुम पहचान भी न पाओगे।
आने वाली जो घटना है, वह है मौत, जो पास आ रही है रोज। तुम अतीत में मत उलझे रहो। जरा जागो स्थिति के प्रति। जिंदगी हाथ से जा रही है। मौत करीब आ रही है। इसके पहले कि मौत आ जाए--पको! प्रौढ़ बनो! ये बचकानी बातें हैं। ये कवियों को शोभा देती हैं। कवियों को माफ किया जा सकता है। बुद्धिमानों को नहीं ये बातें शोभा देतीं। थोड़ी बुद्धि पर रौनक लाओ, थोड़ी बुद्धि को निखारो। थोड़ा जीवन को साफ करके देखो। मिल भी जाती तो क्या होता? किसी को तो मिल ही गई होगी। जरा उनसे पूछो, उनको क्या हुआ?
मैंने सुना है, एक पागलखाने में दो आदमी बंद हैं। और एक दर्शक देखने आया है। वह पूछता हैः यह आदमी क्या कर रहा है? क्योंकि एक आदमी एक तस्वीर लिए बैठा है, जैसे तुम तस्वीर लिए बैठे हो। तस्वीर लिए बैठा है, छाती से लगा रहा है, चूमता है, छाती से लगाता है। आंसू बह रहे हैं, रो रहा है। वह पूछता हैः इसको क्या हो गया?
तो सुप्रिंटेंडेंट कहता हैः यह आदमी इस स्त्री को प्रेम करता था, उसे
पा नहीं सका, उसी में पागल हो गया।
और सामने ही कोठरी में एक दूसरा आदमी दहाड़ें मार रहा है और दीवालों से सिर फोड़ रहा है। और वह पूछता हैः इन सज्जन को क्या हुआ?
और वह सुप्रिंटेंडेंट कहता हैः इन सज्जन को वह स्त्री मिल गई, जिससे
वह पहला प्रेम करता था। मिलने के कारण ये पागल हो गए हैं।
तुम बच गए, भगवान को धन्यवाद दो! कोई दूसरा तुम्हारा कष्ट भोगता होगा।
इस जिंदगी में मिलता क्या है? यहां मिलने को है क्या? राख ही राख है। मिल जाए इतनी सी बात तो बस बहुत है कि यहां कुछ भी मिलने को नहीं। बस यही सार है। इतनी बात समझ में आ जाए कि यहां कुछ भी नहीं। इस बोध से ही आदमी परमात्मा की तरफ उठना शुरू होता है। जहां संसार का प्रेम असफल होता है, वहीं परमात्मा का प्रेम जगता है।
अब तुम उस स्त्री की प्रतीक्षा न करो। अब तुम उस प्रेम की भी प्रतीक्षा न करो। वह जवानी का सपना था। जवानी सपने देखती है। गया! अब तुम बूढ़े होने के करीब आए। अब तुम जरा जागो! अब यह जिंदगी हाथ से निकली जाती है। इसके पहले कि यह जिंदगी हाथ से निकल जाए, कुछ तैयारी करो--मौत से मिलने

की कुछ तैयारी करो। और एक ही व्यक्ति मौत से मिलने में तैयार हो पाता है, जो जाग जाए, जो होश से भर जाए, जो जिंदगी की असारता देख ले। इस जिंदगी की असारता में ही परमात्मा का सार है। यहां दिख गया कि सब असार है, तो वहां दिखना शुरू हो जाता है जो सार है। असार को असार की तरह जान लेना, सार की तरफ जाने का पहला कदम है।
अब तुम असार में मत उलझे रहो। ऐसे भी बहुत समय गंवा दिया। तीस साल में
तो परमात्मा को पा लेते। इतनी प्यास से तो परमात्मा मिल जाता। इतनी प्यास को ढालते तो प्रार्थना मिल जाती। तुम कूड़ा-कर्कट पाने के लिए इतने दीवाने हो रहे हो? मूल्य कितना है?
चारों तरफ देखो। जो प्रेम में सफल हो गए हैं, उनको देखो; जो असफल हो गए हैं, उनको देखो--सब रो रहे हैं! यह प्रेम प्रेम नहीं है। मैं किसी और प्रेम की बात कर रहा हूं। मैं उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जिसमें असफलता होती ही नहीं।
परमात्मा से प्रेम जुड़ाओ, वहां कभी असफलता नहीं है। और वहीं मिलता है जिसकी तुम तलाश कर रहे हो। जब तुम साधारण जीवन के प्रेम में भी पड़ते हो, तब भी तुम परमात्मा को ही खोज रहे हो; इसलिए साधारण प्रेम तुम्हें तृप्त नहीं कर सकता, क्योंकि खोज बड़े की है और साधारण बिल्कुल साधारण है। तुम कंकड़-पत्थरों में हीरे खोज रहे हो, नहीं मिलेंगे। खोज परमात्मा की चल रही है, परम प्यारे की चल रही है। उसे खोजो! वहां कोई कभी असफल नहीं होता है। संसार में कोई कभी सफल नहीं होता; परमात्मा में कोई कभी असफल नहीं होता है।
आज इतना ही।